Call No. 2031

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

0152m N44 2631
G9.9
Premchand
Hans.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

0152m N44
G9.9
2631
3613

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. 2631

रहस्यवाद	'अज्ञेय'	१
श्मशान	प्रेमनारायण टंडन	२
महाकाव्य का जन्म	अम्बालाल पुराणी	३
प्रवंचना	प्रेमनारायण टंडन	६
तीन दृश्य	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	७
रामोत्सव	अ० न० कृष्णराय	९
सरदार वल्लभ भाई की धार्मिकता	किशोरलाल घ० मश्रुवाला	१४
बुद्धदेव बसु	नन्दगोपाल सेनगुप्त	१७
विकास	देवीलाल सामर	१८
पीरमरुस	मोहनसिंह	१९
बालुरूपा देवी	नन्दगोपाल सेनगुप्त	२३
बढ़ई कोवालस्की	एडेम रिजमांस्की	२५
'एक भारतीय आत्मा'	प्रभागचन्द्र शर्मा	३६
दीनू	धर्मप्रकाश आनन्द	३९
डॉ० केलकर : व्यक्तिदर्शन एवं संस्मरण	शीलवती केलकर	४७
गीत	भारत भूषण अग्रवाल	५२
भीखकुमार : एकलव्य	'धूमकेतु'	५३
वह	देवीलाल सामर	६२
अन्तर्गीत	'अंचल'	६३
साहित्य में प्रगति	भूपेन्द्रनाथ दत्त	६५
युवक विद्यार्थी	विद्यावती 'कोकिल'	७५
नीर-क्षीर	प्रकाशचन्द गुप्त, 'विष्णु'	७७
मुक्ता-मंजूषा	शङ्करदेव विद्यालंकार, धनपतराम नागर, रामनाथ 'सुमन', अनुराग	८४

वार्षिक : ३) :: एक प्रति : आठ आना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[Approved by the Governments of the U. P., Behar, C. P. and Bombay Presidency for use in Colleges, Schools and all other educational institutions.]

हंस

आन्तरप्रान्तीय साहित्यिक प्रगति का अग्रदूत

: सम्पादक :

श्रीपतराय

0152m N44
G9.9

•

सलाहकारी सम्पादक-मंडल

•

उर्दू—मौलाना अब्दुलहक़
मराठी—वि० स० खाण्डेकर
गुजराती—रा० वि० पाठक
उड़िया—कालिन्दीचरण पाणिग्राही
बँगला—श्रीनन्दगोपाल सेन-गुप्त
पंजाबी—प्रो० मोहन सिंह
राजस्थानी—नरोत्तमदास स्वामी
कन्नड़—बी० अश्वत्थनारायण राव
निट्टूर श्रीनिवासराव

JAGADGURU VISHWARADHYA
NA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
No. 2631

—

वार्षिक मूल्य ६) विदेश में १२ शिलिंग बर्मा के लिए ८)
अर्द्ध-वार्षिक मूल्य ३) " ७½ " " ५)
एक अंक का आठ आना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वमित्र

आन्तरप्रान्तीय साहित्यिक जाग्रति का अग्रदूत

वर्ष : ९ : अंक : ७-१२

लेखकवार सूची

'अंचल'—अन्तर्गीत (कविता) ७३७
दोपहर की बात (,,) १०९०
अ० न० कृष्णराय—रामोत्सव ६८३
अभयदेव संन्यासी—श्रीअरविन्द क्या करते हैं ? १०७४
अम्बालाल पुराणी—महाकाव्य का जन्म ६७७
फूल ७७९
विज्ञान-योग १००६
कुछ भ्रान्तियाँ १०५४
अरविन्द—लक्ष्य ९७९
बन्धन ९८४
कुछ झाँकियाँ १००२
भगवान की ओर भावों की गति १०१६
स्थिरता, अभीप्सा और शान्ति १०३९
कठिनाई में १०४८
गीता में अवतारवाद १०६४
काम-वासना १०७९
'अज्ञेय'—रहस्यवाद ६७५
'आनन्द'—लड़की जिसकी हत्या मैंने की ९२४
इक़बाल वर्मा 'सेहर'—जहाँगीरी इन्साफ़ (कविता) १०९९
इन्दिरा गुप्ता—कामना (कविता) ११६८
उपेन्द्र नाथ 'अश्क'—तीन दृश्य (कविता) ६८१
पहेली : एक झाँकी ८८०
एक आश्रमवासी—श्री अरविन्द (जीवन में एक झाँकी) ९८७
श्रीअरविन्दाश्रम ९९३
एडेम स्ज़िमांस्की—बढ़ई कोवालास्की ६९९
नमक की चुटकी ८११
का० श्री० श्रीनिवासाचार्य—विद्वान् जगन्नाथ अय्यर 'ज्योति' ९०७
किशोरलाल मश्रुवाला—सरदार वल्लभभाई की धार्मिकता ६८८
कुमारी इन्दु—मिलन ११०३
कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'—किसान (कविता) ९१४
गगनबिहारी मेहता—गान्धीजी का उत्तरदायित्व ९५८
गुणवन्तराय 'आचार्य'—'न भुलातुं तू भूलिजा' ११६०
चन्द्रभाई भट्ट—विज्ञान की आग ८२७
चन्द्रप्रकाश वर्मा चन्द्र—उलझन (कविता) ११२३
जगन्नाथ प्रसाद—किसलिए नैराश्य छाया ? (कविता) ११७२
जे० एल० पेरेज़—बाँट्ज़ : जो संसार में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमेशा चुप रहा
जैनेन्द्रकुमार—मूल्यांकन
झवेरचन्द मेघाणी—कोई नो लाडकवायो
झण्डा-वन्दन
त्रिलोचन—तीन गीत
देवीलाल सामर—विकास
वह
गीत
दुर्गेश शुक्ल—मर री जीवली बाई !
धर्मप्रकाश आनन्द—दीनू
'धूमकेतु'—भीलकुमार : एकलव्य
माता की गोद
नगेन्द्र—दिल्ली (कविता)
नन्दगोपाल सेन-गुप्त—बुद्धदेव वसु
अनुरूपा देवी
निरुपमा देवी
नरेन्द्र शर्मा—ज्येष्ठ का मध्याह्न
निर्मला मित्रा—प्रथम घृणा
प्रकाशचन्द्र गुप्त—हिन्दी का आधुनिक काव्य
प्रभागचन्द्र शर्मा—'एक भारतीय आत्मा'
भगवान बुद्ध: दो जीवन-चित्र
प्रेमनारायण टण्डन—श्मशान
प्रवंचना
बलराज साहनी—वापसी व वापसी
तलिस्म
ब्रजमोहन गुप्त—अन्धा वैज्ञानिक
कहानी
भगवतीप्रसाद सकलानी—गीत
भारतभूषण अग्रवाल—गीत
भुवनेश्वरप्रसाद—दो स्केच
एक स्केच
भूपेन्द्रनाथ दत्त—साहित्य में प्रगति
मातुश्री—अमृत के छींटे
प्रेम
मोहनसिंह—पीरबख्श

८७८ मृत्युञ्जय—वह रेखा
७७१ य० गो० जोशी—सार्वजनिक कार्यकर्ता
८३२ रवीन्द्र—हाँ, वही पागल
१२२१ रवीन्द्रचन्द्र गैरोला—मा
१२०४ रामनाथ 'सुमन'—अंग्रेज़ी अख़बारबवीसी के
६६२ कुछ मनोरंजक अनुभव
७३६ रामसरन शर्मा—नारी पुरुष के तीन युग
११२६ रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—वह मजूर की अंधी लड़की
६४६ वागीश्वर प्रसाद द्विवेदी—जार्ज बर्नर्ड शा के जीवन
७१३ एक दृष्टि
७३७ वामन चोरघड़े—रात्रिरेवं व्यरंसीत्
७८५ विद्यावती 'कोकिल'—युवक विद्यार्थी (कविता)
११५८ विनयगोपाल राय—हीन-भाव
६६१ विश्वम्भरनाथ—ग़रीब के प्रति
६६७ अन्तर्वेदना
८३५ 'विष्णु'—हत्या के बाद
१०८४ वीरेन्द्रकुमार—चिर एकाकी
६१५ वेंपटि नागभूषणम्—ज्योत्स्ना रानी
७३१ वृजबिहारी महान्ती—जीवन और आकांक्षा
७१० शांतिप्रसाद वर्मा—आलोक
६४४ विद्रोह
६७६ शान्तिप्रसाद पाठक—रण-हुंकार
६८० शीलवती केतकर—डा० केतकर : व्यक्ति दर्शन
८ ४ एवं संस्मरण
११५१ श्रीमन्नारायण अग्रवाल—जीवन (कविता)
६३६ श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'—मृत्यु की गोद में
११६६ श्यामू संन्यासी—कोयले
११२५ सत्यवती मल्लिक—एक तान
७३६ सुभान
११०० सिद्धराज ढड्ढा—दो चित्र
२०२ सियारामशरण गुप्त—घोड़ाशाही
७३६ सोहनलाल द्विवेदी—वासंती (कविता)
६८० हरभाई त्रिवेदी—स्वर्गीय गिजुभाई के संस्मरण
१०२५ हरिभाऊ उपाध्याय—गांधीजी का नया प्रकाश
६६३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुक्ता-मंजूषा

(हिन्दी)

काका कालेलकर—साहित्य-संगठन ८६४
यशवन्त तेंडुलकर—राष्ट्र-भाषा और प्रान्तीय भाषाएँ १२३५
रामनाथ 'सुमन'—दाम्पत्य-जीवन के सुखों की कुंजी ७१२

(गुजराती)

धनपतराम नागर—कलावृत्ति और पुष्प-चयन ७६१
यशवन्त तेंडुलकर—गुजरात का बाल-साहित्य ११३७
शंकरदेव विद्यालंकार—भारतीय कला का समुत्थान ७५९
श्यामू सन्यासी—शिक्षण-ग्रन्थावलि का एक पाठ ८५८
ऐतिहासिक उपन्यास ९७६
शैली और विचार-तत्त्व ९७७

(अंग्रेज़ी)

अनुराग—वल्लभभाई पटेल ७६५
प्रभाकर माचवे—बिखरे विचार ८६३
यशवन्त तेंडुलकर—कविवर टैगोर पर एक सोवियट साहित्यकार की सम्मति ९७५
नाटककार बर्नार्ड शा की पाठकों तथा प्रेक्षकों को नई चेतावनी ११३५
एक युद्ध-विरोधी लेखक और कवि : अर्न्सट् टोलर ११३६
हैन्ज़ाक एलिस १२३६
चीनी-भाषा-साहित्य पर एक आक्रमण और उसका प्रतिकार १२३९
शंकरदेव विद्यालंकार—ये नाटक शेक्सपीयर के नहीं हैं ७५८

(तमिल)

का० श्री० श्रीनिवासाचार्य—वेदर्षियों की कविता ८५६

बँगला

यशवन्त तेंडुलकर—वंगवाणी का वैगुण्य १२३६

(मराठी)

प्रभाकर माचवे—स्वर्ग से निर्वासित ८६०
यशवन्त तेंडुलकर—एक आवश्यक सामाजिक कार्य ८६२

नीर-क्षीर

आनन्दराव जोशी—स्मृति-स्थल ११३२
प्रकाशचन्द्र गुप्त—चार कहानियाँ : विश्व-परिचय: गल्प-संसार-माला (उर्दू), कुछ विचार : ८०७
लाल तारा : हुंकार : उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ : अनामिका : ९६६
शरत्-साहित्य (१२ वाँ भाग) : रमा नाटक और परिणीता : १ ज्ञानारथ २ तराजू : देश-देश के लोग : शेफाली : ११२७
प्रभाकर माचवे—श्री० वि० स० खांडेकर के दो नये उपन्यास : चन्द्रनाथ : ८७१
'विष्णु'—पिकनिक : प्रलय से पहले : गल्प-संसार-माला (तमिल) ७५५
नीलमदेश की राजकन्या और अन्य कहानियाँ : ११३१
प्रस्तुत प्रश्न ११३३
यशवंत तेंडुलकर—मानवेन्द्रनाथ राय की संक्षिप्त जीवनी : हवन : ८६७
आधुनिक भारत
विवाहानन्तर १२२८
राष्ट्र-भाषा दर्शन १२२८
'किर्लोस्कर' १२२८
श्यामू सन्यासी—सान्ध्य गीत : ८७२
सुशील—अदबी दुनिया ९७४
स्वदेशाभरण—प्रभातफेरी
रामचन्द्र तिवारी—अपराध चिकित्सा १२३२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आन्तरप्रान्तीय साहित्यिक जाग्रति का अग्रदूत

प्रेमचन्द का स्मारक

एक अलभ्य अवसर ! शीघ्रता कीजिये !

'हंस' की पुरानी फाइलें एक दम सस्ते दामों

कपड़े की सुन्दर और मज़बूत जिल्द

चौथे वर्ष की सम्पूर्ण फाइल	... ...	५)
पाँचवें ,, ,, ,, ,,	... ...	४)
छठवें ,, ,, ,, ,,	... ...	४)
सातवें ,, ,, ,, ,,	... ...	४)
आठवें ,, ,, ,, ,,	... ...	४)
नवें ,, ,, ,, ,,	... ...	५)

बहुत थोड़ी फाइलें बची हैं ।

● एक साथ सभी फाइलें लेने पर मूल्य में रियायत ●

सरस्वती प्रेस, बुकडिपो, बनारस कैंट

चौक, बनारस शहर :: जेल रोड, इन्दौर शहर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

अप्रैल, १९३९ वर्ष—९ : अंक—७ चैत्र, १९९६

रहस्यवाद

['अज्ञेय']

मैं भी एक प्रवाह में हूँ—
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है।
मैं उस असीम शक्ति से सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ—
अभिभूत होना चाहता हूँ—
जो मेरे भीतर है।
शक्ति असीम है,
मैं शक्ति का एक अणु हूँ,
मैं भी असीम हूँ।
एक असीम बूँद—
असीम समुद्र को अपने भीतर प्रतिबिम्बित करती है;
एक असीम अणु—
उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है
अपने भीतर समा लेना चाहता है,
उसकी रहस्यमयता का परदा खोलकर
उसमें मिल जाना चाहता है,
उसे जान लेना चाहता है:
यही मेरा रहस्यवाद है।

२

लेकिन जान लेना तो अलग हो जाना है;
बिना विभेद के ज्ञान कहाँ है?
और मिलना है भूल जाना,
जिज्ञासा की झिल्ली को फाड़कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वीकृति के रस में डूब जाना,
जान लेने की इच्छा को भी मिटा देना।
मेरी माँग स्वयं अपना खण्डन है
क्योंकि वह माँग है,
दान नहीं है।

३

असीम का नंगापन ही सीमा है—
रहस्यमयता वह आवरण है जिससे ढँककर
हम उसे असीम बना देते हैं।
ज्ञान कहता है कि जो आवृत है, उससे मिलन नहीं हो सकता;
यद्यपि मिलन अनुभूति का क्षेत्र है;
अनुभूति कहती है कि जो नंगा है, वह सुन्दर नहीं है;
यद्यपि सौन्दर्य-बोध ज्ञान का क्षेत्र है।
मैं इस पहेली को हल नहीं कर पाया हूँ,
यद्यपि मैं रहस्यवादी हूँ;
क्या इसीलिए मैं केवल एक अणु हूँ
और जो मेरे आगे है वह एक असीम ?

कलकत्ता।

श्मशान

[प्रेमनारायण टंडन]

[श्री प्रेमनारायण टंडन ने अभी ही लिखना शुरू किया है। आजकल आप लखनऊ के कालीचरण हाई स्कूल में शिक्षक हैं।—सं०]

पंचभूत-निर्मित नश्वरता भस्म हो रही थी। स्नेह-सी, जीवन की असफल भावनाएँ अग्नि को और भी प्रज्वलित कर रही थीं। समीप खड़े सम्बन्धियों का भग्न-हृदय स्मृति की लपटों से झुलस रहा था। एक भयंकर शून्यता व्याप फैली थी।

× × ×

और, मैं सोचने लगा : 'क्या यह आवश्यक है कि सुदूर जानेवाले इस पथिक की विदा के समय विषाद-भरे आँसू बहाये जायँ।'

लखनऊ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाकाव्य का जन्म

[अम्बालाल पुराणी]
[अनुवादक, रवीन्द्र]

[पुराणीजी से 'हंस' के पाठक परिचित ही हैं। आप लगभग १८ वर्ष से श्री अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी में रहते हैं। आप गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। आपने बहुत-से निबन्ध, कहानियाँ और पुस्तकें लिखी हैं। अभी हाल में 'पथिक ना पुष्पो', 'पथिक ना पत्रो' और 'दर्पण ना टुकड़ा' नामक पुस्तकें आपने गुजराती भाषा को दी हैं।—सं०]

तमसा के तीर पर निवास करनेवाले वाल्मीकि ऋषि जंगल में घूमते-घूमते एक छोटे-से जलाशय के पास जा पहुँचे। चारो ओर शान्ति का साम्राज्य है। सामने एक क्रौंच-मिथुन आत्मरक्षा की तीव्र वृत्ति को भूलकर प्रणय-क्रीड़ा करने में मस्त है। इतने में आस-पास की किसी झाड़ी के पीछे से एक घातक बाण आता है और क्रौंच-युगल में से एक आक्रोश करता हुआ ज़मीन पर लोट जाता है। दूसरा आत्म-रक्षा के लिए उड़कर दूर जा बैठता है, पर जीवन-सखा का आर्तनाद सुनकर वहाँ से जा भी नहीं सकता। अन्तर का कोई अदृश्य तार दोनो को बाँधे हुए है। वह भी सहानुभूति में करुण क्रन्दन करता हुआ सारे वायु-मण्डल को कँपा देता है। घायल पक्षी मौत की शरण लेता है।

वाल्मीकि के हृदय पर इस दृश्य से चोट पहुँची। आत्मौपम्य के भाव से मरते हुए क्रौंच की शारीरिक तड़प का उन्होंने अनुभव किया, इतना ही नहीं उसके अन्तर की विरह-वेदना और चारो ओर के जंगल को आर्तनाद से गुँजा देनेवाली एक विरह-वेदना में इधर से उधर फड़फड़ाते हुए साथी के भावों का भी साक्षात्कार किया। वाल्मीकि का शोक श्लोक का रूप प्राप्त करके अनुष्टुप छन्द में फूट पड़ा :—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

'हे निषाद, तेरे अन्दर अनन्त वर्षों तक शान्ति की प्रतिष्ठा न हो पाये। तूने काम-मोहित क्रौंच-युगल में से एक का वध कर डाला है।'

कहा जाता है कि वाल्मीकि के अन्दर सुषुप्त कवि-प्रतिभा को जाग्रत करनेवाली घटना यही है। रामायण जैसे महाकाव्य का जन्म इसी घटना का आभारी माना जाता है। यह भी माना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

जाता है कि ऋग्वेद में आये हुए अनुष्टुप छंद का जन्म भी इसी अवसर पर हुआ था। रामायण जैसा महाकाव्य इस क्षुद्र घटना का ऋणी हो, यह बात विचारणीय है।

इस श्लोक में कवि प्रायः रोज ही घटनेवाली क्रौंच-वध की घटना देखता है; पर कविता में इस घटना की वास्तविकता का वर्णन नहीं है। श्लोक से हमें क्रौंच-युगल में से एक की मृत्यु का हाल तो मालूम होता है; पर कवि इसका वर्णन करने में ही अटक नहीं जाता। इस प्रकार कविता के जन्म के आदि कारण के रूप में वास्तविकता, एकाध वास्तविक हो यह तो सम्भव है; पर यह तो कहा जा सकता है कि उत्तमोत्तम काव्य-सृजन वास्तविकता से मर्यादित नहीं है और न होना चाहिये। घटना की वास्तविकता में उलझ जाने के बदले कवि क्या करता है? कवि घटना का अर्थ, उसका मर्म देखता है, उसके रहस्य को खोजता है। क्रौंच-वध के समय वाल्मीकि की अन्तश्चक्षु, उसका अन्तःकरण वन-शोभा में समाई हुई किसी अनिर्वचनीय संवेदना के साथ एकता का अनुभव कर रहा था। संसार में हर जगह, एक अनिर्वचनीय संवेदना काम कर रही है, जीवन के अनेक अनुभवों में मनुष्य को इसके दर्शन होते हैं। बछड़े को बड़े प्रेम के साथ चाटती हुई गाय, बच्चों को उड़ना सिखाती हुई चिड़िया से लेकर मित्रों में, सगे सम्बन्धियों में और मानव-मानव के बीच में एक अदृष्ट तन्तु व्याप्त है, सारे संसार का साहित्य इसी सृजनशील संवाद का आभारी है। इसी सर्वत्र व्याप्त तन्तु में कवि भी विलीन हो गया था। इतने में झाड़ी के पीछे से घातक बाण ने आकर क्रौंच-युगल को खण्डित कर दिया। बहुतेरी चीज़ों की सार्थकता को भंग करना हमारे यहाँ पाप माना जाता है। दूध पीते हुए बालक को ज़बर्दस्ती अलग करना भी इसी कोटि में है। क्रौंच-युगल विराट के इस संवाद में लीन था, उसका एक भाग बन गया था। युगल जीवन में उसकी सार्थकता थी। पर बहेलिये के बाण ने यह सार्थकता पूरी न होने दी, उसने विराट संवेदना का भंग किया। वह सृजन का घातक बना।

और इसका हेतु? केवल पेट भरना! कितना क्षुद्र और कितना ओछा। बहेलिये के अन्दर नास्तिक-भाव काम कर रहा था। पक्षी जीवन का अर्थ उसकी दृष्टि में स्वतन्त्र स्वानुभव द्वारा विकसित होता हुआ सचेतन व्यक्तित्व नहीं, अपितु केवल मांस का एक लोथड़ा था। कवि-मानस में स्वार्थ, क्षुद्रता और नास्तिकता तथा आनन्द, सृजन और सार्थकता का विरोध उठ खड़ा हुआ।

घटना के पीछे छिपे हुए संवाद का साक्षात्कार करता हुआ कवि-मानस तड़पते हुए पंछी की वेदना को विराट स्वरूप में प्राप्त करता है। व्यक्ति की आन्तरिक अनुभूति में से हटाकर वह घटना को विराट रूप में देखता है। प्रेरणा की विरल वाणी में विराट संवाद की सनातनता पुकार उठती है और उसे भंग करने का दण्ड भी बताती है।

कवि-सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक पुस्तक में कुछ ऐसी ही एक घटना का वर्णन है। वे कहते हैं: 'एक दिन मैं गंगा की सैर को निकला। वसन्त की रमणीय संध्या चारों ओर शोभा बढ़ा रही है, सूर्यास्त हुए अभी देर नहीं हुई। नीरव आकाश शान्त और बहुत ही सुन्दर दीख रहा था। आकाश के बदलते हुए रंग गंगा में प्रतिबिम्बित हो रहे थे। गंगा का निर्जन रेतीला तट मानव-इतिहास से पूर्व की किसी विश्व-प्रलय से पहिले के मीलों लम्बे रंग-बिरंगे अजगर की नाईं सामने दिखाई देता है। संध्या-काल की निःशब्द शान्ति में नदी के किनारे के टीलों के पास से होती हुई हमारी नौका गुजर रही है। पक्षी टीलों की झाड़ियों पर बसेरा ले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहे हैं। इतने में एक बड़ी-सी मछली पानी के ऊपर आई और सांध्य बेला के रंगों को प्रतिबिम्बित करती हुई फिर कहीं लुप्त हो गई। पानी का पर्दा हट गया और उसमें आनन्द से कल्लोल करते हुए जलचर के दर्शन हुए। सुन्दर नृत्य जैसे अभिनय के साथ मछली ऊपर आई और अस्त होते हुए दिवस के मूक वाद्य-यन्त्र के साथ अपने सुन्दर सङ्गीत को मिलाती गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी मानवेतर सृष्टि ने उसका मूक अभिनन्दन किया। मेरा हृदय उल्लास और आनन्द से भर गया। इतने में ही पतवार पर बैठा हुआ माझी निराशा-पूर्ण आवाज़ में बोल उठा—ओहो कितनी बड़ी मछली। उसके मन में पकाकर खाने के लिए तैयार की हुई मछली का चित्र आया। उसने अपनी इच्छा के आवरण में से मछली को देखा था, अतः वह इसके जीवन के सत्य को प्राप्त न कर सका।'

बहेलिये को शाप देता हुआ कवि विराट के संवाद की सनातनता प्रतिपादित करता हुआ उसे भंग करने का परिणाम भी दिखाता है। वह पैगम्बर बनता है और मानव-समाज के शासक मनु जैसा प्रतीत होता है।

इस दृष्टि को कवि कैसे प्राप्त करता है? भाव-जनक सहानुभूति के कारण। कविता के सृजन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कवि के आन्तरिक जीवन में ही अनुभव प्राप्त हो। कल्पना के साथ भाव की एकता साधकर अपने से बाहर की घटना के रहस्य को पाकर वह उनके साथ इतना तादात्म्य पैदा कर लेता है कि उन क्रौंचों का करुणा-त्रस्त चीत्कार स्थूल रूप से कभी का शान्त हो चुका है; पर वाल्मीकि का छन्द उस अति आक्रोश की करुणता को आज भी मूर्तिमान कर देता है, उसे अमर कर देता है। वेदना और आन्तरिक भाव का अनुभव करके शिकार अपनी अनुभूति से अभिभूत हो जाता है, हताश और अशक्त होकर पराधीन बनता है। पर कवि का मानस तटस्थ होकर उसकी अनुभूति को शब्ददेह प्रदान कर के, अपने दर्शन को उसके साथ मिलाकर अमर कर देता है, अन्यों के लिए भी उस अनुभूति को सुलभ बना देता है। इस प्रकार तादात्म्य और तटस्थता को साथ-साथ मिलाते हुए कवि अपनी सृजन की सफलता सिद्ध करता है।

कहा जाता है कि वाल्मीकि के अनुष्टुप में व्याकरण की एक अशुद्धि भी है। मा के बाद अगमः का प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध है। उसकी जगह गमः ठीक रूप होना चाहिये। प्राचीन लोगों ने इस भूल को जैसा का तैसा रहने दिया। शायद यह दिखाने के लिए कि कला-सृष्टि में व्याकरण तथा नियमों की रूढ़ि का भंग करना क्षन्तव्य है, शायद कभी आवश्यक भी हो जाता है। व्याकरण के नियम सृष्टा के अपेक्षणीय हैं, सृष्टा उनका नहीं। ऐसी क्षतियाँ भी सृजन का लक्षण बन सकती हैं।

कहा जाता है कि इसी श्लोक के बाद रामायण का जन्म हुआ। इतना ही नहीं कि रामायण भी अनुष्टुप में है, अपितु इसका असर तो दूर तक है। केवल वासना की तृप्ति के लिए राम और सीता के अनुपम दांपत्य को भंग करनेवाला बहेलिये का प्रतीक रावण भी वाल्मीकि का शाप पाकर ब्राह्मण से राक्षस बनता है। क्रौंच-वध की घटना की अपेक्षा रामायण में करुण रस का उपचय जितना कृत्रिम और अविरोध्य है। राम के राज्याभिषेक के अवसर का आनन्द, आशा और उत्साह, वन-गमन के शोक, वेदना और करुणरस में परिणत हो जाता है। युवराज और भावी साम्राज्ञी सुख और भोग छोड़कर त्यागी तपस्वियों के बल्कल-वस्त्र धारण करके केवल पितृवचन को निभाने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

के लिए लम्बे वनवास को चल पड़ते हैं। इस आपत्ति के काल में राजपुत्री जानकीजी को रावण कपट से हर लेता है। इस घटना में करुणरस की जो परिसीमा है, सीता पर बीतनेवाली मुसीबतों की जो पराकाष्ठा है, मानव के नरोत्तम की निराधारता, मर्यादा और मानवता है, उसने वाल्मीकि के अन्तर में क्रौंच-युगल के प्रसंग की अपेक्षा कहीं अधिक गहरे क्षोभ, वेदना और सहानुभूति को पैदा किया हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इस क्षोभ को वाङ्मय का स्वरूप देते हुए राम की काव्य-कथा में सारी आर्य-प्रजा के आदर्शों, भावनाओं और उसके मानस की वेदना और सहानुभूति को महाकवि ने मूर्त रूप दिया है। जैसे विशाल वट-वृक्ष का अंगुर नन्हे-से बीज में से फूटा करता है, उसी प्रकार कवि-मानस में इस अमर महाकाव्य का अंकुर क्रौंच-वध की घटना से फूटा हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

अरविन्दाश्रम, पाण्डिचेरी।

प्रवंचना

[प्रेमनारायण टंडन]

रँगरेलियाँ करती अप्सराएँ सामने देख वह फूल गया।
गले में बाहु पड़े और मद में वह झूमने लगा।
मदभरी चितवन से देख एक ने होठ पर होठ रख दिये।
विश्व को भूल वह, अचेत हो गया।

× × ×

उसे क्या मालूम कि अप्सराएँ परस्पर संकेत कर मुस्करा रही थीं।

लखनऊ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीन दृश्य

[उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

(१)

जब पंचम में पिक बोला,
'ऋतुराज आज हैं आये';
हँसकर कलियों ने अपने,
तब मधु के कोष लुटाये।

नीड़ों में चहक उठे तब,
अगनित खग-बालाओं के स्वर;
उन्मत्त हुईं किन्नरियाँ,
स्वागत के गाने गाकर।

तब ओस विन्दु को जाने,
क्या बात कह गई आकर?
सिहरी, ढुल पड़ी निमिष में,
नयनों से नीर बहा कर!

(२)

पेड़ों की शाखाओं में,
हँस उठे नये पल्लव जब;
गा उठे विहग ऋतु-पति का,
वन-उपवन में उत्सव जब;

जब चटक उठीं यौवन पा,
पुलकित मुकुलित सब कलियां;

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

लद गईं भार से मधु के,
जब कुसुमित कुसुमावलियाँ ;
तब गिरा किनारे पथ के,
पतझड़ का पत्ता जर्जर ;
हँस उठा देख सब कौतुक,
फिर दृग अपने लाया भर !

(३)

जब अम्बर के आँगन में,
सब चिड़ियां उड़ीं परस्पर ;
जब मिल-मिल पत्ते सारे,
कर उठे अचानक मर-मर ;
नाचीं जब सरि की लहरें,
बाहों में बाहें भरकर ;
बगुलों की पाँतों ने जब,
सखि, निरखा यह जी भर-भर ;
तब एकाकी खग कोई,
तिनकों के बन्दी-घर में ;
कर टीं-टीं चुप हो बैठा,
अपने सूने पिंजर में !

जालन्धर। २८ : १ : '३९,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामोत्सव

[अ० न० कृष्णराय]

[अनुवादक, गुरुनाथ जोशी]

[श्री अ० न० कृष्णराय 'कन्नड़नुड़ि' के सम्पादक हैं और एक सफल उपन्यासकार तथा कहानी लेखक भी हैं।—सं०]

(१)

आनन्दराय के घर रामोत्सव की धूम थी। वे सिर्फ़ मैसूर रियासत के अंदर ही नहीं, बल्कि मद्रास, कुम्भकोणम्, त्रिचनापल्ली, तंजौर आदि स्थानों में भी मुशहूर थे। कोई कहता था कि टोड़ी राग तो उनके मुँह से सुने और कोई कहता था कि उनकी तरह भैरवी कोई गा ही नहीं सकता। 'श्री राग', 'हंसध्वनि', 'मध्यमावती', 'कानड़ा' आदि उनके अत्यंत प्रिय राग थे। उनकी पत्नी उनकी 'हिंदुस्तानी काफी' रागिनी को बहुत पसंद करती थीं। वह उन पर कितना ही नाराज हो गई हों, उनके मुँह से 'आड़िसिद यशोदा जगदोद्धारन' (खेलाती यशोदा जगदोद्धार को) सुनते ही पिघल-पिघलकर ठंडी हो जातीं; और कहतीं – आप तो नाराज़ होने का मौक़ा भी नहीं देते। लोगों की रुचि के पारखी कालिदास की उक्ति की तरह प्रत्येक की रूचि में भिन्नता होती है। किंतु आनंदराय की रूचि के बारे में कोई कुछ नहीं जानता था। अगर उन्हें 'टोड़ी' की सनक सवार हो जाती तो बस सप्ताह दो सप्ताह उसी को गाते रहते। 'सिंहेंद्र मध्यम' की धुन लग जाती तो उसे ही गाने में इतने तल्लीन हो जाते कि संगीत-शास्त्र या कला में दूसरी राग-रागिनियाँ हैं ही नहीं। गाने लगते तो अपने तन-बदन की सुधि तक न रहती। गाते समय भूल जाते कि महाराज के सामने गा रहे हैं या होटल के सामने या ललिताद्रि पर। सुननेवाले भी स्थान और काल का ज्ञान भूल जाते। उन्हें लगता कि काले, कुरूप और स्थूलकाय आनंदराय की जगह स्वयं सरस्वती देवी ही उनके सामने गा रही हैं। आनन्दराय भी गाते-गाते कभी हँसते, कभी रोते, कभी गाना बंद करके अंजलिबद्ध हो कहते—मा, क्या मैं तुम्हारा बेटा नहीं हूँ? मेरी परीक्षा क्यों ले रही हो? अस्पष्ट स्वर-रव को स्पष्टतर सुनाओ मा। और सुननेवालों को आश्चर्य-चकित कर देते। वे बार-बार कहा करते थे कि गाने में रस होना चाहिये, जीवन होना चाहिये, गानेवाले का जीवन गीत की भावना में समरस हो जाना चाहिये; यही उनकी टेक थी। अपने शिष्यों से भी वे यही कहते। धन से कला की कीमत आँकना और जन-मन-रंजन के लिए आत्मशक्ति को भूलना आनंदरायजी के लिए विष-तुल्य था। और इसीलिए उनके संगीत में अभूतपूर्व शोभा तथा माधुर्य रहता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हस

आज आनन्दराय के प्रिय शिष्य रामू का संगीत-समारोह है। साथ में वाद्य बजाने वाले तबलची आदि भी सिद्ध-हस्त कलाकार हैं। कई रसिक-प्रवर, कला-पारखी और साहित्य शिरोमणि निमन्त्रित होकर आये हैं। गायक के मन में एक सशंक आत्माभिमान जाग रहा है। गुरु उसकी सफलता के प्रति आश्वस्त हैं और पुत्र की तरह सदा उसकी मंगल-कामना करनेवाली गुरु-पत्नी की छाती गज़भर ऊँची हो रही है।

इस वर्ष जितने लोग आये हैं उतने पहले कभी नहीं आये थे। लोग जानते थे कि आनन्दराय अपने योग्य शिष्य का गाना सुनायेंगे, आज ही उसकी पहली बैठक है। उसके संगीत का रंग जमाना है। रायजी उत्साह में डूब रहे थे। चाहते थे कि शिष्य विजयी होकर अपनी कीर्ति बढ़ाये। उनके मुँह पर पवित्र आनन्द नाच रहा था।

गजानन की स्तुति हुई, इष्ट देवता की प्रार्थना भी हुई। रामू जहाँ बैठा था वहीं से उसने गुरु और गुरुपत्नी को नमस्कार कर 'षड़ानन शिखिवाहन' कीर्तन शुरू किया। बीच-बीच में सरिगम का उच्चार और फिर संगीत। उसके सभी गीतों में एक ही रस, एक ही प्रतिभा थी। संगीत इतना प्रौढ़ था कि सुनकर शंका होती कि यह उसकी पहली बैठक है। मानो गायक के अन्तःकरण में बैठकर स्वयं सरस्वती देवी अलाप ले रही हों। संसार के सारे दुःखों-सुखों को अपने में लीन कर गायक के गीतों ने सुननेवालों को मुग्ध कर दिया। श्रोताओं ने समझ लिया कि बढ़ने-वाला अंकुर कैसा है। लगभग एक घण्टे तक संगीत होता रहा; पर गायक के चेहरे पर थकावट की अपेक्षा एक देदीप्यमान कान्ति थी। आँखें तारों की भाँति शोभित थीं। जब रामू ने 'भैरवी' आलापकर उसी रागिनी में 'रघुवर सुगुणालय' गाना शुरू किया तो आनन्दराय धीरे से उठकर चले गये। कुतूहलवश लोगों ने उधर देखा, किन्तु रामू की तान ने उन्हें अपनी ओर बिजली की तरह खींच लिया।

(२)

आनन्दराय वहाँ से उठकर अपने कमरे में आये। घर के अनुरूप ही वह कमरा था। अमीरों के विलास की चीज़ें वहाँ नहीं थीं। स्वच्छता ही उस कमरे की सम्पन्नता थी। सजावट के सामान में दो तम्बूरे, एक पिटील, एक हार्मोनियम और एक वीणा थी। एक ओर गद्दी लपेटकर रखी गई थी। दूसरी ओर पुरानी मेज और दो कुर्सियाँ थीं। मेज़ पर उनकी और उनकी पत्नी की जवानी में खिंचवाई गई एक तसवीर थी। उसकी बगल में पट्टाभिषिक्त श्री रघुराय का सुन्दर चित्र था। पास ही में एक और तसवीर थी जिसमें बच्चे को गोद में लिए एक सुन्दरी बैठी थी। लटों से छिपा विशाल भाल, चमकती हुई छोटी आँखें, चम्पा-सी नाक, जरा बड़ा पर सुन्दर चेहरा, ओठों पर मन्द-मन्द मुस्कान, शान्त पवित्र प्रकाशवाली छवि; वह गोद में एक शिशु लिए मा का चित्र था। आनन्दराय ने उस तसवीर को देख एक दीर्घ सांस ली। उनको अपार आनन्द एवं दुःख हुआ। उस तसवीर को वे एक टक देखते रहे, कमरे का दरवाज़ा बन्द था। फिर उस तसवीर को सम्बोधन कर बोले—सुन्दरा, काश आज तुम रहती। आज के दिन अपने पुत्र का वैभव देखती तो कौन जाने क्या कहती! सुन्दरा, यह जानकर कि भैरवी राग मुझे बहुत पसन्द है, क्या तुम्हीं उसे अपने पुत्र के कण्ठ में बैठकर सुना रही हो? रामू में वही कण्ठ, वही स्फूर्ति, और वही गम्भीरता है। आज हमारा रामू...। वे आगे बोल न सके। गला भर आया। वे तसवीर से उत्तर की अपेक्षा करते हुए बैठ गये। उस तसवीर को हाथ में लिये वे ऐसे बैठे थे जैसे कोई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेमी अपनी प्रेयसी की आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा हो। कुछ समय ऐसे ही बीत गया। वे समझ गये कि तसवीर कुछ उत्तर नहीं देगी, अतः उन्होंने उसे गले लगा लिया; और उस पर मधुर चुम्बन अंकित कर, प्रेमाश्रुओं से नहलाने लगे।

आनन्दराय के मन में उमड़-घुमड़कर बादल छाने लगे। वे उनसे बचने के लिए कभी रघुराय की तसवीर की ओर और कभी अपनी पत्नी की तसवीर की ओर देखने लगे। अपने अन्तर में वह किसी अदृश्य शक्ति से लड़ रहे थे। पर अन्त में उस सुन्दरी की तसवीर ने उन पर विजय पाई। कोई एक अदृश्य आकर्षण उन्हें उस ओर खींच ले गया।

और यह मानव-जीवन भी एक छाया-माया का खेल है। छाया जिस प्रकार हमारे अनजाने ही हमारे पीछे और साथ-साथ चलती है, दौड़ती है, और खड़ी रह जाती है; स्मृति भी उसी प्रकार है।

(३)

आनन्दराय को आज से २४ वर्ष पहले की घटना याद आई। चलचित्र की भाँति एक के बाद एक दृश्य उनके मनोपटल पर उभरने लगे। ग्रीष्म का प्रारम्भ था। रायजी अध्ययन समाप्त कर उठने ही वाले थे कि एक बूढ़ी वेश्या १२-१३ बरस की किसी कुमारी का हाथ पकड़े आ खड़ी हुई। रायजी के चरणों पर लड़की से और स्वयं सिर नवाकर बोली—रायजी, इस लड़की को अपना ही समझिये। यह अनाथ है। इसके पालन-पोषण का भार आप पर है। आप बड़े धर्मात्मा हैं और अवश्य इसकी रक्षा कर सकेंगे।

रक्षा का नाम सुनते ही रायजी ने सोचा कि इस लड़की को अपनी शिष्या बना ली जाय। आनन्दराय के शिष्यों की संख्या बहुत कम थी। वे शिष्य बनने आनेवालों की कड़ी परीक्षा करते थे। जो उन्हें सन्तुष्ट करता और जिसमें कलावृत्ति पाई जाती उन्हें ही वह अपना शिष्य बनाते। विद्यार्थियों को प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वे विद्या का दुरुपयोग नहीं करेंगे और न ही नाटक-सिनेमा आदि में भर्ती ही होंगे। सामान्यतः वे स्त्रियों को नहीं सिखाते थे। उनका कहना था कि स्त्रियों के संगीत का शौक़ पति को हार पहिनाने के बाद समाप्त हो जाता है। वेश्याओं को तो वे कभी सिखाते ही नहीं थे। उनसे कहा करते कि आप लोगों को सिखानेवाले दूसरे बहुत हैं, आप लोग उन्हीं के पास जायँ।

वेश्या की इस धृष्टता से वह क्रोधित हुए। दूसरों को मोहित कर धन कमानेवाली और ख़ुद को बेचनेवाली कुलटा क्या विद्या सिखाने योग्य है? तो भी रायजी का मन जरा चंचल हो गया। उन्हें उस लड़की का सरल और आकर्षक मुँह वेश्या की लड़की से भिन्न दीख पड़ा। उसके चेहरे पर पवित्रता का निर्मल तेज था। लाचार हो लड़की को पास बुला उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ फेरते हुए उन्होंने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है बेटी?

'सुंदरा।'

'मुझसे गाना सीखने आई हो?'

'जी, हाँ।'

'मुझी से क्यों सीखना चाहती हो?'

'आप ही की तरह गाने के लिए।'

'यानी...'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

'यानी...जब आप गाते हैं तो सुननेवाले गद्‌गद् हो जाते हैं। उनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं।'

'तुम भी यदि सभी की आँखों से आँसू बहाने लगोगी तो पैसा कौन देगा ? पैसा कमाने के लिए अच्छी तरह कपड़ा पहन, मुँह पर पाउडर लगाकर नाचना सीखना चाहिये। नाच के कुछ तरीके सीख लो ! मेरे संगीत से तुम्हें क्या फ़ायदा होगा !'

सुनकर लड़की की आँखों से एक बूँद आँसू आ गिरा। लड़की के आँसू देखकर रायजी लज्जित हुए और दयाभाव से बोले—रोती क्यों हो ?

'क्या करूँ गुरुजी, आपकी बात ऐसी ही थी !'

'गुरुजी' शब्द ने रायजी के मन में परिवर्तन कर दिया।

'तो क्या मैंने झूठ कहा था ?'

'जी हाँ, हो भी सकता है। क्या सभी इसी तरह की थोड़े होती हैं। आपके आशीर्वाद से मैं भिन्न तरह की भी हो सकती हूँ।'

'अच्छा, तो संगीत सीखकर तुम क्या करोगी ?'

'विवाह करना चाहती है।'—बूढ़ी ने कहा।

बालिका ने मारे शर्म के सर झुका लिया। और माता की ओर घूमकर ओठों में मुस्कान भरे झूठी नाराजी व्यक्त की ; जिस तरह प्रियंवदा की बात सुन शकुंतला नाराज़ हो गई थी।

रायजी ने कुछ देर सोच-विचारकर अन्त में स्वीकार कर लिया। अन्त में मा और बेटी नमस्कार कर चली गईं।

लड़की अब बीस बरस की नवयौवना हो गई। उसका पांडित्य देख स्वयं गुरु भी चकित रह जाते। उसका उत्कर्ष देख स्वयं ही अपनी पीठ ठोक लेते थे। आज वह गुरुजी से दीक्षा माँगने आई। उसका यौवन निखर गया था। नारीत्व उसके अंगों में विकास पाने लगा था। आनन्दराय की उसे 'कला की प्रतिमा' बनाने की इच्छा फलीभूत हुई थी। यदि वह उसके जीवन में प्रवेश न करते तो आज वह कहाँ होती ?

सुन्दरा को देखकर उनमें नये उत्साह की वृद्धि होती थी। वह भी इससे परिचित थी। धीरे-धीरे उनके प्रेम में अन्तर होने लगा। वे भूलने लगे कि सुन्दरा उनकी पोषित कन्या है। उसे देखते ही वह मोहित हो जाते।

सुन्दरा गुरु को कोई अलभ्य वस्तु गुरु-दक्षिणा में देने के लिए उत्कंठित थी। उसने खूब सोचा पर कुछ भी तय नहीं कर सकी। अगर गुरुजी उसकी जिह्वा भी माँगते, जैसे द्रोण ने एकलव्य से अँगूठा माँगा था, तो वह सहर्ष दे देती। उसने सोचा कि गुरुजी से ही क्यों न पूछा जाय ; पर यदि उन्होंने कुछ भी नहीं माँगा तो ? इस तरह के सोच-विचार करती हुई वह थक गई।

शुक्लपक्ष की द्वितीया की रात थी। चन्द्र-किरणों से भरा शान्तिमय वातावरण था। रात की शोभा अंकुरित मृदु पल्लवों में अधखिले पुष्प के समान थी। समय आधी रात का था। मंद वायु बह रही थी। साथ में संगीत की मधुर तान रस उँड़ेल रही थी। सुंदरा की संगीत-साधना की वही अंतिम रात थी। सुंदरा भूपाली से भैरवी तक गई थी। उसने अपनी प्यारी भैरवी 'रघुवर सुगुणालय...' समाप्त की। मंगल भी गाया। आनंदराय शिष्या का हाथ पकड़कर बोले—सुंदरा, आज तुम्हारा अध्ययन समाप्त हुआ। कल से तुम स्वतंत्र हो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'आपका अनुग्रह है। मुझे...वेश्या की पुत्री को...आपने मा शारदा के गुणगान करने की वाणी दी!'

'सच है, किंतु जानती हो न कि बिना गुरु-दक्षिणा दिये विद्या सार्थक नहीं बनती? आज दिन तक जो साधना की है उसकी सिद्धि गुरु-दक्षिणा देने के बाद ही होगी।'

सुंदरा ने आतुरतापूर्वक पूछा—आपही कहिये गुरुजी, मैं आपको क्या दक्षिणा दूँ?

रायजी इसी बात की प्रतीक्षा में थे। वे बताने के लिए आतुर हो रहे थे; किंतु मुँह से बात ही नहीं निकल रही थी। बड़े प्रयत्न के बाद बोले—सुंदरा, मुझे और कुछ नहीं चाहिये। मुझे...मुझे...केवल तुम्हारा प्रेम चाहिये।

सुंदरा को आश्चर्य हुआ। वह अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सकी। देवता-जैसे अपने गुरु की ये बातें उसे सच नहीं मालूम हुईं। उसे संदेह होने लगा कि, क्या गुरुजी मेरा शरीर चाहते है!...कलामर्मज्ञों का यह राजा क्या भिखारी की जूठन पर हाथ मारना चाहता है? उसने आँखें फाड़कर देखा कि सामने आँखों में भीषण कामुकता भरे एक व्यक्ति उसे लोलुपता से निगल जाना चाहता है! क्या यही उसके गुरु आनन्दराय हैं? क्या यही!

सुन्दरा अपने में कुछ साहस बटोरकर बोली—गुरुजी...मैं...आपकी शिष्या हूँ... बेटी हूँ।

रायजी की विचार-शक्ति लुप्त हो रही थी। एक वेश्या की बेटी का इतना अहंकार! इतनी उद्धतता! उनकी कला और सुरुचि जाने कहाँ जा छिपीं? अब वहाँ पर पुरुष की भयानक और अन्धी काम-पिपासा थी। उन्होंने उसे बलपूर्वक अपनी बाहुओं में जकड़ लिया...

...फिर, उन्हें याद आया, सुन्दरा का वह मलिन और निराशा चेहरा। और उसका हृदय चूर-चूर हो गया। वह केवल दो वर्ष और बची। रामू को जन्म दे, दुःख और निराशायें घुल-घुलकर मर गई।

ये सभी बातें याद आते ही आनन्दराय की आँखों से आँसू बहने लगे और वे बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रोने लगे।

(४)

जब बाहर रामू की बैठक समाप्त हुई और मंगल-आरती का समय हुआ तो सुख में मग्न श्रोताओं को रायजी की सुधि आई। उन्हें खोजते हुए उनके मित्र कमरे में आये। रायजी की हालत देख वे समझे कि यह आनन्द का परिणाम है। वे उन्हें बाहर ले गये। मंगल-आरती भी समाप्त हुई। और सभी गुरु-शिष्यों की प्रशंसा करते हुए लौट चले।

उस दालान में अकेले रामू और रायजी रह गये। दोनो की चित्त-वृत्ति एक-सी थी। वे कुछ बोलना चाहते थे; किन्तु बोल नहीं पाते थे। और मानो इस नाटक को देख मन्दासन पर बैठे रघुराय हँसते थे। रायजी उस ओर घूम गये। रामू अपने उमड़नेवाले मनोभावों को रोक नहीं सका और गुरु के चरणों पर गिर पड़ा। रायजी चुप न रह सके। उसे हृदय से लगाकर बोले—बेटा, सुन्दरा ने कहा था कि मैं आपकी पुत्री हूँ। मैं उसकी इस बात को पाल न सका... किन्तु रामू, मैं तुझे अपना बेटा ही मानता हूँ।

× × ×

इतने में कहीं से एक स्वर सुनाई पड़ा कि आज रामू का जन्म-दिन है। सामने रायजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की स्त्री खड़ी थीं। रायजी अपनी पत्नी की दृष्टि में दृष्टि मिलाकर देखने लगे। दोनो की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। रायजी उस अश्रुधारा में स्नान कर प्रेम और क्षमा की शीतलता का अनुभव करने लगे।

बैंगलोर।

सरदार वल्लभ भाई की धार्मिकता

[किशोरलाल घ० मश्रुवाला]

[श्री किशोरलाल भाई का परिचय 'हंस' के पाठकों को देने की आवश्यकता नहीं रह जाती। ५ वीं मार्च के कांग्रेस सोशलिस्ट में कामरेड यूसुफ मेहरअली ने सरदार वल्लभ भाई पटेल का एक रेखाचित्र लिखा है। श्री किशोरलाल भाई का यह लेख उसी से संबन्धित है। 'हंस' के पाठकों की जानकारी के लिए वह रेखाचित्र मुक्तामंजूषा के अन्तर्गत अनूदित किया गया है और प्रस्तुत लेख ऊर्मि के अप्रैल अङ्क से।—सं०]

५ वीं अप्रैल के 'कांग्रेस सोशलिस्ट' में श्री यूसुफ़ मेहरअली ने सरदार वल्लभ भाई का एक रेखाचित्र खींचा है। श्री मेहरअली की लेखनी से लिखा होने के कारण वह पठनीय है।

वल्लभ भाई स्वामी नारायण सम्प्रदाय के जिस धार्मिक वातावरण में बड़े हुए, यदि उसकी जानकारी न हो तो उनके चरित्र की कई बातें पूर्णरूप से समझ में नहीं आ सकतीं। मैं भी उसी वातावरण में बड़ा हुआ हूँ इसलिए उसका अन्दाज़ भली प्रकार लगा सकता हूँ।

दूसरे आदमियों को स्वामी नारायण-सम्प्रदाय और अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में अविलासवृत्ति (प्यूरिटनिज्म, या आज की भाषा में यदि कहा जाय तो आश्रमवृत्ति) की बहुलता के सिवा अन्य कोई भेद शायद ही दीख पड़े। श्री मेहरअली वल्लभ भाई की इस अविलासवृत्ति को देख सके हैं, जो उनकी तीक्ष्ण निरीक्षण-शक्ति का परिचय देती है। परन्तु इस संप्रदाय की विशेषता दो विशिष्ट संस्कार प्राप्त करने में है। जो इस संप्रदाय का निष्ठा-पूर्वक पालन करते हैं, (और सरदार कई वर्षों तक इसके एकनिष्ठ भक्त थे) उन्हीं में ये संस्कार पनपते हैं, और उनके चरित्र को एक विशेष धारा में प्रवाहित करते हैं। उनमें का पहला संस्कार तो यह है कि न कहते हुए भी आचरण में स्वामी नारायण-संप्रदाय इस्लाम-धर्म से भी अधिक एकेश्वरवादी है। इस्लाम-धर्म में 'खुदा एक है' के बाद दूसरा सूत्र है 'और महम्मद उसका पैग़म्बर है।' स्वामी नारायण सम्प्रदाय का दूसरा सूत्र यों कहा जा सकता है कि 'और स्वामी-नारायण ही वह ख़ुदा है।' बुद्धिवादी को ऐसी श्रद्धा विचित्र और अन्धी लगेगी। दूसरे हिन्दुओं को शायद यह सूत्र राम-कृष्णादि अवतारों और पौराणिक देवी-देवताओं का विरोध करनेवाला भी लगे। और अनजान आदमी को मेरी यह बात अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होगी। परन्तु यदि किसी निष्ठावान् सत्संगी से यह बात पूछी जाय तो वह इसे स्वीकार करेगा। वेदान्त की दृष्टि से इस निष्ठा का समर्थन भी किया जा सकता है; परन्तु यह इस लेख का विषय न होने से इसे यहीं छोड़ दिया जाय।

अन्ध-श्रद्धा-जैसे इस विश्वास के साथ ही एक दूसरा भी संस्कार रहा है, जो उस पहले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संस्कार को एक नई ही दिशा देता है। मेरी समझ में यह स्वामी नारायण-संप्रदाय का एक विशेष लक्षण है। वह संस्कार है; साधारणतया आदमी के मन में भूतकाल के राम-कृष्ण आदि अवतारों, शुक-नारद आदि सन्तों और वेदादि शास्त्रों के प्रति अतीव आदर तथा श्रद्धा होती है। परन्तु जहाँ तक प्रत्यक्ष अवतार, संत और शास्त्र के प्रति उसमें वैसा आदर भाव नहीं आता, वह कृतार्थ नहीं हो सकता।

यह नियम स्वयं स्वामीनारायण को भी लागू होता है, अपने समकालीन लोगों के लिए वह प्रत्यक्ष थे और ऐसा कहने में कोई हर्ज नहीं कि उन्हें पहचाननेवालों का जीवन कृतार्थ हुआ। परन्तु आज के लिए इस युग के स्वामीनारायण चाहियें। उन्हें पहचानकर उनके जीवन के साथ अपना जीवन मिला देने वाले ही धन्य हो सकते हैं।

यह भावना—उनके साथ जीवन एकरूप कर देने की—भी एक बलवान स्वामी—नारायणीय संस्कार है। सत्संगियों के सामने हारिल पक्षी का उदाहरण आदर्श के लिए दिया जाता है। इस पक्षी के बारे में कही जानेवाली बात सच है कि झूठ यह तो मैं नहीं जानता। परन्तु कहा जाता है कि यह पक्षी जब अपनी मा का घोंसला छोड़ता है तब उसमें से एक लकड़ी अपने पाँव में पकड़ लेता है और अन्त तक उसे अपने से विलग नहीं होने देता। यदि वह छुड़ाई जाय तो उसकी मृत्यु हो जाती है। सत्संगी की श्रद्धा का यह आदर्श है।

श्री मेहरअली ने अपने लेख में लिखा है: 'अविलास-वृत्ति के होते हुए भी इन्हें धर्म से विशेष प्रेम नहीं। गान्धीजी ने अपने जीवन का गीता के सिद्धान्तों पर निर्माण किया है। परन्तु वल्लभ भाई ने तो आज से कुछ वर्षों पहले ही उसे पहली बार पढ़ा था।' वल्लभ भाई ने गीता भले ही न पढ़ी हो परन्तु स्वामी—नारायणीय साहित्य का पठन या श्रवण द्वारा भली प्रकार मनन किया है। उपरोक्त उदाहरण से इसका स्पष्टीकरण होता है। सरदार वल्लभ भाई को अपने उपयोग के लिए गीता की आवश्यकता नहीं। वह गान्धीजी की प्रिय है इसीलिए सरदार भी उसका आदर करते हैं। और यदि गान्धीजी के शब्द से उनकी तृप्ति न हो तभी न गीता या अन्य किसी शास्त्र की उन्हें अपने सन्तोष के लिए आवश्यकता होगी? गीता या अन्य शास्त्रों के प्रमाण मिलें या न मिलें उनके लिए तो गान्धीजी का वचन ही प्रमाण है। इसका यह अर्थ तो हरगिज़ नहीं हुआ कि सरदार धर्म के प्रति अनास्था या अरुचि रखते हैं; परन्तु जिसके जीवन से शास्त्रों का निर्माण होता हो यदि वही महापुरुष सामने हो तो फिर शास्त्रों की क्या आवश्यकता!

आगे फिर श्री मेहरअली लिखते हैं: 'बुद्धि-शक्ति में यह राजगोपालाचार्यजी से कोसों दूर हैं; और व्यापक दृष्टि के बारे में तो मुझे शंका है कि इन्होंने वैसा कोई शब्द सुना भी है या नहीं!' यह ग़लतफ़हमी है। परन्तु इसका स्पष्टीकरण भी उपरोक्त बात से मिल जाता है। नक्षत्र-मण्डल की गति देखनेवाले बड़े दुर्बीन के साथ एक छोटा-सा दुर्बीन भी रखते हैं। बड़े दुर्बीन से नक्षत्रों के खोज निकालने में अड़चन होती है। छोटा उन्हें आसानी से खोज निकालता है। फिर बड़े दुर्बीन के द्वारा उनका निरीक्षण किया जाता है। परन्तु जिसे बड़े दुर्बीन से ही तारा दीख गया हो वह छोटे का उपयोग किस लिए करे? उसी तरह जिसे दृष्टि न मिली हो, वही इस निगाह से और उस निगाह से; दूर दृष्टि डालने और समीप दृष्टि डालने के लिए परेशान होता है। परन्तु जिसे अपना दृष्टि-विन्दु मिल गया हो और दृष्टि वहाँ स्थिर हो गई हो, वह अनेक प्रकार से देखने और पाने के लिए क्यों चिन्तित हो?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

यह सभी विद्वान् बुद्धिवादी को अशास्त्रीय और मूर्खतापूर्ण मालूम होगा। विद्वान् बुद्धिवादियों का सरदार की ओर आकर्षित न होने का यह भी एक कारण है। बुद्धिवादी अक्सर कई स्थलों पर शंकाशील होता है। किसी भी विषय में वह निश्चयात्मक नहीं हो सकता। निश्चयात्मक नहीं होने का उसका आग्रह भी होता है। इसीलिए वह कहीं स्थिर भी नहीं होता। यह एक प्रकार की अनिश्चितता है। गान्धीजी इसे अपने बारे में स्वीकार करते हैं। वह सदा ही अपने आपको सत्य के शोधक मानते हैं। उनका कहना है कि अभी तक मुझे केन्द्र नहीं मिला है; मैं उसके अड़ोस-पड़ोस में हूँ और उसे ढूँढ़ रहा हूँ। वल्लभ भाई न तो शंकाशील हैं और न शोधक ही। वह तो अपने केन्द्र में जा बैठे हैं और वह केन्द्र स्वयं गान्धीजी हैं। भले ही गान्धीजी को परम सत्य न मिला हो परन्तु गान्धीजी को पाकर सरदार के लिए और किसी सत्य से साक्षात्कार करना नहीं रह गया। यदि स्वयं परमेश्वर भी गान्धीजी के सिवा अन्य किसी स्वरूप में उनके सामने आये तो यह उसकी उतनी ही उपेक्षा करेंगे जितनी कि इन्होंने गान्धीजी की अहमदाबाद क्लब में, जब कि यह उन्हें नहीं पहचानते थे, की थी। ईश्वर को यदि इन्हें अपने दर्शन देने हों तो वह गान्धी के स्वरूप में और उनके द्वारा ही देना चाहिये।

कुछ दिन पहले गान्धीजी ने जमनालालजी को श्री रमण महर्षि का आश्रम देख आने की सूचना दी। राजेन्द्र बाबू भी उनके साथ जाने के लिए तैयार हुए। सरदार वर्धा ही थे। अपनी विशिष्ट आदत के अनुसार यह उस विचार पर हँस दिये। बापूजी पर भी अपने विनोद का प्रहार किया। इसमें रमण महर्षि के प्रति अनादर का भाव नहीं था। लेकिन ऐसा कुतूहल इन्हें ठीक नहीं मालूम पड़ा। मा से भटक गया बछड़ा गायों के समूह में फिर आता है; परन्तु जो मा के पास ही खड़ा है, वह क्यों ढूँढ़ने जाय? फिर बीस-बीस वर्ष तक बापू के सान्निध्य में रह दूसरे को ढूँढ़ने की आवश्यकता रह जाय तो आश्चर्य ही है। 'हमारे लिए तो निश्चय, नियम और पत्र' कहकर और मेरी ओर देखकर हँसे। इस प्रकार की बुद्धि में स्थिर होने के बाद स्थितप्रज्ञ के श्लोकों को आग्रहपूर्वक रटने की उन्हें आवश्यकता ही क्या?

इतना होते हुए भी सरदार गान्धीजी को भगवान के अवतार या सद्गुरु के रूप में स्वीकार करने की खटपट में नहीं पड़ते। बुद्ध, ईसा, रामकृष्ण परमहंस, अरविंद घोष, या ऐसे ही भूत या वर्तमान काल के महापुरुषों के साथ उनकी आध्यात्मिक समानता देखने का कष्ट नहीं करते। मेरी मा अधिक अक्लवाली या तेरी मा—इस प्रकार की चर्चा भला किसी को ठीक लगेगी? उलटे यह ऐसी बातों से दूर भागते हैं। उसी तरह जब यह गान्धीजी के पास आते हैं तो उनकी चरणरज लेने का आडम्बर नहीं करते। यह बापू की मज़ाक भी उड़ाते हैं। परन्तु उनके शब्दों पर अपने आपको मिटा देने के लिए भी तैयार रहते हैं।

निर्णय न होने तक तर्क की आवश्यकता रहती है। जब तक दिशा का ज्ञान न हो, व्यापक दृष्टि की आवश्यकता रहती है। अपने जीवन में कर्त्तव्य की जानकारी न होने तक अथवा परलोक की तृष्णा हो तब शास्त्रों के पारायण की आवश्यकता होती है। या प्रचारक अथवा प्रोफेसर के धन्धे के लिए इन सब की आवश्यकता है। निष्ठावान सिपाही के लिए तो यह सब एकदम व्यर्थ है। और सरदार के जीवन की बड़ी-से-बड़ी सफलता उनकी निष्ठा-भरी सिपाही-गीरी है।

वर्धा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धदेव वसु

[नन्दगोपाल सेन-गुप्त]

[मूल बँगला से अनुवादक, रामचन्द्र वर्मा]

बुद्धदेव वसु का जन्म ढाके में हुआ था। ढाका विश्वविद्यालय के ये एक अच्छे और कृती छात्र हैं। इन्होंने अंग्रेजी में प्रथम स्थान प्राप्त करके एम० ए० पास किया था। छात्र-जीवन में ही इन्होंने 'प्रगति' नामक एक मासिक पत्रिका प्रकाशित की थी। इस पत्रिका में ये स्वयं भी लिखते थे और इसमें अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त, प्रेमन्द्र मित्र, प्रबोधकुमार सान्याल, अजितकुमार दत्त, जीवनानन्द दास आदि प्रसिद्ध कवि और साहित्यिक भी लिखा करते थे और नवीन युग के आदर्श का अवलम्बन करके साहित्य की रचना करते थे। इन सब लोगों में बुद्धदेव वसु अपेक्षाकृत बहुत ही कम अवस्था में प्रसिद्ध हो गये थे।

पहले कई वर्षों तक केवल साहित्य-सेवा करने के उपरान्त बुद्धदेव वसु रिपन कालिज में अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए थे। अब तक वे उसी पद पर काम करते हैं। कई वर्ष हुए, इन्होंने विवाह भी किया था। इनकी पत्नी किसी समय बहुत अच्छी गायिका के रूप में प्रसिद्ध थीं। परन्तु पता नहीं कि अब भी वह गाती हैं या नहीं। इनकी एक कन्या भी है।

बुद्धदेव वसु ने पहले कविता लिखकर अपना नाम किया था। यद्यपि इनकी कविताओं पर रवीन्द्रनाथ के शब्दों, विचारों और भावों का प्रभाव बहुत अधिक है, तथापि उनमें एक निजी प्रकाश्य भंगी भी दिखाई देती है। 'वन्दीर वन्दना', 'पृथ्वीर पथे', 'कंकावती' आदि कविता-पुस्तकों में इनकी अनेक प्रकार की कविताएँ अनेक छन्दों में मिलती हैं। इन सब कविताओं में इन्होंने जिस नई काव्य-रीति के प्रवर्त्तन का प्रयत्न किया है, उसका जिस प्रकार उनमें आभास पाया जाता है, उसी प्रकार उससे यह भी पता चलता है कि इनकी दृष्टि और भाषा पर रवीन्द्र-नाथ की ऐसी छाया है जिसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। अवश्य ही यह कोई दोष की बात नहीं है। किन्तु बुद्धदेव को किसी नवीन मार्ग का प्रदर्शक कवि नहीं कहा जा सकता।

कविता के बाद इनकी आत्म-केन्द्रिक गद्य-रचनाओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। 'परसनल एसे' (Personal Essay) या वैयक्तिक निबन्ध बँगला-साहित्य में रवीन्द्रनाथ के सिवा और किसी ने नहीं लिखा है। परन्तु बुद्धदेव वसु ने उसी श्रेणी की रचनाओं में बहुत ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अच्छे ढंग से अपनी लेखनी का संचालन किया है। 'आलोर झलकना' नामक पुस्तक में इनकी इस तरह की कई रचनाएँ संकलित हुई हैं।

यद्यपि इन्होंने अनेक उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं; परन्तु फिर भी उनमें इनकी विशेष सफलता नहीं दिखाई देती। इनकी प्रत्यक्ष जीवन की अभिज्ञता कम है। इन्होंने जीवन को केवल पुस्तकों के द्वारा देखा है और वह भी प्रधानतः विदेशी पुस्तकों के द्वारा देखा है। इसीलिए इनकी कहानियों और उपन्यासों की जनता में उतनी खपत नहीं है। इसके सिवा बँगला भाषा के मुहावरों आदि पर भी उनका अधिकार कम है। इसीलिए वे अपने मन का भाव प्रकट करने के लिए अँग्रेजी मुहावरों को तोड़-मरोड़कर बँगला मुहावरे तैयार करते हैं।

व्यक्तिगत दृष्टि से बुद्धदेव अत्यन्त शान्त प्रकृति के मनुष्य हैं। ये कभी किसी लड़ाई-झगड़े में शामिल नहीं होते। इन्हें कुछ लज्जाशील भी कहा जा सकता है। यद्यपि एक श्रेणी के पाठक इनकी रचनाओं की बहुत प्रशंसा करते हैं; परन्तु फिर भी अधिकांश लोग इनकी रचनाओं के विरोधी ही हैं। हो सकता है कि इसके लिए इनके मन में कुछ क्षोभ भी हो। थोड़े ही दिन पहले प्रगति साहित्य-सम्मेलन में इन्होंने अपना जो निबन्ध पढ़ा था, उसमें उनका यह क्षोभ प्रकट भी हुआ है। इनकी अवस्था प्रायः बत्तीस वर्ष की है।

कलकत्ता।

●

विकास

[देवीलाल सामर]

[श्री देवीलाल सामर ने इधर गद्य-गीत लिखने में काफी सफलता प्राप्त की है। साथ ही आप एक कुशल नर्तक भी हैं और इन दिनों उदयपुर के विद्याभवन में भारतीय नृत्यों का विशेष अध्ययन कर रहे हैं। —सं०]

विश्व का प्रत्येक परमाणु इसलिए मुझ पर मुग्ध हुआ कि मैंने उसका विनष्ट वैभव बनाया और बुझते हुए प्राणों में जीवन फूँका।

मेरे उर की अनन्त वेदनाएँ जो मेरे युग-युग की संचित कमाई थीं, इस शोभा के बीच मूक हुईं। मैंने खुल-खुलकर खेल खेले, नये-नये शृङ्गार किये, उर में उन्मत्त भावों को भरा और प्रियतम का सन्देश लिये 'पी! पी!!' गान गाया।

जिस प्रकार दिन की धूप के बाद सुनहली संध्या को देखकर अन्धकार ही का विश्वास रहता है और रात्रि के घोर अन्धकार के बाद स्वर्णमयी ऊषा दिवस ही की सूचना देती है, उसी प्रकार प्रकृति के व्यथित निमिषों में सुख-संचार करने को और सुख-स्वप्नों पर कड़ी व्यवस्था करने को ही मैंने यह जाल रचा और पूर्ण विकास के हेतु उसे जीवन के दोनो पहलू दिखलाये।

× × ×

उदयपुर, मेवाड़।
२२ : २ : '३९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पीरबख्श

[मोहनसिंह]

'ओ, बूढ़े शाह ! जरा ठहरियो ।'

'कौन हो रे तुम, इस बखत ?'—बूढ़े शाह ने चलते-चलते पीछे मुड़कर किसी को अँधेरे में पहचानने का प्रयास किया ।

'मैं हूँ, जरा ठहरियो ।'

'आवाज तो पीरबकस की-सी ही जान पड़ती है ।' फिर पूरी तरह पहचानकर—किधर को चले हो इस बखत ? और यह सिर पर क्या उठाये हो ?

'टणक है साला, उठा-उठाकर गरदन टूट गई है । शम्मू की फुलाहियों के पास तुम्हारी टिटकारी की आवाज़ आई थी । मैंने कहा, हो न हो, बूढ़े शाह ही हैं । अच्छा तो यह गधी किधर लिये जाते हो ?'—पीरबख्श ने बोझ के नीचे दबते हुए पूछा ।

'यूँही जरा रावलपिण्डी तक चला हूँ ।'

'और यह इस पर लाद क्या रखा है ?'

'बस कुछ दाने हैं, इनको बेच-बटोलकर दुकान के लिए कुछ सौदा-सवता ले आऊँगा ।'—यह कहकर बूढ़े शाह ने पीरबख्श को प्रभात के मन्द प्रकाश में सिर से पाँव तक देखा । उसकी छोटी छोटी तेज़ आखें झट से ताड़ गईं कि दाल में कुछ काला-काला है । उसने बड़े मज़े से गधी को गाली दी । फिर अपनी घनी मूँछों से खचरी-सी आवाज़ निकालकर बोला—अच्छा तो टणक किधर लिये जाते हो, खैर तो है ? कहीं फिर तो दुनियाबी के साथ खटपट नहीं हो गई ?

'क्या पूछते हो बूढ़े शाह, रहने दो ।'

'फिर भी, बात क्या है ?'

'बात क्या है, इस बीबी ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा ।'

'क्या, हुआ क्या है आखिर ?'

'होना क्या था, बस वही उल्टी औरतवाली बात ।'

'हैं...एं ?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'उल्टी औरत की बात नहीं सुनी क्या ?'

'नहीं तो ?'

'एक थी उल्टी औरत और एक थे अल्हड़ मियाँ। एक दिन कपड़े धोते-धोते उल्टी औरत नदी में बह गई। सारा गाँव जमा हो गया और लगे ढूँढ़ने पीनी के बहाव की तरफ़। दो-तीन मील नीचे निकल गये; मगर उल्टी औरत का निसान तक न मिला।'

'हूं...ऊं, आगे ?'—बूढ़े शाह ने हुँकारा भरा।

'आगे क्या बताऊँ यार, देखते नहीं टणक ने नीचे दमघुटा जाता है। इतना नहीं करते कि जरा टणक ही गधी पर रखवा लो।'—पीरबख़्श ने भोला-सा बनकर दाव भरा।

बूढ़े शाह बड़ा पक्का और काइयाँ दुकानदार था और यथासम्भव किसी का काम नहीं करता था। यूँ भी आज गधी पर काफी बोझ था। पर यह सोचकर कि पीरबख़्श और दुनियाबी के इस नये झगड़े को वह किस प्रकार गाँव लौटते ही नून-मिरच लगाकर सुनायेगा, उसने ट्रंक उठाकर गधी पर रख लिया और कृत्रिम मुस्कान के साथ बोला—गधी किसकी और गहने किसके, टणक दूर रहा, चाहो तो तुम भी चढ़ बैठो। अच्छा आगे ?

'बस लोग ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गये; मगर उल्टी औरत को न मिलना था, न मिली। जब निराश होकर घर लौटने लगे तो अल्हड़ मियाँ बोले—मिले तुम्हारा सिर। वह थी उल्टी औरत। उसने तमाम उमर मेरे साथ कोई सीधी बात नहीं की। जो कहो उल्टी, जो कहो उल्टी; अगर ढूँढ़ना हो तो पानी के बहाव की तरफ न ढूँढो। जिस तरफ से पानी आता है उधर ढूँढ़ो। बस यही बात दुनियाबी की है। जो कहो उल्टी, जो कहो उल्टी। मेरा तो इसने नाक में दम कर दिया है।'

'क्यों झूठ बकते हो यार, मुझसे कौन भूली हुई है दुनियाबी। हर रोज मेरी दुकान पर आती है। न सकल बुरी है, न अकल। एक-एक बात करती है लाख-लाख रुपए की। सुकर नहीं करते, भगवान ने ऐसी बीवी दे रखी है।'—बूढ़े शाह ने पीरबख़्श से अधिक हालात मालूम करने के लिए उसकी बीवी का पक्ष लिया।

'दूर ही के ढोल सुहावने लगते हैं। अगर एक दिन दुनियाबी के साथ गुज़ारना पड़े तो होश ठिकाने आजायें।'

'नहीं यार इतनी बुरी तो नही ?'—बूढ़े शाह की आखें चमकीं।

'तुम्हारी डाढ़ी उखाड़कर तुम्हारे हाथ में दे, तब मालूम हो कि बुरी है कि नहीं।'

'ऐं! डाढ़ी पर लपकी है तब तो भाई उसने बहुत बुरा किया।'

'डाढ़ी को रो रहा है। अगर अपने आपे पर उतर आये तो बाप-दादे तक को नहीं छोड़ती। हर रोज कुछ राम मचा रहता है। एक दिन हो तो कोई सबर भी करे। मुझसे तो और सही नहीं जाती।'

'वाह री दुनियाबी...।' बूढ़े शाह ने आँखें और मुँह फाड़कर आश्चर्य प्रकट किया।

'मैं भलामानस आदमी अपनी इज़्ज़त से डरता कुछ कहता नहीं। वह सिर ही चढ़ती जाती है। मगर अब बिल्कुल ठीक हो जायेगी। मैं भी अगर हलाल का हुआ घर नहीं लौटने का।'—पीरबख़्श ने जोश में कहा।

'अच्छा, तो अब चलते किधर हो ?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'खुदा का मुल्क थोड़ा पड़ा है, जाने को कोई रोकता है। जहाँ जी चाहा दो निवाले खाकर पड़ रहूँगा।'

'छोड़ यार, छोटी-सी बातों पर बीवी को छोड़ दोगे क्या। आखिर बरतन के साथ बरतन खनक ही जाता है।'

'बूढ़े सिंह, मुझ ऐसा सबरवाला अभी तक किसी मा ने नहीं जना। यह मैं ही हूँ जिसने दुनियाबी के साथ बीस बरस गुजार दिये। तुम क्या जानो औरतें क्या बला होती हैं। बस दुकान पर बैठकर गप्पे हाँक दीं और जाटनियों के साथ दिल्लगी-भर कर ली। सुकर कर अल्ला का कि सादी के जाल में नहीं फँसा।'

'तुम तो यार पीरबकस यूँ ही नाराज़ हो गये। बुरा तो नहीं कहा कि बसता घर न उजाड़ो।'

'इसीलिए तो बीस साल हो गये हैं मुझे सबर करते-करते। मुझे तो अहमदपुर के मियाँजी की बात मारती रही है जो चौदह-पन्द्रह बरस हुए मसजिद में वाज़ करने के लिए आये थे...।'

'कौन मियाँ सुकनदीन ? बहुत नेक आदमी था।'

'हाँ वही। खुदा उसे जन्नत नसीब करे। कहता था रसूल करीम का हुकम है कि जो मुसलमान अपनी बीवी के साथ बुरा सलूक करेगा, दोजख में जायगा। इसीलिए तो मैंने दुनियाबी पर कभी हाथ नहीं उठाया और नहीं कभी बुरा-भला कहा है। अगर बहुत अकड़ती थी तो कहा करता था—बस रे, चला जाऊँगा भरती होकर। इस तरह दो-तीन साल तो दुनियाबी की ज़ुबान दाँतों तलेरही। लेकिन फिर कहने लग पड़ी—जा, चला जायगा तो मेरी तरफ़ से कल का जाता आज ही जा। एक दिन मैं सचमुच चलने के लिए टणक में कपड़े डालने लग पड़ा। यह देखकर दुनियाबी के होश ठिकाने आ गये। लगी पाँव पकड़ने। ख़ैर, फिर जब कभी अकड़ती थी मैं टणक उठा लिया करता था। इस तरह और पाँच-सात साल गुजर गये। फिर कहने लग पड़ी—जा, चला जायगा तो लेजा साथ अपने बापवाला टणक भी। एक दिन मैं सचमुच टणक उठाकर चल दिया। पर खुद ही मुझे जोहड़ के करीब से लौटा ले गई थी। इसी तरह मैं कई बार टणक उठा-उठाकर घर से निकलता रहा। पर कभी जोहड़ से, कभी दीने के कुवें से, कभी खानगाह से, कभी खास सुहा पर से मुझे लौटा-लौटा कर ले जाती रही है। पर आज सूअर की बच्ची को खुदा जाने क्या हो गया है। सात कोस बाट मार आया हूँ, लौटाने नहीं आई। मैं भी अपने बाप का हुआ, तो लौटकर नहीं जाने का। मेरा नाम भी पीरबकस है।'

'तोबा, तोबा रे पीरबकस, तुम्हारा गुस्सा बुरा।'

'बिलकुल सीधी हो जायगी, तकले में बल हो तो हो, उसमें नहीं रहेगा।'

पीरबख़्श ज़िद में आकर घर से निकल तो पड़ा था परन्तु अब उसे कुछ सूझता नहीं था कि किधर जाय। रावलपिंडी समीप आ गई थी और छावनी की बैरकें प्रभात के सूर्य की नव-किरणों के नीचे चमक रही थीं। पीरबख़्श को खयाल आया कि यदि आज से दस-पन्द्रह वर्ष पहिले वह भरती हो जाता, तो इन बैरकों में रंग-रेलियाँ मनाता।

परन्तु अब वह बुढ़ापे को छूनेवाला था, यह सोचकर उसे अत्यन्त क्लेश हुआ। पर अब क्या हो सकता था। फिर उसने सोचा कि सरकारी किले में नौकर हो जाऊँ, या मण्डी में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मज़दूरी कर लूँ। पर साथ ही उसे खयाल आया कि रावलपिंडी में उसका रहना ठीक नहीं, क्योंकि शायद दुनियाबी उसे लेने के लिए वहाँ पहुँच जाय। इसलिए उसने जहेलम जाने का फैसला कर लिया। वहाँ उसके गाँव के कुछ आदमी लकड़मण्डी में काम करते थे; बस वह भी उनके साथ मज़दूरी कर लेगा।

बूढ़ेशाह भी कुछ समय के लिए अपने दानों की बिक्री के अन्दाज़ों में विली न हो गया था। आखिर वह निस्तब्धता को तोड़ता हुआ बोला—पीरबकस, मेरी मान और अब भी लौट चल। मुझे दुनियाबी पर बहुत दया आती है।

परन्तु पीरबख़्श पर कोई असर नहीं हुआ। उस के लिए अब घर लौटना हराम था। उसने ट्रंक उठाकर अपने सिर पर रख लिया, क्योंकि स्टेशन समीप आ चुका था और बूढ़ेशाह की सड़क वहाँ से फटकर मण्डी की ओर घूम जाती थी।

स्टेशन पर पहुँचकर उसने जेहलम का टिकट लिया और गाड़ी के एक छोटे-से डिब्बे में जा बैठा। भूख से उसका कलेजा धँस रहा था। क्योंकि दुनियाबी के साथ झगड़ा हो जाने के कारण रात उसने कुछ नहीं खाया था। इसके अलावा उसे प्रातःकाल दस कोस चलना पड़ा था। बैठे-बैठे उसको यों ही एक दिन का खयाल-सा आ गया, जब कि दुनियाबी ने अजवायन मिलाकर गेहूँ के पराँवठे पकाये थे। वे उसे कितने स्वादिष्ट लगे थे। उसको वैसे ही अजवायन की हलकी-हलकी सुगन्ध भी आने लगी। साथ ही उसे याद आया कि उसने कैसे दुनियाबी के परांवठों को सराहा था। और उत्तर में वह कैसे लजाकर बुलाक़ की ओट मुस्कराई थी। उस दिन दुनियाबी ने काली मलमल की पतली-सी कुरती पहन रखी थी जिसमें से सब कुछ नज़र आ रहा था। इसने उसे मज़ाक में कहा था—अरी, मोटे कपड़े क्यों नहीं पहनती। यूँ ही कह दे, लोगों को दिखाने को जी चाहता है। उत्तर में दुनियाबी ने लज्जा, क्रोध और प्रेम में कहा था—तुम्हारे सिवा मेरी तरफ कोई आँख तो उठाये जो निकाल न लूँ। दुनियाबी की यह बात इसे कितनी प्यारी लगी थी।

पीरबख़्श का खयाल आज से दस वर्ष पहिले की दुनिया में घूम रहा था। इतने में धम से किसी मुसाफिर ने अपना असबाब गाड़ी में आ फेंका। पीरबख़्श चौंक पड़ा, साथ ही उसके कानों में गाड़ी की चीख पड़ी। वह घबड़ाकर उठ खड़ा हुआ और अपने ट्रंक को घसीटकर उसने प्लेटफार्म पर पटक दिया। फिर धीरे-धीरे सरकती गाड़ी में से कूद पड़ा और ट्रंक पर अपने सिर को हाथों में लेकर बैठ गया। वह सिर से पाँव तक पसीने में भीग गया था।

जब उसने सिर उठाया तो गाड़ी जा चुकी थी। उसने माथे से पसीना पोंछा और ट्रंक को सिर पर उठाकर गाँव की ओर लौट पड़ा। जब वह सुहां नदी पर पहुँचा तो अन्धेरा पड़ चुका था। यहाँ से उसका गाँव एक मील रह गया था। दूर गाँव के तन्दूरों में से आग के शोले उठ-उठकर अन्धकार की चादर को फाड़ रहे थे। उसका शरीर ट्रंक के बोझ के नीचे थक गया था पर उसकी चाल में तनिक भरी फर्क नहीं पड़ा था। अँधेरे में उसके पाँव अभ्यस्त घोड़े की भाँति पगडण्डी से बाल भर भी इधर-उधर नहीं होते थे। टीले पर पहुँचकर उसने खानकाह की शिला पर ट्रंक रख दिया और फातिहा पढ़कर फिर से जल्दी-जल्दी चलने लगा। दीने के रहट पर पहुँचकर उसके पाँव एकदम रुक गये। यहाँ से उसके घर की ओर दो राह फटती थी। उसे निश्चय था कि बूढ़ेसिंह ने गाँव लौटकर सब भण्डा फोड़ दिया होगा और गाँव के प्रत्येक निवासी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को उसकी करतूत का पता चल गया होगा। यह सोचकर कि बाजार वाले रास्ते पर उसे कोई मिल न जाय उसने दूसरा रास्ता पकड़ लिया जो बाहर-बाहर खेतों में से उसके घर जा पहुँचता था।

जब वह घर की दीवार के निकट पहुँचा तो उसका कलेजा धड़क रहा था। कुछ देर वह चुपचाप खड़ा रहा। घर के अन्दर घुप-अन्धेरा मचा हुआ था। शायद दुनियाबी सो चुकी थी। वह दबे-पाँव दरवाज़े तक पहुँचा और भीत के पास कान लगाकर सुनने लगा; पर अन्दर से किसी प्रकार की आवाज़ नहीं निकलती थी। लगभग दस मिनट वह इसी तरह निस्तब्ध खड़ा रहा। दीवार के बाहर दो व्यक्ति बातें करते-करते गुजर गये। 'अगर वे मुझे देख लेते'—पीरबख़्श का भय से साँस रुक गया। दरवाज़े के साथ मुँह लगाकर उसने भरी हुई आवाज में कहा—'नेकबख्ती.....ई।'

किड़...किड़...चारपाई पर से किसी के उठने की आवाज़ आई, साथ ही किवाड़ खुल गया। दुनियावी अकेली चादर में अपना शरीर लपेटे दहलीज में आई। वह बिलकुल शान्त और चुप थी। उसकी गोल, गोरी बाहों ने चादर से निकलकर पीरबख़्श के सिर से ट्रंक उठा लिया और शीघ्र ही दोनो के शरीर अँधेरे में लोप हो गये।

अमृतसर।

●

अनुरूपा देवी

[नन्दगोपाल सेन-गुप्त]

[मूल बँगला से अनुवादक, रामचन्द्र वर्मा]

प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और शिक्षा-व्रती स्व० भूदेव मुखोपाध्याय श्रीमती अनुरूपा देवी के पितामह थे। उनके पिता मुमुन्ददेव मुखोपाध्याय भी एक अच्छे साहित्य-सेवी थे। बाल्यावस्था में अनुरूपा देवी ने संस्कृत, व्याकरण और साहित्य की शिक्षा पाई थी। इसके बाद उन्होंने कुछ अँगरेज़ी भी सीखी थी। पारिवारिक वातावरण में उन्होंने धर्म-निष्ठा और सदाचार का जो प्रभाव अर्जित किया था, उससे आगे चलकर उनका साहित्य विशेष रूप से प्रभावान्वित हुआ था। छोटी अवस्था में ही श्रीमती अनुरूपा देवी का विवाह हो गया था। उनके पति किसी समय अध्यापक का काम करते थे। इनके अनेक पुत्र और कन्याएँ हुई हैं। इनकी सबसे बड़ी कन्या भी साहित्य-सेवा करती हैं। श्रीमती अनुरूपा देवी और उनकी बान्धवी श्रीमती निरुपमा देवी से पहले बँगला भाषा में कुसुमकुमारी देवी, स्वर्णकुमारी देवी, शरत्कुमारी चौधरानी आदि महिलाओं ने अनेक उपन्यासों की रचना की थी। इन सब लेखिकाओं ने उपन्यास-रचना के लिए स्वर्गीय बंकिमचन्द्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और उनके सम-सामयिक लेखकों को अपना आदर्श माना था। बँगला उपन्यासों की आधुनिकतम परिणति का आरम्भ रवीन्द्रनाथ ठाकुर से हुआ है। अनुरूपा देवी और अनुपमा देवी ने भी उसी धारा का अनुसरण किया है। यद्यपि श्रीमती अनुरूपा देवी रक्षणशील हिन्दू-आदर्श का ऐकान्तिक अनुसरण करके रवीन्द्रनाथ के मार्ग से कुछ हट गई हैं, तथापि युग-धर्म के कारण उन्हें भी रवीन्द्रनाथ का बहुत कुछ प्रभाव स्वीकृत करना ही पड़ा है।

श्रीमती अनुरूपा देवी बँगाल की अन्यतम जन-प्रिय लेखिका हैं। उनके 'मा' 'पोष्य-पुत्र' और 'मन्त्र-शक्ति' आदि उपन्यास की प्रशंसा छोटे-बड़े सभी लोगों ने की है। छायाचित्र या सिनेमा में भी इन पुस्तकों के आधार पर तैयार की हुई कहानियाँ दिखलाई जाती हैं और दिन पर दिन उनका आदर बढ़ता ही जाता है। यह ठीक है कि इधर कुछ दिनों से इनका आदर कुछ कम होने लग गया है, तथापि अभी तक इनका आदर पूरी तरह से कम नहीं हुआ है।

अनुरूपा देवी के उपन्यासों का इतना अधिक आदर जिस कारण से होता है, उसी कारण से साहित्य के विचार से उनकी अक्षमता भी मानी जाती है। उन्होंने कहीं मनुष्य को भले और बुरे के अधीन करके साधारण मनुष्य के रूप में चित्रित नहीं किया है, बल्कि उन्हें एक-एक आदर्श के वाहन के रूप में ही चित्रित किया है। मतलब यह कि उनके ग्रन्थों में अधिक विस्तृत रूप में यही दिखलाया गया है कि मनुष्य को क्या करना उचित है; और कहीं यह नहीं दिखलाया गया है कि वह क्या करता है। इसीलिए देश में उनका इतना अधिक आदर हुआ है। किन्तु मनुष्य का यह धर्म ही है कि वह स्वयं जो काम नहीं कर सकता, जो कुछ उसके लिए कल्पनातीत होता है, उन्हीं सब बातों के स्फुरण की वह दूसरों में आशा करता है। और उसकी इसी दुर्बलता से साहित्य और जीवन में आदर्शवाद का जन्म होता है। संसार के प्राचीन साहित्य में मनुष्य की इसी स्वाभाविक असमर्थता की पूर्त्ति करने के लिए देवताओं और देवियों के ऐश्वर्य का आरोप किया गया है। आधुनिक समय में देवता आदि तो अचल हैं और मनुष्य मनुष्य ही है। इसलिए हम चाहे मनुष्यों में देवत्व देखें और चाहे दानवत्व देखें; पर उस पर हम लोग विश्वास नहीं कर सकते। यह अवास्तविकता ही अनुरूपा देवी की रचना का मुख्य दोष है।

श्रीमती अनुरूपा देवी बहुत अच्छी पंडित हैं। अनेक शास्त्रों में वे पारदर्शी हैं। हिन्दू रीति-नीति और आचार-अनुष्ठान आदि के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा है। उनके यही सब गुण उनकी प्रत्येक कृति में विशेष रूप से दिखाई देते हैं। युग-धर्म के कारण देश की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और विचार बदलते जा रहे हैं। इसीलिए हो सकता है कि आगे चलकर उनके इस आदर्शात्मक साहित्य का लोगों में आदर न हो। किन्तु देश की चित्त-वृत्ति और हिन्दुत्व तथा सदाचार की प्रेरणा से उन्होंने जो सत्कार्य किया है, उसकी स्मृति अवश्य ही इतिहास में रहेगी।

श्रीमती अनुरूपा देवी अब वृद्ध हो गई हैं। उनकी साहित्य-साधना के पुरस्कार-स्वरूप कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें 'जगत्तारिणी पदक' देकर सम्मानित किया है। प्रवासी बंगीय साहित्य-सम्मेलन में एक बार उन्होंने समानेत्री का पद भी सुशोभित किया था। व्यक्तिगत रूप से वे बहुत ही निष्ठावती तथा सदाचार-परायण महिला हैं।

कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बढ़ई कोवालस्की
(साइबेरिया का एक चित्र)

[एडेम स्ज़िमांस्की]

[अनुवादक, रवीन्द्र]

मेरा और उसका परिचय तो अचानक ही हुआ था। जिस अवसर पर हम मिले थे, वह याकूत की वसन्त ऋतु की विशेषता है। पाठकों को याकूत की वसन्त ऋतु के बारे में बहुत ही अधूरा ज्ञान होगा।

आधे अप्रैल से ही याकूत में सूर्य प्रचण्ड रूप धारण करने लगता है और मई में तो वह कुछ ही घंटों के लिए क्षितिज के उस पार जाता है। दिन-भर बला की गर्मी पड़ती रहती है। पर जब तक लीना अपने जाड़े के रूप को न बदले और जंगल में बड़े-बड़े बरफ़ के ढोंके पड़े रहें, तब तक वसन्त के लक्षण कहीं भी दिखाई नहीं देते। कई फीट मोटी तहवाले इन बरफ़ के ढोकों पर जमीन की गर्मी का कोई असर ही नहीं पड़ता। वे सूर्य की जीवन-दायिनी किरणों का अन्त तक मुकाबिला करते रहते हैं और बड़ी कठिन तपस्या के बाद सूर्य नारायण जंगलों को और दादी लीना को (याकूत लोग इस दरिया को दादी कहते हैं) जीवन प्रदान करने में सफल हो पाते हैं।

मई के अन्तिम दिनों में जब गर्मी को सर्दी की क्रूरताओं से बचाकर पुनरुज्जीवित करने के प्रयत्न समाप्ति पर होते हैं, पश्चिम से आनेवाले यूरोपियन को एक विचित्र दृश्य दिखाई देता है। जरा-सी आहट बूढ़े, बच्चे और युवाओं को चौकन्ना कर देती है। सब अपनी गर्दनें लम्बी कर उस आवाज़ को सुनने का प्रयत्न करते हैं।

अगर वह विचित्र आहट बन्द हो जाय और यह मालूम पड़े कि वह अचानक हुई थी, तब तो सब के सब चुपके से अपने घर की राह लेते हैं ; लेकिन अगर आवाज़ बढ़ती जाय और तोपों की गरज या मेघ की गड़गड़ाहट का रूप धारण कर ले और ज़मीन के अन्दर एक तूफ़ान की-सी प्रतीति होने लगे तो लोग उन्मत्त हो जाते हैं और चारो ओर से आवाज़ें आने लगती हैं कि बरफ़ टूट रही है, नदी पिघल रही है। अरे भई, सुनो तो ! शोर मचाते हुए लोग इस समाचार को इधर-उधर दौड़-दौड़कर पहुँचाते हैं। हरएक दरवाज़े पर चाहे वह परिचित घर हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या अपरिचित, खटखटायेंगे और लीना के पिघलने का समाचार सुनायेंगे। जंगल की आग की तरह यह समाचार सारी याकूत -बस्ती में फैल जाता है। और जिस किसी में ज़रा भी चलने की शक्ति हो वह अपना गरम कोट पहनकर लीना की ओर दौड़ता है।

लीना के किनारे एक बहुत बड़ा जमघट हो जाता है। सब लोग साइबेरिया के इस सुन्दरतम प्राकृतिक दृश्य को देखने में मग्न हो जाते हैं।

बरफ़ के बड़े राक्षसी ढोंके दरिया की प्रचण्ड लहरों में बहने लगते हैं, आपस में टकराते हैं और टूटने लगते हैं। उनमें से टूट-टूटकर बरफ़ के छोटे-छोटे टुकड़े मानो आकाश पर छा जाते हैं और प्रकृति के रंगों की छटा दिखाते हैं।

यहाँ कम से कम एक शरद् ऋतु बिताये बिना इस सब का रहस्य समझ में नहीं आ सकता। यह सारी भीड़ प्राकृतिक सौन्दर्य का मजा लूटने के लिए इकट्ठी नहीं होती। जाड़े के साथ युद्ध करते-करते इनकी शक्ति क्षीण हो जाती है और ये बड़ी अधीरता के साथ गर्मी की प्रतीक्षा किया करते हैं और जब सूर्य भगवान् इनके शत्रु पर विजय पाते हैं तो ये लोग उनकी जय मनाने के लिए दौड़े चले आते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर अत्यधिक और बच्चों की-सी प्रसन्नता के लक्षण दिखाई देते हैं। उनके मोटे-मोटे ओठ मुस्कराते समय और भी मोटे मालूम होते हैं और उनकी काली-काली आँखें अंगारों की तरह चमकने लगती हैं। प्रत्येक परमात्मा की दुहाई देता है और झूमता है। सूर्य द्वारा नष्ट होते अपने क्रूर शत्रु को देखकर इनकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती।

जब लीना की बरफ़ पिघल चुकती है, तो धरती भी कुछ गर्माने लगती है और प्रकृति गर्मी के इन तीन महीनों का पूरा उपयोग करती है। बहुत थोड़े समय में हर चीज़ बढ़ने लगती है।

याकूत के मैदान में एक बड़ा ही रमणीय दृश्य होता है। जमीन उपजाऊ है। मैदान में कहीं कुछ झाड़ियाँ हैं, कहीं लहलहाते खेत। और यकसाँ सुन्दर झीलें। यह सब मिलकर सारे मैदान को एक बड़े भारी पार्क का रूप दे देते हैं, जिसके किनारे लीना रूपी गोटा-किनारी लगी है। आस-पास के जंगल की उदासी इस मनोरम दृश्य को और भी सुन्दर बना देती है। इतने बड़े बीहड़ में यह सुन्दर-सा मैदान रेगिस्तान के अन्दर नख्लिस्तान की याद दिलाता है।

साइबेरिया की जातियों में याकूत जाति योग्यतम है। वह प्राणदा सूर्य-किरणों का मूल्य जानती है और उनसे पूरा लाभ उठाती है। जब उसे अपनी अंधेरी कोठरी और भारी-भारी कम्बलों से फ़ुर्सत मिलती है तो वह सारी भूमि को गुञ्जायमान कर देती है। उसकी कार्यक्षमता दुगुनी हो जाती है और उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। याकूत त्योहार हो चूकने पर भी उनकी चहल-पहल में कोई कमी नहीं आती। मैदान घास से सरसब्ज़ होते हैं और गौएँ और घोड़ियाँ ख़ूब दूध देती हैं।

इस मनमोहक मैदान और गर्मी के कारण प्रफुल्लचित्त मनुष्य-जाति ने मुझे भी एक नई ताज़गी प्रदान की। याकूत बस्ती में मेरी पहिली गर्मियाँ थीं और मैंने मैदानों में घूम-घूमकर और प्राकृतिक दृश्यों का मज़ा लूटकर इनका पूरी तरह सदुपयोग किया।

× × ×

घूमता-फिरता मैं एक न एक याकूत युर्टा के पास जा पहुँचता था, जो सारी बस्ती में चारो ओर फैले हुए हैं और एक दूसरे से काफ़ी दूरी पर हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन खेतों में ठण्डा दूध और कुमीस * प्रायः मिल ही जाता है। लेकिन इन दोनो में वह दुर्गन्ध आती है जिसे विदेशी 'याकूत गंध' कहा करते हैं। सर्दियों में यहाँ रहते-रहते और इस दूध को पीते-पीते मैं इस गंध का इतना अभ्यस्त हो गया था कि अब इससे ज़रा-सा जी मचलाने के सिवा और कोई खास अनुभूति न होती थी।

जंगल के एक किनारे का युर्टा मुझे बहुत प्रिय था, जिसके पास ही एक छोटी-सी झील भी थी। इसका मालिक एक बूढ़ा याकूत था जो और बूढ़े बड़े याकूतों की तरह 'ओहोनियर' पुकारा जाता था। बुड्ढे के साथी उसकी स्त्री और उसका एक दूर का सम्बन्धी लड़का थे। दो गौएँ एक बछिया और एक टट्टू उसकी सारी मिल्कियत थी।

प्रायः सभी याकूत बहुत गप्पी और दूसरों की बातें जानने के उत्सुक होते हैं, पर मेरे मित्र में यह आदतें बहुत ही ज्यादा थीं। वह कुछ टूटी-फूटी रूसी भाषा भी बोल लेता था, इसलिए मेरे साथ उसकी ख़ूब छना करती थी।

सबसे पहिले उसने यह जानना चाहा कि मैं कौन हूँ, कहाँ से और क्यों यहाँ आया हूँ। याकूत रूसियों से बहुत चौकन्ने रहते हैं। चाहे वे कितने भी फटे हाल क्यों न हों, फिर भी रूसी मालिक कहाते हैं और सब उनसे कन्नी काटते हैं। लेकिन पोलिश लोगों के साथ उनकी मैत्री है। यह जानकर कि मैं रूसी नहीं बल्कि पोलिश हूँ, याकूत बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। 'आहा, आहा, बिलाक भई वाह, भई वाह, बड़े अच्छे' ये शब्द हरएक के मुख से सहसा निकल पड़ते थे। यहाँ यह बता दूँ कि पोलिश लोग वहाँ बिलाक कहे जाते हैं।

बहुत जल्दी मेरी और ओहोनियर की दोस्ती हो गई और जब उसे यह मालूम हुआ कि मैं लिखने की कला में भी प्रवीण हूँ, तब तो मेरे आदर और सत्कार की बात ही क्या पूछनी। 'ओ हो, हमारी चिट्ठियाँ और हमारे प्रार्थना-पत्र लिख दिया करोगे न ?' मेरा आदर बहुत बढ़ गया और अति परिचय से भी बच गया। मुझे अच्छे से अच्छा दूध और कुमीस मिलने लगा। मुझे देने से पहिले बुढ़िया बर्तन को पहिले अँगुलियों से और फिर जीभ से चाटकर साफ कर दिया करती थी ताकि वह मैला न रहे।

एक दिन जब मैं इधर कुमीस पीने आया तो मेरा मित्र बहुत ही उत्तेजित दिखाई दिया। आज वह और दिनों की अपेक्षा ज्यादा बातें कर रहा था। कारण यह था कि आज वह शहर गया था और वहाँ से 'वोदका' पीकर आया था।

अपनी चिलम भरते हुए वह कहने लगा—हाँ, बिलाक बड़े अच्छे होते हैं। सब के सब ही अच्छे होते हैं। हर एक बिलाक लिखना जानता है या कम से कम डाक्टर तो होता ही है और साथ में लुहार भी। और इस काम में तो याकूत की भी बराबरी कर लेता है। तुम भी बड़े अच्छे हो, लिखते भी हो...कोई साचा‡ कभी यह नहीं भूल सकता कि बिलाक उसका सगा भाई है। लेकिन यह बात कोई बहुत पुरानी नहीं है। अभी कोई पन्द्रह वर्ष पहिले तक मैं स्वयं बिलाकों से डरता था—ऐसे ही जैसे किसी भूत से। तुम जानते हो मैं कितना बूढ़ा हूँ ? मेरी आँखों के आगे गौएँ सत्तर बार इस मैदान को चरकर साफ़ कर चुकी हैं। बिलाक को देखते ही मैं खरगोश की

---

* एक प्रकार की शराब जो घोड़ी के दूध से बनाई जाती है। अनु०

‡ याकूत अपने आपको साचा कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तरह भागने लगता था और झाड़ियों में या जंगल में जाकर छिप जाता था। मैं ही नहीं, हरएक आदमी बिलाकों से डरता था। हमने सुना था कि इनके सींग होते हैं और ये सभी को मार डालते हैं।

यह और इसी तरह की गप्पों का जो गाँवों में शहर से आई थीं, मैंने कुछ मज़ाक उड़ाया। वह बोल उठा—यह मत समझो कि हम कही-सुनी बातों पर भरोसा कर लेते थे। औरों की बात तो मैं जानता नहीं; हाँ, अपनी कह सकता हूँ। हमारे पुरखे तो अच्छी तरह जानते थे कि बिलाक बड़े भयंकर होते हैं। बुड्ढे ने थोड़ी-सी शराब और पीते हुए कहा—

'देखो, असल बात यह है कि मेरा बाप तो अभी पैदा भी नहीं हुआ था। मेरा बाबा भी अभी छोटा-सा ही था। उसके लिए अभी तो कालिम* इकट्ठी की जा रही थी। उन दिनों हमारे पड़ोस में एक भयंकर बिलाक आ गया, जिसकी आँखें बरफ़‡ जैसी थीं तथा जिसके लम्बी-लम्बी मूँछें और डाढ़ी थी। वह मैदान छोड़कर ऊपर उस पहाड़ी पर बसा, जहाँ घने जंगल थे। उसके आते ही पहाड़ी के आस-पास से गुजरना असम्भव हो गया। जो कोई उधर से गुजरता, वह उसके पीछे बन्दूक लेकर दौड़ पड़ता और यदि वह भाग न सके, तो उसके प्राण हर लेता। उसे इसकी ज़रा भी परवाह न थी कि वह किसके प्राण ले रहा है। वह खाता-पीता क्या था, यह तो उस पहाड़ी के देवता ही जानें और तो कोई जान नहीं सकता। हरएक प्राणी उससे जान बचाकर भागता था। जिन्होंने उसे देखा है, वे कहते हैं कि पहिले तो वह लिखना जाननेवाले रूसियों की तरह कपड़े पहिनता था; पर फिर पीछे से चमड़े और खालें पहिने रहता था। लोग कहते हैं, उसकी भयंकरता बढ़ती जाती थी। उसकी डाढ़ी कमर तक आ गई, चेहरा बहुत पीला और आँखें अंगारों-जैसी दीखने लगीं। कुछ वर्ष ऐसे ही बीत गये। एक बार जाड़ों में जब बरफ़ गिरी और चीजस+ बहने लगी तो वह कई दिनों तक दिखाई न दिया। लोग उसके पास तो फटकते न थे। अब गाँव में सूचना निकाली गई कि कोई जाकर देखे कि उसे हो क्या गया!

'लोग आये और बड़ी सावधानी के साथ झोंपड़ी में घुसे। वहाँ देखते क्या हैं कि बिलाक खालों में लिपटा हुआ बरफ़ से ढका पड़ा है। उसके हाथ में सलीब थी। बिलाक मर चुका था। शायद भूख या बरफ़ के कारण ही मरा होगा; पर कौन जाने शायद शैतान ही उसे उठा ले गया हो। अच्छा तो अब तुम ही बताओ कि हमारा डर अकारण था क्या? यहाँ एक बिलाक था, जिसने चारो ओर आफ़त मचा रखी थी और अब तो तुम इतने सारे आ गये। हा हा हा; लेकिन भाई तुम तो लिखना भी जानते हो; लेकिन हो अभी बहुत छोटी आयु के, इसीलिए समझ बैठे कि हम बिना कारण ही भयभीत हैं। अब तो तुम्हें मालूम पड़ गया न कि यह तुम्हारी भूल थी। देख लो, साचा कितना चतुर होता है; पर शक्ल से नहीं लगता।

× × ×

---

* बचपन से ही भावी पत्नी का मूल्य देने के लिए पशु जमा करते हैं, यह मूल्य कालिम कहाता है।

‡ काली आँखोंवाले याकूत नीली आँख को बरफ़-जैसा बताते हैं।

+ दक्षिण की ओर को बहनेवाली एक हवा। इसके बाद प्रायः बहुत-सी लाशें बरफ़ से मरे हुए लोगों की मिला करती हैं। अनु०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस पोलिश आदमी की कहानी का, जो आदमी की गंध न सह सकता था—जो कि मुझे बहुत बार सुननी पड़ी—मेरे ऊपर गहरा असर पड़ा। शायद अत्यधिक दुःख से पीड़ित वह पागल इन्हीं मैदानों में और इन्हीं पहाड़ों पर घूमा करता होगा, जहाँ आज मैं घूमा करता हूँ। कौन जाने शायद उसके कष्ट असह्य हो उठे हों और उसे मानव-मात्र का शत्रु बना गये हों। हो सकता है, घर से और अपनों से जुदाई के कारण ही उसका दिल बैठ गया हो।

इसी विचार-धारा में बहता हुआ मैं बड़ी तेज़ी से अपने घर की ओर बढ़ा जा रहा था कि 'कालरा—कालरा' की आवाज़ सुनाई दी। पहिले तो मैं इसे समझ न सका और न ही यह जान सका कि यह कहाँ से आ रही है; लेकिन जब कई बार यही आवाज़ आई तो मालूम हुआ कि उन झाड़ियों के पीछे से कोई चिल्ला रहा है और इसका अर्थ है 'ओ भाई, यहाँ आना जरा।' मैं उसकी ओर बढ़ते हुए सोचने लगा कि आख़िर यह है कौन? कोई याकूत या रूसी तो ऐसी भूल कर नहीं सकता कि जहाँ 'केलरे' कहना चाहिये वहाँ 'कालरा' कहे। यह कोई मेरे ही प्रान्त मासूर्स का हो सकता है जो सुन्दर याकूत भाषा पर यह अत्याचार कर रहा है। इतने लम्बे प्रवास में वहाँ मुझे एक भी मासूरियन ऐसा नहीं मिला, जो इस शब्द का उच्चारण 'कालरा' से भिन्न करता हो।

वह झाड़ियों के पीछे दलदली स्थान में से गुजर रहा था और उधर से गुजरनेवाले एक याकूत को आवाज़ दे रहा था। उसका वेष निर्वासित कैदियों का-सा था। वह बार-बार हाथ उठा-उठाकर सहायता के लिए पुकार रहा था; लेकिन सब व्यर्थ; क्योंकि वह याकूत तो उसके पास जाने का इरादा भी न रखता था। उसे भी आख़िर यह मालूम पड़ गया और वह चिल्ला पड़ा—कालरा...कुत्ता कहीं का! और फिर बड़े धीमे स्वर से उसे गालियाँ देने लगा—तेरा पेट फटे, तेरा मुर्दा निकले, तेरा शरीर सूज जाय, कुत्ते का पिल्ला...और नहीं तो...वह आगे बढ़ता जाता था।

मुझे देखते ही वह ठिठक गया। मैंने पोलिश भाषा में कहा—जय खुदावन्द मसीह की। उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही और वह चिल्लाया—ओ हो! अच्छा! तुम कहाँ के हो।

शीघ्र ही हमारी दोनो की मित्रता हो गई। वह कहीं यूलूस में रहता था और शहर जाकर सोने की खानों में कुछ काम ढूँढ़ आया था और अब अपने पशुओं को लेकर वहाँ जाने की तैयारी में था। कुछ पशु इधर-उधर चले गये और वह अकेला उन्हें पुल पार न करा सकता था। मैंने सहर्ष उसकी सहायता की और पुल पार करके हमने बातचीत शुरू की। उसने बताया कि वह कोवालस्की के साथ रहता था। मैं याकूत के सभी पोलिश लोगों से परिचित था; पर यह नाम मेरे लिए नया था। उसने बताया कि कोवालस्की बढ़ई है; पर फिर भी मुझे कुछ पता न लगा। मैंने उससे पूछा कि अच्छा यह बताओ कि यहाँ उसका मित्र कौन है, वह किनके साथ हिलता-मिलता है?

'वह कुछ अजीब-सा आदमी है, परिचित तो सभी के साथ है; पर वह किसी से मिलने-जुलने कभी नहीं जाता।'

'इसका क्या मतलब? क्या वह किसी से भी नहीं मिलता?'

'आख़िर जाय कैसे? उसके दोनो पैर बेकार हैं, पैरों की अँगुलियाँ बरफ़ से झड़ चुकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। जब घाव कुछ भर जाते हैं, तब वह दो-चार क़दम चल लेता है, नहीं तो अपने कमरे में चलना भी कठिन होता है।'

'आख़िर वह अपनी जीविका कैसे चलाता है?'—मैंने पूछा।

'वह कुछ बढ़ई का काम कर लेता है। उसकी छोटी-सी सुन्दर दुकान है और औजार-हथियार भी उसके पास हैं। लेकिन जिन दिनों उसका खड़ा होना मुश्किल हो, उन दिनों तो वह काम भी नहीं कर सकता। उन दिनों यदि लोग कूँचियाँ और बुरुश बनवाने आयें तो वह बड़ा प्रसन्न होता है। लेकिन यहाँ न तो कोई झाड़ू ही लगाता है और न कपड़ों पर बुरुश करता है। अतः यह काम भी कम ही मिलता है। आजकल तो वह फिर बीमार है।'

मैंने पूछा कि वह कहाँ का है, और यहाँ कब से है? मेरा मित्र कहने लगा—उसे तो यहाँ जमाना हो गया। जब वह यहाँ आया था तब तो हम कुछ इने-गिने लोग ही यहाँ रहा करते थे; लेकिन वह कहाँ का है, यह प्रश्न तो तुम उससे अपरिचित होने के कारण ही कर रहे हो। जब कोई भी उससे यह प्रश्न करे, चाहे वह मैं होऊँ या कोई और, चाहे वह इर्कुस्क का पादरी ही क्यों न हो, उत्तर सदा यही मिलता है—भाई, मुझे विश्वास है कि परमात्मा इस बात को बहुत अच्छी तरह जानता है। तुम्हें यह जानकर कुछ मिल नहीं जायगा। तुम्हारा यह जानना बेकार होगा—यह कहकर वह चुप हो जाता है और अब तो उससे कोई पूछता भी नहीं।

मैंने कोवालस्की का निवास-स्थान पूछ लिया और फिर मैं अपनी उधेड़-बुन में लग गया। न जाने क्यों मुझे यह लगता था कि यह एकान्तवासी बढ़ई वही उस कहानी वाला बिलाक था जो लोगों से भागता फिरता था। शायद समय के चक्र ने उसके दुःख को कुछ हल्का कर दिया हो और उसके घाव कुछ-कुछ भरने लगे हों।

× × ×

इसके बाद मैं कई बार कोवालस्की के युर्टा तक गया। बाहर वही पुराना लकड़ी का बुरादा पड़ा था। अब उसमें नया बुरादा कभी बढ़ता नहीं दीखता था। शायद वह आदमी... अन्दर घुसने की तो मेरी हिम्मत न पड़ती थी। मैं यही सोचता था कि जब अन्दर काम की खट-पट हो रही हो, तभी घुसूँ; पर इसका तो कोई लक्षण दीखने में न आया। आख़िर एक दिन मैं हिम्मत बाँधकर अन्दर घुसने का निश्चय करके अपने घर से निकला और युर्टा के एक कोने में घुस भी गया। अन्दर बड़ी धीमी मिठी तान सुनाई दे रही थी। मैं गीत का एक-एक शब्द सुन रहा था। पोलेण्ड का पुराने ज़माने का प्रसिद्ध गीत गाया जा रहा था।

'जब हरे भरे खेत लहलहाते हैं और जब ऋतुराज संसार को नवजीवन देता है।'

संगीत एकदम बन्द हो गया और आवाज़ आई—कुतिया, जा सर्वशक्तिमान प्रभु को तङ्ग कर।

मैं इस विचित्र आज्ञा का अर्थ न समझ पाया। लेकिन इतने में ही देखता क्या हूँ कि एक छोटी-सी काली कुतिया दरवाज़े के पास अपने पिछले पैरों पर खड़ी हो-होकर आकाश की ओर मुँह करके भूँक रही है। मैं वापिस हो लिया और अपना विचार स्थगित कर दिया।

× × ×

आख़िर एक दिन मेरी उससे भेंट हो ही गई। वह देखने में मामूली क़द का सफ़ेद बालोंवाला उपेक्षित बुड्ढा था। उसका रंग और निर्वासितों की अपेक्षा बहुत ज़्यादा काला हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चुका था। उसके चेहरे की झाइयाँ देखकर दुःख होता था। अगर वह चुपचाप बैठा हो तो यह पता लगाना कठिन है कि वह ज़िन्दा है या मुर्दा। लेकिन अब भी काले-काले गोलों और गड्ढों से घिरी उसकी आँखें अंगारों की भाँति चमकती थीं और उसकी आन्तरिक अवस्था का परिचय दे रही थीं। जब वह बैठा हुआ था, तब भी उसके पीड़ित चेहरे को देखकर दुःख होता था; लेकिन जब वह खड़ा हुआ तो उसके बरफ़ के खाये हुए पैरों को देखकर तो एक-दम मुझे आँखें फेर लेनी पड़ीं। उफ़, उसे कितनी पीड़ा हो रही थी।

वह बहुत शुद्ध और ठीक लहजे में पोलिश भाषा बोलता था; लेकिन इस बात का उसे पूरा ध्यान रहता था कि कहीं अपने भूत-काल या अपने प्रान्त की कोई बात मुँह से न निकलने पाये। मैं कई सप्ताह से यहाँ आया करता था। एक दिन अचानक मैंने प्लोस्टक का नाम लिया। उसका रंग बदला, आँखें चमकीं और उसने पूछा—अच्छा तुम इस जगह से परिचित हो! जब मैंने बताया कि मैं तो वहाँ तीन वर्ष रह चुका हूँ, तो वह धीरे-धीरे कहने लगा—ओह, अब तो वह स्थान बिल्कुल बदल चुका होगा। कितने वर्ष बीत गये। शायद तुम तो तब पैदा भी न हुए थे, जब मैं वहाँ गया था। अच्छा उस प्रांत में तुम कहाँ रहे थे?

'रासियाज के पास ही।'

उसने मुख खोला; पर उसे ध्यान आया कि वह बहुत कुछ कह गया और मैं उत्सुकता से सुन रहा हूँ। उसके मुख से एक लम्बी साँस के साथ उफ़ निकला और बस।

बस एक ही बार कोवालस्की ने अपने जीवन की ओर इशारा किया था। मैंने उससे कुछ और निकलवाने का प्रयत्न तो किया; पर बुड्ढा भी चण्ट था। झट बात बदलकर अपनी कुतिया को बुलाने लगा और उसे सर्वशक्तिमान पर भूँकने की आज्ञा दे दी। इस आज्ञा का मतलब सदा यही हुआ करता था कि अब वह कुतिया के सिवाय और किसी विषय में जबान न खोलेगा, और कुतिया की बातें करते तो वह कभी थकता ही न था।

कुतिया थी तो साधारण-सी पर याकूत के और कुत्तों से उसमें कुछ विशेषताएँ अवश्य थीं, एक तो यह कि मालिक की लाड़िली होते हुए भी उसका नामकरण न हुआ था और वह कुतिया ही कहाती थी। एक बार मैंने इसका कारण पूछा तो कोवालस्की कहने लगा—आखिर नाम की ज़रूरत ही क्या है? कितना अच्छा होता यदि नाम रखने की अपेक्षा मानव एक दूसरे को 'मानव' कहकर ही बुलाया करते। शायद तब उन्हें कुछ तो अपनी मानवता का ध्यान आता।

यह बिना नाम की कुतिया देखने में भली मालूम होती थी और याकूत के कुत्तों की तरह भारी-भरकम होने की जगह छोटी-सी और नाजुक थी। उसके बाल भी बहुत छोटे-छोटे थे। वह श्वान-समाज में कभी स्थान न पा सकी। जब कभी उसने यत्न किया, असफल रही और घायल होकर, टाँग तुड़वाकर लौटी। वह थी तो शांत; पर यह शांति कमज़ोरी के कारण ही थी। याकूत के बड़े-बड़े ज़बरदस्त कुत्तों से उसे कुछ घृणा थी। क्योंकि वे इस कमज़ोर का निरादर करते थे। मालिक के सिवाय और किसी से उसे प्रेम न था और किसी दूसरे का लाड़ उसे सह्य भी न था। शायद अविश्वास ही इसका कारण हो।

× × ×

कुछ सप्ताह बीत गये; पर कोवालस्की अच्छा न हुआ, उसकी दशा बिगड़ती ही गई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

और हम सबको विश्वास हो गया कि यह उसकी आख़िरी बीमारी है। शायद वह भी मौत की प्रतीक्षा में था ; क्योंकि उसने बोलना-चालना बन्द-सा कर दिया था। कुछ दिन तो वह कमज़ोरी के साथ मुकाबिला करता रहा। कुछ देर आँगन में घूमता और कुछ बुरुश बनाता ; लेकिन आख़िर उसने यह सब छोड़कर खाट की शरण ली। एक दिन मैं प्रातराश के लिए बैठा ही था कि उसका निकटतम मित्र वाडिस्ला पिओट्रोस्की मेरी खिड़की के पास आया और मुझे शीघ्र ही चलने के लिए कहने लगा। वह कहता था कि शायद हमारी उपस्थिति से अन्तिम घड़ी में उसे कुछ शान्ति प्राप्त हो और वह अपने आपको पूरी तरह उपेक्षित समझता हुआ न मरे।

मैंने बाइबल अपने साथ ले ली और चल पड़ा। रास्ते में उससे पूछा—क्यों आज तबियत ज़्यादा ख़राब है क्या ?

'हाँ, लगता तो यही है, चेहरा नीला-नीला हो गया है और वह स्वयं कहता है कि आज बस आख़िरी दिन है।'

हम शीघ्र ही कोवालस्की के युर्टा पर जा पहुँचे। बीमारों के कमरे से आनेवाली दवाइयों की गंध का वहाँ अभाव था ; क्योंकि कोवालस्की को डाक्टर और दवाई पर एकदम अश्रद्धा थी। कमरे में निराशा और दुःख का वातावरण था। कुतिया मालिक के पैरों के पास पड़ी हुई थी। शक्ल पर कोई ऐसा चिह्न दिखाई न देता था, जिससे कोवालस्की को जीवित समझा जा सके। मेरे साथी ने लिहाफ़ उठाकर उसके पैरों को छुआ तो बिलकुल बरफ़ जैसे ठण्डे हो चुके थे। पैरों को छूते ही कोवालस्की चिल्ला पड़ा, हमें तो कभी यह सम्भव न लगता था कि वह इतनी ज़ोर से बोल सकता है। वह कहने लगा—हाँ, अभी तो मैं जिन्दा हूँ। बड़ी खुशी की बात है कि तुम आ गये। मैं तो डरता था कि मरने से पूर्व किसी से कुछ कह-सुन न सकूँगा। उसकी आवाज़ सुनकर हमें यह लगा कि हम बिलकुल ठीक मौक़े पर आये हैं। हम आपस में एक दूसरे की ओर देखने लगे।

कोवालस्की इसका भाव समझ गया और बोला—मैं जानता हूँ कि अब मैं चलनेवाला हूँ। मुझे यह स्पष्ट दीख रहा है। इसीलिए मैं तुम से दो-दो बातें कर लेना चाहता था ; पर मुझे भय था कि शायद मुझे अकेले में ही मरना पड़े या तुम्हारे आने से पहिले कहीं तुम्हारा दयालु कहलानेवाला परमात्मा मेरी वाक्-शक्ति को हर न ले...मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। जब नीरस और निराश जीवन से विदाई लेने के लिए मौत तुम्हारे पास सन्देशा भेजे, तब तुम्हें भी सुनसान में न रहना पड़े, यही मेरी कामना है।

कोवालस्की चुप हो गया। उसकी भौंहें देखकर लगता था कि वह बहुत कुछ कहने की तैयारी कर रहा है।

सवेरे का सुहावना समय था। खिड़की में से सूर्य की सुनहली किरणें मुस्कराते हुए प्रविष्ट हो रही थीं। सामने लहलहाते खेतों और नदी में स्थित छोटे-छोटे हरे-भरे टापुओं में एक नये जीवन का संचार हो रहा था। सब मानो प्राणदायिनी सूर्य की एक-एक किरण के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए दिव्य सङ्गीत में मस्त थे।

यह प्रकाश, यह शोरोगुल और यह संगीत सब के सब मानो जीवित शव की मृत्यु-शय्या की ओर घृणा से देख-देखकर हँस रहे थे।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'एक ज़माने की बात है'; कोवालस्की ने कहना शुरू किया—शायद अब से चालीस वर्ष पहिले की होगी, मुझे ओरेनबुर्ग में देश-निकाला दिया गया। उन दिनों मैं परमात्मा पर और मनुष्य की मानवता पर विश्वास करता था। शायद यह मेरी भूल ही हो; पर मैंने यह समझा कि यहाँ पड़े-पड़े जीवन खराब करने की अपेक्षा मुझे अपने देश के विस्तृत कार्य-क्षेत्र में ही लगा रहना चाहिये। मुझे घर की याद भी बहुत आती थी, अतः दो वर्ष में मैं वहाँ से फरार...

'मुझे टोमस्क भेजा गया; पर मैं भला इससे हतोत्साह कैसे होता। मैंने जिन्दगी नये सिरे से शुरू की। सूखी रोटी और पानी पर गुजारा करके मैंने कुछ धन-राशि इकट्ठी की और कुछ दिनों में वहाँ से भी चम्पत हो गया...

'इस बार भागने का मुझे बहुत ही कड़ा दण्ड मिला। कई वर्षों तक मुझे कोई मौक़ा न मिला; लेकिन जब मैं भागा तो बहुत दूर जा पहुँचा। मेरे पास पैसा बिलकुल न था। सर्दी और सालों की अपेक्षा कहीं ज्यादा थी और मेरे पास कपड़े तक न थे। मेरे पैरों की अँगुलियाँ गल गईं, उन्होंने मुझे उठाकर येनेसी के भी उस पार भेज दिया।

'वहाँ बहुत कठिन समस्या थी। सारा स्थान ऊजड़ था। वहाँ कमाना-खाना भी कठिन हो गया। ख़ैर, मैंने दो एक हुनर सीख लिये और थोड़ी, पर निश्चित आय का हीला निकाल लिया।

'इस बार मुझे छः वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी, फिर पैरों की दशा को देखते हुए भी मैं चल पड़ा...मुझे अपनी शक्ति पर भरोसा तो था ही नहीं। मैं गलित-पीड़ित अवस्था में भी पश्चिम की ओर खिंचा चला जा रहा था। उद्देश्य वही था...मृत्यु को आह्वान देना।

'मैं सदा मा की कब्र पर जान देने के स्वप्न लेता था और यही मेरे परम उल्लास का कारण...

'मेरा जीवन ऐसा बीता है कि मा के सिवाय और किसी ने मुझसे दो मीठे बोल तक नहीं बोले। न मेरी कोई प्रिया थी, न प्रेयसी; न कोई स्त्री थी, और न बच्चे...इस थकी-माँदी उपेक्षित अवस्था में बस मेरी लालसा थी तो यही कि किसी न किसी तरह अपनी प्यारी मा की क़ब्र पर ही प्राण त्यागूँ।

'आह, बिना पलक झपकाये न जाने कितनी रातें कटी हैं। मुझे बार-बार अपने सिर पर उसके प्रेम-पाणि की अनुभूति होती थी...उफ़, वे ग़रम-ग़रम आँसू और ठण्डी-ठण्डी आहें, जिनके साथ उसने मुझसे अन्तिम विदाई ली थी। वह भी तो जानती ही होगी न कि आज की जुदाई...

'ख़ैर, आज तो मुझे यह भी नहीं याद कि मा का आकर्षण ज्यादा था, या मातृभूमि का। यात्रा बड़ी कठिन थी। मैं तेज़ चल न सकता था, क्योंकि पैरों के घाव हँस रहे थे। मुझे दिन में भेड़ियों की तरह जंगलों में छिपना पड़ता।

'कौए और गिद्ध मेरे सिर पर मँडराते रहते थे, चारो ओर से अपशकुन! सब तरफ से हारा-थका-मांदा मैं भूख-प्यास से परेशान होकर बार-बार गिर पड़ता था। और देखा मेरा गधा-पन! ऐसे समय में भी मैं प्रार्थना करता था! मैं सर्वशक्तिमान प्रभु, दयालु परमात्मा, न्यायकारी भगवान और उपेक्षितों और गरीबों के खुदा से प्रार्थना करता था और मिन्नतें माँगता था।

'हे पिता, सहायता करो, रहम करो। आह, मैं मौत के सिवाय और कुछ नहीं माँगता। मैं स्वयं आत्मघात कर लूँगा। बस, वहाँ तक...

'दो वर्ष बीतने पर मैं पर्म के प्रान्त में जा पहुँचा। इससे पहिले मैं कभी इतनी दूर न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आ पाया था। मेरा हृदय वल्लियों उछलने लगा, मेरे मस्तिष्क में बस एक ही विचार था कि अब मैं अपनी मातृभूमि के दर्शन करूँगा और मा की क़ब्र पर...जिस दिन मैं युराल से आगे बढ़ा हूँ, उस दिन तो मुझे अपनी मुक्ति का भरोसा हो गया। अब कोई सन्देह ही न था। मैं बार-बार घुटने टेक-टेककर परमात्मा को इसके लिए धन्यवाद दे रहा था। लेकिन वह, वह दयालु, कृपालु तो अपना अन्तिम वार करने की ठाने हुए था और उसी दिन साँझ को...वहाँ से मुझे इतनी दूर याकूत में ला पटका। लेकिन आख़िर मैं इतनी मुसीबतें झेलता इतने समय तक रहा कैसे? आज यह दिन देखने के लिए मैं जीवित ही क्यों रहा? शायद मैं यह देख रहा था कि श्री १०८ परमात्माजी आख़िर करते क्या हैं?

'अब देख लो उनका व्यवहार कैसा होता है। जिसने सदा उन पर भरोसा रखा, जिसे सुख की शक्ल देखनी नहीं नसीब हुई, जिसे यह मालूम ही नहीं कि प्रेम कहते किसे हैं, जिसने पैरों के बेकार होते हुए, माजूर होते हुए किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया, कभी चोरी नहीं की, किसी की चीज़ पर लार नहीं टपकाई, जो हमेशा अपने हिस्से में से आधा औरों को देता रहा, ऐसा मैं...

'इसीलिए तो मैं उससे घृणा करता हूँ, अब मुझे उस पर तनिक भरोसा नहीं।

'मुझे उसके सन्तों पर, फ़रिश्तों पर या उसके न्याय पर ज़रा भी भरोसा नहीं। देखो भाई, सुनो, मैं मरते दम कह रहा हूँ, तुम कान खोलकर सुन लो और जब मरकर वहाँ आओ तो मेरी गवाही देना।'

उसने बड़ी मुश्किल से अपने आपको कुछ उठाते हुए सूर्य की ओर देखकर चिल्लाते हुए कहा—मैं, मैं एक मरता हुआ कीट पूरी तरह विश्वास करता हूँ, मैं साक्षी हूँ, कि तू बदमाशों का, लुच्चों का और नापाक लोगों का ख़ुदा है। तूने मुझे, एक अपराध-शून्य व्यक्ति को बुरी तरह बरबाद किया है!

× × ×

सूर्य काफ़ी ऊँचा चढ़ आया था। इस कङ्काल, त्वचा-युक्त भयावने कङ्काल की खाट पर अच्छी खासी धूप आ रही थी। जब वह थककर बिस्तर पर गिरा तो हम घबराये कि कहीं ऐसा न हो कि हम इसके लिए प्रार्थना भी न कर पायें और यह चल बसे। हमने प्रार्थना करने की ठानी, चाहे वह कुछ कहे। काँपते हुए हाथों से मैंने पुस्तक खोली और ऊँची आवाज़ से सेण्ट जॉन में से पढ़ना शुरू किया 'सच्ची बेल मैं हूँ और मेरा पिता ही मेरा रक्षक है।'

उसकी छाती धड़क रही थी और आँखें बन्द थीं। सूर्य की किरणों ने उसे पूरी तरह से ढँक लिया था मानो इस कठिन तपस्या के बाद सूर्य इस अभागे को सुनहरी किरण-द्वारा मीठे फल दे रहे थे। किरणों ने उसे पूरी तरह अपने आँचल में छिपा लिया। मा की तरह मुख चूम-चूमकर अपने निद्रालु बालक को प्रेम-भरी गोद में ले लिया। कोवालस्की अभी जीवित था।

मैं मसीहा के जोरदार और श्रद्धा से भरे शब्द पढ़ता गया जिनसे एक नई आशा स्फुरित होती है; 'यदि संसार तुमसे घृणा करता है तो तुम्हें यह मालूम होना चाहिये कि तुमसे पहिले मेरे साथ भी तो उसने घृणा की है।

मालिक के इन उत्साह-वर्धक शब्दों ने और किरणों के आलिङ्गन ने उसकी मृत्यु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की पीड़ा को बहुत हल्का कर दिया। उसने आँखें खोलीं, उसकी आँखों से दो बूँद आँसू—जीवन के अन्तिम आँसू—ढलक पड़े।

सूर्य की किरणों ने उन आँसुओं को भी चूम लिया, उसके मटियाले चेहरे को एक बार चमका दिया। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे अपने जनक के पास उन अश्रुकणों के रूप में केन्द्रित उस मानव की दिव्य अग्नि को अपने विशुद्ध रूप में ले जाने की तैयारी में थीं।

मैं पढ़ता गया :

'मैं तुम्हें कहता हूँ, तुम रोओगे और विलाप करोगे ; पर दुनिया प्रफुल्लित होगी, हर्ष मनायेगी और तुम दुखी होओगे ; लेकिन तुम्हारा दुःख तो आनन्द में परिवर्तित होगा...।'

उसने दोनो हाथ उठाने का यत्न किया पर निर्बलता के कारण वे उठ न सके। फिर भी धीमी स्पष्ट आवाज़ में उसने कहा—हे प्रभो, अपने कहर-द्वारा मुझे क्षमा करना !

मैं आगे पढ़ न सका। हमने घुटने टेक दिये। कुतिया मालिक की ओर टकटकी लगाये देख रही थी। उसने आँखें हमारी ओर फेरीं, वह धीरे से कह रहा था—कुतिया, अब सर्वशक्तिमान प्रभु पर मत भूँकना।

वफ़ादार जानवर मालिक के हाथ के पास लोट गया। उसे क्या ख़बर कि प्राण-पखेरू यहाँ से कूच कर चुके हैं।

कोवालस्की की आँखें बन्द हो गईं। ज़रा-सी आवाज़ गले से निकली, छाती पिचक गई, शरीर कुछ सिकुड़ गया और पीड़ाओं का सदा के लिए अन्त हो गया।

× × ×

जब हम होश में आये तो हमने देखा कि मालिक की अन्तिम इच्छा समझे बिना कुतिया अपने जीवन का एक-मात्र कर्तव्य पूरा कर रही है। बाहर जाकर बार-बार भूँकती और फिर मालिक का प्यार पाने उसके लिथड़ते हुए हाथ के पास आ खड़ी होती।

अब उसका मालिक हिल भी न सकता था। हाथ डण्डा और सख़्त होकर नीचे लटक रहा था। भूँकते-भूँकते कुतिया की आवाज़ बिगड़ गई और थकान आ गई।

हम चल दिये। बहुत दूर पहुँचने पर भी नादान कुतिया की आवाज़ सुनाई देती रही।

अरविन्दाश्रम, पाण्डिचेरी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'एक भारतीय आत्मा'

[प्रभागचन्द्र शर्मा]

[श्री प्रभागचन्द्र शर्मा मालवा के तरुण साहित्यकार हैं। आप कवि और कहानी-लेखक भी हैं। इधर पत्रकारित्व में भी आपने अच्छी प्रगति की है। इन दिनों खण्डवा से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक 'कर्मवीर' में श्री माखनलालजी चतुर्वेदी के सान्निध्य में काम करते हैं। - सं]

५ फीट ३ इंच के रक्त-मांस-हीन मुट्ठी-भर हड्डियोंवाली गोरी देह पर बड़ा-सा सिर, ढालू, चमकते हुए तख़्ते की तरह सपाट कपाल, बीच में ऊपर नीचे की चमड़ी खींचता हुआ; उस पर एक रक्ताभ शल ! अन्दर डूबी हुई तैरती-सी आँखें; उनमें से निकलता हुआ क्रोध और चिन्तन-मिश्रित तेज-स्रोत दोनो गालों पर सुर्खी फैलाता कुछ ऐसे तारुण्य और अथक श्रम-शीलता का परिचय देता है कि काल का इक्कावनवाँ चरण देह की थकान, सिर-दाढ़ी और मूँछ के अन-आमन्त्रित अधकचरे श्वेत बाल की गवाही रखकर भी कुछ झेंपता-सा लगता है !

उसके तीन रूप हैं; वक्ता, कवि और पत्रकार। वक्ता में उसका राजनीतिज्ञ, कवि में उसका चिन्तक और पत्रकार में उसका देश-भक्त रहता है। मानव की व्यथा के प्रति समवेदना-शील हृदय का धरातल उसके तीनो रूप का निवासगृह है। इसीलिए वह अमानव नहीं है। चतुर वह है, चौकन्ना भी है, कठोर है, अप्रिय भी ख़ूब है; परन्तु उसके तीन रूप हैं ! उसका कवि बहुत प्रिय, बड़ा उदार। उसका पत्रकार विश्वसनीय, दृढ़, और व्यापक; मगर वह उसके कवि के बहुत समीप; किन्तु उसका राजनीतिज्ञ बिलकुल अलग चीज़ ! निस्सन्देह उसका पत्रकार उसके राजनीतिज्ञ का पूरक है, तो आप पूछेंगे उसका प्रेरक कौन ? कवि ?—नहीं। स्थूल में देश-भक्ति, अपनी मातृ-भूमि को बन्धन-मुक्त कराने की उसकी बेबसी, पर सूक्ष्म में समाज पर शासक होकर जीने का उसका Super ego.

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः

उसका जीवनोद्देश्य है, सच है; लेकिन जगत की निआमतों का वह भिखारी नहीं। वह उनका उच्चतम भोक्ता है। वह बाह्य में श्रीमंत है, मगर आदतें उसकी सात्विक हैं। नौकर के बग़ैर उसका काम नहीं चलता, पर उसके अभाव में, अपने मन की मस्ती में या उसके काम की अपूर्णता से उत्पन्न असन्तोष या खीझ में वह सर्वसाधारण मज़दूर है ! मेरी डायरी का यह पृष्ठ इसकी कैफियत :

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२३ मई, १९३७

'ठीक २ बजा है। अभी तक पण्डितजी ने खाना नहीं खाया। आज ट्राटस्की-लिखित 'रशियन रिवोल्यूशन' की पुस्तक को प्रेस में चूहों ने कुतर डाला। उसे आज उन्होंने देखा है। प्रेस में सब पर गुस्सा हुए, ख़ूब। और गुस्से के अतिरेक में ही घर लौटे! खाना नहीं लिया, किसी से बोले भी नहीं। दरवाज़े बन्द करके सचमुच रोये !!

'धीरे-धीरे दो घण्टे बीते। शायद रंज को किसी क़दर कम किया गया। हम लोग पीछे कमरे में ताश खेल रहे थे कि अचानक बाहर की तरफ़ नज़र पड़ी तो देखा कि भभकती दोपहरी में सिर पर कपड़ा डाले पण्डितजी गिलास हाथ में ले चले जा रहे हैं। मैं जल्दी से दौड़ा कि तब तक वे चौराहे के हलवाई की दूकान पर पहुँच चुके थे। वे वहाँ दही खरीद रहे थे !'

क्रोधी वह है ; नागरिकता के प्रति नहीं ; अनागरिकता के प्रति। भद्रता के प्रति नहीं ; अभद्रता के प्रति। वह पीढ़ी में जीवन का समर्थक है। इसी से रूढ़ि-परम्पराओं का दुश्मन। इसी से प्रतिगामी समाज की भर्त्सना का पात्र! वह मौलिक है, इसीलिए खतरे और उत्थान-पतन के अनहोनेपन की अवहेलना नहीं करता।

यों राजनीति में उसके कवि की प्रेरणा है ; पर कवि उसके राजतीतिज्ञ और पत्रकार दोनो का शासक है। जैसे उसके राजनीतिज्ञ की चाल पर गति न रखनेवाला बड़े से बड़ा अस्तित्व भी चल नहीं पाता। अतः महत्त्वाकांक्षा में जीवन पानेवाले उसे आड़े उतारने में लगे रहते हैं। वह धनवान् नहीं है, इसीलिए स्वावलम्बी है, इसीलिए कठोर श्रमता को feed न कर सकने के कारण आधी शताब्दी में ही बूढ़ा हो गया है। और हाँ, इसीलिए तिसपर भी उसके लगातार उत्कर्ष ने जहाँ-तहाँ लोगों में उसके अपने प्रति कटुता भी पैदा कर रखी है।

वह अपने हृदय के प्रति बहुत बेबस, बहुत लाचार है, तभी वह निर्णय-दान में, मत-दान में कभी-कभी उतावला भी है, वह मानव-मस्तिष्क का पारखी है ; पर मानव-हृदय की काट-छाँट वह यकायक नहीं समझता, इसीलिए वह अपनों से प्रायः अविश्वास भुगतता है। वह पश्चात्ताप नहीं करता, वह पूर्वात्ताप भी नहीं करता ; वह केवल कर्म करता है। वह प्रतिभा-सम्पन्न है, इसीलिए कर्मण्यता में परिणाम-दर्शन को पहिला स्थान दे ही नहीं पाता। इसी से कभी-कभी हर दिन क्षण के जीवन में असफल भी होता है।

वह अध्ययन-शील है। उसका मस्तिष्क डायनमिक है। वह थोड़ा पढ़कर विस्तृत धारण करता है। इसीलिए कुछ मौकों पर सतत साधना के बोझ से उसकी प्रतिभा विद्रोह करती देखी जाती है। वह लेखक नहीं पढ़ता, वह पुस्तक भी उतनी नहीं पढ़ता ; वह 'प्रकृति की स्वरमाला के अर्थ' समझने में लगातार व्यस्त देखा जाता है। मातृभूमि पर बलि हो जाने की उसकी इकली अन्तरंग साध के सिवा भी बाह्य में उसके कवि की इन पंक्तियों में उसका अन्तर्द्वन्द्व देखा जाता है :

थके हुए दोनो पंखों को,
झाड़ चलीं वे दोनो।
टकराने का साधे हुए,
उभाड़ चलीं वे दोनो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

एक ले चली चहल-पहल में,
मुझे बनाने राजा।
और दूसरी ने ही-तल का,
सुन्दर कोना साजा।

बल पर ? बलि पर ? कहाँ रहूँ ? जीवन के एकान्त में वह आत्म-परीक्षण करता है। वह अपनी अच्छाई-बुराई का विश्लेषण करता है। वह अपने अभावों पर स्वयं सतर्क है। शायद इसीलिए वह बेजोड़ आत्मद्रष्टा है ! वह वस्तु के पार्थिव पर नहीं अटकता; वह अधिकांश में वस्तु की अरूपता पर रीझा करता है। और स्पष्ट ?—वह बदसूरती की सराहना करता है। हाँ, तब भी, नहीं तब ही वह कवि है। उसका खुद का नब्बे पौण्ड वजन है ; मगर उसकी क़लम इतनी भारी है कि कई बार सत्ताधीश काँपे हैं, गद्दियाँ हिली हैं।

अब वह पिछले कई महीनों से बीमार है, अतः ख़ूब अशक्त है। फिर भी अकर्मण्यता का चैन उसे नहीं सुहाता ! वह उठता है, चलता है, बौद्धिक श्रम करता है। इसीलिए रह-रहकर बिस्तरा पकड़ पाने को बाध्य कर दिया जाता है।

लेकिन प्रगतिशीलता उसके मनोदेश की श्वास है। वह रुक नहीं सकती, क्योंकि शरीर की नश्वरता की पुकार वह सुन सकता है ; प्रतिभा का मरण उसकी समझ के बाहर की बात है। वह जगत की पहेली सुलझाने या समझने के लिए पहेली-सा, जनसाधारण के लिए दुरूह, दुर्गम-जीवन बनाने की ओर बहुत सावधान है। इसीलिए अचानक उसे समझ पाना कठिन है।

वह आधुनिक हिन्दी-साहित्य-श्री की अपनी निधि है। वह बूढ़ा होकर भी तरुणों की प्रेरणा है, वह शक्ति-क्षीण होकर भी वाणी-बल से लबरेज़ है। अशेष को 'शेष की गोदी' का बिछौना दे आराध्य को 'खिलौने-सा खिला लेनेवाले' माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीनू

[धर्मप्रकाश आनन्द]

[श्री धर्मप्रकाश आनन्द पञ्जाबी हैं। अभी युवक ही हैं और प्रतिभा-सम्पन्न हैं। आजकल आप लाहौर में निवास करते हैं।—सं०]

पात्र-परिचय

डाक्टर भल्ला—सरकार की ओर से रोगों की पड़ताल करनेवाले बड़े डाक्टर।
डाक्टर खन्ना—छोटे डाक्टर।
मि० बलवन्त—डाक्टर खन्ना के सहकारी।
मंगू—चाय के बाग में काम करनेवाला एक विपन्न पहाड़ी।
रुकमन—मंगू की पत्नी।
धरना—उसका उन्नीस-बीस वर्ष का लड़का।
बेली—धरना की पत्नी।
भोली—मंगू की मा, धरना की दादी।
दीनू—धरना का छोटा भाई, जो अभी मुश्किल से चार-पाँच महीने का है।
मेहरू, सोना, चन्दी, बच्चे, चौकीदार...

स्थान

[कांगड़ा ज़िला में चाय के बागों के समीप श्रमिकों की बस्ती में मंगू के मकान का आँगन।]

समय

[सूर्यास्त से कुछ देर पहले]

[पर्दा उठने पर डाक्टर भल्ला और डाक्टर खन्ना अपने अमले के साथ मकान के आँगन में खड़े दिखाई देते हैं। मकान कच्चा पर दोमंज़ला है। बाहर से चिकनी मिट्टी और गोबर से लिपा हुआ और देखने में साफ़।

दो कमरे नीचे हैं। एक ऊपर। नीचे की मंज़िल में दाख़िल होने का केवल एक ही दरवाज़ा है, जिससे अन्दर काफ़ी अँधेरा दिखाई दे रहा है। ऊपर के कमरे में एक छोटी-सी खिड़की है, जिसमें एक रस्सी के सहारे कुछ लहसुन सूखने के लिए लटका दिये गये हैं। आँगन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के एक कोने में नीम के पेड़ और मकान की दीवार से बँधी हुई एक रस्सी पर दो-चार बहुत ही मैले-कुचैले कपड़े टँगे हैं।

दरवाज़े की दहलीज़ पर वृद्धा दादी अपने साठ वर्षों के बोझ से झुकी, लाठी टेके बैठी है। आँगन में कुछ छोटे बच्चे मिट्टी के गोले हाथ में लिये खेलते-खेलते आकर आगंतुकों को उत्सुकता की नज़रों से ताकने लगे हैं।

खिड़की में से दो नन्हीं लड़कियाँ उत्सुक नज़रों से इन डाक्टरों को देख रही हैं।

अन्दर से कभी-कभी खाँसने की आवाज़ आती है।]

डा० खन्ना—(मि० बलवन्त के हाथ में पकड़ा हुआ रजिस्टर देखते हुए)—मंगू किधर है ?

एक लड़का—अभी बाहर से नहीं आये।

डा० ख०—और धरना ?

वही लड़का—अन्दर रोटी खा रहा है।

डा० ख०—उसे बुलाओ।

वही लड़का—(आवाज़ देता हुआ)—ओ धरना, धरना ओ...ो...ो

[एक हाथ में रोटी का टुकड़ा पकड़े, गले का ग्रास निगलता-निगलता धरना बाहर आता है। उन्नीस-बीस वर्ष का युवक, पर जैसे अभी से बूढ़ा हो चला है, चेहरे पर फीकापन और आँखों में निराशा।]

डा० भल्ला—(गम्भीर आवाज़ में) देखो धरना, हम सरकार की ओर से इस इलाके में रोगों की पड़ताल करने आये हैं ताकि उनको दूर किया जा सके। हम तुमसे कुछ प्रश्न पूछते हैं, तुम उनका ठीक-ठीक उत्तर दो। शाम होने लगी है और हमें अभी और दो-चार जगह जाना है।

धरना—फ़रमाइये।

डा० भ०—अच्छा यह बताओ, इस घर में पिछले दस वर्ष में कितने लोग मरे हैं ?

धरना—(दहलीज़ पर बैठी बूढ़ी दादी की ओर देखकर) कोई नहीं (ज़रा बेचैनी और घबराहट से ज़ोर देकर) कोई भी तो नहीं।

डा० भ०—कोई लड़का, बच्चा, मर्द, औरत, कोई तो मरा ही होगा।

दादी—बतादे न धरना, बताते क्यों नहीं ? उन्हें कौन-सा किसी का कर्ज़ देना था जो तुझे शर्म आये। गरीबों को डर किस बात का !

धरना—(फिर भी संकोच से) मेरे दो भाई मरे हैं। पैदा होते ही मर गये थे।

डा० भ०—और ?

धरना—मेरी पहली लड़की पैदा होने के दो महीने बाद ही चल बसी थी।

डा० ख०—अरे तुम विवाहित हो, और फिर बाल-बच्चोंवाले !

[धरना केवल लजा कर रह जाता है।]

डा० भ०—बीमार हुई थी ?

धरना—नहीं, मा का दूध सूख गया था।

[चेहरे पर एक निमिष के लिए एक काली-सी छाया आकर चली जाती है।]

डा० भ०—(डा० खन्ना से) नोट कर लीजिये। (धरना से) कोई और ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धरना—छः महीने हुए मेरे चचा का देहान्त हो गया था।

डा० भ०—बीमार था ?

धरना—जी हाँ।

डा० भ०—क्या बीमारी थी ?

धरना—(ज़रा चौकन्ना होकर)—बीमारी तो कोई खास नहीं थी...बस ऐसे ही बीमार था।

डा० भ०—कितनी देर बीमार रहा ?

धरना—(सोचकर और गिनकर) यही कोई डेढ़-दो वर्ष।

डा० भ०—खाँसी भी आती थी ?

धरना—जी, काफ़ी आती थी।

डा० भ०—और खून भी ? दिनों-दिन वह नढाल होता जाता था ?

धरना—जी, जी।

डा० भ०—(खन्ना से) टी० बी० केस *—लिख लीजिये।

डा० ख०—(नोट कर के और रजिस्टर देखकर) मेहरू कौन है ?

एक बच्चा—मैं हूँ।

डा० भ०—इधर आ बेटा ज़रा।

[मेहरू डरता-डरता पास आ जाता है। डाक्टर भल्ला उसके गले को टोहकर देखते हैं]

(फिर डा० खन्ना से)—पीलिका, स्वास्थ्य कमज़ोर। ख़ून कम।

डा० ख०—(लिखकर, पुकारता है।) सोना !

एक लड़की—जी हाँ !

[डा० भल्ला उसे पास जाकर देखते हैं।]

(डा० खन्ना से) ऐस्टोमेलेशिया, * और अनेमिया ‡।

डा० ख०—(लिखता हुआ) चन्दी !

[ऊपर खिड़की से पाँच-छः वर्ष की चंचल लड़की मैली-सी गुड़िया को हाथ में लिये झाँकती है। मुख पर लुभावना हास्य।]

चौकीदार०—बिटिया, ज़रा नीचे आना।

डा० भ०—यह किसकी बेटी है ?

चौ० --धरना के स्व० चचा की।

धर०—मेरी बहिन है सरकार !

[चन्दी नीचे आती है और दरवाज़े के पास आकर रुक जाती है।]

धर० - क्या करती थी ऊपर चन्दी ?

चन्दी—गुड़िया खिला रही थी और क्या। अब इसका विवाह हो जानेवाला है ना, कपड़े-लत्ते ठीक कर रही थी।

[गुड़िया को छाती से लगाये झूमती है।]

---

* तपेदिक

* कैलशियम की कमी। ‡ ख़ून की कमी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डा० भ०—इधर आओ न बिटिया, ज़रा तुम्हें देखें।

चन्दी—(इनकार में सिर हिलाती है।)

धर०—चन्दी, इधर आओ मुन्नी !

चन्दी—न, न, पहिले मेरी गुड़िया के लिए कपड़े दो, मैं तो तभी आऊँगी। चचाजी जब भी लाहौर से आते थे तो मेरे लिए मिठाई और गुड़िया के लिए कपड़े लाते थे। कपड़े न होंगे तो इसका विवाह कैसे होगा ? शन्नो तो अपने गुड्डे के लिए दहेज माँगती है। दोगे न।

मि० बलवन्त—(हँसते हैं) अजब चंचल लड़की है।

डा० ख०—हाँ, हाँ, देंगे। अब ज़रा इधर आओ।

[चन्दी मुस्कराती हुई आगे आती है।]

डा० ख०—लड़की देखने में बड़ी समझदार लगती है, इन गँवारों में यह कैसे आ गई।

डा० भ०—(निरीक्षण करते हुए डा० खन्ना से अंग्रेज़ी में) इसे तो गंडमाला प्रतीत होती है। हो सकता है कि दिक हो जाये।

चन्दी—(डा० खन्ना की टाँगों को चिपटती हुई) लाइये, किधर है मेरी गुड़िया के लिए कपड़े !

डा० ख०—(दहशत से पीछे हटता हुआ) परे रहो, परे रहो। (चन्दी को अलग करने का यत्न करता है।)

[लड़की सहम-सी जाती है।]

डा० ख०—(गुस्से से जेब में से एक चवन्नी निकालकर फेंकता हुआ)—भागो यहाँ से। वह चवन्नी उठा लो, जो चाहे खरीद लेना।

[चन्दी हँस पड़ती है, फिर डाक्टर खन्ना को छोड़ देती है, और कृतज्ञता भरी भोली आँखों से पहले चवन्नी, फिर डा० खन्ना की ओर देखती है। फिर दौड़कर चवन्नी उठा लेती है।]

चन्दी०—(गुड़िया को चूमती और पुचकारती हुई, ख़ुशी से झूमकर) न रो मेरी बिटिया, अब तो तेरा ब्याह बड़ी धूम-धाम से करूँगी। सारे गाँव को निमन्त्रण भेजूँगी।

डा० भ०—(खन्ना से) आपने इस लड़की की मुखरता को देखा !

[डा० खन्ना अभी घबराये हुए हैं।]

मि० बलवन्त—(अंग्रेज़ी में) मैं स्वयं यही सोच रहा था कि इन गँवारों में यह प्रखर बुद्धिवाली बालिका कहाँ से आ टपकी !

डा० भ०—(अविकृत भाव से अंग्रेज़ी में) इसके अन्दर तपेदिक के कृमि हैं। इसकी यह मुखरता इन्हीं के कारण है। मस्तिष्क को उनसे स्फूर्ति मिलती है। पर शीघ्र ही इस बच्ची की मुखरता और चंचलता का अन्त बिस्तर के ठण्डे कपड़ों में होगा।

[मि० बलवन्त मुँह बाये खड़े रह जाते हैं। डाक्टर खन्ना घृणा से लड़की को देखते हैं।

चन्दी—(गुड़िया को पुचकारती और डाक्टरों की ओर देखकर मुस्कराती हुई) तुम्हें भी मैं अपनी गुड़िया रानी के विवाह पर बुलाऊँगी, ज़रूर आना ; नहीं तो...(सिर हिलाती है, हँसती है और अन्दर भाग जाती है।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मि० बलवन्त—(कुछ आकुलता से अंग्रेज़ी में) डाक्टर साहब, तब तो इसे झटपट अस्पताल पहुँचाने का प्रबन्ध करना चाहिये ताकि इस बेचारी की ज़िन्दगी बच जाय, समय पर इलाज़...

डा० भ०—(रूखी मुस्कराहट से अंग्रेज़ी में)—कहाँ हैं तपेदिक के अस्पताल इस इलाके में ? कहाँ है इन लोगों के पास इतना पैसा ? इसको धक्के खाने कहाँ भेजोगे ?

मि० बल०—लेकिन डाक्टर साहब...

डा० भ०—(उसी मुस्कराहट से) तुम तो डाक्टर बनने चले थे, अपना दिल कड़ा करो। इसका अन्त यहीं होगा।

मि० बल०—पर...

डा० ख०—(सँभलकर और रजिस्टर देखकर) भोली !

दादी—मैं हूँ।

डा० भ०—बड़ी मा, तुम्हें कभी कोई बीमारी तो नहीं हुई ?

दादी—(लम्बी साँस लेकर) मुझे क्या रोग होगा बच्चा ! केवल उम्र की बीमारी है, वह भी न जाने कब समाप्त हो जाय। हाँ, कुछ-कुछ अङ्ग दुखते हैं, कन्धों में भी दर्द रहता है, खाना भी हज़म नहीं होता, जाँघें जुड़ी-जुड़ी-सी रहती हैं। घिसट-घिसटकर यहाँ तक आ जाती हूँ। मेरा क्या है बेटा, मेरी तो ऐसे ही गुज़र जायगी। आप इन बच्चों को ही देखिये।

डा० भ०—(डा० खन्ना से) इसे भी ऐस्टोमेलेशिया की शिकायत मालूम पड़ती है।

डा० ख०—(धरना से) तुम लोगों में ऐस्टोमेलेशिया का रोग इतना क्यों है ?

धरना—वह क्या होता है सरकार ?

डा० ख०—तुम लोगों में कैलशियम की कमी है। क्या तुम्हें मालूम नहीं होता कि तुम्हारी हड्डियाँ जर्जर हो गई हैं, मानो झटका देने से टूट पड़ेंगी। (दादी की ओर संकेत करता है) तुम नहीं जानते कि तुम्हारे अंग टेढ़े हो गये हैं। (मेहरू की टेढ़ी टाँगों की ओर इशारा करता है) तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे चेहरे पीले-ज़र्द हो गये हैं। (सोना की ओर इशारा करता है) और क्या तुम महसूस नहीं करते (धरना की ओर संकेत करता है) कि तुम्हारी शक्ति दिन-प्रतिदिन क्षीण हो रही है।

डा० भ०—(डा० खन्ना से) मैं एक मिनट में आया।

[रूमाल निकालकर खँखारते-खँखारते बाहर जाते हैं।]

धरना—सरकार हम क्या कर सकते हैं, परमात्मा की मर्ज़ी ही ऐसी है।

मि० बलवन्त—परमात्मा की मर्ज़ी ! ख़ूब। कैलशियम की कमी तुममें है और मर्ज़ी परमात्मा की। तुम लोग कंजूस हो, पैसे को दबाते हो, पर खुराक अच्छी नहीं खाते। तुम्हें घी, दूध, दही की तो कसम है। तुम खाते हो चावल। और फिर परमात्मा—हुँ।

[बेज़ारी से सिर हिलाता है।]

धरना—(जैसे अपने आप) घी, दूध, दही। (सूखी मुस्कराहट जिससे उसका नीरस मुख और भी नीरस हो जाता है) पाँच आने रोज़ाना में दस आदमियों का पेट पालना होता है। ग्यारह घण्टे झखमारकर मैं और मेरी पत्नी दो-दो आने रोज़ाना लाते हैं, एक आना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरी छोटी बहिन लाती है। (हाथ में पकड़ा हुआ सूखा रोटी का टुकड़ा दिखाकर) यही मिल जाये तो थोड़ा है। मेरी मा सात महीने से बीमार पड़ी है (अन्दर से खाँसी की आवाज़)। मेरा बाप आज दो महीने हुए मारकर काम से निकाल दिया गया था।

मि० बलवन्त—(अचम्भे से)—दो आने रोज़ाना !

धरना—(विषाद से मुस्कराता हुआ) और जिस दिन पाँच मिनट की देरी हो जाये, सारा दिन काम ; पर गैरहाज़िरी।

[मि० बलवन्त कुछ कहने को होते हैं, पर इतने में डा० भल्ला मुँह को साफ़ करते हुए वापिस आते हैं।]

डा० ख०—(व्यस्त होकर) अब इस घर में केवल चार व्यक्ति देखने रह गये हैं—मंगू, रुकमन, दीनू और बेली। यह बेली कौन है ?

धरना—मेरी पत्नी है सरकार ! कल ही मैके गई है। एक दो रोज़ में उसके बच्चा होनेवाला है।

[चेहरा एक क्षण के लिए लाल हो जाता है। अन्दर से खाँसी की आवाज़ आती है।]

डा० ख०—मंगू कहाँ है ?

धरना—अभी नहीं आया। आता ही होगा।

डा० ख०—रुकमन कौन है ; उसे बुलाओ।

धरना—रुकमन तो मेरी मा है। वह तो सात महीने से अन्दर बीमार पड़ी है। (जैसे अपने आप) वह बाहर कैसे आयेगी !

दादी—हाँ सरकार, बेचारी रुकमन बाहर कैसे आयेगी !

[अन्दर से खाँसी की आवाज़ आती है। दीवार का सहारा लेती, लड़खड़ाती रुकमन दरवाज़े तक आती है। आयु कोई चालीस वर्ष। मुख मुर्झाया हुआ और डरावना। आँखों में ज़र्दी, रूखे उड़ते बाल, मैले-कुचैले कपड़े। दरवाज़े तक किसी भाँति पहुँचती है, फिर खड़ी हाँपती है। कन्धे से बच्चे दीनू को लगाये हुए है। सभी उसकी ओर देखते हैं।]

रुकमन—(हाँपती हुई, शरीर और हाथ काँप रहे हैं) किसने मुझे पुकारा था ? (डा० भल्ला पर आँखें गाड़कर) डाक्टर है। (हँसती है) अब क्यों आये डाक्टर ! क्यों, अब दया आ गई ! पैसे तो मेरे पास अब भी नहीं हैं। बहू और बेटे की चार आना रोज़ाना कमाई में से भी अपनी फ़ीस माँगते थे। नहीं दी मैंने भी तो। अब भी न दूँगी।... (मस्तक पर हाथ फेरती है)...नहीं ठहरो। (बच्चे को कंधे से हटाकर चूमती है। बच्चा बेहोश है। लड़खड़ाती है, फिर दीवार का सहारा लेती है। और अचानक रो पड़ती है।) ...दूँगी, डाक्टर मुझे माफ़ कर दो, मैं तुम्हारी फ़ीस दूँगी। ख़ुद बिक जाऊँगी, भीख माँग लूँगी, पर तुम्हारी फ़ीस दूँगी। तब मैं थी। अब मेरा बच्चा है। इसे आराम हो जायगा न डाक्टर ! मेरे बच्चे को बचा दो, बचा दो, डाक्टर !

[रो पड़ती है, और दीवार का सहारा छोड़, आगे बढ़कर बच्चे को डाक्टर को दिखाना चाहती है ; पर लड़खड़ाकर गिरने लगती है। डाक्टर भल्ला और धरना सँभालते हैं...]

रुकमन—(सँभलकर) नहीं, परे रहो। मैं अच्छी-भली हूँ। (डाक्टर से) फिर न कहीं पैसे माँग लेना। (आस-पास से बेसुध अपने आप से) अब मेरे सिर में इतने चक्कर क्यों आने लगे हैं ? (माथे पर हाथ रखकर कुछ सोचकर) शायद मेरी बीमारी गहरी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शायद मेरे दिन पूरे हो गये हैं। (खाँसती है...हाँपती हुई) ओह...ऐसे ही लगता है (ठहरकर) पर अभी कहाँ। अभी तो मुझे छोटी लड़की की शादी करनी है। अभी तो दीनू की दवाई के पैसे...(सिर में चक्कर आने से धम से गिरती है। सभी उसकी ओर बढ़ते हैं। डा० भल्ला झुककर रुकमन को देखते हैं। एक ओर से मंगू नशे में चूर लड़खड़ाता, बड़बड़ाता दाख़िल होता है।)

मंगू—(लड़खड़ाती ज़बान में) अब के नज़र आ जाये तो मार ही डालूँ (हँसता है) लम्बे तेज़ चाकू से...बकरे की तरह (जोर से हँसकर) पैसे माँगता था। हमारे बाप ने खज़ाना जो वर्से में दिया है। (रुककर) अपने बच्चे नहीं होंगे न। दो रुपए दो तो बच्चे को अस्पताल दाखिल कर लूँगा। (कहकहा लगाते हुए) हा, हा, दो रुपए। मैंने खूब जवाब दिया। दो रुपए, मैंने कहा। मेरा रक्त चूस लो, शायद वहाँ से तुम्हें दो रुपए मिल जायें। (अपनी पीठ ठोंककर) खूब कहा मंगू बच्चा...(सहसा रुककर आगंतुकों की ओर देखता है, फिर रुकमन की ओर। फिर उसकी ओर झपटता है) क्यों इस तरह खुले सिर हर पराये पुरुष के सामने आ जाती है, क्यों आ जाती है तू ? (रुकमन को घसीटता हुआ अन्दर ले जाता है। फिर लड़खड़ाता हुआ आँगंतुकों की ओर आता है। नशे में चूर थलथलाती आवाज़ में) तुम कौन हो, जो बिना पूछे दूसरे के घर में घुस आये हो ? कौन हो तुम, कौन हो तुम ? मैं मंगतराम राजपूत...(सीना ताने बढ़ता है।)

डा० ख०—क्या बक-बक कर रहा है ?

मंगू—बक-बक ! क्यों बिना पूछे मेरे घर आये, क्यों मेरी स्त्री को बुलाया ? मैं मामला चला दूँगा, मैं राजपूत.....

डा० ख०—क्यों, जेल की रोटियाँ तोड़ने को जी चाहता है ? चौकीदार !

मंगू—जेल ! जेल !! (क़हक़हा मारकर हँसता है और लड़खड़ाते-लड़खड़ाते बचता है) भिजवा दो जेल में। वहाँ ऐश है। दो वक्त रोटी...कभी छुपकर शायद दारू भी... और कोई ग़म नहीं।

डा० भल्ला—खन्ना, इसने बहुत पी रखी है।

धरना—हज़ूर, इसे माफ़ कर दें, यह तो अपने में नहीं है।

मंगू—(लड़के की ओर झपटता है)—तू कहता है मैं होश में नहीं हूँ।

[चौकीदार धकेलकर मंगू को परे ले जाता है। लड़खड़ाकर मंगू गिर पड़ता है और वहीं पड़ा बड़बड़ाता है।]

मि० बलवन्त—जो पैसे इसके शराब पर जाते हैं उनसे अपनी औरत की दवा-दारू करे तो क्या अच्छा हो।

दूसरा चौकीदार—(ज़रा-सा हँसकर) पैसे किसके पास हैं हज़ूर, इधर उधर से एक दो आने कमाकर उसी का ठर्रा चढ़ा जाता है।

मि० बलवन्त—जब कि उसीसे एक आदमी का पेट पल सकता है।

चौकीदार—(दीर्घ निश्वास छोड़कर)—भाग्य के खेल हैं हज़ूर। कल की बात है यही मंगू गाँव-भर में अपने अच्छे चाल-चलन के लिए प्रसिद्ध था। सब इसकी कस ' खाते थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोनो पति-पत्नी चाय के बागों से दो-दो आना लाते थे, धरना और उसकी बहू भी कमाती थी और मजे से बसर हो रही थी। फिर इसकी घरवाली बीमार हो गई। बच्चा पैदा होनेवाला था, तकलीफ़ उसे ज़्यादा थी। मंगू उसे लेकर कई कोस की मंजिल मारकर पालमपुर गया; वहाँ डाक्टर को दिखाया, उसने फ़ीस माँगी; पर फीस इनके पास कहाँ? और फ़ीस देते भी, तो दवाई के पैसे कहाँ थे। रोते-धोते वापस आ गये। मार्ग में ही बच्चा पैदा हुआ। तभी से, न जाने किस तरह इसने पीकर बेसुध होना सीख लिया है। चायवालों ने इसीलिए इसे मारकर भगा दिया।

दूसरा चौकीदार—सरकार, बड़ा भला आदमी था, अब इसके बुरे दिन आये हुए हैं। घरवाली ही नहीं, बच्चा भी बीमार है। हमने फिर कह सुनकर अस्पताल भेजा था; पर डाक्टर चाहता था कि उसकी मुट्ठी गरम हो तब उसे और बच्चे को अस्पताल में दाखिल करे। बस, उसी दिन से यह और भी चौपट हो गया।

[सब स्तब्ध खड़े रहते हैं, फिर डाक्टर खन्ना जैसे अस्त होते सूरज की ओर देखकर चौंकते हैं।]

डा० ख०—भल्ला साहब, देर हो रही है। हमें अभी और भी दो जगह जाना है।

[डाक्टर भल्ला कोट को ठीक करते हैं, सहसा रुकमन, जो अब तक बेसुध-सी पड़ी थी, घिसटकर डा० भल्ला के पाँव पकड़ लेती है।]

रुकमन—(कम्पित स्वर में)—मैं भी मा हूँ। डाक्टर, डाक्टर, परमात्मा के लिए इसे नीरोग कर दो। तुम्हारे भी बच्चे होंगे। भगवान के लिए इसे देखो। तुम पैसे माँगते थे, मैं दूँगी, मैं कहीं से भी लाकर दूँगी, इसे देख जाओ...(कुछ रुककर) तुम बोलते क्यों नहीं? अब माँगने से घबराते हो...(हाँपती है, फिर रोती हुई ऊपर उसके चेहरे की ओर व्यथित आँखों से देखती है)...नहीं, नहीं, आप वह तो नहीं लगते। आप तो कोई और डाक्टर हैं। आप तो दयावान् लगते हैं। आपके चेहरे से तो दया टपकती है। मेरे दीनू को देख लीजिये सरकार, आज कितनी देर से बेहोश पड़ा है।

[डाक्टर भल्ला पाँव पीछे खींचते हैं।]

रुकमन—(उठकर अत्यन्त करुण स्वर में)—डाक्टरजी!

[बच्चे को उनके पाँवों पर रख देती है। उसे देखकर सहसा चौंकती है और फिर चुप, पथराई हुई आँखों से उसे देखती है। डाक्टर भल्ला झुकते हैं; पर चौंककर पीछे हटते हैं। मि० बलवन्त और डा० खन्ना आगे बढ़ते हैं।]

डा० ख०—(आश्चर्य से) हैं!

मि० बलवन्त—(शोक के स्वर में) सब्र करो माई, बच्चा मर चुका। तुम शव को उठाये फिर रही हो।

रुकमन—मेरे लाल...(पछाड़ खाकर गिर पड़ती है।)

[सूर्य की अन्तिम किरण निमिष-मात्र के लिए मृतक के शव पर चमकती है, फिर अन्धकार में लोप हो जाती है।]

लाहौर। [पर्दा]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डॉ० केतकर: व्यक्तिदर्शन एवं संस्मरण

[श्रीमती शीलवती केतकर]

[अनुवादक, यशवन्त तेंडुलकर]

[श्रीमती शीलवती केतकर डॉ० केतकर की धर्मपत्नी हैं। आप एक अंग्रेज महिला हैं और डॉ० केतकर से आन्तरराष्ट्रीय विवाह किया था। आप लन्दन युनिवर्सिटी की ग्रेजुएट हैं। डॉ० केतकर पर लिखने का आप अधिकार रखती ही हैं और पाठक देखें कि यह चित्रण कितना निकटतम है। प्रस्तुत लेख लोक-शिक्षण' में से अनूदित किया गया है।—सं०]

डॉ० केतकर के सम्बन्ध में आजकल अनेक लेख लिखे जा रहे हैं। ज्ञानकोषकर्ता, इतिहासज्ञ, कवि, नाटककार, उपन्यास-लेखक, समाजशास्त्री, सम्पादक, राजनीतिज्ञ आदि की हैसियत से उन्होंने जो कार्य किये हैं, उनके संकलित चित्र को लोग मन में ला रहे हैं। केतकरजी से परिचय हो जाने के कारण उनके सम्बन्ध में जो लोग प्रामाणिक रूप से कुछ लिख सकते हैं, वे ही ये लेख लिख रहे हैं। किन्तु इन लेखों के द्वारा तैयार होनेवाले चित्र में भले ही वह भव्य देख पड़ें, यदि डॉ० केतकर का व्यक्ति-वैशिष्ट्य प्रकट नहीं हुआ तो वह चित्र एक बड़ी निर्जीव प्रतिभा ही रह जायगी। अतः इस कमी की पूर्ति करके उस चित्र में सजीवता लाने की दृष्टि से मैं ये चार शब्द लिख रही हूँ।

डॉ० केतकर को किसी भी प्रकार की 'हॉबी' नहीं थी। श्रमपरिहारार्थ अथवा रुचि-परिवर्तन के लिए हम किसी न किसी 'हॉबी' के आदी बन जाते हैं। लेकिन ज्ञानकोष-रचना का कार्य इतनी विविधता और विचित्रता लिये रहता है कि उसको तैयार करने में लगे हुए मनुष्य को थकावट दूर करने या रुचि-परिवर्तन के लिए उसे छोड़कर कहीं दूसरी ओर देखने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। 'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष' का काम बहुत वर्षों तक चलता रहा और उसे करते समय डॉ० केतकर में नीरसता आई तक नहीं। उनकी चक्की में सब कुछ पीसा जाता था। हरएक बात में उनको कुछ न कुछ विशेषता दीख पड़ती थी। चूँकि वे हमेशा कहा करते थे कि ज्ञान का विषय होनेवाली हरएक बात ज्ञानकोषकर्ता के लिए महत्त्व की है। इसी कारण उनसे भिन्न-भिन्न समय पर मिलनेवाले विभिन्न व्यक्ति उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की धारणाएँ बना लेते थे। वे जब वैदिक विभाग का काम कर रहे थे तब उनकी ओर देखनेवाले को ऐसा जान पड़ता था कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी विषय पर उनकी आसक्ति है और उसमें वे तद्रूप हो जाते हैं। सच देखा जाय तो ज्ञान की इस शाखा में संशोधन करते समय उन्होंने भूतकाल के उदर में भरी हुई बहुमूल्य साधन-सम्पत्ति पर प्रकाश डाला; और इस सम्बन्ध में अनेक घटनाओं के तथा महत्तम व्यक्तिओं के साथ उनका परिचय हो गया। इसीलिए यदि इस कार्य की गहरी छाप उनके मन पर दीर्घ काल तक बनी रही तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन इस विभाग का काम समाप्त होते ही उनका ध्यान दूसरे विषय की ओर आकर्षित हुआ। और तब, उनके स्वाभावानुसार, इस नवीन विषय में ही उनका मन लग गया। इतना होने पर भी वे इस बात को कभी नहीं भूले कि किसी ख़ास विषय का ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान-वृक्ष की एक शाखा-मात्र है। इसीलिए उनकी अभिरुचि, आरम्भ किये हुए कार्य में चित्त को एकाग्र करते रहने पर भी, समाप्त किये हुए कार्य के सम्बन्ध में हमेशा बनी रहती थी। अर्थात् उनकी दृष्टि में आरम्भ किया हुआ कार्य ही वास्तविक कार्य हो जाता और समाप्त किया हुआ कार्य 'हॉबी'। और वे अखीर तक इसी कार्य-पद्धति के आदी बने रहे।

इस पद्धति से चलनेवाले को ज्ञान की सब शाखाओं तथा उपशाखाओं पर लिखे हुए प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों का पठन-पाठन लगातार ज़ारी रखना पड़ता है। जिस मनुष्य का स्वभाव ज्ञान-संग्रह करने का होता है, वह सभी विषयों के ज्ञान का प्यासा रहता है। ऐसा कभी भी नहीं कहा जा सकता कि उनकी किसी ख़ास विषय पर आसक्ति थी, अथवा वे किसी ख़ास विषय का ही अध्ययन करना उचित समझते थे। यदि उन्हीं के शब्दों में कहा जाय तो वे एक 'सर्वभक्षक' पाठक थे। जब उन्हें कोई किताब पसन्द आती, तब वे उसे सर्वांग दृष्टि से पठनीय समझते थे, न कि केवल विषय के अच्छे लगने की दृष्टि से। और साधारणतया किसी किताब को उलट-पलटकर देखने भर से ही वह पढ़ने योग्य है या नहीं, इस सम्बन्ध की अपनी राय वे बना लेते थे। उनके पढ़ने का ढंग देखकर कोई भी कह सकता कि वे जितनी शीघ्रतापूर्वक लिख सकते थे, उतनी शीघ्रतापूर्वक पढ़ नहीं सकते थे। लेकिन वे जो कुछ पढ़ते थे, उसकी गहरी छाप उनके मन पर पड़ती थी। प्रायः अपने आप पढ़ना उनको अधिक पसन्द था, तथापि दूसरे से—विशेषकर कोई अच्छा पढ़नेवाला मिल जाता, तब उससे—किताब पढ़ाकर सुनने में उनको बहुत आनन्द आता था। उनकी इच्छा यही रहती थी कि स्वयं हाथ-पैर फैलाकर आराम-कुर्सी पर लेटे रहें, और कोई दूसरा ज़ोर से पढ़कर सुनाता जाय। प्रायः आँखें मूँद लेने के कारण वे विशेष एकाग्रता से श्रवण कर सकते थे। पढ़ी हुई किताब पर निशान बनाने की अथवा उस सम्बन्ध की टिप्पणियाँ लिखने की उनकी आदत नहीं थी। वे जब किसी खास विषय पर लिखने बैठ जाते थे तब अवश्य ही उस सम्बन्ध की किताब का संदर्भ देख लिया करते थे। लेकिन उनकी स्मरण-शक्ति इतनी अधिक थी कि पढ़ी हुई किताब की बातें उनके स्मृति-पट पर बनी रह जातीं; और ज़रूरत पड़ने पर वे उनका उपयोग कर सकते थे। शायद इसी कारण से बहुत देर तक पढ़ते रहना या किसी से पढ़ाकर सुनना उन्हें सह्य नहीं होता था। घंटों तक पढ़ते रहना उनको बिल्कुल नापसन्द था। आराम करने, या खाने-पीने अथवा टहलने इत्यादि के कारण वे प्रायः बीच में ही पढ़ना बन्द कर देते थे। ऐसा करने से वे पढ़ी हुई बात को 'आत्मसात्' कर सकते थे। और जब कभी आधी पढ़ी हुई किताब उनको आगे पढ़कर सुनाई जाती थी तब पीछे की घटनाओं का सूत्र उनके ध्यान में ला देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। किसी कारण-वश जिस रात को उन्हें जब नींद नहीं आती थी तब वे कुछ देर तक पढ़ने या लिखने बैठ जाते थे; और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुरन्त ही वांछित फल मिल जाता था ! उपन्यास पढ़ना उनको रुचिकर लगता, परन्तु उनको और विषयों का अध्ययन इतना करना पड़ता था कि उपन्यास ख़ुद न पढ़कर कथा-श्रवण से ही अपना मनोरंजन कर लेना उन्हें पसन्द था। बहुत हुआ तो वे छोटी कहानियाँ पढ़ लिया करते थे। यह काम भी उनके लिए कभी-कभी कष्टदायक हो जाया करता। लम्बे-चौड़े उपन्यासों के सम्बन्ध में वे कहा करते थे—आप ही उसको पढ़ डालिये और पढ़कर ख़तम होने के बाद उसकी मुख्य कथा सुनाइये। प्रायः वे ऐसा ही कहा करते थे। और किसी उपन्यास का कथानक कितना ही लम्बा-चौड़ा क्यों न हो, वे बड़े चाव से उसको सुन लिया करते थे।

ऊपर इस बात का उल्लेख आ चुका है कि डॉ० केतकर का पढ़ना शीघ्र गति से नहीं होता था ; लेकिन उनकी लिखने की आदत इससे ठीक उल्टी थी। उनकी क़लम से काग़ज़ पर शब्द इतनी शीघ्रता से उतर पड़ते थे कि देखकर मन चकित हो जाता था। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मानो ज्ञान-गंगा की तेज़ धारा में हम बह चले हैं। इससे सिवा शब्द-संख्या की अपेक्षा विषय के गूढ़ार्थ की ओर वे अधिक ध्यान दिया करते थे। उनका पठन-पाठन और कार्य-पद्धति आदि से हरएक व्यक्ति, जो उनके सम्पर्क में थे, अच्छी तरह परिचित हो गये थे।

उनके काम का कोई निश्चित समय नहीं था। वे इतने अधिक और विविध कामों में फँसे रहते थे कि चौबीसों घंटों में से प्रत्येक मिनट उनके लिए महत्त्वपूर्ण था। इतना होने पर भी उन्हें विवश होकर आवश्कतानुसार निद्रा लेनी ही पड़ती थी। सच देखा जाय तो निद्रा ही उनके लिए विश्राम का एकमात्र साधन था। इसीलिए वे अपना पठन-पाठन, प्रचार, पत्र-व्यवहार, मिलना-जुलना, इतना ही नहीं ; बल्कि मनन तक के काम अपनी सुविधानुसार कर लिया करते थे। यहाँ तक कि उन्हें भोजन आदि भी जल्दी-जल्दी में कर लेना पड़ता था। वे हल्के-हल्के चाय के प्यालों से अपनी कार्य-क्षमता कायम रखते थे। वे प्रायः कहा करते थे—मेरा यह धन्धा आठों पहर इसी तरह चला करेगा। उनका यह कहना था भी सच। बहुधा रात में एकाएक जग जाने पर उनको कुछ न कुछ नई कल्पना सूझती थी। तुरन्त ही उठकर दो-चार घंटे काम करते रहते और मानसिक भार से छुटकारा होने पर पुनः निद्रादेवी की शरण में चले जाते थे। यही उनकी ताज़गी का एकमात्र साधन था।

लिखने का इतना अधिक कार्य करते रहने पर भी उनको कभी थकावट महसूस नहीं हुई। उनके विचार-प्रवाह की धारा उनकी क़लम के साथ ही साथ दौड़ा करती थी। तात्पर्य यह कि सोचने के लिए उन्हें रुकना नहीं पड़ता था। फ़ुरसत के थोड़े से भी वक्त का उपयोग करने की आदत होने के कारण वे ऐसे कोलाहल में भी लिखा करते थे जो दूसरों के लिए अशक्य था। उदाहरणार्थ, सिनेमा शुरू होने के पहले और बीच में 'इन्टरवल' के वक्त, दवाखाने में डॉक्टर के इन्तज़ार के समय में, होटल में खाना आने तक, स्टेशन पर ट्रेन आने तक और बम्बई में ट्राम-टर्मिनस पर ट्राम की इन्तज़ारी में जितना समय लगता था, उतने समय में वे लिख लिया करते थे। यदि ट्रेन में या ट्राम में प्रवास करते वक्त लिखने लग जाते थे तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? इतना ही नहीं, जब कभी टहलने के लिए निकलते थे, तब कोई अच्छी-सी जगह देखकर वहाँ अपना आसन जमा लेते और लिखना शुरू कर देते थे। एक बार उन्होंने पढ़ा था कि लोगों का बहुत-सा समय अज्ञानता के कारण व्यर्थ में ही चला जाता है, और यही समय उनके जीवन का एक बड़ा हिस्सा होता है। इस बात का विचार करके उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवन में प्रत्येक क्षण का उपयोग करना ही चाहिये। उन्हें अपने अनुभव से ही ज्ञात हो गया था कि जो समय हम लापरवाही से खो देते हैं, उसका यदि उपयोग किया जाय तो महान् ग्रंथ का निर्माण हो सकता है।

जान पड़ता है कि बचपन से ही उनमें चित्त एकाग्र करने की असाधारण शक्ति थी। यह शक्ति उनकी आयु के साथ दिन-दिन बढ़ती गई। यही वजह है कि वे प्रत्येक क्षण का उपयोग कर सके। जिस तरह बटन दबाकर बिजली जलाई जाती है, उसी तरह वे एक क्षण में अपने चारों ओर के कोलाहल से अलिप्त होकर अपने विचार-प्रवाह में डूब जा सकते थे। आश्चर्य की बात यह है कि विस्मृति के वे कभी शिकार नहीं बने।

उनकी हस्तलिखित रचनाएँ कभी तो फुल्सकेप काग़ज़ पर लिखी हुई रहती थीं और कभी विभिन्न आकार-प्रकार के काग़ज़ पर भी। लिखने आदि की आवश्यक सामग्री भी उनके पास कभी नहीं रहती थी। अर्थात् जो चीज़ें पास रहती थीं या किसी से मिल जाया करती थीं, उनसे ही वे काम चला लेते थे। इतना होने पर भी वे अपने काम में व्यवस्थित और प्रामाणिक रहे। उनकी अपनी लिखी हुई रचनाएँ, जो कि अधूरी रह गई हैं, पूरी करने का उत्तरदायित्व जिन पर आ पड़ा है वे ही उपरोक्त कथन को अच्छी तरह महसूस कर सकते हैं।

डॉ० केतकर उन लोगों में से थे, जिन्हें अपने घरवालों के प्रति बहुत ही मोह और प्रेम होता है। अपनी गृहस्थी कितनी ही गरीब क्यों न हो वे उसे सुख-समृद्धि से पूर्ण ही समझते थे। वे अपनी इस मनोभावना को जिस तरह से व्यक्त किया करते थे, उसको समझकर हम लोग बहुत प्रभावित और आनन्दित हो जाते थे। वे स्वयं हम लोगों को तरह तरह की कहानियाँ सुनाया करते थे और हमारी कहानियाँ चाव से सुन लेते थे।

वक्ता और श्रोता, दोनो कार्य में डॉ० केतकर भलीभाँति प्रवीण थे। यदि किसी को उनसे कुछ कहना होता तो वे समयाभाव का बहाना दिखलाकर उससे पिण्ड छुड़ाना नहीं जानते थे। यदि किसी को अपनी राम-कहानी, किसी को स्वानुभव की मज़ेदार बातें और किसी को अपना राग-द्वेष कह डालने की इच्छा होती, अथवा किसी को उनसे सलाह लेने की ज़रूरत पड़ती तो वे बड़े चाव से तथा सहानुभूति के साथ उन लोगों की बातें सुन लेते थे और अपनी राय भी देते थे। किसी भी प्रकार की बात उनके समक्ष आने पर वे उसे अवश्य ही गौर से सुन लिया करते थे। वे जैसे बड़े से बड़े सवाल को हल करने में नहीं हिचकते थे, उसी प्रकार मामूली बात पर भी सोचने को सदैव तत्पर रहते थे। यदि छोटे-बड़े सभी लोग अपनी-अपनी रहस्यपूर्ण बातें उनको सुनाकर उनकी सलाह लेने के लिए उत्सुक रहे हों तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या? उनके उपन्यास, कहानियाँ और विविध लेख भी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

सर्वसाधारण लोगों के मन में एक ऐसी धारणा है कि अलौकिक प्रतिभावान् व्यक्ति सनकी होता है। वह किस तरह से बर्ताव करेगा, कोई कह नहीं सकता। साथ ही ऐसे व्यक्ति की इच्छा और आकांक्षाएँ भी सीमा के परे होती हैं। इतिहास में इसके कई उदाहरण भी मिलते हैं। लेकिन डॉ० केतकर इस बात में अपवाद थे। उनकी मनोवृत्ति बिल्कुल समतोल रहती थी। उपरोक्त मनोवृत्ति के सम्बन्ध में उनका कहना था कि दुनिया के अनुभव से ही उन्हें वह प्राप्त हुई थी। दूसरों के आचरण के सम्बन्ध में वे उदार दृष्टि रखते थे। दूसरों की भलाई का ही हमेशा ख़याल करते थे। उनका कहना था कि यह बात भी दुनिया के ज़रिये वे सीखें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 2631

डॉ० केतकर एक आशावादी व्यक्ति थे। निराशा से भरे हुए प्रसंगों से उनको कितनी ही बार गुज़रना पड़ा। लेकिन इन सब आपत्तियों का मुकाबला उन्होंने जिस धैर्य और आनन्द के साथ किया वह सचमुच अनुकरणीय है। अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ और योजनाएँ असफल रहने पर भी वे कभी विचलित नहीं हुए। इतना ही नहीं ; बल्कि नये उत्साह से वे पुनः काम में लग जाते थे।

जिन व्यावहारिक बातों पर बड़ी सतर्कता से सोचना ज़रूरी होता है, और जिनकी चिन्ता में लोगों का खाना-पीना और नींद तक हराम हो जाती है, ऐसे सवालों को हल करने का प्रसंग आने पर डॉ० केतकर उस चिन्ताजनक अवस्था से अपना मन हटाकर किसी अच्छे काम में लगा सकते थे। उदाहरणार्थ, अपने कुत्ते को लेकर टहलने निकलते, सिनेमा देखने जाते या निश्चित कहाँ जाना है, यह सोचे बगैर इधर-उधर घूमते रहते थे ; और जहाँ-तहाँ जिस-तिस प्रकार के लोगों के साथ तरह-तरह की गप्पें लगाया करते थे। इसी तरह की परिस्थिति में कभी-कभी अपने बच्चों के साथ खेलने में अपने दुःख को भूल जाया करते थे, अथवा बगीचे की खुली हवा में चाय पीते-पीते अपने बच्चों की माता के साथ बीती हुई बातों पर या आगे की योजनाओं के सम्बन्ध में वार्तालाप करते थे। उनकी योजनाएँ बहुत ही सुन्दर और आकर्षक होती थीं। लेकिन उनके सम्बन्ध की दैनिक घटना कितनी विचित्र रही है !

डॉ० केतकर एक सीधे-सादे व्यक्ति थे। उनका बचपन बड़ी शोचनीय तथा दुःखपूर्ण परिस्थिति से गुजरा था। उनके बचपन में ही महत्त्वाकांक्षी पिताजी की, बीस वर्ष की उम्र में माता की और स्वयं परदेश में रहते हुए देश में बड़े भाई आदि की मृत्यु हो जाने से उनके जीवन में एकाएक बड़ा परिवर्तन होना स्वाभाविक था। इस तरह कौटुम्बिक सुख से बहुत वर्षों तक वंचित रहने के बाद उस सुख की प्राप्ति होने पर उनको वह यदि बहुमूल्य जान पड़ा, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? डॉ० केतकर बहुत ही संतोषी थे। बिल्कुल मामूली चीजें देखकर उन्हें अत्यन्त आनन्द मिल जाता। क्रीड़ा करनेवाले बालक और कुत्ते-बिल्ली आदि के बच्चे देखने में वे बहुत ही आनन्द अनुभव करते थे। जंगल के फूल देखकर भी वे प्रसन्नचित्त हो जाया करते थे। गाँवों में जो सामान्य दृश्य देख पड़ता है,—जैसे कि कुएँ पर आई हुई पनिहारिन का कलसा माथे पर रखकर मन्दगति से चलना,—उनको मनमोहक प्रतीत होता था।

डॉ० केतकर को पसन्द आनेवाले खेल भी सादे होते थे। सब खेलों में ताश का खेल उन्हें विशेष प्रिय था। एक समय उन्हें शतरञ्ज खेलने का शौक भी हो आया था। लेकिन उस खेल में चित्त की जो एकाग्रता चाहिये, उसके कारण उनका सर दर्द होने लगता था। इसलिए वे कहते थे कि ऐसा खेल किस काम का ? कॉलेज छोड़ने के बाद वे कभी 'outdoor' खेलों में शामिल नहीं हुए। वे जब कॉलेज में पढ़ते थे, तब क्रिकेट की अपेक्षा फुटबॉल खेलना ही उन्हें अधिक पसन्द था। टेनिस का खेल उनको कभी भी अच्छा नहीं लगा। बड़ी उम्र में टहलना ही उनका व्यायाम रहा। वह भी नियमित रूप से नहीं हो सका। कारण उनको अपने काम के लिए ही इतना अधिक चलना पड़ता था कि घर आकर बिस्तरे पर लेटने के बाद ही उनकी थकावट दूर हो पाती थी।

उनके मनोरञ्जन का मुख्य साधन सिनेमा देखना था। सिनेमा के वे अच्छे शौकीन रहे। कोई भी चित्रपट मनोरञ्जन की दृष्टि से अच्छा लगने पर वे उसके गुण-दोषों की ओर अधिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान नहीं देते थे। सामान्य फिल्में देखकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाने में उन्हें बड़ा मज़ा आता था। हिन्दी चित्रपट देखना उनको बिलकुल नापसन्द था। हम लोगों के आग्रह से ही वे हिन्दी चित्रपट देखने को चला करते थे।

डॉ० केतकर की व्यक्तिगत जीवनी के सम्बन्ध में आज-कल अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। ऐसे प्रश्नों का यदि उत्तर देने बैठ जायँ तो एक चरित्र-ग्रंथ तैयार हो जायगा; ऐसे ग्रंथ का निर्माण होने में शायद अधिक देर भी नहीं लगेगी।

पूना।

गीत

[भारत भूषण अग्रवाल]

तरल वह मुस्कान
खिल उठा मधु-अधर पर यह किस प्रणय का गान ?

परस कर वह छबि दमक-सी
भर गई मुझमें चमक-सी
कण्ठ गदगद, पुलकते हैं छलछलाते प्राण

स्नेह का दीपक चढ़ाने
चला था तुमको मनाने
किन्तु विस्मय—यों पिघल आया तुम्हारा मान !

प्राण से बहती निरन्तर
करुण मेरा कूल छूकर
स्नेह सरिता की लहर-सी छलकती छविमान

मुस्करादी लाज से झुक
दो पलों को राह में रुक
कौन सा सपना बँटाने कर रही आह्वान ?

आगरा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भील-कुमार : एकलव्य

(एकांकी नाटक)

['धूमकेतु']

[अनुवादक, शंकरदेव विद्यालंकार]

प्रवेश प्रथम

[अर्जुन, भीम, दुर्योधन, कर्ण आदि खेलते हुए प्रवेश करते हैं।]

अर्जुन—गुरुजी ने तो स्पष्ट नकार कर दिया !

भीम – किसे नकार किया ?

अर्जुन—वह भीलकुमार आया था न ? उसे। यहाँ गुरुजी से धनुर्विद्या सीखना चाहता था। गुरुजी ने कहा, तू शूद्र है, तुझे नहीं सिखाई जा सकती।

भीम – (हँसता है) हाँ, हाँ, बस गुरुजी ने ठीक किया।

दुर्योधन—राजकुमारों के साथ भील का लड़का धनुर्विद्या सीखे ? सीखकर और तो क्या करेगा ?

भीम—अरे और क्या, एक दो हरिण मार लायेगा ! क्या ऐसों को द्रोण गुरुजी धनुर्विद्या सिखा सकते हैं ?

कर्ण—तो किसे सिखायें ?

भीम—किसे सिखायें ? जो राजकुमार हो, जो जन्म से द्विज हो, जो वंशपरम्परा से शुद्ध हो, केवल उसी को गुरुजी के पास बैठकर धनुर्विद्या सीखने का अधिकार है। अन्य को नहीं।

अर्जुन—(तिरस्कार-पूर्वक) ठीक ही तो है। भील आदि के लिए यह राजवंशी विद्या नहीं है।

कर्ण—(ज़रा चिढ़कर) नहीं, नहीं ; यह विद्या तो तुम्हारे लिए ही है।

भीम-अर्जुन —हाँ-हाँ, हमारे लिए ही है। हम राजकुमार हैं, राजकुमार के साथ भील के लड़के को नहीं सिखाया जा सकता।

कर्ण—वह भील का पुत्र है अतः विद्या न सीखे और तुम राजा के लड़के हो इसलिए विद्या सीखो ? परन्तु याद रहे, गुरु द्रोण तुम्हारे आश्रित हैं, सरस्वती देवी नहीं ! माना कि तुम इसे नहीं सिखाओगे ; परन्तु इसका हृदय चीरकर निकली हुई इसकी तत्परता और श्रद्धा को किस प्रकार रोक सकोगे ? तुम हस्तिनापुर के राजकुमार हो ; इसलिए अपनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सीमा में से विद्या दिये बिना इसको लौटा सके हो ; परन्तु चतुर्दिक् व्यापिनी पृथ्वी पर जहाँ चाहे वहाँ रहकर, जब वह विद्या सीख आयेगा, तब तुम्हारे मुखड़े छोटे-से रह जायेंगे।

अर्जुन—परन्तु चतुर्दिक् पृथ्वी में गुरु द्रोण की तुलना में खड़ा रहनेवाला कोई पुरुष पैदा नहीं हुआ है। गुरु द्रोण की विद्या प्राप्त करनेवाला शिष्य किसी से पीछे नहीं रह सकता।

कर्ण—परन्तु हे अर्जुन, जब अन्तर के पट को चीरकर, गहराई से पानी के प्रपात की तरह, ज्ञान का झरना प्रकट होगा, तब तुम्हारे एक द्रोण गुरु तो क्या ; परन्तु सात-सात द्रोण गुरु भी न दे सकें, इतना ज्ञान वह अकेला भील सीख लेगा ! मैंने इस भीलकुमार को देखा है।

अर्जुन—इसमें तू ने क्या देखा है ?

कर्ण—क्या देखा है ? किसी ध्येय के लिए झुकी हुई निश्चल आँखें, और हिमालय जैसा अदम्य दृढ़ आग्रह ! यह भीलकुमार साधारण नहीं है।

अर्जुन—भले असाधारण हो ; गुरु द्रोण का शिष्य किसी से पीछे नहीं रह सकता—किसी से हाँफ नहीं सकता !

भीम—अरे भाई, इसमें इतना विवाद क्यों कर रहे हो ? भाई कर्ण, तू जा न ! तू सूतपुत्र है, अर्जुन के साथ तू शोभा नहीं देता। तू इसके साथ सीखने के लिए चला जा।

कर्ण—(रोष को दबाकर) मैं शोभित होऊँ या न होऊँ ; परन्तु विद्या जैसी सबको पवित्र करनेवाली वस्तु को जो लोग वैश्य की तरह दबाये रहते हैं, वे सूतपुत्र से भी अधिक हीन हैं। (जाता है।)

[दुर्योधन भी पीछे-पीछे चला जाता है।]

भीम—यह कर्ण बहुत ही अभिमानी है।

अर्जुन—यह समझता है कि मैं भी राजा का कुँवर हूँ।

भीम—और यह दुर्योधन इसे चढ़ाता रहता है।

अर्जुन—कोई बात नहीं ! इससे हमें क्या ? परन्तु चलो, गुरुदेव के पास जाकर ही भीलकुमार एकलव्य की बात पूछें ! (दोनो जाते हैं।)

प्रवेश दूसरा

[मार्ग में अकेला एकलव्य]

[एकलव्य का प्रवेश। उसकी अदम्य, दृढ़ निश्चयवाली ; परन्तु संप्रति ज़रा शोक से घिरी हुई—विशाल आँखें, किसी ध्येय के लिए जीवन को अर्पण करने की तैयारी प्रकट कर रही हैं, दूर—दूर - किसी सुदूर प्रदेश में, अपना ध्येय देख रहा हो, इस प्रकार धीमे कदमों से, प्रवेश करता है। उसके हाथ में धनुष-बाण हैं, गले में माला और कान में दो कुण्डल]

एकलव्य—वन कितना सुन्दर है ! जब-जब मैं कोई सुंदर वस्तु देखता हूँ, तब-तब मुझे अपनी मा याद आती है। जब मैंने मा से अन्तिम आज्ञा माँगी थी, तब उसने कहा था—वत्स, हम लोग शूद्र हैं, अपना धर्म सेवा का है।—इतना कहकर वह रो पड़ी ! भूतकाल के दिन स्वजनों की तरह मुझे आज याद आते हैं। (कुछ देर के लिए ठहर जाता है) मैं शूद्र ! मेरा अधिकार सेवा का ? परन्तु जिस समय मेरी अन्तरात्मा पुकार-पुकारकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षत्रिय-धर्म स्वीकार करने के लिए कह रही है, तब मुझे सच्चा धर्म किसे समझना चाहिये ? परशुराम ब्राह्मण होकर क्षत्रिय बने, विश्वामित्र क्षत्रिय होकर ब्राह्मण बने, मैं एकलव्य शूद्र हूँ, तो भी क्यों न क्षत्रिय बनूँ ? परन्तु गुरु द्रोण ने मुझे विद्या देने से इन्कार कर दिया है। गुरुदेव ने कहा कि शूद्र को दी हुई विद्या वन्ध्या रह जाती है। आज मैं और तो किसकी, परन्तु इस सुंदर वन की साक्षी में, संकल्प करता हूँ कि गुरु-देव ने जिस विद्या को देने से इन्कार किया है, वही विद्या, उनकी मानसी मूर्ति से मुझे सीखनी है। आओ आओ, वन के वृक्षो और जंगल के पशुओ, अपने मित्र एकलव्य को अपना सहयोग प्रदान करो और इस निर्जन वन में विद्या से प्रीति करना सिखाओ !

(जाता है।)

प्रवेश तीसरा

[शिकार के लिए निकले हुए राजकुमार : एक कुत्ता : अन्य कुछ एक साथी : सब शिकारी वेश में हैं। हाथ में धनुष-बाण लेकर प्रवेश करते हैं।]

भीम—अर्जुन, ये तेरे तीर-कमान तो बहुत झंझटवाले हैं ! गदा जैसा आनंद उनमें कहाँ ! एक बार घुमाकर लगाया कि चूराचूर ! दूसरी की आवश्यकता ही नहीं।

अर्जुन—धनुर्विद्या में अनेक मर्मों का समावेश है। जिसका बाण खाली न जाय उसे ही केवल बड़ा धनुर्धर नहीं कहा जाता। परन्तु जिसका बाण जितना बींधना हो उतना ही बींधे—बाण छूटने के बाद भी अधिकार में रहे—उसे ही सच्चा धनुर्धर कहा जाता है।

भीम—अब अपना यह लम्बा भाषण रहने दे। बोल, इस वृक्ष को एक हाथ से उखाड़कर फेंक दूँ ?

कर्ण—भीम तो बिचारा मोटा है और साथ ही मोटी बुद्धिवाला और उसे ये भाई साहब धनुर्विद्या का रहस्य सिखाने जा रहे हैं।

दुर्योधन—भीम और धनुर्विद्या में बारह कोस का अन्तर है। इसका काम है वृक्ष उखाड़ना और बड़ के लाल फल गिराना।

भीम—भैया दुर्योधन, जो बड़ के फल गिरा सकता है, वह एक दिन धड़ के ऊपर से माथे भी उसी प्रकार गिरा सकता है।

अर्जुन - बड़े-बड़े पर्वतों को उखाड़ फेंके, इतनी कुशलता और बल जिसमें हो...

भीम—और एक ही प्रहार में चूर-चूर कर डाले, इतना वजन जिसकी गदा में हो...

कर्ण—(पास जाकर) उसे पर्वत के भाई के समान कालमींढ पत्थर समझना चाहिये।

दुर्योधन—गुरुदेव ने आज क्या कहा था ? लालित्य सिद्ध करना सरल नहीं है !

अर्जुन—हाँ, अकेली मार्मिकता और बल धनुर्विद्या के आवश्यक अंग नहीं हैं ; परन्तु सिद्धहस्त किया हुआ लालित्य ही उसका वास्तविक अंग है।

भीम—परन्तु यह लालित्य क्या बला है ? मैंने तो कल ऐसे हाथ मारे थे—घी से तरबतर लड्डू न हों, तब मेरी उदर-दरी भरती ही नहीं--कि गुरुदेव ने लालित्य-लाघव, चपलता, सुज-नता या दुर्जनता के विषय में जो कुछ कहा था, वह इस कान ने सुना तो था (कान दिखता है) परन्तु इस कान से वह निकल गया (दूसरा कान दिखता है)। दुर्जनता के विषय में अपना भैया दुर्योधन ख़ूब जानता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

दुर्योधन—दुर्जनता के विषय में गुरुदेव ने इस प्रकार कहा था कि लड्डू को देखकर जिसके मुख में पानी आ जाये, वह बड़े से बड़ा दुर्जन !

भीम—और जिसके मुख में पानी न आये, वह ?

कर्ण—बड़े से बड़ा सज्जन !

भीम—नहीं, शूद्रजन !

अर्जुन—दुर्योधन, भीम, तुम लोग सदा ही बात-चीत करते हुए विवाद करने लगते हो। सुनो, लालित्य तथा अभ्यास आन्तरिक प्रेरणा से ही सिद्ध होते हैं। फूल के ऊपर फूल जैसी कोमलतावाला तीर जो मनुष्य छोड़ सकता है, वही सिद्धहस्त कहा जाता है।

कर्ण—ऐसे सिद्धहस्त तो तुम्हीं बने होगे। भाई, राजकुमार हो न। इसीलिए विद्या तुमको वरती है।

अर्जुन—विद्या वरे या न वरे, परन्तु धनुर्विद्या में गुरुदेव जितना पारंगत कोई नहीं और लालित्य ने तो केवल उन्हीं को वर रखा है।

कर्ण—और तुम्हें, उनके शिष्य को नहीं ?

अर्जुन—कर्ण, तू ईर्ष्या करता है ; परन्तु तेरी अपेक्षा मैं अधिक धनुर्विद्या जानता हूँ।

कर्ण—मैंने इससे कहाँ इन्कार किया है। (कटाक्ष करते हुए) तेरे बाण तो कुसुम के समान कोमल है, लड़कों को भी न लगें।

अर्जुन—लड़कों को भले न लगें ; परन्तु तुझ जैसे का अभिमान उतार सकते हैं।

कर्ण—मेरा ? मेरा ही तो। तू तो गुरु द्रोण का शिष्य है। और मैं किसका ? परशुराम का, जिससे तेरे गुरुदेव जैसे भी काँपते हैं !

अर्जुन—मेरे गुरुदेव तुझ जैसे से काँपनेवाले नहीं। अरे भीम, हम लोग बातें ही करते रहे और हमारा कुत्ता कहाँ चला गया।

भीम—क्या पता ? पीछे-पीछे ही आ रहा था न ? कहीं ग़लत मार्ग पर तो नहीं चला गया ?

दुर्योधन—(कटाक्ष-पूर्वक) लालित्य दिखलाओ न !

कर्ण—(कटाक्ष-पूर्वक) अथवा सुजनता ही आजमाओ !

भीम—(ज़रा खिजकर) भैया दुर्योधन, लालित्य का प्रयोग अभी करने का समय नहीं आया। उसका प्रयोग तो दुर्जनता भुलाने के लिए किया जायगा।

अर्जुन—भीम, चल, हमलोग कुत्ते को ढूँढ़ लायें ! (दोनो जाते हैं)

दुर्योधन—लालित्य ! बस एक शब्द सीख गया है, मानो सिद्धहस्त हो गया !

कर्ण—और कुछ नहीं, ज़रा अभिमान से भर गया है ! चलो, चलो, हम भी कोई शिकार ढूँढ़ें। (जाते हैं।)

प्रवेश चौथा

[भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं। बाणों से भरे हुए मुखवाला उनका कुत्ता एक ओर खड़ा है। वह भूँकने का प्रयत्न करता है, पर भूँका नहीं जाता।]

अर्जुन—(प्रवेश करते ही) यह रहा अपना कुत्ता !

भीम—कहाँ है ?

अर्जुन—यह खड़ा है, परन्तु (सावधानी से मुख को देखकर—गंभीर होकर) भीम, यहीं कहीं कोई महान् धनुर्धर रहता है। यह देखा तूने ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भीम—क्या ?

अर्जुन—उसने इस कुत्ते का केवल भूँकना बन्द किया है। उसका प्रत्येक बाण चपलता के साथ आकर मानो कुत्ते को बचाने के लिए चुपचाप मुख में बैठ गया है। ज़रा देख तो सही !

भीम—क्या देखूँ ? इस प्रकार कुत्ते का मुख बन्द करने जितना ही बल प्रयोग में लाना, तीर को इतने ही वेग से छोड़ना तो हमें नहीं आता। बल पर इस प्रकार इतना संयम रखना मेरे लिए तो संभव नहीं। क्या इस प्रकार प्रत्येक समय तोल-तोलकर बाण चलाना चाहिये ?

अर्जुन—अरे सुन, यह टंकार सुनाई दे रही है ! मालूम होता है, कोई महान् धनुर्धर इसी प्रदेश में रहता है। अहा, किस खूबी से बाण फेंके हैं !

भीम—कहीं गुरु द्रोण ही परीक्षा लेने के लिए पहिले से आकर तो बाण नहीं फेंक रहे हैं ?

अर्जुन—इस बाण चलानेवाले को धनुर्विद्या ने वर लिया है। जो मनुष्य अपने ज्ञान और बल के ऊपर प्रति क्षण, जितना चाहिये उतना संयम रख सके, वही सच्चा विद्वान् और योद्धा है। यह धनुर्धारी विद्या का पूरा-पूरा प्रेमी है।

भीम—तू भले ही यों कहता रहे। मुझे तो ये गुरु द्रोण ही प्रतीत होते हैं। सुन, यह टंकार आ रही है।

अर्जुन—(शीघ्रता से) नहीं भाई, नहीं ; तू सुन तो सही। यह तो कोई गुरु द्रोण का भी गुरु प्रतीत होता है। अहा, कैसी शीघ्रता है ! चल तो सही, इस महाधनुर्धर को जाकर देखें। इसी आवाज़ का अनुसरण कर चलें। (दिशा दिखाता हुआ) इधर से ही आवाज़ आती प्रतीत होती है। (दोनो जाते हैं।)

प्रवेश पाँचवाँ

[एक ओर द्रोण की प्रतिमा है, दूसरी ओर लगातार बाण छोड़ता हुआ एकलव्य दिखाई देता है। भीम और अर्जुन का प्रवेश। उन्हें देखकर एकलव्य थम जाता है।]

अर्जुन—भाई, बन्द मत करो, मैं तुम्हारी शीघ्रता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हीं ने हमारे कुत्ते का मुख बाणों से भर दिया प्रतीत होता है।

एकलव्य—हाँ, परन्तु तुम कौन हो ? मैं किसी को प्रसन्न करने के लिए धनुर्विद्या नहीं सीखता।

भीम—महाप्रतापी राजा पाण्डु का पुत्र, तथा जिसकी टंकार से पृथ्वी और आकाश काँप उठते हैं, यह वही महाधनुर्धारी अर्जुन है।

एकलव्य—अच्छा ! ज़रा एक ओर खड़े रहो ! यह तो मेरा सबसे पहला प्रयत्न है। अपने प्रथम प्रयत्न को गुरु द्रोण के शिष्य के सामने रखते हुए मुझे लज्जा आती है।

अर्जुन—ऐं ! यह तुम्हारा प्रथम प्रयास ही है ! परन्तु यह क्या ? यह प्रतिमा किसकी है ?

एकलव्य—गुरु द्रोण की। मेरे गुरुदेव की।

अर्जुन—तुम गुरु द्रोण के शिष्य हो ?

एकलव्य—गुरु द्रोण ने मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार किया है। मैंने प्रश्न पूछे हैं, उन्होंने उत्तर दिये हैं। आषाढ़ की मेघमंडित रात्रि में जलविन्दु को बींधने का मर्म उन्होंने मुझे बताया है और कहा है—जीवन पूरा हो जाता है, विद्या पूरी नहीं होती।

अर्जुन—तुम तो वहाँ पर...। क्यों वहाँ पर मिले थे न ? तुमको, शूद्र को, गुरु द्रोण ने विद्या देने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से इन्कार कर दिया था, फिर तुम चले आये। तो अब तुम गुरु द्रोण के शिष्य किस प्रकार बने ?

एकलव्य—(श्रद्धापूर्वक) गुरु द्रोण ने ही मुझे विद्या का सच्चा रहस्य सिखाया है। विद्या जनमती है, दी नहीं जाती।

अर्जुन—(विषाद-पूर्वक) अच्छा ! तो तुमको भी द्रोण गुरु विद्याध्ययन कराते हैं ?

एकलव्य—(दृढ़ आत्मबल से) हाँ।

अर्जुन—धनुर्विद्या कब सिद्ध हुई समझी जाय, इसके बारे में गुरुद्रोण ने क्या कहा है ?

एकलव्य—मेघमंडित अँधेरी रात में, ऊँघ में से उठकर फेंका हुआ बाण भी जुगनू को बींध डाले, तब !

अर्जुन और भीम—हें...!!!

एकलव्य—(बिना बोले बाण चलाना शुरू करता है) गुरुदेव, नमो नमः। (द्रोण की प्रतिमा के चरण के समीप पड़े हुए फूल को बाण चलाकर सिर पर चढ़ा देता है। अर्जुन और भीम आश्चर्य-मूढ़ होकर एक दूसरे के सामने देखते रह जाते हैं।)

अर्जुन—(आश्चर्य-पूर्वक) अब तुम्हें क्या सीखना बाक़ी रहा है ?

भीम—गदा की विद्या तो नहीं आती न ?

एकलव्य—अभी तो बहुत बाक़ी है। मैं तो बन पड़ता है, उतना प्रयत्न करता हूँ। परन्तु विद्या का मर्म तो जीवन-समर्पण किये बिना प्राप्त ही नहीं होता। गुरु द्रोण कहते हैं कि लड़कों को सीखने में आनंद आये इसलिए तैयार किये हुए यह तो छोटे-छोटे खेल हैं।

अर्जुन और भीम—(आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखते हैं। दोनो साथ ही बोल उठते हैं) आना, आना, हस्तिनापुर में द्रोणगुरु के पास नया पाठ सीखने आओ तो चुपचाप मत चले जाना।

एकलव्य—(हँस कर) गुरु द्रोण ने मुझे प्रत्येक पाठ और उसका रहस्य लिख भेजा है।

अर्जुन—(बोलते हुए आवाज़ फट जाती है) हें !!!

(दोनो जाते हैं।)

प्रवेश छठा

[द्रोण और अर्जुन वन में जाते हुए]

अर्जुन—मैंने उसे दो बार पूछा है कि क्या गुरु द्रोण तुझे सिखाते हैं ? उसने दोनो बार हाँ ही कहा।

द्रोण—हाँ कहा ?

अर्जुन—उसने तो यहाँ तक कहा है कि गुरु द्रोण ने मुझे सब कुछ लिख कर दिया है।

द्रोण—झूठ बोलता है। आख़िर शूद्र है न ?

अर्जुन—परन्तु गुरुदेव, आपने मुझे कहाँ है कि तुझसे बड़ा धनुर्धर कोई नहीं होगा, अश्वत्थामा भी नहीं, तो यह वचन आपको पालन करना है। (जाते-जाते दोनो अटक जाते हैं।)

अर्जुन—(कान लगाकर) सुनी यह आवाज़ ? कैसी चली आ रही है ?

द्रोण—(कान लगाकर) आवाज़ पानी की तरह लगातार चली आ रही है। मानो वह तरकश में से तीर लेता ही नहीं, मानो तीर आगे धर कर ही कोई खड़ा है। और यह तो एक के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाद एक, लगातार अखंड रूप से तीर छोड़ता ही जाता है।

अर्जुन—गुरुदेव, उस दिन आपने कहा था कि अभ्यास से ही सब कुछ साध्य है, परन्तु यह तो समझ में नहीं आता कि यह भीलकुमार केवल अभ्यास से ही कुशल बन सका है।

द्रोण—(अनसुनी करते हुए) अहा !

अर्जुन—क्या ?

द्रोण—कोई योगी चित्त के कोने की सभी बातें जितनी सरलता से और साथ ही पूर्णता के साथ, समझ सकता है, उतनी ही सरलता और पूर्णता के साथ यह भील धनुर्विद्या की प्रत्येक बात समझता है। धनुर्विद्या को इसने कला की तरह अपने मानसिक विकास में साधन-रूप बनाया है ! यह निरा लड़ाका नहीं प्रतीत होता।

अर्जुन—इसीलिए तो मैं आपको बुला लाया हूँ। यदि यह हमसे आगे निकल गया तो हमारा विद्यालय लज्जित हो जायगा।

द्रोण—चल, इसी रास्ते वहाँ पहुँचते हैं न ?

अर्जुन हाँ-हाँ, यही रास्ता है। (दोनो जाते हैं।)

प्रवेश सातवाँ

[गुरु द्रोण और अर्जुन दूर से एकलव्य का सतत अभ्यास निहार रहे हैं।]

द्रोण—अर्जुन, यह तो एकलव्य है। मैंने इसे धनुर्विद्या सिखाई ही नहीं। क्या इसने तुझे कहा कि मैंने सिखाई ?

अर्जुन—हाँ, इसी ने मुझे कहा है कि मैं गुरु द्रोण का ही शिष्य हूँ।

द्रोण—मेरा शिष्य ? (आश्चर्य से खड़े-खड़े देखते हैं।)

अर्जुन—गुरुदेव, आपने मुझे कहा था न, कि तेरी धनुर्विद्या अनन्य बनी रहेगी ?

द्रोण—बनी रही है !

अर्जुन – परन्तु यह...एकलव्य...

द्रोण—इस भीलकुमार को इतना किसने सिखाया ? चोरी से सुनता तो नहीं रहा ?

अर्जुन – कदाचित् ऐसा भी हुआ हो—कुछ भी हुआ हो, हम लोग इससे पूछें।

द्रोण—तू यहाँ खड़ा रह, मैं जाता हूँ।

अर्जुन—गुरुदेव, याद रखना, मुझ से बढ़ न जाय। मैं तुम्हारा प्यारा शिष्य हूँ। और यह तो भील है।

द्रोण—इसी का मैं उपाय करता हूँ। (एकलव्य के पास जाते हैं।)

× × ×

द्रोण—एकलव्य, मैंने तुझे विद्या कब सिखाई है ? क्या मैं तेरा गुरु हूँ ?

एकलव्य—(प्रेम-पूर्वक) मैंने आपकी मानसिक प्रतिमा का पूजन किया है। आपको गुरु मान-कर मैंने अभ्यास शुरू किया है। आप सदा उपस्थित हैं, ऐसा मानकर मैंने सीखा है।

द्रोण—मैं सदा उपस्थित हूँ ?

एकलव्य—हाँ, आपकी प्रतिमा से मैंने सदा प्रश्न पूछे हैं और उत्तर प्राप्त किये हैं।

द्रोण—और उत्तर प्राप्त किये हैं ?

एकलव्य—मैंने जब-जब भूल की है तब भावभरी निशानियों से आपने उन्हें सुधारा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्रोण—मैंने उनका सुधार किया है ?

एकलव्य—हरघड़ी खाली आकाश में से आपके संकेत मुझे मार्ग-दर्शन कराते हैं। मानो आप खड़े हैं—आग्रहवान् और साथ ही प्रेम वाले : दृढ़ और दयायान् : मानो.....

द्रोण—एकलव्य, तूने मेरी विद्या गुप्तरूप से ग्रहण की है, चोरी से प्राप्त की है।

एकलव्य—हाँ गुरुदेव, मैंने गुप्तरूप से ग्रहण की है। आपने भी मुझे एकान्त में गुप्तरूप से सिखाई है। मानो आकाश में से शब्द-रूप में, फूल में से सुगंध-रूप में, पवन में से प्रतिमा-रूप में, सर्वत्र आपही अनेक संकेतों द्वारा मुझे समझा रहे हैं ! (पैरों में गिरकर, खड़ा होकर गद्‌गद् स्वर से) आपकी मानसिक प्रतिमा का मैंने पूजन किया है, जहाँ-जहाँ समझ में न आया, वहाँ-वहाँ प्रतिमा की ओर देखा है और प्रतिमा ने आँख के संकेत से सब कुछ समझा दिया है, फिर भी यदि समझ में नहीं आया तो मानों हाथ के संकेत से बता दिया ; इतना होने पर भी यदि समझ में न आया, तब मेरे हृदय में, पढ़े जा सकें ऐसे स्पष्ट शब्द आपने लिखे हैं, हे गुरुदेव ! (पुनः पैरों में गिर पड़ता है।)

द्रोण—मेरी इस प्रतिमा से तूने सब कुछ सीखा है !

एकलव्य—आपकी मानसिक मूर्ति ने ही जिसे मैंने अपने अन्तर में सांगोपांग उतारी है—मुझे कहा है कि संसार में कहीं भी निरुत्साह नहीं है, निरुत्साह हृदय में है। इसीने मुझे कहा है कि निराशा कहीं नहीं है, निराशा अन्तर में ही है। इसीने मुझे बताया है कि अखंड अभ्यासी के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। आपने जैसा बताया, वैसा ही मैंने पालन किया है, गुरुदेव !

द्रोण—तो तू मेरा शिष्य है न ?

एकलव्य—हाँ, गुरुदेव !

द्रोण—तूने मुझसे विद्या सीखी है न ?

एकलव्य—आपने मुझे प्रदान की है।

द्रोण—(सहसा) तब हे भीलकुमार, गुरु-दक्षिणा ला !

एकलव्य—(सजल नयनों से) बोलो गुरुदेव, क्या अर्पण करूँ ? जीवन-पर्यन्त की सेवा अर्पण करूँ ? प्राण की आवश्यकता हो तो प्राण अर्पण करूँ ? कहिये, क्या दूँ ?

द्रोण—और कुछ नहीं ; केवल अपने दाँये हाथ का अँगूठा।

[एकलव्य तुरन्त ही अँगूठा काटकर धर देता है।]

द्रोण—अहो भीलकुमार !

एकलव्य—(शांतिपूर्वक) गुरुदेव, और कुछ ? हाथ अर्पण करूँ ?

द्रोण—(सजल नयनों से) तू भील नहीं है, शूद्र भी नहीं। तू श्रद्धावान् है। मेरा शिष्य ही सर्वश्रेष्ठ बने इस अभिमान में मैंने सरस्वती की मानसिक मूर्ति को कलंकित किया है। अब तू मुझे शाप दे।

एकलव्य—(हाथ जोड़ता है) आपकी मानसी-मूर्ति ने कभी का मुझे आशीर्वाद दे दिया है ! मेरी इतनी छोटी भेंट से मानो आपका हृदय हँसता है।

द्रोण—भीलकुमार, तू मुझे शाप दे। इतना छोटा-सा अँगूठा मुझे तो किसी महाभयंकर उल्कापात का बीज प्रतीत हो रहा है। इसमें मैं प्रचण्ड दावाग्नि देख रहा हूँ ! तू मुझे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शाप दे, शाप दे ! जिससे भविष्य के भयंकर अन्धकार में मैं एक-आध क्षण देख सकूँ ! शाप दे !!

एकलव्य—(हाथ जोड़कर) गुरुदेव, आशीर्वाद दो। यह बायाँ हाथ कह रहा है कि गुरुदेव को प्रणाम करके मुझको काम में लगा।

द्रोण—तू मनुष्य नहीं, तू देव है। जा, मेरा आशीर्वाद है।

[लड़खड़ाते कदमों से वापिस लौटने लगता है। एकलव्य चरणों में गिरता है। उसके कपाल पर दायें हाथ से अँगूठे का खून तिलक के रूप में शोभित हो रहा है। वह हाथ जोड़कर खड़ा है।]

द्रोण—(लौटकर देखते हुए—चीख़ मारकर) अहो...भी...ल...कु...मा...र—!

एकलव्य—गुरुदेव, आज्ञा ?

द्रोण—(व्याकुलता के साथ) तेरे कपाल पर लहू का यह स्पष्ट लेख दिखाई दे रहा है कि...

एकलव्य—कि...

द्रोण—विद्या का यह मिथ्याभिमान कुरुकुल का विनाश करेगा—अहो, लहू के, अग्नि-समान ये अक्षर दिखाई दे रहे हैं।

[आँख के सामने हाथ रख देता है ! लड़खड़ाती हुई चाल से जाता है।]

एकलव्य—गुरुदेव, नमोनमः। (बाँयें हाथ से बाण फेंकना शुरू करता है।)

द्रोण—(बाहर आकर अर्जुन को निहारकर) अर्जुन !

अर्जुन—कहिये गुरुदेव !

द्रोण—भील ने दाँये हाथ का अँगूठा काटकर चरण में रख दिया !!

अर्जुन—अहा हा ! बस हो गया ! अब तो मैं सर्वश्रेष्ठ...!!

द्रोण - (गंभीरता-पूर्वक) अर्जुन, आकाश में देखो उन अग्निज्वाला जैसे अक्षरों को !!

अर्जुन—(शून्य दृष्टि से आकाश में देखता है) कुछ नहीं है।

द्रोण—मुझ विश्वासघाती को स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। कुरुकुल के विनाश का बीज बोया जा चुका है। मानो किसी महाभयंकर दावानल जैसे युद्ध की ध्वनि दूर-दूर सुनाई दे रही है।

अर्जुन (विह्वल होकर शून्य दृष्टि से चारों ओर देखता है) गुरुदेव, अन्धकार में शब्द-वेधी बाण फेकूँ ?

द्रोण—(बिना ध्यान दिये—एक ही, स्थिर दृष्टि से) और उस भयंकर युद्ध में मानो मेरा हनन हो रहा है।

अर्जुन—(भय के साथ) गुरुदेव !

द्रोण—(उसी स्थिति में) मानो भीष्म का हनन हो रहा है। मानो विनाश हो रहा है !!

अर्जुन—(शीघ्रता से) गुरुदेव, गुरुदेव, आप कहाँ हैं ? क्या कहते हैं ! किसके हाथ से आपका हनन हो रहा है ?

द्रोण—(स्थिरता से कुछ स्वस्थ होकर) तेरे हाथ से ! मेरी मृत्यु मानो विश्वासघात से हो रही है। किसी भयंकर, अपकीर्तिकर युद्ध में तेरे ही हाथ से मेरी मृत्यु होगी—अर्थात् पांडवों के हाथ से !!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन – गुरुदेव, मेरे हाथ से ?

द्रोण – (एकदम स्वस्थ होकर) चलो, चलो। देर हो रही है। दावानल जैसे भयंकर युद्ध में इस विश्वासघात का बदला मिले ! और मृत्यु के द्वारा यह कलङ्क धुल जाय !!

अर्जुन—गुरुदेव, यह क्यों भूल जाते हैं कि भीलकुमार की अपेक्षा हम श्रेष्ठ हो गये।

द्रोण—चल-चल, अब हस्तिनापुर पहुँचा जाय ! तू बड़ा योद्धा होगा, परन्तु सच्चा योद्धा न हो सकेगा। एकलव्य तो एकान्त वीर है और रहेगा ! तू महत्वाकांक्षी योद्धा है, परन्तु वह तो पुरुषोत्तम है।

(जाते हैं)

अहमदाबाद।

वह

[देवीलाल सामर]

मेरी आँखों में उलझकर वह कहीं छिपा है।

मेरे हृदय-मंदिर में प्रेम की मीठी लौ उसने जला दी है। वह जीवन का स्नेहमय पथ-प्रदर्शक है, नेत्रों की उज्ज्वल ज्योति है, प्राणों की पाली हुई मधुर विरह-रागिनी है। मेरे जीवन की वही एकमात्र निधि है।

मैंने उसे देखा नहीं। मैंने उसे अपनाया नहीं और न मैंने उसके पद-स्पर्श का सौभाग्य ही पाया है। जीवन के अज्ञात दूतों ने उसकी स्नेह-स्मृतियों का अद्वितीय जाल बिछाया है। पर मैं दिन-दिन हृदय-मंदिर की संकीर्ण आराधनाओं से विचलित होकर अपने पथ से हटने लगता हूँ और अन्त में आसक्तियों से गुथा जाकर अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा भी खो बैठता हूँ।

परन्तु जब से मैंने मिलन का मोह त्यागकर विरह का विश्वव्यापी महत्त्व समझा है, मुझे आभास होने लगा है कि मंदिर की इन बंद दीवारों में मेरा आराध्य नहीं है। यह तो माया का झूठा सपना है। इसको तोड़कर ही इस विस्तृत विश्व में उसकी छबि देखी जा सकती है।

वह मेरी आँखों में उलझकर सर्वत्र छिपा है।

उदयपुर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तर्गीत

['अंचल'

भूल मत जाना पथी तरुणी तरुण मैं एक तुम-सा

[१]

गीत ये मेरे मिले पथ-रेणु में मैं था भिखारी
प्राण की वंशी भरे पथ भूल आई आयु सारी
इस नियति शासित पराजित भीरु जीवन के रुदन में
हो न पाया मैं मुखर भी तो अचेतन इस जलन में
कर न पाया संतरित मैं प्यास का वारिधि अपावन
खा गये अंगार मेरी पसलियों का सुख समर्पण
किस सुचीता के लिए व्याकुल जला यह भी न जाना
बालपन से ले प्रलय-मन्थन रहा चिर मूक प्यासा

[२]

व्यक्त भी तो कर न पाया लालसा के स्वप्न अपने
निज अभावों से अपरिचित आ गया स्वच्छन्द तपने
दूर मरु-संगीत-सा व्याकुल रहा ध्वनि-हीन तुम बिन
दूर था फिर भी तुम्हीं में रह चुका जैसे बहुत दिन
था अधिक अन्तर न—मुझ में थी सुलगती एक ज्वाला
एक बुझते दीप में भी जो न भर पाई उजाला
किन्तु सुख-दुःख में तुम्हीं-सा मैं बँधा रहने न पाया
काश पैदा ही न होता सुप्त ही रहती पिपासा

[३]

ज़िंदगी बीती मरण की गैल का श्रृंगार करते
शैल सन्ध्या-सा महावन की निशा का रूप भरते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह अजब अभिमान अपना भी कभी तो हो न पाया
वासना तीखी विफल ज्यों व्यर्थता की एक छाया
खून मेरी हसरतों का विश्व ने कर तृप्ति पाई
यदि क्षुभित पाषाण-सा निस्पन्द रहता शान्त-सा ही !
था भला होता न मरघट-सी तृषाओं का प्रदर्शन
और यों होता न प्राणों की प्रखरता का तमाशा

[४]

पूर्वगामी इस पथिक को भूलना साथी न मेरे
देख तरुणी के सुमुख जब मर्म झंझावात घेरे
जब मधुर पगध्वनि किसी की वक्ष में तूफान लाये
एक अमृत वेदना जब उच्छ्वसित हो-हो जलाये
भूलना मुझको न जिसने भी प्रणय का स्वप्न देखा
गन्धगीतों से भरी जीवन्त जिसकी लौह-रेखा
था मिला संसार जैसा छोड़ वैसा ही चला जो
पर अजीवन में लिये आकंठ जो जलती दुराशा

[५]

माधवी वन में फिरे निःशब्द जब दक्षिण समीरण
जब कथा के शेष रहते कंठ भर आये, उठे मन
वृन्त-च्युत सूखे सुमन-सी छूटती तब सुधि किसी की
फेंकना मेरे गृही मत काल कोषों में अगति सी
विध वधू के चुम्बनों में भूलना मुझ को न साथी
गूँथती जीवन-मरण की आँच मेरी कल्पना थी
तुम सफल, मैं किन्तु था असफल यही सम्बन्ध क्या कम
तृप्ति वह कैसी न जिसमें याद भी आई निराशा

[६]

और कोई यह निखिल लिप्सा अगर यह दाह लाता
प्राण-पीड़क एक तृष्णा ले अगर उठने न पाता
सत्य कहता हूँ न जो करता बहुत था और सब कम
मार छाती पर चरण-आघात द्रोही क्षुब्ध भृगु-सम
मैं बँधा ज्वालामुखी अब तक कभी का डोल जाता
बाँध रक्खा है किसी ने, मैं न बन्धन खोल पाता
इस क़फस में भी यहाँ चिरकाल जलने की न आशा
भूल मत जाना पथी तरुणी तरुण मैं था तुम्हीं-सा

प्रयाग ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साहित्य में प्रगति

[भूपेन्द्रनाथ दत्त]

[अनुवादक, बैजनाथसिंह 'विनोद']

[श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त स्वामी विवेकानन्द के सबसे छोटे भाई और क्रान्तिकारी नेता हैं। १८९५ ई० से आपका सम्बन्ध और क्रियात्मक सहयोग क्रान्तिकारियों से रहा है। अमेरिका के ब्राउन विश्वविद्यालय से एम० ए० और जर्मनी के हम्बर्ग विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की है। अपने १७ साल के लम्बे निर्वासन काल में आपने विदेशों में भ्रमण और वहाँ की सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया है। इन दिनों आप बँगला में 'संसार का सामाजिक इतिहास' लिख रहे हैं। कुछ समय तक आप रूस में लेनिन के पास भी रह चुके हैं। 'हंस' के पाठकों को यह लेख विचार करने की एक नई दिशा देगा।—सं०]

आजकल चारों ओर से आवाज़ सुनाई पड़ रही है कि साहित्य में प्रगति की ज़रूरत है। लेकिन जनता इस आवाज़ का अर्थ नहीं समझती। साहित्य में प्रगति की अर्थात् आगे बढ़ने की ज़रूरत है। पर इसका अर्थ क्या है? बंगाल के साहित्यिकों के लिए इसका कुछ भी अर्थ नहीं है। इसीलिए प्रगतिशील लोगों को साहित्य में अग्रग्रामी शक्ति का संचय करना होगा। प्रगति के अर्थ का विश्लेषण करना होगा।

हमारे देश के साहित्यिक साधारणतया सनातनवादी हैं—अर्थात् सभी बातों में इस देश के लोगों की जिस तरह की मनोवृत्ति है, वही इस क्षेत्र में भी दिखाई पड़ती है। भूतकाल से चिपटे रहना और उसी को साहित्य-सेवा का चरम लक्ष्य समझना, भूतकाल में साहित्यिकों ने साहित्य को जो रूप दिया, जो सीमा निर्धारित कर दी, जो विचार-धारा प्रवाहित कर दी, उसके बाहर भी साहित्य-रस प्रवाहित हो सकता है, यह ख़याल आज भी इस देश के साहित्यिकों के दिमाग़ में अभी तक नहीं आया। इस देश की साधारण जनता के लिए अब भी साहित्य का अर्थ काव्य, नाटक और अलंकार है। लेकिन पश्चिम की विशिष्ट अग्रगामी जातियों में 'लिटरेचर' का अर्थ अपनी मातृ-भाषा में लिखित किसी भी पुस्तक से होता है, इसीलिए विज्ञान की पुस्तकें भी वैज्ञानिक 'लिटरेचर' कहलाती हैं। दूसरी ओर हम जिसे साहित्य कहते हैं उसे (Humanism) अर्थात् क्लासिकल भाषा में लिखित पुस्तकों के अन्दर गिना जाता है। इसके बाद उन देशों में जिन्दा साहित्य को नाना भागों में विभक्त किया गया है—जैसे आइडियलिज्म, रोमांटिसिज़्म,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रियलिज़्म। इसके अलावा प्रगतिशील लेखकों ने साहित्य को, संस्कृति के उत्कर्ष का पता लगाने के लिए, प्राचीन युग, सामन्त युग, बुर्जुआ युग, और प्रालिटैरियट युग के नाम से पुकारा है।

हमारे देश में साहित्य के अन्दर एक ही विभाग गिना जाता है। बाक़ी के तो अभी तक अनुसन्धान के विषय भी नहीं हुए। भूतकाल की विचार-धारा और वर्तमान काल के राष्ट्रीय उन्माद में रहते हुए भाव-विलासी लोगों को सब कुछ एक-सा ही दिखाई पड़ता है। इन सब विषयों को बोधगम्य करने के लिए साहित्य के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ खोज की ज़रूरत है।

साहित्य किसे कहते हैं और उसमें हम क्या देखते हैं, यही हमारी खोज का विषय है। व्यक्ति का विचार, विचारधारा और पारिपार्श्विक जगत की घटनाओं (Phenomena) को देखकर, जब कोई उनको कलात्मक अभिव्यंजना के साथ भाषा में लिपिबद्ध करता है, तब उसे साहित्य कहते हैं। साहित्य में अपूर्ण या कपोलकल्पित कुछ नहीं है। मनुष्य की विचार-धारा उसकी बाहरी दुनिया की परिस्थिति का सापेक्ष है। विचार के पीछे आर्थिक और नैतिक उपादान रहते हैं। मानव जाति के आर्थिक परिवर्तनों के साथ सामाजिक आवर्तन-विवर्तन संघटित होते हैं, उसी के साथ-साथ उसके भावों में भी परिवर्तन के साथ ही सामाजिक रूपान्तर द्वारा संस्कृति में जो परिवर्तन होते हैं, उसका प्रमाण हमें इतिहास और साहित्य में मिलता है। साहित्य में तत्कालीन समाज का चित्र होता है, इसी से साहित्य में हम समाज-विज्ञान के माप-दण्ड से प्रत्येक युग की संस्कृति का परिचय पा सकते हैं। और इसीलिए साहित्य में सनातन-धारा या अखण्ड वस्तु नामक कुछ भी नहीं है। राष्ट्रीय-जीवन के प्रत्येक युग का चित्र हमें साहित्य में मिलता है। आइडियलिज़्म, रोमांटिसिज़्म आदि भागों में विभाजित करने से साहित्य का पर्याप्त विश्लेषण नहीं होता ; क्योंकि इन सब विभागों के पीछे भी इतिहास की आर्थिक और नैतिक व्याख्या अन्तर्निहित है। इसलिए यह निश्चित है कि साहित्य समाज के अनुरूप होगा। साहित्य में समाज-विज्ञान का पता चलता है। साहित्य एक बहुत बड़ा काम करता है, वह है भाव का प्रचार। यही साहित्य की सक्रियता है। यही कारण है कि जब लोग अपनी विचार-धारा को मातृभाषा में लिखकर समाज में प्रचारित करने की चेष्टा करते हैं, तभी उस विषय का एक साहित्य तैयार हो जाता है। इसलिए जिस समाज में जितना अधिक संघर्ष है, उसमें उतना ही साहित्य का नाना मुखी विकास दीख पड़ता है। जिस समाज में हमेशा एक ही सुर सुनाई पड़ता है, वह मृत-प्राय है ; वह क्रमिक विकास या आवर्तन के बाहर जाकर गतिहीन हो गया है।

जिस तरह समाज में कोई साधारण धारा नहीं है, उसी तरह साहित्य में भी कोई साधारण धारा नहीं है। साहित्य किसी खास युग या विचार-धारा में आबद्ध नहीं रह सकता। ऐसा जहाँ होता है, वहाँ जाति मुर्दा है और वह बँधा साहित्य कूड़े से भी कम महत्त्व का है। राष्ट्रीय जीवन की नई अवस्था का प्रभाव नये साहित्य का सृजन है।

भारत के साहित्य का युग और क्षेत्र बहुत विस्तृत है। अध्यापक विंटरनिट्ज़ ने अपने 'भारतीय साहित्य का इतिहास' में कहा है कि वह ऋग्वेद से रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक विस्तृत है। इसका समय तीन हज़ार वर्ष से भी अधिक है। इसलिए इसमें नाना युग और विभिन्न विचार-धाराओं की लीला दिखाई पड़ेगी। वर्तमान संस्कृत की सन्तान बँगला भाषा को छोड़कर हम केवल वेद की भाषा से निकली हुई संस्कृत भाषा तथा उसके पाली और प्राकृत रूप में जिस साहित्य की सृष्टि हुई है, उसका पहले विश्लेषण करेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्लुमफ़िल्ड इत्यादि पंडितों का कहना है कि ऋग्वेद धनी क्षत्रिय और ब्राह्मणों के यशादि का ही उल्लेख करता है। यह दानस्तुति, दश राजाओं का युद्ध, इन्द्र के स्वयंवर के विरुद्ध युद्ध, हाथी पर पात्रवेष्टित राजा इत्यादि उच्च स्तर के क्रिया-कलाप के गानों से भरा पड़ा है। इसमें 'महाकुल' तथा 'मघवन' आदि का उल्लेख है। इसी से जाहिर होता है कि वेद का मन्त्र-भाग समाज के उच्चवर्ग के लोगों की स्तुति से भरा है। बाद में, जब प्रचलित वैदिक धर्म के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा हुई और साधारण जनता की भाषा में धर्म-पुस्तकें लिखी जाने लगीं, उसी समय प्राकृत और पाली भाषा में जैन और बौद्धाचार्यों ने जनता का थोड़ा-सा ज़िक्र किया है। इन पुस्तकों में सनातन प्रथा को तोड़कर जब सुधारक लोगों ने शूद्र और पतितों का आह्वान किया, तब श्रुति, स्मृति और इतिहास को तोड़ कर एक नये समाज की सृष्टि होने लगी; उसी का चित्र हम जनता की भाषा में (जातक, अवदान और अंगादि पुस्तकों में) पाते हैं। लेकिन जब अन्तिम मौर्य्य सम्राट् का वध करके उसके सेनापति पुष्यमित्र ने ब्राह्मणों का आधिपत्य कायम किया, और जिस युग में 'मानवधर्मशास्त्र' लिखा गया * उस समय से हम संस्कृत भाषा में एक दूसरा सामाजिक चित्र देखते हैं। ब्राह्मणाधिपत्य के युग से नई संस्कृत का आदर हुआ; यह आदर गुप्त-युग में अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच गया। इतिहासज्ञों का कहना है कि प्राचीन हिन्दू सभ्यता का उत्कर्ष १००-७०० ई० में हुआ। सब से पहले बौद्ध अश्वघोष ने नाटक लिखा; तत्पश्चात् भास, कालिदास, भवभूति, भट्टिनारायण तथा श्रीकृष्ण मिश्र ने नाटक लिखे। श्रीकृष्ण मिश्र का समय १३वीं सदी बताया गया है। उस समय हिन्दुस्तान पर तुर्कों का आक्रमण शुरू हो गया था; शायद इसीलिए श्रीकृष्ण मिश्र के 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में हमें तुर्कों का उल्लेख मिलता है।

ब्राह्मणों के लिखे हुए जिस विस्तृत साहित्य पर हमें आज भी गर्व होता है, उसका रूप क्या है? विश्लेषण करके हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वर्णाश्रम-धर्म की प्रधानता, कुल और वंश की महिमा, स्वामीधर्म †, सामन्त राजाओं का अस्तित्व, शिक्षिता गणिकाओं का प्रादुर्भाव, दासवर्ग का अस्तित्व, राजाओं के प्रासाद में 'रंग-महलों' का अस्तित्व, स्त्रियों में पर्दा-प्रथा, राज-महलों में कंचुकी तथा पहरेदार, स्त्रियों का कानूनी अधिकार से वंचित होना (यद्यपि वैदिक युग के बाद पुरुष और स्त्री दोनों के अधिकार को कुत्स ने स्वीकार किया है ‡), सामाजिक अदब-कायदों की बहुलता इत्यादि वर्तमान थे। इन सब पुस्तकों में सामान्त-युग पूरी मात्रा में प्रकट हुआ है; इसीलिए उनमें जन और गण की कोई खास खबर हमें नहीं मिलती; सिर्फ़ राजा, रानी, सेनापति, मन्त्री, राजा और राजकन्या के प्रेमी ही मिलते हैं।

इस प्राचीन सामन्त-युग के इतिहास में एक बात देखने लायक है कि भास से लेकर हर्षवर्द्धन तक सभी ने अपना नाटक एक ही साँचे में ढाला है। इनमें कथानक की बहुलता नहीं रहती थी। इतिहासकारों का कहना है कि जो कुछ भी है, वह सब गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत भाषा में लिखी हुई 'बृहत् कथा' के आधार पर रचित है। इन पुस्तकों में एक ही युग और एक ही वर्ग की बात का वर्णन किया गया है। और ये एक ही साँचे में ढली हुई हैं।

---

* Vide K. P. Jayaswal's "Manu and Yagyavalka."

† Nobless oblige (French).

‡ Vide Yaska's "Nirukta."

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस युग के संस्कृत-साहित्य में हमें एक तरफ ब्राह्मणाधिपत्य और वर्णाश्रम का महात्म्य, (कालिदास, भवभूति को देखिये) और बड़े-बड़े क्षत्रिय राजाओं के गुणकीर्तन में व्यस्त रहने के कारण ब्राह्मण-लेखकों द्वारा साधारण लोगों को आश्चर्यान्वित करनेवाले प्रयत्न, हिन्दू-समाज की सनातनता और ब्राह्मणवाद की स्वीकृति मिलती है। दूसरी तरफ हम देखते हैं कि लोकमत नास्तिकता, वास्तविकता और सुखभोग का प्रचार कर रहा है। इस मत को मान-लेनेवाले दल में धनकुबेर 'नागरक' लोग थे। प्राचीन हिन्दुओं के उत्कर्ष के युग में, जब भारतीय पोत विभिन्न देशों से 'मुक्ता के बदले मुक्ता और जीरा के बदले हीरा' लेकर लौट आते थे, तो इन पोतों के मालिकों में से ही 'नागरक' वर्ग की उत्पत्ति हुई। वात्स्यायन ने कहा है कि 'नागरक' लोग लोक-मत-धर्म के अनुरागी होते हैं। * 'जंगल में दो मोरों की खोज से हाथ में एक चिड़िया का रहना अच्छा है' यही लोकमतवादियों का मत है। असल बात यह है कि देश में धन-दौलत की वृद्धि और सामन्त अभिजात्य-वर्ग (Feudal aristocracy) के साथ एक बुर्जुआ वर्ग दिखलाई पड़ा। 'नागरक' लोग पश्चिमी देशों के वर्तमान धनकुबेरों की तरह जीवन व्यतीत करते थे। पैरिस में जो वर्ग 'Boulevardier' कहलाता है, प्राचीन भारत के 'नागरक' लोग उसी की प्रतिमूर्ति थे। भास का चारुदत्त गरीब होने पर भी उसी वर्ग का है। संक्षेप में समाज के उच्चस्तरस्थित अभिजात्यवर्ग के लोग वर्णाश्रम धर्म और वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण का गुण गाते थे, और धनकुबेर 'नागरक' लोग वास्तववादी होते थे; नास्तिकवाद और भोगवाद को मानते थे। इसीलिए वे बृहस्पति और चार्वाक के लोकमत के भी अनुगामी हुए। फिर इसी समय गण के बारे में बौद्ध अवदान तथा दूसरी धर्म-पुस्तकों में लिखा मिलता है। वे साम्यवादी बौद्ध-धर्म के अनुगामी थे।

जब भारतीय समाज की यह हालत थी, तब हिन्दू उत्कर्ष के अन्तिम समय में तान्त्रिक-धर्म की उत्पत्ति हमें दिखाई पड़ती है। सामाजिक दृष्टि से तान्त्रिक-धर्म वर्णाश्रम का विरोधी नहीं था। इसीलिए हम साहित्य में ब्राह्मणवाद के साथ तान्त्रिकता की तमाम अलौकिक कहानियों की उत्पत्ति देखते हैं। राजशेखर की 'विद्धशाल मंजिका' से भवभूति के 'मालती माधव' नाटक में इसका परिचय मिलता है। 'मालती माधव' नाटक में कापालिक, अघोर घंटा और उसकी शिष्या कपाल-कुण्डला का वीभत्स वर्णन है। कापालिक ने देवी को स्त्री-रत्न उपहार देना कबूल किया था; कपाल-कुण्डला उसी रत्न की तलाश में थी—(भवभूति कविकथा २ खण्ड, ४७८ पृष्ठ)।

इस तरह संस्कृत-साहित्य में विभिन्न युग और वर्ग का चित्र वर्णित है। यहाँ प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक का उल्लेख आवश्यक है। यह धार्मिक पुस्तक है, रूपक के तौर पर लिखी गई है और इसमें ब्राह्मण्यवाद की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है।

× × ×

बंगाल में जब बौद्ध शासन लुप्त हो गया और ब्राह्मण्यवादियों का शासन स्थापित हुआ, और ब्राह्मणों ने एक उग्र राष्ट्रीय चेतना पैदा कर दी, (यह चेतना दसवीं शताब्दी के भवदेव भट्ट में भी मिलती है †) मेरे अनुमान से, उसी समय यह नाटक लिखा गया होगा।—श्री ज्योतीन्द्र-नाथ ठाकुर के बंगला अनुवाद से उद्धृतांश पढ़ने से ही यह समझ में आ जायगा।

---

* Vide Prof. H. C. Chakladar's translation of "Kamasutra."

† Vide Ipigraphica Indica 'Inscription of Bhavdeva Bhatt.'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अहंकार—(क्रोध से) अरे, मालूम होता है हम तुर्कों के मुल्क में आये हैं, नहीं तो क्या अतिथि-ब्राह्मण को भी गृहस्थ लोग पैर धोने के लिए जल नहीं देते ?'—(पृ० २१)

× × ×

'अहंकार—अत्युत्तम राज्य एक गौड़तार नाम
ताहारि गो राढ़ देशे भूरि श्रेष्ट ग्राम ;
से ग्रामे करेन वास श्रेष्ट मोर पिता,

× × ×

तार माझे सर्वोत्तम जानिवे आमारे
प्रज्ञाशील बुद्धि धैर्य्य विनय आचारे'

(पृ० २२)

यह बंगाल में ब्राह्मणाधिपत्य अर्थात् 'ब्राह्मण-क्षत्रिय' सेन राजाओं के समसामयिक युग के आडम्बर की बात है । यह पुष्पमित्र द्वारा प्रतिष्ठित Brahmanical Imperialism * स्थापित होने के बाद, बंगाल के ब्राह्मणों के आडम्बर की प्रशंसा है । इसके बाद तुर्कों की नज़र बंगाल पर पड़ी । ब्राह्मण तब गौड़देश का आडम्बर नहीं करता है, बल्कि अपने वर्ण और वंश की प्रशंसा करता है । अब देवीवर घटक का 'मेल-बन्धन', रघुनन्दन का 'सतीदाह' और आचारों के पालन की कड़ाई की बारी आई । इस तरह हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय साहित्य में भी वर्ग-संघर्ष का चित्र मौजूद है और आर्थिक, नैतिक तथा सामाजिक क्रम-विकास के साथ-साथ भावों में परिवर्तन हुआ ।

अब हम बँगला-साहित्य की थोड़ी-सी खोज करेंगे । बँगला-साहित्य प्रायः १००० वर्ष प्राचीन है । गौड़-प्राकृत विभिन्न अभिव्यक्तियों से होकर बँगला भाषा ने रूप ग्रहण किया है । वर्तमान बंगाल के इतिहास-लेखक बँगला भाषा का ठीक इतिहास ईसा की सातवीं सदी के शशांक नरेन्द्रगुप्त से आरम्भ करते हैं । हाल ही में पाई जानेवाली एक बंगाली बौद्ध-लिखित 'आर्य मंजुश्री मूलकल्प' † में लिखा है कि शशांक ब्राह्मणवंशीय थे । तत्पश्चात् अराजकता के कारण प्रजा ने भद्र नामक एक शूद्र को गद्दी पर बिठाया । इसके बाद एक प्रजातन्त्र की स्थापना हुई । 'मात्स्यन्याय' से फिर जर्जरित हो जाने पर प्रकृतिपुंज ने गोपाल नामक एक सरदार को गद्दी पर बिठाया । उपरोक्त पुस्तक में गोपाल की जाति के बारे में लिखा है कि वह 'दास जीवित' अर्थात् दासजीवी—शूद्र थे । इसी गोपाल ने विख्यात् पालवंश की स्थापना की थी । इसी समय बंगाल के राजाओं को कुछ समय के लिए उत्तर भारत में सार्वभौमिकता मिली । उन्हें 'पंचगौड़ेश्वर' की उपाधि प्राप्त हुई । लेकिन बँगला साहित्य में इस प्रबल पाल-युग का कोई निदर्शन नहीं मिलता । कुछ गीतों में यह शब्द पाया जाता है । उसका बहुत थोड़ा-सा अंश आविष्कृत हुआ है । इसके बादवाले युग के ब्राह्मणों ने बंगालियों के शौर्य्य, वीर्य और गुण-गरिमा का चिन्ह बिलकुल धो डाला है । अब 'धान कूटने के समय महीपाल के गीत के बदले शिव का गीत गाया जाता है ।' 'चैतन्य-चरितामृत' में बड़े दुःख के साथ कहा गया है : 'जोगीपाल, भोगीपाल, महीपाल गीत ; सुने सब लोग आनन्दित !'

* Vide Ipigraphica Indica 'Plate of Viswarup Sen and Lakshman Sen.'
† Dr. Jayaswal's 'An Imperial History of India.'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्व० महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री की राय है कि बंगाल में बौद्ध संस्कृति के सारे चिह्नों को ब्राह्मणों ने लुप्त या रूपान्तरित कर दिया *। हज़ार वर्ष पहले बंगाल बौद्ध-प्रधान देश था ; पर इसका आज कोई चिह्न नहीं है। भीषण वर्ग-संघर्ष का यह एक निर्मम दृष्टान्त है। दसवीं सदी में इस संघर्ष ने धर्म-संघर्ष का रूप लिया। बंगाल की कहावत है :—

'आग्ग डोम, बाग्ग डोम, घोड़ा डोम साजे,
डाल, गागर मृगल बाजे,
साजते-साजते पड़ल साड़ा,
साड़ा गेलो बामुन पाड़ा।'—‡

इसने उस संघर्ष की स्मृति जगा रखी है। उस समय के इतिहास में बौद्ध-दमन दिखाई पड़ता है। राढ़ देश के शूर लोग और पूर्वी बंगाल के बर्मन लोग विदेशों से आये हुए ब्राह्मण्यवादी थे। उन लोगों ने बंगालियों के गले में पराधीनता की जंज़ीर पहनानी शुरू की। कर्णाटक से आये हुए सेन लोगों ने उसे पूरा किया। इस समय से एक तरफ ब्राह्मण्यवादियों का जुल्म और दूसरी ओर बौद्ध बंगालियों का विक्षोभ—इन दोनों ने मिलकर मुसलमान तुर्कों द्वारा बंगाल को सहज पराजित करा दिया। × इस युग को जो बंगला-साहित्य मिला है, उसमें से 'सूर्येर पाँचाली', 'शून्य पुराण' और 'धर्म पुराण' इत्यादि में हमें बौद्ध धर्मावलम्बी जन-श्रेणी की ख़बर मिलती है। 'धर्म मंगल' को बंगला का महाकाव्य कह सकते हैं। इसमें धर्म ठाकुर के भक्त लाउसेन के युद्ध का वर्णन है। इसमें लिखा है कि सम्राट् धर्मपाल की साली के पुत्र कामरूप-विजयी लाउसेन का दाहिना हाथ कालू डोम था। इस महाकाव्य में हम देखते हैं कि डोम सेनापति इन्द्रमेटे गौड़ का शहर कोतवाल है। ढ़ेकुर का शहर कोतवाल एक चांडाल है और ढ़ेकुर का कर्ता-धर्ता सम्भवतः ग्वाला है। 'आर्य-मंजुश्री' कथित पाल राजाओं की जाति और उनके सामन्त तथा अमलों की जाति देखकर तत्कालीन बंगाल के समाज का रूप समझा जा सकता है। आज के अधःपतित उस समय के उच्चवर्णवाले और शासक-श्रेणी के समझे जाते थे। सेन-युग से बंगाल के सामाजिक पट का परिवर्तन, और वर्तमान सामाजिक रूप-ग्रहण की निष्ठुर स्मृति, बंगला-साहित्य में नहीं है! इसके बाद ब्राह्मण-युग में हमें ऊँचे वर्ग के शैवधर्म तथा संघर्ष 'मनसा मंगल' और 'मनसार मासान' नामक पुस्तकों में मिलता है।

इतिहासज्ञों का कहना है कि बंगाल के पाल लोग महायानी बौद्ध थे और महायानी बौद्ध-धर्म तान्त्रिक तथा शैव-धर्म के साथ मिल गया था। इसीलिए बंगाल का अभिजातवर्ग या तो महायानी बौद्ध था और नहीं तो तान्त्रिक। और साधारण जनता हीनयान, सहजयान,

---

* Vide "Anniversory Lectures of Haraprasad Shastri in Bangiya Sahitya Parishat Patrika."

‡ पैदल, घुड़सवार वगैरह सेनाएँ सज रही हैं,
डाल, गागर, मृगल आदि बाजे बज रहे हैं,
सजते-सजते तहलका मच गया,
(और) इसकी खबर ब्राह्मणों के मुहल्ले में पहुँची।

× देखिये—रमाबाई पंडित लिखित "शून्य पुराण' में (निरंजन की उष्मा)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाथधर्म तथा अन्यान्य मतावलम्बी थी। * लेकिन ब्राह्मण्यवाद के प्रचलन के साथ दिखाई पड़ता है कि उच्चवर्ग या तो तान्त्रिक, नहीं तो शैव था और साधारण जनता के साथ धर्म का संघर्ष जारी था। महेंजोदाड़ो में जो पुरातत्व सम्बन्धी (Archaeological) चीजें मिली हैं, उनसे मालूम होता है कि ५००० वर्ष पहले भी साधारण जनता पीपल वृक्ष, नाना प्रकार के पशुओं और लिंग की पूजा करती थी। यह धर्म आज तक भी अन्तःसलिला की भाँति भारतवर्ष में प्रवाहित है। इसीके ऊपर वैदिक धर्म आरोपित किया जाता है। ÷ लेकिन बंगाल के अभिजात ब्राह्मण्य-वाद के साथ इसका मेल नहीं हुआ ; इसीलिए 'मनसा मासान' में हम देखते हैं कि धनी चाँद सौदागर कहता है:—

'जे हातेते पूजी आमि देव शूलपाणि
से हाते पूजिब आमि काणिच्यांग मूड़ि !'

इन कविताओं से हमें साधारण जनता की ख़बर मिलती है। इस समय के सेन राजाओं के युग में और तथाकथित पठान युग में ब्राह्मणों के द्वारा बंगला साहित्य का विकास हमें नहीं दिखाई पड़ता। इतिहासकारों का कहना है कि मुसलमान राजा लोग बंगला साहित्य के स्रष्टा थे। ब्राह्मण पंडित लोग गौड़-प्राकृत को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसके बाद मुगल शासन के पहले कवि कंकण की 'चंडी' का आगमन हुआ। मुगल शासन के साथ बंगाल की राजनीति के क्षेत्र में सामन्तशाही ख़त्म हो गई।

मुगलों ने भारत में केन्द्रीय शासन-प्रणाली प्रचलित की। इस समय से बंगाल के ज़मीन्दार कहलानेवाले लोग न तो किलों में रहनेवाले सामन्त राजा थे, और न तो Manor निवासी बैरन (Boron) ही थे। वे सिर्फ लगान वसूल करनेवाले अमले थे। बाद के युग के साहित्य की समालोचना के समय हमें इस बात को याद रखना होगा। कवि कंकण की 'चंडी' में तत्कालीन बंगाल का वास्तविक चित्र मिलता है ; उसमें पश्चिमी बंगाल का सच्चा सामाजिक चित्र मिलता है। उसमें दरिद्रों की अवस्था का वर्णन मिलता है—बारहमास अभागी फुल्लरा करे उदरेर चिन्ता। लेकिन आश्चर्य की बात है कि बंगाल में सामन्तशाही का अवसान हो जाने पर भी, उस प्राचीन युग से संस्कृत-साहित्य में पंडितों ने जो रास्ता बना दिया है, कवि कंकण की चंडी भी उसी से होकर प्रवाहित हुई है। जिस तरह एक तरफ ब्राह्मण-आदर्श का विरोध करके चंडी की महिमा बढ़ाने के लिए एक अस्पृश्य व्याध को राजा बनाया गया है और उसी तरह प्राचीन संस्कृत-साहित्य की भाव-धारा का अवलम्बन करके कलिंग के राजा को भी खड़ा किया गया है, और कालकेतु उसी का सामन्त है ! कवि कंकण इतने वास्तविकतावादी थे कि चण्डी के सामने पशुओं की दुःख-गाथा में उन्होंने उस समय के बंगाल का राजनैतिक और सामाजिक चित्र अंकित किया है। लेकिन प्राचीन साहित्य के मोह में पड़कर व्याध कालकेतु को सामन्त राजा बनाया है, और वृद्धावस्था में स्त्री के परामर्श से प्राण के डर से धान के गोले में छिपाया है। कालकेतु को एक अजेय बंगाली वीर नहीं बनाकर, यह अन्तिम चित्र क्या बंगाली योद्धा का वास्तविक चित्र है ?

---

* Vide Haraprasad Shastri's Introduction to N. N. Basu's Budhism in modern Orisa.

÷ Vide Marshal's Mahenjodaro and Indus Valley Civilization.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुकुन्दराम के बाद, बंगाली कवियों में श्रेष्ठ भारतचन्द्र हुए। साहित्यिकों का कहना है कि उनका 'विद्या सुन्दर' प्राचीन पुस्तकों का नवीन संस्करण मात्र है। इसमें भी हमे उसी प्राचीन सामन्तशाही का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अवश्य इसमें तत्कालीन मुसलमान-दरबारी प्रभाव मिश्रित हैं। भारतचन्द्र ने प्रतापादित्य को बड़ा दिखाया है, और उसी के साथ उस समय का कुछ ऐतिहासिक हाल भी दिया है। उन्होंने तत्कालीन हिन्दुओं की पराजय-मनोवृत्ति दिखाई है। कवि कहता है:—

'पातसाही ठाटे कबे केबा आँटे

× ×

विमुखी अभया के करिबे दया,

प्रतापादित्य हारे।'

लक्ष्य करने की बात यह है कि इस युग के साहित्यिकों ने बंगला भाषा में एक स्वतन्त्र साहित्य की रचना तो की पर वे प्राचीन संस्कृत के साहित्यिकों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। वे संस्कृत-साहित्य का अलंकार बंगला में चला रहे थे; इसीलिए भारतचन्द्र ने प्रतापादित्य के साथ मुगलों की लड़ाई में सैनिकों से 'मुचड़िया गोफे शूल-शेल-लोफे' कहा है और युद्ध-वर्णन में 'चन्द्र-बाण, वायु-बाण' इत्यादि का उल्लेख किया है। इसी समय होने वाले माणिक गंगुली ने अपने 'धर्म पुराण' में लाऊसेन का यशगान करते हुए उसमें संस्कृत महाभारत की शैली घुसा दी है! इससे एक ओर जिस तरह चिन्ताशक्ति की अनुर्व्वरता का परिचय मिलता है, दूसरी ओर सनातन धारा को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा भी इन ब्राह्मण लेखकों में थी, ऐसा अनुमान होता है। तभी एक जर्मन समाज-शास्त्री ने कहा है कि ग्रीक, हिन्दू प्रभृति प्राचीत जातियाँ Space and time को अग्राह्य करके चलती थीं।

भारतचन्द्र के बाद अंग्रेजी शासन का युग शुरू हुआ। इस युग में एक मध्यवित्त वर्ग का जन्म हुआ। बंगाल के समाज का हरएक विषय में इसी वर्ग ने नेतृत्व किया है। लेकिन उपरोक्त दोष के कारण उन्नीसवीं सदी के बङ्गाली साहित्यिक लोग भी सामन्त-युग के मोह से अपने को मुक्त नहीं कर सके। हम देखते हैं कि इस युग के लब्धप्रतिष्ठि लेखकों के नायकों में कोई तो किले में रहनेवाला भू-स्वामी है और उसके महल की स्त्रियाँ कक्ष, गवाक्ष और आम के बगीचे में 'सखी-संवाद' करती हैं; नहीं तो वह उसके Substitute जमीन्दार है, जो कहता है कि—'मेरे सामने पुलिस मजिष्टर क्या है?' 'मैं ही पुलिस हूँ, मैं ही जज मजिष्टर हूँ।'* इस युग के लेखक भूल जाते हैं कि वर्तमान काल की बुर्जुआ अर्थात् पूंजीवादी सभ्यता में सामन्त-शाही भू-स्वामी का स्वार्थ नहीं है। आजकल के जमीन्दार अंग्रेजों के लिए प्रजा से मालगुजारी वसूल करने वाले एजेण्ट मात्र हैं।

इस तरह बँगला साहित्य में एक Anachronism कालव्यतिक्रम मौजूद है। हम एक युग में हैं और साहित्य में चित्र है किसी दूसरे युग का! यह सच है कि भारतीय समाज सामन्तशाही की आर्थिक नैतिक नींव पर अब भी प्रतिष्ठित है, लेकिन अंग्रेज़ी हुकूमत तथा उद्योग-धन्धों के कारण जो मध्यवित्तवर्ग यानी बुर्जुआ-वर्ग सर्वत्र पैदा हुआ है, और जो भारतवर्ष के शासन में अंग्रेज़ों का प्रतिद्वन्दी है, उसका अस्तित्व हमारे साहित्य में कहाँ है? इसके अलावा आजकल भारतवर्ष भर में जो मज़दूर और किसान-जाग्रति हो रही है और वह जो अपने आपको

* Vide Bankim Chatterjee's Krishna-Kanta's Will.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारत का शासन-भार ग्रहण करने का अधिकारी घोषित कर रहे हैं, उसका भी निदर्शन हमारे साहित्य में कहाँ है ? इसकी जगह हम देखते हैं कि एकाएक सिर पर शिखा और एक हाथ में मनु-रघुनन्दन तथा दूसरे में कार्नवालिस का इस्तमरारी बन्दोबस्त का शर्तनामा लेकर समाज में 'विप्रदास' का आविर्भाव हुआ है । समग्र भारत में आज जन-शक्ति जाग रही है, सर्वत्र कायमी स्वार्थों (Vested interests) को उठा देने की चर्चा चल रही है और आन्दोलन हो रहा है, साम्यवाद स्थापित करने की आवाज़ सुनाई पड़ रही है ; ऐसे समय में ब्राह्मणों की प्रधानता और जमीन्दारों के उँचे आदर्श को दिखाने के लिए, इस व्यापारिक तथा औद्योगिक (Commercial and Industrial) युग में 'विप्रदास' के आक्रमण की राजनैतिक चालबाजी बहुतों से छिपी न रह सकी । हम जानते हैं कि बुनियादी या कायमी स्वार्थ अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए बड़े अध्यापकों से अपना प्रचार-कार्य करवा रहा है । इसीलिए इस युग में 'विप्रदास' का एक ही साथ ब्राह्मण और जमीन्दार के रूप में आविर्भूत होकर इन दोनो कायमी स्वार्थों के पक्ष में वकालत करना आश्चर्यजनक तो नहीं है, तथापि बँगला-साहित्य में काल-व्यतिक्रम का यह एक और प्रमाण है । हम 'विप्रदास' को श्रेणी-संघर्ष का प्रतीक —Symbol समझते हैं । और साहित्य का यह इस्तेमाल फैसिस्ट देशों में भी हो रहा है ।

इस तरह हम देखते हैं कि बुर्जुआ-युग में बँगला में बुर्जुआ-साहित्य नहीं तैयार हो रहा है । लेकिन आजकल के बहुत से लेखक मध्यवित्त के नायक-नायिकाओं को केन्द्र मानकर उपन्यास और नाटक लिख रहे हैं । पर केवल मध्यवित्त-वर्ग के नायक-नायिकाओं की कहानी से बुर्जुआ-साहित्य नहीं बनता । उन्नीसवीं सदी के फरासीसी और अमेरिकन साहित्य को जिस तरह हम सम्पूर्ण रूप से बुर्जुआ-साहित्य कह सकते हैं, उसी तरह सामन्तशाही के प्रभाव से मुक्त होकर मध्यवित्त-वर्ग के लोगों को केन्द्र मानकर जो साहित्य तैयार होता है, उसीको बुर्जुआ-साहित्य कहते हैं ।

क्योंकि बँगला का समाज अभी तक सम्पूर्ण रूप में बुर्जुआ-श्रेणी का नहीं है और हमें बुर्जुआ-साहित्य पूर्णरूप में दिखाई नहीं पड़ता । मध्यवित्त-वर्ग के लोगों के आधार पर जो साहित्य तैयार हो रहा है, वह भी अभी तक प्राचीन काल के प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं कर सका है । बुर्जुआ-साहित्य में हम साधारणतः आधुनिक लोगों का चरित्र अंकित होते देखते हैं । वे प्राचीन काल के मोह से मुक्त होकर आधुनिक वैज्ञानिक तरीके से दुनिया का धन-सम्पद भोगने के लिए व्यस्त रहते हैं । पुराने कानून, विधिनिषेध और समाज के बन्धनों को तोड़कर समाज को नये सिरे से बनाना चाहते हैं । अमेरिका, फ्रांस, कमाल की तुर्की आदि इसी के दृष्टान्त है । लेकिन हमारे साहित्य में सामाजिक क्रान्ति का वह सुर कहाँ है ? 'पणरक्षा' में हम देखते हैं कि नायक जवानी में सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी लेता है ; पर जब उसके पास अपना 'तीन मंजिला मकान' हो गया तब 'किसी प्रकार परिवार के पहलेवाले इतिहास के इस अध्याय को उड़ाकर उसे समाज में प्रतिष्ठित होने की धुन सवार हो गई । अपनी लड़की की शादी समाज में करने की उसने ठानी...शिक्षित अच्छा वर न मिले तो हर्ज़ नहीं, कन्या के समग्र जीवन की बलि देकर भी, वह समाज-देवता का प्रसाद पाने के लिए व्यग्र हो उठा ।' फिर 'हालदार गोष्ठी' में पढ़ते हैं—'बड़े घर की माँग क्या मामूली माँग होती है ? उसे तो निष्ठुर होने का अधिकार है । उसके सामने किसी तरुणी स्त्री या किसी दुःखी कैवर्त के सुख-दुःख की विसात ही क्या है ?' इसमें हमें उसी पुराने सामन्त-युग की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती ह । फिर 'चोखेरबाली' में मध्यवर्ग के परिवार का वर्णन मिलता है, एडिपुस कम्प्लेक्स

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(Oedipus complex) वहाँ वर्तमान है। उसके अनुसरण तथा अनुगमन के बाद Victim (शिकार) विनोदिनी कहती है - छिः छिः, इस बात को याद करने से शर्म आती है। मैं विधवा हूँ, मैं निन्दिता होकर समग्र समाज के सामने तुम्हें लांच्छित करूँगी !—यह कभी नहीं हो सकता। छिः छिः, इस बात को कभी ज़बान पर न लाना। फिर वह कहती है—लेकिन छिः छिः, विधवा से तुम ब्याह करोगे। तुम्हारी उदारता में सब कुछ सम्भव हो सकता है, लेकिन यदि मैं खराब काम करूँ, तुम्हें समाज में बर्बाद करूँ, तो इस जीवन में सिर ऊँचा नहीं कर सकूँगी। इस पुस्तक में समाज की शिकार स्त्री तो काशीवासिनी हुई, और पुरुष मूछों पर ताव देकर समाज में माननीय बना रहा। इस उपन्यास में भी पुरुष प्राधान्ययुक्त समाज (Androcentric theory of society) की तसवीर खींची गई है; यद्यपि इस पुस्तक के ही युग में नरतात्विक और जीवतात्विक वैज्ञानिकों ने स्त्री और पुरुष के समानाधिकार को प्रतिष्ठित किया है।

इस तरह दिखाई पड़ता है कि हमारे हाल के लब्धप्रतिष्ठ लेखक मध्यम वर्ग का जीवन चित्रित करते समय सनातन धारा-प्रवाह में डूबते जा रहे हैं। अब भी बँगला के बीसवीं सदी के साहित्य में प्राचीन 'अवधूत गीता' और शंकराचार्य के 'स्तोत्र' का 'नरकस्य द्वारं नारी' मत की प्रतिध्वनि हो रही है। लेकिन हाल ही में जो एक प्रकार के नये साहित्य का उदय हुआ है, वह बुर्जुआ-साहित्य की ओर जा रहा प्रतीत होता है। लेकिन वह मानो सिर्फ 'एडिपुस कम्प्लेक्स' (Oedipus complex) का अनुसरण करके हैरान हो रहा है। इसमें समाज को आधुनिक साँचे में ढालने का कोई भी आदर्श नहीं दिया जा रहा है। इसमें जनसाधारण का कोई खास जिक्र नहीं मिलता। इसमें मिलती है यौन-सम्बन्ध की कहानी। लेकिन यौन-सम्बन्ध ही समाज का एकमात्र अनुष्ठान नहीं है। इस साहित्य में समाज की मौजूदा समस्याओं की आलोचना नहीं हो रही है। अनुमान होता है कि एक प्रकार की यूरोपीय भाव-धारा बंगाली समाज में आरोपित करके एक अस्वाभाविक परिपार्श्विक अवस्था तैयार की जा रही है। यौन-सम्बन्ध का सिर्फ विचार करने मात्र से ही नर और नारी की शेष समस्याओं का समाधान नहीं होता। नारी का लगातार पति या प्रणयी परिवर्तन करना ही उसका सामाजिक 'शेष प्रश्न' नहीं है। मैं यह नहीं जानता कि यह किस समाज का आदर्श है। यहाँ तक यह सत्य है कि साम्यवादी गणश्रेणीवाले समाज का आदर्श यह नहीं है, इसे हम निश्चित रूप से जानते हैं। इसीलिए इस साहित्य को बुर्जुआ-साहित्य नहीं कहा जा सकता। बहुत हाल ही में एक नये तरह का साहित्य दिखाई पड़ा है—यह गणश्रेणी के जीवन-वृत्तान्त की आलोचना करता है। इस विषय की दो-एक सुन्दर पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इसमें वास्तविकता की छाप है, पर इसे भी गण-साहित्य नहीं कहा जा सकता। पुस्तक में गणश्रेणी के विषय में लिखने से ही वह साहित्य नहीं होता।

गणश्रेणी के दुःख और दरिद्रता, आकांक्षा और आदर्श, हृदय की वेदना और सुखेच्छा की बात; समाज को केन्द्र करके और उसका World View लेकर जो साहित्य तैयार होगा, उसी को गण-साहित्य कहा जा सकता है। यह सच है कि हिन्दुस्तान में एक आर्थिक तथा नैतिक आन्दोलन चल रहा है; लेकिन उसका साहित्य अब भी तैयार नहीं हो रहा है—यह भी एक काल व्यतिक्रम है। जिस दिन गणश्रेणी के लोग साहित्य में गण-समाज का चित्र अंकित करेंगे, उसी दिन एक जिन्दा साहित्य पैदा होगा।

कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

युवक विद्यार्थी

[विद्यावती 'कोकिल']

[श्रीमती 'कोकिल' की कविताएँ एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति से ओत-प्रोत रहती हैं। आजकल आप प्रयाग से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक 'जीवन-ज्योति' का संपादन भी कर रही हैं।—सं०]

मैंने कब चाहा स्वाधिकार !

चुपचाप चुन लिया विषय ढेर ;
हँसकर जँचवाया भाग्य यहाँ।
ढोते-ढोते घिस गया बोझ ;
पर किया कभी इनकार कहाँ।

मैंने कब माँगी भीख कृपण ?

भिक्षा पर जीते अकर्मण्य ;
करुणा पर पलते नृपकुमार।
त्रृकुटी में पिसते चक्रवर्ति ;
भृकुटी पर लुटते धनागार।

जीवन माँगा था, शान्ति नहीं।

जीवित करते आराम कहाँ ;
कूलों पर सोते ज्वार भला।
कवि के उस अंतर बर्बर को ;
मोहित करती है कहीं कला।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यौवन माँगा था क्रान्ति कहाँ।
क्या युवक ? कर्म-मदिरा विहीन ;
मद क्या जिसमें उन्माद नहीं।
गूँगी हैं डालें फूल बिना ;
हैं पंगु कुसुम यदि बास नहीं।

मैं कैसे सीखूँ प्रेम आज।
उजड़ा झोंपड़ा सँभालूँ तो ;
रोने को मिलता समय नहीं।
लज्जा कहती शीघ्रता करो ;
पद-चाप सुन पड़ी मुझे कहीं।

मैं पूजा की विधि क्या जानूँ।
अब तक बन खोदे बाग किये ;
काटी हैं मैंने गझिन झाल।
पथ कैसे धुलते आँसू से ?
मरु में खोदे हैं महा ताल।

प्रयाग।

नोट—युवक तथा यौवन शब्द से सब जगह इस कविता में जीवन, स्फूर्ति तथा क्रान्ति से तात्पर्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीरंध्र

चार कहानियाँ—लेखक : सुदर्शन ; प्रकाशक : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, बम्बई ; प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९३८, मूल्य दो रुपए। छपाई-सफ़ाई आकर्षक।

श्रीयुत सुदर्शन की नई चार कहानियों का हम सहर्ष स्वागत करते हैं। कुछ इधर ऐसी धारणा बनती जा रही थी कि सुदर्शनजी चुप हो गये हैं और उन्होंने लिखना बन्द-सा कर दिया है। आपकी प्रतिभा के यह नये अंकुर प्रस्फुटित होते देख हम सुखी हैं।

भूमिका-रूप में सुदर्शनजी ने कहानी की कुछ व्याख्या की है : 'दुनिया एक कहानी है, जिसे भगवान ने कहा है। कहानी एक दुनिया है, जिसे आदमी ने बनाया है। और दुनिया की कहानी और कहानी की दुनिया दोनों मनोहर और मधुर हैं। दुनिया भगवान की कहानी है: उसके पात्र असुर भी हैं। कहानी आदमी की दुनिया है: उसके पात्र देवता भी हैं।' इत्यादि। इन वाक्यों में कोई मार्मिक सत्य नहीं, एक बाह्य आकर्षण अवश्य है। कहानी का ज्ञान इस व्याख्या ने नहीं बढ़ाया। कहानी की भावुकतापूर्ण यह प्रशंसा है।

सुदर्शनजी कहानी-क्षेत्र में एक 'रोमेंटिक' हैं। कहानी का आपका वही पुराना आदर्श चला आ रहा है—कहानी कहने के लिए कहानी कही जाती है। जीवन से कहानी को कसकर बाँधने का आपने कोई बड़ा प्रयत्न नहीं किया।

आपकी चारों कहानियाँ—'पत्थरों का सौदागर', 'दो मित्र थे', 'फ़रऊन का प्रेम' और 'सदासुख'—उच्च कोटि की हैं। 'दो मित्र' और 'सदासुख' अधिक चोट करती हैं, क्योंकि अपेक्षाकृत वे जीवन के अधिक निकट हैं ; किन्तु सभी कहानियों से हृदय में एक गुदगुदी होती है, जैसे कोई अच्छा गीत सुनकर अथवा सुन्दर चित्र देखकर।

'पत्थरों का सौदागर' जैसे परियों के देश की कहानी हो। एक राजकुमार ग़रीब पहाड़ी लड़की के प्रेम में पड़ उससे विवाह करता है। इसी प्रकार की एक कहानी—राजा कोफ़्तुआ और भिखारी लड़की—स्कूल के बच्चे पढ़ते हैं।

'दो मित्र थे'—तीन पात्रों के विशद चित्र हैं। महताबराय, ताजबहादुर और रूपरानी। महताबराय देवता है, ताजबहादुर दानव। रूपरानी उनकी मित्रता के बीच चीनी दीवार बन रही थी ; किन्तु महताबराय ने अपना प्रेम मित्र के पीछे गँवा दिया।

'फ़रऊन का प्रेम' पुरानी प्रेम-कथाओं का हमें स्मरण दिलाती है ; किस प्रकार मिश्र देश का देव-सरीखा सम्राट् गुलाम की लड़की के प्रेम में फँसा और उसके लिए अपना साम्राज्य तक त्यागने को तैयार हो गया।

'सदासुख' एक चरित्र-चित्र है, आकर्षक और शक्तिपूर्ण। बड़े चित्रकारों की हमें याद आती है—Holbein या Sir Joshua Reynolds

इन कहानियों में सुदर्शनजी की शैली बहुत सुन्दर है। कभी-कभी गद्य-काव्य का आनन्द मिलता है। सुखदास का चित्र : 'उसकी शक्ल-सूरत भयानक थी, देखकर दिल दहल जाता था ; मगर स्वभाव ऐसा सुकोमल और विशुद्ध था कि जी चाहता घंटों पास बैठे रहें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नारियल ऊपर से कठोर और खुरदरा होता है ; परन्तु उसके अन्दर का पानी कितना मधुर और गुणकारी होता है।'

हमें खेद केवल यह है कि जीवन की कठोर और क्रूर वास्तविकता से सुदर्शनजी दूर रहे हैं।

आगरा। प्रकाशचन्द्र गुप्त।

• • •

विश्व-परिचय—लेखक : रवीन्द्रनाथ ठाकुर ; अनुवादक : हजारीप्रसाद द्विवेदी ; प्रकाशक : विश्वभारती ग्रन्थालय, २१०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता। प्रथम संस्करण कार्तिक सं० १९९५ : मूल्य एक रुपया।

अँग्रेज़ी में सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य, सरस सीधी भाषा में अकसर वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें निकला करती हैं। Sir J. Thomson की Out line of science अथवा Sir Ray Lancaster की Science from an Easy Chair ऐसी ही लोकप्रिय पुस्तकें हैं। हाल में ही Sir James Jeans की Mysterious Universe ख़ूब बिकी थी। प्रत्येक शिक्षित मनुष्य के लिए अब यह अनिवार्य-सा है कि वह विज्ञान के विषय में कुछ मोटी-मोटी बातों की जानकारी रखे।

उपर्युक्त पुस्तकों-सी ही सरस और सुगम रवि-बाबू की पुस्तक 'विश्व-परिचय' है, यद्यपि आप विज्ञान-वेत्ता नहीं हैं। कहीं-कहीं आपका काव्य भाषा में छलककर उसका आनन्द दुगना कर देता है। आपकी उपमाएँ विज्ञान-भाषा में बिल्कुल नई चीज़ हैं :

'प्रकाश चुपचाप बैठकर ख़बर नहीं सुना जाता, वह डाक हरकारे की तरह पीठ पर ख़बर लेकर दौड़ता चलता है।'

'सूर्य जिस प्रकार सौर-लोक के केन्द्र में रहकर आकर्षण के लगाम से पृथ्वी को घुमा रहा है, पज़िटिव वैद्युत-कण भी उसी प्रकार परमाणु के केन्द्र से नेगेटिव कणों को खींच रहा है और वे सर्कस के घोड़ों की तरह लगामधारी पज़िटिव के चारों ओर चक्कर मार रहे हैं।'

समर्पण में आपने कहा है :—'इस पुस्तक में एक बात को लक्ष्य करना—इसकी ताव अर्थात् इसकी भाषा सहज ही चल सके, यह कोशिश तो इसमें है ; परन्तु माल बहुत कम करके हल्का बनाने को मैंने अपना कर्त्तव्य नहीं माना।'

विज्ञान के विषय में आप कहते है : 'बड़े वन में वृक्षों के नीचे सूखे पत्ते अपने आप गिर पड़ते हैं और मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। जिन देशों में विज्ञान की चर्चा होती रहती है वहाँ ज्ञान के टुकड़े टूट-टूटकर निरन्तर बिखरते रहते हैं। इससे वहाँ की चित्तभूमि में उर्वरता का जीव-धर्म जाग उठा करता है। उसी के अभाव में हम लोगों का मन अवैज्ञानिक हो गया है।'

पुस्तक में पाँच परिच्छेद हैं ; १. परमाणुलोक ; २. नक्षत्रलोक ; ३. सौरजगत ; ४. ग्रहलोक ; ५. भूलोक।

पहले परिच्छेद में विश्व के आकार-प्रकार का कुछ परिचय दिया गया है और जिन मूल तत्वों से यह बना है, उनका गंभीर विवेचन।

नक्षत्रलोक में ब्रह्माण्ड की विशालता और नक्षत्र-मंडली का हाल है। सौरजगत में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूर्य का विशेष परिचय है। ग्रहलोक में सूर्य के ग्रहों का, पृथ्वी के अतिरिक्त। पृथ्वी की कुछ जानकारी अंतिम लेख से होती है।

इन वैज्ञानिक लेखों से मानो चिर-अन्ध नयन खुल जाते हैं। आधुनिक युग और संस्कृति को समझने के लिए हम ऐसी पुस्तकों का अध्ययन अनिवार्य समझते हैं।

आगरा।

प्रकाशचन्द्र गुप्त।

• • •

पिकनिक—कहानी-संग्रह, लेखिका : श्रीमती कमलादेवी चौधरी ; प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, बनारस ; मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशकों की एक विशेष प्रगति 'जागृत महिला-साहित्य-माला' का पाँचवाँ पुष्प है। कमला चौधरी कहानी-लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी हैं। 'विशाल भारत' आदि ख्यातनामा पत्रों में प्रकाशित १५ कहानियों का यह संग्रह है।

कहानियों में अन्तर्वेदना और मार्मिक व्यथा के चित्र बड़ी सरल, सुन्दर और मनोवैज्ञानिक भाषा में खींचे गये हैं। लेखिका ने भाषा में काव्य की पुट देकर रंगीन चित्र तो नहीं उतारे हैं ; पर हमारे समाज और जीवन में नित्य-प्रति जो घटनाएँ घटती रहती हैं उन्हीं को लेकर मानसिक संघर्ष के अनोखे दृश्य पाठक के सामने रखे हैं।

वैसे तो कहानियों में नारी-हृदय का बड़ा स्वाभाविक चित्रण हुआ है, लेखिका स्वयं नारी जो है ; लेकिन जान पड़ता है मानव मात्र के भीतर जो देवासुर-संग्राम नित प्रति होता रहता है उसका लेखिका को विशेष अनुभव है। कहानियों में बड़ी गहरी अनुभूति बिखरी है।

कह सकते हैं, मूलतः सारी कहानियाँ विचार-प्रधान हैं ; घटना-प्रधान नहीं। किसी-किसी कहानी में तो मस्तिष्क के लिए खाद्य सामग्री इतनी प्रचुर मात्रा में उपस्थित की गई है कि बरबस लेखिका की विद्वत्ता की धाक पाठक पर जम जाती है ; परन्तु वह विद्वत्ता उबानेवाली नहीं है। उसके कारण कहानी नीरस भी नहीं हो पाई है बल्कि कला का जो 'सुन्दर' रूप है उसे पूर्ण रीति से निभाया गया है।

विचारों की प्रधानता होने के कारण कोई-कोई कहानी तो चित्र मात्र ही रह गई है।

'स्वप्न' संग्रह की सर्व-श्रेष्ठ कहानी है। मानव मानव क्यों है, यही मनोवैज्ञानिक सत्य 'स्वप्न' बनकर आया है। 'महात्मा' के आवरण के नीचे छीपी हुई मानव की स्वाभाविक दुर्बलता जिस अन्तर्द्वन्द्व के साथ प्रकाश में लाई गई है, वह बहुत सुन्दर है। 'प्रवृत्तियों के दमन करने से नहीं, बल्कि उन्हे आध्यात्मिक रूप में परिवर्तित करने से ही वास्तविक शान्ति की प्राप्ति होती है।' यह अमर सत्य बड़ी सफलता के साथ कहानी में चित्रित है। कहानी बड़ी सरस, विद्वत्तापूर्ण और हृदय को छू जाने वाली है। 'स्वप्न' जैसी कहानियाँ साहित्य का गौरव हैं।

'करुणा' सारे संसार के अवगुणों का खजाना हिन्दू विधवा का करूणा-चित्र है।

'वीणा' की अमर गायिका 'वीणा' के हृदय में सोया हुआ नारीत्व कैसे जाग आया, यही स्वाभाविक चित्र 'वीणा' में उतरा है। कहानी बड़ी सफल और मनोवैज्ञानिक है। 'शगुन तारों भरी रात में खुली छत पर अपलक दृष्टि से उस अलौकिक सौन्दर्य-सुधा का पान करते हुए सोचता—यह रक्त-माँस का शरीर है या श्वेत संगमर्मर की प्रतिमा ? वह देखता ही रहता ; पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसके हृदय को जीत न पाता। परन्तु जब रहस्यमयी भाभी ने आकर शगुन का चार्ज ले लिया तो 'संगमर्मर की प्रतिमा' आलोडित हो उठी। 'इस घटना ने एक बारगी वीणा के हृदय में जाने कैसे सम्पूर्ण स्त्रीत्व जागृत कर दिया।' यही कहानी की सफलता है। कहानी बड़ी ऊँची उठी है।

'कर्तव्य' में मृत्यु सामने होने पर प्रेमी पति अपनी पत्नी को, जिसे वह जी-जान से चाहता है छोड़कर अपना जीवन बचाना चाहता है; परन्तु दूसरी पत्नी है जो मृत्यु की अवहेलना करके भी पति को बचाना चाहती है। बच्चे को बाहर छोड़कर ज्योंही वह रोगी पति को निकालने अन्दर आई त्योंही क्षुधित भूमि ने पति-पत्नी दोनो को अपनी छाती में छिपा लिया।

'पत' में ग्रामीण बालिका तेजो ने अपने चाचा की पत रखने के लिये प्राण दे दिये। वह पति की हत्यारिनी नहीं है यह सत्य उसने तब प्रगट किया जब वह फाँसी के लिये ले जाई जा रही थी। 'सास-ससुर के मुँह से चीख़ निकल गई। रामदीन छटपटा उठा—हा, तेजो, तूने अब तक यह मुझसे क्यों न कहा। हाय! अब मैं क्या करूँ?'

उसने तेजो को जोर से चिपटा लिया, मानो अब छोड़ेगा नहीं। सिसकते हुए तेजो ने कहा—चाचा, मैं जीकर क्या करती, मैंने तो तुम्हारी पत खो दी, जेल का दाग लग गया।

यह पढ़कर पाठक का हृदय चीत्कार के साथ तेजो के चरणों पर न झुक जाये तो आश्चर्य ही है!

'रोना' भी क्या कहानी है। वह तो जीवन में हँसने और रोने का संघर्ष है। सुधा के हँसी के खजाने पर इतने डाके पड़े कि अन्त को वह समझ गई—'सारा संसार रोने के मसाले से बना है।...जीवन के आदि में भी रोना है, जीवन के अन्त में भी रोना है।' वह रोना कैसा है? 'श्यामा बात करते-करते दो बूँद आँसू भी टपका देती है। सुधा देखती है, इन दो बूँद आँसुओं का उसके पति पर कैसा जादू की तरह प्रभाव पड़ता है। और सुधा का मुस्कराकर पूछना—खाना खा लो। कुछ भी असर नहीं रखता, व्यर्थ है।'

'सुरिया' में एक निर्धन बालिका के हृदय की अनुभूति है। वह बेचारी क्या जाने कि डेढ़ रुपए की गुड़िया का दाम चार या आठ पैसे नहीं हो सकते।

'पतन' में दुनिया के फेर में पड़ा हुआ सदाचारी, संयमी और त्यागी सुधीर ईर्ष्या और द्वेष का शिकार हो जाता है।

'पराजय' अब तक की कहानियों से अलग है। इसके पात्र मनुष्य न होकर मृग भी हैं और वे आज़ादी की कीमत जानते हैं। जानते हैं—'अधीन होकर बुरा है जीना, है मरना अच्छा स्वतंत्र होकर।'

'कन्यादान' में भी मानव-हृदय की स्वाभाविक कमज़ोरी है; परन्तु अन्त में अपनी कमज़ोरी के कारण विधवा पुत्र-वधू को कन्या के रूप में दान करके जज साहेब ने मानो सारे पाप धो डाले हैं। इस कहानी में अकंन के साथ प्रेरणा भी है।

'बलिदान' ऐतिहासिक कहानी है। महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह के बीच में पड़कर किस प्रकार राजपुरोहित ने अपना बलिदान किया, यही कहानी का प्लॉट है। दृष्टिकोण नया है। ब्राह्मण के हृदय में क्षत्री की तरह देश पर मर मिटने की साध है।

'सुधिया' में 'स्वप्न'वाला सन्देश है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'गीता' हिन्दू समाज के कुचक्र में फँसी हुई विधवा है। पाप ने मातृत्व का जो दान उसे दिया था, उसे खोकर वह पागल-सी सड़कों पर घूमती है। कहानी में दर्द है, कसक है और शब्द-चित्र सुन्दर उतरे हैं।

'कैलासा दीदी' में नारी-हृदय में स्वाभाविक ईर्षा और महानता का साथ-साथ चित्रण है।

'पिकनिक' संग्रह की अन्तिम कहानी है। आचार के चक्कर में पड़े हुए एक युवक के कहे जानेवाले पतन की सुन्दर गाथा है। चित्र आँखें खोलने वाला है।

आश्चर्य है, संग्रह का नाम 'स्वप्न' न होकर 'पिकनिक' क्यों हुआ।

भाषा की दृष्टि से कहानियों में यथा शक्ति 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग करने का उद्योग किया है। लेकिन सब प्रयत्नमात्र है।

'स्वप्न' और 'वीणा' ऐसी कहानियों की लेखिका पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है। साथ ही भविष्य के लिए बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

हिसार। 'विष्णु'

• • •

प्रलय से पहिले [नाटक]—ले० प्रो० ज्वालाप्रसाद सिंहल M. A., LL. B., F. R. E. S. अध्यापक होलकर कॉलेज, इन्दौर—प्रकाशक : सद्ज्ञान-सदन अलीगढ़ व इन्दौर मूल्य ॥)

नाटक की दृष्टि से पुस्तक बहुत साधारण है लेकिन इसका एक विशेष उद्देश्य है। वह उद्देश्य इतना विवादास्पद है कि एक राय बनाना असम्भव-सा है। उसी उद्देश्य के प्रचार हेतु लेखक ने नाटक जैसे प्रचारात्मक काव्य का सहारा लिया है।

विद्वान लेखक ने भक्त प्रह्लाद और नरसिंह अवतार के प्रसिद्ध कथानक को लेकर तात्कालिक दुनिया का चित्र खींचा है। उनकी खोज के अनुसार उस समय दुनिया में विभिन्न जातियों का राज्य था। दैत्य, देव, गन्धर्व, नाग, गरुड़, कपि, गृद्ध, राक्षस आदि अलग-अलग जातियाँ थीं। नरसिंह देव भगवान न होकर आर्यावर्त के राजा थे। देवर्षि नारद के कहने पर उन्होंने ठीक समय पर जाकर प्रह्लाद की रक्षा की थी और देव आदि जातियों को दैत्यराज के पाश से मुक्त किया था। देवर्षि नारद ही पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने आर्यावर्त के लिए दूसरे देशों को खोज निकाला था।

प्राचीन इतिहास के विद्यार्थी के लिए पुस्तक उपयोगी है। विद्वान लेखक ने बहुत परिश्रमों द्वारा भूमिका में अपनी खोजों की पुष्टि की है। प्रसिद्ध विद्वान H. G. Wells और अविनाशचन्द्र दास के प्रमाण पर उन्होंने उस काल का एक नक़्शा बनाया है। वह नक़्शा पुराणों की अनेक बातों का समर्थन करता है। आर्यावर्त की सीमा वेदों में भी वही है जो प्रो० सिंहल ने दिखाई है।

पुस्तक लिखते समय उस काल के लिए जो विचार आज के भारत में सहस्रों वर्षों से घर किये है उन्हें लेखक भूला नहीं है। स्थान-स्थान पर उनका बड़ी सुन्दरता से निराकरण किया है।

अधिक से अधिक लोग ५०००० साल तक जा सके हैं। यही ऋग्वेदिक काल था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोहनजोदारो आदि की खुदाइयाँ भी आर्य-सभ्यता को बहुत दूर तक नहीं ले गई हैं। परन्तु दुनिया का ख़याल हो चला है कि भारत में फलने-फूलनेवाली सभ्यता बहुत पुरानी है। पुराणों की विचित्र कथाओं से किस प्रकार उस मान्यता की संगति बिठाई जा सकती है यही एक विचारणीय प्रश्न रहा है। प्रो० महोदय उस ओर ध्यान दे रहे हैं।

उन्होंने जो कुछ तत्व निकाले हैं उनके विषय में निश्चय से कुछ राय देना इतिहास के विद्यार्थी के लिए कठिन है पर वे तत्व विचारणीय हैं ऐसा कहा जा सकता है।

उस काल में देव और दैत्य जाति भौतिक विद्या में और आर्य जाति योग विद्या में निपुण थी। योग बल से आर्य लोग सब कुछ जान लेते थे और हर कहीं चले जाते थे। देव लोग बड़े सुन्दर, ऐश्वर्यशाली और विमान तथा अनेक अस्त्र-शस्त्रों के बनाने वाले थे। आजकल का फारस, दैत्यलोक; तिब्बत, त्रिविष्टप; मध्य एशिया में सुमेरुखण्ड वैकुण्ठ तथा चीन, देवलोक था। भगवान् शिव नागजाति के महापुरुष तथा देव आदि जातियों के भी पूज्य थे। ब्रह्मा, ब्रह्मलोक (वर्तमान बरमा) के अधीश्वर थे। उन्नीसवीं सदी में जिस प्रकार यूरोप के साइंसदानो ने ईश्वर से इन्कार कर दिया था उसी प्रकार साइन्स के आविष्कारों के कारण मदमस्त दैत्यराज ने भी ईश्वर के ऊपर पुरुषार्थ का प्रचार किया था। होली त्योहार के विषय में भी उनकी एक नई सूझ है।

नाटक के साथ-साथ हमारा विचार है, ऐसे गम्भीर और विवादास्पद विषयों पर सामयिक पत्रपत्रिकाओं में लेख निकलने चाहियें। भूतकाल वर्तमान पर अपनी छाया डालता रहता है। उसी छाया के नीचे हम भविष्य की ओर बढ़ते हैं। यह बात कितनी भी अशान्ति में हम भुला नहीं सकते।

वर्तमान काल में पुरातन इतिहास को लेकर बड़ी-बड़ी खोजें हो रही हैं। उनके बीच में प्रो० सिंहल के इस प्रयास का भी हम स्वागत करते हैं। चाहते हैं अधिकाधिक भारतीयों का ध्यान उस ओर लगे और यह पुस्तक इतिहास के विद्यार्थियों को अनुसन्धान का मार्ग दिखाये।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई साधारण है और गलतियाँ इतनी हैं कि नज़र अन्दाज़ नहीं की जा सकतीं।

हिसार। 'विष्णु'

• • •

गल्प-संसार-माला : तमिल :—ग्यारह तमिल कलाकारों की रचनाओं का यह संग्रह माला का चौथा पुष्प है। सुन्दर साहित्य को सर्वसुलभ बनाने का जो प्रयास आजकल चल रहा है, उसमें सरस्वती प्रेस की यह प्रगति विशेष स्थान रखती है। छः आने जैसे मूल्य पर ऐसी पुस्तकें पा लेना साधारण बात नहीं है। लेकिन गरीब हिन्दुस्तान के लिए मूल्य बन्धन न बने और वे सत्साहित्य को पढ़ें प्रकाशकों का यह विचार स्तुत्य है।

संग्रह की कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं यह तो कहना कठिन है; पर इतना ज़रूर है कि उनमें ऊँची कहानियों के सभी गुण हैं। कहानी का मात्र उद्देश्य मनोरंजन है, जो ऐसा मानते हैं, उन्हें शायद अधिकांश कहानियां पसन्द न हों क्योंकि, 'कन्या-पितृत्व', 'देवसेना', 'खत और आंसू' 'प्रेम ही मृत्यु है', 'कलाकार का त्याग', आदि कहानियों में दर्द है और दर्द भी वह जो हृदय मसोस देता है। साहित्य समय के बन्धन में नहीं आता पर वह समय का प्रतिनिधित्व जरूर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करता है ; तब 'कन्या-पितृत्व' और 'देवसेना' पढ़कर हम समाज के लिए क्या कहें ! ये कहानियाँ केवल तमिल-भारत को चित्रित करती हैं यह बात नहीं हैं इनमें तो समूचे भारत का कलंक प्रतिध्वनित हुआ है। यह कथाकार की सफलता है।

'मुस्काती मूरत', 'कन्या कुमारी', 'शिल्पी का नरक' आदि कहानियाँ कला के दूसरे पक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। कहानियाँ बड़ी सफल हैं और कला का उत्कृष्ट रूप उनमें झलका है, विशेषकर 'मुस्काती मूरत' में। कल्पना की ऊँची उड़ान लेकर एक अमर सत्य की ओर जो संकेत उसमें है, वह सुन्दर है।

'कमिश्नर की कसक' मात्र एक कहानी है जो हास्य और विनोद से पूर्ण है। कहानी इस दृष्टि से सफल है।

'मीनी' और 'नक्षत्र-शिशु' शिशु मनोविज्ञान की दृष्टि से बड़ी सुन्दर कहानियाँ हैं। 'नक्षत्र-शिशु' में बालिका रोहिणी के हृदय में जो निष्कपट वेदना उठी है, वह बड़ी मार्मिक है।

इन कहानियों में हमें तमिल कलाकारों की पैनी दृष्टि, विशद भाव-व्यंजना और कलामयी बुद्धि का विशेष आभास मिलता है। कला को कहीं भी सीमा में नहीं बाँधा है और मानव जीवन की सूक्ष्म और व्यापक अनुभूति यहाँ बिखरी है।

यह दुर्भाग्य है कि हिन्दुस्तानी संस्कृति की दृष्टि से एक होकर भी भाषा-भेद के कारण अलग-अलग जा पड़े हैं। यदि यह प्रगति साहित्य-द्वारा उन्हें एक दूसरे के समीप लाने में समर्थ हुई तो शुभ है। हमें आशा है, प्रकाशक हर समाज और देश के ऐसे उत्कृष्ट कलाकारों को हिन्दी-भाषा-भाषियों के सामने लायेंगे।

हिसार।

'विष्णु'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

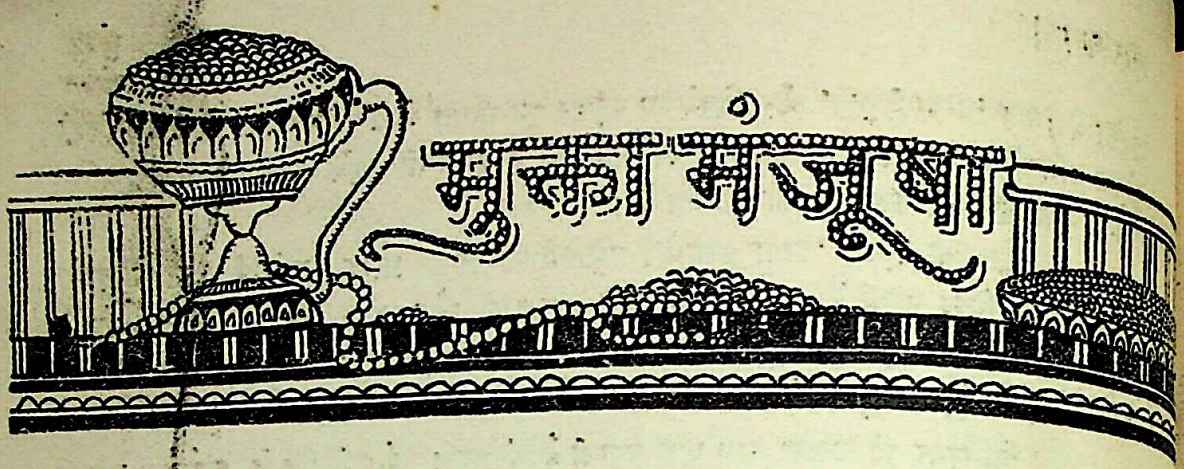

अंग्रेज़ी

ये नाटक शेक्सपीयर के नहीं हैं—

[इग्लैंड के साहित्य-जगत् में एक विपुल वाद-विवाद खड़ा हुआ है कि जो नाटक आज संसार में शेक्सपियर के नाम से विख्यात हैं वे वास्तव में बेकन के लिखे हुए हैं। इस स्थापना को सिद्ध करनेवाला एक लिख वहाँ के सुविदित साप्ताहिक पत्र 'पियर्सन' के वार्षिक विशेषांक में प्रकट हुआ है। लेखक अपनी स्थापना की सिद्धि में निम्नलिखित विधान प्रस्तुत करता है।—सं०]

'(१) शेक्सपीयर के आन्तरिक जीवन का उसके नाटक-जीवन की प्रतिभा के साथ कोई सामञ्जस्य नहीं है। अपने वैयक्तिक जीवन में शेक्सपीयर बड़ा विद्वान् नहीं, अध्ययनशील नहीं और पुस्तकों का प्रेमी नहीं है ; जब कि बेकन प्रकाण्ड पण्डित था। कुमारकाल से ही उसकी विद्वत्ता की प्रचुर प्रशंसा थी।

'(२) शेक्सपीयर इंग्लिस्तान से बाहर कभी नहीं गया। तो भी उसकी कृतियों में फ्रांस तथा इटली के रीति-रिवाजों तथा वहाँ के मार्गों के सूक्ष्म वर्णन उपलब्ध होते हैं। बेकन ने फ्रांस में निवास किया था और वह इटली में रहनेवाले भाई के साथ सदा पत्र-व्यवहार किया करता था।

'(३) शेक्सपीयर के नाटकों में बहुत से नये शब्द आते हैं जिन्हें कोई व्याकरणविद् और भाषा-शास्त्री ही प्रयुक्त कर सकता है। बेकन प्रखर व्याकरण-शास्त्री और लैटिन भाषा का अनुशीलन करनेवाला था।

'(४) शैली और वाक्यविन्यास बेकन की कृतियों से हूबहू मिलता-जुलता है। विचारों की समता पद-पद पर प्राप्त होती है। बेकन की लिखावट में 'ब्लैंक वर्स' के प्रयोग बहुत मिलते हैं। इन प्रयोगों को पृथक् करके पढ़ा जाय तो वे शैक्सपीयर के ही हैं ऐसा प्रतीत होता है। इस बात का अनुभव ह्विटमैन जैसे कवियों को भी हुआ था।

'(५) प्रकाशन का समय बेकन के काल के साथ ठीक-ठीक मेल खाता है। शेक्सपीयर के नाटकों का प्रथम गुच्छ सन् १६१० में प्रकाश में आया। दूसरा सन् १६२३ में। बीच के वर्षों में, जिन नाटकों की बाज़ार में माँग थी, वे प्रकाशित क्यों नहीं किये गये ? इस प्रश्न का उत्तर बेकन के जीवन पर दृष्टिपात करते ही प्राप्त होता है। इस काल में बेकन राजनीति में लगा हुआ था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'(६) नाटकों में शैक्सपीयर के स्थान और वतन आदि का कहीं भी वर्णन नहीं है। बेकन के स्थान का वर्णन बार-बार आता है।

'(७) नाटकों में पशु-पक्षियों के वर्णन बहुलता से प्राप्त होते हैं। शैक्सपीयर को उनका इतना गहरा ज्ञान हो, यह संभव नहीं। बेकन ने तो उन पर एक स्वतन्त्र ग्रंथ लिखा था।

'(८) बेकन के समसामयिक विद्वान् उसे गुप्त कवि मानते थे। राजा जेम्स ने भी उसकी कवियों में गणना कराई है। बेकन ने स्वयं भी एक स्थान पर निर्देश किया है। इतना होने पर भी उसका एक भी काव्य हमको दृष्टिगोचर नहीं होता। इन विधानों द्वारा यह प्रतीत होता है कि उसने 'शेक्सपीयर' उपनाम से ये नाटक प्रकट किये हैं।

'इस प्रकार अनेक वजनदार युक्तियों में लेखक ने अनेक बातें तथा प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। शेक्सपीयर के नाटक शेक्सपीयर ने लिखे हैं, उसका एक ही प्रमाण यह मिलता है कि उसकी कृतियों में प्रथम पृष्ठ पर शेक्सपीयर का नाम मिलता है। शेक्सपीयर की एक भी हस्तलिपि (पांडुलिपि) अब तक प्राप्त नहीं हुई है अतः उसके विषय में शंका सबल होती है।

'ये कृतियाँ शेक्सपीयर की हैं या अन्य की, इसका निर्णय करने के लिए वेस्ट मिनिस्टर के सुविदित गिरजाघर में स्थित स्पेन्सर की कब्र हाल में ही खोली गई है।

'कहा जाता है कि स्पेन्सर की मृत्यु के समय उसकी समाधि (कब्र) के अन्दर सब कवियों ने अपनी अपनी एक कृति रखी थी। शेक्सपीयर उसका समकालीन था, अतः उसने भी अपनी रचना रखी होगी। इस युक्ति के अनुसार समाधि को खोला गया, परन्तु वहाँ से तो स्पेन्सर का शव ही नहीं निकला। अतः यह खोज अभी तो अधूरी ही रह गई है, यद्यपि वाद-विवाद का अन्त तो अभी नहीं हुआ है।

तां, शङ्करदेव विद्यालंकार

• • •

गुजराती

भारतीय कला का समुत्थान

['भारत कलामंडल' अहमदाबाद के आश्रय में बम्बई के सुविदित कलाविद् श्री कार्ल जे० खंडालावाला ने कुछ समय पूर्व उक्त विषय पर एक व्याख्यान दिया था। उसी का यह अंश 'हंस' के वाचकों को भेंट करते हैं।—सं०]

'पाँच सहस्र वर्ष पूर्व की भारत की संस्कृति तथा कला का अवलोकन करने पर शीघ्र ही मालूम हो जाता है कि प्राचीन लोगों ने कला में सादगी का सिद्धान्त स्वीकार किया था। आज वह महान् आदर्श विस्मृत हो चुका है। पश्चिम की संस्कृति ने पौर्वात्य कला के इस रहस्य को भुला दिया है। वह रहस्य पुनः प्रकट होना चाहिये, उसकी आवश्यकता है। प्रत्येक महान् कला में सादगी तो होनी ही चाहिये। भारतीय कला की दूसरी विशेषता है उसका रूप-निर्देश—Formalism. वृक्ष, प्राणी आदि की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए चिन्हाकृतियों की आवश्यकता होती थी, क्योंकि मूल आकृति को उसके द्वारा उसको सहायता मिलती थी। ध्यान तो मूल आकृति पर ही केन्द्रित होता था। उसमें भी मुख्य भाव पर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'प्राचीन कला को यह अभीष्ट नहीं था कि केवल आकृति, सुघड़ता और कद प्रदर्शित करके ही अटक जाय। प्राचीन कला में इन सब के साथ आध्यात्मिक भाव पूरित होता था। यह भारतीय कला की तीसरी विशेषिता थी। यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय कला अपना सौंदर्य और अपनी आत्मा को धर्म से प्राप्त करती थी। आज इस समुत्थान के युग में भी यदि कला में पारलौकिक भावों को लाना हो तो धर्म में ओतप्रोत हुए भावों का परिशीलन करना होगा। केवल कल्पना से तो जुदा ही परिणाम जायगा।

'भारतीय कला पर यह आक्षेप किया जाता है कि वह वैभव-प्रधान (Decorative) है तथा सुशोभन के लिए बहुत सजावट करती है। यह आक्षेप अशुद्ध है। भारतीय कला भव्य है, परन्तु यह भव्यता सादगी की भव्यता है। शोभा का भभका तो मध्ययुग में आया है। गुप्त-काल भारतीय-कला का सुवर्णयुग था। उसमें सादगी और सौंदर्य के साथ शक्ति (Vigour) विद्यमान थी। गुप्तकालिक संस्कृति पर बौद्ध-युग का प्रभाव था। पुराणकाल में बौद्धधर्म मृतप्राय हो रहा था तथापि उस समय की गतिशील कथाएँ कला में अवतीर्ण हुईं, तब उनमें शांति, सयम और सत्व की प्रभा विद्यमान थी। आज अपने युग में हम लोग जितना नहीं जीते उससे अधिक वह युग जीना जानता था। आडम्बर-विहीनता और स्वरूप-सिद्धि तो आज की कला के भी प्रधान नियम हैं; परन्तु स्वरूप-विधान का भान (Sense of Plasticity) तो मानो चला जा चुका है। मध्ययुग में कला का आदर्श परिवर्तित हुआ और कला ने सुशोभितता को प्राधान्य प्रदान किया तथापि जो भावना कला-द्वारा व्यक्त होने को थी उसका लोप करके वह प्रधानता स्थित नहीं रह सकी। आज तो सादगी को जड़ता माना जाने लगा है तथापि तीव्र सादगी में भी कठोर वास्तविकता न रहे तो भी काम चल सकता है।

'मध्ययुग का कला-कार्य सुन्दर था; परन्तु गुप्त-युग के कला-कार्य की अपेक्षा तुलना में कुछ कम था। जो कुछ उत्तम था उससे मध्ययुग ने प्रेरणा प्राप्त की थी। आकृति द्वारा उठने वाला प्रधान भाव तो रह जाय और केवल जगमगाहट में ही दृष्टि उलझ जाय इस प्रकार की सजावट को तो मध्ययुग ने भी स्वीकार नहीं किया। कला ने आध्यात्मिकता को भी उस समय जीवित रखा था। यदि वैभव (Decoration) और स्वरूप-सिद्धि का सुन्दर सम्मिलन देखना हो तो मध्ययुग की ओर दृष्टि पात कीजिये।

'मेरी समझ में नहीं आता कि उच्च श्रेणी की सुन्दरता को लहरानेवाली कला भारत के पास विद्यमान है, तो भी अपनी संस्कृति को अनुकूल न पड़ने वाली कला-सृष्टि को आधार रूप में लेने के लिए हम लोग यूरप के पास क्यों दौड़े जा रहे हैं? मुझे विस्मय होता है कि कितने ही आलोचक पूछते हैं कि भारत के पास तादृश-स्वरूप वाहिनी कला कहाँ थी? उसमें वास्तविकता क्यों नहीं? मेरा उनके प्रति इतना ही निवेदन है कि जिन्होंने इतनी ऊँची कक्षा का कलासर्जन किया उनको तादृशालेखन करना नहीं आता होगा! सच बात तो यह है कि प्राचीन भारतीयों को वास्तविक आलेखन की गर्ज़ ही नहीं थी। उन्हें तो गति, लय और सौन्दर्य का आविष्करण-अभिव्यक्ति—कला द्वारा सिद्ध करना अभीष्ट था! भावना को अभिव्यक्त करना पसन्द था। उस दिशा में उन लोगों ने जो विजय प्राप्त की है, वह तो जग विदित है।

—चयनकर्ता, शङ्करदेव विद्यालङ्कार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कलावृत्ति और पुष्प-चयन

[श्री बालकृष्ण दत्तात्रेय कालेलकर (काका साहब) ने गुजराती सहयोगी 'ऊर्मि' के एक अंक में पुष्प-चयन पर कुछ उपयोगी विचार प्रकाशित किये हैं। भारतवर्ष में पुष्प-चयन केवल पूजा के लिए या सजावट के लिए होता है कलावृत्ति के लिए पुष्प-चयन करने वालों के लिए यह अंश उपयोगी होगा।— सं०]

'प्रश्न : आपने एक जगह लिखा है कि, उपभोग के लिए फूल तोड़ना पाप है ; पर अन्तर की कला-वृत्ति को सन्तुष्ट करने अथवा पूजा में श्रद्धा रखने वाले यदि फूल लें तो क्या कोई बाधा है ? कलावृत्ति को सन्तुष्ट करने ही के लिए पूजन में पुष्प लिये जाते हैं। और यदि इसमें जुदा भेद न करें तो भी चल सकता है। तो क्या इसे उपभोग कहेंगे ? फूलों को यों ही तोड़ने और उन्हें फेंक देने में आपका कहना यथार्थ हो सकता है।

'उत्तर : आपके प्रश्न में इतनी स्वीकृति तो है कि जहाँ उपभोग है, वहाँ कला नहीं होती। जिससे दूसरों को पीड़ा हो, उसमें भी कला नहीं होती। उपभोग-शून्य आनन्द में ही कला रहती है। कला आनन्ददायिनी होनी चाहिये।...

'ईश्वर पूजा नहीं माँगता। हम अपने हृदय को सन्तोष देने के लिए तथा भक्ति-भाव दर्शाने के लिए पूजा करते हैं। हमारी संस्कृति के अनुरूप ही हमारी पूजन-पद्धति होती है। मांसाहारी मनुष्य यदि काली माता को मांस का नैवेद्य अर्पण करता है—तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। जैसा भक्त, होगा वैसा ही उसका देव भी होगा। 'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।' भील लोगों का अम्बाजी को बकरा अर्पण करना हमारा गणपति को मोदक खिलाना—बराबर है। आत्म-सन्तोष के लिए आहार करने से बेहतर है कि ठाकुरजी के भोग के निमित्त भाँति-भाँति के व्यञ्जन तैयार करें और प्रसाद मानकर खा जायँ। ऐसा करने में कुछ सुन्दरता अधिक होगी। उपभोग-वृत्ति को भक्ति के मिश्रण से हम सौम्य बनाते हैं और कुछ संयम का पाठ भी सीखते हैं। बचपन में मैं छः-छः घण्टे पूजन में बिता देता था और उसमें भाँति-भाँति के पुष्प और पंखड़ियों की नई-नई रचनाएँ करने में घण्टों बीत जाते थे। ऐसी पूजा की बदौलत ही मैंने अपनी कला की वृत्ति का पोषण पाया है। दूसरा कोई भी यदि उसी मार्ग से जाय तो मैं उसे रोकूँगा नहीं ; परन्तु अब मुझसे ऐसी पूजा हो नहीं सकती।

× × ×

'अब हम हिंसा-अहिंसा पर कुछ विचार करें। यह देखी हुई बात है कि दो बिल्लियाँ जब आपस में झगड़ती हैं तब उनमें वैर-भाव अर्थात् एक दूसरे को हानि पहुँचाने की वृत्ति रहती है ; परन्तु जब बिल्ली अपने अथवा अपने बच्चे के आहार के लिए चूहे को मारती है, तब वह हिंसा तो करती ही है ; पर उसमें वैर-वृत्ति नहीं होती। हिंसा किये बिना अगर चूहा खाया जा सकता है, तो बिल्ली वैसा ही करती। बचपन में मैंने सुना था (और तब यह सच भी मालूम पड़ा था) कि नेवले के मुँह में अमृत होता है। वह सर्प को पकड़कर उसके मध्य का भाग खा जाता है और मस्तक और पूँछ को जोड़कर पुनः सर्प को सजीव करके छोड़ देता है ! ऐसी हिंसा में आहार पाना तो मुख्य उद्देश्य होता है, और हिंसा अनिच्छित होते हुए भी अत्याज्य साधन हो जाता है। बिल्ली के चूहा मारने में हिंसा परिपूर्ण है ; पर बिल्ली का ध्यान चूहे के दुःख के बजाय चूहे का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मांस खाते समय अपने अथवा अपने बच्चे की स्वाद-तृप्ति की ओर अधिक रहता है। हम डलिया में रखने के लिए जब फूल तोड़ते हैं, तब हमें यह विचार भी नहीं होता कि पेड़ को दुःख होता होगा। हम तो केवल यही विचार करते हैं कि वे फूल डलिया में कितनी शोभा देंगे। प्राणि-सृष्टि और वनस्पति-सृष्टि का आज का सम्बन्ध देखते हुए मैं यह भी कहने की धृष्टता न करूँ कि फूल के दुःख की ओर ध्यान जाना चाहिये; पर अब जब मेरा ध्यान उधर जाता ही है, तब फूल के तोड़ने में और उन्हें सजाने में रहनेवाला कला का जो आनन्द है, वह अब मुझसे कैसे छूट सकता है! खेलते हुए बालकों को दूर से ही देखकर जैसे मैं आनन्द प्राप्त कर सकता हूँ, वैसे ही जंगल में या बगीचे में फूलों को प्रकाश में डोलते, नाचते और झूलते देखकर मैं सन्तोष और कला का आनन्द ले सकता हूँ। कितने ही कवियों का कहना है कि पेड़ में से टूटकर किसी मानवी के मस्तक पर जा बैठने में ही फूल के जीवन की सार्थकता है। पर इसमें मैं न्याय या काव्य नहीं देख सकता। इसमें तो मानवी अहंकार है। संस्कृत के कवि भी स्त्रियों के विषय में ऐसे ही उद्गार निकालते थे और लोग उसे कला समझते थे!

'फूल तोड़ते समय यदि यह भान न हो कि हम यह बुरा कर रहे हैं—तभी तोड़े हुए फूलों को सजाने में कला दिखाई देती है और फूलों द्वारा ईश्वर का पूजन किया जा सकता है।

'मरे हुए जानवरों के चमड़ों का प्रयोग और लवनी के बाद खेत में गिरे हुए दानों को बीनकर उनपर गुजर-बसर करना जिस प्रकार उत्तम माना गया है, वैसे ही पारिजात-जैसे अपने आप बिखर पड़नेवाले फूलों को इकट्ठाकर उनका आस्वाद लेने में कोई दोष नहीं है।

'पर इस नाजुक विषय पर विचार करने के लिए कहाँ बैठा जाय?'

—चयनकर्ता, धनपतराम नागर

• • •

हिन्दी

दाम्पत्य-जीवन के सुखों की कुंजी

[मार्च की 'माधुरी' में श्री रामनाथ 'सुमन' का एक लेख प्रकाशित हुआ है। आज भारतवर्ष में अन्यान्य समस्याओं के साथ ही साथ लग्न-जीवन की भी एक समस्या है। दाम्पत्य-जीवन मानव-जीवन में किसी घने वृक्ष की ठंडी छाँह के समान है, जहाँ वह विश्राम करे और जीवन-संघर्ष के लिए नया जोश प्राप्त करे। पर आज वह सुख कितनों को प्राप्त है? यहाँ हम उक्त लेख से कुछ उद्धरण 'हंस' के पाठकों की भेंट करते हैं कि वे देखें कि दाम्पत्य-जीवन कैसे सुखी और सम्पन्न हो सकता है।—सं०]

'विवाह के बाद दो प्राणियों का यह मधुर मिलन आरम्भ होता है। यह मिलन जितना पूर्ण, जितना ही सन्तोष से भरा और जितना ही तृप्तिकर होगा, उतना ही विवाहित जीवन को सफल समझना चाहिये। पति और पत्नी—दोनों को तुरन्त इस मिलन के क्रम को स्थायी और विकासशील बनाने के प्रयत्न में लग जाना चाहिये। प्रेम में अपूर्व शक्ति है। यह जीवन की छिपी हुई शक्ति को जगा देता है। जो बातें पहले असम्भव मालूम होती थीं, अब सम्भव होने लगती हैं। जो लड़की अत्यन्त प्यार और दुलार से पाली गई और जिसने कभी अपने हाथों गृहस्थी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का कोई काम नहीं किया, वह भी प्रेम और निजत्व के विकास के इस जीवन की शीतल हवा की मधुर थपकियों के लगते ही खिलने लगती है। प्रेम के स्पर्श से उसकी आन्तरिक सहन-शक्ति बढ़ जाती है। मैंने देखा है और हर एक ने देखा होगा कि इसी प्रेम के कारण जो स्त्रियाँ दिन-रात नौकरों से काम लेने की आदी थीं, वे अपने हाथों बरतन माँजती और घर में झाड़ू लगाती हैं, अपनी शक्ति से अधिक शारीरिक बोझ सँभाल रही हैं और रुपए-पैसे की तंगी में भी ख़ुश हैं। प्रेम जीवन की बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को हलका कर देता है।

'तब विवाहित जीवन में सफलता की पहली ज़रूरी शर्त इसी पारस्परिक प्रेम के भाव को एक दूसरे के अन्दर पैदा करना, बढ़ाना और उसे सदा हरा-भरा रखना है। प्रेम के बिना मिलन, एक वंचना और व्यभिचार-मात्र है। यह प्रेम मिलन और जीवन के क्रम को मधुर बनाता है। यह जीवन के अत्यन्त श्रम-साध्य और कण्टकपूर्ण मार्ग में चलने की शक्ति देता है।

'पर न मिलन का और न प्रेम का मतलब कोरी विषयाशक्ति है। यौवन में, भ्रमवश, अक्सर भोग-विलास को प्रेम समझ लिया जाता है। यह ग़लत दृष्टिकोण है। मैं यह नहीं कहता कि विवाह का आरंभ विरक्ति और उदासीनता के साथ करना चाहिये, न मेरा यही कहना है कि उसमें शारीरिक प्रेम का तुरन्त ही सर्वथा बहिष्कार आवश्यक है। मेरा आशय यह है कि शारीरिक मिलन विवाहित जीवन का कोई प्रधान लक्ष्य नहीं है। शरीर का मिलन भी विवाहित जीवन में तभी सार्थक है, जब वह श्रेष्ठ और उच्च भावों के साथ हो। असल में दिलों का मिलना शरीर के मिलने से कहीं ज़्यादा ज़रूरी है, जिसकी तरफ़ आजकल शायद सबसे कम ध्यान दिया जाता है। जहाँ केवल शरीर का ही भाव है, वहाँ मनुष्यता अपने अत्यन्त विकृत और प्रारम्भिक रूप में दिखाई देती है। वहाँ स्त्री केवल एक वेश्या है, जो पुरुष के इन्द्रियरंजन के लिए अपने को तिल-तिल बेच रही है। वहाँ उसका गौरव नष्ट हो गया है और वह अपने स्थान से गिर गई है। वहाँ गृहस्थी एक दुःख है और विवाहित जीवन सिर्फ़ एक सौदा, एक व्यापार है। वह पुरुष मनुष्य-रूप-धारी एक पशु-मात्र है।

'विवाहित जीवन शरीर और हृदय दोनो के मिलन से पुष्ट और विकसित होता है। यह शारीरिक मिलन की भावना, जो जीवन में है, सर्वथा व्यर्थ नहीं है। ठीक तरह से शरीर का उपयोग करने से वह मनुष्य के अन्दर छिपी प्रेम और जीवन की श्रेष्ठ शक्तियों को जगाता और बढ़ाता है। पर हर हालत में शरीर को मन के वश, विवेक के वश में रखना चाहिये। शरीर पर तुम्हारे दिल का, विवेक का शासन हो। ख़तरा तब उपस्थित होता है, जब तुम्हारे दिल और दिमाग़ पर तुम्हारा शरीर हावी हो जाता है।

'इसलिए इसे कभी न भूलो कि शारीरिक मिलन में ही विवाहित जीवन की समाप्ति नहीं होती। इस मिलन को मथकर मानसिक सहानुभूति और हार्दिक प्रेम का मक्खन निकाल लेने की ज़रूरत है। ज्यों-ज्यों प्रेम शुद्ध होता जाता है, भोग की बेचैनी अपने आप कम होती जाती है और दोनो के दिल एक दूसरे के नज़दीक आते जाते हैं; जीवन आशा, सन्तोष और शान्ति से भर जाता है।

'इसलिए मेरे पास तो वही बात दोहराने के लिए है कि प्रेम को इतना सस्ता न कर दो; दिलों पर क़ाबू रखो और विवाहित जीवन के आरम्भ में दिलों में जो आँधी चलती है और दिमाग़ पर जो नशा चढ़ जाता है, उससे बचकर रहो। दिलों को मिलाने का ध्यान रखो। शरीर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की वृत्तियाँ तो स्वयं इतनी प्रबल हैं कि उनके सन्तोष के लिए तुम्हें अपनी तरफ़ से कोशिश करने की ज़रूरत न होगी।

'न तो भोग-विलास में डूबने में जल्दबाज़ी करना औसत युवक के लिए अच्छा है और न तो ज़बर्दस्ती उससे भागना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। उसके प्रत्येक कार्य में सन्तुलन—बैलेंस—और विवेक का नियन्त्रण होना चाहिये। त्याग और भोग दोनो का उचित समन्वय ही विवाहित जीवन की सफलता की कुञ्जी है। किसी भी तरफ़ तूफ़ानी गति से क़दम बढ़ाना अच्छा नहीं।

'पति को विवाह के बाद अपना होश-हवास दुरुस्त रखकर बड़ी होशियारी और सावधानी से धीरे-धीरे अपने मार्ग पर बढ़ना चाहिये। कुछ मीठी बातें, दिल और मुहब्बत के चन्द सच्चे इज़हार, पत्नी के प्रति वफ़ादारी और उसके स्वास्थ्य तथा भावनाओं का ध्यान—इन बातों से पति सहज ही औसत पत्नी का प्रेम प्राप्त कर सकता है। उसे पत्नी का उपदेष्टा न बन जाना चाहिये, न उस पर उस्तादी गाँठने का दम्भ करना चाहिये। उसे इस तरह बर्तना चाहिये कि पत्नी समझ ले कि मेरी ज़िन्दगी इनसे अलग नहीं है और हम दोनो मिलकर, अपने अस्तित्व को खोकर, एक नई और ज़्यादा अच्छी दुनिया का निर्माण करने जा रहे हैं। उसे पत्नी की आकांक्षाओं का, उचित सीमा तक मान करना चाहिये और उसको धीरे-धीरे बताना चाहिये कि हम दोनो को साथ-साथ रहते हुए, किस तरह अपने प्रेम को ऊँचे स्तर पर ले जाना है।

'जो कुछ तुम करो, वह उसे साथ लेकर अपने सम्बन्ध में उसे आश्वस्त करने के बाद करो; और उसकी वफ़ादारी के इज़हार और तुम्हारी हर बात में साथ देने की घोषणा के बावजूद भी जल्दीबाज़ी न करो। जो नींव धीरे-धीरे पानी के थोड़े-थोड़े छींटों के साथ डाली जाती है, वह मज़बूत होती है; जो प्रेम धीरे-धीरे पुष्ट होता और बढ़ता है, वह उस तूफ़ानी प्रेम और दो शरीर और एक प्राण की लम्बी-चौड़ी सस्ती घोषणाओं से अधिक दिन तक जीवित रहता है, जिसका आज बाज़ार में चलन है। यह सदा याद रखो कि भावनाओं की आँधी में जिस प्रेम की अनुभूति होती है, वह बहुत दिनों तक टिक नहीं सकता। जो बहुत जल्द आता है, वह बहुत जल्द चला भी जाता है।

'इस ख़याल को तो तुम दिल से बिलकुल निकाल दो कि तुम चाहो तो भी अपने पर संयम नहीं रख सकते। यह सिर्फ़ दृढ़ता की बात है। यदि तुम पहली बार फिसल गये तो फिसलते ही जाओगे। बीच में रुकना बड़ा मुश्किल है। मैं चाहता हुँ कि तुम मन पर ज़रा क़ाबू रखो और प्रति क्षण अपने प्रेम को शुद्ध करते हुए ज़िन्दगी के रास्ते पर बढ़ो।

'संयम का निश्चय कर लेने के बाद तुम्हें अपने शुभ प्रयत्नों में अपनी पत्नी को भी सम्मिलित करना चाहिये। याद रखो, विवाहित जीवन एकाकी जीवन नहीं है। यह संयुक्त जीवन है। बिना तुम्हारी पत्नी की शुभाकांक्षा और क्रियात्मक सहयोग के तुम्हें किसी काम में सफलता नहीं मिल सकती; और सफलता मिल भी जाय तो वह सफलता शुष्क और निरानन्द होगी। उसमें न रस होगा, न आनन्द होगा, न तृप्ति होगी और न उल्लास होगा। विवाहित जीवन में सुख प्रेम का परिणाम है; और यह प्रेम सदा अपने को देकर ही प्राप्त किया जाता है।

'और सहयोग तथा राय से काम करने का सिर्फ़ यही मतलब नहीं है कि स्त्री दबी ज़बान से या सिर हिलाकर तुम्हारी बातें मान ले। चूँकि स्त्रियाँ पुरुषों से ज़्यादा व्यावहारिक होती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं, इसलिए प्रायः वे और कोई चारा न देखकर पुरुषों की बातें मान लेती हैं। उनको पुरुष की हर बात मान लेने की शिक्षा दी गई है। वे पुरुष से व्यवहार करते समय अपनी शक्ति का नहीं, केवल अपनी विवशता का अनुभव करती हैं। चतुर होने के कारण वे इस विवशता को छिपाती हैं। इसलिए केवल उनका सिर हिलाना या दबी ज़बान से दी गई स्वीकृति ही तुम्हारे संयुक्त जीवन के सुख और सफलता के लिए बस नहीं है। बहुधा इस तरह की स्वीकृति उनकी अस्वीकृति की सूचक होती है। तुम्हारी सफलता इस बात में है कि तुम अपनी पत्नी का दिली सहयोग प्राप्त करो। जिस सीमा तक तुम अपने या अपने कामों के अन्दर उसे दिलचस्पी लेने को राज़ी कर सकोगे, उसी सीमा तक तुम दोनों सुखी होगे। उसे न सिर्फ़ तुम्हारी बातों पर हलकी-सी रज़ामन्दी ज़ाहिर करने की ज़रूरत है, बल्कि उसे अपना ही काम और अपना ही हित समझ कर ख़ुशी ज़ाहिर करने की ज़रूरत है। अगर वह तुम्हारी बातों में मगन होती है; अगर तुम्हारी बातों से उसके चेहरे पर रोशनी चमकती है; आँखों से आनन्द टपका पड़ता है, तो समझो कि तुमने आधी बाज़ी जीत ली।

'यह आनन्द, यह मिलन, जीवन का यह अमृत सहज ही तुम्हारा हो सकता है, अगर तुम अपने हृदय की बन्द खिड़कियों को खोल दो। अपनी पत्नी के दिल को स्पर्श करो। यह मत समझो कि चूँकि उसके साथ तुम्हारा विवाह हो गया है, इसलिए वह तुम्हारी हो ही गई है। विवाह का मतलब केवल इतना है कि तुमको अपने जीवन के मार्ग में चलते हुए एक ऐसा साथी मिल गया है, जिसे तुम चाहो तो अपना हार्दिक मित्र और हितैषी बना सकते हो। यह अवस्था बनाना, अपनी पत्नी को सच्ची पत्नी बना लेना, उसके दिल को जीते बिना नहीं हो सकता। और दिल पर यह विजय विवाह से ही प्राप्त नहीं हो जाती। हाँ, विवाह उसे प्राप्त करने के क्रम को अधिक सुगम और सरल बना देता है। स्त्री आशा और उमंगों से भरा हृदय लिये आती है। तुम उसके जीवन को प्रेम से भरकर अपना बना सकते हो।

'तुम्हारी सफलता इस बात में है कि जिस आनन्द का दाम्पत्य-जीवन के आरम्भ में तुम्हें अनुभव हो रहा है, उसे स्थायी बनाओ। वह चन्दरोज़ा न हो, जिसके ख़तम होते ही तुम्हारा जीवन खेद और दुःख से भर जाय और तुम अपनी क़िस्मत पर रोओ और अनुभव करो कि यह क्या से क्या हो गया। दाम्पत्य-जीवन के प्रेम और आनन्द से भरे हुए दिनों को तुम बढ़ा सकते हो।'

• • •

अंगरेज़ी

वल्लभ भाई पटेल

[५ वीं अप्रैल के कांग्रेस सोशलिस्ट में भारत के समाजवादी नेता श्री यूसुफ़ मेहरअली ने सरदार वल्लभ भाई का रेखा-चित्र लिखा है। रेखा-चित्र निष्पक्ष होता है और उससे व्यक्ति को समझने में काफी सहायता मिलती है, इसलिए उसके कुछ अंश यहाँ अनूदित किये जाते हैं।—सं०]

'हिन्दुस्तान की राजनीति में महात्मा गान्धी के बाद सब से अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व शायद वल्लभ भाई का ही है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि लोक-प्रियता, बुद्धिमानी और निरीक्षण में गान्धीजी के बाद उन्हीं का स्थान है। वास्तव में स्थिति इसके ठीक विपरीत है। लोक-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रियता में वह जवाहरलाल के मुक़ाबले सौवाँ हिस्सा भी नहीं हैं और बुद्धिमानी में राजाजी से कोसों दूर हैं। यदि उनका परिचय निरीक्षण-जैसी किसी वस्तु से हो तो मुझे आश्चर्य होगा ; पर वह गजब के व्यवहार-कुशल और निर्मम हैं। अपने ही बल उन्होंने इतने विशाल और शक्तिशाली राज्यतंत्र को स्थापित किया और उसे आगे बढ़ाया कि जिसने अपने असंख्य विरोधियों को सदा के लिए कुचल दिया और महाधूर्त ब्रिटिश नौकरशाही तक को चिन्ता में डाल दिया। पिछले सप्ताह तक वह पार्लियामेन्टरी कमिटी के अध्यक्ष की हैसियत से भारत के आठ कांग्रेसी प्रान्तों के मन्त्रि-मंडलों पर अधिकार रखते थे। प्रधान मंत्री और कांग्रेसी नेतागणों के हृदय में उनके प्रति भय-मिश्रित मान है।

'अफ्रिका से लौट आ महात्माजी ने जब अहमदाबाद को अपने कार्य-क्षेत्र का केन्द्र बनाया तो वल्लभ भाई की वकालत धड़ल्ले से चल रही थी। उन दिनों 'अहमदाबाद क्लब' में कि जहाँ सभी वकील एकतित्र होते, महात्माजी हँसी-मज़ाक का सर्व-सुलभ विषय थे। वकालत छोड़कर एक साधारण-से आदमी का सत्य और अहिंसा से विशाल ब्रिटिश साम्राज्य का मुक़ाबला करना हँसने-जैसी बात थी। वल्लभ भाई भी इस प्रकार के हँसी-मज़ाक में खूब हिस्सा बँटाते। और एक दिन जब महात्माजी ने इस क्लब के सदस्यों को अपने सिद्धान्त समझाने का साहस किया तो वल्लभ भाई ने उनकी ओर देखा तक नहीं, वे कटाक्ष-भरा स्मित करते हुए एक कोने में ताश खेलने बैठ गये थे।

'इनके मित्रों के लिए इनका महात्माजी के साथ सम्मिलित हो जाना आश्चर्य-जनक हुआ। वल्लभ भाई का भूतकाल इसका साक्षी था। वे अडिग क़दम रखते हुए और आश्चर्य-जनक धैर्य से प्रथम पंक्ति में आये थे। पाठशाला के शिक्षक इनके मारे परेशान थे और इन्हें कितनी ही पाठशालाएँ बदलनी पड़ीं। कोई भी शिक्षक इनकी शक्ति के अखंड प्रवाह को नियंत्रित न कर सका। शिक्षा समाप्त कर इन्होंने वकालत शुरू की। फ़ौजदारी मुकदमें इन्हें प्रारम्भ से अच्छे लगे। दीवानी मुकदमों की पेंचीदगियों में इनकी विशेष गति न थी। ये शीघ्र ही ख़ून, चोरी और डाके के मुकदमें सफलता-पूर्वक लड़नेवाले के रूप में प्रसिद्ध हो गये। थोड़े ही दिनों में न्याय-विभाग के लिए यह हौवा हो गये, और इनसे बचने के लिए रेज़ीडेन्ट मैजिस्ट्रेट की अदालत बोरसद से आनन्द भेज दी गई ; परन्तु वल्लभ भाई वहाँ भी जा पहुँचे और अन्त में उसे वापिस बोरसद लाना पड़ा।

'इन्हें बैरिस्टर बनने की धुन सवार हुई। थोड़ा पैसा इकट्ठा होते ही इंगलैंड चले गये और एक विद्यार्थी की तत्परता से अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। कॉलेज में यद्यपि यह अन्य विद्यार्थियों से भिन्न थे ; परन्तु परीक्षा में सर्व-प्रथम रहने में इन्हें कठिनाई न हुई। आज की तरह तब भी यह अपनी शक्ति को ऐन मौक़े पर काम में लाने के लिए संग्रहीत रखते थे। परीक्षा समाप्त होते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही यह भारतवर्ष की ओर लौटे। मार्ग में पड़नेवाले किसी भी युरोपिय देश में भ्रमण करने न ठहरे; यह वहाँ भ्रमण करने तो गये नहीं थे।

'वल्लभ भाई को गांधीजी की ओर आकर्षित करनेवाला उनका व्यक्तित्व था, सिद्धान्त नहीं। गुजरात राजनीति के ज्वार से तटस्थ था। गांधीजी का अद्वितीय और दृढ़ नेतृत्व उसे हिला रहा था। उनमें दृढ़ता थी। गांधीजी की ज्वलन्त आत्म-श्रद्धा ने वल्लभ भाई पर गहरा असर डाला और जब उन्होंने व्यावहारिक और लड़नेवाला कार्य-क्रम बनाया तो वल्लभ भाई ने उनके साथ सम्मिलित होने का निश्चय कर लिया। इसके बाद धीरे-धीरे इन्होंने गांधीजी के सिर से दैनिक रुटीन के काम का बोझा बँटाना शुरू किया और उनके स्थायी सहयोगी हो गये। अपने स्वामी का सन्देश ले यह गाँव-गाँव घूमे। इन्होंने संस्थाएँ स्थापित कीं और बड़ी-बड़ी लड़ाइयों का नियंत्रण किया, जिनमें १९२८ वाला बारडोली का लगानबन्दी युद्ध सर्वश्रेष्ठ है। एक शक्तिशाली साम्राज्य के सभी दमनचक्रों को निमन्त्रण दे वल्लभ भाई के नेतृत्व में अडिग रहनेवाले बारडोली के किसानों की उस वीरता भरी लड़ाई को सारा देश आदर से देख रहा था। और उनकी विजय होने पर वल्लभ भाई की कीर्ति देश व्यापिनी हो गई। गुजरात में १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व भी इन्होंने किया और उसे इतना उग्र बना दिया कि सैकड़ों सरकारी नौकरों ने इस्तीफ़े दे दिये। सरकार के सामने कभी न होनेवाले असहयोग की हवा देश-भर में छा गई। कृतज्ञ राष्ट्र ने इन्हें बड़ा-से-बड़ा आदर देकर सम्मानित किया। अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन के यह सभापति चुने गये। १९३२ में फिर से सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हुआ और इस बार यह भी महात्माजी के साथ १८१८ के तीसरे रेगुलेशन के अन्तर्गत गिरफ़्तार किये गये और बिना कोई मुक़दमा चलाये दो वर्ष तक जेल में ठूँस दिये गये।

'महात्मा गान्धी के अनुयायी होते हुए भी यह उनसे कई अंशों में भिन्नता रखते हैं। वास्तववादी और व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञ होने के कारण वल्लभ भाई गान्धी जी की अपेक्षा जीवन का दूसरी बाजू पर (आदर्श की नहीं, व्यवहार की) जोर देते हैं। यह आदतों में धर्म-चुस्त (Puritanical Habits) दीखते हैं। परन्तु धर्म के प्रति इनमें अधिक लगाव नहीं है। गान्धी जी के जीवन का निर्माण करनेवाली गीता तो आज से केवल कुछ ही वर्ष पहले इन्होंने पढ़ी। जब कि गान्धीजी प्रारम्भ से ही सत्य के प्रयोगों की ओर अभिमुख रहे हैं, वल्लभ भाई का लक्ष्य सांसारिक वस्तुओं की ओर रहा है। ये स्वयं एक जाग्रत व्यवस्था शक्ति हैं; तो भी व्यवस्था के लिए इन्हें आज्ञाधीनता की अपेक्षा रहती है। अपने स्वभाव के अनुसार विरोधियों की या दूसरों की विचार-स्वाधीनता इनके लिए असह्य है। या तो राजी होकर इनके विधान में सम्मिलित हो या विरोध कर मुँह की खाय। इन्होंने निर्भयता परन्तु होशियारी से एक के बाद एक अपने विरोधियों को मार्ग से दूर हटाया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'वल्लभ भाई में व्यापक दृष्टि का अभाव है। इनका जीवन-दर्शन गान्धीवाद के बाद जीवन के अनुभवों में समाप्त हो जाता है। वस्तु के मूल तक पहुँचने की आवश्यकता ये नहीं समझते। व्यावहारिक कामों में इन्हें आनन्द आता है और इसीलिए इन्होंने एक विश्वस्त तंत्र स्थापित कर उस पर अपना नियंत्रण रख सभी कार्यों को पूर्ण करने की योजना बनाई है।

'एकदम सादगी से भरा यह आदमी व्यक्तिगत रूप से तो पैसे से सदा निर्लिप्त रहता है, फिर भी नहीं भूलता कि पैसा एक शक्ति है। इसीलिए अपने आसपास एकत्रित होनेवाले पूँजीपतियों के बारे में यह किसी तरह का भ्रम नहीं रखते। और इनका विश्वास है कि बाहर रहने की अपेक्षा पूँजीपतियों का कांग्रेस में रहना अधिक निरापद है। यह उनकी कीमत और हैसियत से बराबर परिचित हैं और उसके अनुरूप ही उनका आदर भी करते हैं। समाजशास्त्र की जानकारी न होने और राजनीतिज्ञ पुरुष में रहनेवाली जनसाधारण के प्रति हीन भावना ने—यद्यपि गान्धीजी के संसर्ग से उसमें सुधार हुआ है, कमी नहीं—इनके द्वारा उन पूँजीपतियों का बड़ा भारी लाभ करवा दिया है।

'जहाँ गान्धीजी के अन्य साथी शराबबन्दी, अछूतोद्धार, खादी-प्रचार आदि रचनात्मक कार्यक्रम को अपनाये हुए हैं, वल्लभ भाई उसमें साधारण-सी सहायता दे अपनी शक्ति को राजनैतिक कामों के लिए संचित किये हुए हैं। गान्धीजी एक बार जो प्रणाली निर्धारित कर देते हैं, वल्लभ भाई उसे सफल बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं। जब गान्धीजी ने कौन्सिलों का बहिष्कार किया तो उसी दृष्टिकोण को लेकर इन्होंने देशबन्धुदास, मोतीलाल नेहरू और अपने भाई विट्ठलभाई तक का विरोध किया। और जब गान्धीजी ने कौन्सिल-प्रवेश का प्रयोग शुरू किया तो पार्लियामेण्टरी कमेटी का सभी प्रबन्ध अपने हाथ में ले उसे सफल बनाने यह अपनी पूरी ताक़त से उसमें लग गये।

'गाँव के एक छोटे से घर से निकल देशव्यापी कीर्ति प्राप्त करने में वल्लभ भाई को अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इनके सफल चरित्र का रहस्य इनके कौटुम्बिक इतिहास से सम्बन्धित है। गुजरात का खेड़ा ज़िला राबिनहुड की-सी रीति-भाँति के लिए प्रसिद्ध है। इनके पिता इसके लिए प्रसिद्ध थे। १८५७ के महान स्वातन्त्र्य युद्ध में वह अंग्रेज़ों से लड़ने गुजरात से निकल पड़े। एक बार जब वह किसी देशी राजा के यहाँ क़ैद होकर आये तो राजासाहब शतरंज खेल रहे थे। उन्होंने वहीं से खड़े-खड़े राजासाहब को प्यादों की थोड़ी मज़ेदार चालें बताईं जिसके परिणाम-स्वरूप वह छोड़ दिये गये। वल्लभ भाई में अपने पिता की वह हिम्मत और निर्भयता और अपने भाई विट्ठल भाई पटेल की बहुश्रुतता बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान है।

'यह निर्विवाद है कि सरदार वल्लभ भाई कांग्रेस में आज कट्टर गान्धीवादी नेता हैं। पार्लियामेण्टरी कमेटी में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से बड़ी-से-बड़ी टक्कर लेनेवाले यही हैं; यद्यपि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वल्लभ भाई ने ही उस पार्लिमेण्टरी व्यवस्था की स्थापना की है, वेही प्रमुख हैं और एक डिक्टेटर की भाँति उसका काम चलाते हैं; फिर भी वह रूढ़िगत पार्लियामेण्टरी व्यवस्था को नहीं मानते। रुक जाने और विजयी प्रान्तों का संगठन कर लेने की इच्छा उनमें जाग्रत हुई है। वास्तव में तो युद्ध ही इन्हें रुचता है और यदि फिर प्रसगवशात् वह प्रारम्भ हो तो इन्हे दुःख न होगा। इनकी विशेषता इनकी मानसिक स्थिरता है। वर्षों पहले जब यह वकील थे एक बार किसी मुक़दमे में बहस करने खड़े हुए कि एक तार आया। तार में इनकी पत्नी की मृत्यु के समाचार थे; परन्तु इन्होंने उसे सरसरी निगाह से पढ़कर जेब में रख दिया मानो कुछ लिखा ही न हो और फिर अपनी बहस शुरू कर दी। उस समय इनके मन पर क्या बीती होगी उसका अंश-मात्र भी दूसरों को मालूम न हो सका। दूसरे दिन कोर्ट खुलने पर ही लोगों को मालूम हुआ। इनके इस संयय और स्थिरता से सभी विस्मित रह गये। आज भी उनमें वह मानसिक स्थिरता विद्यमान है और इसीलिए वह भयानक लगते हैं।

'नेता की हैसियत से इनमें अद्भुत गुण हैं परन्तु वे स्वयंचेतन न होकर धारण करने वाले हैं। वल्लभ भाई को दूर तक देखने-सोचने के लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं। इनके लिए तो एक ही क़दम काफ़ी होता है।

—चयनकर्ता, अनुराग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वमैत्री

मई, १९३९ वर्ष—९ : अंक—८ वैशाख, १९९६

मूल्यांकन

[जैनेन्द्रकुमार]

हम विशेषणों द्वारा वस्तुओं को एक दूसरे से विशिष्ट करके पहचानने के आदी हैं। यह अच्छा है, यह बुरा है ; यह छोटा है, यह बड़ा है। इस तरह उनमें निस्बत पैदा करके हमारी समझ चला करती है। हम चीज़ों को क़ीमतें देते हैं, किसी को कम, किसी को ज्यादा। किसी को एक तरह की क़ीमत, दूसरी को दूसरे तरह की क़ीमत। उन्हीं क़ीमतों को ओढ़कर वे चीज़ें हमारे पहचानने में और काम में आती हैं।

लेकिन क़ीमतें हमारी दी हुई होती हैं न ? और हम स्थिर नहीं हैं, गतिशील हैं। इससे क़ीमतें भी अचल नहीं हैं। उनमें अन्तर आता रहता है।

उन क़ीमतों में तरतमता रखने के लिए कुछ इकाई की ज़रूरत हुआ करती है। एक पैमाना चाहिये, जिस पर छोटा छोटा और बड़ा बड़ा उतर सके। वैसा कोई दोनो पर लागू होनेवाला पैमाना न हो तो हमारे विशेषण व्यर्थ हो जायँ और उनसे हमें कुछ भी सहायता न मिले।

लेकिन विशेषताएँ तरह-तरह की हैं। कपड़े को जैसे हम गज़ से नापते हैं, दूध को वैसे नहीं नाप सकते। उसे तौलना होता है। और दुःख-सुख को हम न सेर-छटाँकों और न गज़-इंच में नाप सकते हैं। उसका निर्णय और तरीक़े से होता है।

इस तरह भिन्न वस्तुओं को एक दूसरे की अपेक्षा में देखने और समझने के भिन्न मान हमने क़ायम किये हैं। दूध को कपड़े के मुकाबिले में देखने की आवश्यकता साधारणतः हमें नहीं होती। उनकी अतः विविध श्रेणियाँ हम मान लेते हैं।

फिर भी जब ऐसी आवश्यकता उपस्थित हो जाती है, तो दोनो को एक तल पर लाने के लिए हमने पैसे का मान बना लिया है। सेर भर दूध दो आने का है और उधर दो आने में आधा गज़ कपड़ा आता है, तो हम मान लेते हैं कि दोनो बराबर हैं। न दूध ज्यादा है, न कपड़ा ज्यादा है।

यह प्रयोग व्यवहार में बहुत काम आता है। व्यवहार नाम अदल-बदल का है। देन-लेन के आधार पर दुनिया चलती है। और वस्तुओं में तरतमता स्थापित करने के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम कोई सामान्य नियम या उपादान खोज लेते हैं तो उससे व्यवहार में सुगमता हो जाती है। ऐसे सौदा सहज बनता है और झंझट कम होती है।

ध्यान रहे कि जो नियम वस्तुओं को अमुक और भिन्न मूल्य प्रदान करता है, वह अपने तल पर उनका एकीकरण भी करता है। पैसे के आगे क़ीमत के लिहाज़ से दूध का दूधपन और कपड़े का कपड़ापन गौण हो जाता है; दोनो एक तल पर आ जाते हैं और मुख्य प्रश्न यह हो रहता है कि पैसे के माप में कौन कम-अधिक है।

पर व्यवहार का काम जितने से चल जाता है, विज्ञान का काम उतने से नहीं चलता। आज का विज्ञान कल के व्यवहार का आधार है। इसलिए विज्ञान व्यवहार के प्रचलित मूल्यों से आगे जाता है। उसे और भी गहरे एकीकरण की आवश्यकता है। वह तात्कालिक व्यवहार से आगे देखने को बाध्य है, क्योंकि सौदा नहीं दृष्टि की स्पष्टता और विस्तृति उसका लक्ष्य है। इसलिए विज्ञान व्यावहारिक मूल्यों को अलग-अलग थामनेवाले उस मूल नियम को भी पाना चाहता है जो सब अनेकता को एक में ढाल दे।

सोना सोना है, पीतल पीतल है। लेकिन विज्ञान यह मानकर चुप नहीं है। उसे तो सोने के सोनेपन और पीतल के पीतलपन में राग-द्वेष नहीं है। उसे कोई उनके तात्कालिक मूल्य-भेद में आसक्ति नहीं है। इसलिए सोना और पीतल दोनो उसकी निगाह में एक-से हैं और उसकी लगन का लक्ष्य वह तत्त्व है जिसकी अपेक्षा में दोनो में दोपन नहीं रहता। सोने को वह अणु-परमाणु बनाकर देखेगा? जहाँ उसकी स्वर्णता नहीं टिक सकेगी, और पीतल को भी उसी अणुरूप में वह देखेगा। अणु न पीतल है, न सोना है।

इससे आवश्यकता है कि हम व्यवहार में जिन विशेषणों को लेकर काम चलाते हैं, उनकी असलियत समझने के लिए उस अविशेष्य को ध्यान में लाने की ओर बढ़ें जो उन विशेषणों को थामता है। मूल्य-भेद को जानने के लिए उस अमूल्य को जानें जो मूल्यातीत होने के कारण ही सब मूल्यों को संभव बनाता है। इस विषय में पदार्थ-विज्ञान की गति भी उसी दिशा में है, जो मानव-ज्ञान की प्रगति की दिशा है। विज्ञान उस सूक्ष्म को चाहता है, जो पदार्थ के पदार्थत्व की इकाई है। मानव-ज्ञान भी उस इकाई की साधना में लीन है, जो हमारी अनेकता के मूल में है।

हम यहाँ उस निगाह से उन विशेषणों की छान-बीन करना चाहते हैं, जो मानव को मानव से अलग और विशिष्ट करने के काम में आते हैं।

तरह-तरह के शब्दों से हम आदमियों में भेद चीन्हते हैं। कुछ विशेषण उनमें सामाजिक हैं और परिस्थिति से संबंध रखते हैं: जैसे अमीर और ग़रीब ब्राह्मण और शूद्र आदि ऐसे (सामाजिक) स्थिति-द्योतक शब्दों पर हमें इस समय नहीं अटकना है। भाव-वाचक विशेषणों से ही हमें प्रयोजन है।

आशय यह नहीं है कि सामाजिक का प्रभाव भावात्मक संज्ञाओं पर नहीं है। न-न, सो तो ख़ूब है। शूद्र वैसा होने के कारण ही बुरा कहा जाता है न, और ब्राह्मण उसी कारण पवित्र? और अमीर के सब दोष गुण हैं और ग़रीब की सबने बुराई की है! लेकिन वह तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विकृति है हम उधर से हटकर कुछ असंलग्न निगाह से देखने-समझने का प्रयास करना चाहते हैं।

हम कहते हैं कि यह बहुत नेक आदमी है, और वह बहुत बुरा आदमी है।

इसी तरह : अमुक पुरुष सभ्य है, दूसरा अशिष्ट है।

और : उस व्यक्ति में शक्ति है, दूसरा पोच है, उसमें व्यक्तित्व नहीं है।

ऊपर ये तीन कोटि के विशेषण दिये गये। पर असल में वे साथ-साथ चलते नहीं दीखते। वे आपस में कभी, बल्कि अक्सर, आर-पार होकर काम करते प्रतीत होते हैं।

कहने में आता है कि वह आदमी बड़ा भला है, कैसा गऊ है। लेकिन उसे ही गिनती के वक्त गिनती में हम नहीं लाते। अवसर होने पर कहते हैं कि अँह, वह कोई आदमी-में-आदमी है, बिचारा भला है; लेकिन कुछ है नहीं। दूसरी ओर जिसे बुरा मानते हैं, मौक़ा पड़ने पर भले आदमी से भी अधिक उसका ख्याल हमें रखना होता है। कहते हैं कि वह शख्स है बदमाश; लेकिन भाई है ज़बरदस्त। उसे शुमार में लाये बिना हम नहीं रह सकते।

अच्छा—और—बुरा और दीन—और—समर्थ, विशेषणों की ये दो जोड़ियाँ आपस में आर-पार हो जाती हैं, परस्परापेक्षा उन्हें नहीं है। बुरा आदमी समर्थ हो सकता है और भला आदमी दीन। एक लिहाज से यदि भला आदमी स्पृहणीय समझा जाता है, ख़ास तौर से बात या विचार करते वक्त; तब दूसरी दृष्टि से समर्थ आदमी ही गणनीय होता है, खास तौर से जब किसी काम के मामले की बात हो।

लेकिन संज्ञाएँ हैं जो इन नित्य-प्रति के विशेषणों को उल्लंघन करके इतिहास में टिकती हैं। वह कुछ भिन्न हैं। ऐतिहासिक पुरुषों के मूल्यांकन के लिए रोज़ के विशेषण काम नहीं आते। इतिहास के विशिष्ट पुरुषों को कहना होता है : महापुरुष।

महापुरुष भला हो सकता है और बुरा भी हो सकता है; शिष्ट हो सकता है और असभ्य भी हो सकता है; चतुर हो सकता है और अकुशल भी हो सकता है। असल में वह इन विशेषणों से ढका रहने योग्य नहीं होता। वह स्वयं होता है और इन विशेषणों को अपनी चिन्ता रखने की छुट्टी दिये रहता है।

हम यहाँ उसी तत्त्व को समझना चाहते हैं, जो विशेषणों के द्वित्व से गहरे में है, उनसे अतीत है, और जो बदलते हुए हाट-बाट के मूल्यों के बीच स्थायी होकर विराजमान है। जो सापेक्ष्य नहीं है और बस स्वयंभव होकर सम्भव है।

बुरे मनुष्य को जानने के लिए हमें अच्छे को पाने की ज़रूरत है। कोई बुराई अपने में नहीं टिक सकती। बुराई प्रतिक्रिया है। इसलिए ऐसे द्वन्द्वात्मक विशेषण किसी कदर कृत्रिम विशेषण हैं। उनमें रुचि और अरुचि प्रकट होती है। वे वैज्ञानिक नहीं हैं। और यथार्थता को पकड़ने में मददगार बहुत कम हो सकते हैं।

नीम का पेड़ बुरा है; क्योंकि नीम का पत्ता हमें कड़वा लगता है। वही नीम का पेड़ अच्छा है, क्योंकि अमुक वैद्य ने बता दिया है कि उसके पत्ते पित्त को फ़ायदा पहुँचायेंगे। तो यह प्रयोजनाश्रित विशेषण विशेष दूर हमें न पहुँचा सकेंगे। व्यवहार में वे जितने उपयोगी हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकते हैं, व्यवहार से अलग होकर उनका उपयोग उतना ही मन्द हो जाता है।

इसलिए यह तो मानकर चलना चाहिये कि अच्छा-बुरा कोई नहीं है। क्योंकि हमें साम्य-पूर्वक सबके प्रति प्रीति की वृत्ति रखनी है। मानव-सत्य के सम्बन्ध में इसी वृत्ति-पूर्वक चलने से हम कुछ पा सकेंगे। अन्यथा हम कहीं भी नहीं पहुँच सकेंगे, शब्द-व्यूह में निरा चकराना ही हाथ रह जायगा।

यहाँ आसानी के लिए इतिहास की जगह (क्योंकि इतिहास परोक्ष है) पास के उद्यान को ले लीजिये।

उस उद्यान में विशाल एक बड़ का पेड़ है, जिसमें ऊँचाई विशेष नहीं है, पर विस्तार ख़ूब है। वह ऐसा घना है ऐसा छायादार, कि शत-सहस्र जन उसके तले विश्राम पा सकते हैं। पुराना ख़ूब, जटाएँ बहुत; और तना उसका इतना बृहदाकार है कि क्या पूछिये।

उसे अच्छा या बुरा, सुन्दर या असुन्दर, जो जिसे भाये कह ले। पर हमें और बात कहनी है। वह अच्छी-बुरी नहीं है, सुन्दर-असुन्दर नहीं है। वह यह है कि पेड़ जितना और जो हमारी आँखों को दीखता है, वह उतना और वही नहीं है। उसकी समूची इयत्ता मन में बैठाने के लिए कुछ उसको भी ध्यान में लेना होगा; जो स्वयं तो अदृश्य है, फिर भी जो उसके दृश्य-भाग को थामे हुए है। यानी उसकी जड़ों को भी समझना और हिसाब में लेना होगा।

मैं कहना चाहता हूँ कि जिसने अपने भीतर के जितने अधिक भाग को बाहर जितने अधिक अंश से मिला दिया है, और ऐसा ही मेल जिसके द्वारा जितना अधिक व्यक्त हुआ है, वह उतना ही मननीय और माननीय है।

पेड़ का बीज पड़ा। धरती के संयोग से रस पीकर उसने अपने दलों को फटने दिया। किल्ला उगा। ऊपर की हवा उसने ली और धूप सेंकी। नीचे धरती में से भी उसने अपना पोषण खींचा। किल्ला बढ़कर पौधा हुआ। पौधा दरख़्त। वह बीज इस बीच कहाँ गया? पर वह तो कब का मुक्त हो चुका। किल्ला जब फूट चला कि बीज ने तभी कृतार्थता पा ली। जिस धरती में मुँह गाड़कर उसने वास किया था, वहाँ अब दूर-दूर तक गहरी उसके वंश की जड़ें फैल गई हैं। जितनी गहरी और घनी भीतर जड़ें हैं, उतना ही विशद और विस्तृत बाहर फैलता हुआ उसका आकार है। अतः वृक्ष की सम्पूर्णता जड़ों के अभाव में नहीं समझ में आयगी।

अमुक वृक्ष बड़ा है, क्योंकि धरती में चोटी तक वह इतना ऊँचा नपता है; यह कथन अशुद्ध नहीं है। पर यह कथन काफ़ी प्रयोजन-परिमित और स्थूल है। कहीं ऐसा न समझ लिया जाय कि कोई एक दम धरती से उठकर उतना ऊँचा खड़ा हो सकेगा या कि ऊँचाई इस दीखने-वाली धरती से ही आरंभ होती है। नहीं, नहीं। दीखने को जड़ें नहीं दीखतीं; लेकिन ऊँचे दीखने के लिए नीचे की जड़ें बहुत आवश्यक हैं।

इस नीचे की निचाई और ऊपर की ऊँचाई को जो अपने-पन से एक में मिलाये रखता है, वह उतना ही महत्त्व सम्पादन करता है। 'ऊपर'-'नीचे' तो हमारी संज्ञायें मात्र हैं। पाताल में समाये दरख़्त की जड़ का छोर और उसके चरम शीर्ष का छोर, असल में तो दोनो एक ही हैं। वृक्ष की जड़ आस-पास से वह रस खींचकर ऊपर भेज देती है और उस वृक्ष का मुकुट और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतरंग से उसी ऊर्ध्वगामी रस का कृतज्ञ है। और सूर्य-दर्शन पर अपने हर्ष का सम्वाद नीचे पहुँचाता रहता है।

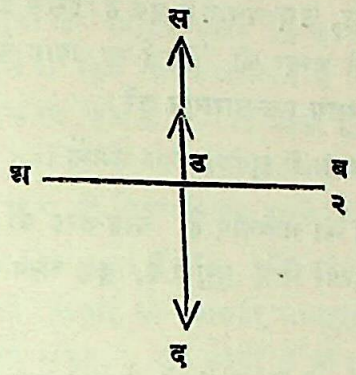

साथ के चित्र में 'अ ब' रेखा से ऊपर का भाग दीखता है और उतने ही को हम वृत्त कहते हैं। लेकिन स्पष्ट है कि स उ रेखा की अपनी कोई सत्ता नहीं है। स द यह तमाम एक रीढ़ है, एक सत्ता है। और उ बिन्दु से व्यक्त और अव्यक्त का संधि-बिन्दु ही है। वह स्वयं में कोई आदि अथवा अन्त नहीं है। मात्र अ उ ब हमारे व्यवहार का धरातल है। इस दृष्टि से उ स को हम वृत्त की उँचाई कहें तो कह सकते हैं। अन्यथा तो उ बिन्दु यथार्थता में कहीं है नहीं। एक अनिर्दिष्ट और अनिवार्य रस-प्रवाह के द्वारा स और द आपस में अभिन्न भाव से एक हैं। जो स की प्रकृति है, वही द की प्रकृति है, द की अनुभूति स को अनुभूति होती है। उ बिन्दु स द के मध्य विभाजक बिन्दु किसी भी भाँति नहीं है। स द की एकता अविभक्त और अखंड है।

इससे यह कहा जा सकता है कि उ स की ऊँचाई को उ द की निचाई संभाल रही है। नहीं तो, उ द के अभाव में उ स का कोई अर्थ ही नहीं रहता। निचाई से टूटकर ऊँचाई कोई चीज़ नहीं होती।

असल में स और द बिन्दुओं के मध्य जितनी जीवित और घनिष्ट एकता है, उतना ही उस दरख़्त को मज़बूत कहना चाहिये।

स्पष्ट है कि वर्द्धनशील वृत्त में द और स बिन्दु स्थायी नहीं हैं। द और गहरा जायगा, स और ऊँचा चढ़ेगा, और दोनो दूर हटते रहकर एक और अभिन्न बने रहेंगे। इसी के परिणाम से वृत्त बड़े-से-बड़ा होता जायगा। वह उस समय तक बढ़ता जायगा, जहाँ तक कि स और द में अभेद सम्बन्ध कायम रह सकेगा। जिस हद से आगे बढ़ने पर स और द की परस्परोन्मुखता और एकता टिक नहीं सकेगी, वृत्त के विकास की भी वही हद होगी।

मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिये। जो हमारी आँखों के सम्मुख ऊँचा उठा हुआ मालूम होता है, उसका अपने अन्दर उतना ही गहरा होना लाज़मी है। गहराई में मज़बूती है, तो उसका बड़प्पन भी स्थायी है। नहीं तो किसी प्रकार का बड़प्पन अन्वल तो संभव नहीं है; हो भी, तो वह कृत्रिम है, टिकाऊ नहीं है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानवी महत्ता इसलिए वह व्याप्तिशील एकता है, जो व्यक्ति अपने व्यक्त और अव्यक्त में साधना द्वारा सम्भव बनाता है।

अ ब से दक्षिण की ओर, अव्यक्त हैं ; उत्तर में व्यक्त। लेकिन व्यक्ताव्यक्त का भेद हमारी परिमिति के कारण है। स उ, उ द् यथार्थ में एक हैं। इससे हर बड़े आदमी के लिए, अनिवार्य है कि वह ऊँचे चढ़ने के लिए अपने अन्दर की निचाई का त्याग न करे (जो कि हो भी नहीं सकता) बल्कि उसको ऊँचाई के साथ एक-धारागत करे।

इसी बात को दूसरी भाषा में सुबोध करके समझें।

हमारे अन्दर तरह-तरह की भावनाएँ हैं, तरह-तरह की वृत्तियाँ हैं। उनको हमने 'सु' और 'कु' में बाँटा है। कुछ गुण हमारे लिए दुर्गुण हैं, कुछ अन्य स्पृहणीय गुण हैं। क्रोध बुरा है, ब्रह्मचर्य अच्छा है आदि।

'कु' को हम मिटाना चाहते हैं, 'सु' को सफल करना चाहते हैं। लेकिन जब तक 'सु' और 'कु' को एकान्त रूप में परस्पर विलग और विरोधी समझा जायगा, तब तक अभीष्ट सिद्धि नहीं होगी। 'सु' और 'कु' विशेषणों द्वारा विशेष्य जो तत्त्व है, वह तो एक ही है। विशेषण प्रयोग-भेद से हैं। चैतन्य चैतन्य है। जैसे विद्युत् विद्युत् है। दुष्प्रयोग से जैसे बिजली घातक हो सकती है, वैसे ही दुरुपयुक्त चैतन-शक्ति अपराध-मूलक हो जाती है। लेकिन पाप में अथवा पुण्य में व्याप्त आदि-शक्ति तो एक ही है। वह स्वयं न पाप है, न पुण्य है।

मेरे ख़याल में पाप और पुण्य के ओर और छोर में जो सम-भाव से एक-चित्-सत्ता प्रवाहित हो रही है, जो जितना उसके साथ सहज रूप से एकात्म होता है, वह उतना ही सार्थक सफल और विराट होता है।

व्यक्तित्व में से खुरचकर और छीलकर तो कुछ निकाला नहीं जा सकता। कुचलकर कुछ मिटाया भी नहीं जा सकता। सत् असत् नहीं हो सकता। जो इसी प्रयास में लगे हैं, वे असाध्य की साधना के पीछे हैं। वे चेतन को जड़ बनाना चाहते हैं, जैसे कि यह संभव भी हो। जब हम जड़ समझे जानेवाले पदार्थों में नित्यप्रति उस शक्ति का प्रादुर्भाव देख रहे हैं जो चित् है, अर्थात् जब जड़ कुछ रहता ही नहीं जा रहा है स्वयं चेतन-स्वरूप हो रहा है, तब कोई अपने को जड़ बना सकेगा, इसकी संभावना ही समाप्त हो जानी चाहिये।

इससे जो करना है वह यह, कि असत् को ही हम असत् जान लें। और असत् है द्वित्व। अगर हम समूचे व्यक्तित्व में एकता ले आयें, तो इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये। इसमें 'कु' स्वयमेव 'सु' बन रहेगा।

जो हममें से बड़ा बना, जाने अनजाने उसने अपने भीतर वही एकता की साधना की। एक निष्ठा को उसने पकड़ा और अपने भीतर के सब गुणों का समर्पण उस निष्ठा के प्रति कर दिया।

जो अपने अंग काटता है, वह उस कारण कुछ हीन ही बनता है। विराट पुरुष, पूर्ण पुरुष, व्यक्तित्व के काट-छाँट के मार्ग से नहीं बना करता। ऐसे तो मानव महान् नहीं, बनावटी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बनकर रह जाता है। उसमें कोने निकल आते हैं और पूर्ण की अनिर्वचनी सुघराई तो पास नहीं फटकने पाती।

कोयला अपने को खुरचकर और काटकर आग कभी बन सका है? अपने भीतर सुलग जगा ले तो उसकी समूची की समूची काली देह दमककर सुर्ख हो आती है। है तो यही उपाय, नहीं तो कोयले के लिए अपने कालेपन से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। असल में तो उसकी यह समझ ही भूल है कि वह काला है। जब तक वह यह समझता है, कालिमा से उसका छुटकारा असंभव है। पर वह यह क्यों नहीं जानले कि वह कालापन ही उजलापन है, अगर बस कहीं आग की चिनगारी वह अपने भीतर बैठा ले!

इतिहास के मान्य पुरुष अगर ऊँचे थे, और बड़े थे, तो निश्चित रूप में इसलिए नहीं कि उन्होंने अपने नीचे की निचाई को काटकर अलहदा कर दिया था। देह को काट फेंककर कोई स्वर्ग के दर्शन नहीं कर सकता। उन लोगों ने भी कुछ अपने में से काटकर नहीं फेंक दिया। ऐसा करके ऊँचाई नहीं हाथ आ सकती, अपंगता ही गले पड़ सकती है। अव्यक्त को दबाकर व्यक्त उभरता नहीं है; बल्कि वह भी ऐसे निस्तेज बनता है। जो तेजोमय बन सके उन्होंने अपने निम्न को अपने ही उच्च की सेवा में नियोजित कर लिया; निम्न का उच्च के, और उच्च का निम्न के साथ सामंजस्य साधा; और दोनो को मिलाकर एक कर लिया। उच्च को उच्चता के गर्व में बंद न रहने दिया। और निम्न को निम्नता की जकड़ से उबारा और दोनो में एक ही लक्ष की निष्ठा जगा दी। उस जाग से सब प्रोज्ज्वल हो गया। ऊँच-नीच न रहा, 'सु' और 'कु' भी न रहा। दहक में दहककर सब ज्योतिर्मय हो चला।

मैं यही कहना चाहता था कि जिसने जितने तीक्ष्ण विरोध को मेल में मिला दिया है, जिसने जीवन में जितना व्यापक समन्वय साधा है, वह उतना ही महान हो रहा है। प्रत्यक्ष को परोक्ष से, व्यवहार को अध्यात्म से और स्पष्ट को रहस्य से जितना मिलाकर जिसने देखा है, और दोनो को अपने जीवन में जितना ओत-प्रोत कर लिया है, वह उतना ही इष्टोपलब्धि के निकट पहुँचा है। वह अपने में आँख डालकर गहरा गया है। और इसीलिए जब वह आँख बाहर की ओर मुड़ी है तो वहाँ भी ग्रन्थियों की आवश्यकता को भेदती हुई दूर तक चली गई है। उसने भीतर एकता पाई है, इससे बाहर के जंजाल को भी हटा पाया है। जहाँ गहराई नहीं, वहाँ ऊँचाई नहीं। और लौकिक सफलता के लिए भी रहस्य की अभिज्ञता चाहिये।

मनुष्यों में मूल्य-विभाजन करने के लिए जो नियम तमाम इतिहास में काम देगा, जो कभी ओछा और पुराना नहीं पड़ेगा, वह यही एकता की परिभाषा-वाला नियम है। द्वित्व और द्वन्द्व-द्वारा सम्भव बननेवाले विशेषण पर्याप्त न पायेंगे। वे विभक्त कर सकेंगे, संयुक्त नहीं वे अनेकता में व्याप्त सम-सामान्य तत्त्व की एकता तक हमें नहीं पहुँचा सकेंगे। इससे कुछ दूर तक यदि वे हमें साधक होंगे, तो उसके बाद वे ही बाधक हो रहेंगे।

और वैसे विशेषण ओछे पड़ जाते हैं, तब हम कहते हैं कि अमुक पुरुष महापुरुष है। वह चतुर है, भला है, शिष्ट है, आदि पद जैसे उस व्यक्ति की महिमा को बहुत अधूरा भी प्रकट नहीं करते हैं। महापुरुष, अवतारी पुरुष अच्छे-भले नहीं होते, क्योंकि वे महान् होते हैं, अवतारी होते हैं। उनका महत्त्व द्वन्द्वज विशेषणों से ऊपर है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महत्ता का इसलिए अर्थ है व्यापक एकता। महान् व्यक्ति की सत्ता सिमटी हुई नहीं होती। ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ चहुँ ओर वह फैली रहती है। वह अवैयक्तिक होती है। पर व्यापक होकर शिथिल नहीं, बल्कि अतिशय एकनिष्ठ और सुगठित होती है। उस व्यक्तित्व का निम्नतर स्तर भी किसी न किसी भाँति उसकी सर्वोच्च आकांक्षाओं में सहयोगी होता है और उसके स्वस्थ व्यवहार से उच्छिन्न नहीं होते।

आवश्यकता है कि विचारों और आदर्शों के आज के तुमुल संघर्ष के मध्य हम उस प्राथमिक मूल्यांकन के नियम की प्रतिष्ठा करें, जो बहुलता को एकता तक ले आये। नहीं तो (मतादर्शों) देवी-देवताओं का ऐसा जमघट लगेगा कि पूजा भूल जायगी और विचार ही एक काम रह जायगा। जो निराकार और निर्गुण है, विविध वादों के बीच उस अद्वैत आदर्श को फिर याद करने की आवश्यकता है। नहीं तो उन-उन देवी-देवताओं के नामलेवाओं से घिरकर सत्य को चीन्हना हमारे लिए असम्भव हो जायगा। सबके अपने-अपने देवता हैं। हरेक के देवता दूसरे से बढ़कर हैं। ऐसी हालत में जिज्ञासु किसको लेने के लिए किसे छोड़े? और बचे तो बचकर किधर जाय?

मैं कहना चाहता हूँ कि जिज्ञासु को व्यापक एकता के बीज को हृदय में धारण कर लेना चाहिये। तब वह निर्भय है। उसके प्रकाश और उसकी अपेक्षा में विविध मतवादों के मध्य की विवाद-जनित पेचीदगी उसे हल दिखाई देगी और उन सबको अपना-अपना मूल्य देने में उसे कठिनाई उपस्थित नहीं होगी।

दिल्ली;
२५-११-३८।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फूल

[अम्बालाल पुराणी]

[अनु० रवीन्द्र]

संसार में कोई ऐसा मनुष्य भी है, जिसे फूल प्रिय न हों? पापी कहानेवाले, अत्याचारी और असंस्कारी लोग भी तो फूल पर लट्टू होते हैं।

रात की मधुर शान्ति में पृथ्वी का रस चूसकर प्रभातवेला में उषादेवी के आने से पहले-पहले, पूर्व के स्वर्ण द्वार के खुलने से पहिले छोटी-छोटी कलियाँ प्रफुल्लवदन हो चटक उठती हैं। खिले हुए फूल मानव को पूर्णता की प्रत्यक्ष सिद्धि ही तो करवा देते हैं शायद इसी लिए ये इतने प्रिय लगते हैं। जीवन क्या है? इधर-उधर हाथ-पैर पटकना, अशान्ति, अपरिमेय आदर्श और अपूर्ण सिद्धि का करुण दृश्य। प्रातः उठकर किसी भाग्यवान् को ही ऐसी प्रतीति होती होगी कि उसका जीवन भी जीवन की परम ज्योति की ओर प्रफुल्ल होकर विकास कर रहा है। पर उसके इधर-उधर! यह रहा एक फूल, शान्त और मृदु, स्मित तथा उल्लास से भरा, सहज वृद्धि उत्तरोत्तर विकास तथा क्रमागत पूर्णता प्राप्त करता हुआ एक फूल! मानव सोचता है— आहा! क्या ही अच्छा हो यदि इस पुष्प की नाँई मेरा अन्तर भी किसी दिव्य परम ज्योति के प्रति उद्‌घटित हो। फूल की तरह ही शान्त, मूक अप्रयत्न और आनन्द भरा विकास और अन्त में जीवन की कोई अपूर्व सार्थकता प्राप्त हो तो कैसा अच्छा?

एक नन्हा-सा, नगण्य-सा फूल भी कितना गहन रहस्य अपने अन्दर छिपाये हुए है! इसका विचार भी हमें विस्मित कर देता है। पहिले बीज, उसमें से अंकुर, फिर डाल उसमें से कली, कली का फूल और फूल के बाद फल। सारे क्रम-विकास का महान विश्व नियम पुष्प-रूपी इस छोटी-सी घटना में प्रकट हो रहा है बीज कैसा जड़वत् प्रतीत होता है, मानो अज्ञान के, अवचेतना के अन्धकार में पड़ा सौन्दर्य। बीज में समाई हुई सारी उत्तमता तिमिराच्छादित, और अप्रकट होती है। ज़मीन में बोये जाने पर अनुकूल संयोग प्राप्त करके बीज के जीवन का उल्लास जब प्रकट होना चाहता है तो फूल का प्रादुर्भाव होता है। फूल क्या है? बीज में छिपी हुई परम सार्थकता। अप्रकट पूर्णता का प्रकट होना ही तो आविर्भाव है। मानव पुष्प को अपना-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर अपने अन्दर छिपी हुई किसी पूर्णता को, किसी परम सार्थकता को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

पुष्प के विकास पर यथार्थ रीति से विचार करें तो आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। कभी सोचा है कि एक ज़रा-से फूल के खिलने के लिए कितनी कितनी सामग्री जुटानी पड़ती है; कितने संयोगों और अनुकूलताओं को इकट्ठा करना पड़ता है! पृथ्वी, जल तेज और वायु के तत्त्व ठीक मात्रा में एकत्र हों, तभी फूल का विकास हो सकता है। मिट्टी, वर्षा, धूप और हवा के अपूर्व मेल से बना है हमारा फूल! सारे जगत में सम्वाद का जो महान नियम कार्य कर रहा है, उसका सङ्गीत हम फूल के विकास में सुन सकते हैं। और चाहें तो किसी वस्तु के केवल बाहरी दिखावे के चक्कर में आसानी से अटक सकते हैं।

विचार करते ही हमको मालूम पड़ जाता है कि जो मिट्टी हमें क्षुद्र और गन्दी लगती है उसी में से फूल के सुन्दर परिमल के तत्त्व, फल की विविध प्रकार की स्वाद-सामग्री और जगत् का सौरभ और पुष्टि निहित है। हमारी स्थूल इन्द्रियाँ हमें पार्थिव जगत का वास्तविक ज्ञान नहीं देतीं, वे हमें ठगती रहती हैं और यदि सज्ञान प्रयत्न न किया जाय तो इन्द्रियाँ हमें अयथार्थ दर्शन ही कराती रहती हैं।

डा० जगदीश चन्द्र बोस ने सिद्ध किया है कि पौदे में प्रवाही जीवन-रस की गति का कारण उसकी जीवन-शक्ति है। पौदे का दिल धड़कता है, वह भी साँस लेता है, सूर्य के प्रकाश का पृथक्करण कर उसमें से इन्द्र-धनुष की जैसे—नहीं-नहीं उससे कहीं ज्यादा मोहक रंग-बिरंगे फूलों को उपजाता है और पत्तों में रंग का जीवनप्रद संचय करता है।

ऐसा मनुष्य शायद ही मिले जिसे, पौदों में और वृक्षों में जीवन दिखाई न देता हो। पुरुष मन्द-मन्द मुसकाते हैं, कभी नम्रता से लच जाते हैं तो कभी अभिमान और गौरव से गर्दन ऊँची कर लेते हैं तो कभी मधुरता से द्रवित हो उठते हैं। कभी आनन्द से खिल उठते हैं तो कभी ग्लानि से गलने लगते हैं, शोक से मुरझाकर अपनी जीवन-शक्ति खो बैठते हैं!

फूलों की सच्ची निर्दोषता भी मानव को आकर्षित करती है, पर इस निर्दोषता में निर्बलता या सामर्थ्य का अभाव नहीं है, उसकी परिमल के प्रसार में कहीं उद्धतता या अभिमान नहीं। फूल अपनी सुगन्ध का दरिया बहाते रहते हैं। उनके लिए यह सहज और अनिवार्य है। मानव सोचने लगता है—कहीं मेरा जीवन भी ऐसा आनन्द-विभोर और माधुर्य दान करनेवाला, इसी दिशा में क्रमिक विकास करनेवाला हो जाय तो कैसा सुन्दर!

इस भाँति हम देखते हैं कि फूल किस तरह मानव के लिए सारगर्भित प्रतीक हैं, शायद इसीलिए जीवन के महाप्रसंगों में—विवाह या धार्मिक क्रिया, पूजा हो या युद्ध अरे जन्म और मृत्यु में भी—फूलों का उपयोग किया जाता है, भगवान की पूजा में भी फूलों का उपयोग होता है, क्योंकि पृथ्वी की दूसरी कृत्रिम समृद्धियों, सोना चाँदी, हीरे, मोती की अपेक्षा मानव के लिए एक फूल ज्यादा समृद्ध, सार्थक और अमूल्य है। वह जीवन के क्रम-विकास और परम सार्थकता का प्रत्यक्ष स्वरूप है। भगवान के चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित करके मानव अपने-आप जाने बिना ही अपने अन्तरात्मा को परम ज्योति की ओर उद्घाटित करने की अभिलाषा प्रकट करता है। कौन कह सकता है कि हमारे पास विविध रूप-रंगों में सजकर आने वाला फूल अर्थहीन है!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि हम उसके साथ एकता साध सकें तो शायद प्रत्येक पुरुष हमें अपना विशिष्ट अर्थ बता सके, अपना सन्देश दे सके और आन्तर धर्म समझा सके। रात्रि की गहरी शान्ति महकती हुई चमेली की गंध क्या पवित्रता का सन्देश हमारे कानों में नहीं गुँजाने लगती, हर श्रृङ्गार की उत्कट सुगन्ध किसके मन में दिव्य जीवन के लिए तीव्र अभीप्सा का भाव जागृत नहीं कर देती? किसी फूल में उदात्तता तो किसी में एकनिष्ठता इसी प्रकार हरएक से कुछ न कुछ सन्देश मिलता ही है। कौन जाने फूल देवताओं की भाषा ही हो।

जगह-जगह फूलों के लिए भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ हैं। जापानी प्रजा की फूलों के प्रति ऐसी मनोवृत्ति है कि फूल के साथ प्रेम करने में घर को उत्तमोत्तम रीति से सजाने में और भावुकता भरने में उन्हें कोई मात नहीं कर सकता। उनकी मुरझाये फूलों के विसर्जन की रीति में भी इतनी सुकुमारता और नजाकत है कि लोग मुग्ध हो जायें, प्राचीन बौद्ध साधु महात्मा बहुत बार केवल पुष्पों की रचना-विशेष के द्वारा ही अपने अतिथियों और शिष्यों को मूक उपदेश दिया करते थे!

केवल भोग-विलास के लिए फूलों का उपयोग जड़वाद का परिणाम है। खेद है कि हमारे यहाँ बहुत-से अन्य देशों की अपेक्षा फूलों का शौक बहुत कम है, फूलों से प्रेम, बागवानी का शौक, पुष्पों से स्वाभाविक मृदुता-भरा लगाव हमारे अन्दर बहुत कम है। हम लोग वानस्पतिक सृष्टि के साथ जीता-जागता सम्बन्ध नहीं रखते और न रखने का प्रयत्न ही करते हैं। बीज का आरोपण, उसका संगोपन, सम्वर्धन, उसका अंकुरित होना, उसमें से प्रत्यक्ष आश्चर्य की नाईं अँकुर का बढ़ना फिर अनेकानेक फेरफारों के बाद फूल का निकलना यह सब कुछ कम ज्ञान देनेवाली बातें हैं। पौदों के प्रति वात्सल्य मनुष्य में कितनी कोमलता पैदा कर देता है।

श्री अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नारी-पुरुष के तीन युग

[रामसरन शर्मा]

[श्री रामसरन शर्मा युवक हैं और मेरठ में रहते हैं।—सं०]

इतिहास के प्रारम्भ से भी बहुत पहिले का समय।

एक तंग और ऊबड़-खाबड़-सी कन्दरा।

पेड़ और पहाड़; वन और उस वन में छिपे हुए निर्बल मानव के बलवान् शत्रु।

कन्दरा में अधनंगे आदिम मानव और मानवी, मानव के चेहरे पर भयंकर डाढ़ी और मानवी के रूखे बाल कमर तक लटके हुए।

सहसा एक दहाड़—गूँजती हुई, पहाड़ से टकराती हुई।

वन में सहसा सहमा हुआ सन्नाटा।

मानवी के नेत्रों में भय। वह मानव के समीप होने की चेष्टा करती है।

मानव ने अवज्ञा-पूर्ण हँसी से उसे हटा दिया और धीरे-धीरे बाहर कन्दरा के द्वार पर आ गया।

उसकी तेज़ आँखों ने, सामने पेड़ों में छिपा पीला, धारियोंदार चीता देखा—!

मानव ने कन्धे पर से पत्थर का फ़रसा उतारा, तौला और आगे बढ़ा।

भय से जड़, मानवी द्वार में खड़ी रह गई।

मानव ने मुड़कर उसकी ओर देखा तक नहीं।

फिर...फिर...मानव और पशु का युद्ध। घोर, तुमुल, चीत्कार, दहाड़!

हँसकर मानव ने अपने फ़र्से को हाथ से पोंछा, मरे शत्रु की गर्दन पर पाँव रखकर वह गर्जा।

दशों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं।

वह मानव का विजयनाद था। उसकी विजय की प्रतिध्वनि!

कन्दरा के द्वार पर, पत्थर के अनगढ़ बर्तन में हँसती मानवी ने उसे पानी दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानव के मुख पर शान्ति और सन्तोष का भाव दौड़ गया।

बर्तन अनगढ़ था ; मानवी के हाथ खुरदुरे थे, पर वह लज्जा से लाल न हुई—और मानव प्रसन्न था !

(२)

कई युग बीते।

एक बड़े-से हाल में मोमबत्तियों की क्षीण मधुर रोशनी।

दीवारों पर चारो ओर भाँति-भाँति के हथियार और कवच टँगे हुए थे।

मेज पर एक बड़े-से बर्तन में कच्चा-पक्का भोजन रखा था।

और एक बड़े देग में जौ की शराब।

मेज़ की चारों ओर एक युवती और दो युवक बैठे थे।

दोनो युवक तेज़ रङ्गों के सूट पहने थे। लाल और हरे। दोनो की कमरों में छुरे बँधे हुए थे।

और दोनो ही उस युवती का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में निमग्न थे।

पर वह युवती, बात-बात पर लजाती और मानो दोनो से एक ही बात करने की कोशिश करती थी।

सहसा उसका हाथ अपने बराबरवाले युवक से छू गया।

दूसरे युवक की आँखें लल उठीं।

पर, वह चीते की गरज न थी।

उसने तुरन्त ही अपने प्याले में शराब ढाली।

ग़लती से अथवा जान-बूझकर दूसरे युवक का हाथ प्याले में लग गया।

प्याला चूर-चूर हो गया।

खूनी आँखों से दोनो ने एक दूसरे की ओर देखा।

उसी प्रकार जैसे चीता मानव की ओर देखता है।

युवती ने मानो कुछ समझा ही नहीं।

दोनो युवकों ने खड़े होकर विदा माँगी और बाहर चले।

बाहर...धुँधियाली रोशनी में छुरों की चमक।

एक ज़ख्मी...

दूसरा छुरा साफ़ करके अन्दर आया।

युवती ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा, लजाई और काँच के प्याले में जौ की शराब भरकर उसे दी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

युवक ने झुककर शराब ली और मुस्कराते ओठों से लगा ली।

घायल युवक बाहर पड़ा कराह रहा था।

(३)

कुछ और युग बीते।

बिजली के झिलमिलाते प्रकाश के नीचे टेबल पर छुरी, काँटे और नाजुक शीशे के गिलास।

मेज़ के चारो ओर भीड़।

मानवी आज भी अधनंगी पर पाउडर से पुती हुई, लिपस्टिक से रँगी और सेण्ट से बसी हुई।

मानव भी एकदम सुलझा हुआ और शरीफ़!

मधुर मोहक गान...

फिर...मानव और मानवी के जोड़ों का नाच, धीरे-धीरे...

एक युवती ने हँसकर अपने लाल होंठ आधे खोलकर, ग्लिसरीन से सुन्दर किये नेत्र अपने साथी पर जमाकर मौन भाषा में कुछ कहा।

यह जोड़ा बाहर बाग की ओर चला।

युवती के पति ने देखा पर उसने चीत्कार नहीं किया। उसने छुरा नहीं उठाया।

उसने केवल अपनी साथवाली हिचकती हुई युवती को यह दिखाया और मुस्कराकर कुछ कहा।

युवती ने यह देखा, अपनी लटें एक झटके से, अदा से, पीछे की ओर फेंकीं और मुस्कराई।

मेज से एक छोटा और नाजुक गिलास कई मिली शराबों का उठा-उठाकर अपने साथी को दिया।

फिर अल्हड़पन से इठलाती, बल खाती उसका सहारा ले बाहर की ओर चल दी।

न शेर गरजा, न छुरे चमके; न मानवी लजाई न...

मेरठ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माता की गोद

['धूमकेतु'
[अनु०, शंकरदेव विद्यालंकार]

मैंने भला इससे अधिक तुझसे क्या माँगा था ? कितनी छोटी थी वह माँग ! तो भी तूने इन्कार कर दिया ! मैंने क्या माँगा था ? इतना ही न ?

उस सामनेवाली पहाड़ी पर बादल घूम रहे थे। नीचे की हरी-हरी वसुन्धरा गहरा नील श्याम रङ्ग धारण किये हुए थी। देवदार के ऊँचे वृक्षों पर छोटी-छोटी बुन्दियाँ पड़नी शुरू हुई थीं और पृथ्वी ने अपूर्व मोहिनी-स्वरूप धारण किया था। ऐसा सुरम्य समय देखकर मैंने तुझसे माँग-माँगकर आखिर क्या माँगा था ?

क्या राजवैभव की, यश की, प्रतिभा की, शक्ति की, विद्या की या इसी प्रकार की किसी और वस्तु की मैंने याचना की थी ?

कितनी छोटी थी वह माँग। तो भी तुझे नकार करते लज्जा तक नहीं आई ?

मैंने तो इतना ही कहा था— ऐसा मनोहर समय होता है और पृथ्वी ने ऐसा मोहक रूप धारण किया है, धीमी बूँदों में एक समान मन्द और मधुर वर्षा पड़ने लगती है, तब मुझे अपना छुटपन का घर और मा याद आती है। ऐसे समय में, भले ही केवल दो क्षण के लिए मुझे अपनी मा की गोद में सुला आना, बस इतना ही !!

गाँव के ठीक अन्तिम भाग में जहाँ मेरा छुटपन का घर है, वहाँ अनेक बार ऐसी शान्त मेघमण्डित रात में मैं मा की गोद में सोता था। उस समय आकाश से मन्द फुहारवाली वर्षा होती थी। मोहल्ले के नीम के पत्ते मोती की तरह जलबिंदु बखेरते थे और स्वप्न-सृष्टि में लीन मेरी देह पर माता का अमृत झरने वाला हाथ फिर रहा होता था।

मैंने तेरी इसीलिए याचना की थी कि दो क्षण के लिए ही सही, परन्तु मुझे फिर से एक बार, माता की उस गोद में सुला आना। जब कि ऐसी शान्त, सुन्दर और मेघमाला-मण्डित रात्रि हो तब, बादल इस प्रकार मन्द-मन्द बरसकर जलबिन्दु टपकाते हों तब !!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और तूने कहा—नहीं, माता की गोद तो दो को ही मिल सकती है। एक निर्दोष और दूसरे नरपुङ्गव को। तीसरे के लिए उसमें स्थान नहीं !!

'तू छोटा था, निर्दोष था, तब उस गोद में पड़े-पड़े तूने स्वप्न-भूमि की कविता सिद्ध की थी। अब यदि तुझे माता की गोद चाहिये तो किसी परम सत्य का सैनिक बन। सैनिक बन कोई ऐसा प्रहार सहन कर कि सब की माता धरित्री तुझे प्रेम से अपनी गोद में बिठाकर तेरे केशों को सँवारे !!'

ऐसे मार्ग के सिवाय अन्य कोई राजपथ नहीं मिल सकता ! सीता ने और सुकरात ने यही मार्ग दिखाया था, माता धरित्री के अमृत को धारण करने का, उसकी गोद में बैठने का। अनेक नरपुङ्गव इसी पथ पर आरूढ़ हुए हैं। मार्ग यही है। दूसरा राजमार्ग नहीं। अन्य छोटा मार्ग भी नहीं है।

तू इसे प्राप्त कर सकता है। हम इसे दे नहीं सकते !!

शान्ति कुटीर, गुरुकुल, सूपा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घोड़ाशाही

[सियारामशरण गुप्त]

प्राचीन भारत में चक्रवर्ती होने के लिए अश्वमेध किया जाता था। यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया जाता था और उसके पीछे-पीछे रक्षक सिपाही चलते थे। घोड़े को स्वच्छन्दता रहती थी कि चाहे जिस ओर जाय। जो कोई उसे पकड़ता था, उसी के साथ लड़ाई छिड़ जाती थी।

ऐसे यज्ञ धार्मिकों के द्वारा ही किये देखे गये हैं। राम के अश्वमेध की बात हमने सुनी है, रावण की नहीं। पाण्डवों के अश्वमेध का वर्णन पाया है, दुर्योधन-दुःशासन को उसका अवसर नहीं मिला।

अश्वमेध के अनुष्ठान में धर्म की विजय और अधर्म के पराजय की घोषणा थी। उद्देश्य उसका यही था। यज्ञ में दीक्षित होकर जो उसका आयोजन करता था, उसके लक्ष्य में स्वर्ग की उँचाई रहती थी। भौतिक सुख की कामना से उसे दूर रहना पड़ता था। इसी से ऐसे राजा 'मृण्पात्र शेषाम्' विभूति को लेकर मिट्टी के बरतनों से ही अपना काम चलाकर, लज्जित नहीं होते थे। घोड़ा छोड़कर वे प्रजा को यह आश्वासन देते थे कि सबकी स्वतन्त्रता सुरक्षित है। किसी घोड़े अथवा पशु तक को कोई पीड़ित नहीं कर सकता। उसकी रक्षा के लिए सारे राज्य की शक्ति उसके पीछे है। अश्वमेध में यह आश्वासन न होता, उद्धत की चुनौती ही उसमें होती, तब किसी जगह उसका सम्पन्न होना कठिन था। क्योंकि हमसे छिपा नहीं है कि भौतिकबल में यज्ञ के अश्व-रक्षक कहीं-कहीं बालकों के द्वारा भी बुरी तरह हराये गये हैं।

इस तरह हम देखते हैं, घोड़े के माध्यम से एक बार प्राचीन भारत की सभ्यता प्रकट हुई है। वहाँ वह निर्भयता और स्वतन्त्रता का प्रतीक है।

बीच के युग में घोड़े को लेकर दूसरी तरह की बात प्रकट हुई है। असंख्य घुड़सवार सेनाएँ भिन्न-भिन्न दिशाओं से आकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करती हैं। यह आक्रमण पशुता का था, घोड़े की पीठ पर बैठे हुए मनुष्य का नहीं। घोड़े में पशुता की जितनी कमी थी, उसे उसके सवार ने पूरा किया; सवार में पशुता की जितनी कमी थी, उसे घोड़े ने पूरा किया। दोनो एक दूसरे के पूरक थे। इस तरह यहाँ यह दिखाई देता है कि प्रजा वहाँ अरक्षित है। कहाँ से आकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कब मृत्यु अपना नाच नाचने लगेगी, इसकी निश्चिन्तता नहीं। युवक जीने के लिए नहीं, मरने के लिए तैयार हैं। किसी का भरोसा न करके अपनी रक्षा के लिए स्त्रियों ने अपने वस्त्रों के भीतर या अपने केशपाश में स्वयं विष की पोटली छिपा रखी है। बच्चे दैव के आसरे हैं। दैव के आसरे भी इसलिए हैं कि पशुता में भी बच्चों के प्रति मोह पाया जाता है। घर और गाँव और पथ और घाट, यहाँ तक कि बड़े-बड़े दुर्ग तक आशंका से खाली नहीं। घरों में आग लगाई जाती है, बाजार लूटे जाते हैं, अन्न के खेत खुरों से रौंदे जाकर उजाड़ हैं। स्कूल और कालेज के इतिहास में यह सब हमें अच्छी तरह बताया गया है। शकों और हूणों का किस्सा हमें मालूम है। मुगलों और पठानों के कारनामे हमसे नहीं छिपे। राजपूतों और मराठों के उत्पीड़न भी हमें हस्तामलकवत् हैं।

इस युग को हम सामन्तशाही का युग कहते हैं। यह अपने आप निन्दात्मक हो गया है, इसलिए इसके लिए और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

इसके बाद ही हम आधुनिकता में आ उतरते हैं। सामन्तशाही समाप्त होती है और नये युग का आरम्भ होता है। पर घोड़े का हमारा सम्बन्ध टूटता नहीं। उसका लोप नहीं हुआ। अबकी बार वह नये ही रूप में प्रकट होता है। अब वह हाड़-मांस का सजीव प्राणी नहीं। वह लोहे का है, इस्पात का है। एक अन्तर और है। पहले आदमी उसे चलाता था, अब आदमी को स्वयं वही चलाता है। पहले जो सवारी थी, अब वह सवार हो गया है; जो सवार था, वह सवारी हो गई है।

यह नया घोड़ा है इंजिन, और यह नया युग है घोड़ेशाही का।

पता नहीं, इंजिन की ताकत के लिए 'हॉर्स पावर' शब्द का आविष्कार पहले-पहल किसने किया। जिसने भी किया हो, किया है ठीक ही। विकासवाद के अनुसार सामन्त शाही का विकास इस घोड़ेशाही में ही हुआ है।

सामन्तशाही में जो घोड़ा था, वह पशु था। पशु स्वयं बुरा नहीं, पशुता ही उसकी बुरी है। इस युग का घोड़ा पशु नहीं है। यह सौभाग्य है या दुर्भाग्य?

कुछ हो, बुद्धि उसे आदमी की मिली है। इसी से सब कहीं उसे टापों की टप-टपाहट में धूल के पहाड़ नहीं उड़ाने पड़ते। हजार-हजार घोड़ों की ताकत एक अपने में भरकर वह एक जगह जम जाता है। वहीं से वह हमारे घर को बिजली का प्रकाश देता है, वहीं से वह हमारे आँगन को स्वच्छ जल पहुँचाकर धोता है। विस्मय में डूब जाते हैं हम उसे देखकर। सरकस के सीखे जानवर की तरह हम उसे सभ्य जानवर कह सकते हैं।

यही कारण है, जिससे अब उसके आगमन की कल्पना से हम भीत नहीं होते। सामन्तशाही के युवक की तरह मरने के लिए हरदम फेंटा कसे रहने की आवश्यकता आज के युवक को नहीं दिखाई देती। स्त्रियों के लिए भी आज विष एक बेकार वस्तु है। हमारे गाँव, हमारे पथ-घाट आज घुड़सवार के भय से पीड़ित नहीं जान पड़ते। अपने घर हम खुले रख सकते हैं। पथ-घाट में भीड़ जमा करके खड़े रहने में हमारे लिए किसी तरह की बाधा नहीं है।

है क्यों नहीं, बाधा है। हमारे घर खुले रहें, इसका अवकाश ही कहाँ? घोड़े की वा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ताकत हमें वहीं दूर से खींच जो रही है। उसी दूरी से उसने हमारे हाथ का काम छीन लिया, हमें बे-हाथ कर डाला है। वह मामूली नहीं है, छोटा नहीं है। इतने-से काम के लिए पुराने घुड़सवार की तरह गली-गली घूमने का कष्ट करे ही वह किस लिए? हमें दौड़कर स्वयं उसके पास जाना होगा। हमें लूटने के लिए हमारे पास वह आये तो तब, जब कि हम स्वयं उसके पास न जा सकते हों। वह बहुत दूर से उसके कारखाने की घरघराहट सुनाई पड़ती है। वहाँ उसके आकर्षण से हम अपने-आप खिंचकर उसके पास जा पहुँचे हैं। वहाँ उस हज़ार-हज़ार घोड़े के एक घोड़े की विद्युद्गति में हम हज़ार-हज़ार प्राणी एक साथ जोत दिये गये हैं। हम में से कोई नारी हैं, कोई पुरुष। यह कोई बड़ा अन्तर नहीं। रक्त और मांस नारी और नर में एक-सा ही होता है। वहाँ हममें से कोई वृद्ध है, कोई युवा है, कोई किशोर है। यह भी कोई वास्तविक भेद नहीं। आदमी चाहिये आदमी! और आदमीपन में ये सब एक-से हैं। हाँ, शिशु यहाँ नहीं दिखाई देते। वे अपने थान पर आगे की मंजिल में जुतने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। सामन्तशाही के घोड़े में यह बुद्धिमानी नहीं थी। आगे की बात सोचकर वह शिशु को छोड़ नहीं सकता था। ऐसे इसके पीछे दौड़ना छोड़कर हम अपना घर खोले रहें, अपने गाँव के टेढ़े-मेढ़े और गर्द-गुबार से भरे पथ-घाट में बेकार घूमते रहें, इसका अवकाश हम आज भी नहीं पाते।

अवकाश हमें आज दूसरी तरह का है। रात को शराब पीकर अपनी नई बस्ती के मुहल्ले में हम आनन्द-विनोद की छुट्टी पाते हैं। एक दूसरे को गाली दे सकते हैं। एक दूसरे के साथ मारामार कर सकते हैं। नाच सकते हैं, चिल्ला सकते हैं, रोटी खा सकते हैं। कर क्या नहीं सकते? यहाँ तक कि अपनी डेढ़ हाथ की खटिया पर आँख-मूँदकर सवेरे तक के लिए सो भी सकते हैं।

हाँ, आज के इस घोड़े का रूप ऐसा ही है। इसके दबाव से तिल-तिल गलकर पीले पड़ते हुए भी, इसके चक्के के नीचे कुचलकर पिसते हुए भी हम जो इस तरह हँस-खेल लेते हैं, यह हमारा सौभाग्य है। सौभाग्य ही कहना चाहिए। आज हमें इसी तरह हँस-खेल लेने दो! अधिक कुछ चाहते हो तो देखो उस स्पेन की ओर। और निकट से अबलाओं का विध्वंस और आर्तनाद देखना-सुनना हो तो बढ़ो उस चीन की ओर। कौन है वह स्थान, कौन है वह देश, जहाँ का मानव कहीं खुले में, कहीं छिपकर आज की घोड़ेशाही से पीसा न जा रहा हो! संसार की अन्तरात्मा का दम आज भीतर ही भीतर घुँट रहा है। सारे का सारा आकाश आच्छादित है, चिमनियों के सफेद और काले धुएँ से। मनुष्य के ऊपर आज से बढ़कर संकट कभी नहीं आया।

सामन्तशाही के घोड़े की निन्दा हमने भरपूर की है। उसे बर्बर और असभ्य कहते हुए हम नहीं थके। परन्तु वे घोड़े और घुड़सवार आये और चले गये। हमारे घर, हमारे गाँव रूँध कर एक बार में ही वे सब कुछ समाप्त कर देते थे। जिबह करने के लिए ही भेड़-बकरियों की तरह वे हमें पालते नहीं थे। आज का घोड़ा और घुड़सवार वैसा नहीं है। शरीर उसका लोहे का, प्राण उसका दानव का। कल्पना का दानव उसमें साकार हो उठा है। सदियों के घोड़े और घुड़सवार आज कहीं एकत्र हो जायँ, तब भी, क्या संख्या, बल और क्या बर्बरता, किसी बात में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आज के घोड़े का मुकाबिला नहीं कर सकते।

रावणों और दुःशासनों ने जो नहीं कर पाया, उसी के पूरा करने की बात आज के घोड़ेशाह ने सोची है। चक्रवर्ती होने के लिए उसने अपना घोड़ा खोल दिया है। कितने देश, कितनी सेनाएँ, कितने जन-समूह उसके खुरों के नीचे पिसे हैं, पिसेंगे; इसका हिसाब नहीं है।

संसार प्रतीक्षा में है। चाहता है, कोई कुश, कोई लव, कोई बभ्रुवाहन सामने आकर खड़ा हो जाय। इस बर्बर का प्रतिरोध उसीसे हो सकता है, जिसमें बालक की निर्भयता हो। इसके पशुत्व का दलन करना ही होगा। हमारा विश्वास है, अगली पीढ़ियाँ आज की घोड़े शाही का वर्णन उसी प्रकार पढ़ेंगी, जिस तरह हम सामन्तशाही को याद करते हैं।

चिरगाँव।

वासंती*

[सोहनलाल द्विवेदी]

[सोहनलाल द्विवेदी मुख्यतः शिशुओं के कवि हैं; परन्तु गम्भीर कविताओं की ओर भी आपने अच्छी प्रगति की है जीवन के प्रति आपका दृष्टिकोण कल्याणमय है।]

प्रिय, नव पल्लव खिले डाल में
लोहित, ताम्र, स्वर्ण द्युतिमान,
लदी आम्र की रजत वृन्त में
हीरों की बौरें छविमान;

कुसुमों के माणिक प्यालों में
भरकर रसमय मधु अभिराम
मन्थर गति से चला समीरण,
पिला रहा अलि को अविराम;

प्रियतम की मधुमय वाणी-सी
कुहुक उठी वह कल्याणी,
वन-वन उपवन-उपवन उत्सव,
आई मधुऋतु की रानी;

तृण-तृण कण-कण में आकर्षण,
नीलम दूर्वा उग आई,
धनी हुई वसुधा भिखारिणी
वैभव की वर्षा लाई;

सरोवरों की लघु-लघु लहरों में
उठता नीरव संगीत,
जैसे कोई जगा रहा हो
मधुर-स्मृति से प्रणय अतीत;

युग-युग का विराग तजकर, प्रिय,
आज अतुल अनुराग भरो,
अपनी इस परिचिता प्रीति के
शिर पर मिलन सुहाग भरो।

प्रयाग।

* उक्त नाम्नी कविता-संग्रह से।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी का आधुनिक काव्य

[प्रकाशचन्द्र गुप्त

हिन्दी-साहित्य का 'सरस्वती' के प्रति विशेष आभार है, जिसने रूढ़िग्रस्त काव्य-परम्परा को नया पथ सुझाया। 'सरस्वती' के शासन-काल तक हिन्दी कविता ब्रजभाषा में लिखी जाती थी और गद्य खड़ी बोली में। श्रद्धेय द्विवेदीजी की नई नीति के कारण हिन्दी कविता की भाषा भी जीवन के अधिक निकट आ गई। इसके अतिरिक्त इस युग में कविता अधिक नई फली-फूली।

इस दृढ़ नींव पर ही आधुनिक हिन्दी कविता का भव्य प्रासाद खड़ा हुआ। श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्रौढ़ता अब आई है। 'साकेत', यशोधरा' और 'पंचवटी' के सामने 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' नहीं टिकते। गुप्तजी का विशेष गुण आपकी भगवद्भक्ति और अनवरत अध्यवसाय है। कहते हैं कि कवि बन नहीं सकते, जन्मते हैं। यह कथन आप पर नहीं लागू होता। अपने सतत् परिश्रम से ही आप कवि बने हैं। हिन्दी कविता के आज आप सिरमौर हैं और मर्म छूनेवाली कविता आपकी वाणी से फूट रही है:

'सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
स्वयं सुसज्जित करके रण में;
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में;
क्षात्र धर्म के नाते।...'

हिन्दी कविता के वास्तविक युग-प्रवर्तक पन्त थे। यद्यपि 'प्रसाद' और 'निराला' समय में उनसे पहले आये। 'प्रसाद' और 'निराला' स्वयं बड़े कवि थे; किन्तु उनकी कविता का युवक-समाज पर वह प्रभाव नहीं पड़ा, जो पन्त का। पन्त की 'वीणा' ने मानो युगों की सोई कविता-राजकुमारी को अनायास ही उठा दिया। कारण जो भी हो, हिन्दी कविता आज साहित्य के सभी अंगों से बढ़ी-चढ़ी है और उसकी उमड़ी धार रोके नहीं रुकती। आज उसके कोमल-कान्त-कलेवर से यौवन फूटा पड़ता है।

इस नई हिन्दी कविता का 'छायावाद', 'रहस्यवाद', आदि नामकरण-संस्कार लेकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घोर वितण्डावाद भी चला जो अब ठंडा पड़ रहा है। शेक्सपियर ने कहा है: What's in a name!' मतलब की बात यह है कि इस कविता में प्राण और शक्ति हैं और निरन्तर बढ़ रही है। अंग्रेज़ी और बँगला-साहित्य की इस काव्य पर गहरी छाप थी। इस नये वेश-विन्यास में कविता-नागरी का रूप पुराने पारखी न समझ पाये।

नये ढंग के टूटे-से छंदों में नये ही विषयों पर यह कविगण अपने राग अलाप रहे थे। जो दूर देश से किसी अनजान शक्ति का संदेश इन्हें मिला था, उसे किसी ने समझा, किसी ने नहीं। किन्तु ये अपना स्वर साधकर कहते ही रहे:

'हमें जाना है जग के पार।—
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव-रस-धार—
वहीं जाना, इस जग के पार।'

कवि के चिर-अन्ध नयन खुलते ही उसने एक सुन्दर स्वर्णिम जग अपने चारों ओर पाया:

'कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम?
अये अभिनव, अभिराम!'

यह विस्मय-भाव चाहे जिस नाम से पुकार लिया जाय। सच्ची अनुभूति इस कविता में अवश्य थी।

नवयुग के सूत्रधार 'प्रसाद' आधुनिक हिन्दी कविता को आगे बढ़ाकर दिवंगत हो चुके हैं। 'आँसू', 'झरना', 'लहर' और 'कामायिनी' लम्बी यात्रा के चिन्ह चिरकाल तक आपके स्मारक रहेंगे। आधुनिक हिन्दी कविता का पीड़ा के प्रति मोह 'प्रसाद'जी की रचना से ही शुरू हो जाता है। 'आँसू' के मुख-पृष्ठ पर ही आपका यह छन्द था:

'जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई!'

'प्रसाद' उच्च कोटि के शिल्पकार हैं। आप किसी मत-मतान्तर में कभी नहीं फँसे। 'कला कला के लिए' आपका ध्येय था। सतत सुन्दरता की खोज में आप लगे रहे; जहाँ वह मिली, वहीं से उसे बटोर लिया। प्रणय और पीड़ा से ही कवि का भाव-स्रोत अधिक उमड़ता है। इस कारण आपके काव्य पर इनकी छाप है।

'झरना' में 'प्रसाद' की कविता का प्रारम्भिक रूप है। आपके काव्य के यहाँ परमाणु हैं, किन्तु मानो अभी बिखरे हुए हैं। आगे चलकर इन्हीं ने 'प्रसाद' के अन्य जगत् की सृष्टि की।

'विश्व के नीरव निर्जन में।
जब करता हूँ बेकल, चंचल,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानस को कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल,
हो जाता है भ्रान्त;
भटकता है भ्रम के वन में,
विश्व के कुसुमित कानन में।'

'आँसू' 'प्रसाद' की कला का उत्कृष्ट नमूना है। यह कवि के हृदय का मर्मस्पर्शी क्रन्दन है:

'आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी,
टकराती बिलखाती-सी
पगली-सी देती फेरी?'

'आँसू' में अनेक सुन्दर चित्र हैं:

'शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन! होता दृगजल का;
यह व्यर्थ साँस चल चलकर,
करता है काम अनिल का।'

× × ×

जल उठा स्नेह दीपक-सा
नवनीत हृदय था मेरा;
अब शेष धूम-रेखा से
चित्रित कर रहा अँधेरा।'

'आँसू' में कवि के हृदय की प्रणय-भावना भी व्यक्त हुई है। इन पंक्तियों में हिन्दी के आधुनिक रहस्यवाद की कुछ झलक है। कहीं-कहीं 'प्रसाद' की विलास-प्रियता भी दीख पड़ती है।

'शशि-मुख पर घूँघट डाले
अञ्चल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में
कौतूहल-से तुम आये!

× × ×

काली आँखों में कैसी
यौवन के मद की लाली,
मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली!

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुम सत्य रहे चिर-सुंदर,
मेरे इस मिथ्या जग के !
थे कभी न क्या तुम साथी
कल्याण-कलित मम मग के।'

'आँसू' के बाद 'प्रसाद' की कविता द्रुत-गति से आगे बढ़ी और आपने अनेक अमर पदों की रचना की :

'बीती विभावरी, जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा-घट उषा नागरी।'

अथवा

'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे।'

अन्त में अमर-काव्य 'कामायिनी' की रचना कर आप इस लोक से चल दिये। 'कामायिनी' हिन्दी काव्य का एक उत्तुंग गिरि-शृंग है और साहित्य को 'प्रसाद' की सबसे बड़ी देन। 'कामायिनी' में 'प्रसाद' की कहानी, नाट्य और काव्य-कला का अपूर्व सम्मिलन हुआ।

'निराला'जी हिन्दी कवियों में शक्ति के उपासक हैं। आपके काव्य में सहज माधुर्य की अवहेलना-सी है, यद्यपि उमंग आने पर आप मीठी तान भी छेड़ सकते हैं। 'प्रसाद'जी को आपकी 'मतवाला' के मुखपृष्ठवाली पंक्तियाँ बहुत पसंद थीं :

'अमिय-गरल शशि सीकर-रविकर राग-विहाग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला'।'

आपकी कविता का संगीत आपके मुख से सुनने पर पूरी तरह प्रकट होता है। स्वर साधकर गंभीर कण्ठ से आप जब अपनी कविता सुनाते हैं, तो प्रकृति की अपेक्षा पुरुष का ही भास अधिक होता है।

हिन्दी कविता में आपने नये मुक्तक छंदों से अनुवीक्षण किया और एक भरन-से किन्तु आकर्षक संगीत की सृष्टि की। आपके काव्य में कुछ नई ही गति और प्रवाह है :

'नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव ;
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे !'

'निराला' हिन्दी के क्रान्तिकारी कलाकार हैं। आपने रूढ़िवाद को पग-पग पर कुचला है। आपका शब्द-विन्यास भी कुछ नया ही है :

'छन्द की बाढ़, वृष्टि अनुराग,
भर गये रे भावों के झाग।

तान, सरिता वह त्रस्त अरोर,
बह रही ज्ञानोदधि की ओर,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कटी रूढ़ि के प्राण की डोर,
देखता हूँ अहरह मैं जाग।'

आपकी कविता में प्रकृति का और जीवन का सौंदर्य प्रतिबिंबित है, किन्तु जीवन का कठोर सत्य अंकित करना भी आप नहीं भूलते :

'डूबा रवि अस्ताचल,
सन्ध्या के दृग छलछल।'

वीणा-वादिनि से आपकी प्रार्थना है :

'जग को ज्योतिर्मय कर दो!
प्रिय कोमल-पद-गामिनि! मन्द उतर
जीवन-मृत तरु-तृण-गुल्मों की पृथ्वी पर
हँस-हँस निज पथ आलोकित कर,
नूतन जीवन भर दो!'

पन्त की कविता का हिन्दी की युवा-मण्डली पर भारी प्रभाव पड़ा। रूढ़ियों में फँसी हिन्दी कविता आपका अनुसरण कर नई दिशाओं की ओर बढ़ी और कविता के कंकाल में नवजीवन संचार हुआ।

'वीणा', 'पल्लव', 'गुञ्जन', 'युगान्त', 'युग-वाणी' आपकी यात्रा के पद-चिह्न हैं। अब भी आप नये उल्लास से कविता रच रहे हैं, यद्यपि भाग्यवश 'प्रसाद' की वाणी मौन है, और 'निराला' चुप-से ही रहते हैं।

हिन्दी कविता एक परिपाटी के दलदल में फँस चुकी थी। आपने मानो दिव्य नेत्रों से जगत् में एक अभिनव अनहोना सौंदर्य देखा और विस्मय-पुलक आपके कण्ठ में गीत उमड़ पड़ा। 'सरस्वती' में लगातार कई मास जो आपकी कविता निकली थी, उनमें विद्युत् का आकर्षण और शक्ति थी। 'साँकरी गली में माय काँकरी गड़तु है।' सुन्दर चीज़ थी : किन्तु इसे हम कब तक दुहराते? 'सुन सखि, फिर वह मनमोहिनी माधव मुरली बजती है।' यह पंक्ति भी सुन्दर थी। किन्तु हम जो दीर्घकाल से साहित्य-प्रेरणा से जी रहे थे, अब जीवन की ओर मुड़े और प्रथम बार हमने जीवन का सौंदर्य देखा :

'अरे, ये पल्लव बाल!
सजा सुमनों के सौरभ-हार
गूँथते वे उपहार;
अभी तो हैं ये नवल-प्रवाल
नहीं छूटी तरु-डाल;
विश्व पर विस्मित-चितवन डाल,
हिलाते अधर-प्रवाल!'

अथवा

'बाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी-वी-टी—टुट्-टुट् !

'युग-वाणी' से पहले पन्त की काव्य-प्रेरणा माधुरी थी। आपने जीवन में सुख और दुःख का अतिरेक देखा था और संसार का व्यवधान आपको ग्राह्य न था, फिर भी वसन्त और उषा की श्री देखकर आप अपना जी बहला लेते थे। और आपके शान्त वातावरण में कोई भूकम्प की लहरें न उठती थीं।

'मैं नहीं चाहता चिर सुख,
चाहता नहीं अविरत-दुख ;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।'

जीवन से आप विमुख हैं, यह कहना अनुचित होगा। 'परिवर्त्तन' और 'बापू के प्रति' कविताओं में इस देश और युग की वाणी मुखरित हो उठी है। 'परिवर्तन' देश का क्रन्दन नाद है:

'रुधिर के हैं जगती के प्रात,
चितानल के ये सायङ्काल ;
शून्य-निःश्वासों के आकाश,
आँसुओं के ये सिन्धु विशाल ;
यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु,
अरे, जग है जग का कंकाल !!'

'रूपाभ' के जन्म-काल से आपकी कविता ने फिर रुख पलटा है। समाजवाद से प्रभावित होकर आपकी कविता में नया रूप-रंग आया है। यह कविता किसी कारण-वश हमारा मर्मस्थल न छू पाई। यह कविता हमारे मस्तिष्क तक ही पहुँचती है। 'मार्क्स के प्रति' आप कहते हैं :

'दन्तकथा, वीरों की गाथा, सत्य, नहीं इतिहास,
सम्राटों की विजय-लालसा, ललना भृकुटि-विलास ;
दैव नियति का निर्भय क्रीड़ा-चक्र न वह उच्छृङ्खल,
धर्मान्धता, नीति, संस्कृति का ही केवल समरस्थल।
साथी है इतिहास,—किया तुमने निर्भय उद्घोषित
प्रकृति विजित कर मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित।'

पन्तजी का सफल रूप हम वास्तव में प्रकृति के कवि और गीतकार में ही देखते हैं। वसन्त और वर्षा, उषा और सन्ध्या, धूप और छाया—आपके काव्य में अपूर्व माधुरी लेकर प्रकट हुए हैं। 'युग-वाणी' में भी अनोखा रूप लेकर प्रकृति आई है :

'सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर,
घने नीम दल
लम्बे, पतले, चञ्चल,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्वसन स्पर्श से
रोम हर्ष से
हिल-हिल उठते प्रतिपल !
'वृक्ष शिखर से भू पर
शत-शत मिश्रित ध्वनि कर
फूट पड़ा लो निर्झर—'

इस अभिनव रूप-जगत् के विश्वकर्मा के प्रति हमारा बड़ा आभार है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने गीति-काव्य को अपनाया है। आपकी कविता में मिठास कूट-कूटकर भरा है। आज हिन्दी-कविता के क्षेत्र में अन्य कोई कवि ऐसा नहीं, जिसकी रचना में इतनी मधुरिमा भरी हो। आपके काव्य की शिल्प-कला से तुलना हो सकती है, इतनी नक्काशी और पच्चीकारी आपकी कृति में है। आपके अनेक शब्द-चित्र चिरस्मरणीय हैं :

'शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगन ;
बुझा क्यों उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूँक ?'

अथवा मृगमरीचिका के चिर पग धर,
सुख आता प्यासों के पग धर—'

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य-गीत' आपके काव्य-प्रासाद के स्तंभ हैं। इस प्रासाद में प्रतीक्षा का दीप जला आपने अपना गीत उठाया है। इस गीत के स्वर निरन्तर अधिक सधे और मीठे होते जा रहे हैं :

'तन्द्रिल निशीथ में ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन !
प्राणों में भरने स्वर नवीन !'

इस गीत की तान निरन्तर ही करुण और व्यथा-भरी है। कवियित्री चिरकाल से ही जीवन की पीड़ा की ओर खिंची हैं। महादेवीजी ने स्वयं अपने दुःखवाद का कारण 'रश्मि' में समझने और समझाने का प्रयत्न किया है :

'दुख के पद छू बहते झर झर,
कण कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर-'

आपके दुःखवाद की चरमसीमा मोम की भाँति गल-गलकर प्रियतम का पथ आलोकित करने में होती है :

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल ;
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस

कभी-कभी यह विचार अवश्य चोर की भाँति मन में आता है कि यह अतिशय मिठास और पीड़ा आधुनिक हिन्दी काव्य के आरम्भिक क्षय-चिह्न न हों। किन्तु आप इसका उत्तर देती हैं :

'जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर !
दोनो मिल कर देते रजकण,
चिर करुणमधुर सुन्दर सुन्दर !
जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल ;
मैं पिक बन गाती डाल-डाल,
सुन फूट-फूट उठते पल-पल,
सुख-दुख-मञ्जरियों के अंकुर !'

हिन्दी काव्य में आज एक बहुत जाग्रत शक्ति श्री भगवतीचरण वर्मा हैं। वर्षों पहले 'नूरजहाँ की कब्र पर' लिखी कविता से अब 'भैंसागाड़ी' तक आपने अनवरत काव्य-साधना की है। इसका प्रमाण आपके 'मधु-कण' और 'प्रेम-संगीत' हैं :

आपका व्यक्तित्व आपकी ही पंक्तियाँ उचित रूप से वर्णन करती हैं :

'हम दीवानों की क्या हस्ती,
हम आज यहाँ कल वहाँ चले ;
मस्ती का आलम साथ चला
हम धूल उड़ाते जहाँ चले—'

आपकी कविता का मुख्य नोट अतृप्त पिपासा और जीवन के प्रति घोर असंतोष है। यह प्रतिध्वनि निरन्तर आपकी कविता से उठती है :

'अब अंतर में आह्लाद नहीं, अब अंतर में अवसाद नहीं,
अब अंतर में उन्माद नहीं, मैं अंतर को कर चुका नष्ट !'

आपके 'प्रेम-संगीत' में भी निराशा का ही प्राधान्य है।

'जीवन-सरिता की लहर-लहर
मिटने को बनती यहाँ प्रिये।
संयोग क्षणिक !—फिर क्या जाने
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये ?'

आपका यह असंतोष स्वाभाविकतया क्रान्तिकारी विचार-धारा में परिणत हो रहा है। 'रूपाभ' में प्रकाशित 'भैंसागाड़ी' और 'कविजी' इसकी सूचना हैं :

'चरमर-चरमर—चूँ—चरर-मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी !'

बड़े दरिद्र ग्राम से यह 'भैंसागाड़ी' आ रही है।

'उस ओर क्षितिज के कुछ आगे,
कुछ पाँच कोस की दूरी पर,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भू की छाती पर फोड़ों-से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर !
'मैं कहता हूँ खँडहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम—'

आगे नगर का वर्णन है :

'पीछे है पशुता का खँडहर,
दानवता का सामने नगर,
मानव का कृश कंकाल लिये
चरमर—चरमर—चूँ—चरर—मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी !'

हिन्दी कवियों में अकेले पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' गले तक राजनीति में डूबे हैं। यह बात विचारणीय है कि इस राजनैतिक तल्लीनता से उनकी साहित्य-सेवा में बाधा पड़ी है, अथवा उनकी वाणी में कुछ 'नवीन' ओज और शक्ति है ! आपके काव्य में क्रान्ति की सच्ची प्रेरणा है। स्वयं आपके मुख से 'पराजय-गान' जैसी कविता सुनकर रोमांच हो आता है। हमें खेद है कि अभी तक आपके काव्य का कोई संग्रह नहीं निकला और अभी तक आपकी कविता बिखरी ही फिर रही हैं।

'हुलमुल' से इस 'नवीन' सन्यासी का अलख गान कुछ दिनों के लिए प्रणय-संगीत में परिणत हुआ, किन्तु 'मानव', 'गुरुदेव गान्धी' और 'झूठे पत्ते' के साथ-साथ फिर वह प्रलय-कारी भैरव नाद बना है। आपकी भाषा संस्कृत, उर्दू मिश्रित कुछ ऊबड़-खाबड़-सी शक्ति और ओज-पूर्ण होती है। 'प्रताप' में प्रकाशित 'विजयादशमी' प्राचीन संस्कृति के प्रति सुन्दर और मधुर श्रद्धाञ्जलि थी।

'बच्चन' उन्नति के पथ पर तीव्रगामी कवि हैं। लोकमत ने आपका नाम 'हालावाद' के साथ जोड़ रखा है, किन्तु आप 'हालावाद' को भी पीछे छोड़ चुके हैं। 'मधुशाला', 'मधु-बाला', 'मधुकलश', 'निशा-निमन्त्रण' आपके उन्नति-पथ के चिह्न हैं। मधु के अतिरिक्त आप 'पग-ध्वनि' आदि अनेक कविता लिख चुके हैं जो हिन्दी में प्रसिद्धि पा चुकी हैं। 'पग-ध्वनि' और 'निशा-निमन्त्रण' के गीत 'बच्चन' बड़ी सुन्दरता से और मीठे स्वर से सुनाते हैं।

आपकी कविता में भी जीवन के प्रति घोर असंतोष और विरोध भाव है।

'मैं हृदय में अग्नि लेकर
एक युग से जल रहा हूँ—'

अथवा 'हो नियति इच्छा तुम्हारी
पूर्ण, मैं चलता चलूँगा,
पथ सभी मिल एक होंगे
तम-घिरे यम के नगर में !'

आपके काव्य में जो भाव प्रधान हैं, उन्हीं के कारण समाज में क्रान्ति होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'निशा-निमन्त्रण' में आपकी कविता दुःख में कुछ अधिक गहरी रँग गई है और आपकी कला बहुत मँज गई है :

'संध्या सिंदूर लुटाती है।
रँगती स्वर्णिम रज से सुन्दर
निज नीड़-अधीर खगों के पर,
तरुओं की डाली-डाली में कंचन के पात लगाती है।
करती सरिता का जल पीला
जो था पल भर पहले नीला,
नावों के पालों को सोने की चादर-सा चमकाती है।
उपहार हमें भी मिलता है,
शृंगार हमें भी मिलता है,
आँसू की बूँद कपोलों पर शोणित की-सी बन जाती है।
सन्ध्या सिन्दूर लुटाती है।'

आज हिन्दी में अनेक कवि-आत्मा जाग्रत हैं और हिन्दी कविता का भण्डार भर रहा है। प्रो० रामकुमार वर्मा, श्री० 'दिनकर', 'अंचल' आदि। तरुण कवियों में सबसे प्रगतिशील नरेन्द्र हैं। आपके काव्य का सहज संगीत तो आकर्षक है ही :

'थके जामुन के रँग को पाग
बाँधता लो आया आषाढ़!'

आपकी 'प्रभात-फेरी' ने हमें स्वतन्त्रता का संदेश भी सुनाया है :

'आओ, हथकड़ियाँ तड़का दूँ,
जागो रे नतशिर बन्दी!'

आपकी 'प्रयाग', 'भावी पत्नी', 'चिता', 'बबूल', 'मरघट का पीपल' आदि कविताओं में शक्ति और प्रबल प्रवाह है और भविष्य के लिए बड़ी आशा।

'चढ़ लपटों के स्वर्ण गरुड़ पर
फैलेगी जागृति की ज्वाला!'

आज-कल हिन्दी कविता में 'छायावाद', 'दुःखवाद', 'हालावाद', प्रगतिवाद' आदि अनेक नाम सुन पड़ते हैं। यह हमारे प्रगति-पथ के इंगित हैं और हमारी जागृति के चिन्ह।

आधुनिक हिन्दी-काव्य ने जिस अज्ञात, रहस्यमय जग को अपने चारो ओर पाया है, उसका विस्मित वर्णन 'छायावाद' के नाम से पुकारा जा रहा है। इस काव्य में प्रकृति के सुनहले और रुपहले रूप का भी बड़ा सुन्दर वर्णन है; ऊषा का अरुण, गुलाबी पथ, अँधियाले का नीला, तारक-खचित परिधान, ऋतुओं का परिवर्त्तन, सागर-लहरी का मधुर संगीत और झंझा का ताण्डव नर्त्तन।

अधिकतर यह काव्य अन्तर्मुखी हो रहा है। कवि अपनी व्यक्तिगत आशा, अभिलाषा और निराशा में जगत् को रँगा पाता है। बाह्य जग केवल उसकी आत्मा की प्रतिध्वनि है। प्रकृति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के उल्लास और पीड़ा में वह अपनी आत्म-कथा छिपी देखता है। गीति-काव्य सदैव ही अहंभाव से पूरित रहता है।

कुछ हद तक देश और काल की स्थिति आधुनिक हिन्दी-काव्य के दुःखवाद की सफ़ाई है। यद्यपि हमारी समाज-योजना आज दुःखप्रद और निराशाजनक दीखती है, किन्तु कुछ कवियों ने दूर क्षितिज पर नव प्रभात का अरुण आलोक भी देखा है और उनके गीत में नवीन उल्लास है :

'है आज गया कोई मेरे
तन में, प्राणों में यौवन भर।'

आधुनिक हिन्दी-कविता जीवन के साथ छल-रहित है। देश और समाज में जो क्रान्ति हो रही है, उसकी स्पष्ट छाया हमारे काव्य पर पड़ रही है। इसके साक्षी पन्त, 'निराला', भगवती चरण वर्मा, 'बच्चन', 'नवीन', नरेन्द्र, 'दिनकर' आदि सभी कवि हैं। जिस नन्हे सुकुमार शिशु का जन्म लगभग बीस वर्ष पहले झुटपुटे-से आलोक में हुआ था, वह आज वयः-प्राप्त सुदृढ़, सुगठित और तरुण हो गया है। आज हमारी आशा भरी आँखें भविष्य को देख रही हैं।

आगरा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हत्या के बाद

['विष्णु']

पुरुष पात्र

प्रेमदत्त—एक सद्गृहस्थ

नन्द—प्रेमदत्त का बड़ा लड़का

आदित्य—प्रेमदत्त का छोटा लड़का

स्त्री पात्र

शीला—नन्द की पत्नी

प्रतिमा—नन्द की बहन।

कामरेड जहीर, पुष्पा, निखिल आदि-आदि...

प्रथम दृश्य

[एक विशाल तथा सुन्दर भवन की लाइब्रेरी। चारो ओर दिवारों के साथ-साथ पुस्तकों से भरी अलमारियाँ रखी हैं। बीच-बीच में कुछ ऊँचे पर विभिन्न महापुरुषों के चित्र लगे हैं। कमरे के उत्तर भाग में एक बड़ी-सी टेबुल है। उसके पृष्ठ-भाग में प्रेमदत्त बैठे पढ़ रहे हैं, तभी पीछे के खुले दरवाजे से नन्द और प्रमिला अन्दर आते हैं]

नन्द—(धीरे से)—पिताजी !

प्रेमदत्त—(एकदम ऊपर देखकर)—उसने क्या कहा, नन्द !

प्रमिला—मैं बताऊँ पिताजी ! वह कहता है—मैं जाऊँगा ! पिताजी मेरा भाग मुझे दे दें।

प्रेमदत्त (उदास भाव से)—और ?

प्रमिला—और तो वह न जाने क्या-क्या कहता है ? कम्यूनिज़्म, बोलशविज़्म, साम्यवाद आदि ऐसे बहुत-से इज़्म और वाद उसे याद हैं। बापरे बाप ! बोलता क्या है मानो, जंगल में शेर दहाड़ता है।

[प्रेमदत्त पिछली बात से हँस पड़ते हैं। उठते हैं और आप ही आप टहलने लगते हैं। कुछ क्षण कमरे में केवल प्रेमदत्त के चलने की आवाज़ गूँजती रहती है। सहसा नन्द कुरसी पर बैठ जाता है। धम्म की आवाज़ होती है]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नन्द—पिताजी। मैं चाहता था आदित्य मेरे साथ आश्रम में काम करे, पर वही नहीं मानता। मैं भी उसकी राह में बाधा न दूँगा। सब को आज़ादी होनी चाहिये।

प्रेमदत्त—परन्तु नन्द! उसकी आज़ादी किसी के मार्ग का बन्धन बनी तो क्या ठीक होगा? वह तो समाज में व्यक्ति को व्यक्ति के विरुद्ध उभार देना चाहता है...

[तभी दूर से टप-टप चढ़-चढ़ की आवाज़ आती है। सब चुप हो जाते हैं। कुछ ही क्षण में बगल का द्वार खुलता है, और हाथ में जलती सिगरेट लिये आदित्य अन्दर आता है। उसके सिर पर हैट है और एक हाथ पैन्ट में है]

नन्द—लो पिताजी! यह आदित्य आप ही आ गया! (आदित्य की ओर मुड़कर) आदित्य पिताजी तुम्हारी बात मानते हैं!

[प्रेमदत्त आश्चर्य-प्रतिहत से होते हैं पर प्रमिला संकेत करती है। वे सँभल जाते हैं]

प्रमिला—आदित्य भाई! नहीं नहीं, मैं भूली, कामरेड आदित्य! पिताजी सारी सम्पत्ति का आधा भाग तुम्हारे नाम करने को तैयार हैं। (पिताजी की ओर मुड़कर) पिताजी! कामरेड आदित्य अपने लिए तो सम्पत्ति चाहते नहीं। वे तो उसे सब को सौंप देना चाहते हैं। व्यक्ति का कुछ भी है; यह बात वे नहीं मानते।

आदित्य—हाँ, कामरेड प्रमिला! व्यक्ति विश्व के परिवार का एक अंग-मात्र है। उसका जो कुछ भी है, विश्व का है। अच्छा, मैं जाता हूँ। मुझे श्रमजीवी संघ की मीटिंग अटेंड करनी है। Good night Comrades।

[कुरसी खींचने की आवाज़ होती है। फिर दूर जाती हुई चढ़-चढ़ खट-खट की आवाज़ Fade]

नन्द—पिताजी! यह ठीक हुआ! आदित्य रुकनेवाला नहीं था। उसे अवसर देना ही चाहिये। 'मिल' की बात मुझे रुचती है। व्यक्ति को जितनी अधिक स्वतन्त्रता मिलती है वह युग को उतना ही आगे बढ़ा ले जाता है।

प्रेमदत्त—नन्द बेटा! मैं कुछ नहीं जानता! बूढ़ा हूँ। यह हलचल, यह सिद्धान्तों की खटपट मुझे नहीं रुचती। सत्य शब्दों के बन्धन में नहीं आ सकता। वह किसी भी सीमा से परे है, असीम है। फिर भी बेटा! मानव की सेवा तुम सबका ध्येय है यह अच्छा है...

[प्रेमदत्त आप ही चुप हो जाते हैं फिर बोलते हैं]

प्रेमदत्त—प्रमिला! तुम विवाह नहीं करोगी, यह मैं जानता हूँ। मानव-सेवा का व्रत लेकर एक जीवनसंगी को खोजना सरल नहीं है फिर भी बेटी। एकांगी रहकर...

प्रमिला—(बीच ही में टोककर) पिताजी! आप जो कुछ कहना चाहते हैं, वह मैं जानती हूँ। दद्दा मेरे मार्ग-प्रदर्शक हैं। वे युग-युग जियें। मैं उनके पीछे चलूँगी...(द्रवित वाणी।)

नन्द—प्रमिला..... (आगे नहीं बोल सकते)

प्रमिला—दद्दा! तुम भाभी की बात कहोगे न? मैं जानती हूँ वे आदित्य के साथ रहेंगी!

प्रेमदत्त—(चौंककर)—क्या कहा, प्रमिला! शीला आदित्य के साथ रहेगी?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नन्द—पिताजी ! वह मेरे साथ नहीं रह सकती। विवाह सहयोग के लिए होता है, विरोध के लिए नहीं। मात्र वासना की तृप्ति के लिए भी विवाह की ज़रूरत नहीं है। उसके लिए समाज में वेश्यायें हैं।

प्रेमदत्त—(उद्विग्न होकर)—मैं कुछ नहीं जानता, नन्द। मुझे कुछ दिन और जीना है। तुम्हें जिसमें सुख हो वही करो। ओह ! स्वर्गीय देवी। तुम्हारा प्रताप था कि मैं एक सुखी गृहस्थ का नेता था। अब ! अब...

[प्रेमदत्त रोते हैं। प्रमिला दौड़कर उनके पास आती है। बीच की कुरसी गिर पड़ती है। नन्द कुरसी उठाकर उसे सीधा करते हैं और पिताजी के पास जाते हैं]

प्रमिला—आप विकल क्यों होते हैं ? विरोध में कटुता नहीं है तो वह जीवन है। हम सब लड़ते नहीं, पिताजी ! दद्दा के साथ रहकर मैं प्रसन्न हूँ। आदित्य के साथ रहकर भाभी खुश है। तब यही होने दो, पिताजी।

प्रेमदत्त—यदि ईश्वर ऐसा ही चाहते हैं, तो मैं कैसे रोकूँगा ?

[प्रेमदत्त सँभलकर कुरसी पर बैठ जाते हैं। प्रमिला धीरे-धीरे उनका सिर सहलाती है। नन्द बिना कुछ कहे पीछे के दरवाज़े से चला जाता है। कुछ देर धीमी-धीमी आवाज़ आती है फिर Cmplete Silence. Fade-]

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

[उसी विशाल भवन की एक पक्की खुली हुई छत। ऊपर आसमान में चाँद है। नीचे पृथ्वी पर चाँदनी उग रही है। दूर कहीं गिरजे का घण्टा बज उठा है, मानो किसी दूरदेश के यात्री को अपने समीप बुला रहा हो। नन्द चुपचाप पलंग पर बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं। जीने में धीमी-धीमी पदध्वनि होती है। नन्द चौंकते हैं। शीला आती है। शीला अपूर्व सुन्दरी है। उसकी आँखों में तेज है और मुख पर दीप्ति]

शीला—बहुत रात गई, नन्द ! दूध ले आऊँ !

नन्द—दूध ! आज नहीं, शीला ! देखता हूँ इसके बिना भी क्या मैं जी सकूँगा ?

शीला—(हँसती है)—दार्शनिकता क्या कभी जा सकती है ?

नन्द—शीला ! आदमी को किसी बात का आदी नहीं होना चाहिये ; यही मेरा उद्देश्य है। देखो न तुम जा रही हो ! न जाने क्यों मेरा जी कटता है...

[नन्द रुक जाता है। किसी अज्ञात भाव से शीला चौंक उठती है]

शीला—जी कटता है, नन्द ! (बहुत धीमा स्वर)

नन्द—हाँ शीला ! सोचता हूँ ऐसा होना व्यभिचार है, पर मन मानता नहीं !

शीला—(स्थिर है)...

नन्द—समय के लम्बे आवरण को चीरती हुई भावना की एक लहर चेतना से जा टकराती है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फिर मैं देखता हूँ वही...वही पुराना दृश्य...प्रकाशमय ज्योति। आनन्द की क्षीणतम रेखा फिर अन्धकार ! गहरा अन्धकार !!

शीला—(काँपती है)— क्या कहने लगे, नन्द ? क्या स्वप्न देख रहे हो ?

नन्द—(उत्तेजित है)—हाँ, शीला। वह स्वप्न ही है। कितना मधुर है ? कितनी सुन्दर है वह साँवली-सी धुँधली छाया ? अब भी मन्त्र-ध्वनि कानों में मँडरा रही है। एक परिचित-सी हलचल, एक खोई हुई याद, एक रूठी हुई भावना...।

शीला—(उद्वेग से)—नन्द ! नन्द !!...

नन्द—शीला ! क्या था यह ? यह परदा सा कैसा उठ गया। एक अपरिचित से भूले राग की ध्वनि कहाँ से आ गई ? ओह ! वह पुष्पवर्षा थी या अग्निवर्षा...

[नन्द धीरे-धीरे लेट जाते हैं। संज्ञा जैसे खो जाती है। शीला घबराकर नन्द को सँभालती है। उसका सिर अपनी जंघा पर रखकर पुकारती है। आवाज़ बहुत द्रवित है]

शीला—नन्द अ...अ...

[नन्द नेत्र मूँदे चुप है]

शीला—नन्द ! बोलो...।

[नन्द चौंककर उठ बैठता है। फिर मुड़कर देखता है। 'नहीं, नहीं'—ऐसा कहकर खड़ा हो जाता है]

नन्द—शीला ! तुम जा सकती हो ! मैं स्वप्न से जाग आया हूँ। मेरी इस क्षणिक कमज़ोरी ने मुझे अमित शक्ति दी है। मैं अब न गिरूँगा।

शीला—नन्द।

नन्द—जाओ शीला। मैं तुम्हारे मार्ग का रोड़ा न बनूँगा ! तुम स्वतन्त्र हो।

शीला—(चुप रहती है)

नन्द—विश्वास नहीं करती, शीला। मैं कुछ भी क्यों न हूँ, पर झूठ नहीं बोलता ! शीला ! जीवन में एक ही बात मेरी मान लो। और मैं कहूँ, जब तुम्हें शंका हो, उधर जी न लगे तो यह द्वार बन्द न होगा...

शीला—(काँपती है)—नन्द नन्द !!

नन्द—(गम्भीर आवाज़)—जाओ शीला।

[शीला नहीं हिलती ! बुत की तरह खड़ी है। कई क्षण नन्द उसे देखता है, फिर शीघ्रता से पैड़ियों से उतर जाता है। तेज खट-खट की आवाज़ फिर एक दम शान्ति ! शीला चौंक उठती है]

शीला—नन्द ! नन्द !! तुम चले गये।

[तभी फिर जीने में पगध्वनि। धीमी और स्थिर। छत पर प्रमिला आती है। वह स्थिर होकर भी उद्विग्न है]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमिला—क्या हुआ, भाभी! भैया कहाँ गये ?

शीला—(उद्विग्न है) प्रमिला जीजी! मैं नहीं जानती वे कहाँ गये ? मैं क्या करूँ ?

[कुछ रुककर फिर कहती है]

शीला—प्रमिला। सच कहती हूँ मेरा भी स्वप्नों का एक संसार था। भावना की कूची लेकर न जाने कितने सुखकर चित्र मैंने बनाये थे। मेरी आत्मा में भी सौन्दर्य की प्यास थी। मेरे हृदय में भी उल्लास की एक धारा थी, पर मैं क्या करूँ ? मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ। अब कुछ नहीं हो सकता। क्षणिक आवेग में आकर निर्णय करके जीवन भर पछताना होगा। प्रमिला जीजी ! अपने भैया को देखना मैं जा रही हूँ...!

[शीला झपटकर उसी जीने से जाती है। प्रमिला अब आप ही आप कहती है]

प्रमिला—अब ठीक हुआ। न जाने क्यों यह मानव समझता है मैं करता हूँ, पर सच तो यह है कि वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता। सब कुछ आप ही आप होता है।

[धीरे-धीरे वह भी वहाँ से चली जाती है। छत खाली है। वायु के वेग से पलंग की सफ़ेद चादर हिलती है और चाँदनी पर काली छाया डालती रहती है]

पटाक्षेप

तीसरा दृश्य

[नगर के बाहर एक बागीचे में एक सुन्दर बँगला है। उसकी खुली छत। भीनी-भीनी मधुर सुगन्ध बह रही है। चन्द्रमा अभी उगा नहीं है। तारिकाओं से चूता हुआ प्रकाश पृथ्वी पर एक धुँधली-सी छाया डाल रहा है। पैन्ट में हाथ डाले का० आदित्य छत पर घूम रहे हैं। शीला एक कुरसी पर स्थिर बैठी है। सहसा आदित्य रुकता है]

आदित्य—का० शीला ! यह ठीक हुआ। हम अब स्वतंत्र है। उनके धर्म और ईश्वर अब हमारी राह न रोक सकेंगे। अजीब ईश्वर है यह जो उसे पूजता है उसी के मार्ग को वह रोकता है। (कुछ रुककर) और उस अतुलित सम्पत्ति द्वारा तो हम संघ को खूब Expand कर सकेंगे। आर्थिक सतुंलन सब रोगों की एक औषधी है...

[शीला नहीं बोलती, पर तभी नीचे से आवाज़ आती है—का० आदित्य]

आदित्य—कौन—का० जहीर। चले आओ कामरेड।

[जीने में कई आदमियों के एक साथ चढ़ने की आवाज़। बीच में हँसी की फुरफुराहट ! छत पर एक के बाद एक करके तीन व्यक्तियों का प्रवेश। आदित्य आगे बढ़ता है]

आदित्य—हलो का० जहीर, का० निखिल, का० पुष्पा। Good morning to you all. How are you comrade ? It's simply wonderful you have come at this hour.

का० पुष्पा (मुस्कराती है)—Thank you awefully का० आदित्य। कितने महान हो तुम ! (मुड़कर) और आप का० शीला ! Glad to meet you बहुत तारीफ़ सुनी थी आपकी ! आज देखा है।

[शीला मुस्कराती है]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का० जहीर—(हँसता है) तो ख़ूब देखिये ! आपसे किस बात में कम है। मैं तो समझता हूँ ज्यादा ही है। ऐशो-इशरत पर लात मारकर गरीबों के लिए कौन इतनी कुरबानी करेगा ? हिन्दुस्तान को ऐसे ही कामरेडों की ज़रूरत है।

का० निखिल—(जोश में है) कामरेड ! एक नहीं दो नहीं, बल्कि एक पूर्ण सेना; एक अनन्त सेना। स्त्री और पुरुष, वृद्ध और बच्चे, मज़दूर और किसान सब मिलकर इस सारी साम्राज्यशाही को नष्ट कर दें। गरीब और अमीर Haves and Havenots का समूल विच्छेद कर दे। सारे विश्व को एक परिवार बना दे, और सारी सम्पत्ति उस परिवार की सम्मिलित सम्पत्ति हो।

का० आदित्य—हाँ, का० निखिल ! यही हमारा लक्ष्य है ! आज हम थोड़े हैं, पर इससे क्या ? हममें विश्वास है, शक्ति है तब हमें कौन रोकेगा ? दुनिया में जितने बेकार हैं वे हमारा साथ देंगे। पूँजीपतियों के पास धन है, बुद्धि है और सबसे बढ़कर ईश्वर और धर्म की ढाल है, पर यह सब ढोंग है। हमारी सच्ची साम्य-शक्ति के सामने वे अधिक दिन टिक न सकेंगे। आइये, अब हम उस काम को देखें।

[आदित्य चलता है। और सब भी उसके पीछे जाते है। नीचे उतरकर वे एक बड़े कमरे में आते हैं। वहाँ अँधेरा है। आदित्य स्विच दबाता है और कमरा जगमगा उठता है। दीवारों पर कार्लमार्क्स, लेनिन, स्टेलिन, क्रोपाटकिन रूसो आदि के रेखाचित्र हैं। अलमारियां अंगरेज़ी की बड़ी-बड़ी पुस्तकों से भरी हैं। बीचो-बीच एक बड़ा-सा टेबल है। उसके चारो तरफ़ गद्देदार कुशन है। वे सब बैठ जाते हैं। कुछ देर वहाँ दराजों की खटपट होती है। फिर आदित्य खड़ा होता है।]

आदित्य—Comrades ! कम्यूनिस्ट संघ की यह मीटिंग क्यों हुई यह आप जानते है। संघ ज्यादा बातों को पसन्द नहीं करता। वही नगर के बैंकर और Hony magistrate का मामला है। यह उसके घर का प्लेन है। उसने जो कुछ भी हमारे लिये किया है वह आप जानते हैं। कल रात को ही वहाँ जाकर उसकी हत्या करनी होगी और लगभग ५ लाख के नोट्स जो उसकी तिजोरी में हैं, उड़ाने होंगे !

[वह बैठ जाता है। एक के बाद एक कामरेड उठता है।]

का० जहीर—कामरेड्स ! आपने सुना है कॉटन मिल्स की हड़ताल का आज छठा दिन है ! मैं उनका नेता हूँ। क्या ही अच्छा होता मैं यह काम करता। मरने से मैं डरता नहीं; लेकिन हज़ारों मजदूरों की जान मेरे हाथ में है, उसे क्या भूलते बनेगा ?

का० निखिल—मरने से मैं भी नहीं डरता ; पर रूस की कम्यूनिस्ट सोसाइटी का निमंत्रण मैं स्वीकार कर चुका हूँ। अभी तक हमारे देश में सच्चे विचार आये ही कहाँ हैं ! उनको जानने और कम्यूनिस्ट प्रणाली को Minutely study करने का यह स्वर्ण अवसर है। तब मैं विवश हूँ।

का० पुष्पा—मैं स्त्री हूँ, उससे मैं डरती नहीं। स्त्री तो स्वयं शक्ति है; परन्तु आज समस्या दूसरी है। श्रमजीवी संघ का सारा भार मुझी पर है। आज ही सुना है अहमदाबाद की सारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलें हड़ताल करनेवाली हैं। मैं का० निखिल के साथ रशिया जा रही थी, वह भी Cancell करना पड़ा है। मैं क्या करूँ ?

[पुष्पा बैठ जाती है। कुछ क्षण के लिए वहाँ निस्तब्धता छा जाती है। फिर कुर्सी खिसकने की आवाज़ होती है। सब चौंकते हैं। शीला खड़ी है।]

शीला—कामरेड्स ! तुम्हारे सब काम सच्चे हैं परन्तु मुझे कोई काम नहीं है मुझे अपनी परीक्षा भी लेनी है। मैं यह काम करूँगी।

[आदित्य चौंकता है]

पुष्पा, जहीर, निखिल—(एक साथ) Splendid यह है करेज।

पुष्पा—धन्य कामरेड !

निखिल—मैं कहता हूँ कामरेड ! आप यह काम करके सकुशल लौट आयें फिर मैं देख लूँगा। कौन पकड़ सकता है आपको ? का० पुष्पा का पासपोर्ट अभी मेरे हाथ में है।

[निखिल उठकर शीला के पास जाता है और धीरे से कान में कुछ कहता है। शीला सुनकर मुस्कराती है और कहती है Thank you. इसके बाद मीटिंग समाप्त होती है। कुछ देर उनके जाने की आवाज़ होती है। Fade अब आदित्य शीला की ओर मुड़ता है]

आदित्य—तुम सेठ की हत्या करोगी शीला !

शीला—कामरेड (शब्द पर ज़ोर देती है) मेरे सामने सेठ की हत्या का प्रश्न नहीं है। वह विषय गौण है। मुख्य बात शोषक का नाश है। वही मैं करूँगी। उसमें यदि रामेश्वर नाम का कोई व्यक्ति फँसकर मरता है तो मरे। मैं क्या करूँ ?

आदित्य (लज्जित)—मैं यह नहीं कहता।

[शीला नहीं बोलती। चुपचाप टहलती है। वह बेखुद है। उसके सिर का कपड़ा खिसककर कन्धे पर आ गया है। बालों को सँभाले हुए सुनहरी पिन रोशनी में चमकता है। आदित्य उसे देखकर सिहरता है और बार-बार देखता है। उसकी टकटकी बँध जाती है। सहसा शीला की दृष्टि उससे मिलती है। वह भयंकर वेग से काँपता है। शीला सकुचाती है, फिर हँस होती है और आँखें चमक उठती हैं]

शीला—का० आदित्य ! जीवन में मात्र भावना से काम नहीं चलता। कर्त्तव्य मानव की कसौटी है।

आदित्य (घबराहट)—का० शीला ! मैं जानता था तुम्हारे आने से संघ में जीवन पैदा होगा। तुम अपनी शक्ति को भूली नहीं हो; लेकिन...

[शीला चौंकती है, फिर हँस पड़ती है]

आदित्य—लेकिन एक बात बताओगी, शीला।

शीला (गम्भीर)—पूछो कामरेड।

आदित्य (जल्दी)—इस जीवन में तुमने किसी से प्रेम किया है, शीला

[शीला चौंकती है, फिर हँस पड़ती है]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शीला—का० प्रेम जीवन का अनिवार्य अंग है। उसके बिना कोई जी सकता है, मैं नहीं मानती हूँ और का० आदित्य ! सुनो मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ।

आदित्य (चौंकता है)—शीला...

शीला (हँसती है)—चौंकते हो का० आदित्य ! मैं जानती हूँ तुम यही सुनना चाहते हो। धर्म और समाज को साक्षी करके जिसे मैंने अपना जीवन-संगी बनाया था, उसे छोड़कर मैं तुम्हारे इशारे पर नाचने लगी, यह क्या प्रेम के बिना हो सकता है ?

[शीला बड़े वेग से हँसती है और आदित्य काँपता है]

शीला (गम्भीर)—लेकिन का० यही तुम भूलते हो। तुम ही नहीं मानव-मात्र यहाँ भूल करता है। परन्तु मानव सदा अपने स्वार्थ से प्रेम करता है। मेरा स्वार्थ आज शोषितों में केंद्रित है। मैं उन्हें प्रेम करती हूँ और जो इस स्वार्थपूर्ति में सहायक हैं, उन्हें भी प्रेम करती हूँ। यह स्वाभाविक है।

[शीला कहकर रुकती नहीं। शीघ्रता से चली जाती है। आदित्य बुत की तरह स्थिर है। कुछ क्षण वहाँ पूर्ण शान्ति रहती है, फिर आदित्य उठता है, सिगरेट का लम्बा कश खींचकर वह आप ही आप बोलता है।]

आदित्य—सुन्दरता और कठोरता का कितना अद्भुत मेल है ? कहीं भय नहीं, कहीं संकोच नहीं। उसके लिए विश्वास का दूसरा नाम कर्म है। यह शुभ है। संघ ऐसे ही सिपाही चाहता है।...

[आदित्य भी बाहर निकल जाता है]

पटाक्षेप

चौथा दृश्य

[वही बागीचेवाला बँगला है। उसके अन्दरूनी हिस्से में लाइब्रेरी के ढंग के कमरे में शीला और आदित्य हैं। दोनो उद्विग्न हैं]

आदित्य—का० शीला ! मालूम होता है, तुम्हें उन लोगों से सहानुभूति पैदा हो गई है।

शीला (अनमनी-सी है)—सहानुभूति ! यह तो मैं नहीं जानती, पर मैं उद्विग्न ज़रूर हूँ जब सेठ ने मुझे देखा तो चौंक पड़ा। बोला—तुम, तुम कौन हो ? मैंने कहा—यह जानने की ज़रूरत नहीं। जल्दी ही भगवान (?) तुम्हें बता देंगे। और मैंने उसे समय नहीं दिया। वहीं पर समाप्त कर दिया। ओह ! का० ! तब मैं कितनी दृढ़ थी ? कितनी स्फूर्ति थी मुझमें ?

शीला (कुछ रुककर)—और का० तभी बाहर से एक बहुत ही कोमल पर घबराई हुई आवाज़ आई—पापाजी, पापाजी !! मैं चौंककर पिछले द्वार की ओर बढ़ी ; पर मैंने उस धुँधली-सी छाया में देखा वह आनेवाली लड़की कितनी सुन्दर थी। उफ़ ! भोला-भाला चेहरा बार-बार आँखों के सामने आ जाता है। न जाने क्यों इन पापियों की भी इतनी सुन्दर, इतनी निर्दोष मानव-मूर्तियाँ होती हैं ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदित्य (तेज़ी से खड़ा हो जाता है)—क्यों होती हैं ? यही तो हम भी जानना चाहते हैं। इस भगवान की दुनिया में सदा पापी ही फलते-फूलते रहे हैं। मानो सारा सौन्दर्य, सारा ऐश्वर्य, सारी सम्पत्ति पाप की विरासत है। वे पापी मुक्त-हस्त से दान करते हैं, जन-सेवा भी करते हैं, जिससे उनकी आत्मा को जिसने अनन्त पाप किये हैं, शान्ति मिले।

शीला (आदित्य की बात अनसुनी करके)—तभी मैंने सुना वह लड़की चिल्लाई। क्षण बीतते-बीतते वह विशाल भवन जाग आया। मैं अभी कम्पाउण्ड में थी। मुझे भय नहीं था, फिर भी मैं बच आना चाहती थी। उसी समय दरवान ने मुझे देखा। वह चिल्लाने लगा था कि लेट गया। मेरी गोली उसे खा गई। मैं क्या करूँ, मार्ग में जो बाधा देगा, उसका यही अन्त होगा। लेकिन मैं सुनती हूँ, सवेरे से नगर में आतंक है। पुलिस स्थान-स्थान पर छापे मार रही है।...

आदित्य—अभी क्या है का० शीला ! न जाने कितने निर्दोष जेल में ठूँस दिये जायेंगे। शायद उन्हीं में से दो-चार फाँसी पर भी लटका दिये जायें।

[शीला काँपती है]

आदित्य—लेकिन शीला ! तुम्हें चले जाना होगा। मैंने निखिल को लिखा है, वह कल तक आ जायगा। तुम्हारा भारत में रहना भयप्रद है और शीला ! मैं भी जल्दी ही तुमसे मिलूँगा।

शीला—तुम रूस जाने की बात कहती हो !

आदित्य—हाँ शीला ! उसके पास पुष्पा का पासपोर्ट है।

शीला—लेकिन कामरेड। सरकार ख़ूनी चाहती है। मैं उन्हें मिलूँगी नहीं, तब वे किसी निर्दोष व्यक्ति को फाँसी पर लटका देंगे ! नहीं आदित्य ! यह नहीं होगा !

आदित्य—(अचरज और घबराहट)—शीला ! इन सिद्धान्तों के लिए न जाने कितनी हत्यायें, कितने ख़ून और कितने षडयन्त्र हमें करने होंगे ? तब मार्ग में जो आयेगा, उसे हटाना ही होगा। उसमें निर्दोष क्या बचेंगे ? यह तो सृष्टि का नियम है।

शीला—(उद्विग्न)—सृष्टि का नियम ! नहीं कामरेड ! सृष्टि के इसी नियम को हम उखाड़ फेंकना चाहते हैं। तब यही हमारी ढाल क्यों हो ? मैं कहती हूँ मेरे कारण निर्दोष की हत्या नहीं होगी !

[आदित्य हताश भाव से शीला को देखता है, उसकी घबराहट बढ़ती जा रही है। तभी शीला चिहुँक पड़ती है—बस ! बस !!]

शीला—(धीरे-धीरे बोलती है)—बस ! यही बात मुझे सूझती। मैं वहीं जाऊँगी...

आदित्य—कहाँ शीला ?

शीला—(उसी तरह)—मेरे हृदय में आवाज़ उठ रही है। वह धोखा नहीं देंगे !...

आदित्य—(झुँझलाता है)—यह क्या है, शीला ! हृदय की आवाज़ सुननेवाले कायर होते हैं। मैं नहीं जानता था तुम इतनी डरपोक हो (शीला नहीं सुनती और चलती है) तुम जा रही हो शीला। मैं कहता हूँ...।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शीला—(रुककर)—चोरी से नहीं जाऊँगी, कामरेड ! मैं कहती हूँ मैं नन्द के पास जा रही हूँ।

आदित्य—(चौंककर)—नन्द के पास ? नहीं शीला ! विरोधी के हाथ में अपने भेद देना संघ कभी न चाहेगा ? मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ मैं संघ का प्रेजीडेन्ट हूँ...

शीला—(हँसती है)—का० शीला का मार्ग कोई नहीं रोक सकता। कहती हूँ जहाँ हो, वहीं रहो। मैं तुमसे अधिक सिद्धान्तों को जानता हूँ। तुम सब से अधिक।

[आदित्य ठिठकता है, शीला ज़ोर से हँसती है]

शीला—और सुनो आदित्य ! मेरे लिए जो निर्दोष व्यक्ति बन्दी होनेवाले हैं, उनमें नन्द मुख्य है।

[आदित्य चौंक पड़ता है। शीला उसी क्षण कमरे से बाहर चली जाती है। कुछ देर उसके जाने की आवाज़ आती है फिर शान्ति। आदित्य आप ही आप बोलता है]

आदित्य—नन्द ! क्या नन्द भी षड्यंत्र में फँस सकता है। नहीं, नहीं ! वह तो धर्म-भीरु देवता है...

[उसके हृदय में उथल-पुथल मच जाती है। वह फिर चिहुँक पड़ता, शीला, शीला ! परन्तु कोई नहीं बोलता। वह झपटकर कमरे से बाहर चला जाता है]

परदा गिरता है

पाँचवाँ दृश्य

[नगर के बाहर एक बगीचा है। उसके एक कोने में बड़ी सुन्दर इमारत है। उस पर लिखा है 'सेवाश्रम।' उसके ठीक दूसरे भाग में एक पर्णकुटी है। उसमें दो-तीन चटाई बिछी हैं और उन पर कुछ पुस्तकें पड़ी हैं। फूस की टट्टी से छन-छनकर सूर्य का प्रकाश इधर-उधर छिटक रहा है। चारो ओर शान्ति है। केवल बीच-बीच में पक्षियों की चरपराहट सुन पड़ती है। वृद्ध प्रेमदत्त शान्त भाव से बैठे नन्द से बातें कर रहे हैं]

प्रेमदत्त—केवल आदित्य हमसे दूर रहा। लेकिन मैं उसकी चिन्ता नहीं करूँगा। अब तो प्रमिला से कहकर आश्रम के एक कोने में पड़ रहूँगा और उगते हुए राष्ट्र को देखूँगा।

नन्द—पिताजी ! प्रमिला कहती थी—पिताजी आश्रम के दादा होंगे। जीवन में जो शक्ति है, उसके जन्मदाता वे ही हैं।

प्रेमदत्त—(हँसते हैं) नन्द, तुम प्रमिला को पहचानते हो ?

नन्द—अवश्य पिताजी ! तभी तो इतना विश्वास करता हूँ। उसमें कहीं भी बन्धन नहीं है, वह मुक्त है। हर काम के पीछे मूर्तिमयी शक्ति की तरह जागरूक है। (कुछ रुककर) पिताजी ! शक्ति शीला में भी है, पर वह सदा ध्वंस की ओर दौड़ती है।

प्रेमदत्त—मानव में जब तक 'अहम्' है, वह निर्माण नहीं कर सकता; पर मैं कहूँ नन्द ! शक्ति जिनमें है वे पथ-भ्रष्ट होकर भी एक दिन निर्माण मार्ग पर आ सकते हैं, पर जो शक्ति-हीन हैं वे आत्मा की रक्षा भी नहीं कर सकते ! यही जानकर मैं शीला और आदित्य को भी हेय नहीं समझता।

[प्रेमदत्त कहते-कहते बाहर जाते हैं और दूसरी ओर से प्रमिला प्रवेश करती है]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमिला—दद्दा ! आपने सुना सेठ रामेश्वर की हत्या के सम्बन्ध में नगर के कई नवयुवक पकड़े गये हैं। लोग तो यह भी कहते हैं कि सन्ध्या तक नन्द भी गिरफ्तार कर लिये जायेंगे।

नन्द—प्रमिला ! यह मैं जानता हूँ और मैं कहूँ कि मैं यह चाहता भी हूँ।

प्रमिला—लेकिन दद्दा ! क्या आपका विश्वास है कि आप वहाँ जाकर हत्यारे का पता लगा सकेंगे ?

नन्द—मैं यह नहीं कहता, पर वह हत्यारा यदि बचना चाहता है तो उसे बचाना ही होगा।

प्रमिला—(अचरज से) दद्दा ! आप दिन पर दिन गूढ़ होते जाते हैं। मैं आपकी बात नहीं समझती। मैं मानती हूँ ये बताती हैं कि समाज में जीवन है पर ऐसे जीवन को लेकर कोई क्या करे ? मैं विकास चाहती हूँ, अन्त नहीं। अन्त तो कायरता है। ये हत्याएँ विरोधी को बल देंगी। बल पाकर वे विकास को और भी रोकेंगी।

नन्द—तुम ठीक कहती हो, प्रमिला ! परन्तु जहाँ विकास है वहाँ अन्त भी है। और मनुष्य के मनोविकार ! 'वे स्वतंत्र समाज में ख़तरनाक नहीं होते।'...

प्रमिला—(बीच ही में बोलती है)—पर दद्दा ! समाज स्वतंत्र कहाँ है, पग-पग पर उसमें बन्धन है।

नन्द—इसीलिए प्रमिला ! मैं मानव-मात्र के लिए स्वतंत्रता चाहता हूँ। उसे कहीं भी बन्धन न हो तब ये हत्याएँ नही होंगी।

प्रमिला—(ठीक-ठीक समझती नहीं) दद्दा ! आपकी थाह मैं नहीं पाती। पाना भी नहीं चाहती। सेवा मेरा व्रत है। हत्यारे की सेवा भी मैं करूँगी। तुम्हारे सामने अज्ञानी रहकर मैं ज्ञान पा सकती हूँ; पर दद्दा ! इतनी गूढ़ता क्या अच्छी है ? वह क्या दूसरे के बन्धन काट सकती है। वह स्वयं बन्धन है।

[प्रमिला चली जाती है। नन्द भी उठते हैं और किसी गहरे गम्भीर भाव में डूबे-डूबे चलते हैं। कुटी के बाहर आकर वे सहसा चौंक पड़ते है। उनके सामने शीला है]

नन्द—तुम।

शीला—हाँ, मैं हूँ। मैंने तुम्हारी बातें सुनी हैं। क्या एक क्षण एकान्त में मेरी बात सुनोगे ?

नन्द—चलो शीला !

[कुछ दूर चलकर वे वृक्षों के झुरपुट में आते हैं। शीला रुक जाती है]

शीला—नन्द ! अचरज होता है !

नन्द—नहीं शीला ! दुनिया में अचरजवाली कोई बात नहीं है।

शीला—(मुस्कराती है) देखती हूँ दार्शनिकता बढ़ती जा रही है। परन्तु मैं समस्या को जटिल नहीं करना चाहती। मैं कहने आई हूँ मैंने सेठ की हत्या की है !

[शीला कहकर काँपती है]

नन्द—यही कहने आई थीं। अच्छा ! मैं सुन चुका, जाऊँ !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शीला (उद्विग्न होती है)—अभी नहीं, नन्द !

नन्द—तब कहे चलो शीला !

शीला—मैंने सेठ की हत्या की है, इसका मुझे दुःख नहीं। परन्तु देखती हूँ अनेक निर्दोष मानव जेल में भरे जा रहे हैं। यही मुझे कसकता है। कहते हैं उन्हें फाँसी पर भी चढ़ाया जा सकता है।

नन्द—अवश्य शीला ! सरकार हत्यारा चाहती है। कानून जिसे हत्यारा करार दे, वही हत्यारा। कानून कभी पूर्ण नहीं होता, तब हत्यारा वास्तविक है यह जानने की उनकी चिन्ता नहीं।

शीला (काँपती है)—तब नन्द...।

नन्द—तुम डरती हो शीला !

शीला—मैं डरती नहीं, नन्द ! मैं तो स्वयं भय हूँ पर...

नन्द—तुम भूलती हो, शीला ! तुम स्वयं कुछ भी नहीं हो। स्वयं तो स्वयम्भू ही हैं !

शीला—स्वयम्भू को मैं नहीं जानती ; परन्तु मेरे हृदय में आवाज़ उठ रही है यह मार्ग ठीक नहीं। उन निर्दोष प्राणियों के कष्ट के लिए भी मैं ही ज़िम्मेवार हूँ। आदित्य कहता है उसके ज़िम्मेवार वही शोषक वर्गवाले हैं पर नन्द...।

नन्द—शीला ! तुम हृदय की आवाज़ सुनती हो ! मैं कहूँ यही तो है जिसे हम ईश्वर कहते हैं। आत्मा भी यही है। मनुष्य की कर्त्तव्य-प्रेरणा शक्ति भी यही है। तुम्हें शंका है तब मैं कहूँ तुम आत्म-समर्पण कर दो !

शीला (काँपती है) आत्म-समर्पण...।

नन्द—यह भय है शीला ! परन्तु तुम कहती थी हत्या का दुःख तुम्हें नहीं है, तब अपने को छिपाती क्यों हो ? छिपाना पाप है।

शीला—लेकिन नन्द ! आदित्य कहता है तुम रूस भाग जाओ। तुम्हारे पकड़े जाने से संघ नष्ट हो जायेगा।

नन्द—तब तुम जा सकती हो ! मैं इसके लिए क्या कहूँ पर शंका तुम्हें जीने न देगी ?

शीला—(चुप है)

नन्द—एक बात और है, शीला ! तुम बच सकती हो आज शाम तक मैं गिरफ़्तार हो ही जाऊँगा। बहुत सम्भव है सरकार हत्यारे को मुझ में पाले !

शीला—(भयंकर वेग से काँपती है)—नहीं, नहीं ! यह नहीं होगा, नन्द !

नन्द—क्या होगा यह हम नहीं जानते, शीला ! पर कर्म करने में हम सदा स्वतंत्र हैं !

शीला (विचलित)—नन्द ! मैं हाथ जोड़ती हूँ तुम कुछ मत कहो...(कुछ रुककर) नन्द ! मैं तुम्हारी बात मानती हूँ। मैं आत्म-समर्पण करूँगी।

नन्द—यह शुभ है, शीला ! मैं अब चलूँ।

शीला—नन्द। जाना मुझे है। मैं चलती हूँ नमस्कार नन्द ! देव, प्रियतम...

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[शीला झपटकर नन्द के चरन छू लेती है, तभी प्रमिला वहाँ आती है]

शीला (देखकर)—जीजी हैं...!

प्रमिला—मैंने सब सुना है, भाभी ! जिस मार्ग पर तुम जा रही हो, वहाँ करुणा के लिए स्थान नहीं है।

[प्रमिला कहकर शान्त भाव से नन्द की ओर देखती है—आओ दद्दा ! चलें। शीला अचरज और श्रद्धा से उन दोनो को जाते देखती है। उसकी आँखों में पानी उमड़ आया है, पर दूसरे ही क्षण सँभल जाती है और दृढ़ कदम रखती हुई वहाँ से चली जाती है। उधर प्रमिला चलते-चलते नन्द से कहती है।]

प्रमिला—मैं नहीं जानती थी दद्दा ! तुम इतने कठोर भी हो।

[नन्द नहीं बोलता]

प्रमिला—दद्दा !

[नन्द फिर भी नहीं बोलते। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें आँसुओं से पूर्ण हैं। वे दृढ़ कदम रखते हुए बढ़े चले जा रहे हैं, पर जानते नहीं कहाँ। प्रमिला उन्हें देखकर आश्चर्य-चकित रह जाती है कि सहसा आदित्य वहाँ आ जाता है। वह बहुत उद्विग्न है]

आदित्य—नन्द ! मैं कहने आया हूँ ! तुम गिरफ़्तार नहीं हो सकते। हत्या का कारण मैं हूँ। मैं अभी जाकर पुलिस को कहे देता हूँ।

नन्द, प्रमिला—(दोनो एक साथ चौंककर) आदित्य, आदित्य...

[आदित्य नहीं सुनता। शीघ्रता से चला जाता है। नन्द और प्रमिला अचरज से पूर्ण होकर उस तरफ़ देखते रह जाते हैं]

परदा धीरे-धीरे गिरता है

हिसार।

बसन्त पंचमी, २५ : १ : ३९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नमक की चुटकी

[एडेम स्ज़िमांस्की]

[अनुवादक, रवीन्द्र]

[स्ज़िमांस्की पोलेण्ड के सबसे अच्छे लेखकों में से हैं। इसकी कहानियाँ बहुत असर करनेवाली और चुभती हुई होती हैं। जिन दिनों पोलेण्ड में राष्ट्रीयता का नाम लेना भी घोर अपराध था उन दिनों, अपना विश्वविद्यालय का जीवन समाप्त करते ही इसे छः वर्ष के लिए रूसी अधिकारियों ने साइबेरिया के याकूत प्रदेश में निर्वासित कर दिया। कई वर्ष साहित्यिक काम करने के बाद अधेड़ आयु में ही महायुद्ध के दिनों में चल बसा, जीवन भर पोलेण्ड के स्वाधीनता-संग्राम में लगे रहने के बाद भी स्ज़िमांस्की स्वाधीनता प्राप्त होने से कुछ ही पहिले दुनिया से कूच कर गया। —सं०]

बरफीले साइबेरिया की राजधानी में निर्वासित हुए मेरा चौथा साल चल रहा था। बड़े दिन में कुछ ही दिन बाक़ी थे। हमारे एक साथी ने जो लघु रूस का रहनेवाला और कीव विश्वविद्यालय का एक पुराना विद्यार्थी था, हमें एक बहुत शुभ समाचार सुनाया। उसका एक मित्र जो कीव में पढ़ा करता था, याकूत के एक छोटे-से गाँव में तीन वर्ष की यातनाएँ भुगतकर वापस जा रहा था और रास्ते में बड़े दिन के आस-पास हमारे गाँव से गुजरनेवाला था।

हमने याकूत के इधर के हिस्से के तो बहुत-से आदमी देखे थे। वहाँ पर निर्वासित कई व्यक्तियों से मिलने का भी मौक़ा मिला था; पर इस तरफ के गाँव और क़स्बे तो उस तरफ के हिस्से की अपेक्षा कहीं ज्यादा आबाद थे। इन्हें देखकर उनका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। वहाँ की रमणीयता का कुछ अनुमान तो इससे किया जा सकता था कि बड़े से बड़े क़ैदी भी वहाँ स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा इधर के जेलों में कठिन क़ैद की सजा भुगतना ज्यादा अच्छा समझते थे। लेकिन इतनी-सी बात से वहाँ के विषय में कोई जानकारी कैसे प्राप्त हो सकती है।

हमें यह तो बताया जाता था कि वहाँ का जीवन बहुत बुरा और बहुत ही कष्ट-प्रद है; पर इधर के हिस्सों का अनुभव प्राप्त कर चुकने के बाद भी हम वहाँ के कष्टों को सोच तक न सकते थे। हमारा ज्ञान बहुत ही कम था, फिर भला कोई वहाँ के एकरस जीवन के बारे में कुछ कैसे सोच सकता। वहाँ का अनुभव प्राप्त किये बिना यह मालूम ही कैसे हो सकता है कि वहाँ हज़ारों प्रकार के कष्ट कैसे मिलते और जीवन किस तरह से दूभर बन जाता है। इतना हम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवश्य जानते थे कि हमारे स्थान से चारो ओर चाहे जिस दिशा में बढ़ो, आबादी बहुत घटती जाती है और जीवन आफ़त बनता जाता है। दक्षिण में ऐलडन के ऊँचे-ऊँचे मैदानों में, पूर्व में स्टेनबोइशेव्र पर्वत के ढलुवे स्थान पर जहाँ तीन सौ वर्स्ट की नदी पर कुल एक ही टंगस परिवार की आबादी है, पश्चिम में भयावनी निर्जन ऊँचाइयाँ, उत्तर में ओलेरंक, इरिडगिरिफा, कोलीमा के बीहड़ों में पूरी तरह से रौरव नर्क के दर्शन होते हैं। बरफ-बरफ और चारो तरफ बरफ ही बरफ के तूफान और रक्तवर्ण प्रकाश। उफ़...

पर यह तो साइबेरिया के नर्क की भूमिका ही है। यहाँ पर फिर भी वनस्पति के दर्शन हो जाते हैं चाहे वह छोटी-छोटी पतली-पतली ही क्यों न हो, फिर भी उसे जलाकर आग तो पैदा की ही जा सकती है, जीवन कायम रखा जा सकता है। मानव उत्पीडन का सच्चा नर्क तो इस वानस्पतिक परिधि से भी परे है, जहाँ बरफ के सिवाय कुछ है ही नहीं, जहाँ के मैदानों की बरफ गर्मियों में भी नहीं पिघलती और इस बर्फीले बंजर में बेचारे मुसीबत के मारे मनुष्य को अपने भाग्य पर छोड़ दिया जाता है।

× × ×

अचानक कभी-कदास मिल जानेवाली वहाँ की किसी खबर का मेरे ऊपर कितना असर होता था! पूरे विस्तृत वर्णन, पारिभाषिक शब्द और घटनाएँ वहाँ की स्थानीय हालत का चित्रण करने में असमर्थ हैं।

एक भूतपूर्व अफ़सर की सुनाई हुई वह घटना आज भी मुझे अच्छी तरह याद है, जब उसने कहा था कि वह अमुक स्थान पर इस्प्रावनिक के पद पर था और उसे आज्ञा मिली कि वह 'एक सज्जन' को ज़ाशिवर्स्क नामक स्थान पर छोड़ आये।

'भाई देखो' उसने कहा 'जाशिवर्स्क नामक स्थान का अस्तित्व तो है ही, साइबेरिया के किसी भी नक्शे में तुम्हें वह दिखाई दे जायगा और यदि तुम्हें भूगोल याद हो तो तुम जानते होगे कि वह स्थान सरकारी सरहद से बाहर गिना जाता है। यदि किसी अफ़सर की नियुक्ति उस स्थान पर की जाय तो इसका अर्थ यह होता है कि उससे त्यागपत्र माँगा जा रहा है। यदि किसी नगर को यह नाम मिल जाय तो इसका मतलब है कि वहाँ से सरकारी चौकी उठा दी गई। लेकिन यहाँ पर इसका अर्थ कुछ और भी गम्भीर था क्योंकि जैसा मैंने कहा जाशिवर्स्क नामक स्थान है तो पर है वह केवल भूगोल की पुस्तकों में और नक़्शा बनानेवालों के दिमाग में। वास्तव में तो ऐसा कोई स्थान है ही नहीं। तुम्हें नक़्शे में इस नाम का जो स्थान दिखाया जाता है, वहाँ तो एक भी घर, झोंपड़ी या खोह तक नहीं है। जब मैंने यह आज्ञा पढ़ी तो मुझे सहसा अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। यद्यपि मैं गम्भीर आदमी हूँ फिर भी इस आज्ञा की वजह से मेरे हाथों के तोते उड़ गये। मैंने अपने एक साथी अफसर को बुलाया और उसे भी यह विचित्र आज्ञा सुनाई।

'वह एक तजुर्बेकार बुड्ढा था, पर यह आज्ञा पढ़ते ही उसके हाथ से काग़ज़ छूटकर ज़मीन पर जा गिरा—कहाँ, जाशिवर्स्क? हम दोनो एक दूसरे की ओर ताकते रहे। किसी की कुछ समझ में न आता था। वाह बड़ी अच्छी जगह थी! हम दोनो पथराये हुए खड़े थे, दोनो चुप, किसी की कुछ समझ में न आता था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'नौजवान सुन्दर था, पर चेहरे पर दुख की आभा थी। मैंने एक-एक करके बहुत-सी बातें उससे पूछीं, उसे किसी चीज़ की आवश्यकता तो न थी ; पर वह सिवाय हाँ या ना के और कुछ उत्तर ही न देता था। मैंने मन में सोचा कि अभी थोड़ी ही देर में यह मियाँ कुछ और ही राग अलापने लगेंगे। ख़ैर मैंने तीन गड्डे मँगाये। पहिले में उसे एक कोसेक के साथ बिठा दिया, दूसरे में मैं एक जाशिवर्स्क को जाननेवाले कोसेक के साथ बैठा और तीसरे में हमारा सामान था। हम चल पड़े। हम चौबीस घण्टे चलते रहे। बीच-बीच में कहीं घोड़ा बदलने के लिए रुकना पड़ता था। इस प्रकार हमने २०० वर्स्ट की मुसाफिरी तय की। दूसरे और तीसरे दिन हम डेढ़-डेढ़ सौ वर्स्ट चले पर रास्ते में कहीं भी कसम खाने को भी आदमी या आदमजाद के दर्शन न होते थे। बिना खिड़की या चिमनी की केवल एक अँगीठीवाली विचित्र-सी इमारतों में हम रात बसर करते थे। ऐसी इमारतें सड़क के इधर-उधर कहीं पाई जाती हैं और इन्हें पोवार्निया कहते हैं। अब हमारे कैदी की मुसीबत आ रही थी वह मुझसे बार-बार जाशिवर्स्क के जीवन के बारे में पूछता था। 'वहाँ कितने आदमी बसते हैं ? गाँव कैसा है ? वहाँ कोई काम मिल सकता है या नहीं ? बच्चों को पढ़ाकर वहाँ गुजारा चल सकता है कि नहीं ?' आदि पर अब तो मेरी हाँ या ना में उत्तर देने की बारी थी।

'चौथे दिन हम सवेरे के आसपास एक ग्लेशियर पर जा पहुँचे। हम ऐसे स्थान पर थे जहाँ बरफ गर्मियों में भी नहीं पिघलती। जब हम यहाँ से भी साठ वर्स्ट और चल लिये तो बूढ़े कोसेक ने मुझे वह स्थान दिखाया जहाँ बहुत समय पहिले कुछ झोपड़ियाँ हुआ करती थीं और जिस स्थान को 'सरहद से बाहर जाशिवर्स्क नामक गाँव' कहा जाता है।

'अच्छा ठहर जाओ, इस नौजवान को यहीं छोड़ दो यही जाशिवर्स्क है...' मैंने आज्ञा दी, युवक कुछ समझ न सका। उसने आँखें फाड़—फाड़कर देखा, सोचा कि या तो मैं पागल हो गया हूँ या उसके साथ माज़ाक कर रहा हूँ। मैंने सब कुछ उसे विस्तार से समझाया...परिस्थिति उसकी समझ में आ गई।'

भूतपूर्व इस्प्रावनिक सूखी-सी हँसी हँसते हुए बोला—तुम्हें न जाने मेरे ऊपर विश्वास होगा या नहीं, अच्छा देखो मैं सलीब की कसम खाते हुए कहता हूँ। उसने अपनी छाती पर क्रास का चिन्ह करते हुए और सन्तों की मूर्तियों के आगे सिर झुकाते हुए कहा—उसकी आँखें एक दम पथरा गईं। उसके दाँत बजने लगे। उफ़...मैं...मैं यद्यपि एक बहुत बड़ा अफ़सर था फिर भी मैंने माथे पर हाथ मारा। युवक का घमण्ड काफूर हो गया वह पिघलकर मोम जैसा हो गया।

'भगवान ईसा मसीह के जख़्मों की कसम'—हाथ पसारते हुए वह चिल्लाया—जरा खुदा का ख़्याल करो। मुझे मौत की सज़ा नहीं दी गई है। मेरा कोई बहुत सङ्गीन जुर्म नहीं है। मैं बहुत बड़प्पन दिखाता था बस। मैंने कहा ओ हो घमण्ड, घमण्ड तो बहुत बड़ा पाप है।

'न जाने तुम मेरे ऊपर विश्वास करोगे या नहीं'—उसने फिर सलीब का चिन्ह करते हुए कहा—युवक फूट-फूटकर बच्चों की नाईं रोने लगा, मारे खुशी के वह अपने-आप को रोक ही न सकता था, क्योंकि मैंने उससे कहा कि मैं उसे जाशिवर्स्क से तीस वर्स्ट इधर किसी झोंपड़ी में छोड़ दूँगा।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसका आसानी से अन्दाज लगाया जा सकता है कि हमने कितनी उत्सुकता के साथ इस समाचार को सुना होगा कि एक ऐसा आदमी आ रहा है जो ऐसे निर्जन स्थान में संसार के एक कोने में तीन वर्ष बिता चुका है। फिर भी कहते हैं कि उसका शरीर और मन बिल्कुल स्वस्थ है। हम लोग इस जगह के निवासी से बहुत अच्छी हालत में न थे, पर फिर भी हम यह जानते थे कि हमारे ऊपर उधर जाने से जो मुसीबत आ ती, उसकी अपेक्षा हम कहीं आनन्द में हैं।

हमारे अन्दर वहाँ की अवस्था जानने की प्रबल उत्कण्ठा पैदा हो गई। हम क्रूरता और बर्बरता के नग्न नृत्य को देखना चाहते थे। पर इस उत्सुकता और जिज्ञासा की तह में कोई स्वार्थ न था, इसका एक विशेष कारण था।

यह बात कि एक मनुष्य इतनी दूर-दराज की दुनिया से बचकर वापिस आ रहा है उसकी शक्ति की प्रबलता और उसकी आत्मा की अतुल सहनशक्ति का प्रमाण है। एक आदमी की प्रबल संकल्प-शक्ति और पराक्रम ने औरों को भी मजबूत बना दिया।

जो लोग संसार के उस कोने में मौत के साथ लड़ रहे थे, उनके बारे में हमें जो समाचार मिले थे, वे कोई बहुत उत्साहप्रद न थे इसलिए हमारे लिए यह एक समस्या ही थी कि वहाँ पर मानव किस तरह जी सकता है और वहाँ की मुसीबतें झेलने के लिए जिन्दा रह सकता है।

और अब अचानक यह समाचार आया कि एक हमारी ही श्रेणी का व्यक्ति मानसिक अवस्था में हमारे जैसा, और बहुत-सी बातों में हमसे मिलता-जुलता एक व्यक्ति जाशिवर्क के कल्पित नगर जैसी ही अवस्थाओं में तीन वर्ष रहकर आ रहा है। हमें इस अपरिचित हमारे नहीं किसी और विश्वविद्यालय के छात्र के साथ बहुत अपनेपन का अनुभव होने लगा। हम सबने चाहे रूसी हों या पोलिश, यहूदी हों या कोई और, जिन्हें मुसीबत की जंजीरों ने इकट्ठा बाँध दिया था, यह निश्चय किया कि उसका शानदार स्वागत किया जाय। वह बड़े दिन पर आ रहा था अतः हमने बड़ी भारी दावत का प्रबन्ध किया।

सारे साथियों में मैं ही पाकशास्त्र का सबसे बड़ा ज्ञाता था, अतः भोज का प्रबन्ध मुझे ही सौंपा गया। मेरी सहायता करने के लिए एक नवयुवक विद्यार्थी मौजूद था। सारी बस्ती प्रबन्ध में बहुत रुचि ले रही थी। मुझे पूरा विश्वास है कि मैंने या मेरे सहायक ने कभी इतनी कड़ी मेहनत नहीं की, जितनी कि इन दो दिनों में रसोई पकाने के लिए करनी पड़ी।

विद्यार्थी हर एक उपयोगी वस्तु इकट्ठी करनेवाला था। यही नहीं इसके अतिरिक्त उसे याकूत सम्बन्धी ज्ञान में भी निपुणता प्राप्त थी। खाना पकाते हुए और चीज़े तलते हुए हम लोग आपस में एक दूसरे को इतना बढ़ावा देते जाते थे कि जहाँ पहिले सीधी-सादी दावत का प्रोग्राम बना था, वहाँ अब बहुत ही जबर्दस्त पैमाने पर सहभोज के लक्षण दिखाई देने लगे।

हम भलीभाँति जानते थे कि याकूत के इधर के भागों के युरटाओं में कैसा कठिनता का जीवन बीतता है। हमें मालूम था कि वहाँ पर मामूली से मामूली यूरोपियन भोजन का अभाव है। जो भोजन हमारे यहाँ के गरीब से गरीब किसान के यहाँ मिल सकता है, वह भी वहाँ नसीब नहीं। और तो और दूर क्यों जायें साधारण-सी चीज़ रोटी—प्रति दिन खाई जानेवाली

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रोटी—तक का वहाँ अभाव था। यह एक अचरज की-सी बात थी कि हम दोनों इतने अधिक जी-जान से पकाने में लगे थे, मानो पकाने का भूत हमारे सिर पर सवार हो। जैसे एक लम्बे अर्से के बाद घर लौटते हुए बालक के लिए मा भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद्य-सामग्री तैयार करती है, सोच-सोचकर उसकी रुचि के व्यंजन तैयार करती है, उसी प्रकार हम भी अपने अतिथि के लिए तहर-तरह की चीज़ें बनाने के लिए अपने दिमाग लड़ा रहे थे। एक न एक बराबर यह पूछता ही रहता था—क्यों भाई तुम्हारी क्या राय है, उसे यह चीज़ कैसी लगेगी।

'हाँ, ठीक तो है। यह तो उसे बहुत ही पसन्द आयेगी। देखो तो अगर सफर के दिन भी गिनें तो लगभग पाँच वर्ष से उस गरीब को आदमी के खाने लायक भोजन नसीब नहीं हुआ होगा।'

'अच्छा तो फिर यह भी बना लें।'

'हाँ ज़रूर।'

और झट हम में से एक सामान लेने बाजार दौड़ता। दूसरा बर्तन-भाँडे तैयार करता और हमारे पकवानों में एक की गिनती बढ़ जाती। आख़िरकार बर्तन ख़तम हो गये और शारीरिक थकान ने हमारे दस्तरखान को और बढ़ने से रोक दिया। हमारे उत्साह ने बस्ती के और लोगों पर भी बहुत प्रभाव डाला। उन्हें हमारी कल्पना-शक्ति और कार्य-क्षमता पर आश्चर्य होता था। मुझे और मेरे सहायक को भी अपने कार्य पर गर्व था। हमारी पाचन-कला और सारे परिश्रम को चार चाँद लगानेवाला एक विशेष पकवान था। बड़ी मुश्किलों से जैसे-तैसे करके हमने एक बड़ी कम-से-कम दस सेर की मछली पूरी सही-सलामत उबाल ली थी। हमारा अनुमान ठीक ही था कि यह शानदार, बड़े अच्छे-अच्छे और बढ़िया मसालों के साथ तैयार की हुई यह मछली बड़े-बड़े शुद्ध आदमियों के मुँह में भी पानी लाये बिना न रहेगी। हमें बड़े दिन के झाड़ की (क्रिस्मस ट्री) भी याद थी और हमने अपने अतिथि का सत्कार करने के लिए उसे ख़ूब सजाया था।

× × ×

आख़िर वह चिर-प्रतीक्षित दिन आ ही गया। वह विद्यार्थी तड़के ही निकलकर चौकी पर जा बैठा, ताकि नवागन्तुक को हमारे यहाँ ले आये। दो बजे से पहले-पहले जब अँधेरा हो चला तो हम सब एक स्थान पर इकट्ठे हुए, थोड़ी देर में ऊँघती हुई-सी घंटियों की आवाज़ आई—वे आ रहे थे। हमने झटपट अपने लबादे ओढ़ लिये और बाहर निकल पड़े। गाड़ी, घोड़े और मुसाफ़िर सब पर बरफ ही बरफ थी। घोड़ों के नथनों से बरफ लटक रही थी, उनके सारे शरीर पर बरफ की एक पतली-सी तह जमी हुई थी। क्षण-भर गाड़ी हमारे द्वार पर आ लगी। सबने टोपी उतारकर सलाम किया। आह, मुसीबत के मारे कितनों के बाल असमय में ही पक गये थे।

× × ×

मैं पहिली मुलाक़ात का वर्णन न करूँगा और जो सच पूछो तो यदि करना चाहूँ, तब भी न कर सकूँगा। हम एक-दूसरे से बिलकुल अपरिचित थे; फिर भी हममें कितनी घनिष्ठता थी!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न जाने फिर कभी जीवन में ऐसा मौक़ा आयेगा या नहीं, जब कि मैं किसी ऐसे समाज में होऊँ जहाँ सब हर प्रकार से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के इतने निकट हों जैसे उस दिन हम लोग।

वह एक अत्यन्त कृश, हमसे भी ज्यादा कालिमा-युक्त जर्द चेहरे का आदमी था। सारा शरीर बिलकुल मटियाला था। केवल उसकी अन्दर धँसी हुई आँखों में ही जीवन-ज्योति जगमगा रही थी। जब तक उसने कपड़े-अपड़े बदले और हाथ-पैर सेककर कुछ आदमी बना तब तक आकाश में बिलकुल अँधेरा छा चुका था, हम सबके सब प्रीति-भोज के लिए बैठ गये। सारे घर में एक शोर मचा हुआ था, चारो ओर चहल-पहल थी और खुशी और मस्ती की लहर ने दुःख और कटुता को एक दम बहा दिया था।

'अहा, क्या मज़ा है, आओ ख़ूब आनन्द मनायें'—चारो ओर से यही आवाज़ आ रही थी और जब हमारे अतिथि ने भी यही कहा तो हम खुशी के मारे फूले न समाये, अत्यन्त मुहर्रमी शकलों पर भी दमक आ गई, वे भी जामे से बाहर हो गये। हम सबने एक गिलास चढ़ाया। मेरे मेहनती सहायक को यूक्रेन का एक ग्राम्य गीत बहुत ही पसन्द था, वही ग्रामीण गीत जो अत्यन्त सरल होते हुए भी दिलों में खुब जाते हैं। वह हर्षोन्मत्त तो था ही, अतिथि की आँखों में खुशी के आँसू डबडबाते देख वह और भी मतवाला हो उठा। वह स्वागत करने के लिए भाषण देने खड़ा हुआ, उसने बताया कि किस तरह हम इस दावत की तैयारी में जान तोड़कर लग गये थे, दो दिन और दो रात बिना आँख झपकाये हम काम में लगे रहे थे। फिर अपनी प्रिय वस्तु कुडला से लेकर सभी चीज़ों के नाम गिना डाले और हँसते-हँसते अतिथि के गले में बाहें डाल दीं। वह भी ख़ुशी के मारे रो पड़ा।

हमारी प्रसन्नता बढ़ती ही जा रही थी और जब परोसने की बारी आई तो चारो ओर से प्रशंसा-पत्रों की बौछार होने लगी। लड़के ने अतिथि की थाली लबालब भर दी। बातचीत बन्द हो गई, हँसी का स्थान चमचों की आवाज ने ले लिया। 'भई बहुत अच्छे, क्या कहने हैं' यही सबकी आवाज़ आती थी। विद्यार्थी अत्यधिक खुशी था और बोलता जा रहा था; लेकिन आख़िर में उसने भी बोलना बन्द करके खाना शुरू कर ही दिया।

लेकिन ऐ मेरे अल्लाह, आख़िर यह मामला क्या है! हम सब तो खाने में मग्न थे पर हमारा अतिथि चम्मच इधर-उधर हिलाता हुआ हँसता जा रहा था, उसने कुछ भी नहीं खाया।

'या खुदा, यह है क्या? अरे भाई तुम खाते क्यों नहीं?' इकट्ठी कई गलों से यही आवाज़ निकली। यह विद्यार्थी उसे हँसाता चला जा रहा था। उसके पेट में बल पड़ गये हैं खाये कैसे, अब इसे हटाकर किसी गम्भीर आदमी को बिठा दो वहाँ।

विद्यार्थी ने अपना स्थान बदल दिया और हम फिर भोजन पर टूट पड़े, लेकिन फिर भी अतिथि ने खाना शुरू नहीं किया।

आख़िर यह माजरा क्या था। हम सबने खाना बन्द कर दिया। सबकी आँखें उस पर लगी हुई थीं। हमारा चिन्ता-जन्य मौन ही पर्याप्त वाचाल था। उसने भी हमें देखा, कुछ अनुभव किया और धीरे से बोला—मैं...मुझे क्षमा करो...मैं...मेरी प्रसन्नता...मुझे बहुत दुःख है... मैं आपको दुःख नहीं देना चाहता, मैं आपके हर्ष को नष्ट नहीं करना चाहता...मैं आप सबसे प्रार्थना करता हूँ...भाइयो मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ, आप मेरी ओर ध्यान न दीजिये...बात कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. ....2631.....

नहीं है, यह सब यों ही चलता है।' और वह अजीब-सी सिसकियों भरी हँसी हँसने लगा।

'या खुदावन्द ईसू मसीह' हमारे मुख से निकल पड़ा, क्योंकि इससे पहिले हमें ध्यान ही न आया था कि उसकी हँसी कितनी बनावटी और अस्वाभाविक थी। खाने-पीने के विचार एकदम रफूचक्कर हो गये। उसने हमारी खिन्नता को देखा और अपने आपको पूरी तरह सम्हालने का प्रयत्न करते हुए उसने बोलना शुरू किया। कमरे में सन्नाटा था।

'मेरा ख्याल था कि शायद आप लोगों को मालूम होगा कि मैं तीन वर्ष तक कैसा जीवन बिताकर आया हूँ। लेकिन अब मुझे पता चला है कि आप लोगों को तो उसका तनिक भी ज्ञान नहीं है। जब मुझे यह अनुभव हुआ तो...मैंने...ऊँ...हाँ मैंने जब आप सब खा-पी रहे थे तो मैंने रोटी का एक ज़रा-सा टुकड़ा, बिलकुल ही ज़रा-सा टुकड़ा निगलने की कोशिश की... पर मैं असफल रहा...मैं निगल न सका। भाई तीन वर्ष तक, लगातार तीन वर्ष तक मैंने नमक चखा भी नहीं है...मुझे सब कुछ अलौना ही खाना पड़ता था और यह रोटी नमकीन है...मेरे लिए बेहद नमकीन इसकी वजह से मेरे गले में बहुत जलन पैदा हो गई, नमक बुरी तरह काट रहा है...'

'हाँ जल्दी में हमने कई चीज़ों में ज्यादा नमक डाल दिया है।'—हम दोनो ने कहा।

'हाँ तो भाइयो, आप लोग खाइये पर मैं तो कुछ चख भी नहीं सकता। मैं आप लोगों को खाते हुए देखूँगा, इसीसे मुझे बहुत हर्ष होता है। अच्छा, तो मैं अब दुबारा आप से विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप खाना शुरू कीजिये।' उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह ठहाका मारकर हँसता हुआ बैठ गया।

अब इस हँसी के आवेग का मतलब हमारी समझ में आया। हम में से कोई भी अपने मुख का ग्रास निगल न सका। जिन मुसीबतों और विपदाओं के बारे में हम जानना चाहते थे, उनके एक ज़रा-से हिस्से पर से पर्दा उठ गया। हमारे चम्मच हाथ से छूट गये और सबने सिर झुका लिया।

हमने खाना-पकाने में जो इतना परिश्रम किया था, उसका मूल्य ही क्या रह गया। हमारा सारा हर्ष कितना ओछा दीखने लगा। और जब हमने अपने प्यारे भैया के बिलकुल मुरझाये हुए चेहरे पर नज़र डाली जो खिलखिलाहट और आँसुओं के कारण अकड़ा हुआ-सा दीखता था...उफ़ हम कितने भयभीत हो उठे...

हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि जाशिवर्स्क के नष्ट-भ्रष्ट गाँव के किसी सूने युर्टा के पीछे से उठकर साक्षात मृत्यु हमारे आगे बैठी है और अपनी पथराई हुई आँखों से हमें घूर रही...

हम सब भयभीत थे, एक सन्नाटा छाया हुआ था, चारो तरफ़ एक हूक का आलम था।

पाण्डिचेरी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आलोक

[शांतिप्रसाद वर्मा]

आलोक से मेरा परिचय कलकत्ता पहुँचते ही हुआ। हवड़ा स्टेशन पर चौधरी बाबू से मेरी भेंट न हो सकी, तो टैक्सी में बैठकर मैं सीधा कलकत्ते में अपने हमेशा ठहरने के स्थान, ग्रैंड होटल में, जा पहुँचा। वहाँ जाकर सामान रखा ही था कि चौधरी बाबू अपना बंगाली कुर्ता-धोती पहिने छड़ी घुमाते हुए आ पहुँचे, उनके साथ एक दूसरे सज्जन भी थे, जो ढलती हुई उम्र के, बन्द कॉलर का छोटा कोट पहिने थे, और उनकी छोटी काली दाढ़ी को देखकर रामकृष्ण परमहंस की याद आती थी। पास सटे हुए धवल दाँतों की पंक्तियाँ भी उन्हीं की याद दिलाती थीं। मैं अपना होल्डोल खोल रहा था कि इन सज्जनों ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। चौधरी ने कहा—ये हैं निताई बाबू। और वह पास पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गये। मैंने उनका अभिवादन किया, और कुछ देर और अपने कार्यक्रम में लगा रहा। मेरे चप्पल उसी होल्डौल में बन्द थे, और मैं सबसे पहिले अपनी लम्बी यात्रा की गंदगी को धो डालना चाहता था।

'तुम्हारी ट्रेन क्या टाइम से पहिले आ गई? मैं रास्ते में निताई बाबू को लेने लग गया, फिर स्टेशन पहुँचा। वहाँ देखता हूँ तो तुम्हारा कहीं पता नहीं।'

यह निताई बाबू कौन हैं, जिन्हें लाने का लोभ चौधरी जैसे अक्खड़ बेमुरव्वत और नियमित आदमी को भी ठीक समय पर स्टेशन पहुँचते रोक सका। मैं बात चौधरी से कर रहा था, पर मेरी दृष्टि उनके चेहरे पर थी, उनकी आँखों में मानो एक सात्विक निर्मलता ही बार-बार न चमक उठती हो।

हाथ-मुँह धोकर मैं फिर कमरे में आ बैठा, और तब इन निताई बाबू के संबंध में कुछ विशेष जानने का मौक़ा मिला। यह किसी बड़ी कम्पनी के आडीटर्स आफ़िस में कोई विशेष व्यक्ति हैं। चार-साढ़े चार सौ तनख़्वाह है। विवाह नहीं किया, पर उसके कारण प्रायः मनुष्य के जीवन में जो नीरसता और कटुता आ जाती है, वह इन्हें स्पर्श भी नहीं कर पाई है। सदा हँसमुख रहते हैं। दूसरे की सहायता करने के लिए इतने तत्पर कि एक बार इनके सीनियर का स्थान ख़ाली था। और उस पर स्वाभाविक Claim इन्हीं का था, पर इनके एक जूनियर व्यक्ति ने गिड़गिड़ाते हुए अपने बड़े कुटुम्ब की ओर इनका ध्यान खींचा तो फ़ौरन अपना Claim उसे देने को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तैयार हो गये, और आजका इनका 'साहिब' वही व्यक्ति है, और इस सब पर भी मैंने देखा, निताई बाबू के मुख पर अहंकार छू भी नहीं गया है, एक असीम भोलापन खिलवाड़ कर रहा है। यह निरलसता और यह आत्मानन्द चैतन्य के देश के अतिरिक्त और कहाँ मिलेगा ?

ख़ानसामाँ ने मेरा लंच लाकर सामने रखा, तब वे लोग उठकर चलने का उपक्रम करने लगे। चौधरी ने कहा—अब आज दिन-भर के लिए तो तुम जम ही गये हो, लेकिन वैसे तुम्हारे लिए मकान भी ठीक कर लिया है। वालीगंज में प्रो०...के पासवाला मकान है, दुमंज़िला है। थोड़ा अहाता भी है। इससे अधिक तुम्हें चाहिये भी नहीं। वहाँ तो तुम कल सवेरे जा पाओगे।

मैंने देखा निताई बाबू कभी मेरी ओर, कभी चौधरी की ओर देख रहे हैं; पर हैं बिल्कुल चुप। उनकी वे चमकदार आँखें न जाने क्या कह रही हैं।

चौधरी कहता गया—देखो आज शाम को तुम चाय निताई बाबू के यहाँ ले रहे हो। वहाँ से सिनेमा चलना पड़ेगा। रवीन्द्रनाथ मैत्र का 'मानमयी गर्ल्स स्कूल' चल रहा है। बड़ी अच्छी कॉमिडी है।

मैंने निताई बाबू के अभिवादन का उत्तर दिया, उन लोगों को ज़ीने तक पहुँचाने गया, और तब चौधरी को और निताई बाबू को बड़ी श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम किया।

कमरे में लौटकर बड़ी देर तक चौधरी और निताई बाबू के चरित्रों—वैषम्य की बात सोचता रहा। चौधरी रुपए का लालची नहीं; पर रुपए को जीवन की सबसे आवश्यक बात मानकर चलता है। निताई बाबू रुपए को पैरों से ठुकरा देते हैं। चौधरी का जीवन बड़ा नियमित संयम-शील है। निताई बाबू मानों क़ायदे-क़ानूनों की लपेट की सदा उपेक्षा ही करते रहते हैं। एक का जीवन अपने को ही केन्द्र बनाकर विश्व को अपने चारो ओर घूमते देखता है, दूसरे की दृष्टि में अपना कुछ अस्तित्व ही नहीं, उसका अपना व्यक्तित्व विश्व में जहाँ सत्य, सुन्दर और शिव है, वहीं अपने को खो देना चाहता है। और ये दोनो अभिन्न मित्र-से भी दीखते हैं। जीवन का कैसा वैषम्य है !

[२]

और तब शाम को आलोक से भेंट हुई। ट्राम से उतरकर गली में मैं निताई बाबू के मकान का नम्बर ढूँढ़ रहा था और सोचता जाता था कि इस साधु के यहाँ 'चाय' कैसी होगी। यह तो किसी सूने कमरे में मृगछाला बिछाकर बैठता होगा। चौधरी ने अपने लिए शायद कोई कुर्सी सरका ली होगी, मेरे पहुँचने पर वह किसी खिड़की में खिसककर बैठ जायगा और हम तीनो मूर्ति बैठकर वेदान्त की चर्चा करेंगे। रामकृष्ण के जीवन के सम्बन्ध में भी दिन भर में कई जिज्ञासाएँ उठ आई थीं।

पर जब सीढ़ियाँ चढ़कर, निताई बाबू के कहे जानेवाले कमरे में पहुँचा तो दंग रह गया। वहाँ आधुनिक ढंग के ड्राइंग-रूम की सजावट तो नहीं थी, पर बड़ी कलापूर्ण व्यवस्था की गई थी। दीवार पर कुछ नये बंगाली स्कूल के चित्र थे! बीच में एक सुन्दर हाथी दाँत की काम की हुई मेज़ थी। और चारो ओर कुर्सियाँ पड़ी थीं। दरवाज़ों पर परदे पड़े थे।

निताई बाबू ने उठकर मेरा स्वागत किया, मेरी तो बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि उनके चरण छू लूँ; पर रुक गया। हम लोग मौसम की बात-चीत समाप्त करके अख़बारी खबरों तक पहुँचे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

थे कि निताई बाबू ने बँगला में जोर से कुछ कहा, जिसका भाव मैंने यह समझा कि आलो नाम के किसी व्यक्ति को आवाज़ दी गई है, और कहा गया है कि जो विदेशी बन्धु आनेवाले थे वह आ गये हैं ; और अब चाय की जल्दी की जाना चाहिये। इतने में चौधरी भी आगया था। कई दिनों में आज एक केस मिला था। उसी में देर हो गई।

मुझे तब प्रतीत हुआ कि निताई बाबू के घर में सब शून्यत्व नहीं है। भीतर जीते जागते प्राणी हैं, और निताई बाबू के कहने के ढंग और उत्तर देने वाले व्यक्ति की आवाज़ से मैं समझा कि आलो कोई आकर्षक प्राणी है, और मुझे शीघ्र से शीघ्र उसे देखना चाहिये। तब तो परदे के भीतर, एक-दो कमरों को पारकर इसी प्रकार के और भी प्राणियों की उपस्थिति का आभास होने लगा।

निताई बाबू से रहा नहीं जा रहा था। वह बंगला में चीखे जा रहे थे, जिसमें नामों पर तो मेरे कान गड़े थे, और मैं आलो, दीप्ति, कोल्यानी स्पष्ट सुन पाया।

धीरे-धीरे आलो, दीप्ति, कोल्यानी सभी बाहर आईं, और निताई बाबू ने सबसे मेरा परिचय कराया। दीप्ति और कोल्यानी तो यहीं किसी स्कूल में मैट्रिक और आठवीं क्लास में पढ़ रही हैं। आलोक अभी शान्ति-निकेतन से लौटी है। मैं केवल आलोक से बातें कर पाया, क्योंकि केवल वही हिन्दी बोल और समझ सकती थी। शान्ति-निकेतन में हिन्दी शायद अनिवार्य विषय है कई बार कलकत्ते आकर भी मैं किस प्रकार शान्ति-निकेतन नहीं देख पाया था, इसका अपना दुःख मैंने आलोक के सामने प्रगट किया, और वहीं की शिक्षा-दीक्षा के संबंध में भी मैंने बहुत से प्रश्न पूछ डाले। आलोक नृत्य और संगीत दोनो में ही शिक्षा ले चुकी थी। लेकिन रवीन्द्रनाथ की कविता के पीछे यह जो गूढ़ अर्थ सब लोग ढूँढा करते हैं, यह क्या है, यह उसकी समझ में नहीं आता था।

चाय के बाद हम लोग सब सीधे 'मानमयी गर्ल्स स्कूल' देखने गये। काननबाला का एक्टिंग तो उत्कृष्ट था ही, लेकिन जो लड़की चपला बनी थी, वह भी सुंदर काम कर रही थी। बंगला का स्क्रीन हिन्दी-स्क्रीन से कहीं ऊँचा है, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो सका। आलोक मेरे नज़दीक ही बैठी थी, वह छोटे-छोटे मज़ाक भी समझाती जा रही थी, बंगला गानों के अर्थ भी उसने मुझे समझाये। भाषा के बंधन के परे मैं ड्रामा के सौंदर्य को प्रत्यक्ष देख रहा था। बीच-बीच में हम लोग पगडंडियों पर भी उतर जाते और द्विजेन्द्रलाल और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों की बात चल पड़ती, और योरोपियन ड्रामा के संबंध में भी मेरे विचार तो निकल ही आते थे।

उस दिन के सिनेमा ने मुझे और आलोक को बहुत नज़दीक ला दिया। हम जब बिदा हुए तो बरसों पुराने मित्रों के समान। आलोक ने दूसरे दिन सवेरे ही आने का वादा ले लिया ; कहा—मकान फिर बदलते रहना, पहिले हमारे यहाँ आना। मैं जब कमरे में लौटा तो शरीर में एक नवीन आह्लाद भरा हुआ था, वह कमरा मुझे बड़ा प्रिय, निकटतम और स्नेहपूर्ण मालूम हो रहा था। मानो सब चीज़ें मेरा आलिंगन करने को उत्सुक हैं।

× × ×

कलकत्ते के मेरे परिवार में थोड़े दिनों में एक और व्यक्ति बढ़ा। वह था प्रभाकर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रयाग में वह मेरे साथ था। दो-तीन साल फेल होकर कहीं इस साल वहाँ से बी० ए० किया था और अब प्रेसीडेंसी कॉलेज में एम० ए० लिया था। विशाल डील-डौल था और यद्यपि उसके पुरखे महाराष्ट्र से कई पीढ़ियों पहिले सरककर कानपुर में बस गये थे, पर अब भी उसकी देह ख़ूब कठोर थी। शक्ति का तेज उसके चेहरे पर था, पर मेरी सदा ऐसी धारणा रही कि बुद्धिमत्ता का तेज कभी किसी ने उसके मुख पर नहीं देखा। मैंने तो सदा उसके चेहरे पर एक तरह की जहालत देखी। मैं जो उसे प्यार करता था, उसके पीछे मेरी एक कमज़ोरी थी। वह मेरी बेहद इज़्ज़त करता था, इम्तिहान में पास होना उसकी निगाह में एक असम्भव-सी बात थी, तब मैं हरएक इम्तिहान में फ़र्स्ट डिवीज़न लाता तो विधाता की शक्ति का प्रतीक दीखता होऊँ। अपने और उसके बीच इस बौद्धिक अन्तर के होते हुए भी मैंने उसे कभी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा।—मैं इसमें करता भी क्या, मेरा स्वभाव ही ऐसा बना है—इसका उस पर और भी प्रभाव पड़ा, मेरी बात को वह ब्रह्म-वाक्य मानता। कॉलेज समाप्त करके वह मेरे पास आ बैठता, चाय मेरे साथ पीता और जिस किसी दिन मैं टेनिस के लिए जाने में सुस्ती कर जाता, वह घूमने भी मेरे ही साथ जाता। मेरे कई विद्यार्थियों ने नोट किया कि मैं और प्रभाकर ट्राम और बसों में प्रायः साथ दिखाई देते हैं।

प्रभाकर नहीं होता, तो तीसरे पहर की चाय मुझे सूनी लगती। परन्तु चाय का मज़ा तब तो और भी बढ़ जाता, जब गर्ल्स कॉलेज से लौटते हुए आलोक भी उसमें शामिल हो जाती। उस दिन तो मेरा कॉलेज निश्चित ही जाता था। हम लोग राजनीति, समाज-शास्त्र, सेक्स सभी विषयों की ख़ूब खुलकर चर्चा करते। और तब निश्चित रूप से मैं आलोक को उसके घर तक छोड़ने जाता। प्रायः प्रभाकर भी हमारे साथ चलता। उधर ही से मैं प्रभाकर के साथ ठकुरिया-झील की ओर घूमने चल देता। इस हवाख़ोरी में भी कभी-कभी आलोक शामिल हो जाती। प्रायः हम दोनो ही होते। तब प्रभाकर को किसी बस में बिठाकर मैं अपने मकान की ओर लौट पड़ता, और ड्राइंग-रूम का एक लैम्प जलाकर सोफ़े पर पड़ रहता था। चेतना-शून्य हतप्रभ, उत्सुक।

आलोक प्रायः मेरी नज़रों में घूमा करती। कलकत्ते शहर में वैसी सीधी लड़की की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। कृत्रिमता से कितनी नफ़रत है उसे। कभी रङ्गीन साड़ी भी शायद ही पहनती हो। सफ़ेद धोती और चप्पल पहनकर अमीरज़ादियों के उस कॉलेज में पढ़ने जाती है, वहाँ का जीवन जैसे उसे छू भी नहीं गया हो। पर, यह आलोक इतनी दुबली-पतली क्यों है? इसके चेहरे और आँखों में भोलेपन की चमक तो है, पर इतना स्वास्थ्य का तेज नहीं। सोचता, बेचारी बे-मा-बाप की लड़की है; तब, ख़्याल होता निताई बाबू का इतना स्नेह और देख-रेख क्या यों ही ख़र्च होता है। मा-बाप क्या रख पाते इस प्यार से। अठारह वर्ष की इस लड़की के मन में क्या किसी प्रकार का संघर्ष नहीं है?

और तब नौकर आकर झकझोरता—बाबूजी, खाना ठंडा हो रहा है।

थाली पर बैठकर भी मैं यही सोचता—ऊपर से इतनी सरल दीखनेवाली लड़की को भी कोई वेदना है। उसके मन में भी कोई संघर्ष चल रहा है, और आज, जब उस समय के अपने विचारों पर दृष्टि डालता हूँ, तो बार-बार एक विचित्र बात के मन में उठने की सोचकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आश्चर्य होता है। और वह, जब से आलोक के संबंध में सोचता, प्रभाकर भी मेरी, मेरी मानसिक दृष्टि के क्षितिज में चुपचाप आ समाता। या तो इसलिए कि आलोक और प्रभाकर दोनो ही मेरे प्रिय हैं। या मेरे व्यक्तित्व को अलग हटाकर भी आलोक और प्रभाकर एक दूसरे के कुछ हैं? यह प्रश्न मेरे मन के शून्यत्व में बड़ी देर तक घूमा करता।

× × ×

तब घटनाओं का चक्र बड़ी तेज़ी से चला, और मुझे ऐसे आश्चर्य में डाल गया, जिससे मैं अभी भी निवृत्त नहीं हो पाया हूँ। कभी निवृत्त हो भी सकूँगा या नहीं, कौन जाने?

कई दिनों तक आलोक मेरे यहाँ नहीं आई, मैं भी अधिक व्यस्त रहने के कारण उसके घर नहीं जा सका। उस दिन शाम को प्रभाकर भी नहीं आया। मैं भी कॉलेज के काम में था, शायद किसी मानसिक अस्तव्यस्तता के कारण, बेचैन-सा था। चाय पीकर एक लंबा चक्कर लगाता हुआ ठकुरिया झील के किनारे जा पहुँचा। वहाँ भी बड़ी देर घूमने-फिरने से जब थककर चूर हो गया, तब एक लम्बे ताड़ के पेड़ के नीचे जाकर पड़ रहा। पास ही उतना ही ऊँचा एक दूसरा पेड़ था। आकाश की पृष्ठ-भूमि पर दोनो पेड़ बड़े प्यार से एक दूसरे का आलिंगन कर रहे थे, और उनके बीच में आधे से बड़ा चाँद झाँक रहा था। झील की लहरियों को चाँदनी अपनी अँगुलियों में भरकर उछाल रही थी। चारो ओर बिजली का प्रकाश जगमगा रहा था। जिसमें मनुष्य की अस्पष्ट आकृतियाँ दिखाई दे रही थीं। किनारे पर आइस-फ्रूटवाले अपनी पुकार लगा रहे थे।

मेरा मन एक विराट शून्य से भर गया, चारो ओर का दृश्य जगत मानो मिथ्या है, पानी के बुलबुले के समान न जाने कब मिट जायगा। न जाने इस विचार की सचाई क्यों मुझपर अधिकार जमाती गई, तब, मुझे अपनी ही स्थिति से डर भी लगने लगा। क्योंकि वहाँ मेरे अतिरिक्त तो कुछ था ही नहीं—सब धोखा, माया, छल था। मैंने कल्पना की, मैं न जाने किन दैत्यों के लोक में हूँ, और कौन-कौन-सी आकृतियाँ मुझे खाने को चली आ रही हैं, कोई शक्ति ऐसी है, जिसने मुझे उन दो झाड़ों के झुरमुट में छिपा रखा है, और उन आकृतियों को सीधा बढ़े जाने का आदेश दे रही है। उन आकृतियों में जो प्रायः झुंड में से कभी-कभी अकेली भी मेरे नज़दीक से निकल जा रही थी, मैंने एक बार चौंककर देखा, मानो आलोक भी है। वही आलोक, पर कुछ और दुबली, चेहरा मुरझाया हुआ, बाल कुछ बिखरे। तेज़ी से चली जा रही है। मेरी ओर मानो आँखें फाड़-फाड़ककर देखती गई, पर मुझे पहिचाना नहीं। मैंने सोचा कि आवाज़ दूँ। 'आलोक' मेरी आलोक मेरे पास से यों निकल जाये, और मैं पुकारूँ नहीं, उसे रोकू नहीं, पर न जाने क्यों मैं पुकार नहीं सका। पुकारता किसे? वहाँ मेरे चारो ओर मिथ्या का जो लोक फैला हुआ था, वह किसी क्षण मिट जाता!

पर वह मिटा नहीं, मैं जब उठा तो सिर में दर्द अवश्य हो गया था। और एक बार चक्कर खाकर गिरते-गिरते बचा भी। पर जब टाँगों पर खड़ा हो गया, तब सारा संसार अपने आप ही वैसे का वैसा मानो अपनी पुरानी स्थिति में लौट आया, और तारों को अपनी गोद में लिये वह झील, बिजली के खंभे और चलते हुए मनुष्य सब एक साथ सत्य हो उठे।

बड़े खिन्न मन से मैं लौटा, और केवल एक कप दूध का पीकर अपने बिस्तरे पर पड़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहा। संसार एक बार फिर मिथ्या और सत्य के बीच झकझोरे लेने लगा, और मैं चेतना-शून्य-सा पड़ा रहा। पता नहीं मैं सोया कि नहीं, पर बीच-बीच में चौंक पड़ता था।

कोई डेढ़ या दो बजे मैंने देखा कि चाँद कुछ पीला होकर डूबने की तैयारी कर रहा है। सामने, एक दीवार के पीछे मैंने उसे छिप जाते देखा। तब फिर मैं आँख मीचकर लेट गया, और संभव है झपकी भी लग गई हो।

मैंने स्वप्न-सा देखा कि मेरी मच्छरदानी का पर्दा हटाकर, आलोक मेरे सिरहाने आ बैठी है। कुछ देर में मेरे माथे पर उसने अपनी ठंडी उँगलियाँ रख दीं, और उन्हें फेरना शुरू किया। मैंने चौंककर करवट बदली, सचमुच आलोक थी, और उसकी लम्बी-लम्बी पतली अँगुलियाँ। मैंने उन्हें अपने हाथ में ले लिया, और अनायास ही मैंने कहा—बड़े ठंडे हाथ हैं तुम्हारे।

धीरे-धीरे मेरी चेतना लौट रही थी, और घटना का वैचित्र्य मेरी नसों में ठंडे-ठंडे घुसता जा रहा था।

मैंने कहा—आलो, इस समय तुम यहाँ! कैसे?

आलोक ने मुस्कराने की चेष्टा की—क्यों मेरे आने के लिए क्या तुमने समय निश्चित कर रखा है। इस समय आने की मनाई है क्या?

मैंने कहा—यह बात नहीं है। मैंने उसका दूसरा हाथ टटोलने की कोशिश की, पर वह कोट की जेब में था, उसने निकाला नहीं, इस हाथ को और भी ढीला कर दिया कि मैं उससे मनमानी स्वतन्त्रता ले लूँ। मैं भी लेटा रहा, उठा नहीं। मैं उसे ही अपने दोनो हाथों से दबाये रहा।

मैंने कहा—यह बात नहीं है, आलोक, पर अब तो रात के दो बजे हैं। निताई बाबू ने तुम्हें अकेला चले आने दिया?

वह बोली—मैं कोई बच्ची तो हूँ नहीं, जो खो जाऊँगी। तुम अपने लिए तो सब तरह की सुविधाएँ ले लेते हो, पर लड़कियों को अगर थोड़ा घर से निकलना पड़े तो मा-बाप से पूछने की आवश्यकता है। तब कुछ रुक कर—सच बात तो यह है, मैंने किसी से पूछा नहीं। घर पर सब सो रहे थे। बाहर देखा बड़ी मधुर चाँदनी फैली हुई है, चली आई। तुम्हारे यहाँ कुछ देर ठहरने में हर्ज हो तो चली जाऊँ।

मैंने कहा—नहीं, अब आई हो तो जाओ क्यों? लेकिन थोड़ा-सा आराम से बैठो। ओस का समय हो चला है। ज़रा ओढ़ लो। मैं अपनी चादर उसके ऊपर डालने लगा।

आलोक हँसी, बोली—अच्छा तुम्हारी मर्ज़ी है तो यही सही। उसने अपने कोट को उतारकर बड़ी अहतियात से पलंग के पाये पर टाँग दिया। और दोनो टाँगें फैलाकर मेरी चादर में आ घुसी। कहने लगी—अब तो खुश हो?

मुझे खुशी या मन के किसी भी वेग से अधिक आश्चर्य हो रहा था। आलोक की टाँगें मेरी टाँगों का स्पर्श कर रही थीं। अपने दोनो हाथ उसकी कमर के चारो तरफ़ डालकर मैं वैसे ही लेटा रहा। वह वैसे ही बैठी रही। और तब हम लोगों की बातें शुरू हुईं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसने मेरे गालों पर अपनी ठंडी अँगुलियाँ फेरते हुए पूछा—प्रोफेसर, तुम मौत से डरते हो ? प्रोफेसर—यह आलोक के मुँह से नया संबोधन था।

मैंने कहा—मौत से डरने का मैं तो कोई कारण नहीं समझता, जीवन को यदि कोई व्यक्ति ठीक-ठीक समझता हो, तो उसे मृत्यु का तो भय रह ही नहीं जाता।

'पर जीवन को समझना क्या तुम तुमने आसान समझा है। जीवन की कठिनताएँ जीवन का वैषम्य···

'और तुमने कभी सोचा है कि हम आज एक संक्रांति-काल में जी रहे हैं। जब जीवन की सारी Values क्षण-क्षण में रूप बदलती जा रही हैं···

'और जो जीवन देने से नहीं डरता हो, वह जीवन लेने में भी क्यों झिझके? प्रोफेसर, मैं तुम्हारी अहिंसा की फ़िलासफी महीनों से सुन रही हूँ। परन्तु इसमें मेरा कभी विश्वास नहीं हुआ, मैं मान नहीं सकती कि अहिंसा के पीछे कायरता नहीं है। मैं तो उसे कायरता की दूसरी दिशा मानती हूँ। दूसरों का ख़ून बहते देखकर जिसका दिल काँपता हो, वही अहिंसा की बात चलाता है, और फिर इसका क्या प्रमाण है कि अपना ख़ून बहते देखकर भी वह वैसा ही न काँपे, अभी तक इसकी परीक्षा तो हुई नहीं है। नहीं, नहीं, मैं नहीं मानती कि साधारण पापियों के इस जगत में अहिंसा कभी सामूहिक अस्त्र बन सकेगा। एक ईसा, एक गांधी इसका भले ही पालन कर लें···'

'जीवन, मृत्यु, संक्रान्ति-काल, अहिंसा और उस सब पर प्रोफेसर—आलोक को यह हुआ क्या! मैंने कहा—संभव है, तुम ठीक हो, पर इस समय रात के दो बजे तो यह सब बहस करने की बात नहीं है।

आलोक इस बार कुछ क्षुब्ध-सी हो उठी—है क्यों नहीं ? तुम तो रात के दो बजे भी वही, सिद्धान्तों के पीछे पड़े रहनेवाले, प्रोफेसर ही रहोगे, व्यवहारिक जगत् में तो हमें इन सब प्रश्नों से प्रत्येक क्षण उलझते रहना पड़ता है।...

मैंने कहा—आलोक, तुम तो जानती हो, मैं अहिंसा में पूरा विश्वास करता हूँ, मैं उसे किसी राजनैतिक क्रान्ति का साधन-मात्र नहीं, पर जीवन का एक दृष्टि-कोण मानता हूँ। अहिंसा में कृत्य तो गौण, भावना ही असली वस्तु है, डर के मारे हम यदि अपने ऊपर लाठियों की वर्षा करने देते हैं, तो उसमें अहिंसा कहाँ हुई ? अहिंसा और भय की मनोवृत्ति तो साथ-साथ चल ही नहीं सकती। मैं जैसे दर्द से तड़पते हुए कुत्ते को 'शूट' कर सकता हूँ, वैसे ही यदि मुझे मनुष्य की मृत्यु का विश्वास हो जाय तो उसे भी 'शूट' कर दूँगा। उसमें अहिंसा नहीं होगी। पर अपने दुश्मन को मारने के लिए हथियारों की शरण क्यों लूँ ? क्या उससे मेरे मनुष्यत्व के गौरव को ठेस नहीं लगेगी ?

अपने इस लम्बे व्याख्यान की चोट जब मुझ पर ही fell करने लगीं, तब मैंने अचानक रुककर आलोक की ओर देखा, मैंने देखा उसने आँखें मीच ली हैं, मानो गहरी नींद में सो रही हो। मैं बड़ी देर तक उसके विषाद-युक्त चेहरे की ओर देखता रहा। उसका कन्धा मेरे कन्धे से छू रहा था, उसके शरीर का मेरे शरीर से स्पर्श हो रहा था, मैंने देखा चन्द्रमा अचानक अहाते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की दूर की दीवार के पार जा छुपा था, सम्भव है बिलकुल डूब गया हो, चन्द्रमा के न होने पर भी आकाश का सौन्दर्य कम नहीं होता, सम्भव है और भी गहरा हो जाता हो। आकाश के गहरे वातावरण में तारे और भी निखर उठते हैं। उस समय समस्त आकाश में सूनेपन की भावना अचानक और भी निस्सीम हो जाती है। मेरा हृदय भी उस समय कुछ ऐसे ही सूनेपन को लिये हुए था।

मेरी दोनो बाहें न जाने कैसे आलोक के शरीर से खिलवाड़ कर रही थीं, धीरे-धीरे मैंने उसे उनमें जकड़ लिया। आलोक ने आँखें खोल दीं, पर उस पाश से छूटने की कोई चेष्टा नहीं की।

तब हमारी बातचीत साधारण बातों पर आ गई।

मैंने कहा—आलोक, तुमने कभी यह सोचा है कि तुम्हारा घर इन ढेर के ढेर तारो में से किसी एक में होता ?

'अच्छा, यदि तुम एक छोटी-सी चिड़िया होतीं और तुम्हारे दो छोटे-छोटे पंख होते, तो तुम कितनी आसानी से एक तारे से दूसरे तारे पर जा पातीं ?

'आज तो बड़ी तैयारी करके निकली थी, आलोक। अच्छा बताओ, यह गरम जरसी क्यों पहन रखी है ? कितने ढेर के ढेर बटन लगा रखे हैं तुमने इसमें।

'तुमने वह साड़ी नहीं पहनी बहुत दिनों से, जिसमें कंगूरेदार काला चौड़ा बार्डर है ?'

और मेरे हाथ का खिलौना बनी हुई आलोक सभी प्रश्नों का कुछ न कुछ उत्तर देती गई।

मेरे हृदय में न जाने स्नेह का कैसा महासागर-सा लहरा उठा था उस समय। प्रकृति के उस महान् शून्यत्व में मेरी चिर-वियोगिनी आत्मा को युग-युग का साथी मिल गया हो। मेरे और आलोक के बीच के शरीर और आत्मा के सारे बंधन जैसे टूट गये हों, और हमारे प्राण एक-दूसरे में घुलमिल गये हों। मानो कोई बाधा नहीं, कोई रोक-टोक नहीं, कोई अन्तर नहीं।

आलोक मेरी बाहों में जकड़ी हुई थी। मैंने कहा—आलोक, तुम मुझसे शादी कर लो।

उसका चेहरा चमक-सा उठा। बोली—आप शादी में विश्वास करते हैं ? आलोक एक शब्द भी अधिक नहीं बोली, पर उस समय के उसके मुख पर का भाव अब भी मेरी आत्मा पर अंकित है। जैसे इस भाव की सचाई में उसका गहरा अविश्वास है। पर मेरे मुख से उसे सुनकर वह विश्वास करने पर तैयार हुई है। एक आश्चर्य भरा था उन चमकती हुई आँखों में। यह जग जैसे मिथ्या है, नारी का अपना कहीं कोई, कुछ है ही नहीं। उसका तिरस्कार ही होता आया है। पुरुष ने सदा उसकी अवहेलना की है अब कहीं, कोई पुरुष सन्तोष दिलाने की कोई एक बात कहे, तो यह, चिर-प्रवंचित नारी, उसका विश्वास कैसे करे! और, जब पुरुष कह रहा है, वह व्यक्ति जो उसकी आत्मा के साथ गुँथा-मिला है, तो न भी कैसे करे। मुझे सूझा, कि आज जो नारी इतनी कार्यशील है, उसके भीतर उसकी यही बेचैनी भरी हुई है। उसकी कार्यशीलता आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं, अपने को भुलाने का साधन है।...ये कमेटियाँ, आन्दोलन, और Parade विश्व के देश-देश में नारी की समस्या अन्तर-मूल में केवल एक ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूप का अन्तर है।...और साथ ही पुरुष की गोद में आश्रय, यही उसकी चिरन्तन खोज है। पर जैसे युगों से पुरुष इस मधुर तथ्य को भुलाकर उसके तिरस्कार में ही अपना पुरुषत्व समझ बैठा हो। वह पुरुष की गोद में ही, उसके प्यार की छाया में, दुलार के नीचे ही, आश्रय चाहती है, उसके पैसे में नहीं— और जब यह उसे मिल रहा हो, तब कृतज्ञता से विभोर हो उठे, आत्मा की तरलाई उसकी आँखों में झलक उठे। मैंने ग़ौर से देखा आलोक की आँखें गीली थीं, और उस तारे-भरे आकाश के प्रतिबिंब को लेकर चमक रही थीं।...एकाएक जैसे उसने अपने ओठों को ज़ोर से भींच लिया हो, भावावेश में मेरे गालों को उसने कई बार चूम डाला, और बोली—अब मैं जाऊँगी। उठ खड़ी हुई, और चल दी। मैं बड़ी देर तक फाटक की ओर देखता रहा, जब तक उसका छायाचित्र मेरी आँखों से ओझल न हो गया, और उसके बाद तक भी।

× × ×

सवेरे मैं देर से उठा, थका हुआ, परेशान-सा। रात की बातें एक सपने के समान मेरी आँखों के सामने घूम रही थीं। रात को दो बजे आलोक मेरे पास आकर बड़ी देर तक उस ढंग से बातें करती रही, इसकी विचित्रता दिन के प्रकाश में मुझ पर अधिक जागृत होती गई, पर मन इतना सुस्थिर भी नहीं था कि मैं उसके संबंध में एकाग्रता से कुछ सोचता। बर्फ़ के हलके झोंके के समान विचार मन के आकाश में उड़ रहे थे, उन्हें इकट्ठे कर लेने की मेरी कोई चेष्टा नहीं थी।

इसी अस्त-व्यस्तता में मैं अपनी मेज़ पर आकर बैठ गया। सामने शेविंग का सामान रख लिया, और शीशे में अपनी हैरत-भरी सूरत देख-देखकर उसी अव्यवस्थित मन से कुछ अचरज की भावनाओं में मैं डूबा-सा था, तभी अख़बार वाले ने आकर 'पत्रिका' मेरे हाथ में रख दी, और अनमने मन से मैं उसे खोलूँ-खोलूँ कि बीच के पृष्ठ पर एक छोटी हैंडलाइन ने मेरे ध्यान को आकर्षित किया—एक बंगाली कॉलेज की छात्रा गिरफ़्तार। और उसके नीचे मैंने पढ़ा कि सवेरे चार बजे ठकुरिया झील पर एक बंगाली छात्रा जो पुलिस के सुपरिन्टेन्डेण्ट का उनके मकान पर ख़ून करके आई थी, गिरफ़्तार की गई है। जान पड़ता है वह कॉलेज की छात्रा है, पर नाम बताने से अभी तक उसने साफ़ इन्कार ही किया है।

मेरी मस्तिष्क की नाड़ियों पर मानो एक धमाका-सा लगा, और मैं एक साथ ही शरीर और मन दोनों से फुर्तीला हो उठा, गालों पर ब्रश से सोप को खूब फैलाना शुरू कर दिया, और मन में सोचता जा रहा था—इन लड़कियों को हिंसा से कोई प्रेम नहीं है, न देश की आज़ादी की ही इतनी लगन है कि वे अपने जीवन को ख़तरे में डालें। देश के लिए जान आज तक किसने दी है? यह तो मन बहलाने का बहाना है। जो मरता है अपने ही लिए मरता है, जो जीता है, अपने ही लिए। आज जो स्त्रियाँ इतनी कार्यशील बन रही हैं, यह तो केवल एक प्रतिक्रिया है। वे जीना चाहती हैं। पुरुष आज गिर गया है। उसमें मा-पत्नी के लिए प्यार, बहन के लिए स्नेह, यह सभी अब नहीं रहा है। स्त्रियों के उचित स्थान ख़ाली हैं, इसीलिए वह दौड़कर पुरुषों के स्थान को भरना चाहती है। अब पुरुष जागे, और उनका स्नेह, उनकी ममता, उनका प्यार उन्हें देने की क्षमता अपने में पैदा करे, फिर देखो स्त्रियाँ उनके लिए कैसी स्फूर्ति का साधन बनती हैं। प्रेरणा खोजना है तो पुरुष ही खोजेगा: तभी स्त्री उसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दे सकेगी...

और मैं हजामत बनाकर ख़तम करूँ कि मैंने देखा—प्रभाकर बाल बिखेरे हुए, अजीब हालत में भागा चला आ रहा है। मेरे सामने आकर वह धम से कुर्सी पर बैठ गया, और एक मिनट ठहरकर बोला—आलोक गिरफ़्तार हो गई है, मैंने अभी अख़बार में पढ़ा, उसका नाम नहीं है, पर है वही। वह कल शाम को मुझसे मेरा रिवाल्वर माँगकर ले गई थी। मैं नहीं समझता उसने यह हत्या क्यों की। देश को वह आज़ाद जरूर देखना चाहती थी, पर उसके विचार की धारा में राजनीति कभी प्रमुख चीज़ नहीं रही। व्यक्तिगत द्वेष भी उसे कैसे हो सकता था। और फिर आलोक जैसी लड़की किसी से द्वेष रखे, इसकी कोई कैसे कल्पना कर सकता है?

और जब प्रभाकर ने देखा, मैं निश्चल, चुपचाप, गुमसुम उसकी बातें सुन रहा हूँ, मुझमें सहानुभूति का एक शब्द नहीं, वह फूट-सा पड़ा : बोला—तुम जानते नहीं, मैं उसे कितना प्यार करता हूँ।

मुझे प्रभाकर की व्यथा दीखी—प्रभाकर और आलोक उस समय दोनो ही मेरे सामने छाया के समान असत्य थे।—एक छाया दूसरी छाया को प्यार करती है! संभव है दूसरी छाया के हृदय में भी इस प्यार का असर हो। कैसा कठपुतलियों का-सा तमाशा है! जिस व्यक्ति को हम प्यार नहीं करते हैं, उसे रोक सकने का हमें अधिकार नहीं, उसके विचारों में क्या द्वन्द्व चल रहा है, उसे हम समझ नहीं सकते, और फिर भी हम उसे प्यार करते हैं, पागल प्रभाकर—और कोई इससे कहे कि मेरे दिल में उस लड़की के लिए कितना प्यार है। मैं चुपचाप बैठा प्रभाकर की बातें सुन रहा हूँ, इसी से क्या आलोक को प्यार नहीं करता?

नौकर ने लाकर डाक दी। मैंने कहा—देखता नहीं है, प्रभाकर बाबू आये हैं। चाय बनाकर ला।

प्रभाकर चुपचाप बैठा था। मैं डाक देख रहा था। तीन चिट्ठियाँ आई थीं। तीनो में विवाह के प्रस्ताव थे। एक ज़मींदार की लड़की है, कई लाख की जमींदारी है, उम्र १७-१८ साल, रंग साँवला, नक्शा सुन्दर, घर पर ही पढ़ी है, घर के काम-काज में कुशल है। दूसरी एक बेरिस्टर की लड़की है, युक्तप्रांत के एक नगर में बी० ए० में पढ़ रही है। स्वास्थ्य अधिक अच्छा नहीं है, पर संगीत और चित्रकला दोनो में उस नगर में उसकी बराबरी करनेवाली कोई दूसरी लड़की नहीं है। मैं विवाह की स्वकृति दे दूँ तो बी० ए० की परीक्षाएँ तो हो ही रही हैं, उनके समाप्त होते ही उसे शान्ति-निकेतन भेजने को वह तैयार हैं। तीसरा पत्र एक राजनैतिक नेता का था, उनकी लड़की की कविता और चित्र दोनो अमुक पत्र में छप चुके हैं। साहित्यक ख़ूब है जो थोड़ी-सी सहायता से विकास पा सकती है। तीनो में से प्रत्येक ने लिखा था कि उसकी कन्या मेरे बिल्कुल उपयुक्त है, और अगर मुझे कोई आपत्ति न हो, तो आगामी पूजा की छुट्टियों में वह विवाह की व्यवस्था करने को तैयार हैं।

मैंने शीशे में देखा—आलोक के शब्द और उस समय की भाव-भंगी मेरी आँखों के सामने घूम रही थी : 'आप शादी में विश्वास करते हैं?' मैंने प्रभाकर की ओर देखा। वह चुपचाप प्याली की चाय समाप्त करने में लगा हुआ था, मेरे सामने की चाय ठंडी हो रही थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह जीवन भी कैसा नियमित, साधारण रूप से चलता रहता है। आलोक गिरफ्तार हो गई है, और इधर प्रभाकर चाय समाप्त करने में जुटा है, मेरी चाय ठंडी हो रही है, और पूजा की छुट्टियों में इन तीनो लड़कियों में से किसी से संभव है, मेरी शादी भी हो जाय; पर एक बात निश्चित है कि आलोक के चले जाने से, मेरी आत्मा में शून्यता का जो भाव इन ऊपर से साधारण दीखनेवाले क्षणों में जमता चला गया है, वह कभी नहीं मिट सकेगा।

इन्दौर।

●

कोई नो लाडकवायो

[झवेरचन्द मेघाणी]

[अनुवादक, शंकरदेव विद्यालंकार]

[श्रीयुत झवेरचन्द कालिदास मेघाणी गुर्जर-भाषा के प्रथम कोटि के कवि और पत्रकार हैं। गुजराती भाषा के लोकसाहित्य (Folk literature) का आपने गहरा अध्ययन किया है। इनकी काव्य-रचना अतिशय तलस्पर्शी होती है। इनकी अधिकतम कविताएँ राष्ट्रप्रेम के रंग में रँगी हुई होती हैं, इसी कारण गुर्जर-प्रजा इन्हें 'राष्ट्रीय कवि' के नाम से संबोधित करती है। 'किसी का दुलारा' कविता आज सौराष्ट्रदेश और गुजरात के घर-घर में गाई जाती है। इनके करुण स्वरों को समस्त गुजराती प्रजा ने हृदय में बसा लिया है। ग्रामोफोन के रिकॉर्ड पर भी यह गेय कविता अपना चिरस्थायी प्रभाव अंकित कर चुकी है। गुजरात के घर-घर में गूँजनेवाली इस काव्यिक पदावली का हिन्दी भाषान्तर 'हंस' के सहृदय वाचकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। श्री मेघाणी संप्रति 'फूलछाप' साप्ताहिक के सम्पादक हैं। —सं]

१ रक्त टपकती सौ सौ झोली समरांगण थी आवे।
केसरवर्णी समरसेविका कोमल सेज बिछावे।
घायल मरता-मरता रे, मातनी आजादी गावे॥

२ कोनी वनिता, कोनी माता, भगिनी टोले वलती।
शोणित भीना पतिसुत वीर नी रणशैय्या पर ललती।
मुखथी क्षमा-क्षमा करती, माथे कर मीठो धरती॥

१. रक्त टपकती डोलियाँ समरांगण से आ रही हैं। केसरिया वेश में सजी हुई समर-सेविकाएँ सेज बिछा रही हैं। घायल सैनिक मरते-मरते माता की स्वाधीनता के गीत गा रहे हैं।

२. किसी की पत्नी, किसी की मा और बहनें बाँध-बाँधकर आ रही हैं और शोणित-भीगे पुत्र और भाई की रणशय्या पर झुक रही हैं। मुख से 'जीयो-जीयो' उच्चारती हुई, मस्तक पर मीठा भरा कोमल हाथ रख रही हैं।

[क्षमा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३ थोके-थोक लोक उमटता रणयोद्धा जोवाने।
शाबाशी ना शब्द बोलता प्रत्येक नी पिछाने।
निज गौरव केरे गाने, जख्मी जन जागे अभिमाने ॥

३. योद्धाओं के दर्शन करने झुण्ड के झुण्ड लोग उमड़ रहे हैं। प्रत्येक वीर को देखकर वे धन्य-धन्य और जय-जयकार कर रहे हैं। घायल वीर जन अपना गौरव-गान सुनकर स्वाभिमान से भर जाते हैं।

४ सहु सैनिक नां वहालां जननो मलियो ज्यां सुखमेलो।
छेवाडे ने एकलवायो अबोल एक सुतेलो।
अणपूछ्यो, अणपीछेलो, कोईनो अजान लाडिलो ॥

४. सब सैनिकों के प्रियजनों की मण्डली जहाँ पर जुटी हुई है, वहाँ सबसे पीछे, किसी का अज्ञात दुलारा, एकाकी, मूक और अपरिचित एक वीर सो रहा है!

५ एनु शिर खोलामां लेवा कोई जनेता ना आवी।
एने सींचण तेल-कचोलां नव कोई बहेनी लावी।
कोई ना लाडकवायानी, न कोई ए खबरे पूछावी ॥

५. इस वीर पुत्र का सिर गोदी में उठाने के लिए न तो कोई मा आई! उसकी आरती उतारने न कोई बहिन ही आई। किसी के उस लाड़ले की किसी ने कोई खबर नहीं पूछी!

६ भाले एने बचीयो भरती लटो सुंवाली सूनी।
सन्मुख झील्या घावो महीं थी टपटप थाती चूती।
कोई ना लाडकवायानी, आँखडी अमृत नीतरती ॥

६. इसके भाल पर चुम्मियाँ लेती हुई कोमल लटें सो रही हैं। सामने से आये हुए प्रहारों के घावों के कारण इसकी छाती में से टप-टपकर रक्त चू रहा है! किसी के दुलारे की आँखों से अमृत झर रहा है।

७ कोईना ए लाडकवायानी लोचनलोल बीडायां।
आखरनी स्मृतिनां बे आँसू कपोल पर ठहेरायां।
आतम दीपक ओलाया, ओष्ठनां गुलाब करमायां ॥

७. किसी के इस लाड़ले के सुन्दर लोचन मुँदे पड़े हैं। अन्तिम क्षण की स्मृति में दो आँसू कपोल पर ढले हुए हैं। उसका आत्म-दीप बुझा हुआ है। ओठों की गुलाबी मुरझा गई है।

८ कोई ना ए लाडकडा पासे हलवे पग संचरजो।
हलवे एना हैया उपर कर-जोडामण करजो।
पासे धूपसली धरजो, कानमां प्रभुपद उच्चरजो ॥

८. गम्भीर नींद में सोये किसी के इस दुलारे के पास हलके कदमों से जाना। धीमे से इसके हृदय पर बद्धाञ्जलि होकर बंदन करना! समीप अगरबत्ती रखना और कान में प्रभु का नाम कहना।

९ बिखरेली ए लाडकडानी समार जो लट धीरे!
अने ओष्ठ कपोले भाले धरजो चुम्बन धीरे!
सहु माता ने भगिनी रे, गोद लेजो धीरे धीरे!

९. इस दुलारे की बिखरी हुई लटें धीमे से सँवारना। इसके ओष्ठ पर, कपोल पर और भाल पर धीमे से चुम्बन करना! सब माताओ और बहनो, इसके मस्तक को धीरे से गोद में उठाना।

१० वांकडियां ए जुल्फांनी मगरूब हशे को माता!
ए गाले सुधा पीनारा होठ हशे बे राता!
रे, तम चुम्बन चोडांतां, पामशे लाडकडो शाता !!

१०. इसके घुँघराले केशकलाप पर अभिमान करनेवाली न जाने कौन-सी माता होगी? इन गालों की सुधा पीनेवाले न जाने कौन-से दो लाल ओष्ठ होंगे? माताओ और बहनो, तुम्हारे चुम्बन से यह दुलारा शान्ति पायेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

११ ए लाडकडानी प्रतिमानां छाना पूजन करती !
एनी रक्षा काज अहनिर्श प्रभुने पाये पड़ती !
उरने एकानो रडती, विजोगण हशे दिनो गणती !!

१२ कंकावटीए आंसू घोली छेल्लु तिलक करंता !
एने कंठे वींटाया होशे कर वे कंकणवंता !
वसमां वलामणां देता, बाथ भीड़ी बे पल लेता !!

१३ ऐनी कूच-कदम जोती अभिमान भरी मलकाती !
जोती एनी रुधिर छलकती गज-गज पहोली छाती !
अधबीड्याँ बारणियां थी, रडी को हशे आंख राती !!

१४ एवी कोई प्रियानो प्रीतम आज चिता पर पोढे !
एकलडो ने अणबूझेलो, अगन पिछोडी ओढे !
कोई ना लाडकवाया ने, चूमे पावक ज्वाला मोढ़े !!

१५ एनी भस्माङ्कित भूमि पर चणजो आरस खांभी !
ए पत्थर पर कोतरशो नव कोई कविता लांबी !
लखजो—'खाक पड़ी आंहीं, कोई ना लाड़कवायानी !!'

कम्पाला, ब्रिटिश ईस्ट अफ्रिका ।

११. इस लाड़ले की प्रतिमा को शान्त भाव से पू
और इसकी रक्षा के लिए अहर्निश प्रभु के
में झुकनेवाली कोई वियोगिनी एकान्त में
दिन गिन रही होगी !!

१२. कुंकुमपात्र में आँसू घोलकर अन्तिम तिलक
वाले कंकणवाले दो हाथ उसके कण्ठ में
होंगे ! उन हाथों ने विषादभरी विदाई देते
पल के लिए आलिङ्गन किया होगा ।

१३. इसके प्रयाण को निहारकर अभिमान से
हुई, और रुधिरावेग से छलकती इसकी
ऊँची छाती देखकर, अर्ध-निमीलित द्वार से
आँखें रोकर लाल हुई होंगी ।

१४. ऐसी किसी प्रिया का प्रियतम आज चिता
रहा है ! अकेला और अनजान वह अग्नि को
ओढ़ रहा है । किसी के दुलारे के मुख
अग्नि-ज्वाला चूम रही है ।

१५. इसकी भस्माङ्कित भूमि पर संगमरमर की एक
बनाना ! उस पत्थर पर कोई लम्बी कविता
लिखना ! केवल इतना ही लिखना—
लाड़ले की यहाँ भस्म पड़ी है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निरुपमा देवी

[नन्दगोपाल सेन-गुप्त]
[अनुवादक, रामचन्द्र वर्मा]

श्रीमती निरुपमा देवी ने एक सम्पन्न ब्राह्मण-परिवार में जन्म लिया था। उनके बड़े भाई अध्यापक विभूतिभूषण भट्ट बँगला साहित्य के पाठकों के लिए अपरिचित नहीं हैं। बाल्यावस्था में श्रीमती निरुपमा देवी का पालन-पोषण भागलपुर में हुआ था। वहीं साहित्याचार्य स्व० शरच्चन्द्र चटर्जी के साथ उनका परिचय हुआ था। शरच्चन्द्र के उत्साह, प्रेरणा और परिचालन के फल-स्वरूप ही ये साहित्य-सेवा के काम में लगी थीं। वहाँ इन लोगों की एक साहित्य-सभा थी और एक हस्त-लिखित पत्रिका भी निकला करती थी। शरच्चन्द्र उस सभा के प्रधान संचालक और उस पत्रिका के मुख्य लेखक थे। श्रीमती निरुपमा देवी भी इस काम में उनकी बहुत अधिक सहायता करती थीं।

आरम्भिक अवस्था में श्रीमती निरुपमा देवी जो कहानियाँ और कविताएँ लिखा करती थीं, उनका शरच्चन्द्र संशोधन कर दिया करते थे। और साथ ही वे इन्हें नये भावों और आदर्शों का प्रवर्त्तन करने का भी उपदेश देते थे। इस प्रकार इन दोनो में जिस पवित्र आत्मीयता की सृष्टि हुई थी, उसका बन्धन परवर्ती जीवन में कुछ शिथिल हो गया था। लेकिन फिर भी शरच्चन्द्र का उन पर जो प्रभाव पड़ा था, वह मानो उनमें सदा के लिए स्थायी हो गया था।

श्रीमती अनुरूपा देवी इनकी बाल्यावस्था की सखी हैं। किसी समय ये दोनो होड़ लगाकर साहित्य-सृष्टि करती थीं। किन्तु इन दोनो की रचना-प्रणालियों में एक सूक्ष्म पार्थक्य भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। श्रीमती अनुरूपा देवी बहुत बड़ी पंडित हैं। उनके साहित्य की भित्ति उनके पांडित्य और आदर्श पर है। श्रीमती निरुपमा देवी शरच्चन्द्र की बान्धवी और शिष्या हैं और इसीलिए उनके साहित्य का आधार है मानसिक वेदना। बंगालियों की प्रकृति और बंगालियों की गृहस्थी उन्होंने बहुत ही ममता-पूर्वक देखी है; और इससे उन्हें जो कुछ अभिज्ञता प्राप्त हुई है, उसी के आधार पर उनकी कहानियों की रचना हुई है। इसीलिए उनके साहित्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में बंगाल के अन्तःकरण की बातें स्पष्ट और शुद्ध रूप में प्रकाशित हुई हैं। अनुरूपा देवी के साहित्य में ये सब बातें नहीं आ सकी हैं।

छोटी अवस्था में ही निरुपमा देवी का विवाह हो गया था। किन्तु उनका विवाहित जीवन अधिक दिनों तक न रह सका। थोड़े ही दिनों बाद वे विधवा हो गई थीं। तब से वे अपना सारा जीवन केवल साहित्य सेवा में ही व्यतीत करती हैं। अब वे वृद्धा हो गई हैं और बहरामपुर में अपने बड़े भाई के यहाँ रहती हैं। निष्ठावती हिन्दू विधवा का सौम्य आदर्श मानो उनमें मूर्त्तिमान होकर प्रकट हुआ है।

'दीदी', 'अन्नपूर्णार मन्दिर', 'उच्छृङ्खल' आदि उनकी सबसे अच्छी रचनाएँ हैं। 'अन्नपूर्णारमन्दिर' की रचना-प्रणाली देखकर बहुत-से लोग अनुमान करते हैं कि इस उपन्यास में शायद शरच्चन्द्र का भी कुछ हाथ है। चाहे वास्तव में इसकी रचना में उनका पूरा-पूरा हाथ न रहा हो, पर फिर भी यह समझने में किसी को अधिक विलम्ब नहीं होता कि इन उपन्यासों पर शरच्चन्द्र का यथेष्ट प्रभाव है।

श्रीमती निरुपमा देवी समाज के सामने खड़ी होकर जीवन की छोटी और बड़ी सभी बातों के साथ मिलकर नहीं चलतीं। एकान्त में, निःशब्द साधना में, सबकी दृष्टियों से दूर रहकर उनका महत् जीवन दिन पर दिन आगे बढ़ता रहा है। उनके साहित्य ने देश के मर्म-स्थान तक प्रवेश किया है। किन्तु उनके व्यक्तिगत जीवन के साथ बहुत ही थोड़े लोगों का परिचय हो सका है।

आज-कल इनकी साहित्य-सेवा कुछ कम होती जा रही है। गत वर्ष शरच्चन्द्र की मृत्यु होने पर इन्होंने अपने परलोकवासी बन्धु और साहित्य-गुरु को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जो निबन्ध लिखा था, उसमें उन्होंने स्वयं अपने जीवन का भी कुछ विवरण दिया है।

कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc No. 3616

विज्ञान की आग

[चन्द्रभाई भट्ट]
[अनु०, नरदेव विद्यालंकार]

[श्री चन्द्रभाई भट्ट समाजवादी हैं। इनकी शैली और लिखने का ढंग प्रभावशाली है। हिन्दी में इस तरह की कहानियों का नितान्त अभाव है। पाठक इसे पढ़ें और अपने मत प्रकट करें। —सं०]

इटली देश; रस्कनी प्रान्त का पीसा नगर। उस नगर में बड़ी—आठ मंज़िल की, एक सौ अस्सी फुट ऊँची, तेरह फुट मोटी दीवाल से बनी हुई, सोलह फुट झुकी हुई एक विचित्र-सी मीनार खड़ी थी। देख-देखकर गरदन दुख न जाय, तब तक विस्मय में पड़ा हुआ व्यक्ति उसको देखता रहता था।

'वह आ रही है'—दर्शकों में से एक ने दक्षिण दिशा में हाथ उठाकर इशारा किया। लोगों ने देखा—एक बुढ़िया उन्मत्त-सी दौड़ी चली आ रही थी।

'ग़ज़ब है मेरे भाई!'—एक आवाज़ आई।

'पागलपन भी क्या से क्या कर देता है। देखो न इसमें कितनी शक्ति आ गई है।'

'बेचारी! ग़रीब!!'—तीसरे ने दया-भाव दिखाया।

'अरे धर्म के ठेकेदार! तुम क्या सुधारक बने, खाक!'—वृद्धा आ पहुँची थी। वह कमर के दोनो बाजू पर हाथ रखकर जैसे मीनार से कुश्ती लड़ने के लिए आँखें फाड़कर तैयार हो गई थी। वह बिना लक्ष्य किये ही बक रही थी, चिल्ला रही थी:

'तुम कैसे सुधारक बने? क्या तुम खुद सुधरे हुए हो।'—खड़े हुए लोगों के हृदय को चीरती हुई आवाज़ थर्रा उठी। उसने प्रत्येक के हृदय में कँप-कँपी पैदा कर दी थी।

'पर आप सभ्य कैसे बने? केवल शान-शौक़त से? ग़ुलामों से गाड़ी खिंचवाकर सैर करने से? आह! मेरे गुलाब-से सरवेट्स को आग में भून दिया। अरे! ये राक्षस उसके दर्शनों की प्यास को भी शान्त नहीं होने देते। इस तुम्हारी भट्टी में से हज़ारों ज्वालामुखी फट निकलें।' वृद्धा अपने मातृ-शाप से सबको डरा रही थी। पगली हुए आज उसको बारह वर्ष बीत गये थे। अक़्लमन्द इस पगली की बातों पर हँसते थे, या तो दया दिखाते थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अरे ! यहाँ से जाती है, या नहीं ?'—मीनार की लम्बी परछाईं में स्थित एक भारत घर में से पुकारता हुआ नौकर भागा चला आ रहा था। वृद्धा को उसकी परवाह न थी।

'चली जा, यहाँ से।'—नौकर हवा में हाथ फटकारता हुआ बोला।

'यह ले...तेरा क्या बिगाड़ा है ?'—वह ताक रही थी।

'वीनशेनझी चिढ़ेंगे तो धूल में मिला देंगे।'—नौकर ने कहा।

'क्यों चिढ़ेंगे ? बेटा !'—वृद्धा नरम बनी।

'उनकी पत्नी को बच्चा हुआ है।'—नौकर ने धीमे से कहा—और तू चिल्ला रही है।

'अच्छा नहीं चिल्लाऊँगी, मुझे क्या पता था ? मुझे भी सरवेट्स अवतरा था।'—वृद्धा की आँखें उन्माद में मस्त बनीं।

'चली जा...'

'यह ले, चली !'—वृद्धा चल पड़ी। कम्बख़्त उमराव लोग ! गई-बीती आनवाले, फिर भी चढ़े दिमाग के। क्या कोई अनूठा ही लड़का पैदा हुआ है ? मुझे भी सरवेट्स...'—जाती हुई वृद्धा का हास्य चारो ओर गूँज उठा।

पन्द्रह सौ चौसठवीं साल की फरवरी के पन्द्रहवें दिन के दुपहर को उस झुके हुए मीनार की छाया में खड़े हुए पहले के उमराव परन्तु आज के नदी-तट के पेड़ बने हुए वीनशेनझियो के घर में अभी-अभी के जन्मे हुए बालक ने रोना शुरू किया। किस को पता था कि पीसा के मीनार पर से आकाश के भेदों को पहचाननेवाला, अरीस्टोटल की भूलों को दो हज़ार वर्षों के बाद बतानेवाला बालक जन्म ले रहा है ?

× × ×

'यह हमारे ढाँचे में नहीं ढल सकता।'—एक दिन पाठशाला के अध्यापक ने अपनी अन्तिम सम्मति दे दी ?

'कौन ?'

'वही गेलेलियो, पता नहीं वह किस धातु का बना है।'—अध्यापक ने तंग आकर कहा—वह सभी बातों में उस्ताद है। एक-मात्र एक ही बात की...

'क्या ?'

'श्रद्धा की बूद भी नहीं है।'

'यह तो, जिसे शैतान मारना चाहता है, उसकी बुद्धि को खूब तेज़ बना देता है।'—एक ने धर्म-श्रद्धा बताई।

'चर्च उसकी निगरानी करेगा, मसीह उसे बचा दे। कैसा सुन्दर चपल लड़का है।'—एक शिक्षिका ने उसके गुण-गान करके निश्वास छोड़ी।

गेलेलियो ने पढ़ाई समाप्त की। उसने स्कूल छोड़ा, तब एक बड़ा गणित-शास्त्री बन चुका था और साथ ही संगीत-शास्त्री भी !

'परन्तु कहीं भीमपलास खाने के काम आयेगा ? और गणित का भी बाज़ार में कहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव आता है ?'—एक दिन पिता वीनशेनभी जवान लड़के को अर्थ-शास्त्र पढ़ा रहे थे।

'तो बाज़ार में किस चीज़ की माँग है ?'—गेलेलियो ताकने लगा।

'व्यापारी अनुभव चाहिये।'—पिता ने उत्तर दिया।

'व्यापारी अनुभव ! किस व्यापार का ?'

'बजाजे की दूकान करोगे ?'

'हाँ ज़रूर करूँगा ?'

'परन्तु सुन, मेरी उम्र ढल चुकी।'

'कहिये ?'—पुत्र ने कान लगाये।

'तू फेरी पर रहना और मैं दूकान पर बैठूँगा।'

गेलेलियो ने बजाज़ की दुकान शुरू की। परन्तु कुछ दिन में हानि के कारण दुकान बन्द करनी पड़ी। फिर बाप-बेटा विचार करने लगे।

'बहुत बुरा समय आया है।'—पिताने लाचारी बताई।

'भूखे रहने के दिन !'—बेटा पिता का मुँह ताकने लगा।

'कोई धन्धा चला !'—पिता अन्धकार में देख रहा था।

'गणित का स्कूल खोलूँ ?'

'नहीं।'

'संगीत का स्कूल चलाऊँ ?'

बाप ने सिर हिला दिया। 'एक बात हो सकती है।'—पिता को कुछ प्रकाश दीख पड़ा।

'क्या ?'

'वैद्यक सीख।'

'सीखूँ ?'—बेटे ने पिता का हुक्म स्वीकार करते हुए कहा—परन्तु सीखने में समय लगेगा।

'तुझे क्या देर लगेगी ? बहुत तो छः मास। और सुन'—बाप और नज़दीक आया, और बेटे के कान में कहने लगा—मेरा एक पुराना दोस्त क़र्ज़ दे सकता है।

'तो मैं तैयार हूँ।'—जवान लड़का तैयार खड़ा था।

'परन्तु एक बात...।'—बाप को कुछ और याद आया।

'तो...'—बेटे ने कान लगाये।

'तू छोटा नहीं है...।'

'मैं कहाँ कहता हूँ।'—बेटा सुनने को उत्सुक हो रहा था।

'अठारह बीते'—बाप जवान की जवानी नाप रहा था। अब तू जो बोलता है, वह बालकपन में नहीं गिना जायेगा। धर्म में, धर्म के वचनों में श्रद्धा न रहेगी तो भयंकर नरक में जाना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होगा, मुझे डर लगता है कि शैतान तेरे में प्रवेश न करे। वैद्यक में यह डर और भी ज्यादा है। तुझे पता है उस सरवेट्स और वेसालियरू की क्या दशा हुई है ?

'और पेरासेलस की भी'—जवान ने शान्त मन से कहा।

'तू मुझे वचन दे।'—बाप एकदम बोल पड़ा।

'किस चीज़ का।'

'प्रतिदिन चर्च में जाने का।'

'अच्छा, दिया।'

× × ×

एक दिन वह खड़ा था, उसकी आँखें पीसा के मीनार के झूलते हुए दीये पर गड़ गई थीं। सैकड़ों वर्ष से मीनार खड़ा था, दीया झूल रहा था। उस दीये को प्रतिदिन हज़ारों आदमी देखते थे; परन्तु कोई इस तरह तो ताकता न था, जैसे वह। वह खड़ा था या वहीं गड़ गया था! उसके दाहिने हाथ की अँगुलियाँ बायें हाथ की नसें गिन रही थीं। उसकी आँखें झुलते हुए दीये पर चिपक-सी गई थीं।

मीनार में आने-जानेवाले सभी इसकी ओर देखने लगे।

'वह गेलेलियो...'—कहकर किसी ने मुँह बनाया।

'वैद्यक सीख रहा होगा!'— किसी ने मज़ाक किया।

'जाता रहा है उसका!'—एक ने हँसकर कहा।

'क्या?'—दूसरे ने खिल्ली उड़ाई।

'दिमाग!'

'नहीं, नहीं, हाथ में घुस गया है उसके—देख टटोल रहा है!'—एक ऊँची हँसी मीनार से टकराकर प्रतिध्वनित हो उठी।

'पेन्डुलम का नियम।'— गेलेलियो अचानक चिल्ला उठा—मैं तुम्हें देख रहा हूँ उतना ही स्पष्ट पेन्डुलम का नियम भी देख रहा हूँ।—नवजवान कुछ बककर चला गया। उसके पीछे किसी ने उसके चलने की नक़ल की, किसी ने खाँस दिया, किसी ने छींक मारी। इस जवान ने क्या देखा, यह किसी की समझ में नहीं आया। सभी न समझे हुए सत्य का उपहास कर रहे थे। उसने नियम का साक्षात्कार किया था। उसके देखे हुए नियम के पीछे घड़ियाँ बीत चुकी थीं। उसका देखा हुआ नियम जगत् के काल को माप रहा था। उसका जाना हुआ नियम संसार को नियमितता में ला रहा था। वह नियम दुनिया भर की करोड़ों घड़ियों को जन्म दे रहा था।

'तू अब तक कितना पढ़ चुका?'— पिता ने परीक्षा लेनी चाही। 'मुझ से वैद्यक नहीं सीखा जाता।'—जवान ने सिर हिलाया—गणित के अतिरिक्त किसी बात में मेरा मन नहीं लगता।

'तुझे जो अच्छा लगे, कर। गणित का संग कर और भिखारी की तरह जीकर सुखी हो! मैं तुझे नहीं बचा सकता।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।'—युवक ने उद्धतपन से उत्तर दिया।

'क्या ?'

'कि मैं अपने को नहीं बचा सकूँगा।'

'और मैं तुझे विद्यापीठ में नहीं रख सकता।'—पिता निराश था।

'और मैं रह न सकूँगा।'— फिर उसी ढंग का उत्तर।

'तू अब इक्कीस वर्ष का हुआ।'

'बहुत बड़ा हो गया, मुझे कुछ करना चाहिये।'—वह हँस पड़ा।

'तू खेल न समझे तो सब कुछ कर सकेगा।'—पिता ने उपदेश दिया!

'जन्म से मैंने कोई खेल नहीं खेला।'

'वह...तू पानी से क्या करता है ?'

'मैंने एक यन्त्र खोज निकाला है ?'

'कौन-सा ?'

'जल तुला।...यह रहा'—कहकर एक बड़ा निबन्ध पिता के हाथ में दिया।

निबन्ध पीसा के विद्वानों में घुमाया गया। विद्यापीठ की किसी भी उपाधि से वंचित गेलेलियो पहली बार सबको महान् लगा। थोड़े दिनों में लोग उसे दूसरा आर्केमिडीस कहने लगे। पिता ने सब कुछ आश्चर्य से सुना। विद्यापीठ से एक दिन उसे आमन्त्रण मिला। गणित के उपाध्याय की गद्दी पर उसकी नियुक्ति की गई।

पीसा की विद्यापीठ में एक दिन वह युवक उपाध्याय बोल रहा था—एरिस्टोटल का सिद्धान्त समझा रहा था—इसका भार दस सेर हो और इसका एक सेर तो...उसके सिर में नवीन स्फूर्ति जाग उठी। उसके लंबे-लंबे दोनो हाथ वैसे के वैसे तुले रह गये...'पर नहीं, यह सत्य नहीं'—वह चिल्ला उठा...

'क्या चीज़ ?'— कक्षा में से एक आवाज़ आई।

'कि बोझ के अनुसार गिरती हुई वस्तु की गति में भी अन्तर होता है। अधिक बोझ-वाला पदार्थ, अधिक बोझवाला होने से ही जितना अधिक बोझ होता है, उतनी अधिक गति से नीचे गिरता है, यह बात असत्य है।'

'क्या बात! एरिस्टोटल झूठा!' गलेलियो ग़ज़ब ढा रहा था। सत्रह-सत्रह सदियों से, एरिस्टोटल की बातें ही सत्य मानी गई थीं। और उन बातों के सामने, उन अटल नियमों के सामने यह युवक उपाध्याय हथोड़ा उठाकर खड़ा था। लोगों को यह उसका दुःसाहस-सा लग रहा था। पच्चीस वर्ष का युवक उपाध्याय तन गया—मुझे, उतने पुराने नियमों में विश्वास नहीं है। मैं कहता हूँ वही सत्य है। बात ज्यादा बढ़ रही थी।

रूढ़िचुस्त बौखला उठे, धर्मान्ध उबल पड़े—सिद्ध करो! सब ने गलेलियो से उत्तर चाहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सिद्ध करो, नहीं तो...'—एक दिन धर्माचार्य की धमकी भी पहुँची।

'सिद्ध करूँ नहीं तो...'—गेलेलियो समझ गया। वह सिद्ध करने के लिए तत्पर हुआ। उसने ललकार की—कोई वहम, कोई अन्धश्रद्धा सत्य को आँच नहीं लगा सकती। उसने विद्वानों को निमन्त्रण भेजा। धर्म के आचार्यों को पीसा के मीनार पर आने की विनती की। निश्चित दिन पर धर्माचार्य और विद्वान् मीनार पर इकट्ठे हुए। उसने दो बोझ सब के देखते हुए तौले, एक का भार एक मन था, दूसरे का एक सेर। उसने घोषणा की इन दोनो को मीनार पर से एक साथ छोड़ने पर दोनो एक साथ ज़मीन पर आ गिरेंगे। और उनके साथ-साथ गिरते ही, पदार्थों का एरिस्टोटल का नियम भी टूक-टूक हो जायेगा।'

'चलिये ऊपर चढ़िये।'—धर्म के ठेकेदारों का फ़रमान हुआ।

उपाध्याय ऊपर चढ़ा। साथ-साथ बोझ भी ऊपर पहुँचे। उसके पीछे ज़मीन पर लेटते हुए चोलोंवाले सुशोभित देहवाले रोब से कह रहे थे—लड़का पागल है। उसे उपाध्याय के स्थान पर बैठाकर हमने ही चढ़ाया है। परन्तु आज एरिस्टोटल के सामने सिर उठाने की क़ीमत चुकानी पड़ेगी, तब अक़्ल ठिकाने आ जायेगी।

'छोड़ता हूँ।'—उपाध्याय मीनार के सिरे से दोनो वज़नों को उठाते हुए बोला।

'छोड़िये।'—धर्म-गुरु की आवाज़ थी। दोनो बोझ छूटे; एक-एक मन का था, दूसरा एक सेर का। मीनार की एक सौ अस्सी फुट ऊँचाई से दोनो पदार्थ गिर रहे थे। दोनो एक साथ छूटे, एक साथ उतरे और एक साथ ज़मीन से टकराये।

'हूँ...!'—धार्मिकों का धैर्य ख़त्म होने लगा। विद्वानों को रोमांच हो आया। महाजन काँप उठे, मानो हिमालय-सा बड़ा एरिस्टोटल पीसा के मीनार की सिरे से आ टपका हो।

पीसा की मीनार से उस युवक ने पत्थर फेंका और सदियों से जकड़ी हुई अक़्ल हिलोरें लेने लगी। मीनार से पत्थर गिरा और वहम तथा अन्ध-श्रद्धा के ताज हिल उठे।

प्रत्यक्ष देखनेवाले विद्वानों और धार्मिकों ने मन-भर के सिर हिलाये—हम नहीं मान सकते।

'क्या। नज़र से देखा हुआ भी!'—वह युवक उपाध्याय आँखें मटकाकर पूछ रहा था।

'तुममें शैतान काम कर रहा है।'—धर्माचार्य ने गेलेलियो पर आर-पार भेदनेवाली तीक्ष्ण नज़र डाली।

'नहीं यह शैतान नहीं है, गिरते पदार्थों का नियम है। विज्ञान का नियम मेरी, आपकी या किसी गद्दीनशीन की शर्म नहीं रखता।'—उपाध्याय अटल विश्वास से बता रहा था।

'मुझे सब पता चल गया है।'—धर्म-गुरु ने अपनी सर्वज्ञता प्रकट की।

'क्या?'—युवक देखने लगा।

'उस भारी बोझ में तुमने किसी शैतान की आराधना की है। नहीं तो दोनो साथ कैसे गिर सकते हैं।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कैसे गिर सकते हैं ?'—युवक ने तीर जैसी नज़र दौड़ाई—एक काम कीजिये। आप का बोझ मुझसे ढाई गुना होगा। हम दोनो मीनार से गिरें ! आप में तो शैतान नहीं है न ! जगत् समझेगा कौन सच्चा था।'

'मज़ाक कर रहे हो ?'—साधु महात्मा की कमान छूटी।

दूसरे दिन युवक विद्यापीठ के द्वार पर पहुँचा और उसके कानों से वापिस आने के शब्द टकराने लगे। विद्यापीठ के विद्वानों ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। विद्यार्थियों ने ताली पीटी। वह सब कुछ समझ गया। उसने विद्यापीठ छोड़ा। वह गुस्से ही गुस्से में चला गया और फ्लोरेन्स पहुँचा।

× × ×

'आया बेटा ! तुझे किसने ख़बर दी थी ! इतनी जल्दी।'—घर के एक कोने में खाट पर वीनसेनजी मृत्यु शय्या पर लेट रहा था। गेलेलियो विद्यापीठ का सारा मसला भूलकर बैठ गया। उसकी आँखों के सामने दुत्कारा हुआ गणित-शास्त्र था, काल-ग्रस्त पिता था, सत्य पर प्रहार करनेवाले धर्म के ठेकेदार थे और 'खाऊँ-खाऊँ' करती हुई ग़रीबी थी।

'देख बेटे !...'—पिता के टूटे-फूटे शब्द सुनाई पड़े—मैं तुझे...उसने तीन अँगुलियाँ और एक अँगूठा दिखाया—मैं...तुझे तीन बहिन और एक भाई सौंप जाता हूँ।...सब तुझसे छोटे हैं। तू...'—वह आगे न बोल सका।

'मैं समझ गया। मैं सबको देखूँगा।'—वह मरते हुए पिता के कान में बोला और पिता ने सिर घुमा लिया।

'परन्तु खायें कहाँ से ?'—तीन बहिन और एक भाई के पालन-पोषण की चिन्ता में बैठा हुआ गेलेलियो खिन्न हो रहा था।...हाँ, हाँ, वह ज़रूर मदद करेगा।—उसे आशा की किरण दीख पड़ी। वह श्रीमन्त है, साथ ही सत्तावान भी। वही अकेला मुझे पहचान सका है। उसमें विज्ञान को—सत्य को जाननेवाला दिल है। उसने पीसारो को आत्म-वेदना लिखी। थोड़े दिनों में पीसारो का उत्तर आया :

'पाडुआ की विद्यापीठ में आप उपाध्याय नियुक्त हुए हैं। पीसा से तिगुना वेतन। चले आइये।

गेलेलियो पाडुआ पहुँचा।

उसने विज्ञान की बातों से विद्यापीठ का वायु-मण्डल भर दिया। उसके शब्द-शब्द पर विज्ञान नाच रहा था। प्रत्येक दृष्टि में विज्ञान चमकने लगा। पाडुआ के युवक उस पर मुग्ध हुए। पाडुआ के यौवन का वह महन्त बना। पाडुआ के नौजवान, विद्यापीठ में और बाहर उसको घेरने लगे।

'आप दोनो आइये।'—गेलेलियो दो नौजवानों से कह रहा था।

'आयेंगे।'—दोनो की आँखें गेलेलियो की आँखों में समाविष्ट हो नाच उठीं।

मध्य रात्रि में तीनो पाडुआ के पास की एक गंभीर गुफ़ा की ओर निकल पड़े। निशीथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में तीनों ने उस काल-विकराल गुफा में प्रवेश किया। दो रात और दो दिन बीत गये। पाडुआ की विद्यापीठ में उपाध्याय और दो शिष्यों की खोज शुरू हुई। तीसरे दिन प्रातः अन्वेषकों को रोककर एक बुढ़िया ने भरभराती हुई आवाज़ में कहा—उस गुफा में नहीं जाना।

'क्यों ?'

'इसके भीतर तीन भूत पड़े हुए हैं।'—कहती हुई बुढ़िया उस ओर नज़र किये बिना ही चली गई।

अन्वेषक-मण्डली गुफा की ओर मुड़ी। तीनों पहचाने गये। एक था उपाध्याय, दूसरे दोनो उसके विद्यार्थी। उपाध्याय बेहोश पड़ा था, विद्यार्थी निर्जीव।

घर आने पर उपाध्याय होश में आया।

'कहाँ गये थे ? क्यों गये थे ? क्या हुआ ? क्या देखा ?' एक विशाल समूह एक साथ अनेक प्रश्न कर गया।

'मैं गया था, बस इतना ही ; इसके आगे मुझे कुछ मालूम नहीं।'

वैज्ञानिक का यह कैसा प्रयोग था, यह किसी ने नहीं जाना। इस प्रयोग में दो के प्राण कैसे चले गये और तीसरा कैसे बेहोश हुआ, इसका भी किसी को पता नहीं। थोड़े ही दिनों में लोग उस वैज्ञानिक के इस प्रयोग को याद करके उसे गेलेलियो की मूर्खता कहने लगे।

पाडुआ के विद्यार्थी फिर अन्दर-अन्दर हँसने लगे थे। पता लगा ? समझ में आया ?

'क्या बात ?'

'गेलेलियो जानेवाले हैं ?'

'कहाँ ?'—उत्सुकता से प्रश्न पूछा गया।

'वेनिस।'

'क्यों ?'—फिर वही आतुरता थी।

'क्यों...?'—लड़के-लड़कियाँ एक दूसरे की तरफ़ देख, मुँह बनाकर हँसने लगते और कहते—उसे ही पूछ आओ न ? फिर ज़ोर से कहते—उनका शरीर ठीक नहीं रहता इसलिए।

'उपाध्याय को दूसरी मूर्खता सूझ रही है।'—विद्यार्थी मन में कहते।

'क्या ? क्या चीज़ ?'—अनजान पूछते।

'क्या क्या ? प्रेम तो मूर्खता है—एक प्रकार का रोग है, ऐसा यही जनाब कहा करते थे। आज यह उनको ही लग पड़ा है।'

'वेनिस में ?'—पाडुआ के नौजवान विद्यार्थियों में एक ही बात थी।

'हाँ, इसीलिए वायु-परिवर्तन को जा रहे हैं ?'

उपाध्याय वेनिस पहुँचे। वेनिस में कोई युवती उपाध्याय से प्रेम करती थी। उसे मिलने उपाध्याय रवाना हुए और वेनिस पहुँचे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेनिस के शौक़ीन नर-नारी, सज-धजकर सैर कर रहे थे। वेनिस के मौजीले नवजवान बाल बनाकर, माँग निकालकर एक दूसरे के साथ विहार रहे थे। वेनिस की वन-राशि लचक रही थी। वेनिस के बाग़-बगीचे महक रहे थे।

वेनिस के सुन्दर सरोवर के किनारे संध्या का चाँद उदित हो रहा था। वेनिस के चमकते हुए पानी पर नावें, नाचते, कूदते, गाते नौजवानों को लेकर हिलोरें ले रही थी।

'देखो...वे दोनो।'—एक नाव में से एक हाथ उधर को उठा।

'कौन ?'

'गेलेलियो और उसकी प्रेमिका।'

वह नौका पानी में, दूर ज्योत्स्ना का रसास्वाद करती हुई चली गई।

× × ×

'तब मैं गिरते हुए पदार्थों के नियम पर बोलने आया था।'—उन दो में से एक बोला।

'तभी मैंने तुम्हें पहली बार देखा। मेरे दिमाग में, मेरे मन में मेरे हृदय में, मेरी एक-एक नस में तुम्हारे सिवा कोई और आवाज़ उठती ही नहीं।'—दूसरे ने कहा।

'और मुझे भी।'— दूसरे के होंठ हिले। उसकी आँखों के सामने पेन्डुलम हिलता हुआ दिखाई दिया। मीनार से एक साथ गिरते हुए पत्थर दीखे। वह देखने लगा। आँखे मिलीं। दोनो एक दूसरे को चाहते थे। दोनो एक दूसरे के बन गये थे। किसी ने रंगराग देखे नहीं, रसराग पूछे नहीं। दोनो प्रेमी हँसकर उठ खड़े हुए। दोनो तरफ़ सरोवर के पानी की लहरें कलकल कर उठी। एकाएक युवक का देह कंपित हो उठा। उसने चारो ओर देखा। दुनिया के सबसे बड़े अक्लमन्द को अपनी मूर्खता साफ़ दीख पड़ी। केवल एक कुत्ता अपने मालिक को ढूँढ़ता हुआ इधर आ निकला था। दोनो ज़ोर से हँस पड़े।

'तू मेरे साथ चल।'—एक ने कहा।

'कहाँ ?'

'पादुआ।'

'विवाह किये बिना ही ?'

'विवाह क्या ? विवाह बिना मित्र नहीं बन सकते ? साथ नहीं रह सकते ?'

'तू तो मूर्ख है !'—युवती ने दुनिया के अक्लमन्द के गाल पर मीठी चपत जमाते हुए कहा।

'लोग मूर्ख हैं। विवाह गुलामी में फँसाता हैं। कानून मिल्कत का है। विवाह कानूनी कैसा और दोस्ती गैरकानूनी कैसी ? मुझे यह मान्य नहीं है।'

'यदि तू समाज में ऐसा बोलने लगे तो कितना भयंकर गिना जायेगा !'—युवती उस साहसी युवक के प्रति ज़्यादा आकर्षित हो देखने लगी।

'परन्तु तू जानती है न कि मैं कैसा बालक जैसा सरल हूँ ; और मेरा हृदय किस शुद्ध प्रेम से प्रवाहित है ?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हाँ, परन्तु...'

'क्या ?' युवक अधीर हो उठा।

'विवाह बिना कहीं रहा जा सकता है ?'

'मैं विवाह नहीं करूँगा, कल तू दूसरे को पसन्द कर ले और मैं तेरा मालिक होऊँ तो...'

'ऐसा मत बोल ...पर तू तो मूर्ख है।'—वह किसी विचित्र प्राणी की ओर देखती हो ऐसे देख रही थी।

'क्यों ?'

'कल सवेरे हमें बालक पैदा हो और...'—युवती लज्जा से नीचे देखने लगी।

'ओहो हो...' युवक का हास्य किनारे के शान्त जल पर मुखरित हो रहा था। 'विवाह बिना बालक उत्पन्न हो तो उसमें डरने की क्या बात है ? दुनिया वहम पर और ग़ुलामी के फन्दे पर निभी हुई है, विज्ञान की सचाइयों पर नहीं।'

वह नवयुवती उस वैज्ञानिक युवक का मुँह ताकने लगी। उसे इसकी आँखों में नई रोशनी दीख पड़ी, उसके शब्दों में नवीनता मालूम पड़ी, उसके चेहरे पर नया तेज चमक रहा था। यह उसे भयङ्कर लगा, क्योंकि वह नया दीखने लगा था। पर उसकी ओर उसका आकर्षण बढ़ रहा था। वह बोल उठी—अच्छा।

'कब ?'—सत्य जैसा कठोर वैज्ञानिक टकटकी लगाये था।

'पाडुआ चलकर तुम जैसे कहते हो वैसे रहें।'

युवक उपाध्याय अपनी प्रेमिका के साथ पाडुआ आया और गैरकानूनी कुटुम्ब बनाकर रहने लगा।

उनका परिवार कैसा बना था ? उनके आपस के सम्बन्ध कैसे निभे। उनको आविष्कारों में कैसा मज़ा था ? ऐसे किसी प्रश्न का उत्तर इतिहास ने नहीं दिया। दुनिया कहती है उन दोनो में ख़ूब निभती थी। काम से तङ्ग आ जाते तो एक दूसरे से आश्वासन प्राप्त करते थे। थकते तब आराम लेते थे, और बीमार होते तो एक दूसरे की सेवा-शुश्रूषा करते थे।

इसी तरह थोड़े वर्ष बीते। लोगों का विरोध बढ़ता चला, वहम ज्यादा ज़ोर पकड़ने लगा, दरिद्रता अपना नंगा स्वरूप दिखाने को तुल पड़ी। दुःख के दिन अपना प्रभाव जमाने लगे।

'मैंने ऐसी कल्पना नहीं की थी।'—कह कर उपाध्याय की स्त्री रो दी। उसकी एक लड़की माता के दुःख से व्यथित हो उस पर दृष्टि डाले बैठी थी। एक चार वर्ष का बालक पास में खेल रहा था, दूसरी एक छोटी बच्ची बचबच करके दूध पीती हुई माता को देखकर ग़मगीन हो रही थी।

'और मैंने भी...'—गेलेलियो ज्यादा आश्वासन न दे सका। परिवार के दुःख में स्वयं दुःखी था। 'सत्य का मार्ग इतना विकट होता है यह आज ही समझ में आया।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सत्य का मार्ग !'—स्त्री गुस्सा बता रही थी।—'मुझे तो तुम्हारे इन खिलौनों में कुछ मज़ा नहीं आता।'

'तो फिर तेरा भी क्या दोष ?'—गेलेलियो हँस पड़ा— मुझे एक विचार सूझ रहा है।

'क्या ?'—स्त्री चौंकी।

'तू किसी और के साथ विवाह कर ले। तुझे विज्ञान के सत्य की आग नहीं लगी है। तू मेरे पीछे-पीछे खिंच रही है, हैरान हो रही है, मुझे यह अखरता है। जैसे मैं तेरे पर अत्याचार कर रहा हूँ।'

'ऐसा न कहिये।'—स्त्री की आँखें डबडबा आईं।

'मुझे पता है तुझे मुझसे प्रेम है, परन्तु इससे उस पर न हो यह नहीं मानता।'—इतने में किसी ने द्वार खटखटाया।

'कौन ?—स्त्री ने प्रश्न किया।

'वही, वह।'—गेलेलियो मीठी हँसी-हँसा—यह हम दोनों का मित्र है, तू इसके साथ सुखी होगी। मुझे सान्त्वना मिलेगी। देख सुन।

'क्या ?'—स्त्री ने कान लगाये।

'वह एक ज्वाला थी। एक उमंग थी। मैं विज्ञान का उत्तरदायित्व भूल गया था। पर इसमें कोई बुराई न थी। हम दोनो एक दूसरे को चाहने लगे थे। हमें तीन बालक पैदा हुए इसमें भी कोई ग़लती नहीं है। धीरे-धीरे समय के अनुसार परिवर्तन आया। मैंने विज्ञान का वरण कर लिया। मेरे सारे भाव विज्ञान की ओर बह चले। मुझे इतने वर्षों से तेरी ओर मीठी नज़र से ताकने की भी फुरसत नहीं मिली, इसका मुझे पता है। तू मेरे साथ विवाह करके पछता रही है, यह भी मैं जानता हूँ। मुझे उलझाते हुए विज्ञान के प्रश्न तुझे व्याकुल करते हैं, यह भी मैं समझता हूँ। बड़ी-बड़ी कल्पनाओं में और विज्ञान के जगत् में मुझे डूबा हुआ देखकर तू परेशान होती है, इसकी भी मैं कल्पना कर सकता हूँ। फिर भी तूने प्रत्येक क्षण मेरी सेवा की है, मेरे लिए ध्यान दिया है। परन्तु क्या तू समझ सकती है ?—उपाध्याय कुछ रुके।

'क्या चीज़ ?'—स्त्री ने आश्चर्य-पूर्वक प्रश्न किया।

'मेरे सामने विकराल काल मुँह बाये खड़ा है। मेरे साथ रहकर कोई भी सुखी नहीं हो सकता।'

'क्या मैं तुम्हें दुःख के समय छोड़ दूँ ?'— स्त्री की आँखें भीग चुकी थीं।

'नहीं, मैं तुझे छोड़ रहा हूँ। तुझे पता है ?'

'किस चीज़ की ?'— स्त्री आँसूओं को अंचल द्वारा पोंछ रही थी।

'ब्रूनो वेनिस में पकड़ा गया, उसे सात वर्ष बीत चले। इन सात सालों में गिरजाघर में वह अस्थि-पंजर बन चुका है। उसे अकाल ही में बुढ़ापे ने घेर लिया है। और...'—गेलेलियो की आवाज़ काँप उठी—आज धर्म का दिवालापन उसे जलाने को तैयार हुआ है। वह नगर के बीच धधकती हुई आग में भूना जायेगा। वह जलाया जायेगा और मुझे कुछ भी न हो, यह आश्चर्य होगा। जो वह कहता है वह मैं भी कहता हूँ। और ज़्यादा ज़ोर देकर कहनेवाला हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञान का सत्य मुझे अपना अन्त इस ब्रूनो की आग में ही दिखा रहा है।

'तुम...'—स्त्री काँप उठी। उसके मुँह से एक चीख निकल पड़ी। बड़ी लड़की सांत्वेसी माता के पास भाग आई। उपाध्याय उठकर चला गया।

× × ×

आज उस बात को हुए कुछ वर्ष बीत गये हैं। गेलेलियो की स्त्री दूसरे मित्र के साथ रहने लगी है। गेलेलियो की बड़ी लड़की चर्च में पवित्र-कुमारी बन गई है। उसके और दो बालक आनन्द से माता के पास बढ़ रहे हैं। वह स्त्री कभी-कभी बैठी हुई उस वैज्ञानिक के विषय में सोचती है और आश्चर्य करती है। यह सारा दृश्य गेलेलियो के लिए सुख-रूप था।

सन् १६०४ के साथ-साथ आकाश में एक नये तारे ने भी जन्म लिया।

गेलेलियो हाथ धोकर उस नये आसमानी सितारे की पहचान में लगा। सारे नगर में दो चीज़ों की धूम मच गई। एक नये प्रकट हुए तारे के विषय में और दूसरी उसकी पहिचान में लगे हुए वैज्ञानिकों के बारे में। १६०९ में गेलेलियो ने तीन भाषण दिये। तीनों भाषणों में उसने उसी तारे की चर्चा की। तारे की बात सुनने को मानव-मंडली जमा हो गई। वह बोला :

'मुझे पता है तुम सब कुतूहल से आते हो। तुम्हें तमाशा देखना पसन्द है। परन्तु तुम्हें विज्ञान के सत्य में रस नहीं आता।'—वैज्ञानिक के तीर लोगों के दिल में चुभे।

पुनः वह आगे बढ़ा। उसने अरिस्टोटल पर प्रहार करने शुरू किये। उसने धर्म के वहमों पर मज़ाक किया।

'आपको किस में विश्वास है ?'— प्रश्नोत्तर होने लगे।

'तुम सब पर वहम लादा गया है। तुम को अज्ञान में रखा गया है। तुम्हें झूठे पाठ पढ़ाये गये हैं।'—अपनी ही बात कहे जा रहा था।

'क्या बात ! कैसी हिम्मत ! कैसी धृष्टता !'—लोग क्रोध से काँप रहे थे।

'सच बात यह है कि कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। यह सारा ब्रह्माण्ड घूम रहा है। सारे तारे घूमते हैं। हमारी पृथ्वी भी घूमता हुआ एक तारा है।'

'ऐसा ?'—एक धर्माचार्य ने आँखें निकालीं।

'हाँ, मैं सत्य को छिपा नहीं सकता। तुमको क्या सुनना पसन्द है, इसकी मुझे परवाह नहीं है। मुझे तो सत्य बात बताने की ही फ़िक्र है, कोपरनिकस सच्चा है।'—उसने एक वाक्य में सारा मूलभूत सिद्धान्त कह सुनाया।

'शान्त ! पाप !! नास्तिकता !!!'—धार्मिक सत्ताधीश क्रोधित हो उठे—हमारी पृथ्वी को उसकी दिव्यता पर से उठा देना चाहते हो ? सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सिरताज को धूलि में मिलाना चाहते हो ? उसे एकमात्र उड़ता हुआ रजकण कह रहे हो ? सूर्य के चारों ओर घूमता हुआ पिण्ड कहना चाहते हो ? नास्तिक, धर्म-निन्दक।

'मैं प्रमाण दूँगा।'—गेलेलियो तेज़ हो गया था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'किस चीज़ का ?'

'कि कोपरनिकस सच्चा था।'—वह आवेश में चिल्ला उठा।

'चिता दहक उठेगी, राख उड़ेगी राख !'—एक धर्मनिष्ठ दाँत पीसकर धमकी दे रहा था।

व्याख्यान समाप्त हुआ। गेलेलियो घर जाते हुए घूम-घूमकर देख रहा था। जैसे वह अब भी सुन रहा था—चिता दहक उठेगी। वह अपनी ज्वाला आँखों के सामने देख रहा था उसे अपनी क्वाँरी स्त्री याद आई, बच्चों का स्मरण ताज़ा हो आया। उसे सारी दुनिया चक्कर काटती हुई दिखी। उसे विज्ञान भयंकर लगने लगा। सत्य की कठोरता समझ में आई। वह लड़खड़ाता हुआ घर पहुँचा। सूने घर में बिछौने पर जा लेटा। उसने उलटा सिर रखकर हिम्मत बाँधी। फिर बैठा और दाँत पीसकर बोला—मैं सिद्ध कर दिखाऊँगा कि कोपरनिकस सच्चा था। थोड़ी देर में बकता-बकता वह सो गया।

'छोटे पदार्थ सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से बड़े देखे जाते हैं। परन्तु दूर की वस्तु पास कैसे देखी जाय ?'—उसके सिर में विचार चक्कर काट रहा था। सुबह उठकर वह विद्यापीठ गया। विद्यापीठ में वह क्या बोलता है, उसे इसकी सुध न थी। उसे कमरा घूमता हुआ दिखाई दिया। विद्यार्थी तारे मालूम होने लगे। उसके दिमाग में एक ही विचार चक्कर काट रहा था—दूर के पदार्थ पास कैसे देखे जायँ।

उसने घर जाकर ऐनक के नतोदर और उन्नतोदर काँच लगाने शुरू किये। अरे, यह क्या !'—उसके आश्चर्य की सीमा न रही। इन दोनो काचों को अमुक तरह से लगाने से दूर का पदार्थ पास देखा गया। वह खड़ा हो गया। 'जो कोपरनिकस कह गया उसे हम प्रत्यक्ष दिखा सकते हैं।'—वह आनन्द से बोल उठा। उसके प्रत्येक अंग से हर्षोद्रेक टपक रहा था। उसने एक नली में सूक्ष्म-दर्शक काच लगाया और साथ ही नतोदर और उन्नतोदर 'लेन्स' रखे। उसने पहली बार देखा—दूर का मनुष्य पास खड़ा था। उसके आनन्द की सीमा न थी। उसने नई दुनिया देख ली थी।

'आकाश पहचाना जायगा।'—उसे आशा हुई। उसने अधिक सूक्ष्म-दर्शक काँच इकट्ठे किये। वह दूरबीन (टेलिस्कोप) बनाने में मग्न हो गया। उसने एक सुन्दर दूरबीन बनाया। और समुद्र किनारे भागा। उसके यन्त्र ने एक नाव पानी पर हिलोरें लेती हुई देखी। उसने आँख से दूरबीन हटा लिया। नाव ग़ायब थी। 'लो मुझे वह कैसे दिखी।'—उसका एक-एक रोम नाच उठा। वह रहस्य समझ गया था।

'नाव आँखों से देखी जाय, उतनी नज़दीक नहीं होगी।'—वह क्षितिज में दूर एक बिन्दु देखने लगा ? वह फिर आनन्द में बोल उठा—आकाश पहिचाना जायगा। वह कुछ देर वहीं बैठा रहा। ठीक दो घण्टे बाद दूरबीन से देखी गई नाव आ पहुँची।

वह घर आकर सीधा विद्यापीठ को भागा। उसने वहाँ अपना दूरबीन दिखाया। विद्यापीठ का प्रधान उसकी ओर ताज्जुब भरी निगाह से ताकने लगा। 'ग़ज़ब है ! चमत्कार है !'—सब एक स्वर से पुकार उठे।

'इससे आकाश भी पहिचाना जायेगा।'—उसने हर्षातिरेक से कहा। उसका वेग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आकाश को आलिङ्गन करना चाहता था। वह आकाश के पदार्थों को देखने के लिए अधीर हो उठा। 'और तब सब कुछ समझ में आयेगा।'—वह मन में, पता नहीं क्या-क्या बक रहा था। उसके शरीर में निरन्तर कम्प उद्भवित हो रहा था।

'आपके कार्य के घण्टे कम किये जाते हैं और वेतन दुगुना किया जाता है। आप की नौकरी जीवन-पर्यन्त स्थिर रहेगी।'—पाडुआ की विद्यापीठ ने उसको आदर दिया।

'दाल में कुछ काला है, इसे शैतान मदद पहुँचाता है। यह जादू करता है।'—धर्म के ठेकेदारों ने वहम से भरे हुए सिर खुजलाये। उनको विज्ञान के सत्य में पाप बढ़ता हुआ मालूम होने लगा। गेलेलियो तो अपने काम में मस्त था। उसने दूरबीन बनाने की नलिका बनाई। काँच घिसे और उनको उस नलिका में लगाया। उसने इसमें काफ़ी तरक्की कर ली और बहुत दूर तक देखनेवाले बड़े-बड़े दूरबीन बनाये। एक उन सबमें बड़ा था।

उसने आकाश का निरीक्षण शुरू किया। वह आकाश के पिण्डों को पहचानने लगा। उसने आकाश के लटकते हुए दीपकों में फिरती हुई पृथ्वी देखी। उसने आज तक लुका-छिपी करते हुए तारों को खोज निकाला।

वह निर्निमेष दृष्टि से दूरबीन में देखने लगा। अचानक वह ज़ोर से हँस पड़ा। 'पर है क्या चीज?'—पास बैठे हुए किसी ने पूछा—चाँद, चाँद। वह फिर से चन्द्र तक प्रतिध्वनित होनेवाले हास्य में हँसा।

'पर चन्द्र का क्या?'—पूछनेवाले ने फिर से सवाल किया।

'चन्द्र का क्या?'—उसने टेलिस्कोप में से हँसता हुआ मुख निकाला। 'चन्द्र यह कोई रूठी हुई लड़की नहीं है। आकाश के फूलों को चुनने नहीं निकली। किसी की माता नहीं है, न चाची है। न चाँदा मामा ही है। वह तो पृथ्वी का चक्कर काटता हुआ गोला है। हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इस पर वीरान प्रदेश हैं, ज्वालामुखी हैं। अरे भाई! हमारे यहाँ कोई चन्द्रमुखी हो तो कितनी डरावनी लगे!'—वह फिर ज़ोर से हँस पड़ा।

'बेचारा एरिस्टोटल! आकाश के सम्बन्ध में कैसे उलटे और विचित्र विचार दे गया है। उसे इस दूरबीन की बातें समझ में आये तो क़ब्र फाड़कर उठ खड़ा हो।'

दूसरे दिन उसने पाडुआ की विद्यापीठ की छत से दिखाया—यह तारा जो सिर पर चमक रहा है, एक नहीं है दो हैं। सब दंग थे।

'और आँखों से दीख पड़े उतने ही तारे नहीं हैं, दूरबीन से बहुत ज्यादा देखे जा सकते हैं। और दूरबीन से जितने देखे जायँ, उतनी तारों की संख्या नहीं है। क्योंकि इससे ज़्यादा तेज़ दूरबीन में इससे ज़्यादा संख्या भी देखी जा सकती है।

'हाँ!' सबके सिर में बात पच रही थी। एरिस्टोटल का सुन्दर स्वर्ग सबके दिमाग़ में से गेलेलियो का दूरबीन ग़ायब कर रहा था।

'इसमें कुछ करामात है।'—फिर भी धर्म जबड़े में से बोल रहा था। १६१० ईस्वी के जनवरी मास के आठवें दिन गेलेलियो ने बृहस्पति (ज्युपीटर) देखने को दूरबीन लगाया। उसकी आँखों ने जो देखा, उसे उसका दिमाग़ स्वीकार नहीं कर रहा था। पहली रात को ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसने बृहस्पति के साथ तीन तारे देखे थे। उनमें से दो बाईं ओर तथा एक दाहिनी ओर था। और आज तीनो एक तरफ़ आ विराजे थे।

उसने तीसरे दिन रात को फिर दूरबीन सँभाला। परन्तु आज तो केवल दो ही तारे थे। दोनो बाईं ओर! चौथी रात को उसने फिर देखा। बाईं ओर दो तारे थे, परन्तु कल की अपेक्षा आज एक बहुत बड़ा था। अगली रात को फिर देखा। आज चार तारे चमक रहे थे। तीन दाहिनी ओर तथा एक बड़ा बाईं ओर। उसके सामने अनेक प्रश्न आ खड़े हुए। अन्त में उसने उसका हल किया। उसने घोषणा की—हमारी पृथ्वी का एक चन्द्र है। बृहस्पति के चार चाँद हैं।

गेलेलियो की बातों से वेनिस पागल हो उठा। यौवन उसकी ओर अकर्षित हुआ पर धर्म उससे विमुख हो गया। 'अब तो इसका अन्त लाना पड़ेगा। यह खुद मौत को न्योता दे रहा है।'—धर्म-गुरुओं के बहमी अन्तस्तल में नाद गूँजने लगा।

× × ×

'मैं फ़्लोरेन्स जा रहा हूँ।'—एक दिन उसने फ़्लोरेन्स जाने की तैयारी शुरू कर दी।

'मत जाओ, मत जाओ, फ़्लोरेन्स से वेनिस कहीं अच्छा है।'—मित्रों ने सलाह दी।

'नहीं मैं जाऊँगा। मेरा जी यहाँ उकता गया है।'—उसने निश्चय दिखाया।

'वापिस लौटो, नहीं तो आफ़त आयेगी। वहाँ बहम का ज़ोर बढ़ा-चढ़ा है।'—मित्रों ने फिर चेतावनी दी।

'मैं तंग आ चुका हूँ, यहाँ पाडुआ की विद्यापीठ के विद्वान मेरे दूरबीन को शैतान का मंत्र समझकर उसमें देखने से भी इनकार करते हैं और पीसा में तो बड़ा धर्म-युद्ध शुरू हो गया है।'

'इसी से कहते हैं कि फ़्लोरेन्स जाने का विचार छोड़ दो, वहाँ तुम सुरक्षित नहीं रह सकते।'

'फिर कहाँ रहूँ?'

'वेनिस में।'

'वेनिस! वेनिस में ब्रूनो का चीत्कार अभी तक मन्द नहीं हुआ। मेरी आँखों के सामने अभी उसकी चिता की ज्वालाएँ उठ रही हैं। मुझे पता है, मेरे दुश्मन हैं। मैं जानता हूँ, मैं सुरक्षित नहीं हूँ। मैं समझ रहा हूँ कि धर्म की अदालत क्या कर सकती है। मुझे ब्रूनो के स्वप्न आते हैं। अहा! उसको इन धर्म-गुरुओं ने कैसे भून दिया था?'

'फिर भी तुम वहाँ जा रहे हो!'—मित्र आग्रह छोड़ते न थे।

'फिर भी मैं फ़्लोरेन्स जा रहा हूँ, क्योंकि मैं किसी से डरता नहीं, मैं फ़्लोरेन्स जा रहा हूँ और पाडुआ छोड़ रहा हूँ।'

'पाडुआ छोड़ोगे ही?'—मित्र विवश थे।

'हाँ, सदा के लिए'—गेलेलियो ने वेधक-दृष्टि डाली।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह फ़्लोरेन्स पहुँचा और उसने घोषणा की—कोपरनिकस मूर्ख न था, उसने जो कहा था, वह मैंने अपनी दूरबीन से देखा है। जैसा मालूम होता है वही सदा नहीं होता।

'चलो हम सूर्य देखें।'—उसने लोगों को दूरबीन में से सूर्य दिखाया। 'उसके अन्दर काले धब्बे हैं और वह भी अपनी कीली पर घूमता है।'—उसने लोगों को समझाया।

'और यह है शनि'—वह सबको अशुभ नक्षत्र बता रहा था।

'यह पाखण्डी है, धूर्त है।'—उसकी खोज अपूर्ण रही। उसका अभ्यास अधूरा रहा। उसकी दूरबीन फेंक दी गई। धर्मस्रष्टाओं ने हैरत से हाथ उठाये। भय से आँखें फाड़ने लगे। पाप के नाम पर कान बन्द किये। और मुख फाड़कर चिल्ला उठे—यह धूर्त है, समाज की श्रद्धा को डिगाता है। लोक-धर्म पर आक्रमण करता है। यह परमात्मा का लोप कर रहा है। सबकी पशुता प्रकट करनेवाली दृष्टि एक हुई। सभी कान में मुँह ले जाकर दण्ड-धर्म पर विचार करने लगे।

'मैं नास्तिक नहीं हूँ। मुझे ईसा के प्रति मान है। उसके उपदेशों में श्रद्धा है।'—वैज्ञानिक ने अपनी धर्मनिष्ठा बताई।

रोम से समन आ पहुँचा। धर्म की अदालत ने बुलावा भेजा—रोम आइये, आपका न्याय होगा।

गेलेलियो रोम पहुँचा। युवक उपाध्याय वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हो चुका था। धर्मवालों ने उसे इस पर जल्दी से लाद दिया था। उसका शरीर जर्जरित हो चुका था। उसके जोड़ों में संधिवायु हो गया था। वह सत्तर वर्ष का वैज्ञानिक रोम के लिए रवाना हो रहा था और बक रहा था :

'मुझे पता है, इस धर्म के महाधाम में न्याय के लिए गये हुए कोई भी वापस नहीं लौटे।'—मानो उसे मृत्यु का संदेश सुनाई पड़ रहा था। उसके पैरों तले से धरती खिसक रही थी। उसकी वृद्ध आँखों के सामने अँधेरा छा गया था। उसे रास्ते में आगे आगे सरकती हुई शहादत दीख पड़ी।

'वह सेवोनारोला, वह जोन्स और यह ब्रूनो और यह सर वट्स...'—उसकी भीतरी आँखों ने बिना छोर की एक पंक्ति देखी। वह आगे बकने लगा—इन सब युवकों की चिताएँ धधक उठीं तो यह एक और वृद्ध शरीर...

वह रोम पहुँचा। एक अँधेरे कमरे में उसको आवास दिया गया। वह उस अँधेरे में अदालत का आदेश सुनने को अधीर हो रहा था। एक दिन वह सन्देश आ पहुँचा। वह अपराधी बनकर कठघरे में खड़ा था। वहाँ प्रश्नों की झड़ी लग गई। उसने उनके उत्तर दिये।

'तुम अपराधी हो'—अदालत बोल उठी। सभी धार्मिक ईसाइयों ने श्रद्धा के भार से सिर झुकाये।

'तुम नास्तिक हो।'—अदालत ने निर्णय किया। किसी धर्म-विश्वासी को फ़ैसले में सन्देह न था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अपनी पतित आत्मा को शुद्ध करने के लिए तुम्हें पीड़ित होना होगा।'—अदालत ने धार्मिक शुद्धि की आज्ञा दी। वह आगे बढ़ा और पीछे संगीनधारी सिपाहियों की पंक्ति चली। वह रुका, अँधेरे में एक दीपक ने शुद्धि के साधन बताये।

वह देखने लगा, उसकी आँखें स्तब्ध हो गईं। हन्टर, हथकड़ियाँ और अन्य शुद्धि के साजो-सामान से कमरा सजा था। भट्ठी दहक रही थी। अंग-अंग खींचनेवाला रेक तैयार था।

'ये साधन तुम्हारी शुद्धि करेंगे। तुमने जो बातें कही हैं, उनसे इन्कार करो। और ऐसा न करोगे तो तुम्हारी आत्मा मृत्यु के बाद नरक में गिरेगी।'—एक कठोर ध्वनि धमका रही थी।

'यह पशुता है, मैं...'—उसकी जीभ चिपक गई—मैंने जो कहा है, उससे मैं इनकार नहीं कर सकता। वृद्ध पुकार उठा।

बस अब क्या था! उसके हाथों में जंजीर कसी गई और वह दीवाल के साथ जकड़ा गया। उसकी कमर पर हन्टर पड़ने लगे। उसकी रीढ़ के जोड़ ढीले हुए। और उसके बाद। उसके बाद जलती हुई शलाकाओं से उसकी देह जलाई गई। देह का एक-एक अणु जल रहा था। फिर बारी आई रेक की। वह रेक पर बाँधा गया और अंगों के टूटने तक उसे खींचा गया।

फिर भी वह हकलाती हुई वाणी से बक रहा था—मैंने अपनी आँखों से देखा है कि कोपरनिकस सच्चा था। पृथ्वी घूम रही है। मैंने अपनी आँखों से इतना विशाल आकाश देखा है, जिसकी तुम कल्पना करते हुए भी डरते हो। मैंने पृथ्वी को घूमती हुई पाया है।

परन्तु अब उसकी आँखों का तेज क्षीण हो गया था। आकाश को देखनेवाली आँखों का स्वामी अब अपनी अन्ध-कोठरी में भी देख नहीं सकता था। आठ मास में तो वह अंधा बन गया था।

वृद्ध अकेला काल-कोठरी में बैठा था। उसकी अन्ध आँखें अँधेरे में कुछ ढूँढ़ रही थीं। आँखों से गये हुए तेज ने कानों को सतर्क बना दिया था। उसे पीसा के मीनार में सुने हुए पेंडुलम की ध्वनि पुनः सुन पड़ी, वह सुनने को उत्सुक था। उसके कान में दरवाज़ा खुलने का शब्द पड़ा—अरे! यह पीसा के पेण्डुलम की ध्वनि नहीं है, यह तो द्वार की ध्वनि है। द्वार खुलते ही उसको सुनाई पड़ा—कल आप को पवित्र अदालत के आगे पेश किया जायेगा। मानो कोई उसके कानों में कह रहा था—नास्तिक बना रहा तो जीता जलाया जायेगा।

'गेलेलियो! प्यारे गेलेलियो! मान जा, सँभल जा।'—मानो उसे मित्र सलाह देने आ पहुँचे थे।

'पिताजी, पिताजी, मान जाइये, स्वीकार कर लीजिये।'—जैसे उसकी प्यारी बच्ची आकर दयार्द्र रुदन कर रही थी।

'मेरा इतना कहा हुआ न मानोगे।...मान जाइये, मेरी कसम है।'—जैसे उसकी पत्नी, क़ब्र में सोई हुई पत्नी उसके सामने भिक्षा माँग रही थी।

उसकी खोपड़ी में सारी आवाज़ें टकरा रही थीं। उसका सिर चकरा गया, वह तंग आकर चिल्ला उठा—क्या मान जाऊँ? जो मैंने अपनी नज़रों से देखा है। बुद्धि से समझा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है।...वह रुक गया। उसकी आँखों के सामने धर्म-ज्वालाएँ नाचने लगीं। उसकी देह काँप उठी। इतने वर्षों के बाद वह एकाएक डर गया। 'सिर के श्वेत बालों में जब आग जल उठेगी तो! चमड़ी जलकर चर-चर फट पड़ेगी तो।'—वह चीख उठा।

फिर से द्वार खुला। फिर धर्म के ठेकेदारों की रूखी आवाज़ सुनाई दी—मानोगे या नहीं? नहीं तो...। गेलेलियो की आँखों ने ज्वालाएँ देखीं। वह बोल उठा:

'बस, बस, मैं मानता हूँ। मैं भी हड्डी और मांस का बना हुआ हूँ। मुझे स्कावरी है।'

'क्या?'

'आप जो कहते हैं।'

'तब इस पर हस्ताक्षर कीजिये।'

गेलेलियो ने अन्ध नेत्रों से हस्ताक्षर कर दिये।

अब वह धर्म की विजयी अदालत में खड़ा था।

'मेरी मेरिया'—अदालत में उसकी करुण वाणी गूँज उठी। अपने कुटुम्ब में वह अपनी लाड़ली पुत्री को सबसे ज़्यादा स्नेह करता था।

'सीना में है, आप को वहीं ले जायेंगे'—एक आवाज़ आई।

'तू कौन?'—अठहत्तर वर्ष का वृद्ध अपनी लाड़ली पुत्री के समाचार देनेवाले के प्रति स्नेह प्रकट कर रहा था।—वह बिमार थी न?

'मैं विवियानी हूँ।'—उसने अपना परिचय दिया।

'तू विविपानी—विवियानी'—वह हर्षित हो उठा। पर मेरी मेरिया!

'मर गई, आज आठ दिन बीते।'

'वह नास्तिक नहीं थी, वह स्वर्ग में गई है।—एक धार्मिक आवाज़ ने व्यंग किया।

'मेरिया, मेरी मेरिया...'—वृद्ध की आवाज़ क्षीण हो रही थी।

'पर मैं अभी जीता हूँ। हम सीना जायेंगे। और वहाँ...'—वह युवक ढाढ़स दे रहा था। इतने में घंटा बजा।

अदालत का फ़ैसला सामने आया।

'अन्त में आज गेलेलियो की बुद्धि ठिकाने आई है। वह जो कह चुका है, उससे इन्कार कर रहा है। वह...'

'कौन? मैं! नहीं, नहीं'—पिंजरस्थ वृद्ध ने विकराल हास्य किया—मैं कहाँ हूँ?

'क्यों-क्यों? अदालत में!'—उसका स्नेही युवक विवियानी बोला।

'मेरे सिर पर क्या है विवियानी!'—वृद्ध काँप रहा था।

'छत।'—युवक ने अचरज में उत्तर दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'और छत के ऊपर ?'

'आकाश'—युवक अनजान में पागल वृद्ध को अपनी स्मृति दिला रहा था।

'हाँ, उस आकाश के नीचे तेरी उपस्थिति में मुझे झूठ बोलते हुए शर्म आ रही है। विवियानी ! मैंने तुझे जो कुछ पढ़ाया है, वही सत्य है। मैं अपनी एक भी बात से इनकार नहीं करता।'—वृद्ध का मुखमण्डल ज्योति से जगमगा उठा।

'गेलेलियो ! गेलेलियो !'—विवियानी करुणार्द्र स्वर में बोल उठा।

'मेरे प्रिय, आकाश के नीचे मैं सत्य से इन्कार नहीं कर सकता।'—वृद्ध दृढ़निश्चयी बन गया था—मेरी विज्ञान की आग नहीं बुझ सकती। यह आग इन धर्माचार्यों की स्थूल आग से ज़्यादा प्रबल है, यह विज्ञान की आग को नहीं जला सकती।'

एक विस्मय का भाव, एक उपहास, एक चिन्तित गुनगुनाहट, एक कँपकँपी अदालत पर छा गई। कुछ क्षणों के बाद न्यायाधीश ने खड़े होकर निर्णय दिया—इस वृद्ध को उन्माद हो गया है। इसे अपने अन्तिम दिनों में मुक्त किया जाता है। धर्म की अदालत को अस्थिपिंजर बने हुए इस अन्ध, वृद्ध वैज्ञानिक को जलाने में रस नहीं आया।

गेलेलियो मुक्त हुआ।

विवियानी उसे सँभालकर सीना ले गया।

गेलेलियो मृत्यु-शैया पर बक रहा था—

'बुखार से मेरी देह जल रही है। नित्य के जागरण से मेरा सिर चक्कर काट रहा है। धर्म के कारागार की यातनाएँ जला रही हैं।'

'शान्त हो जायेंगी। आराम हो जायेगा।'—विवियानी वृद्ध के मस्तक पर हाथ सहलाते हुए आश्वासन दे रहा था।

'मेरी मेरिया अपनी माता के पास जा पहुँची। मेरे सामने भी मृत्यु खड़ी है।'—वृद्ध अन्ध आँखों से उसे देख चुका था।

१६४२ ईस्वी के जनवरी के आठवें दिन की मध्य रात्रि को विवियानी ने उसके ठण्डे होते हुए मस्तक पर से चौंककर हाथ उठा लिया। वृद्ध वैज्ञानिक की अन्ध आँखें बन्द हो रही थीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

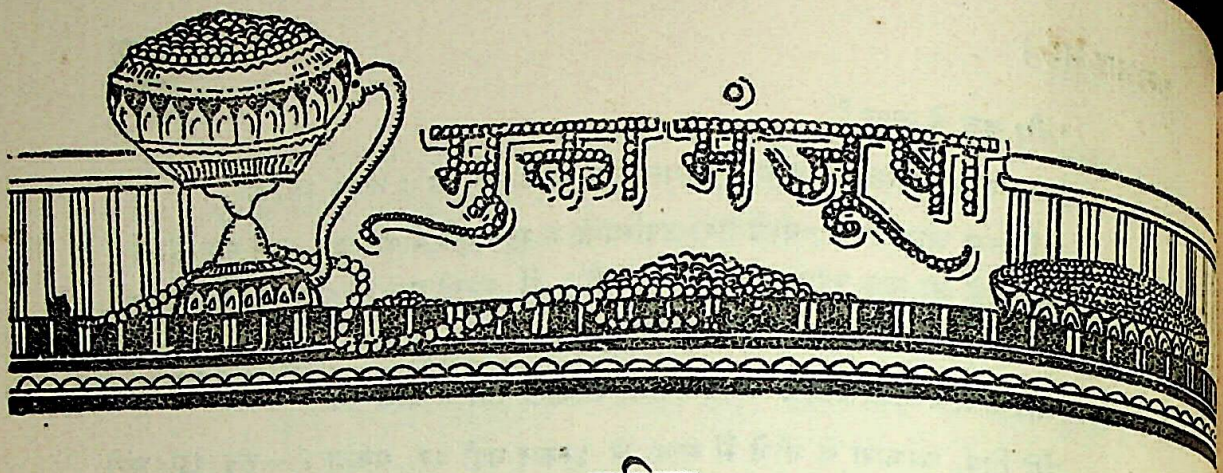

तमिल

वेदर्षियों की कविता

[स्वर्गीय सुब्रह्मण्य भारती तमिल भाषा के उच्चतम राष्ट्रीय कवि, भक्त-कवि, प्रकृति के गायक, निबन्ध-कार, नूतन शैली के निर्माता आदि सब-कुछ तो थे ही; परन्तु इन सबसे अधिक वे एक पारदर्शी दार्शनिक थे। उनका जीवन एक सच्चे दार्शनिक का सक्रिय और सत् जीवन था। उनकी कला का रहस्य उनके जीवन-दर्शन में निहित है। अपनी स्वतन्त्र परन्तु व्यापक मनन-शीलता, अभिनव पर स्वाभाविक भाषा, और ओजपूर्ण लेकिन सरल शैली की विपुल सामग्री से उस साहित्य-शिल्पी ने तमिल के नवीन कला-भवन का निर्माण किया था। 'वेदर्षियों की कविता' नामक अपनी पुस्तिका में उन्होंने वैदिक-साहित्य-सम्बन्धी अपने विचारों को व्यक्त किया है। यहाँ हम उस पुस्तिका के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश अनूदित करते हैं, जिससे पाठकों को भारती के दृष्टिकोण को समझने में बहुत कुछ सहायता मिलेगी।—सं०]

पूर्वकाल में वेदर्षियों ने इस अमर हिन्दू-संस्कृति के कल्पतरु का बीज बोया था। वे किस काल में—कितनी शताब्दियों के पहले—थे, इसका हिसाब लगाने का कोई साधन हमारे नवीन अनुसन्धान-कर्ताओं के पास नहीं है, हिमालय पहाड़ कब से है। कौन जाने? वेदर्षि लोग किस काल में थे, कैसे कहा जाय?

श्री रामकृष्ण परमहंस कहते हैं—

'आप अपनी प्रार्थना को हृदय के अन्तस्तल से निकाल लाइये। फिर कुछ समय तक ठहरने पर, मेरी माता जगदम्बिका आपकी प्रार्थना पूर्ण करेगी।'

रामकृष्ण मुनि ने ठीक कहा था। हृदय के अन्तस्तल से जो प्रार्थना निकल आती है, उसका नाम 'मन्त्र' है। मन्त्र आपका सफल होगा। लेकिन हृदय के अन्तस्तल से प्रार्थना को ले आना! चीज़ वह कितनी गहरी है! हृदय का अन्तस्तल! समुद्र के अन्तस्तल को तो मनुष्यों ने नापकर देखा है। लेकिन हृदय के अन्तस्तल का पता लगाना उससे कई गुना कठिन काम है। फिर भी आपके निराश होने का कोई कारण नहीं है। हर एक आदमी अपने से जहाँ तक बने, हृदय-सागर में गोते लगाकर वहाँ की चीज़ ला सकता है। जितनी ही गहराई में पैठेंगे, उतना ही अच्छा मोती आप के हाथ लगेगा।

ऋषियों का हृदय स्वच्छ था। इसीलिए वे अन्तस्तल तक पहुँचकर वहाँ से मन्त्र ला सके। उन मन्त्रों से वे देवताओं को अपने वश में ला सके। कोरे शब्द का कुछ महत्त्व नहीं है। अगर वह शब्द हृदय की दृढ़ता का द्योतक है, तो उसी का महत्त्व है। 'यद्भावयसि तद्भ-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसि'—यह एक अटल सत्य है। हाँ, भावना सच्ची हो; गंभीर, अप्रकम्प्य, सजीव और स्थिर हो। ऐसी भावना शीघ्र ही लोक-विज्ञेय बाह्य-सत्य के रूप में परिणत हो जाती है। मधुच्छन्द ऋषि अपने शक्तिशाली मन्त्रों से इन्द्र नामक विज्ञान-शक्ति की स्थापना करते हैं। उन मन्त्रों ने कविता को आलोकित किया है।

ऋग्वेद में ऋषियों की कविता को पढ़ते समय हमारे हृदय में मधु-धारा बहती है; हमारा ज्ञान ईश्वर के प्रेम में मस्त हो जाता है।

वेदर्षियों के काल में मंदिर नहीं थे; मूर्तिपूजा नहीं होती थी; संन्यास का नाम न था; अद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत का वर्गीकरण नहीं हुआ था। जो थी, वह सिर्फ़ भक्ति ही थी।

इतिहासकारों (Historians) का कहना है कि मंदिर और मठ की संपत्ति हमें बौद्ध-धर्म के संपर्क और समागम के कारण बाहरी प्रभाव से मिली है। लेकिन अब हिन्दुओं के धार्मिक अनुष्ठानों में मंदिर और शिला की सत्ता इतनी गंभीर हो गई है कि आज हम मंदिर को हिन्दू-धर्म से अलग नहीं कर सकते। क्या पंडित और क्या मूर्ख—सभी को यह जान लेना चाहिये कि सभी मंदिर परमात्मा के मंदिर हैं और वही परमात्मा साक्षात् सूर्य, अश्विकुमार, रुद्र, इन्द्र, वायु, विष्णु और वरुण है। मंदिरों में दलबंदी के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिये। इस बात को जान लेने पर, आपस के द्वेष और झगड़े मंदिरों में न रहने पायेंगे।

प्रकृति स्वाभाविक उद्भव का नाम है। यह दृश्यमान जगत् विष्णु का शरीर है। इसमें व्यापकर रहनेवाली आत्मा विष्णु है। आप इस विष्णु को शिला में पूज सकते हैं, पर्वत में पूज सकते हैं, खंभे और तिनके में भी पूज सकते हैं। शिलाओं में पूजना एक तरह का योग है। वेद-र्षियों ने इस विष्णु को, इन्द्र को, सूर्य को, रुद्र को प्रत्यक्ष अपने सामने—देखकर उसकी पूजा की थी। ज्ञान-लोक के भीतर जैसे आकाश और सूर्य हैं, वैसे ही बाह्य-जगत् में भी हैं। भीतर और बाहर एक हैं।

फिर से मैं इसका स्पष्टीकरण कर देता हूँ। आँधी चली। वेदर्षि उसके सामने जाकर खड़े हो गये। हज़ारों बिजलियाँ तलवार की तरह कौंधीं। दुनिया काँपने लगी। ऐसा धमाका हुआ मानो सारे अण्ड टूट पड़ रहे हों। ऋषि लोग नहीं डरे। उन्होंने मंत्रों का गान किया। रुद्र का शरीर ही तो जगत् है? वायु ही रुद्र है; और फिर वायु की शारीरिक क्रिया ही तो आँधी है? इन्द्र विद्युत् और वज्र को दिखाता है। बादल छिटकते हैं। ज़मीन को पानी मिलता है। इसमें डरने की क्या बात है? ऋषि आँधी की स्तुति करते हैं। इसके बाद अंधकार दूर होता है; सूर्य और प्रभा का उदय होता है। ऋषि इसका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। वे ज्ञान-दृष्टि से इसे देखते हैं और हाथ जोड़कर मन्त्र गाते हैं। तब पक्षी भी गाने लगते हैं; फूल खिलते हैं; पानी और पवन हँसते हैं। इतना यह सब प्रकृति-देवता का दृश्य है। ऋषि इसकी स्तुति करते हैं, तो आप समझिये, वे प्रत्यक्ष नारायण की स्तुति करते हैं। उनकी यह स्तुति स्वानुभूति से निष्ठावान् हुई है। इसका उदय अनायास, सोते से पानी की भाँति, स्वाभाविक रूप से हुआ है। यह अनुभूति के रस से सनी हुई है। उनकी यह वाणी लोगों के अज्ञान को मिटा देती है। इसलिए ऋषि स्वयं कहते हैं कि इसकी बराबरी का गाना दूसरा नहीं है।

अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें परमात्मा के दर्शन और स्तुति करने का उन दिनों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आम रिवाज था। प्रायः प्रकृति-पूजा की प्रथा बंद हो जाने के बाद भी, अग्नि-पूजा और सूर्य-पूजा आज तक हमारे यहाँ प्रचलित है। सन्ध्या-वन्दनों में हम नियमित रूप से सूर्य की पूजा करते हैं। और, सभी वैदिक कार्य-कलापों में अग्निहोत्र और पूजन होते हैं। प्रकृति की प्रत्यक्ष में पूजा करने की रीति स्थिर होगी, तो वेद दीप्तिमान् होगा।

शरणागति ही एकमात्र मार्ग है। मेरी समझ में, संहिताओं ने इसके अतिरिक्त कोई और रास्ता बताया ही नहीं है। गुरु का सम्मान करना और एक परमात्मा की ही शरण में जाना, ही उचित है, यही मेरा मन्तव्य है।

मन को बाँधकर उस पर जीत पाने के लिए मन्त्रोच्चारण करना ही ठीक रास्ता है। मुझे नहीं मालूम होता कि, मन्त्र की ध्वनि का ध्यान करने से कोई फ़ायदा होगा। मन्त्र के अर्थ का ध्यान करना चाहिये।

मद्रास, २३-४-१९३९ चयनकर्ता, का० श्री० श्रीनिवासाचार्य

• • •

गुजराती

शिक्षण-ग्रन्थावलि का एक पाठ

[भारतवर्ष में आजकल साक्षरता-आन्दोलन जोरों से चल रहा है। प्रान्तीय सरकारें और नेतागण भी उस आन्दोलन में पूरा-पूरा सहयोग दे रहे हैं। फिर भी बहुत कम लोगों का ध्यान योग्य पाठ्य-पुस्तकों की ओर गया है। हिन्दी-साहित्य में तो साहित्यिक प्रकाशक और लेखक इस ओर बहुत ही कम उत्साह दिखाते हैं; परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि एक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक ही योग्य पाठ्य-पुस्तकें रच सकता है। साहित्य के अन्यान्य विषयों की तरह पाठ्य-पुस्तक लिखना भी एक कला है। भाषा और साहित्य के अध्ययन में, राष्ट्र की मनोधारा का निर्माण करने में पाठ्य-पुस्तकों का बहुत बड़ा हिस्सा है। हमारे मानसिक पतन का कारण बहुत कुछ अंशों में वे पाठ्य-पुस्तकें हैं, जो आजकल भी पाठशालाओं में पढ़ाई जाती हैं। यहाँ हम गुजरात के प्रसिद्ध लेखक श्री धूमकेतु की लिखी हुई प्रौढ़ शिक्षण-ग्रन्थावलि के दूसरे भाग से एक पाठ अनूदित करते हैं।—सं]

'बरसात में तो हमारे गाँव का रास्ता बहुत ही दुःख दे।

'रास्ते में पानी भर जाय और कीचड़ हो जाय। दोनों ओर थूहर की बाड़ और चलने-फिरने की मुश्किल।

'स्त्रियाँ तो अकेली चल ही न सकें।

'और भरी गाड़ियाँ तो धँस ही जायँ।

'पानी बरसने पर तो हम जैसे जेल ही में बन्द कर दिये जायँ।

× × ×

'सभी बातें करते कि रास्ता सुधारना चाहिये।

'बागेवान कहते कि रास्ता सुधारने की आवश्यकता है।

'अफ़सर कहते कि रास्ता सुधारने जैसा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'पटेल कहते कि रास्ता सुधर जाय तो सभी सुखी हो जायँ।

'सभी अफ़सर कहते कि रास्ता सुधरेगा।

× × ×

'कोई कहता इस साल सुधरेगा।

'कोई कहता आती साल सुधरेगा।

'कोई कहता सरकार सुधारेगी।

'कोई कहता कि एक सेठ पैसा देनेवाला है।

'इस तरह कितने ही वर्ष बीत गये।

'हमारा रास्ता तो वैसा का वैसा ही रहा।

'हम भी वही रहे।

× × ×

'एक बरसात में पूंजा कुम्हार का गदहा फँसकर मर गया।

'पूंजा रोकर बैठ रहा।

'दूसरी बरसात में गड़रिये का बकरा मर गया।

'गड़रिया रोकर बैठ रहा।

'इसका तो कोई उपाय ही नहीं दीखता था।

'इस रास्ते ने तो सभी को तंग कर डाला। फिर एक दिन सारा गाँव इकट्ठा हुआ। स्त्री-लड़के, जवान-बूढ़े सभी आये।

'कुदाली, फावड़े और तगारियाँ लाये। सब रास्ता सुधारने लगे।

'तीन दिन में तो रास्ता 'टंच' हो गया।

× × ×

'मालगुजार आये। उनकी मोटर फिसलती आई।

'यह रास्ता किसने सुधारा?'

सारा गाँव बोला—रास्ता हमारा था और हमने सुधारा। तुम अफ़सरों को क्या? आज इस गाँव और कल उस गाँव।

'गाँव तो हमारा है।

'हम सभी का यह रास्ता है और हम सभी ने इसे सुधारा है।'

चयनकर्ता, श्यामू सन्यासी।

• • •

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मराठी

स्वर्ग से निर्वासित

[विदर्भ के ख्याति-प्राप्त साहित्य-इतिहास-संशोधक और कवि श्री वामन नारायण देशपांडे के सुविचार प्रकाशन-मंडल, नागपूर से प्रकाशित 'आराधना' नामक कविता-संग्रह से अनूदित। संग्रह के अन्त में जो टिप्पणियाँ हैं, उनमें लिखा है कि इस संवाद का काव्य विषय सुदर्शनजी की 'संसार की सबसे पहिली कहानी' पर से सूझा और मॉडिसन ज्यूलियस के 'The watches on the Tower' नामक कविता से इसकी परिभाषा ली गई है।]

[स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का रास्ता। चारो ओर घटाटोप अँधेरा छाया है। स्वर्ग से निर्वासित आदम और ईव पहले मानव-दम्पति उस राह से चले जा रहे हैं। स्वर्ग में कभी रात नहीं होती ; उन्होंने कभी अँधेरा देखा नहीं है। इसी से उस अन्धकार के प्रथम विराट् दर्शन से दोनो अतिशय भयविह्वल हो गये हैं।]

ईव—(सिहरती हुई) कब मिटेगा अन्धकार ?

आदम—(निसाँस डालकर) हा, न जाने कब। हृदय धड़कता है। मानो अभी फूट जायेगा। तुम बालों में मुँह ढाँप लो, मैं भी एक हाथ से वही करता हूँ।

(ईव सघन खुले बालों में और आदम दाहिने हाथ से मुँह ढाँप लेते हैं।)

आदम—आँखें मूँदने पर अँधेरे का डर कम हो गया। मेरा दूसरा हाथ तेरी कटि से गुम्फित ही रहने दे।

(आदम दाँयें हाथ से ईव की कमर को लपेट लेता है।)

ईव—(सिसकती हुई) प्रभु, इस अँधेरे का कोई पार भी है ? कब मिटेगा अन्धकार !

आदम—हा, न जाने कब ! ज्ञान-तरु का फल जान-बूझकर चखा, इसी से क्या प्रभु, तुमने स्वर्ग से हमें निर्वासित कर दिया ? और अब अँधेरे में यों आ पड़े हैं, राह भी नई है।

ईव—(थकी-सी) चलते-चलते श्रान्ति भी आ चली।

आदम (गद्गद् होकर)—प्रभु, इस अँधेरे का कोई पार भी है ?

× × ×

ईव—कब मिटेगा अन्धकार ?

आदम—न जाने कब ? कैसे पुनः नन्दनवन के होंगे दर्शन ?

ईव—(ललचाई दृष्टि से) उस नन्दन को छोड़कर जो और जगह हैं, वहाँ निरा तम-ही-तम रहता है ? जिस मेदिनी में हम जा रहे हैं, वहाँ भी क्या यही भयावना अन्धकार...

आदम—(निराशा से) अन्धेरा न होता तो प्रभु हमें वहाँ भेजते भी क्यों ?

ईव (सिहरकर)—प्रभु ! इस तिमिर का क्या कोई छोर नहीं ?

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ईव—(सिसककर) कब मिटेगा अन्धकार ?

आदम—(निश्वास के साथ) हा, न जाने कब ?

ईव—(कुछ सुन रही हो ऐसे भाव से) दूर से, कहाँ से यह कानों पर पक्षी-रव आया। यह गुंजन-स्वर ? यह दयार्णव ! और कौन-सी पहेली है ?

आदम—(नकली धीरज के साथ) मैं अपनी आँखें खोलकर देखूँ ?

ईव—(अधीरता से)—ना, ना, प्राण, तुम डर जाओगे ?

आदम—(गद्गद् होकर) प्रभु ! इस अँधेरे का कोई पार भी है ?

× × ×

ईव—(काँपती हुई) कब मिटेगा अन्धकार ?

आदम—(निश्वास के साथ) हा ! न जाने कब ?...

ईव—(अधिक सभीता-चकिता) यह पक्षी-रव और पास आया ?...क्या होगा यह ?...

आदम—(बड़े कष्ट से धैर्य सँवार) देख ही न लूँ।

[देखता है—सवेरा हो चुका है, हर्षातिरेक से वह ईव को अपने हृदय से चिपटा लेता है।]

अहा ! तेज फूटा !...खग गाते हैं !...यही है क्या पृथ्वी ! यहाँ तो अँधेरा बिल्कुल नहीं है—!

ईव—(आँखें खोलकर सानंद) आखिर वह मिट ही तो गया (पर क्षणेक प्रफुल्लित रहकर पुनः खिन्न होकर, सखा, परंतु उस अँधेरे की स्मृति, इस तेज से ज्यादा मन में रहेगी ?

आदम—वही मेरी दशा है (वह भी कुछ क्षण आनंद-मग्न होकर पुनः विषादमय हो जाता है।)

विरामक (Epilogue)

तेज में का ईश्वरीय अंश—(आदम और ईव को, तिमिर-स्मृति ही विशेषतः याद रहती है, यह जानकर सखेदाश्चार्य और स्वगत)—जो होना नहीं चाहिये था, वही हुआ।

तिमिर में का शैतान का अंश—जो होना था वही हुआ।

तेज में का ईश्वरीय अंश—मानव को तेज भी यदि दिखाई दे, तो भी तेज से अधिक तम की ही स्मृति उसे रहती है।

तिमिर में का शैतान का अंश—यह तो अच्छा ही है।

तेज में का ईश्वरीय अंश—इस वृत्ति का नाश करने के लिऐ मैं प्रयत्न करूँगा।

तिमिर में का शैतान का अंश—मैं भी क्यों न उसे अविनाशी बनाने का प्रयत्न करूँ ?

× × ×

और यहीं से मानव-हृदय समरभूमि बन गया !

चयनकर्ता, प्रभाकर माचवे।

• • •

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक आवश्यक सामाजिक कार्य

[उपर्युक्त शीर्षक से 'स्त्री' मासिक-पत्रिका के अप्रैल, १९३९ के अंक में श्रीमती गोदावरी गोखले का एक उपयोगी लेख प्रकाशित हुआ है। हमारे देश में स्त्रियों की और बच्चों की मृत्युसंख्या इतनी अत्यधिक क्यों बढ़ गई है, और उसको घटाने के क्या उपाय हो सकते हैं, उन्हें दिखाना इस लेख का उद्देश्य है, जिसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है।—सं०]

'इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के आरोग्य-विभाग द्वारा प्रकाशित सन् १९३५ की रिपोर्ट में निम्नलिखित ज्ञातव्य बातें प्राप्त हुई हैं :

'गत एक साल में बच्चों की जन्मसंख्या ९६,९८,७९४ थी।

'एक साल से कम आयु के बच्चों की मृत्युसंख्या १२॥ लाख।

'प्रसूति या उससे होनेवाली बीमारियों के कारण स्त्रियों की मृत्यु-संख्या १,५०,०००।

'आयु के बढ़ने के साथ-साथ बच्चों की मृत्यु-संख्या घटती जाती है। उसका ब्यौरा उन्होंने इस प्रकार दिया है :

'१ महीने से कम आयु के बच्चों की मृत्यु-संख्या ७४१३७२ (प्रतिशत ४७)

'१ महीने से लेकर ६ महीने तक की आयु के बच्चों की मृत्यु-संख्या ४८८५४४ (,, ३३)

'६ महिने से लेकर १२ महिने तक की आयु के बच्चों की मृत्यु-संख्या ३५८२८६ (,, ३०)

'एक साल तक की आयु के बच्चों की कुल मृत्यु-संख्या १५८८२०२ है। दूसरे देशों में यह प्रमाण बहुत ही कम है। इंग्लैंड और वेल्स दोनो देशों में मिलाकर प्रति हज़ार बच्चों में केवल ५७ ही मरते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में यह मसला हल करना बड़ा कठिन हो गया है।

'बच्चों की मृत्यु के कुछ कारण निम्न-लिखित हैं :

'(१) गरीबी, जो अज्ञानता की जन्मदात्री है। बहुत-सी स्त्रियाँ आरोग्य-शास्त्र और शिशु-संगोपन-शास्त्र से अनभिज्ञ होती हैं। बात सच है ; किन्तु पेट पालने के लिए अपरिमित परिश्रम करनेवाली स्त्रियों को इतनी फुरसत ही कहाँ मिलती है कि वे—आरोग्य-शास्त्र पर विचार कर सकें ?...और सब प्रकार की जानकारी होने पर भी इस सम्बन्ध के साधन उन्हें कहाँ से प्राप्त हो सकते हैं ? मुख्यतः मिलों में काम करनेवाली स्त्रियों की यह हालत है। हमारे देश में केवल कपड़ों की मिलों में काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या पचास लाख से ऊपर है।

'(२) रहने लायक स्थानों का अभाव। हमारे देश में निम्न-लिखित ढंग से लोग रहा करते हैं :

'१ कमरे में या उससे भी कम जगह में प्रति हज़ार ५२४'० परिवार

'२ कमरों में ,, ,, ,, ३९४'५ ,,

'३ ,, ,, ,, २५५'४ ,,

'४ ,, ,, ,, २४६'५ ,,

[८११

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'बम्बई-सरकार की रिपोर्ट में एक जगह लिखा है कि १२×१५ फीट नाप के कमरे में एक साथ ३० आदमी बम्बई शहर में रहते हुए पाये गये हैं।

'(३) स्त्रियों को प्रसूति के पहले और बाद में तुरन्त ही अपरिहार्य रूप से काम में लग जाना पड़ता है। साथ ही मानसिक चिन्ताओं से वे आठ पहर कष्ट उठाती हैं।'

इस सम्बन्ध में लेखिका ने जो उपाय बतलाये हैं, वे विचार करने योग्य हैं। वे कहती हैं कि सब प्रान्तीय सरकारों के द्वारा 'मैटर्निटी बिनिफिट ऐक्ट' अमल में लाया जाना चाहिये। १८१९ में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् में संसार की सभी मजदूर स्त्रियों की हित-रक्षा के लिए यह कानून मंजूर किया गया था। जहाँ पर यह कानून अमल में है, वहाँ की प्रत्येक मजदूर स्त्री को प्रसूति के पहले और प्रसूति के बाद कुछ दिनों के लिए वेतन-सहित छुट्टी मिल जाती है। सन् १९२४ में श्री एन० एम० जोशी ने केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभा में इस सम्बन्ध में एक बिल पेश किया था। लेकिन सरकार ने यह कहकर कि श्री जोशी बतलाते हैं, वैसी स्थिति इस देश में नहीं है, वह बिल नामंजूर कर दिया था। सौभाग्य से कुछ प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। सन् १९२९ में बम्बई प्रान्त सन् १९३० में मध्यप्रान्त और सन् १९३४ में मद्रास प्रान्त की सरकारों ने यह कानून अपने-अपने प्रान्त में जारी किया। किन्तु अज्ञानता-वश और मिल-मालिकों के भय के कारण हमारी मजदूर स्त्रियाँ इस कानून से कुछ भी लाभ नहीं उठा सकतीं। उन्हें कानूनन छुट्टी तो मिल जाती है; लेकिन मिल-मालिक चाहे जो कारण दिखाकर ऐसी स्त्रियों को फिर से काम पर लेने से इन्कार कर देते हैं। डॉक्टरी सर्टिफिकेट द्वारा और कड़ी देख-रेख से इस कानून को नियमित रूप से अमल में लाया जा सकता है।

'आज हमारे देश में सूतिकागृहों की भी भारी कमी है। बम्बई प्रान्त में प्रति ११०२ स्त्रियों में केवल एक ही स्त्री की व्यवस्था सूतिकागृह में हो सकती है। इस उदाहरण से और प्रान्तों की हालत के सम्बन्ध में आसानी से कल्पना की जा सकेगी। बीमार स्त्रियों की और बच्चों की रक्षा के लिए हिन्दुस्तान में केवल ८०० ही केन्द्र हैं।

'इन सब बातों के कारण आज हिन्दुस्तान जैसे एक उगते राष्ट्र की सन्तान मृत्यु का खिलौना हो बैठी है, यह बात सोचकर हृदय काँपता है। क्या कांग्रेसी सरकारें इस ओर कुछ ध्यान दे सकेंगी?'

चयनकर्ता, यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

अंग्रेज़ी

बिखरे विचार

[भारत के निर्वासित साहसिक क्रान्तिकारी राजा महेन्द्रप्रताप जापान में P. O. Box 20, Akasaka, Tokyo से World-Federation (विश्व-संघ) नामक एक पत्रिका निकालते हैं। पत्रिका से अधिक उसे बुलेटिन ही कहना उपयुक्त होगा। विषम आर्थिक परिस्थितियों के कारण कभी वह निकलता है, कभी नहीं भी निकलता। उसमें 'शिव कॉलम' के शीर्षक से राजाजी अपनी आत्मकथा के मजेदार संस्मरण लिखते हैं। और 'हमारे विचार' नामक अग्रलेख में अपना मंतव्य प्रकाशित करते रहते हैं। उनमें से जनवरी और अक्तूबर '३८ के अंक से कुछ विचार विश्व की सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से मूल्यवान् मानकर नीचे दिये जाते हैं — सं०]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'(१) छोटे छोटे नेताओ ! अपने अनुयायियों को गुमराह न करो। अनुयायी बना रखने की खातिर ही सिर्फ, अनुशासन शब्द का उपयोग न करो। न फूँको उनमें ऐसी संकुचित देशभक्ति, जो औरों की देशभक्ति की मारक हो। क्योंकि दूसरे गैर नहीं, पड़ोसी हैं।

'(२) जनता ! ग़लत नेता बनाने की ज़िम्मेदारी तुझ पर है। तेरी यह आदत है कि जो कोई ज़रा भी अलौकिक, अजीब और जोरावर दीखे, उसी के सामने झुक पड़ती है। इसी में से ग़लत नेताशाही का उदय होता है। ज़रा नीति की कीमत गुन और प्रकाश का अनुसरण कर। (Prize morality and Follow enlightenment)

'(३) युद्ध बुरा है। मगर आज के इस ज़माने में अनिवार्य भी तो है।

'(४) उच्च कुलोत्पन्न और नीच कुलोत्पन्न ऐसी कोई चीज़ नहीं है ! ऐसी धारणाएँ ज़रूर लोगों के मन में पैठ गई हैं। नीच कुलोत्पत्ति की ही भावना, कुछ बढ़कर राष्ट्रीय अहंता का रूप ले लेती है।

'(५) हमारी सबसे छोटी इकाई ग्राम हो। ज़मीन के टुकड़े को आदि बिंदु मानकर हम काम शुरू करें।

'(६) सबकी ख़ुशी में हमारी ख़ुशी है। और हमारी सबकी ख़ुशी में ख़ुदा की ख़ुशी है।

'(७) ऊँचे ख़यालात ही हमारा पहला कर्म है।'

चयनकर्ता, प्रभाकर माचवे।

• • •

हिन्दी

साहित्य-संगठन

[काका कालेलकर ने मई, '३९ के सर्वोदय में साहित्य-संगठन पर अपने विचार प्रकट किये हैं। लेख उपयोगी होने से यहाँ उद्धृत किया जाता है।—सं०]

'क्या साहित्यकारों का भी कभी संगठन हो सकता है ?

'भाषासेवियों का संगठन अवश्य हो सकता है।

'लोकव्यवहार में स्वभाषा की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए, परभाषा के आक्रमण से स्वभाषा को बचाने के लिए उसका शब्दकोश निश्चित और समृद्ध करने के लिए, नयी-नयी पारिभाषिक संज्ञायें बनाने के लिए, विभिन्न भाषाओं के अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का स्वभाषा में उलथा करने के लिए, शब्दों के वर्णन (हिज्जे) और शुद्ध-लेखन निश्चित करने के लिए, व्याकरण और लिपि-सुधार के लिए, स्वभाषा के साहित्य की परीक्षायें लेने के लिए और शास्त्रीय ग्रन्थ तथा पाठ्य-पुस्तकें लिखाने के लिए भाषासेवियों और भाषाप्रेमियों का संगठन हो सकता है।

'किन्तु आजकल जिसे विशेष अर्थ में साहित्य कहते हैं, वह तो एक स्वच्छन्दी चीज़ है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हरएक लेखक अपने लिए अपना अलग कानून बना लेता है। हरएक का जीवनोद्देश स्वतन्त्र और अद्वितीय होता है। भाषा, शैली और मिशन तीनों में वह किसी के साथ नहीं चल सकता। साहित्यकार एक दूसरे के प्रश्नों से परिचित हो सकते हैं, एक दूसरे के टीकाकार भी हो सकते हैं; किन्तु उनके संगठन से प्रयोजन ही क्या है?

'साहित्यकार का पेशा करनेवाले लोगों को आजीविका का सवाल हमेशा सताता है। उसे हल करने के लिए कभी-कभी संगठन करना पड़ता है। लेकिन वह तो मज़दूर-संघ के जैसा व्यावसायिक संगठन हुआ। साहित्यकार जीवन के अनुभव से जितना पोषण पाते हैं, उससे अधिक दूसरों के लिखे हुए ग्रन्थों से और देश-विदेश की साहित्य-समृद्धि से पाते हैं। ऐसे लोगों को हर जगह पुस्तकालय और साधन-ग्रन्थ मिलना मुश्किल है। बहुत से होनहार साहित्य-सेवकों की प्रतिभा साधनों के अभाव के कारण कुंठित हो जाती है। ऐसे लेखकों को साहित्यिक मदद पहुँचाने का प्रबन्ध होना चाहिये। हरएक समाज का हित इसमें है कि उसके प्रभावशाली लेखक कम से कम अपने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रवास करके लोकस्थिति से परिचय प्राप्त करें। समाजनायकों से और प्रयोगवीरों से वार्तालाप करें। भिन्न-भिन्न संस्थाओं का संचालन देखें और समानशीलों के साथ विचार-विनिमय करें। इस उद्देश की पूर्ति के लिए जिनकी प्रतिभा सन्मान्य हो चुकी है और जिनकी सामाजिक दृष्टि हितकर है, ऐसे साहित्यसेवियों को 'प्रवास वृत्ति' (ट्रेवलिंग फेलोशिप) देने का प्रबन्ध होना ज़रूरी है। इसके लिए जो संगठन होगा वह साहित्य-सेवियों का नहीं, किन्तु साहित्य की कद्र करनेवाले दाताओं का और समाजसेवकों का होगा। अगर यह बात साहित्यसेवियों को ही सौंपी जाय तो पता नहीं कैसा प्रबन्ध होगा। अगर ऐसा संगठन हुआ भी तो उसे दक्षिणा का प्रबन्ध कहना चाहिये।

'साहित्यसेवियों के संगठन के प्रधान उद्देश्य कुछ और भी हो सकते हैं। वे साथ बैठ-कर साहित्य के आदर्शों की चर्चा करें, उसका इतिहास लिखें अथवा साहित्य के द्वारा लोगों के सामने जो चीज़ें परोसी जाती हैं, उनकी योग्यता-अयोग्यता की चर्चा करें। इसके लिए समय-समय पर व्यापक अथवा परिमित किन्तु निश्चित उद्देश से बुलाई हुई परिषदें और सम्मेलन काफ़ी हैं। स्थायी संगठन से साहित्यसेवी क्या लाभ उठा सकते हैं?

'एक बात है। जब कभी सरकार अथवा विद्यापीठों की ओर से साहित्यसेवियों की सम्मिलित राय पूछी जाती है, तब साहित्यसेवियों के संगठन की ज़रूरत मालूम होती है। लेकिन अक्सर ऐसा देखा गया है कि साहित्यसेवी सम्मिलित राय देने में बड़ी हिचकिचाहट बताते हैं। इसलिए इस परिमित उद्देश से ही किया गया साहित्यकारों का संगठन शायद ही लाभदायी हो।

'यद्यपि ये सब बातें सही हैं, तथापि जब कि दुनिया-भर के सब वर्ग अपना-अपना संगठन कर रहे हैं, तब साहित्यकारों का संगठित होना उचित है। साहित्यकारों का स्वभाव संगठन के अनुकूल नहीं होता। महज उनके इस स्वभाव में परिवर्तन करने के उद्देश से ही साहित्यकारों का संगठन करना इष्ट है।

—२—

'अगर साहित्यसेवी आपस में कोई संगठन करने जायँ तो उसका कुछ निश्चित उद्देश होना चाहिये। कुछ दृष्टि-साम्य भी होना चाहिये। पसन्दगी-नापसन्दगी की कुछ कसौटी भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होनी चाहिये। साहित्य तो केवल विचारों का वाहन है, आकृति-मात्र है। उसके अन्दर हम कैसा द्रव्य भरना चाहते हैं, इसी पर उसकी योग्यता निर्भर है। भोजन के बर्तन जब साफ़ होते हैं, चमकीले होते हैं, अनुकूल और सुडौल होते हैं, तब भोजन करने में आनन्द आता है। किन्तु केवल खाली बरतनों से भोजन नहीं हो सकता। केवल बरतन देखकर कुछ प्रसन्नता तो हो सकती है। किन्तु विचारशून्य साहित्य से यह भी नहीं हो सकती। साहित्यरूपी भाजन (बरतन) में भोजन किस किस्म का होता है? मनुष्य अपने विचार, अनुभव, कल्पनायें, आकांक्षायें और आदर्श सब कुछ आदर्श-बद्ध कर डालता है। हमेशा अपेक्षा यह रहती है कि साहित्य रोचक हो, निर्दोष हो और पौष्टिक हो, ज्ञानप्रद हो और प्रेरक भी हो। साहित्य के द्वारा हम अपनी जानकारी भी बताना चाहते हैं। विचारशक्ति पैनी करना चाहते हैं। चित्तवृत्ति कोमल, ललित, और संस्कारी बनाना चाहते हैं! और संकल्पशक्ति मजबूत करना चाहते हैं। जो साहित्य केवल रोचक है; किन्तु हानिकर है, वह तो ज़हर के समान है। उसे तजना ही चाहिये। जो साहित्य केवल आकर्षक है, किन्तु ऊपर बतलाये हुए किसी भी काम का नहीं है, वह व्यर्थ है। उससे डरना चाहिये। वह जीवन-सत्त्व नष्ट कर देगा। अभिरुचि नष्ट कर देगा। जो साहित्य समाजहित के लिए बाधक नहीं है, सुरुचि का भंग नहीं करता, सदाचार को परिपुष्ट और उत्तरोत्तर उन्नत करता है, कृत्रिमता को अप्रतिष्ठित करता है, वही साहित्य अच्छा है। साहित्य केवल एक शक्ति है। उसका हम जैसा उपयोग करेंगे, वैसी ही उसमें लाभ-हानि होगी। अग्नि का उपयोग जंगल और गाँव जलाने के लिए भी हो सकता है। षड्रस अन्न पकाने और भट्ठियाँ जलाने के काम भी वह आ सकता है। मनुष्य समाज के भिन्न-भिन्न अंशों में, भिन्न-भिन्न वर्णों में और भिन्न-भिन्न वर्गों में स्वार्थ, ईर्षा और द्वेषमूलक विद्रोह भी साहित्य बढ़ा सकता है। अथवा परस्पर-विरोधी तत्त्वों को एक दूसरे के निकट लाकर उनकी अच्छाइयों का संगठन कर वह मानवता का विकास भी कर सकता है। जो इष्ट हो उसी का अंगीकार करना चाहिये। जो अनिष्ट हो, उसका तिरस्कार करना चाहिये। तिरस्कार नहीं तो बहिष्कार ही सही।

'इस बात पर जिनका एकमत है, उनका संगठन न केवल हो सकता है, किन्तु समाज की बहुत ही बड़ी सेवा भी कर सकते हैं।

'अगर उद्देश स्पष्ट न हो तो परस्पर-विरोधी और मारक वस्तुओं के संगठन का प्रयास किया जायगा और उसका फल क्लेश के सिवा और कुछ नहीं आयेगा।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गल्प-संसार-माला (उर्दू)—प्रकाशक : सरस्वती-प्रेस, बनारस ; प्रथम संस्करण : मूल्य आठ आना ।

प्रस्तुत संकलन से हमें उर्दू कहानी की प्रगति और उसके विकास का अच्छा ज्ञान हो सकता है। इनमें कुछ कहानियाँ तो हम हिन्दी में भी देख चुके हैं : 'कफ़न', 'मरघट', 'हमारी गली'। और कुछ कहानियाँ हमारी आँख खोल देती हैं : जैसे 'तारू', 'अब्बू खाँ की बकरी', 'डाची' अथवा 'आँगी'। इन कहानियों में पंजाबी गाँव और ग्रामीण जीवन के मार्मिक चित्र हैं जिनसे हम लोग अभी तक अनभिज्ञ हैं। एक नई ही दुनिया में यह कहानी हमें ले जाती हैं। उर्दू कहानी में बल और प्रतिभा के साथ-साथ रोचकता भी है। यदि 'प्रेम-तरु' अथवा 'एकान्त का साथी' मर्मस्पर्शी हैं, तो 'चचा छक्कन' हँसी का घर है।

इस संग्रह में प्रगतिशील स्कूल का भी अच्छा प्रतिनिधित्व है। स्वर्गीय प्रेमचन्द, श्री अख़्तर हुसेन रायपुरी, प्रो० अहमद अली प्रगतिशील कहानीकार हैं। हमारे समाजिक जीवन में जो संघर्ष और ग़रीबी है, उसे यह कहानियाँ अच्छी तरह दर्शाती हैं।

श्री० कृष्णचन्द्र की 'आँगी' एक अच्छी तरह लिखी कहानी है, किन्तु सर्वथा 'रोमेन्टिक' है। आपको न जाने कैसे प्रगतिशील कहा गया ?*

यह संग्रह उन हिन्दी पाठकों के लिए अमूल्य वस्तु होगा, जो उर्दू नहीं जानते।

'कफ़न' की हिन्दी में काफ़ी चर्चा हो चुकी है। 'प्रेम-तरु' उच्च कोटि की कहानी है और पुरानी अमर कथाओं का हमें स्मरण दिलाती है। 'कुत्ते' निबंध है, कहानी की कोटि में वह नहीं आता ; यद्यपि कहानी और निबन्ध के बीच एक क्षीण रेखा ही है, जिसे हम बहुधा पार कर जाते हैं। 'नया मकान' एक सफल व्यक्ति-चित्र है। 'एकान्त का साथी' बड़ी मार्मिक कहानी है ; कुर्बान मियाँ को हम समाज की जूठन कह सकते हैं ; बड़ी व्यथा इस चित्र में भरी है।

इस संग्रह में एक अनमोल वस्तु है 'चचा छक्कन'। इसको पढ़कर पाठक हँसते-हँसते लोट जाता है। चचा छक्कन ने सबके लिए केले ख़रीदे थे, किन्तु खा सब आप ही गये। साथ ही एक पुरानी लुप्त होती हुई संस्कृति की भी हमें यहाँ झलक मिलती है, जो हठात् 'नयशोर के बाबुओं' का हमें स्मरण दिलाती है। 'मिश्र की शाहज़ादी' में भी हमें उच्च कोटि का निर्मल विनोद मिलेगा।

हमें हर्ष है कि जीवन-संघर्ष की गंभीरता में भी हम हँसना नहीं भूल रहे।

आगरा।

प्रकाशचंद्र गुप्त।

• • •

कुछ विचार—लेखक : स्व० प्रेमचन्द : प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, बनारस ; प्रथम संस्करण : मूल्य २)

स्वर्गीय प्रेमचन्द को अमर कथाकार के रूप में तो बहुत लोग जानते हैं, किन्तु साहित्य,

*श्री कृष्णचन्द्र प्रगतिशील लेखक-संघ की लाहोर शाखा के प्रधान मंत्री हैं।—सं०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कला अथवा भाषा-संबंधी विषयों के प्रौढ़ विचारक के रूप में कम ही उनसे परिचित हैं। कला और भाषा के रूप पर भी उन्होंने बहुत कुछ मनन किया था, और उनका यह ज्ञान अकसर उनके वार्त्तालाप में छलक पड़ता था। हमें हर्ष है कि उनके प्रकाशकों ने सर्वसाधारण के लिए उनके विचार उपलब्ध कर दिये हैं।

प्रस्तुत संग्रह में दो निबंध उपन्यास पर, तीन कहानी पर, एक साहित्य और जीवन पर, एक प्रगतिशील लेखक-संघ के प्रधान की हैसियत से दिया भाषण 'साहित्य का उद्देश्य'— हैं। शेष चार निबंध भाषा-संबंधी हैं।

इन लेखों में हिन्दी कहानी का बहुत कुछ इतिहास मिलेगा और उसके वर्त्तमान स्वरूप की विवेचना भी।

'कहानी जीवन के बहुत निकट आ गई है। उसकी ज़मीन अब उतनी लम्बी-चौड़ी नहीं है।...अब वह केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का, सजीव, हृदय-स्पर्शी चित्रण है।'

'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र मानता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'

साहित्य और जीवन के पारस्परिक संबंध के विषय में स्व० प्रेमचन्द ने बहुत सोचा था। वह साहित्य को केवल मनोरंजन की सामग्री न मानते थे। वह उसी साहित्य को ऊँचा समझते थे, जो हमारी अनुभूतियों को परिष्कृत करे।

'मनुष्य ने जगत् में जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं।'

'एक आलोचक ने लिखा है कि इतिहास में सब कुछ यथार्थ होते हुए भी वह असत्य है, और कथा-साहित्य में सब-कुछ काल्पनिक होते हुए भी वह सत्य है।'

आप साहित्य को दर्पण न मानकर दीपक मानते थे, जिसका काम आलोक फैलाना है।

किन्तु प्रेमचन्द की जड़ें दूर तक धरातल में फैली थीं। आपने इस देश की दरिद्रता और असमर्थता देखी और समझी थी। पिछले दिनों में आपका आदर्शवाद भी डिग चला था और आप समझ गये थे कि हमारे समाज का संघर्ष हृदय-परिवर्त्तन से दूर न हो सकेगा।

'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो,— जो हममें गति और संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं; क्योंकि अब और ज़्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'

भाषा-संबंधी निबंधों में 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी' का मसला सुलझाने की कोशिश की गई है। प्रेमचन्द हिन्दुस्तानी का पक्ष समर्थन करते थे। उसके अतिरिक्त हमारे पास और कोई चारा भी नहीं। आज हमारे राष्ट्र की धारा टूटकर दो विभिन्न दिशाओं में जा रही है और हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि इन पार्थक्य प्रवृत्तियों को हम रोकें। हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। चाहे उसे देवनागरी लिपि में लिखें, चाहे फ़ारसी लिपि में। हमारी व्यक्तिगत राय यह है कि राष्ट्र के कामों में हिन्दुस्तानी का प्रयोग दोनो लिपियों में हो; किन्तु हिन्दी और उर्दू-साहित्य का स्वतंत्र विकास चलता रहे। व्यावहारिक नीति इसके अतिरिक्त हमारे पास और कोई नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम प्रकाशक के साथ सहमत हैं कि इन विचारों की 'सामयिकता अभी नष्ट नहीं हुई है।'

आगरा। प्रकाशचंद्र गुप्त।

• • •

मानवेन्द्रनाथ राय की संक्षिप्त जीवनी: लेखक, श्री त्रिवेणी परमानन्द; प्राप्तिस्थान, मार्क्सिस्ट स्टडी सर्कल, आलम बिल्डिंग, नयाटोला, बाँकीपूर; पृष्ठ-संख्या २६४; मूल्य सलिल्द १।।।)

मानवेन्द्रनाथ राय जैसा महान् क्रान्तिकारी नेता पाकर हमारा देश सचमुच गौरवान्वित हुआ है। हम उनके राजनीतिक सिद्धान्तों से आज चाहे सहमत हों, या न हों, हमें यह बात माननी पड़ेगी कि उन्होंने न केवल स्वदेश के लिए, बल्कि संसार के सभी शोषित वर्गों के प्रति अपनी सेवायें अर्पित करने में कुछ भी बाकी नहीं रखा है। रूस, मेक्सिको, चीन आदि राष्ट्रों की जन-क्रान्तियों में भाग लेकर राय ने जो कार्य किया है, वह उनके इस महत् त्याग का उज्ज्वल उदाहरण है। उनका यह राजनीतिक कार्य पठनीय एवं अध्ययनीय है। अतः श्री त्रिवेणी परमानन्द द्वारा लिखित राय के इस चरित्र को पाठकों को हम सिफारिश करते हैं।

हिन्दुस्तान के कितने ही भूतपूर्व क्रान्तिकारी आज अकर्मण्य होकर बैठे हैं। किन्तु राय, जैसा कि इस चरित्र से मालूम होता है, आज भी उतने ही कार्य-मग्न हैं, जितने वे अपनी युवावस्था में थे। भूतकाल के उनके कार्य को 'भव्य इतिहास का उलटा हुआ पृष्ठ' कहकर हम उसकी ओर दुर्लक्ष नहीं कर सकते। कारण, राजनीतिक क्रान्ति से गुजरनेवाले हम लोगों के लिए उनका यह कार्य अध्ययन की महत्त्व-पूर्ण सामग्री है। उसी प्रकार उनके वर्तमान कार्य से मुँह मोड़ना भी उचित नहीं होगा। चूँकि उनके कार्य के इतिहास का आखिरी पन्ना अभी लिखा जानेवाला है। सारांश, राय हमारी आज़ादी की लड़ाई का नेतृत्व करनेवाले उन इने-गिने व्यक्तियों में से एक हैं, जिनकी आज हमें नितान्त आवश्यकता है और जिनकी हमें कदर करनी चाहिये। इस दृष्टि से पं० जवाहरलालजी के ये शब्द—'श्री मानवेन्द्रनाथ राय वर्तमान युग में हिन्दुस्तान के सबसे बड़े साहसी और सपूतों में हैं' सच्चे प्रतीत होते हैं।

ऐसे व्यक्ति का हिन्दी में चरित्र लिखकर श्री त्रिवेणी परमानन्द ने जो कर्तव्य-पालन किया है, उसके लिए हम उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। यह चरित्र पढ़ते समय उपन्यास-सा मजा आता है। वाङ्मय की सभी शाखाओं में जीवन-चरित्र ही एक ऐसी शाखा है, जो कथा, काव्य, इतिहास, मानसशास्त्र आदि विविध विषयों से प्राप्त होनेवाला आनन्द एक साथ प्रदान करती है। तथापि ऐसे उच्चकोटि के चरित्र-ग्रन्थों की रचना यदा-कदा ही होती है। यूरोपीय भाषाओं में एमिल लुडविग, स्टिफन श्विग, आन्द्रे मोर्वा आदि लेखक सफल चरित्रकार के नाते सुप्रसिद्ध हो चुके हैं। ए० जी० गार्डीनर के छोटे स्वभाव-चित्र भी बड़े रसीले होते हैं। श्री त्रिवेणी परमानन्द ने मानवेन्द्रनाथ राय के चरित्रकार के नाते इस दिशा में जो प्रयत्न किया है, उसमें हमें ऐसी ही प्रतिभा का आभास मिलता है, यद्यपि उसको सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता। पुस्तक की भाषा हिन्दुस्तानी है, और सरल है।

इस चरित्र के प्रकाशन से एक सामयिक आवश्यकता की अच्छी पूर्ति हुई है। 'ऐसे समय में जब हमारा देश एक भयानक कशमकश के बीच गुजर रहा है, क्रान्तिकारी महापुरुषों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की जीवनियाँ हममें साहस का संचार करती हैं, हमें राह दिखाती हैं।'—लेखक का यह कथन ज़रा भी अतिशयोक्ति-पूर्ण नहीं है। राय का जीवन-चरित्र बंगाली, मराठी आदि भाषाओं में बहुत पहले लिखा गया है। अब वह हिन्दी में भी प्रकाशित हो रहा है, यह हर्ष की बात है। हमें विश्वास है कि राय का यह जीवन-चरित्र हिन्दी-जनता का आश्रय पाकर उसको आज़ादी की लड़ाई में अग्रसर होने में कुछ न कुछ मदद अवश्य पहुँचा सकेगा। और इसी में लेखक के श्रम की सार्थकता है!

यशवंत तेंडुलकर।

• • •

हवन—मराठी कहानी-संग्रह; लेखक: श्री वामन चोरघडे; प्रकाशक: वनिता चोरघडे, सरिता प्रकाशन, वर्धा; मूल्य ॥=)।

श्री वामन चोरघडेजी ने 'सुषमा' के बाद प्रस्तुत 'हवन' नामक कहानी-संग्रह मराठी के साहित्य-संसार को अर्पित करके उसकी शोभा बढ़ाई है। कुछ दिन पूर्व 'हंस' के इसी स्तंभ में 'सुषमा' का परीक्षण करते हुए हमने चोरघडेजी से वास्तवपूर्ण कथा-साहित्य की जो आशा व्यक्त की थी, उसकी पूर्ति करने का प्रयत्न उन्होंने इस कहानी-संग्रह के द्वारा किया है, और अपने प्रयत्न में वे सफल भी हुए हैं।

तेरह कहानियों के इस संग्रह की दो-एक कहानियाँ छोड़कर बाकी सभी कहानियाँ वास्तविकता से भरी हुई हैं। इस संग्रह की 'नव्या रुढी' अर्थात् नवीन प्रथायें नामक पहली कहानी मानो आजकल के समाज का एक व्यंग-चित्र है। किसी पण्डितजी का पढ़ाया हुआ शिष्य बहुत दिनों के बाद जब स्थानिक म्युनिसपैलिटी का अध्यक्ष चुना जाता है, तब शहर के स्कूल के और शिक्षकों की भाँति उक्त पण्डित महाशय भी लाचार होकर इस नये अध्यक्ष के—अपने पुराने शिष्य के—घर सेवावृत्ति से किस प्रकार हाजिर होता है, इसका मार्मिक चित्र खींचकर लेखक ने आधुनिक सभ्यता पर, श्री प्रेमचन्दजी के शब्दों में 'महाजनी सभ्यता' पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है। किन्तु इस कहानी की गौण घटना को—नये अध्यक्ष का अपने गुरुजी के प्रति नम्रता-भाव का प्रदर्शन करना—लेकर इस संग्रह के प्रस्तावना-लेखक श्री काका साहब कालेलकर उसको 'गांधीयुग का दर्शन' कैसे कहते हैं यह बात हमारी समझ में नहीं आती।

इस संग्रह की आखिरी कहानी 'रानवोरी का जमींदार' एक ऐसी कहानी है कि जिसमें हमें पूँजीवादी प्रथा के अत्याचारों का यथार्थ दर्शन होता है। एक ज़मींदार का बेटा अपने पिता के पश्चात् संपत्ति का अधिकारी होने पर अपनी स्वैराचारी वृत्ति का किस प्रकार नग्न प्रदर्शन करता है, यह देखकर मन दंग रह जाता है। श्री काकासाहब कहते हैं कि इस कहानी में हमें गोर्की या डोस्टोव्हस्की की कला का दर्शन होता है। हमारी राय में इस कहानी के द्वारा यदि किसी की कला का दर्शन होता है तो वह है, लियो टॉलस्टॉय की कला। गोर्की की कहानियों के पात्र शायद ही देहाती समाज में रहनेवाले होते हैं। गोर्की तो शहर की मिल-मजदूरों की स्त्रियों में और खानाबदोशों के बीच में अपने पाठकों को सैर करवाता है। इसके विपरीत लियो टॉलस्टॉय की कला ने रशिया के देहाती समाज में मनचाहा विहार किया है। गोर्की के पात्र जिस प्रकार देहाती नहीं हैं, उसी प्रकार वे ज़मींदार घराने के भी नहीं हैं। बहुत हुआ तो मिल-मालिक या कल-कारखानादार होंगे जिनकी दुनिया टॉलस्टॉय के देहाती ज़मींदारों की

[शेष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तरह संकुचित नहीं है। ठीक 'रानवोरी का ज़मींदार' जैसा चित्र हमें टॉलस्टॉय के 'The devil' नामक उपन्यास के पूर्वार्ध में मिलता है, जो टॉलस्टॉय के ही जीवन की एक घटना है।

इतना होने पर भी श्री काकासाहब द्वारा इस संग्रह के लिए लिखी हुई प्रस्तावना पढ़ने एवं मनन करने योग्य है, और उससे इस छोटी-सी पुस्तक की शोभा में वृद्धि हुई है, यह बात माननी पड़ेगी।

'सुषमा' की तरह 'हवन' की भी कुछ चुनी हुई कहानियाँ हिन्दी में अनुवादित होने योग्य हैं।

यशवन्त तेंडुलकर।

श्री० वि० स० खांडेकर के दो नये उपन्यास—'हिरवा चांफा' और 'दोन मनें' (दो मन) हिरवा चांफा, प्रकाशक : ज्योत्स्ना-कार्यालय, बम्बई और दोन मनें, प्रकाशक, वीणा-प्रकाशन, नागपूर।

खांडेकर आज के महाराष्ट्रीय औपन्यासिकों में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। वे तरुणों की आकांक्षाओं के प्रतिनिधि कथाकार हैं। इधर उनके दोनो उपन्यास पढ़कर जान पड़ता है कि उनका झुकाव साम्यवाद की ओर विशेष रूप से होता जा रहा है। रोमान्स-प्रियता यद्यपि अभी उनके कथानकों से छूट नहीं पाई है, तो भी गरीबों की और दलितों की सेवा करनेवाले नायक और नायिकाएँ निर्माण कर वे समाज के सम्मुख बड़ा ही उज्वल आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

'हरे चम्पे' का नायक मुकुन्द का जीवन बड़ा विविधता-पूर्ण है। ट्रेन में अचानक अपनी कई बरस पुरानी सहपाठी कुमारी सुलभा से उसकी भेंट हो जाती है। सुलभा जाकर मुकुन्द की बीमार बहन की रुग्ण-परिचर्या में निमग्न हो जाती है। घर पर सुलभा की बड़ी राह देखी जा रही है। विजय एक बिलकुल फैशनेबुल युवक है, जो सुलभा का पाणि-प्रार्थी है। सुलभा बड़े घर की बेटी है। मगर उसका भाई मनोहर बचपन में ही भाग गया है घर से, उस पर इल्जाम था एक वेश्या के ख़ून का। कथानक चकरीला और रहस्यमय होता जाता है। शिरपुर रियासत में एक सेठ मिल खोलना चाहते हैं और उसके लिए किसानों की ज़मीन हड़पने की कोशिश में हैं। नायक मुकुन्द उस सेठ की वासना की शिकार होने जानेवाली केसर को उबार लेता है। वह प्रसंग अत्यन्त मार्मिक है—मुकुन्द ही है कि वह उस नारी-स्पर्श की लालच-भरी सम्मोहिनी से अपने को बचा पाता है। अन्त में सत्याग्रह शुरू हो जाता है। मुकुन्द खेतिहरों का अगुआ है। लाठी की मार पड़ती है। बेहोशी में सुलभा हाथ में झण्डा लिये आगे आती है। झण्डा मुकुन्द के बाद वही सँभालती है। मनोहर, जो लापता था, इतने में आ जाता है। अन्त में मनोहर का इल्जाम हट जाता है। सुलभा मुकुन्द को हरे चम्पे का उपहार देती है और वन्देमातरम् का निर्घोष होता है। 'हरा चम्पा' चिर-तारुण्य का और विशुद्ध प्रेम का प्रतीक माना गया है। कथानक की कृत्रिमता, स्थल-स्थल पर हरे चम्पे के प्रतीक का जबर्दस्ती ठूँसा जाना आदि दोष खलते हैं मगर पुस्तक के भावों की बुलन्दी और भाषा में परिहास और सरसता का प्राचुर्य, सूत्रों की आलंकारिक पद्धति आदि बड़ी ही रोचक बन पड़ी हैं।

'दोन मनें' में एक बालासाहेब नामक पतित व्यक्तित्व—जो कि सिनेमा के डाइरेक्टर थे—के दो मनःस्थितियों का सुन्दर द्वन्द्व खींचा गया है। एक तो उनमें मानसी आदर्श विचार और दूसरी उनकी वासनाएँ, विकार आदि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चंचला नामक सिनेमा-नटी को, श्री नामक नायक—शुरू में एक सुविख्यात क्रिकेट-खिलाड़ी कॉलेजियन, पर बाद में शिवपुर नामक अपने देहात में अछूतों के लिए सत्याग्रह करने पर तुल पड़नेवाले व्यक्तित्व के आकर्षण में आ, उदात्त बन जाने का चित्रण है। बालासाहेब अपनी पूर्व पत्नी और एक प्रेयसी का जीवन बरबाद कर चंचला के आकर्षण के चक्कर में हैं। मगर उनकी भी आँखें अन्त में खुल जाती हैं। सुबोध नायिक नामक पात्र में गान्धीवादी कार्यकर्ता की मनःशान्ति और कठिनाइयों और दुर्बलताओं का सुन्दर अङ्कन हुआ है। लेखक के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'दोन ध्रुव' में के काकासाहब नामक पात्र जैसी ही यह पात्रसृष्टि है। यह उपन्यास वैसे अधिक मनोवैज्ञानिक और इसीसे अधिक मनोरंजक हुआ है।

प्रकाशन सुन्दर है। और खांडेकर की लेखनी से महाराष्ट्र और भी नवीन विषयों पर, और सिनेमा-शैली से कम प्रभावित कथाओं की उम्मीद करता है।

उज्जैन। प्रभाकर माचवे।

चन्द्रनाथ—मूल लेखक, शरद्बाबू ; अनुवादक, यशवन्त तेंडुलकर, प्रकाशक, ज्योत्स्ना-कार्यालय, बम्बई। मूल्य १) रु०, पृ० करीब १५०।

अनुवाद मूल बँगलासे किया गया है। और मराठी भाषा कहीं-कहीं परदेशी-सी जान पड़ने पर भी, कहना होगा, कि अनुवाद अच्छा बन पड़ा है। शरद्बाबू की Spirit को निभाने की कोशिश बहुत कुछ सफल है, और तेंडुलकर कई जगह—जैसे कैलाशनाथ पात्र को सामने लाने में तो जैसे पात्रों की रूह के साथ एक हो गये हैं।

शुरू में वि० स० खांडेकर ने 'लामणदिवा' नामक भूमिका लिखी है, जो खांडेकरजी की और भूमिकाओं से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और तेजस्वी है। उन्होंने साफ बता दिया है कि शरचन्द्र जिस समाज-रचना के खिलाफ विद्रोह-भावना लेकर चले थे, वह सचमुच इसी योग्य है कि लेखक उसके साथ युद्ध करे, सविवेक युद्ध।

वैसे किताब को देखते हुए मूल्य कुछ ज्यादह जान पड़ती है, क्योंकि हिन्दी में और गुजराती में चन्द्रनाथ इस हिसाब से सस्ते में प्राप्य है।

उज्जैन। प्रभाकर माचवे।

सान्ध्यगीत—गुजराती कविता-संग्रह—लेखक : श्री कोलक (मगन लाल लालभाई देसाई) ; प्रकाशक : माधुरी कार्यालय, विले पारले बंबई ; प्रथम संस्करण १९३९ ; मूल्य १।)।

श्री मगनलालभाई गुजरात के तरुण कवि हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी स्फुट कविताओं का संग्रह है। और संग्रह की सभी कविताएँ आठ भागों में बाँटी गई हैं। कविताएँ पढ़ने से लगता है कि कुछेक तो कवि ने हार्दिक अनुभूति की प्रेरणा से लिखी हैं और कुछ केवल कविता लिखने के विचार-मात्र से।

'सान्ध्यगीत' संग्रह की पहली कविता है। इसे संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कविता भी कह सकते हैं। भाव और शब्द-चयन दोनो ही उच्चकोटि के हैं और साथ ही उसमें मधुर संगीत भी पाया जाता है।

पींछांना चाँद वेरी सरती रजनीना
अंतरमां तेज तारां छाई जजे !

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मीठा मयूर मारा जीवननी कुंजना !
तारुं ये उर कंई खोली जजे !

कवि-हृदय की एक आकुल पुकार...ओ मोर, आती रात के अन्धकार भरे हृदय में अपनी पाँखों के चाँद बिखरा तू प्रकाश भर जाना।

मेरी जीवन-कुंज के ओ मधुर मोर, तू अपना भी हृदय खोल जाना—बोल जाना।

'कवि अने वसंत' वातावरण-प्रधान कविता है, उसकी लय पाठक को अपने साथ किसी अज्ञात लोक में बहा ले जाती है।

सर्जन हारे सुंदर सरिता वहवी व्योम विहारे,
म्हाले त्यां कवि कीर्तनकारो फरता कविता क्यारे ;
रस झरती गुर्जर कुंजे
कविओ धन्य हृदय गुंजे।

आँखों के आगे कविता के भाव सजीव हो उठते हैं।

'सन्ध्या और चाँद' गीत पारिवारिक जीवन का एक सफल और प्रभावोत्पादक चित्र है। सन्ध्या की विदाई का समय है। चन्दा (चन्द्रमा) आती है और कहती है, मेरी सन्ध्या-सखी, छन-भर ठहर जाना ; मैं बगीचे में से तेरी वेणी गूँथने को फूल चुन लाऊँ। नित्य तेरी बिदा के समय ही मैं आ पाती हूँ और हम मिल नहीं सकतीं। मैं नित्य ही तुमसे मिलने के लिए तरसती हूँ। और अन्त में कहीं आज भेंट हो सकी है। मिलन का यह क्षण बड़े भाग्य से मिला है, जब कि तू दूर—दूर ससुराल जा रही है—मैं तुझे अनमोल भेंट दूँगी।

.....

वेणी हुँ बांधु आज तारे अंबोडले,
नवलो ए ल्हाव पामुं केमे करी।
वेणीनां फूल-फुल गणती त्यां गालजे
सहियर, सासरिये सारा दिनो !
सासरिये प्होंचे त्यां सुधी संभारजे,
सूनो छे चोक मारो तारा हीणो।

.. प्यारी बहिन, वेणी के फूल गिन-गिनकर ससुराल में तू अपने दिन बिताना। ससुराल पहुँचने तक इस वेणी को सँभाले रखना। तेरे बिना मेरा आँगन सूना है।

और फिर लौटकर इसी राह पर आनन्द भरी हम दोनो मिलेंगी, तब तू 'मने कहेजे प्रीतमनी वातड़ी' और हम मिलकर 'छानी मानी वात करशुं।'

कविताओं में सन्ध्या और चाँद के मिलन का रहस्य भरा वर्णन पाया जाता है ; दार्शनिक विचारोंवाला और साधारण जनता की समझ से परे का वर्णन भी पाया जाता है, परन्तु वर्तमान गुजराती कविता की जो पारिवारिक जीवन के वर्णनवाली विशेषता है, वह कितने सुन्दर रूप में कवि ने चित्रित की है। लोकगीत में बेटी को विदा करती हुई कोई मा जैसे गा रही है—सूनो छे चोक मारो तारा हीणो।

'कविता अने कुदरत' विभाग की कोई-कोई कविता इसी तरह से बहुत सुन्दर और हृदय को छूनेवाली है। परन्तु 'ताजमहल कने यमुनानी गाथा' और 'यमुना कने ताजमहलनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गाथा' में जैसे कवि की प्रतिभा सिकुड़कर रह गई। वैसे ही 'राष्ट्र-भक्ति' विभाग की चारों कविताएँ बिलकुल साधारण हैं। इस भारत वसुंधरा के लिए कवि के हृदय में सिवा 'पापी पण मा ! तुझ भोमे (भूमि) रही जोशे (देखेगा) तुजमां पभु साकार' के कोई उदात्त भावना नहीं स्फुरित हुई।

ग्राम्यगीत के तीन गीत जीवन की कठोर वास्तविकता से भरे-पूरे हैं। तीड (टिड्डियों) का देहात में आना ; लोगों का उन्हें भगाना और अन्त में निराश होकर खेत के किनारे खड़े रह जाना। अच्छा होता यदि कवि उनमें एक नई आशा भी भर देता ! टेडनुं गीत (अछूत का गीत) एक व्यंग से भरा है। हम आदमी थोड़े ही हैं। अछूत हैं। 'अमारो देह छूतां नहि देह' और 'अमो ने अन्ननी साथे वेर'। और

अमारे बोलवुं रामनुं नाम ;
खरुं ने ? दर्शननुं शुं काम ?

'जन्माष्टमी' में गाँव के जीवन का चित्रण बहुत सफलता-पूर्वक हुआ है। परन्तु आश्चर्य होता है कि देहाती जीवन का ऐसा सफल वर्णन करनेवाला कवि 'अटकेला गाड़ावाला बलदने' (अड़ी हुई गाड़ी के बैल को) गीत में कैसे बेसिर-पैर की बातें कह जाता है ! गाम तलेनी भावती भोम (भूमि) देखकर बैल के मन में क्या कभी त्रास उठा है ? वह तो पथ का अन्त आया जान दूना जोर लगाता है। सामने खिले कमलोंवाला गाँव का तालाब देखकर भी क्या वह 'उभो शुं नाचार ?' (लाचार खड़ा रहेगा ?) सारे कविता-संग्रह की सुन्दरता पर यह गीत पानी फेर देता है।

'जीवन रंग' विभाग की कविताएँ भी साधारण ही हैं। हाँ, 'जीवन-हास्य' विभाग की दो-एक कविताएँ बहुत सफल हैं। 'कवि के घर' का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन कवि ने किया है। टूटे-फूटे घर में जब चूहे ऊधम मचाते हैं, तो कवि-पत्नी बिगड़ जाती हैं। कविजी पैरवी करते हैं :

चाल सखी ! तेमां शुं बगडयुं ? बदलीशुं घर काले—
मानवने त्यां नहि तो उन्दर कोने त्यां जइ म्हाले ?

(चूहे यदि मनुष्य के यहाँ नहीं होंगे तो और किसके यहाँ होंगे ?)

और 'फटा जूता' कविता तो चाहे जिसे हँसा सकती है। कवि जूते से कहता है—अभी तो केवल एक वर्षा और एक ही हेमंत के तुमने दर्शन किये हैं और क्या अभी से मेरे धरा-चुंबित पाँव को त्याग सन्यस्ताश्रम में प्रवेश करना चाहते हो ?...अरे तुमने 'ढेफां, बां स्वाद छे लीधा, रेतीना रस ये चूस्या' और मैंने तुम्हें बिना किसी भेद-भाव के अँधेरी रात में अपनी प्रेयसी के साथ भी बैठने दिया। परन्तु कल तुम सभी बन्धनों को तोड़ बाजार में ही मुँह फाड़कर खड़े होने की धृष्टता कर बैठे ! और अंगूठे, अंगुलियाँ सभी तुम्हारे साथ निर्लज्ज हो बाहर झाँकने लगे। तुम तो ऐसे बिगड़े कि दबाने से भी नहीं दबे। क्या तुम्हें नये जमाने की हवा तो नहीं लग गई ? 'मारा घोड़ा समा जोडा।' गुस्से में भर तुमने तो खूब ही दाँत पीसे।

'संसार दृश्य' विभाग की 'रंभा जाड़ी' और 'उर्वशी का अवसान' दो करुण चित्र हैं।

प्रभु-भक्ति के गीत भक्त नरसैयाँ की याद दिला जाते हैं, परन्तु सॉनेट की कुछ कविताएँ किसी नौसिखिये से ऊँची नहीं उठ पातीं। 'सान्ध्यगीत' में कवि श्री खबरदार की भूमिका पठनीय है।

श्यामू सन्यासी।

काशी।

[८०१

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशाल भारत

जून, १९३९ वर्ष—९ : अंक—९ ज्येष्ठ, १९९६

ग़रीब के प्रति

[विश्वम्भरनाथ]

आज तुझे मैं प्यार करूँगा,
जी भर कर सत्कार करूँगा ;
भाई या बहना मज़दूरन,
सुख में रह न सकीं सम्पूरन !!

अनाचार में तर्क ही क्या है,
मुझमें तुझमें फ़र्क ही क्या है ?
आज बना हूँ मैं सद-भागा,
तू है प्यारे निपट अभागा !!

भाग-अभागों का मिथ्या भ्रम,
क्या यह हो सकता जीवन-क्रम ?
क़िस्मत से जो एक न चलती,
इसमें प्यारे तेरी ग़लती !!

देखो मैं शिक्षित विद्वान,
तू है एक निरा अज्ञान !
मैं पूँजीपति मिल का कर्ता,
तू रोटी बिन भूखों मरता !!

मैं हूँ राजनीति का पंडित,
तू चोरी में होता दंडित !
मैं सेनापति, मैं ही शूर,
तू तो केवल सैनिक क्रूर !!

यह हमने भ्रम-जाल रचा है,
एक अजब जंजाल रचा है !
लेकिन झूठे भेद हैं सारे,
हम तुम रह न सकेंगे न्यारे !!

स्वामी या सेवक की बातें,
हैं केवल चतुरों की घातें !
हममें तुममें समता होगी,
जग से दूर विषमता होगी !

अपना काम तुम्हारा होगा,
ग़ैरों का न इजारा होगा ;
प्रिय तू पतित दीन बन जाये,
लज्जा से विहीन बन जाये ;

तब भी तेरा साथ न छोड़ूँ,
प्रीत बसाई हाथ न छोड़ूँ ;
मैं भी तो नाकाम बहुत हूँ,
मैं भी तो बदनाम बहुत हूँ !

तुमने समझा तुम हो छोटे,
इस दुनिया में सबसे खोटे !!
राजनीति के नेता सारे,
तुझसे कैसे बेहतर प्यारे ?

या बेहतर कैसे धनवान,
या अच्छा कैसे विद्वान ?
इसीलिये—क्यों आज तुम्हारे,
गालों में गड्ढे हैं प्यारे !!

या तुमने गहरी है छानी,
चोरी या की है नादानी ;
या तुम हो बीमार अभागे,
या तुम हो बेकार अभागे ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या तुम पतित-वेश्या नारी,
जग की नरक-यातना प्यारी !
इन्हें समझते अपना भेद,
इसीलिये क्या इतना खेद ?

अथवा तू विद्वान नहीं है,
अख़बारों में नाम नहीं है ;
इसीलिये क्या दीन समझते,
अपने को अति हीन समझते ?

ओ अति हतभागे बेकार,
जिनकी डूब चुकी पतवार !
ओ कृशकायिक शिशुओ दीन,
अरे अभागो मातृ - विहीन !!

आओ तुमको बन्धु बनाऊँ,
अपने मन में तुम्हें बसाऊँ ;
मुझको अपना मीत बनाओ,
प्रीत करन की रीति सिखाओ ;

आओ अपना चुम्बन दे दो,
अपना मृदु आलिंगन दे दो ;

कौन वर्ण-संकर अब होंगे ?
सभी भाव प्रलयंकर होंगे !
सैनिक—मज़दूरो—मल्लाहो,
क्षुधित किसानो और जुलाहो ;

अपने मन की बातें जानो,
अपना अन्तरतम पहचानो ;
इस दुनिया में आये क्यों तुम,
अकथ निराशा लाये क्यों तुम ?

तुम जग की उद्गम सन्तान,
तुम में आज निहित कल्यान ;
तुम हो आध्यात्मिक प्रतिपादन,
तुम ही हो जनता जनार्दन ;

तुम सब तहरीकों के ज्ञाता,
तुम इस जग के जन्म-प्रदाता ;
छोड़ो प्यारे खेद की बातें,
आज सुनो कुछ भेद की बातें !

तेरा दिन है, तेरी रात,
जाड़ा हो, या हो बरसात ;
कुछ ना कुछ तू करता रहता,
दुनिया का सुख गढ़ता रहता !!

ख़ुद तकलीफ़ उठाता है तू,
जग का दुःख मिटाता है तू !!
अगर न तेरी हस्ती होती,
दुनिया उजड़ी बस्ती होती !!

अगर न तू यूँ हिलता-डुलता,
तब दुनिया में क्या गुल खिलता ?
ललित कला, कविता औ' नाटक,
संपादक अथवा आलोचक ;

सब इक व्यर्थ निराशा होते,
सब ख़ामोश तमाशा होते !!
आज एलोरा और अजन्ता,
तेरे बिन सब ज़रा न बनता !

काम न तेरा अपना होता,
ताजमहल सब सपना होता !!
ना देता मुरली, मंजीरे,
गीत न सुनते यमुना-तीरे !

ग़रज़ जगत में जो कुछ छाया,
सब तेरे हाथों की माया ;
सूरज प्रखर किरन फैलाता,
शशि मोहक शीतलता लाता ;

उड़ता है अविरल वातास,
तारों का झिलमिल सुखहास ;
नदियाँ कल-कल बहती रहतीं,
अनजाने कुछ कहती रहतीं ;

गान हवा में लहराते हैं,
चुप-चुप कुछ कहते जाते हैं ;
यदि जग में कुछ ध्येय न होता,
जीवन में अवलेह न होता ;
तब फिर हमें न जड़ता कोई,
तब फिर हमें न गढ़ता कोई !!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर तूने अनुरक्ति न जानी,
अपनी किंचित शक्ति न जानी !!
तू रोया - रोया फिरता है,
तू खोया - खोया फिरता है !!

तू ही जग को खाना देता,
सुख कितना मनमाना देता ;
इस दुनिया को स्वर्ग बनाने,
आया तू मेरे दीवाने !!

यदि तू चाहे ओ मतिमन्द,
आज कारख़ाने हों बन्द !!
रेलें, नावें, बिजली, तार,
तू चाहे कर दे बेकार !!

कहीं न तू खेती उपजाये,
दानो बिन दुदिया मर जाये !!
तू ही पुलिस, फ़ौज है तू ही,
तू ही दरिया, मौज है तू ही ;

तू गोले, बारूद बनाता,
तू ही चक्र-व्यूह सजाता ;
ताले, जँगले, जेल बनाता,
आप स्वयं कैदी बन जाता !!

सभी तरफ़ अठखेलियाँ होतीं,
सभी तरफ़ रंगरेलियाँ होतीं ;
मक़तल में तू आह भर रहा।
दुख से ओ लिल्लाह ! मर रहा।।

भोले अपने को पहचान,
कुछ तो अपनी क़ूवत जान ;
गर तू है बेकस बेदार,
तू ही इसका ज़िम्मेवार ।।

पूँजीपति, धनवान, अमीर,
क़िस्मत हो या हो तदबीर ;
लाड़ दिखाया तूने उनको,
ऐश सिखाया तूने उनको !!

इकलौता सा उनको पाला,
जो कुछ था उनको दे डाला !!
प्रभुता-मद में फूल गये वे,
अपनेपन को भूल गये वे !!

पर इतना सत्कार न अच्छा,
इतना अधिक दुलार न अच्छा ;
अगर न वे कुछ काम करेंगे,
सारे दिन आराम करेंगे ;

फिर न मिलेगा खाना उनको,
फिर न मिलेगा दाना उनको !!
झूठा है उनका सम्मान,
झूठा है उनका अभिमान ;

तुम उनको ईमान बताओ,
तुम उनको इनसान बनाओ ;
उनको जीवन - मर्म बताओ,
उनको मानव - धर्म बताओ ;

भेद न कोई न्यारा होगा,
सब का सम बँटवारा होगा ;
राव न होगा, रंक न होगा,
जीवन में आतंक न होगा ;

फाँसी औ' जल्लाद न होंगे,
बसे शहर बरबाद न होंगे !!
अपने मन को स्वर्ग बनायें,
एक नया प्रीतम बैठायें ;

वह जग कितना न्यारा होगा ?
प्रेम ने जिसे सँवारा होगा।

प्रयाग।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाँट्जे : जो संसार में हमेशा चुप रहा

[जे० एल० पेरेज़]
[अनु० श्रीपतराय]

[स्व० जे० एल० पेरेज़ के विषय में बाहरी दुनिया को बहुत कम मालुम है ; पर अपनी कहानी की कला में यह यिडिश (पुरानी जर्मन भाषा का एक रूप जिसमें आधुनिक युरोपीय भाषाओं से बहुत-से शब्द लिये गये हैं और जो स्लोवैनिक देशों के यहूदियों द्वारा प्रयुक्त होती है) का अमर कथाकार आज के बहुत बड़े-बड़े कहानीकारों से आगे बढ़ा हुआ है। लेखक की प्रस्तुत कहानी उसकी कला का एक ऊँचा उदाहरण है और जितनी ही मर्तबा यह पढ़ी जाय उतना ही कम।—सं०]

यहाँ, इस संसार में मौन बाँट्जे की मृत्यु ने कोई असर नहीं पैदा किया। कोई आप को बता नहीं सकता कि बाँट्जे कौन था, वह कैसे रहता था और उसकी मौत का कारण क्या बना। क्या उसका दिल टूट गया, या कि उसकी शक्ति का ख़ात्मा हो गया, या कि उसके अंग किसी भारी बोझ के नीचे दबकर टूट गये...कौन जाने ? शायद, अंततः, वह भूख से मर गया!

यदि ठेलागाड़ी खींचनेवाला कोई घोड़ा मरकर गिर पड़ता तो लोगों ने उसमें ज़्यादा दिलचस्पी दिखलाई होती, अख़बारों में इसका विवरण छपता और सैकड़ों वैचित्र्य-अनुसंधानक इस घटना-स्थल की परीक्षा और निर्जीव घोड़े के शरीर को देखने के लिए उस स्थान के लिए चारो ओर से दौड़ पड़ते...

लेकिन ठेलेगाड़ी का घोड़ा भी यह वैशिष्ट्य प्राप्त न करता, यदि इस संसार में उतने ही करोड़ घोड़े होते जितने करोड़ कि आदमी !

बाँट्जे मौन ही जीवित और मौन ही वह मरा ; एक छाया की भाँति वह पृथ्वी के मुख पर से विलीन हो गया।

उसके बप्तिस्मे के दिन न तो दिल खोलकर शराब ही उँडेली गई, और न गिलास ही आपस में खनकाये गये। अपने धार्मिक स्थिरकरण * के दिन उसने कोई शब्द-चतुर वक्तृता नहीं दी ; पर अपने जीवन के समस्त विस्तार में वह समुद्रतट पर के भूरे रंग के एक क्षुद्र छोटे

* बहुत-से ईसाई गिरजाघरों में बप्तिस्मे के बाद की रस्म।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रेणु-कण के समान जीवित रहा, अपने ही तरह के और करोड़ों प्राणियों के बीच ; और जब हवा ने उसे उठाया और समुद्र के दूसरी ओर ले चली तो किसी ने उसे ग़ौर नहीं किया।

उसके जीवन-काल में गीली कीचड़ ने उसकी पैर की छाप का कोई निशान क़ायम नहीं रखा, उसकी मौत के बाद हवा ने उसके क़ब्र की ढूह पर की तख़्ती को उड़ाकर गिरा दिया ; और क़ब्र खोदनेवाले की पत्नी ने उस तख़्ती को क़ब्र से दूर पाकर उसके ऊपर आलू से भरे एक बर्तन को उबाला...और अब, बाँट्ज़े की मृत्यु के तीन दिन बाद, क़ब्र खोदनेवाला खुद भी आपको नहीं बता सकता कि बाँट्ज़े कहाँ दफ़न है।

अगर बाँट्ज़े की क़ब्र पर सिर्फ़ एक यादगार का पत्थर होता तो बाद की किसी शताब्दी का पुरातत्त्वेत्ता संभवतः उसका पता लगा लेता और मौन बाँट्ज़े का नाम इस दुनिया में फिर एक बार सुनाई पड़ता।

वह तो बस एक छाया के समान था; उसने अपने रूप की कोई छाप किसी मानव-हृदय में नहीं छोड़ी और न अपनी स्मृति का कोई चिह्न ही किसी मानव मस्तिष्क में !

उसने न कोई विरासत छोड़ी और न कोई वारिस; अकेला था वह जीवन में और मृत्यु में भी अकेला !

यदि संसार के कोलाहल के कारण न होता तो किसी ने सुन लिया होता, संभवतः कि बाँट्ज़े के अंग किस प्रकार उसके ऊपर के बोझ के नीचे कड़कड़ा उठे थे; यदि संसार के दारुण परिश्रम के कारण न होता तो शायद किसी ने यह देखने का समय पाया होता कि बाँट्ज़े, जो आख़िर आदमी ही था, ऐसी आँखें लेकर चलता था, जिनकी आग बुझ चुकी थी, और गाल जो बुरी तरह धँस गये थे ; और कैसे, जब कि उसके कंधों पर बोझ नहीं भी था, उसका सर धरती में गड़ा हुआ था, मानो जीवितावस्था में ही वह अपनी क़ब्र की तलाश कर रहा हो ! यदि इस संसार में उतने ही थोड़े आदमी होते, जितने कि ठेलेगाड़ी के घोड़े, तो शायद कोई पूछता—बाँट्ज़े का क्या हुआ ?

जब बाँट्ज़े अस्पताल ले जाया गया तो इमारत की पहिली मंजिल में उसका कोना ख़ाली न बचा रह सका ; क्योंकि उसी की तरह के और एक दर्जन आदमी उसका इन्तज़ार कर रहे थे, और इन लोगों के बीच अस्पताल के व्यवस्थापकों ने उसे सबसे ज्यादा बोली बोलनेवाले के हाथ नीलाम कर दिया। जब वह अस्पताल की चारपाई से मरे हुओं की शिनाख़्त के कमरे में ले जाया गया तो यहाँ उसकी जगह के लिए बीस आफ़त के मारे शैतान पहिले से ही इंतज़ार कर रहे थे। जब उसने मृतकों का कमरा छोड़ा तो वे लोग बीस आदमी उसमें और ले आये जो एक दीवार के ढह पड़ने से मरे थे !...कौन जानता है कि कितने दिन वह शांति से अपनी क़ब्र में रह सकेगा ? कौन जानता है कि कितने आदमी पहिले से ही धरती के उस छोटे ढूह का इन्तज़ार कर रहे हैं ?

शान्ति से ही वह संसार में जन्मा, शान्ति से वह रहा, शांति से वह मरा, और इससे भी अधिक शांति से वह दफ़ना दिया गया।

लेकिन दूसरी दुनिया में ऐसा नहीं हुआ। वहाँ बाँट्ज़े की मृत्यु ने बड़ी सनसनी पैदा की !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुक्तिदाता के बिगुल की आवाज़ सातों आसमानों में गूँज उठी ; मौन बाँट्जे मर गया ! सबसे अधिक शक्तिशाली फरिश्ते जिनके सबसे चौड़े पंख थे, चारो ओर उड़ रहे थे और आपस में एक दूसरे को एलान कर रहे थे—बाँट्जे सर्वोपरि न्यायकारिणी में बुलाया गया है। स्वर्ग हर्ष-ध्वनि से हिल उठा है ; बाँट्जे जो संसार में हमेशा चुप रहा ! हम सब का गौरव-रूप—बाँट्जे जो संसार में हमेशा चुप रहा !

स्वर्ग की कोमल छोटी अप्सराएँ, चमकती हुई आँखों और सोने की कती हुई पाँखों सहित, प्रसन्नता से बाँट्जे के पास कोमल रजत-आच्छादित पदों से भागीं। पाँखों की सरसराहट, रजत-पदत्राणों की मधुर झनकार और सुकुमार अप्सराओं के ताज़े गुलाबी गालों का हर्ष-हास्य सारे स्वर्ग में भर गया और श्रद्धास्पद सिंहासन तक भी पहुँच गया जिससे ईश्वर को भी मौन बाँट्जे के पहुँचने की बात मालुम हो गई।

पिता अब्राहम ने स्वर्ग के द्वार पर अपनी जगह ले ली। उनका दाहिना हाथ हार्दिक स्वागत के लिए आगे बढ़ गया था—जब कि उनका वृद्ध चेहरा एक ग़ज़ब की मिठास की उज्वल हँसी से आलोकित हो गया था।

और स्वर्ग में यह किसी चीज़ के लुढ़काने की आवाज़ कैसी है ?

यह विशुद्ध स्वर्ण की एक आरामकुर्सी है जिसे दो फरिश्ते स्वर्ग में लुढ़काकर बाँट्जे के लिए लाये हैं !

और यह चकाचौंध कर देनेवाली चमक कैसी है ?

यह एक सोने का ताज है, अमूल्य हीरों से जटित, जिसे वे लाये हैं। यह सब बाँट्जे के लिए !

'क्या ? क्या सर्वश्रेष्ठ निर्णायक के निर्णय से पहिले ही ?'—सन्तों की आत्माओं ने पूछा—ईर्ष्या से बिल्कुल रहित न होकर।

'ओह !' स्वर्ग-दूत उत्तर देते हैं—वह मात्र एक नियम-पालन होगा। यहाँ तक कि प्रतिवादी वकील को भी मौन बाँट्जे के विरुद्ध कुछ कहने को न मिलेगा ! पूरी कार्यवाही कुल पाँच मिनट चलेगी।

क्योंकि यह तो संसार में हमेशा चुप रहनेवाले ख़ुद बाँट्जे के सिवाय और दूसरा कोई नहीं है !

× × ×

जब छोटे-छोटे स्वर्ग-दूतों ने बाँट्जे की आत्मा को हवा में पाया और एक मधुर राग उसे सुनाया ; जब पिता अब्राहम ने उससे इस प्रकार हाथ मिलाया जैसे वह उनका कोई पुराना बंधु था ; जब उसने सुना कि स्वर्ग में उसके लिए एक सिंहासन तैयार किया जा रहा है, और कि एक राजमुकुट उसके शीश के लिए प्रतीक्षा कर रहा है, और यह कि उसके विरुद्ध सर्वोपरि न्यायालय में कुछ नहीं कहा जायगा,—जब उसने यह सब देखा और सुना तो बाँट्जे भय से बिल्कुल गूँगा हो गया जैसे कि नीचे की दुनिया में था ! उसका हृदय उसका साथ नहीं दे रहा था। उसे निश्चित विश्वास था कि या तो यह कोई स्वप्न है या फिर यह कोई बड़ी भूल है !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह इन दोनो का आदी था ! एक से अधिक मर्तबा वह नीचे के संसार में स्वप्न देख चुका था कि वह ज़मीन पर से धन उठा रहा है, ढेर के ढेर ; और जागने पर उसने अपने आपको हमेशा से अधिक निर्धन पाया था। एक से अधिक मर्तबा भूल से किसी ने उसे देखकर मुस्करा दिया था और उससे एक मृदु शब्द बोल लिया था, और क्षोभ से मुँह मोड़ लिया था, यद्यपि, जैसे ही कि उसे अपनी भूल का ज्ञान हो गया था...

'केवल मेरा भाग्य !'—उसने विचारा।

और वहाँ वह खड़ा था, उसका सिर झुका हुआ था और आँखें बंद थीं, इस भय से कि स्वप्न भंग हो जायगा और वह कहीं किसी गुफ़ा में साँपों और जीव-जन्तुओं के बीच जग पड़ेगा। वह एक भी शब्द करने से या आँख की एक पलक भाँजने से भी डर रहा था कि कहीं वह पहचान न लिया जाय और नरक में ढकेल न दिया जाय !

वह काँपता है और देवदूतों के अभिनंदनों को भी नहीं सुनता, न ही वह उसके आदर में उनके हर्ष-प्रदर्शन को ही देखता है। वह पिता अब्राहम के हार्दिक सत्कार का कोई जवाब नहीं देता, और जब सर्वोपरि न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया जाता है तो 'प्रणाम' कहने की भी सुधि उसे नहीं रहती।

क्योंकि बाँट्जे भय के कारण आपे में नहीं है।

और उसका यह भीषण भय और भी दारुण हो जाता है, जब वह अनिच्छा से सर्वोपरि न्यायालय की फ़र्श को अपने पैरों के नीचे अनुभव करता है। शुद्ध संगमरमर और बहुमूल्य हीरे-जवाहिरात ! मेरे पैरों के खड़ा होने के लिए कैसा फ़र्श ! वह भय से कठोर हो जाता है। 'कौन जानता है कि कौन-सा अमीर, कौन रबी, कौन सन्त है जिससे उनका तात्पर्य है ?...मैं अपना अन्त उस समय देख सकता हूँ जब वह भाग्यवान आ पहुँचता है।'

इस भय में उसने सुना भी नहीं कि किस प्रकार उत्सव के सभापति ने कहा—संसार में मौन रहनेवाले बाँट्जे का मुकदमा ! लिखित प्रमाण को सरकारी वकील को देते हुए सभापति ने जारी रखा—इसे पढ़िये, लेकिन जो कहिये संक्षेप में।

सारा कमरा चहुँओर से जैसे बाँट्जे से भर आया है। उसके कानों में एक धमक की आवाज़ आ रही है, लेकिन इस धमक के बावजूद भी वह वकील के स्वर को साफ़, और अधिक साफ़ तौर पर सुन सकता है, वह स्वर जो उसके ओठों से इस मिठास से बह रहा था जैसे किसी बेले का गान हो।

'उसका नाम उसके लिए ऐसा चुस्त बैठता है जैसे किसी चतुर दर्ज़ी का सिला कपड़ा किसी सुडौल शरीर पर ठीक बैठ जाता है।'

'वह कह क्या रहा है ?'—बाँट्जे स्वयं अपने आप से पूछता है। और वह एक अधीर आवाज़ को वकील की मदाख़लत करते सुनता है।

'उपमाएँ बिल्कुल नहीं, कृपया !'

'अपने जीवन में कभी भी नहीं', वकील आगे कहता है—उसने ईश्वर के ख़िलाफ़ या मनुष्य के ख़िलाफ़ एक भी शिकायत का लफ़्ज़ मुँह से उसने निकाला है ! नफ़रत की चिनगारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कभी उसकी आँखों में नहीं चमकी है; उसने कभी उन आँखों को स्वार्थपूर्ण प्रार्थना में ईश्वर के प्रति नहीं उठाया है।'

पुनः बाँट्ज़े एक भी शब्द नहीं समझता, और वह रूखी आवाज़ एक मर्तबा फिर रोकती है : 'अलंकारिता बिल्कुल नहीं, कृपया !'

'जोब अन्त तक नहीं टिक पाया था, यद्यपि वह कहीं कम भाग्यहीन था।

'मैं सिर्फ वाक़यात चाहता हूँ, सूखे वाक़यात !'—सभापति और भी अधिक अधीरता से चिल्लाया।

'आठवें दिन उसका बप्तिस्मा हुआ।'

'यथार्थता बिल्कुल नहीं, कृपया !'

'डाक्टर एक अनाड़ी था और वह खून भी अच्छी तरह से बन्द नहीं कर सका।'

'कहे जाइये !'

'तब भी वह मूक था,' वकील ने फिर शुरू किया।—'यहाँ तक की जब उसकी मा मर गई और उसके तेरहवें साल में जब उसे एक सौतेली मा मिली···एक सौतेली मा, क्या मैंने कहा ? एक साँपनी, एक राक्षसी···'

'मुझे ताज्जुब है कि आख़िर उनका मतलब क्या मुझसे ही है ?'—बाँट्ज़े सोचता है।

'कृपया दूसरों के प्रति बुरे अर्थ न लगाइये।' सभापति डाँटता है।

'वह उसे खाने के प्रत्येक कौर को ईर्ष्या से देती थी···उसे बिलकुल बासी और सड़ी रोटियाँ देती थी, और गोश्त की जगह हड्डियाँ, जब कि वह खुद काफ़ी और मलाई पीती थी।'

'असली बात पर आइये !'—सभापति चिल्लाता है।

'लेकिन वह उसे अपनी उँगलियों के नाखून ईर्ष्या से नहीं लगाती थी, जिससे कि उसका काला और नीला बदन उसके सटे और सड़े हुए कपड़े के प्रत्येक सूराख से झाँकता था···जाड़ों में कठिनतम हिम में, वह उसके लिए नंगे पाँव लकड़ियाँ काटा करता था, यद्यपि उसके हाथ बहुत छोटे और कमज़ोर थे, लकड़ी के कुन्दे बहुत मोटे, और कुल्हाड़ी बहुत कुन्द···बहुत मर्तबा उसका हाथ मोच खा जाता था और बहुत मर्तबा उसके पैर जम जाते थे; फिर भी वह मौन था; अपने पिता के सामने तक भी—'

'वह शराबी !' प्रतिवादी वकील हँसा; और बाँट्ज़े के प्रत्येक अंग में सनसनी दौड़ गई।

'उसने कभी शिकायत नहीं की !'—वकील ने अपना वाक्य पूरा किया।

'और वह हमेशा अकेला रहा,' वह आगे कहता है—'कोई साथी नहीं, कोई मित्र नहीं; कोई शिक्षा-दीक्षा नहीं, कभी एक नया कपड़ा नहीं और न ही कभी एक घण्टे की भी आज़ादी—'

'हमें वाक़यात दीजिये !'—सभापति एक बार फिर चीख़ता है।

'यहाँ तक कि वह बाद में भी मौन रहा जब उसके पिता ने, शराब के नशे में बाहों से उसे पकड़ा और रात में एक जबर्दस्त अन्धड़ में उसे घर के बाहर निकाल फेंका ! उसने चुपचाप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने आपको बर्फ पर से उठाया और जहाँ तक उसके पैर उसको ले जा सके, वह भागा...और इस तमाम सब के बीच वह मूक था...यहाँ तक कि जब वह बहुत भूखा था, उसने सिर्फ़ अपनी आँखों से भीख माँगी।

'अंततः, वसन्त की एक भीगी और तूफानी रात में वह एक बड़े शहर में पहुँचा। वह उसमें इस तरह घुल गया जैसे समुद्र में एक बूँद, और आगे उसी रात वह एक जेल में सोया... लेकिन वह चुप था, इस सब का क्यों और किसलिए भी न पूछता था। वह जेल से निकला और कठिनतम परिश्रम की खोज की। और तब भी वह मौन था।

'काम से भी ज़्यादा मुश्किल उसका पाना था—और वह मौन था!

'ठंढे पसीने से शराबोर, भारी से भारी बोझ के नीचे पिसा हुआ, खाली पेट की अतिशय पीड़ा देनेवाली कचोटों में भी वह मौन था!

'अजनबियों के पैरों से उछली हुई कीचड़ से लथपथ, अजनबियों के मुँहों ने उस पर थूक दिया था, अत्यन्त ज़्यादा बोझ के कारण पटरी पर से बीच सड़क में गाड़ियों, मोटरों, बग्घियों के बीच ढकेल दिया गया, मृत्यु को प्रत्येक क्षण अपने सम्मुख घूरता हुआ भी वह मौन था!

'उसने कभी हिसाब नहीं लगाया कि अपने बोझ का कितना वज़न उसे प्रति पैसे के लिए ढोना चाहिये, कितनी मर्तबा वह गिलट के एक टुकड़े के लिए रास्ते में गिर पड़ा, कितनी मर्तबा उसने अपनी आत्मा थूक के रास्ते अपनी मज़दूरी वसूल करने के लिए निकाल फेंकी; उसने कभी न तो अपने दुर्भाग्य का अन्दाज़ा लगाया न औरों के सौभाग्य का। वह मौन था!

'उसने कभी अपनी मजदूरी के लिए आवाज़ तक बुलंद न की। एक भिखमंगे की तरह वह दरवाज़े पर रुका और उसकी आँखों में कुत्ते की-सी प्रार्थना का एक भाव आया।' 'बाद में आओ!' और एक शांत छाया की भाँति वह अपनी मज़दूरी फिर से और पहिली मर्तबा से भी ज्यादा शांति से माँगने के लिए ग़ायब हो गया।

'वह उस समय चुप था जब लोगों ने उसके गाढ़ी कमाई के पैसे का धोखा दिया था, उसे नक़ली सिक्के देकर मज़दूरी चुकाई...वह सदैव मौन था!'

'हे ईश्वर, मेरा अनुमान है, उनका मतलब सचमुच मुझी से है!' बाँट्ज़े विचारता है।

× × ×

'एक मर्तबा'—वकील थोड़ा-सा पानी पीकर जारी रखता है—'उसके जीवन में एक परिवर्तन आया...एक भागती हुई रबर के पहियोंवाली बग्घी उसके पास से गुज़री, कोचवान रास्ते में पीछे ज़मीन पर पड़ा हुआ था, उसका सिर खुल गया था...भयभीत घोड़ों के मुँह से झाग बाहर निकल रही थी, उनके खुरों के नीचे से ऐसे चिनगारियाँ निकल रही थीं जैसे वे कोई इंजन हों और उनकी आँखें एक अँधेरी रात में जलते हुए अँगारों की भाँति चमक रही थीं, और बग्घी में अर्द्ध-मृत बैठा था एक आदमी!

'बाँट्ज़े ने भागते हुए घोड़ों को रोका।

'इस प्रकार जो आदमी बचा था, वह दानशील प्रकृति का आदमी था, और वह बाँट्ज़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के ऋण को नहीं भूला।

'उसने उसे अपने मृत कोचवान की जगह दे दी। बाँट्जे कोचवान हो गया। और न सिर्फ़ इतना ही, लेकिन उसने उसे एक पत्नी भी उपलब्ध कर दी; और न सिर्फ़ इतना ही, लेकिन उसने उसे एक बच्चा भी इनायत कर दिया!...और तब भी बाँट्जे मौन था!'

'उनका तात्पर्य मुझी से है, उनका तात्पर्य मुझी से है!'—बाँट्जे अपने आप फुस-फुसाता है, अपने विश्वास में अधिक और अधिक मज़बूत होकर। तो भी अभी उसमें सर्वोपरि न्यायाधीश के सम्मुख आँखें उठाने का साहस नहीं है।

वह वकील को फिर सुनता है: 'वह तब भी मौन था, जब उसका उपकारक दिवा-लिया हो गया और उसे उसकी मज़दूरी न दे सका...वह उस समय भी ख़ामोश था जब उसकी बीवी भाग गई और उसके पास एक दूध-पीता बच्चा छोड़ गई।...

'वह पंद्रह वर्ष बाद भी मौन था, जब यह बच्चा बड़ा हुआ और काफ़ी मज़बूत हो गया कि बाँट्जे को घर से बाहर निकाल फेंके...'

'उनका मतलब मुझी से है, उनका मतलब मुझी से है!'—बाँट्जे हर्षोत्फुल्ल होकर कहता है।

'और अब तक भी वह मौन था—वकील फिर अधिक मुलायमियत और दर्द से शुरू करता है—'जब कि उसके उपकारकर्ता ने बाक़ी सब का हिसाब साफ़ कर दिया, पर बाँट्जे को उसकी पुरानी मज़दूरी का एक धेला भी न दिया, और तब भी, जब कि उसने बाँट्जे के ऊपर अपनी गाड़ी चढ़ा दी, क्योंकि वह फिर अपने रबड़ के पहियोंवाली बग्घी पर चढ़ा जा रहा था और घोड़े वही थे, ऐसे ख़ूंख़्वार जैसे कि शेर!

'वह इस सब तमाम में ख़ामोश था। उसने पुलिस तक को नहीं बताया कि वह कौन था जिसने उसे इस प्रकार लुंज कर दिया था...

'वह अस्पताल तक में मौन था जहाँ कि रोने की इजाज़त है!

'वह तब भी ख़ामोश था जब कि डाक्टर ने उसे फ़ीस के पंद्रह आने के बग़ैर इलाज करने से इनकार कर दिया और जब कि नौकर ने बिना पाँच आने के उसकी क़मीज़ बदलने से इनकार कर दिया!

'वह अपनी पीड़ा के अंतिम क्षणों में मौन था, और वह मूक था जब कि मृत्यु उस पर आ रही थी...

'कोई शब्द उसने ईश्वर के विरुद्ध नहीं कहा, और कोई शब्द मनुष्य के विरुद्ध नहीं!...मैं समाप्त कर चुका!'

× × ×

बाँट्जे फिर एक मर्तबा अपने जिस्म के तमाम हिस्सों में काँपने लगता है, क्योंकि वह जानता है कि वकील के बाद अभियोक्ता वकील की बारी आती है। कौन जानता है कि वह क्या कहेगा? यहाँ तक कि बाँट्जे स्वयं अपने सम्पूर्ण जीवन को याद नहीं कर सकता, उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहिले क्षण में जो हुआ उसे उसके बाद के क्षण में ही वह भूल चुका था। उसके पक्ष के वकील ने उसे सब याद दिला दिया...ईश्वर ही जानता है कि प्रतिवादी वकील कौन-कौन-सी स्मृतियों की पुनः याद दिलायेगा ?...

'अदालत में उपस्थित सज्जनो !'—प्रतिवादी वकील चुभती हुई भारी-भरकम आवाज़ में गरजता है।

लेकिन वह रुक पड़ता है।

'अदालत में उपस्थित सज्जनो !'—वह फिर एक बार शुरू करता है, पर इस बार अधिक मुलायमियत की आवाज़ में। फिर वह रुक पड़ता है।

अंततः, उसी गले से ऐसी आवाज़ निकलती है जो इतनी मुलायम है जैसे मक्खन।

'अदालत में उपस्थित सज्जनो ! वह मूक रहा है, मैं भी मूक रहूँगा !'

एक शांत विराम होता है और फिर एक कोमल, काँपती हुई आवाज़ सुनाई देती है।

'बाँट्ज़े, मेरा बच्चा बाँट्ज़े !' ये शब्द बाँट्ज़े के हृदय में वीणा के संगीत-स्वर की भाँति पिघल जाते हैं। 'मेरा प्रियतम शिशु !' बाँट्ज़े का हृदय आँसुओं में घुल जाता है... वह अब खुशी से अपनी आँखें खोलेगा ; लेकिन वे तो आँसुओं से अंधी हो रही हैं...अभी तक कभी भी वह इतनी मिठास से, इतनी हार्दिकता से नहीं रोया है...'मेरा बच्चा, मेरा बाँट्ज़े !'...जब से उसकी मा मर गई, उसने ऐसी आवाज़ और ऐसे शब्द नहीं सुने हैं।

'मेरा बच्चा !' सर्वोच्च न्यायाधीश कहते जाते हैं—तुमने सदैव दुःख सहा है, और मौन में। तुम्हारे सारे शरीर में एक भी अंग और एक भी हड्डी ऐसी नहीं है जिसमें कोई घाव या रक्त का निशान न हो। तुम्हारी आत्मा में एक भी ऐसा गुप्त स्थान नहीं है, जिसमें से रुधिर न प्रवाहित हो रहा हो...और तब भी तुम सदैव मौन रहे हो !...

'नीचे के संसार में वे ऐसी बातें नहीं समझते थे। शायद तुम स्वयं नहीं जानते थे कि तुम कभी एक आवाज़ उठा सकते हो, और यह कि यह आवाज़ जेरिको * की दीवारों को हिला सकती है और उन्हें विध्वंस कर सकती है। तुम स्वयं अपनी गुप्त शक्ति को नहीं जानते थे...

'नीचे के संसार में उन्होंने तुम्हारे मौन के लिए तुम्हें पुरस्कृत नहीं किया, पर वह माया का संसार है। यहाँ, सत्य के संसार में तुम्हें तुम्हारा पुरस्कार मिलेगा।

'तुम्हारे कर्मों का यहाँ न्याय नहीं होगा, और तुम्हारी क़ीमत तराज़ू में नहीं तौली जायगी। ले लो, जो भी तुम्हारी इच्छा हो ! स्वर्ग में जो कुछ भी है तुम्हारा है !'

बाँट्ज़े पहिली मर्तबा अपनी आँखें ऊपर उठाता है। वह चारो ओर के प्रकाश से चौंधिया जाता है। प्रत्येक चीज़ जगमग-जगमग कर रही है और चमक रही है। गौरव का प्रकाश उसके चहुँओर चमक रहा है—दीवारों से, बर्तनों से, स्वर्ग-दूतों से, न्यायाधीशों से ! सूर्यों का एक अपार समूह !

वह अपनी थकी हुई आँखें झुका लेता है।

---

* पैलेस्टाइन में एक नगर जिसका सम्बन्ध बाइबिल की घटनाओं से है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सचमुच ?'—वह शर्म से और अविश्वास से पूछता है।

'बिल्कुल निश्चय से !'—सर्वोपरि न्यायाधीश उत्तर देते हैं—मैं तुम्हें बिल्कुल निश्चय से बतलाता हूँ कि यह सब तुम्हारा है, स्वर्ग में जो कुछ है उसके मालिक तुम हो ! चुनो और जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो लो ! तुम केवल वही ले रहे हो जो तुम्हारा है !'

'सचमुच ?'—बाँट्जे फिर पूछता है, पर इस मर्तबा ज़्यादा मज़बूत आवाज़ में।

'हाँ, सचमुच हाँ !' वे उसे चारो ओर से विश्वास के स्वर में उत्तर देते हैं।

'यदि ऐसा है ,'—बाँट्जे मुस्कराता है, तो मैं प्रतिदिन एक बड़ी गर्म मीठी रोटी ताज़े मक्खन के साथ पाने को दिल से प्यार करूँगा !'

न्यायाधीशों और देवदूतों ने लज्जा से आँखें नीची कर लीं, और स्वर्ग प्रतिवादी वकील की हँसी से गूँज उठा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहेली : एक झाँकी

[उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

पात्र

चेतन	एक नौजवान क्लर्क
आनन्द	उसका मित्र
लाजवन्ती	चेतन की पत्नी
मा	चेतन की मा

समय : आठ बजे सुबह,

स्थान : चेतन के घर का दालान।

[दायें कोने में सामने की दीवार में खिड़की है, जिसके साथ ही दीवार में एक छोटा-सा आगे को बढ़ा हुआ ताक है, जिस पर लाल हलवान का छोटा-सा पर्दा दो मेख़ों से जड़ा हुआ है। बाईं दीवार में एक दरवाज़ा है, जो आँगन में खुलता है। ताक़ के दीवार पर होई माता (काली माता) बनी हुई है और इसके साथ ही फर्श पर चौका डालकर आसन और पूजा की चौकी रखी हुई है। आसन पर मा खड़ी, ताक़ में रखी हुई 'जोत' जगाने का प्रयास कर रही है। उम्र कोई चालीस वर्ष, पर परिस्थियों ने इस उम्र ही में उसे बूढ़ी बना दिया है। पिचके गाल, रूखे बाल, आँखें गढ़ों में धँसी, जबड़ों की हड्डियाँ उभरी हुई, शरीर दुर्बल और कमज़ोर ; जैसे हड्डियों के पिंजर को क़मीज़ और धोती पहना दी गई हो। एक-दो बार दियासलाई जलाती है, पर खिड़की की हवा से वह बुझ जाती है, फिर जलाती है, फिर बुझ जाती है, फिर तीसरी जलाती है, हवा का झोंका आता है, वह फिर बुझ जाती है।]

[बहू को आवाज़ देती है]

मा—बहू, लाजवन्ती, लाज !

[आँगन से बहू की आवाज़ आती है।]

बहू—आई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[प्रवेश करती है। हाथों में आटा लगा है, बाल खुले हैं, शरीर पर एक मैली-सी धोती और ब्लौज़ और कलाइयों में बिल्लौर की चूड़ियाँ।]

मा—देखो बहू, यह खिड़की बन्द कर दो, और आँगन से ज़रा कुछ फूल ले आओ।

[बहू खिड़की बन्द करके चली जाती है। मा फिर दियासलाई जलाकर जोत जगाती है, फिर नत-मस्तक होकर प्रार्थना करती है। 'हे मा, हे शक्ति, तुम्हारी जोत मेरे घर में सदैव जलती रहे, इस घर के अँधेरे को दूर करती रहे, बहू को सुमति दे...' बहू फूल लेकर प्रवेश करती है और चुपचाप आसन के पास रखी हुई चौकी पर रखकर चली जाती है पूर्ववत् प्रार्थना करती हुई] 'चेतन को सुमति दे...'

[बाहर से चेतन और आनन्द के बातें करने की आवाज़ सुनाई देती है।]

चेतन—मैं शर्त लगाता हूँ अगर कैट (Cat) न हो।

आनन्द—कार (Car) होगा, देख लेना।

[मा जोत के आगे फिर एक बार झुककर आसन पर बैठ जाती है, और पूजा करने लगती है। बाहर दोनो बराबर बहस कर रहे हैं।]

चेतन—मैं कहता हूँ कैट ही होगा, मैं शर्त लगाता हूँ।

आनन्द—(हठ के स्वर में) कार है।

चेतन—तो लगाओ शर्त

आनन्द—शर्त ! कितने की ?

चेतन—पाँच, पाँच !

आनन्द—(हँसकर) शर्त तो जुआरी लगाते हैं, और फिर अगर यहाँ जेब में पाँच रुपए हों तो छः हल ही न भेज दें...

चेतन—(बेज़ारी से) हुँ !

आनन्द—अरे फिर यह तो महज़ कामन सेंस (आम समझ) की बात है, कार की पों-पों से प्रायः पड़ोसी तंग आ जाते हैं और उनमें लड़ाई हो जाती है।

चेतन—और जो बिल्लियाँ रात को लड़ें !

[पूजा में विघ्न पड़ जाने से मा के तेवर चढ़ जाते हैं और माला वह जल्दी-जल्दी फेरने लगती है।]

आनन्द—अरे कार की पों-पों से बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ का क्या मुकाबला ! कार की पों-पों कान के पास हो, तो कुम्भकरण भी वर्षों की नींद से जागकर उठ खड़ा हो और बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ...(कहकहा लगाता है) सोचो यदि दिन-भर दफ्तर में बैठे-बैठे सिर खपाने के बाद दिन-भर का थका-हारा तुम्हारा मस्तिष्क स्वप्न-संसार के मज़े ले रहा हो और उस वक्त तुम्हारे पड़ोसी की कार अपने भद्दे और भोंडे स्वर में पों-पों कर उठे तो तुम उस नामाक़ूल पड़ोसी का सिर न फोड़ने को तैयार हो जाओगे।

[कुछ क्षण ख़ामोशी, जिसमें मा की गुनगुनाहट तनिक ऊँची और माला फेरने की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गति तेज़ हो जाती है। दोनो आँगन के दरवाज़े से दाख़िल होते हैं और मा को देखकर ठिठकते हैं, फिर चेतन आगे बढ़ता है। हाथ में अंग्रेज़ी का अख़बार है।]

चेतन—मा !

[मा और भी जल्दी-जल्दी माला फेरती है]

चेतन—मा !

[मा नहीं बोलती, भृकुटी चढ़ा उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखकर पूर्ववत् जल्दी-जल्दी गुनगुनाये जाती है और माला फेरे जाती है]

चेतन—देखो मा, मुझे एक बात बता दो, फिर चाहे सारा दिन बैठी पूजा करना। [पास पड़े हुए लोटे से चरणामृत लेकर, माला को गोद में रखकर मा चेतन की ओर देखती है।]

मा—कहो !

चेतन—साधारणतया बिल्लियों के कारण पड़ोसियों में झगड़ा हो जाता है, अथवा मोटर के कारण।

मा—चेतन !

[आग ऐसी दृष्टि से उसकी ओर देखती है और फिर होई माता के सामने सिर झुकाकर माला फेरने लगती है।]

चेतन—देखो मा, मैं तुम्हें पाठ न करने दूँगा, मुझे इस पहेली का हल भेजना है और आज अन्तिम तारीख़ है।

मा—(माला रखकर) आग लगे तुम्हारी इन मुई पहेलियों को, तुम मुझे शान्ति से पाठ भी न करने दोगे, क्या बड़ा काम है तुम्हें ! (मुँह बनाकर) पहेली भेजना है। घर की गरीबी की तुम्हें परवाह नहीं, धर्म-कर्म का तुम्हें ध्यान नहीं। बस इन्हीं निगोड़ी पहेलियों के पीछे अपना और दूसरों का वक्त गँवाया करो।

चेतन—(दार्शनिक भाव से) बिना वक्त गँवाये किसी को कुछ मिला है।

मा—(चिढ़कर) तो इतना वक्त तुमने गँवाया, एक वर्ष तो मुझे भी देखते हुए हो गया, कानी कौड़ी तो तुम्हें आई नहीं। बहू सूने हाथों फिर रही है, जहाँ पहले सोने के गोखरू थे अब वहाँ बल्लौर की चूड़ियाँ हैं, कपड़ा पहनने के लिए उसके पास नहीं। ख़ैर, गहने-कपड़ों की बात जाने दो, लेकिन पेट तो खाने को माँगेगा, तुम्हें उसका भी कुछ ख़याल नहीं, इस एक वर्ष में कितना समय और फिर कितना रुपया तुमने गँवाया बताओ ! क्या दिया अब तक तुम्हारी इन पहेलियों ने, मैं तो अभी शक्ति माता से प्रार्थना कर रही थी कि तुम्हें सुमति दे, बहु को सुमति दे, जो तुम्हें सब कुछ उठाकर दे देती है।

चेतन—(शरमिन्दा हुए बिना) अपने पास से कुछ गँवाये बिना किसी को संसार में कुछ नहीं मिलता। बिना यत्न किये कोई कुछ नहीं पाता, प्रत्येक वस्तु के लिए कुछ न कुछ त्याग करना पड़ता है, कुछ न कुछ गम खाना पड़ता है। दुर्भाग्य से मुझे इस समय रुपया और वक्त दोनो का त्याग करना पड़ रहा है ; लेकिन एक बार पहला इनाम आ गया तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उम्र-भर के कष्ट मिट जायँगे। तेईस हज़ार का इनाम है, तेईस हज़ार का!

मा—यह बिना जान खपाये, बैठे-बिठाये दौलत पाने की इच्छा ही तो सब ख़राबियों की जड़ है। अपने पड़ोसी ही को देख लो, सारी उम्र वह सट्टा लगाता रहा, अन्त में मकान भी गिरवी रख दिया, पर एक पैसा भी उसे न आया और जब मरा तो कफ़न के लिए मुहल्लेवालों ने चन्दा इकट्ठा किया।

चेतन—यह सट्टा नहीं!

मा—तुम्हारे पिता ही ने क्या पाया? उम्र-भर वे लाटरियों के मुँह अपने गाढ़े पसीने की कमाई गँवाया किये, लाखों के स्वप्न देखा किये, पर कभी उनका वह स्वप्न पूरा न हुआ और घर की यह हालत हो गई।

चेतन—(खीजकर) मैं बीस बार कह चुका हूँ कि यह लाटरी नहीं।

मा—(उपदेश के लहजे में) बेटा, लाटरी क्या, सट्टा क्या, यह क्या, सब जुआ है, और जुए में कौन जीता है और जो जीता है, वही तो हारा है। अन्त कभी किसी का अच्छा न हुआ इस तरह पाया रुपया कभी किसी के पास न रहा।

चेतन—(सुनी अनसुनी करके) यह न जुआ है, न सट्टा है, न लाटरी है; यह तो महज़ कामन सेंस (Common Sense) की, आम समझ की बात है और इसीलिए इस पहेली का नाम Common Sense Cross Word Puzzle आम समझ की व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली रखा गया है...

मा—(चिढ़कर) और यह जो तुम कहते हो कि लाखों आदमी यह पहेली हल करते हैं, इनके पास आम समझ नहीं क्या, यह सब क्या मूर्ख हैं। दिमाग़ के नाम पर इनके कुछ भुस भरा हुआ है और किस तरह तुम्हारे उस उजड्ड, गँवार दसवीं पास इंस्पेक्टर को दस हज़ार का इनाम आ गया और तुम बी० ए० पास करके भी अभी तक टापते फिर रहे हो, क्या उसका दिमाग़, उसकी आम समझ तुमसे अच्छी है, फिर यह जुआ नहीं तो क्या है।

चेतन—(निरुत्तर होकर क्रोध से) तुम्हें कुछ मालूम तो है नहीं, इनसे···इनसे···

आनन्द—(आगे बढ़कर) इनसे बुद्धि तीक्ष्ण होती है।

मा—(माला लेते हुए उठकर) जानती हूँ, इस एक वर्ष तुम दोनों की बुद्धि कितनी कुशाग्र हो गई है। यदि पागल नहीं हुए तो एक साल तक हो जाओगे। (चेतन से) तुम स्वयं तो पाठ-पूजा छोड़ बैठे हो, मुझे भी दो घड़ी ईश्वर का नाम न लेने दोगे।

[तेज़ी से उसके पास से होती हुई आँगन को चली जाती है।]

चेतन—(खोखला कहकहा लगाता है) पाठ-पूजा, पाठ-पूजा; हुँ। सब ढकोसले हैं। मैंने जितना समय पाठ-पूजा करने में लगाया, यदि उतना पहेली हल करने में लगाता तो पहला इनाम मार चुका होता और विलायत की सैर अलग कर ली होती।

आनन्द—भाग्य में होता तब ना!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चेतन—अरे भाग्य कैसा ? वह तेईस हज़ार रुपया, मुफ़्त इंग्लिस्तान की सैर और सम्राट जार्ज के राज्याभिषेक पर दो टिकटों का इनाम मेरे हाथ आते-आते रह गया। सब हल मैंने ठीक सोचा था, भरने बैठा तो दो इन्टरलॉकर ❀ (Interlocker) ग़लत कर बैठा, उस समय भगवान के ध्यान में मग्न था, ख़याल था इतनी पाठ-पूजा, नेम-धरम करता हूँ, भगवान क्या मेरी नहीं सुनेंगे। पूरा विश्वास था यह इनाम मुझे ही मिलेगा। उसी में ही पाँच ग़लतियाँ निकलीं (चबा-चबाकर) पूजा-पाठ ! हूँ, मैंने उसी दिन सब बन्द कर दिया। अब अधिक परिश्रम से, निष्ठा के साथ पूर्ण रूप से सोच-विचारकर पहेली का हल भेजता हूँ। यही जो पिछला भेजा है, खूब सोचकर भेजा है, और फिर इन्टरलाकर सारे परम्यूट (Permute) ‡ कर दिये हैं, देख लेना, इस बार यदि प्रथम पुरस्कार न आया, तो ग़लतियाँ दो-एक ही होंगी।

आनन्द—अरे सदैव ऐसा ही होता है, जब-जब तुमने कहा—कि एक या दो ग़लतियाँ होंगी तब-तब पाँच-पाँच, छः-छः आईं और याद है, जब एक बार तुमने कहा था—अबके पहला इनाम बस मैं मार ही लूँगा, तभी ग़लतियाँ आई थीं।

चेतन – नहीं, इस बार देख लेना, अव्वल तो पहला इनाम लिया, नहीं तो एक-दो ग़लतियों का तो कहीं गया ही नहीं।

आनन्द—आ गया तुम्हें इनाम !

चेतन—१८ हल भेजे हैं।

आनन्द—यहाँ ३६-३६ भेजनेवालों को कौड़ी न मिली।

चेतन—(आनन्द के कन्धे पर थपकी देकर) कहो यार, अगर यह इनाम तुम्हें आ जाये तो।

आनन्द—यहाँ ऐसे किस्मत के धनी नहीं, जब से पहेली का हल भेजना शुरू किया है, पाँच ही ग़लतियाँ आती हैं, न चार न छः। तुम्हारी तरह अगर कहीं मैं तीन से अधिक हल भेजता तो अब तक कई छोटे-मोटे इनाम मार ले जाता।

चेतन—लेकिन मैं पूछता हूँ, अगर यह तुम्हें आ जाये !

आनन्द—मुझे आ चुका, मैं तो अब छोड़ दूँगा भाई, आयेगा किसी बुद्धू को, भला बताओ उस नामाक़ूल इंस्पेक्टर को आ गया। जानते हो उसने क्या किया ? रुपया उसने बैंक में जमा करा दिया, और अब उसके हल से पहेलियाँ भेज रहा है।

चेतन—अरे वह फिर ले जायगा, कम्बख़्त, तीस-तीस कूपन भेज देता है।

आनन्द—कमाना पड़े तब न, ब्याज भी तो चालीस के लगभग आता होगा। परमात्मा देता भी है तो किन मूर्खों को। एक दिन मैंने पूछा—खान, अगर अबके इनाम आजाय तो क्या करो। कहने लगा—एक बीबी और ले आऊँ। और वह अपने कथन के सम्बन्ध में गम्भीर था। तुम ही कहो किन मूर्खों का रुपया मिलता है, अरे दस हज़ार तो दूर रहे,

---

❀ परस्पर-संलग्न शब्द ‡ अदल-बदलकर कुल जितने शब्द बने विभिन्न कूपनों में उतने भर देना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुझे तो यदि पाँच हज़ार ही आ जाये तो वह काम कर दिखाऊँ कि.....

[बाहर से आनन्द की मा आवाज़ देती है]

नन्दी ! नन्दी !!

आनन्द—लो भई जाता हूँ, यहाँ देख लेंगी तो खा ही जायेंगी, कहा करती हैं—वह तो कमाता है, चाहे गँवाये, तुम किस बाप की कमाई उड़ाते हो, मा की बात...

[फीकी हँसी हँसता है और आँगन के दरवाज़े से भाग जाता है ।]

[लाजवन्ती प्रवेश करती है]

लाज०—मैं कहती हूँ आज दफ़्तर जाओगे या नहीं, अभी शौचादि से निवृत्त नहीं हुए, दातुन नहीं की, नहाये नहीं, क्या इन मुँहजली पहेलियों के पीछे लगे रहते हो ।

चेतन—लाज !

लाज०—और मैं कहती हूँ, यहाँ आकर क्या शोर मचा दिया, मा पाठ कहाँ करेगी, और पाठ न करेगी, तो खाना न खायेगी, और मैं बैठी रहूँगी दो बजे तक ।

चेतन—अच्छा शोर मत मचाओ, अभी चला जाऊँगा, सिर्फ़ एक बात बता दो !

लाज०—कहो !

चेतन—साधारणतया, पड़ौसियों में कौन-सी चीज़ झगड़े का कारण बनती है, बिल्ली या मोटर !

लाज०—तुम्हें तो बस सारा दिन यही रहता है, मैं क्या जानूँ ।

[जाना चाहती है ।]

चेतन—(रास्ता रोकता हुआ) मेरी बात का जवाब देकर जाओ, आज मुझे हल भेजना है, आखरी तारीख़ है ।

लाज०—हटो मुझे जाने दो ।

चेतन—पहले बताओ ।

लाज०—अच्छा फिर कहो !

चेतन—(हाथ में पकड़ा हुआ अख़बार देकर) यह तो अंग्रेज़ी में है, तुम मतलब समझ लो । लिखा है कि साधारणतया पड़ौसियों में इसकी आवाज़ झगड़े का कारण बन जाती है, अब बताओ वह चीज़ बिल्ली है या मोटर ! क्योंकि इन दोनो में से एक ही चीज़ आ सकती है ।

लाज—बिल्ली !

चेतन—(आँखों में चमक आ जाती है) कैसे ?

लाज०—सब पड़ोसियों के पास तो मोटरें होती नहीं, हो सकता है सारे के सारे मुहल्ले में भी एक मोटर न हो, और बिल्लियाँ तो घर-घर...

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चेतन—(खुशी से पागल होकर) लाज !

[उसे आलिङ्गन-बद्ध कर लेता है और फिर उसे छोड़कर जेब से फाउन्टेन पैन निकाल-कर वहीं पत्र पर लिखता है।]

(ऊँचे स्वर से) सी ए टी कैट, मैंने बैंक कर दिया (उछलकर) ईसपात की तरह, न टूटनेवाला बैंकर !

(कुछ नरम होकर) लाज, यदि हमें पहला इनाम आ जाये।

[लाजवन्ती की आँखें खुली रह जाती हैं।]

सच कहता हूँ तुम्हें गहनों-कपड़ों से लाद दूँ। (दीर्घ निश्वास छोड़ता है) मैंने तुम्हें कितना कष्ट दिया है लाज ! तुम्हारा कोई शौक तो मैं क्या पूरा करता, उल्टा तुम्हारी बनी हुई चीजें भी ले जाता रहा। (सहसा जोश से) लेकिन मैं इन सबकी कसर निकाल दूँगा लाज, एक बार केवल एक बार इनाम आजाये। गहनों के ढेर लगा दूँगा, कपड़ों के अम्बार लगा दूँगा, पच्चीस हज़ार का इनाम है इस बार। पच्चीस हज़ार का एक कार और दो आदमियों के लिए मुफ़्त इंग्लिस्तान का सफ़र। लाज, मैं तुम्हें अपने साथ इंग्लिस्तान में, स्वतंत्रता, सम्पन्नता, धन, वैभव के उस देश में...

[लाजवन्ती के अनिमेष खुले दृगों में चमक आ जाती है, फिर उदासी छा जाती है]

लाज०—(एक लम्बी साँस खींचकर) अच्छा जाओ। आ गया पच्चीस हज़ार ! अब चलकर नहाओ, खाओ, दफ़्तर की तैयारी करो और मा को इधर पाठ करने दो।

[जल्दी-जल्दी चली जाती है।]

[दीर्घ निश्वास छोड़कर अख़बार पढ़ता-पढ़ता चेतन उसके पीछे-पीछे जाता है।]

पर्दा।

लाहौर। जनवरी, १९३९।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वापसी व वापसी

[बलराज साहनी]

लँगड़ू नूरअहमद ने सर्दी की निमाज़ पढ़ते वक्त कुछ तोपें सुनी थीं। उसके बाद चपरासियों को नई वर्दियाँ पहने इधर-उधर भटकते हुए देखा था। लेकिन परवरदिगार की दरगाह से यह पूछने की कोशिश न की कि माजरा क्या है। नियमानुसार ख़ुदावन्दे-ताला से सारे काश्मीरियों की, और विशेषकर दारोग़े की, चमड़ी कुत्तों के आगे डालने की दुआ करके वह चुपचाप अपनी लोई की तहों में सिमटकर बैठ गया, और कई घण्टे बैठा रहा।

नियमानुसार बारह बजे लोहे का बड़ा फाटक कड़कड़ाया और दारोग़ा साहब ने अपनी छड़ी घुमाते हुए प्रवेश किया। उन्हें देखते ही नूरअहमद ने नियमानुसार अपना छः फुट चार इंच लम्बा शरीर एक टाँग के भार उभारा और बड़े परिश्रम से गला साफ़ करते हुए तोले-भर का कफ़ दालान में प्रक्षिप्त किया। इस स्वागत-करण पर आज दायें-बाएँ की कोठरियों से हँसी की बजाय प्रतिवाद उठा, जिससे एकान्त-वासी नूरअहमद को पता चला कि आज महाराज का जन्मदिन है और शायद कुछ कैदी छूट पा जायेंगे।

यदि आठ साल इन तोपों का कुछ असर नहीं हुआ तो आज होगा, इसकी लँगड़ू नूरअहमद को आशंका न थी। लेकिन जब पिछले सालों की तरह कैदी कोठरियों में से लोहियाँ सम्हालते हुए निकले, तो नूर सोचने पर बाधित हुआ कि अब उसकी पलों की जवानी पर एक साल और पड़ जायगा।

और जब उसकी कोठरी के आगे से गुज़रते हुए दारोग़ा साहब के कदम यकायक रुक गये तो उसका दिल भी रुक गया, और उसकी लाल आँखें डबडबा गईं।

कुंजी ताले में फिरी और उसे बाहर निकलने का आदेश हुआ। निकलते ही दारोग़ा साहब ने एक ऐसा चौरस थप्पड़ उसकी गर्दन में दिया कि उसकी टोपी मिट्टी में जा पड़ी। लेकिन उसे उठाकर नूरू अपनी मस्तमौला चाल से चलता गया। वह दिन पूरे हो चुके, जब थप्पड़ उसकी पेशानी पर बल डाल सकते थे। कमख़ुशिकस्मत कैदी अपनी-अपनी कोठरियों से पूरी हार्दिकता के साथ उसे अलविदा कह रहे थे, लेकिन उसने न सुना, न ही यह सोचा कि उसके जाने के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाद उनका वक्त कैसे गुज़रेगा। किसी ने, ज़माने की हास्यास्पद रीति के अनुसार एक पुरानी कपड़ों की थैली उसे ला दी। किसी ने पैसे दिये, किसी ने अँगूठा लगवाया, किसी ने मशीन पर चढ़ने को कहा। नूरू मन्त्र-मुग्ध की भाँति सब कुछ करता और अपनी बड़बड़ाहट से कर्मचारियों का दिल बहलाव करता रहा। फाटक के बाहर पहुँचकर उसने बाकियों से आगे बढ़कर छाती पर हाथ रखा और अपनी गुस्ताखियों के लिए दारोग़ा साहब के आगे सिर झुका दिया। अपने इस अन्तिम मसख़रेपन पर लोगों का हास्य सुनता-सुनता वह पहाड़ी से नीचे उतरने लगा।

दस-पंद्रह कदम उतरकर वह ठहरा। एक बार श्रीनगर के शहर पर और गिर्दोनिवाह की फ़सल पर नज़र घुमाई। अपने मुहल्ले को पहिचानने की कोशिश की। झील पर नन्हे-नन्हे शिकारों को रींगते हुए देखा। फिर आश्वस्त हो, अल्लाह का शुकर कर, उतरने लगा। सड़क पर कैदियों के सम्बन्धियों का जमघट-सा लग रहा था। 'चीं-चीं कैं-कैं' का बाज़ार गरम था, जिसे देखकर उसे नफ़रत हुई। स्वतन्त्रता की कल्पना करते समय उसने यह कभी न सोचा था कि बाहरी संसार में रोना-धोना अभी होगा।

फिर भी उसकी गर्दन, जनसमूह से ऊपर उभरी हुई, घूम-घूमकर किसी को खोजने लगी। किन्तु थोड़ी देर बाद निराश हो गई और वह चल निकला। यह देखकर भीड़ के सम्पर्क से दूर पुल पर बैठा हुआ एक नवयुवक उठा और नूरू की ओर चला। उसकी दाढ़ी पान के पत्ते की तरह तराशी हुई थी, रंग गोरा था, और वह हरे कोट व सफेद-लाल पट्टेवाली, पगड़ी में मलबूस था। नज़दीक आकर अकस्मात् उसने नूरू के पाँव छू दिये। नूरू सटपटा गया, और आवश्यक 'वार छुस' 'ख़ैर छुस' के बाद खिसकने लगा। स्वच्छ कपड़ों से उसे मिर्गी पहुँचती थी। लेकिन नवयुवक ने उसकी बाँह पकड़कर कहा—

'लाला मुझे पहचाना नहीं ?'

नुरू तै न कर सका कि यह विनोद है या यथार्थ। उसने नवयुक को सिर से पैर तक देखा। न, न, यह छेड़खानी नहीं थी। नवयुवक की आँखें सरल थीं और उनमें कुछ-न-कुछ नाहक उसे अपनी ओर खींच रहा था। नवयुवक ने कहा—

'लाला, मैं हबीब हूँ।'

'ओ हबीब ! ओ बेशरम ?' नूरू ने नवयुवक को छाती से लगा लिया। उसकी लाल आंखें फिर उमड़ आईं और उसकी मुस्कराहट सुख और दुःख की सीमाओं में निरर्थक-सी पंक्ति खींचने लगी। लेकिन नवयुवक को यह भावुकता अच्छी न लगी ; क्योंकि इसमें आठ साल के बिन-नहाये शरीर की बू थी। वह अलग होने की कोशिश करने लगा।

'हबीब ? ओ बेशरम ?—तू इतना बड़ा हो गया !' पिता ने पुत्र को फिर से निहारते हुए कहा।

'लाला, आठ साल हो गया।'

'हाँ आठ साल हो गया।'—नूरे ने साँस छोड़ते हुए कहा और दोनो आगे बढ़े।

कुछ देर की चुपचाप के बाद हबीब ने गंभीरता के साथ पूछा :

'लाला, अब तुम क्या करोगे ?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नूरू को यह प्रश्न भद्दा-सा मालूम हुआ। आठ साल की पाशविक कैद से छुटकारा पाकर दोज़ख़ की पहाड़ी से अभी उतरा हूँ और मेरे पुत्र के पास स्वागतकरण का केवल यही साधन है कि मुझसे पूछे कि अब मैं क्या करूँगा? क्या इसे किसी ने नहीं सिखाया कि ऐसी बात नहीं कही जाती? नूरू खिन्न हो गया। यह वह हब्बू नहीं था जो पुलिसवालों के अत्याचार करने पर भी बाप के कन्धे से नहीं उतरता था, जिसके रोते हुए चेहरे की स्मृति ने उसके जीवन में क्रान्ति पैदा कर दी थी। इस पान के बादशाह की-सी दाढ़ी और इन अकड़े हुए कपड़ों को अपने बाप से शरम आती थी। शायद रहती भी इसी कारण नहीं आई। क्यों आये? कभी चोर के घर आने पर भी किसी को ख़ुशी हुई है? लेकिन नहीं, नहीं। उसने प्रेम-भरे नेत्रों से अपने पुत्र की ओर देखा। कितना सुन्दर चेहरा था, कितना पौरुष डील-डौल। कुछ दिनों तक ये लोग स्वयं ही देख लेंगे कि नूरू कितना बदल चुका है। लेकिन रहती क्यों नहीं आई? कहीं बीमार न हो, कहीं मर ही तो नहीं गई? भला पूछूँ तो? फिर रुक गया। हब्बू सोचेगा, बाप रे कितना निर्लज्ज हो गया है। उसे अब यह अवसर नहीं देना चाहिये। उसने पुत्र के सवाल का जवाब सवाल में दिया—

'तू अपना हाल-अहवाल सुना।'

हब्बू का चेहरा तमतमा गया। वह इसी इन्तज़ार में था। उसके वरदी पहनकर आने, व बाक़ी लोगों से अलग होकर बैठने का अभिप्राय ही यह था कि संसार जान ले कि वह मामूली आदमी नहीं है। शायद उसे देखकर बाप को भी उपदेश मिले कि स्वच्छता व पारसाई कोई वस्तु नहीं। अठारह वर्ष की अवस्था में ही उसके जीवन की महत्त्वाकांक्षाएँ बर आई थीं, यह अवसर किस-किसको हासिल होता है? वह एक प्रभावशाली अंग्रेज़ का बैरा है। दिन-रात, जीवन का एक-एक क्षण साहब की सेवा में व्यतीत करता है। घर जाना, अपने सम्बन्धियों के मुहल्ले तक में कदम रखना उसे मुसीबत है। कई सड़कें ऐसी हैं, जिन पर से गुज़रने की बजाय दो मील का चक्कर उसे ज़्यादा मंजूर है। ऐसा बाप, और अब ऐसी मा, बिरादरी तो उसे कच्चा खा डाले।

'मैं राम-मुन्शी-बाग़ में गिटमैन साहब की कोठी पर नौकर हूँ। दो साल हुए काम शुरू किया था। पहले झाड़-फूँक व बूट-पालिश का काम मिला, फिर साहब ने मेरी ईमानदारी और परिश्रम की दाद देकर मुझे अपने कारख़ाने में चपरासी लगा लिया। अब दो महीने से बैरे का काम कर रहा हूँ। बीस रुपए तलब मिलती है और रोटी-कपड़ा साथ में। साहब बहुत ही नेक आदमी है। उसकी फैक्टरी में दो सौ आदमी काम करते हैं लाला, दो सौ। महाराज के साथ पोलो खेलता है। दो मोटरें रखी हैं उसने, जिधर से निकल जाती हैं जहान देखता है। पिछले हफ़्ते मुझे अपने साथ बिठाकर गुल्मर्ग ले गया था। कहा तो कुछ जाता नहीं; पर लाला, अल्ला रहम करे और मेरे ईमान को बरकत बख़्शे, साहब आगे और भी मेहरबान होगा। ख़ुदा जानता है रात को तीन-तीन बजे क्लब से आता है और उसकी जेबों में सैकड़ों रुपए होते हैं। अगर चाहूँ तो पाँच-दस रोज़ इधर-उधर कर दूँ लेकिन हराम की एक पाई मुझे मंजूर नहीं...'

लँगड़ू नूर अहमद को और सुनना असह्य हो गया। देखो लंगूर की तरफ़। बजाय इसके कि मर्यादानुसार पहले अपनी मा का, फिर दूसरे साक-सम्बन्धियों का कुशल-समाचार दे, इसे अपने साहब की पड़ी है। और फिर इसकी यह जुर्रत कि अपने बाप को धर्म ईमान का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपदेश देना शुरू कर दे ? लानत है। उसने काटकर कहा—ख़ैर, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। लेकिन बेटा, जो शख़्स बाहर से आये उसे पहले बुज़ुर्गों का हाल-अहवाल देना चाहिये, अदब यही सिखाता है।

'ऊँह, उनका क्या है ?'—हब्बू ने उपेक्षा से कहा—जिस गन्दगी में आगे सड़ रहे थे उसी में अब भी पड़े हैं। वही गंदा पानी पीते हैं, साल भर नहाते नहीं, सारा दिन फ़िज़ूल बकबक में गुज़ार देते हैं। बाबा अहदजू के पास जो कुछ था, वह शराब और जूए की नज़र हो गया है और अब घरवाली को लातें जड़ने के सिवा उन्हें कोई काम नहीं। लाला इन लोगों से मुझे नफ़रत हो गई है।

चिनारों से घिरी हुई वह पुरानी सड़कें न थीं, उनका स्थान चौड़े-चौड़े चिकने मैदानों ने ले लिया था, जिन पर चर्र-चर्र करती हुई मोटरें इधर से उधर भाग रही थीं। चौराहों पर सिपाही कौतुक-पूर्ण अन्दाज़ से हाथ हिला रहे थे और बार-बार नूरू को आस-पास के थड़ों पर चलने का आदेश करते, जिन पर उतरने-चढ़ने में उसे दिक्कत होती। हर तरफ़ परिवर्तन, स्वच्छता की बू आ रही थी। नदी के आस-पास बेंत के वह जंगल, जिनमें कई दोपहर उसने छिपकर चरवाही युवतियों के संग बिताये थे, अब कहीं नज़र नहीं आते। आठ साल के अन्दर नूरू का काश्मर देश बिल्कुल बदल गया था। 'मैंने सुना है फिरंगी हराम की चीज़ भी खाते हैं, क्या यह ठीक है ?'—नूरू ने विष भरे स्वर में कहा।

हबीब का उन्नत मस्तक इस प्रश्न पर गिर गया। बेशक खाना-पकाना खानसामा का काम था; लेकिन प्लेट पर धरकर लाता तो वही था। उसके जी में आया कि स्पष्ट कह दे कि चोरी के मुक़ाबले में यह काम बुरा नहीं है; लेकिन आख़िर बाप था। वह यह धृष्टता न कर सका। नूरू को भी पश्चात्ताप हुआ। यह माना कि उसने अपने पुत्र के लिए सदैव किसी उज्ज्वल और स्वतन्त्र जीविका की कल्पना की थी; लेकिन इस कैद की लम्बी अनुपस्थिति ने सब बरबाद कर दिया। इसमें हब्बू का क्या क़सूर ?

कुछ दूर तक फिर दोनो चुपचाप चलते गये। आख़िर नूरू से रहा न गया—

'रहती क्यों नहीं आई, ठीक तो है न।'

'हाँ ठीक है'—हब्बू ने गुनगुना-सा जवाब दिया—मुझे काम ज्यादा था इसलिए कोठी से सीधा इधर ही आ गया।

अब वह सड़क के आर-पार बनाये गये एक ऊँचे फाटक के पास पहुँचे जो टहनियों और फूलों से लदा हुआ था। इससे आगे रङ्ग-बिरङ्गी झण्डियों का एक ताँता-सा लगा हुआ था। दूकानें सजी हुई थीं और स्थान-स्थान पर सुनहरे अक्षरों से जटित कपड़े लटक रहे थे।

जन्मोत्सव की इन निशानियों को देखकर नूरू को पहले महाराज की याद हो आई। तब यह मोटरें भी न थीं और यह चौड़ी सड़कें भी न थीं। फ़ौजी डोगरे एक कन्धे पर बन्दूक और दूसरे पर चिलम थामकर पहरा दिया करते थे। कितना शरीफ़ था बूढ़ा महाराज। जाते-जाते हज़ारों ख़ैरायत कर जाता था। जिस दिन थोड़ पड़े, डेवढ़ी में जा घुसे। दाल-भात नसीब हो जाता था। सिपाही को चौथे-पाँचवें दिन एक विलायती सिगरेट पिला दो, फिर चाहे वज़ीर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का जेब कुतर लो। आह वह दिन...

अकस्मात् हबीब ठहर गया और कलाई पर लगी हुई घड़ी को देखते हुए बोला—'लाला, अब इजाज़त दो, मुझे काम है। शाम को आऊँगा।'

नूरू को जैसे किसी ने नश्तर चुभो दिया। इसे बाप को घर तक छोड़ आने की फ़ुर्सत नहीं। उसके हाथों में जलन हुई; लेकिन पहले दिन ही कान पीस देना ठीक नहीं होगा। कल सही।

इसके बाद लँगड़ू नूर अहमद मटकता-मटकता अपने मुहल्ले में पहुँचा। काले कीचड़, बाकरख़ानी तथा सड़ी हुई मछली की बदबू एक साथ सूँघते ही उसने अपने शरीर में एक नयी जान महसूस की। किसी कंजूस बनिये की तरह जिसे परदेस से लौटते समय यही आशंका बनी रहती है कि मेरा घर कहीं लुट न चुका हो, वह धड़कते हुए दिल से ठहर-ठहरकर प्रत्येक स्थान को पहचानता। उसे तसल्ली हुई कि उसका कोई समव्यवसायी मुहल्ले के दो-एक मकान उड़ा नहीं ले गया।

अपनी गली के सिरे पर पहुँचकर उसने बिस्मिल्ला कही और अन्दर प्रवेश किया। लेकिन, न जाने क्यों, वही दीवारें जिनकी ओर कभी उसने आँख उठाकर देखने की पर्वाह न की थी, उसे खाने को दौड़ीं। उनकी ईंट उसे अपरिचित-सी मालूम हुईं जैसे पूछ रही हों—तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारा क्या काम है? दीवारों से नूरू को वैसे भी अब डर लगता था, मगर यह तो रास्ता ही रोक रही थीं। नूरू ने यह सोचा शायद वह किसी दूसरी गली में घुस आया है और वापस लौटा। एक क्षण के लिए उसे ऐसा प्रतीत हुआ शायद वह मरने के बाद अपनी कब्र से उठकर चल पड़ा है। उसने रहती, अपनी पत्नी, के चेहरे को याद करने की चेष्टा की, लेकिन वही रेखाएँ जो जेल में हरदम उसके सामने रहती थीं अब दूर, किसी धुँधले संसार में जा बसी थीं। बाज़ार में पहुँचकर उसने फिर गली को परखा। गली तो वही थी।

इतने में अन्दर से एक ढोल की तरह मोटी अधेड़ उमर की हतभी, हाथों को फिरन के अन्दर छिपाये हुए, अपनी छातियों की विपुलता को काँगड़ी का सेंक देती हुई, आती दिखाई दी। नूरे को देखते ही अपनी छोटी-छोटी, दाग़ी सेब की-सी, आँखें नचाती हुई चिल्ला उठी—

'वाह रे मेरे नागराई—य, वाह रे मेरे रांझिये, वाह रे मेरे कोंग पोश!'—फिर हँसते-हँसते लाल हो गई। फिर पास आई और नूरू की बाँह को थामकर मुहल्लेवालों को पुकारने लगी कि उसका नागराई वापस आ गया है।

लेकिन उसके नागराई रोज़ वापस आते थे, इसलिए मुहल्ले में कोई जुम्बश पैदा नहीं हुई। उदास-सी होकर वह उसे लेकर एक थड़े पर बैठ गई।

नूरू ने उसे शोर करने से मना किया और कहा—देखो मैं थका हुआ हूँ, मुझे घर जाने दो, छेड़ो मत।

स्त्री ने नटखट अन्दाज़ से हाथ उठा लिये और उन्हें अपनी जाँघों पर पटकती हुई बोली—जाओ, तुम्हें रोकता कौन है, मगर जाओगे कहाँ?

'क्यों रहती घर पर नहीं?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्त्री अपनी भयानक हँसी से फिर लोट-पोट हो गई।

'रहती ? अरे काफ़िर, तुझे इस बेहूदा ढंग से बात करते हुए लाज नहीं आती ? बेगम अख़्तरी जान नोशेलब को रहती पुकारता है ?'

चुड़ेल का व्यंग नूरे की समझ में न आया। आख़िर उसे काबू करने के एकमात्र उपाय का आश्रय लेते हुए उसने स्त्री की ठोड़ी हाथ में लेकर दस-पन्द्रह लगातार अश्लील वाक्य कह डाले कि वह पसीज गई और शरमाती हुई बोली—

'रहती ने धन्धा कर लिया है। वह जो दरया पर झुका हुआ मकान है, वह जिसके छज्जे पर फूलों के गमले हैं और ऊपर मैना का पिंजड़ा है, हाँ, उसी में बैठती है।'—यह कहकर वह रोने लगी।

नूरू उठा और अपनी टोपी को हाथों में टटोलता हुआ इस नये घर की ओर दृष्टि बाँधकर चला।

मकान की सीढ़ियों के पास एक क्षीणकाय, लम्बे और खूब सँवारे हुए बालोंवाला व्यक्ति खाट पर बैठा हुक्का पी रहा था। लँगड़ू को ऊपर जाते हुए देखकर दुत्कार कर बोला—ओ हतो, कहाँ जाता है ?

नूरू रुका नहीं।

व्यक्ति अपनी गुड़गुड़ी छोड़, लोई के आराम को स्थगित कर, उस पर लपका ; लेकिन कुछ क्षण बाद उसी तेज़ी के साथ लुढ़कता हुआ सीढ़ियों से वापस आ गिरा और कुछ सोचकर फिर तम्बाकू पीने लगा।

नूरू एक बन्द-से विलास-गृह में दाख़िल हुआ। फ़र्श पर लाल गब्बा बिछ रहा था, और उस पर, कोने में, तकियों से सजी हुई एक सफ़ेद चादर। खिड़कियाँ बन्द थीं और बत्ती जल रही थी। उसका प्रकाश खिड़कियों के आगे लटकी हुई रङ्ग-बिरङ्गे मोतियों की झालरों, दीवार के साथ टँगे हुए एक चौड़े शीशे, अथवा कुछेक अधनंगी तस्वीरों में झलक रहा था। उसकी रहती सलक की रज़ाई ओढ़े, आँखों में हल्का-सा काजल डाले, सिरहाने कुछ फूल रखे हुए, चौड़ी शय्या पर सो रही थी।

नूरू अपनी सालम टाँग के बल खड़ा होकर बेहोशी के आलम में उसे देखता रहा ! यदि वह इस समय उसे छुरे से काट देता, या अपने कपड़े उतारकर उसके साथ जा लेटता, तो यह दोनो ही घटनायें असंभव न थीं। लेकिन वह निश्चल खड़ा रहा। ऐसी परिस्थिति से उसे स्वप्न में भी सामना न हुआ था। रन्डियों के पास वह जा चुका था ; लेकिन उनमें से कोई भी न इतनी सुन्दर, न उसकी पत्नी थी।

हठात् रहती ने आँखें खोलीं। विश्वास न कर सकी और उठ बैठी। उसके आतंक में अपनी भार्या की झलक नूरू को मिली, उन दिनों की जब सड़क ही पर वह उसे पीटने लग जाया करता था। पहचान से मुहब्बत और चाह जागृत हुई। चिल्ला उठा—

'ओ हरामज़ादी, खंज़ीर की बच्ची, तुझसे इस नापाक कुतियापन के बग़ैर रहा न गया ? ओ तेरे बाप की नसल दोज़ख़ में जाये। मैं वहाँ आग में जलता रहा और तू यहाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुलछर्रे उड़ाती रही। ओ...'

पेश्तर इसके कि अपनी आवाज़ से अधिकाधिक उत्तेजित होने का पुराना सिलसिला जारी हो जाता और क्रमशः नौबत हाथ उठाने पर पहुँचती, रहती ने रोना शुरू कर दिया। यह रोना वास्तविक था या नहीं, केवल रहती ही जाने। वह कुछ न कुछ बदल चुकी थी। उसके चेहरे का अल्हड़पन बदस्तूर क़ायम था; लेकिन अब वह उससे काम लेती थी। यह भी जान गई थी कि जितना थोड़ा काम लिया जाय प्रतिक्रिया अधिक होती है। जीवन में पहली बार उसे अपने ग्राविन्द के प्रति इस धारणा से प्रेरित होने का सौभाग्य मिला कि वह बेवकूफ़ है।

आध घण्टा बीता। नूरू उसे क्षमा कर चुका था। वह पास बैठी रूँधे-कंठ से अपनी अगण्य विपत्तियों का हाल कह रही थी। नूरू सहानुभूति के साथ सिर हिला रहा था। बेशक वह भी सच्ची थी। वह क्या करती? लोगों ने उसे यह नहीं बताया कि उसके अज़ीज़ को किश्तवाड़ में ले जाकर बन्द किया गया है; बल्कि यह बताया कि उसे कलकत्ते ले गये हैं। सम्बन्धियों ने मुँह मोड़ लिया, खाती कहाँ से? पुत्र भी ऐसा पामर निकला कि साहबी के चकमें में आकर अपनी मा तक को भूल बैठा। दो बार वह दरिया में कूद पड़ी; लेकिन बदनसीब को लोगों ने निकाल लिया। उसके वास्ते और क्या चारा था? फिर भी उसने किसी काफ़िर को अभी तक नहीं छूआ, हालाँकि पैसे ज़्यादा देते हैं। पाँच बार नमाज़ पढ़ती थी।

अच्छा जो हुआ सो हुआ, नूरू ने कान में दियासलाई फेरते हुए कहा—लेकिन अब रवैया बदलना होगा। मौजूदा हालत दोनो ही के गुनाहों का नतीज़ा है, वरना बेटा ऐसा गँवार न निकलता। रहती को शरीफ़ज़ादियों की तरह फिर से मैले कपड़े पहनने होंगे, और मुँह धोना भी दस-बीस दिन के लिए स्थगित करना होगा। सिर में राख डालकर बाल सीधे कर डालने होंगे, ताकि ज़माने का कटाक्ष न रहे। रहती सहमत हो गई, उठी, और शीघ्र ही वेष बदलकर पुरानी हो गई।

उसके बाद वही हुआ, जिसकी गली-मुहल्ला अब तक प्रतीक्षा में था। बेगम अख़्तरी जान नोशेलब के चबारे में अकस्मात बला की चीख़-पुकार शुरू हुई। तसवीरें और मोतियों की झालरें गर्मियों की बारिश की तरह यकायक बाज़ार में टपक पड़ीं। श्रोताओं ने न केवल मर्द के बच्चे के प्रचण्ड गर्जन की दाद दी, बल्कि किश्तवाड़ से आई हुई कई गालियाँ अपने शब्द-कोष में जड़ लीं। अख़्तरी जान नोशेलब का चीत्कार मुहल्ले के दरो-दीवार को कम्पायमान करने लगा। टफ़...टफ़...जूतियों की, थप्पड़ों की, छड़ी से पीटने की सदाएँ आने लगीं।

फिर लोगों ने देखा कि बेगम नंगे सिर सीढ़ियों से नीचे लुढ़ककर आ रही है। उसके पीछे लँगड़ू, पलंग का एक रंगीन पैर हाथ में लिये हुए जल्दी से जल्दी उतरने में असफल हो रहा है। सड़क पर पहुँचते ही बेगम एक कोने में सर पटक-पटककर लगी विलाप करने। उसके नाक और मुँह से हूबहू लहू का-सा लहू बह रहा था। नूरू ने उसे तो वहीं छोड़ा, अब किंकर्तव्य-विमूढ़ चारपाई-नशीन दलाल के सँवारे हुए बालों को थामा। सड़क पर घसीटकर उसकी खोपड़ी को ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर ठोका और कमर में तीन-चार घूँसे दिये। दो क्षण ही में उसे संज्ञा-रहित लोथड़े की तरह चित कर दिया।

अब नूरू ने बेगम को चुटिया से पकड़ा और ले चला उसका वितस्ता नदी में अन्तिम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संस्कार करने। जनता, जिनमें कई बेगम के प्रेमी रह चुके थे, अब बरदाश्त न कर सकी। सैकड़ों की तादाद में लोग जमा हो चुके थे। अब वह तमाशा देखने की बजाय छुड़ाने के लिए आगे बढ़े। स्त्रियाँ थड़ों पर खड़ी होकर अपनी क़ीमती राय का इज़हार करने लगीं। लेकिन जितना लोग आग्रह करते, उतना ही नूरू अपने नृशंसक इरादों पर कटिबद्ध होता जा रहा था। जब कोलाहल और जमघट अपनी तमाम पुरानी मर्यादाओं को पार कर चुका तो नूरू की छाती ठण्डी हुई। वही मोटे ढोल की-सी, गंदे सेब की-सी आँखोंवाली, हतबी बेगम को अपने नरपिशाच नागराई के हाथों से छुड़ाने के लिए आई और आन की आन में सफल हो गई।

फिर वही पुराना घर जिसकी तिकोन छत पर पयाज़ की खेती थी। नूरू ने सन्तोष की साँस ली। रहती के साथ विवाहित जीवन को पुनरारम्भ करने में अब कोई रुकावट न थी, क्योंकि रसम पूरी संजीदगी के साथ निभा दी गई थी। रहती ने भी मुँह से नकली लहू पोंछा, और देखा कि नोटों का पुलिन्दा आज़ारबन्द में सुव्यवस्थित है, फिर घर के काम में लग गई। नूरू साथवाले घर की छत पर बैठकर एक बुज़ुर्ग की चिलम की साँझी करने लगा। उसी घर के एक नवयुवक ने बाज़ार से उसके लिए मलमल की सफ़ेद पगड़ी ला दी, जिसे अपने उन्हीं मैले कपड़ों पर सजाकर और रहती की ओर एक लोलुप नज़र फेंककर, वह अपने नये जीवन की संसार को सूचना देने के लिए निकल पड़ा।

शाम हो चुकी थी। बाज़ार में भीड़ बढ़ गई थी। घरों में से चील के धुएँ की ख़ुशबू फैल रही थी। नूरू के मन में दो भाव इस समय प्रबलता से उद्दीप्त थे। एक तो यह कि उसे भूख लगी है और दूसरे यह कि जेल के फाटक में से जो संसार इतना सुखमय और बहुमूल्य नज़र आता था, वह अभी तक बहुत विशाल और फीका जान पड़ता था। जेल में वह कुछेक महत्त्व-पूर्ण निश्चय करके निकला था; लेकिन अब उनके प्रतिफलित होने की आशा कठिन-सी जान पड़ती थी। रहती के शरीर के लिए उसके रक्त में ज़बरदस्त भूख थी। शायद रात को वह छुपके-छुपके उसे उसी तरह साफ़ होकर आने के लिए इशारा करे। लेकिन उसके जीवन का भविष्य हब्बू पर ही अवलम्बित था। वह कितनी उपेक्षा के साथ कन्नी काट गया? शाम हो गई, लेकिन अभी तक नहीं आया। क्या ही अच्छा हो कि उसे कुछ दिनों के लिए जेल ही में सोने दिया जाय। अभी कुछ घण्टों की आज़ादी काफ़ी है।

कुछ इसी प्रकार सोचता वह लँगड़ाता हुआ चला जा रहा था। उसका ध्यान एक खाने-पीने की दुकान के बाहर पड़े हुए सन्दूक की ओर गया। इसमें से किसी लड़की के गाने की आवाज़ आ रही थी—

चुल हमा रोशे रोशे
पोशे मति जाना नो।

नूरू ठहर गया। यह कौन गा रही थी? उसने देखा कि सड़क के किनारे बीस आदमी कान पर हाथ रखे बैठे हुए हैं; लेकिन किसी के मुँह पर तरस की रेखा तक नहीं कि गानेवाली को इस तरह बन्द किया गया है। और सन्दूक उसकी कोठरी के मुकाबले में कितनी छोटी थी! इतने में गाना बन्द हो गया। दुकानदार ने सन्दूक का ढक्कन खोला और उसमें से एक थाली-सी निकाली। नूरू लपककर आगे बढ़ा और अन्दर झाँककर पूछने लगा—हतबी कहाँ है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सभी लोग हँसने लगे। इतने में एक पुराने हमजोली ने उसकी बाँह पर हाथ रखा और उसे दूकान के अन्दर ले गया।

रात के दस बज चुके जब नूरू लड़खड़ाता हुआ दूकान में से निकला। लड़की फिर वही गीत गा रही थी—

चुल हमा रोशे रोशे
पोशे मति जाना नो।

नूरू ने हँसते-हँसते ढकना उठाया और अन्दर झाँककर फिर रख दिया। लेकिन अब कोई न हँसा। सड़क खाली थी।

अपने मित्र से विदा लेकर नूरू आहिस्ता-आहिस्ता अपने घर की ओर चला। लेकिन साथ ही साथ उसका मन घर की ओर से उचाट होने लगा। क्या रखा है वहाँ? बीसियों के साथ लेट चुकी है। हब्बू के घर न आने का कारण भी वही है। न जाने अब भी किसी यार को बग़ल में ले बैठी हो। नशे में आकर किसी की प्रवृत्ति तामसिक हो जाती है और किसी की सात्त्विक।

नूरू वापस लौट पड़ा। पूरब दिशा में आकाश लाल-लाल बत्तियों के प्रकाश से अंगारा हो रहा था। अमीराकदल में जनसमूह का कलकल सुनाई दे रहा था। नुरू के दिमाग़ में शराब की मस्ती कुछ बढ़ रही थी। कदम चुस्त करके वह अमीराकदल की ओर चला।

बड़े बाज़ार में भीड़ सड़क के दोनो ओर रुकी हुई थी और महाराज की मोटरें गुज़र रही थीं। नूरू को भीड़ में ठहरना पसंद न आया। सरकता-सरकता, लोगों की गालियाँ और धक्के खाता हुआ वह पुल के पार पहुँच गया। भीड़ में से निकलकर वह पास] ही के एक बाग़ में चिनार के नीचे जा बैठा। उसका हाथ उठकर उसकी आँखों के सामने आया। उसमें एक सोने की घड़ी अथवा जंजीर थी और एक चमड़े का बटुआ। नूरू ने उसे खोलकर देखा। पन्द्रह रुपए थे।

इनकी तरफ़ देखता हुआ नूरू हँसने लग गया। हँसता गया और घड़ी को उलट-उलटकर देखता रहा। उसकी उगलियाँ अनभ्यस्त होकर भी इतनी शिथिल नहीं हो चुकीं। यकायक उसने बटुआ भी और घड़ी भी घृणा के साथ दूर फेंक दी और उँगलियों को बन्द-खोल-कर सराहने लगा।

लेकिन उसके मन की बेचैनी दूर न हुई। उठकर वह फिर बाज़ार में आ गया। मोटरें गुज़र चुकी थीं और भीड़ तितर-बितर हो रही थी। नूरू को ऐसा लगा कि उसके मनो-विनोद के लिए बनाई गई वस्तुएँ बिखर रही हैं। और वास्तव में जो लोग एक व्यक्ति को मोटर में गुज़रते हुए देखने के लिए घंटों खड़े रहें और फिर चुपचाप घर चले जायें वे और थे ही क्या?

भीड़ में एक स्थान पर गाँठ पड़ी हुई थी। एक मोटे पेटवाला व्यक्ति कभी पुल पर इधर और कभी उधर जाता था। जिधर वह जाता, भीड़ उसके पीछे जाती। नूरू को पता चला कि उसकी सोने की घड़ी चोरी हो गई है। उसके बाद एक और टोली एक थानेदार साहब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की निगरानी में आ पहुँची। इनमें से एक का बटुआ गुम हो गया था और एक का कलम। एक दूसरे का जेब कुतरा गया था। नूरू पहले तो विस्मित हुआ फिर उसकी बाँछें खिल गईं। यह अकेले जादूगर का काम नहीं था। कोई और भी खेल रहा था। पुल के नीचे दरिया अपनी मस्तानी चाल के साथ बह रहा था। डूँगों में हतबियाँ किसी आगामी शादी के गीत गा रही थीं। तख्तए-सुलेमान पर चाँद अपनी पूरी ज्योति के साथ चमक रहा था। पुल के जंगले के साथ टेक लगाकर नूरू ने गुनगुनाना शुरू किया:—

'चुल हमा रोशे रोशे
पोशे मति जाना नो।'
वलो पोशे म्यानि पोशे मदनो।

भीड़ आहिस्ता-आहिस्ता ख़त्म होने को आई। लँगड़ू भी उसकी एक शाखा के साथ-साथ पीछे चला।

वह नहीं जानता था कि वह किस दिशा में जा रहा है, या क्यों। कभी-कभी राहगीरों को ताने दे देता, उनके वस्त्रों पर कटाक्ष करता, लेकिन वह गम्भीर-सा मुँह बनाकर आगे चले जाते; जिससे उसे ज्ञात हुआ कि लोगों के रात को भी दफ़्तर लगते हैं।

अब उसे ख़ाहिश हो रही थी कि घर जाऊँ, लेकिन एक-एक कदम के साथ उसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह बीस-बीस मील आगे बढ़ रहा है। हबीब खान घर पर नहीं होगा। रहती कितनों के साथ लेट चुकी है। नापाक औरत! अब भी किसी की बग़ल में बैठी होगी।

इस उधेड़बुन का आख़िरी फैसला करते हुए नूरू ने फैसला किया कि वह आज ही रात दूसरी शादी करेगा। रहती और हबीब को भविष्य में शकल तक न दिखायेगा। स्त्रियाँ डूँगों में बैठकर उसके गीत गाएँगी, और वह सन्दूक से भी संगीत करवायेगा।

लेकिन इसके लिए पैसों की ज़रूरत होगी। हुँ? पैसों के लिए ही तो वह भीड़ के पीछे जा रहा था।

हज़ूरी बाग़ के चिनारों के समीप पहुँचकर उसने राह बदल ली। बाग़ के बाईं ओर तीन-चार सफेद कोठियाँ चाँद की धूप में सो रही थीं। इन्हीं में से एक पर उसकी नज़र जम गई।

कोठी की बगल में एक पेड़ था। नूरू उसके साथ सटकर खड़ा हो गया, जैसे किसी प्रेयसी के गाढ़ आलिङ्गन में हो। आहिस्ता से उसने अपनी सफेद पगड़ी को ज़मीन पर रगड़कर मैला किया, और फिर उसे रस्सी की तरह गठकर बाँह के नीचे दबा लिया।

कोठी के आगे सात फुट ऊँची दीवार थी और उसकी चोटी पर काँच के टुकड़े जड़े हुए थे। सड़क की टोह लेकर नूरू बड़े आराम के साथ दीवार के पास पहुँचा और छाँहों में लुक गया। थोड़ी देर भिखारियों की तरह बैठकर दायें-बायें देखता रहा; फिर उठकर उसने पगड़ी को ढीला किया और काँच के ऊपर ज़बरदस्त झटके के साथ पटका। वह फ़ौरन बैठ गई। स्थान-स्थान पर उसने उसमें गाँठें बाँधी। इस प्रकार पगड़ी की दोहराई में जूते समेत कदम रखकर वह सहज ही दीवार पर पहुँच गया। वहाँ से बिजली की तरह पगड़ी-सीढ़ी उठाकर अन्दर की ओर फेंकी और फिसलकर बाग़ीचे में आ रहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फिर पगड़ी खोलकर उसने इस ढङ्ग से पसार दी, जैसे कोई कपड़ा दिन को सूखने के लिए डाला गया हो और उठाना याद न रहा हो। उसके एक छोर के नीचे अपना जूता छिपा दिया, ताकि ढूँढ़ना न पड़े।

मकान के आगे एक छोटा-सा बरामदा था। जिसके शीशे के सभी दरवाजे बन्द थे। शीशों को काटकर दरवाज़ा खोलना असम्भव था, क्योंकि नूरू के पास कोई औज़ार न थे। इस लिए वह मकान की पिछली तरफ़ गया। ऊपर की छत के एक कमरे में बत्ती जल रही थी, और इसमें नौकर बरतन माँज रहे थे। मकान के एक तरफ़ लकड़ी की तंग सीढ़ी थी जिसका दरवाजा अभी बन्द नहीं किया गया था। यदि फ़ौरन ही उसने इसका फ़ायदा न उठाया तो यह भी बन्द कर दिया जायगा। नूरू दबे-पाँवों ऊपर चढ़ गया और रसोई-घर की खिड़की में से अन्दर झाँकने लगा। एक नौकर बरतन धो रहा था और दूसरा खेंटे पोंछ रहा था। कम-अज़-कम आधे मिनट के लिए उनके मुँह फेरने की सम्भावना नहीं। यह ठानकर नूरू ऐन उनके सामने होकर गुज़र गया और एक अँधेरे कमरे में प्रविष्ट हुआ। लेकिन तभी उसे एक नौकर के गाने की आवाज़ अपनी ओर आती सुनाई दी। नूरू एक दम सटकर दीवार के साथ खड़ा हो गया। नौकर अन्दर आया। नूरू का कलेजा धड़कने लगा; लेकिन उसने सोच लिया कि यदि नौकर बिजली का बटन दबा दे तो उसे क्या करना चाहिये। मगर नौकर ने बटन नहीं दबाया। कोई चीज़ उठाकर वह फिर बाहर चला गया। नूरू फौरन दूसरे दरवाज़े से होकर मकान के भीतर जा घुसा। यहाँ एक गली-सी थी, जिसके साथ-साथ सीढ़ियाँ ऊपर-नीचे जाती थीं। फ़र्श लकड़ी का था और चिरचिर करता था। लेकिन नूरू हल्के कदमों से ऊपरवाली सीढ़ियों पर जा चढ़ा। फिर अपने हाथों की मदद से जँगले पर ज़ोर डालकर तीन छलाँगों में तीसरी छत पर जा पहुँचा। एक मंजिल बाक़ी थी, वह भी चढ़ गया। उसने जाँच लिया कि छत पर कोई नहीं रहता। आश्वस्त होकर वह सीढ़ियों पर बैठकर दम लेने लगा।

सीढ़ियों के दायें-बायें के दरवाज़ों से चन्द्रमा का प्रकाश छलककर अन्दर आ रहा था। इसकी सहायता से नूरू ने अपरिचित घर के दायें-बायें नज़र फेरी। सब सुनसान थी। नूरू को अपना वहाँ होना बहुत ही विचित्र-सा लगा।

उसका मन चुटकियाँ लेने लगा। मैं क्यों यहाँ आया हूँ? इसलिए कि मैं रह नहीं सका। मुझे दूसरे के घरों के वह हिस्से देखने की लत पड़ गई है, जिन्हें वह स्वयं नहीं देखते। घर ख़र्च करते हैं, मकान बनवाते हैं, फिर उन्हें भूल जाते हैं। सुबह उठे, काम पर चले गये, रात को लौटे चिट-ख़त्तियाँ चढ़ाकर सो गये। कभी इस तरह सीढ़ियों पर बैठकर उन्होंने चन्द्रमा नहीं देखा। वास्तव में मकानों का स्वामी तो मैं हूँ। मैं पास आते ही उनकी दीवारों से मित्रता पैदा कर लेता हूँ। मैं उनकी छातियाँ चीरकर चला जाता हूँ और वे मुझे याद करती रहती हैं।

एक सफ़ेद बिल्ली किसी कोने से निकली और उसे देखकर फड़क गई। नूरू भी दहल गया। फिर हँसने लगा। खुदावन्द ने उसे ग़रूर की सज़ा दी।

नौकर अब सो गये होंगे, यह अनुमान करके नूरू उठा और शनैः-शनैः निचली छत पर उतर आया। यहाँ उसने एक किवाड़ को धकेला और दाख़िल हुआ। चन्द्रमा की रोशनी कमरे के अन्दर आ रही थी। कमरा खाली था। दीवार के साथ एक मेज पर कुछ बोतलें पड़ी थीं और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाक़ी कमरा भी बड़े-से मेज़ और कुर्सियों से पूर्ण था। नूरे ने एक बो तल खोली और नाक से लगाई। फिर गटागट पाँच-दस घूँट पी गया। इसके बाद वह कुर्सियों से बचता हुआ साथवाले कमरे में पहुँचा। यह भी ख़ाली था। क्या सारा मकान ही ख़ाली था?

इस कमरे के एक तरफ़ मेज़ पर कुछ वस्तुएँ पड़ी थीं। नज़दीक आने पर मालूम हुआ कि यह तेल की बोतलें व कंघी-बुरुश इत्यादि हैं। नूरू ने दराज़ खोलकर देखे। यहाँ उसे सोने की चार चूड़ियाँ और दो अँगूठियाँ मिलीं। नूरू ने इसे बहुत ही अच्छा सगुन समझा। उसकी भावी पत्नी के लिए ज़ेवरों का इन्तज़ाम भी सहज ही में हो गया। उन्हें जेब में डालकर उसने दराज़ों को फिर टटोला; लेकिन और कुछ न मिला। वापस लौटते वक्त उसने देखा कि उसकी टाँगें, अर्थात् टाँग, कुछ न कुछ लड़खड़ा रही है। यह अनुभव करके कि शराब, अगर ख़ास मिकदार में पी जाये, तो नशीली साबित हो सकती है, उसे प्रसन्नता हुई। इसलिए उसने पहले कमरे में वापस आकर बाक़ी बोतल भी समाप्त की। तब उसे ख़याल आया कि दुलहिन के लिए जेवर तो ले लिये, लेकिन अगर तेल, कंघी और शीशा भी ले चलूँ तो क्या हर्ज है? ज़माना बदल रहा है। मुझे भी अपने विचार बदलने चाहियें। मैं अपनी दुलहिन को रंडियों से भी सुन्दर बनाकर रखूँगा और वह किसी दूसरे मर्द के पास नहीं जाया करेगी। केवल मुझे प्यार करेगी।

अब निधड़क होकर उसने बिजली का बटन दबा दिया। कमरा चुँधिया उठा। उसने देखा कि दीवारों में सटी हुई दो-तीन अलमारियाँ भी हैं। वह रुकता-रुकता उनके पास पहुँचा और किवाड़ खोल दिये। देखा कि आलमारियाँ सिल्क और ऊन के मुलायम कपड़ों से लदी पड़ी हैं, और उनमें अत्याकर्षक गन्ध आ रही है। अंजलियाँ भर-भरकर उसने कपड़े फ़र्श पर इकट्ठे करने शुरू कर दिये। फिर कंघी-शीशा लेने ड्रेसिंग-टेबल पर पहुँचा। शीशियों के बीच में एक चाँदी की छोटी-सी, अति सुन्दर, काश्मीरी सुरमादानी पर उसकी आँख पड़ी। उसका दिल बाग़-बाग़ हो गया। अगर दुलहिन सजी हुई होनी चाहिये तो क्या दूल्हा यूँही रहे? कपड़ों के ढेर के दरमियान आईना अपने सामने रखकर वह बैठ गया और लगा आँखों में सिलाई फेरने।

दूर से पहरेदार की आवाज़ उसके कानों पर पड़ी—ख़बरदार!, ख़बरदार हो...ए? यह नूरू को बड़ी सुरीली लगी, विशेष कर 'हो...ए' वाला हिस्सा; जैसे पहरेदार ने केवल उसी के मनोरञ्जन के लिए निकाली हो, बड़े आराम से उसने अपने नेत्रों में सुरमा डाला, और कोशिश की कि आँखों में ही पड़े।

पहरेदार की फिर आवाज़ आई।

'ख़बरदार हो.....ए?'

नूरू को फिर बहुत आनन्द आया। बच्चों की तरह नकल उतारकर उसने भी ऊँचे स्वर में पुकारा—

'ख़बरदार! ख़बरदार हो.....ए?'

मुहल्ले का पहरेदार उस प्रतिध्वनि को सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। कलाविदों को कलाविदों का अभिनन्दन पाकर प्रोत्साहन मिलता है। उसने लट्ठ किसी दीवार के साथ पटककर एक नये ढङ्ग से ललकार दिया—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हट—हट—अहहहह—ख़बरदारा हो.....ए ?'

उधर से भी प्रतिध्वनि हुई—

'हट—हट—अहहहह—ख़बरदारा हो.....ए ?'

लेकिन साथ ही एक दारुण चीत्कार भी उठा। इञ्जीनियर साहब के घर से घबराई हुई आवाज़ें आनी शुरू हो गईं। पहरेदार भागा और फूल के काँटें की तलाश में, फाटक खुला मकान के अन्दर घुसते ही उसने एक फ़ायर बन्दूक का आकाश में किया। निचली छत पर इञ्जीनियर साहब और उनका कुटुम्ब बरामदे में खड़ा काँप रहा था। अब ऊपर से लगातार आवाज़ें आ रही थीं—

'हट...हट...अहहहहह—ख़बरदारा हो—ए ?'

'हट...हट...अहहहहह—ख़बरदारा हो—ए ?'

शान्तिनिकेन।

एक तान

[सत्यवती मलिक]

नीम की मञ्जरियों में जब मादक सौरभ फूट पड़ता है; गुलाब की बेल से पँखुरियाँ झड़ने लगती हैं। सामने घने पेड़ पर नीले पुष्प-गुच्छ झूम उठते हैं।

न जाने किस असीम की थाह पाने, अपने आकुल पंख पसारे विहंग-युग्म नदी के शीतल जल को छूता एक लम्बी उड़ान भर देता है।

सहसा मेरे सिमटे प्राण मधु-मक्खियों की गुँजार की नाईं अस्त-व्यस्त हो उठते हैं—व्याकुल...विह्वल।

× × ×

फिर तारे चमक उठते हैं।

नीरव रात्रि मुँदी पलकों को छू मेरे स्वप्नों को जाग्रत करने आ जाती है।

शून्य में जाने किस अज्ञान को पुकार उठती हूँ।

× × ×

काश, कभी सुलझा सकती यह चिरन्तन उलझन। छा जाता नेत्रों में विश्व का सम्पूर्ण सौन्दर्य। झर जाती वेदना पतझड़ के पीले पत्तों-सी और मन-प्राण को आलोड़ित करती बज उठती एक तान!

दिल्ली।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विद्वान् जगन्नाथ अय्यर 'ज्योति'

[का० श्री० श्रीनिवासाचार्य]

जगन्नाथ अय्यर से मेरा केवल घनिष्ठ संबंध ही नहीं, ये मेरे अभिन्न मित्र भी हैं। पहले-पहल इनको देखनेवाला यह अनुमान ही नहीं कर सकता कि, राख में छिपे हुए अंगारे के समान, इस ठिंगने आदमी के अन्दर भी कोई सुन्दर ज्योति जगमगा रही है। आधुनिक तमिल-साहित्य में इन्होंने जो 'ज्योति' जला रखी है, उसका अपना एक ख़ास महत्त्व है। उस ज्योति में तमिल साहित्य की जितनी प्राचीन महक है, उतनी ही नई भड़क भी है। उसमें प्राचीन तमिल-साहित्य के आपके अध्ययन की चमक है, तो पाश्चात्य साहित्य की गति-विधियों के आपके निरीक्षण की एक झलक भी है। वह जहाँ एक ओर रस-भरित भावुकता की मंगलमय दीप-शिखा है, वहाँ दूसरी ओर दलित जातियों के हृदयों में धधकनेवाली व्यथा की चिनगारी भी है। इनकी कविताओं में 'पहला पुष्प' व 'अन्धकार का शिल्प' और कहानियों में 'कलाकार का त्याग' तथा 'दीप-निर्वाण', इस ज्योतिर्मय कला के सुन्दर नमूने हैं। इस ज्योति-धारा के स्रष्टा के रूप में इनका नाम तमिल-साहित्य में अद्वितीय है। इनकी भाषा इतनी परिष्कृत और चुस्त है कि एक बार लिख जाने पर, फिर उसमें परिवर्तन के लिए गुंजाइश नहीं रहती। आपकी कविताएँ मृदुल, तरल और सरस होती हैं।

अध्ययन और मनन की इनकी शक्ति तीव्र है। बुद्धि के तेज़ होने पर भी, कुछ साहित्यिकों में पाये जानेवाला अहंभाव इनमें नहीं है। क्रोध और ईर्ष्या भी इनमें नहीं देखी गई है। मैंने कभी इन्हें दूसरे की निन्दा करते नहीं देखा। ये दूसरे के गुणों पर जितना ध्यान देते हैं, उतना दोषों पर नहीं। इनमें अपने आपको देखने और सुधारने की प्रवृत्ति है, जो अच्छी है। इनमें आत्म-संगोपन की मात्रा आत्म-सम्मान से अधिक है, जिससे इनकी बाह्य उन्नति की काफ़ी हानि हुई है। आसमान पर चढ़ बैठनेवाले अहम्मन्य लोगों से इन्हें चिढ़ ही नहीं, डर भी है। आजकल के कुछ नये लेखक तमिल-साहित्य को पढ़े बिना ही जो साहित्यिक बनने की हामी भरते हैं, उससे इनका मन खिन्न रहता है।

जगन्नाथ अय्यर यों बड़े मौजी जीव हैं; लेकिन बाज वक्त ये गम्भीर बन जाते हैं। दूसरों से वार्तालाप करते वक्त ये अपने आपको इस कदर भूल जाते हैं कि अपने पार्थक्य का भान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही इन्हें नहीं रहता। बातचीत के ख़तम होते ही जब ये देखते हैं कि आप एक जुदे प्राणी हैं, तब इन्हें एक ठेस-सी लगती है। अपने इसी स्वभाव के कारण, ये दुनिया को कवि-सुलभ सहानुभूति की दृष्टि से देख सके हैं। लेकिन इससे, मानव-प्रकृति के दोनों—अच्छे और बुरे—पक्षों को परखने की इनकी शक्ति क्षीण नहीं हुई है।

ये अपने सभी काम छिपे-छिपे करते हैं, और जब तक अपना काम पूरा नहीं हो जाता, तब तक बाहर उसकी भनक तक नहीं उठने देते। इसीलिए इनकी कुछ प्रवृत्तियों को तमिल-जनता नहीं जान सकी है।

ये दिन-रात साहित्यिक क्षेत्र में ही व्यस्त रहते हैं। एक ओर हम इन्हें नियमित रूप से महामहोपाध्याय स्वामिनाथ अय्यर के साथ तमिल के प्राचीन ग्रन्थों का संशोधन और संपादन करते देखते हैं तो दूसरी ओर, साहित्य-गोष्ठियों में तमिल-साहित्य की प्राचीनता के साथ नवीनता का गठबंधन करते देखते हैं। इधर ये 'कलैमहल' का संपादन करते पाये गये तो उधर फिर किसी प्रसिद्ध प्रकाशक की पुस्तकों का संशोधन करते देखे गये। साहित्यिकों के किसी भी दल में इज़रत के दर्शन हो सकते हैं।

'मैं इस अपार साहित्य-सागर के किनारे एक कोने में खड़ा हूँ। मुझे मालूम नहीं, क्या करना है,'—इस भावना को लेकर ये साहित्य के क्षेत्र में उतरे थे। आज ये 'वेलै' (काम) में जुट गये हैं। 'वेला' का अर्थ 'समुद्र की लहर' भी तो होता है? 'तीर पर कैसे रुकूँ मैं? आज लहरों में निमंत्रण!' की भावना अब इनमें काम करने लग गई है।

तमिल-साहित्य के कर्णधार बनने की इनकी महत्त्वाकांक्षा व्यर्थ नहीं हो सकती। उसके लिए जिस शांति और लगन की आवश्यकता है, वह इनमें कूट-कूटकर भरी है। अब इनकी छिपी हुई शक्तियाँ धीरे-धीरे फूट निकलने लगी हैं। तमिल का वह बड़ा ही सुदिन होगा, जब ये अपने मध्याह्न पर पहुँचेंगे। अभी तो इनके सामने सारा दिन पड़ा है!

मद्रास।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह मजूर की अंधी लड़की

[रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

वह मजूर की अंधी लड़की,
कुम्हलाती, बुझते चिराग-सी टिम-टिम करती,
देख न पाती कच्ची धूप—
रौशनी उजली—
फूली-फूली रातें।
बीन रहा आँगन में बिखरे
किस दिन के जूठन के टुकड़े
उसका छोटा भाई।
मिल की सीटी बजते ही
तड़के जाते मा-बाप
आँखें मलते छोड़ उन्हें चुपचाप—
जहाँ सुलग उठती दिन चढ़ते
मीठी-मीठी दोज़ख की-सी आग।
यहाँ अँधेरे खन्दक में खामोश
सूखी, जर्जर कभी-कभी बेहोश
पड़ी रह जाती,
वह मजूर की अंधी लड़की।
पल-भर को ही खुलती आँखें काश!
देखती अपना आदमख़ोर मकान
सीड़न की दुर्गन्धि लिये सुनसान
फटी-फटी जिसमें सूरज की किरणें आतीं
एक जनाज़ा-सा लातीं,
फिर फूँक जिसे जल जाती।
सहसा सुन बिलबाते भाई की आवाज़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्त-व्यस्त चिथड़ों को ले
वह अर्धनग्न उठ जाती,
शायद नहीं जानती किन अंगों में कितना पाप !
दौड़ उठाती
उस पज़मुर्दा बच्चे की छाती से सट-सट जाती
गाती, दुलराती ले दिल में खोया-खोया ख़्वाब ।
देख अगर पाती बच्चे को
जो रोगी मा का अपराध
उसी मरभुखी के हृत्कम्पी सौख्य सृजन की साध ।
गलित चिर रुग्ण
बड़ा-सा पेट ;
प्रज्ज्वलित जिसमें असन्तोष की क्षुधा
चिता-सी ज्वाला ।
गाती जाती पाकर कोई भूली-भूली बात
वह मजूर की अंधी लड़की,
खून जम गया जिसका काला-काला
सड़ी प्राणघातक नमकीन हवा में ।
दृष्टि हनि दुर्गन्धि भरी वह
भूख गन्दगी नग्न गरीबी में ।
कहीं नहीं मेहनत मज़दूरी भी कर सकती ।
अन्धकार में पड़ी कब्र-सी आँखें,
बासी रोटी—बासी पानी ।
बीत रही धुँधली धुँधली जिंदगानी ।
सन्ध्या को मा-बाप मिलों से आते
जर्जर थकित अँगुलियाँ लेकर
सिर में चक्कर खाते
चिल्लाते खाँसी से भकुआ
फूल-फूल जाता दम
और हड्डियों पर बेकड़के गिरनेवाली
बिजली को काले चिथड़ों से ढाँपे
स्तब्ध खड़ी रहती हत्या-सी
वह मजूर की अंधी लड़की ।

प्रयाग ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हीन-भाव *

[विनयगोपाल राय]
[भगवतीप्रसाद चन्दोला]

[श्री विनयगोपालराय शान्तिनिकेतन में मनोविज्ञान के अध्यापक हैं।—सं०]

आजकल चारो ओर 'कॉमप्लेक्स' शब्द का खूब व्यवहार हो रहा है। 'कॉमप्लेक्स' है क्या वस्तु ? जो भाव-धारणाएँ मन के चेतन-स्तर से ढुलककर अवचेतन-स्तर में जटिल और क्रियोन्मुख शक्ति-पुञ्ज की सृष्टि करती हैं, उन्हीं को 'कॉमप्लेक्स' कहते हैं। जितने भी प्रकार के 'कॉमप्लेक्स' हैं उनमें से हीन-कॉमप्लेक्स सब से अधिक विशिष्ट है। एडलर के मतानुसार समस्त स्नायविक व्याधियों (Neurosis) के मूल में यही हीनता और हत-आशा का भाव निहित रहता है। उनके मत में मनुष्य की सब से प्रबल वृत्ति है क्षमता एवं महत्त्व की आकांक्षा। किन्तु सब लोग इस क्षमता वृत्ति की पूर्त्ति साधारणतया नहीं कर पाते। इसलिए इनमें से कुछ तो अपने चारो ओर के वातावरण और परिस्थितियों के साथ सुलह करके संतुष्ट हो जाते हैं। पर दूसरी ओर जो लोग अपने वातावरण के साथ संतुष्ट नहीं हो पाते, वे हीनता की भावना का आश्रय ग्रहण करते हैं। हीनता की यह भावना जीवन के नाना कार्य-व्यापारों के भीतर से अपने-आप को प्रकाशित करती रहती है।

प्रायः कई बार देखा जाता है कि कुछ ऐसे लोग रहते हैं, जो सदैव दूसरों ही के द्वारा प्रभावित और परिचालित होते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लोग देखे जाते हैं जो दूसरों को परिचालित करते रहते हैं। इन दोनो प्रकार के लोगों में से प्रथम कोटि के लोग ही हीनता की भावनावाले होते हैं। छोटे बालकों में एक दल इस प्रकार के लड़कों का प्रायः रहता है जो भाग-दौड़ और उछल-कूद करते रहना पसन्द करते हैं। खेल के मैदान में, समारोहों एवं अन्य उत्सवों के अवसर पर वे ही सदैव अग्रणी रहते हैं। किन्तु दूसरी तरह के लड़के हमेशा झेंपू और दब्बू देखे जाते हैं। खेल-कूद और उत्सव-समारोहों में जाना वे पसन्द नहीं करते, अथवा गये भी तो बिलकुल अपराधी की तरह एक कोने में छिपे बैठे रहते हैं। कारण पूछने पर उत्तर देते हैं कि यह सब हमें अच्छा नहीं लगता। इनका यह अभ्यास आयु के साथ ही साथ घनीभूत होता

* Infiriority complex.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाता है और आगे चलकर वे हीनता के शिकार बन जाते हैं। ऐसे लोगों पर यदि औरों के परिचालन का भार दिया जाय तो वे या तो उसे अस्वीकार करेंगे अथवा नाना प्रकार से टालमटोल करेंगे।

सभी को जीवन में हिटलर, मुसोलिनी या गान्धी बनने का सुयोग मिल सकना असम्भव है। किन्तु छोटे-मोटे काम-काज का भार तो जीवन में सभी के ऊपर आता है। मैं एक साम्राज्य को भले ही न चलाऊँ, किन्तु अपने परिवार को चलाने का भार तो अवश्यमेव आयेगा ही। परन्तु इस तरह का छोटा-मोटा काम भी हीनता-भाववाले लोगों के लिए दुर्वह हो जाता है। अनेक परिवारों में यह देखा जाता है कि परिवार को चलाने का भार स्वामी के ऊपर न होकर स्त्री के ऊपर रहता है। स्वामी ने सारा कार्य-भार स्त्री के ऊपर छोड़ दिया, क्योंकि वह स्वयं असमर्थ है। नौकर को धमकाना हो तो स्वामी यह काम स्त्री से करवायेगा। स्वयं वह नौकर के सामने गम्भीर मुद्रा बनाये रहेगा। ठीक से बात भी न करेगा (क्योंकि इससे हीनता प्रकट होने का भय है)। नौकर यदि चतुर हो तो मालिक की इस कमज़ोरी को पकड़ लेगा और इसका फ़ायदा उठाये बगैर न रहेगा। नौकर रखते समय इस तरह के लोग छोकड़ा या बूढ़ा नौकर नियुक्त करते हैं, क्योंकि युवक नौकर के साथ व्यवहार में उनकी दुर्बलता प्रकट हो जाती है।

ऐसे हीन-भाववाले लोग जब समाज में मिलते-जुलते हैं, तो यह दीनता अद्भुत प्रकार से व्यक्त होती है। ये दूसरों की निन्दा करते हैं, दूसरों की बदनामी (Scandal) भी ऐसे लोग फैलाते हैं। इन्हें किसी की तारीफ़ नहीं भाती। अमुक व्यक्ति उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ, ओ! मैं भी ऐसा कर सकता हूँ। अमुक व्यक्ति ३० घण्टे लगातार तैरा, मैं भी ऐसा कर सकता हूँ, किन्तु यह सब फ़ज़ूल है। कुछ इसी तरह की इनकी भाव-भंगि और बातें होती हैं। दूसरों के छिद्रान्वेषण करना ही मानो इनके जीवन का व्रत है।

अन्य लोगों के साथ जब ये मिलते हैं तो बड़े भयभीत-से रहते हैं! जब सौदा ख़रीदने के लिए बाजार जाते हैं तो हमेशा उसी दूकान में जाते हैं जो छोटी हो और जिसमें भीड़ भी कम हो। भाव-ताव ठीक नहीं कर पाते, इसलिए ठगे जाते हैं। घर आकर स्त्री की धमकी खाते हैं। कोई चीज़ पसन्द भी हो तो भी ख़रीद लेते हैं, क्योंकि दूकानदार को नाराज़ करने का साहस उनमें नहीं होता। पूछने पर कहेंगे—एक नैतिक बाध्यता भी तो है। इतनी सारी चीज़ें देखीं तो एक-आध ख़रीदे बिना कैसे लौटते। घर आकर यदि पता चले कि ख़रीदा हुआ कपड़ा फटा है, तो उसे लौटायेंगे नहीं, क्योंकि इस अप्रिय काम के लिए उनमें इतना साहस कहाँ?

इस प्रकार के लोगों से जब सभा-समितियों में बोलने के लिए अनुरोध किया जाता है तो वे प्रायः बहाना बनाया करते हैं। यदि बोलना ही पड़ जाय तो मुद्रा-दोष (Mannerism) की सहायता लेते हैं। कभी चश्मा उतार लेंगे, फिर पहन लेंगे; कभी टाई को सँवारेंगे या कभी रुमाल से बार-बार मुँह पोछेंगे। अधिकांश में वे लिखित विषय ही पढ़ना पसन्द करते हैं, कुछ बोलना नहीं चाहते। इस प्रकृति के लोग सदैव पीछे ही रहते हैं, आगे आना पसंद नहीं करते। किसी को मुँह के सामने दो-टूक बात नहीं कह सकते। भीतर से ख़ूब गुस्सा होने पर भी उसे व्यक्त नहीं कर पाते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु दूसरी ओर चिट्ठी-पत्री में इनका जोश प्रकट होता है। जबर्दस्त भाषा में पत्र लिखकर ये अपना क्रोध अभिव्यक्त करते हैं। यदि इस तरह के लोग किसी दफ़्तर के मैनेजर या बड़े बाबू हो जायँ तो इनका हीन-भाव अनिष्टकर हो जाता है। इनके नीचे काम करनेवाले हमेशा अस्वस्थ-भाव से रहते हैं। किसी नौकर को काम से अलग करना हो तो अपने आप न करके ये औरों से यह काम करवाते हैं। कई बार मुँह से कुछ न कहकर चुपके-चुपके चुगली कर के औरों का सर्वनाश करते हैं। अधिक विद्या-बुद्धि के लोग इनके नीचे काम नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्तियों को ये हमेशा निकाल बाहर करने की चिन्ता में रहते हैं और इसके लिए जघन्य उपायों का प्रयोग करते हैं।

स्त्रियों के साथ इनका व्यवहार अद्भुत प्रकार का देखा जाता है। ये छोटी-छोटी लड़कियों अथवा बूढ़ी स्त्रियों का साथ पसंद करते हैं। युवती स्त्रियों के सामने ये घबड़ा जाते हैं, इसलिए ये स्त्रियों के सामने अधिक बातें नहीं कर सकते। स्त्रियों के निकट जाने पर ये उनसे गाने-बजाने आदि का अनुरोध करते हैं। तदनन्तर कोमल स्वर में उनके प्रति अपना धन्यवाद प्रकट करते हैं। घर में पत्नी की बात का प्रतिवाद करने का साहस इनमें नहीं होता। ऐसे लोगों के टके-पैसे पत्नी के ही पास रहते हैं और अपने जेब-खर्च के लिए ये लोग पत्नी से पैसे माँगते देखे जाते हैं। किन्तु एक फूहड़ स्त्री के साथ इनका भाव और व्यवहार बिलकुल उलटा रहता है। उसके साथ ये उत्पीड़क बन जाते हैं। बात-बात पर उसे दुतकारना इनका स्वभाव बन जाता है। ये व्यर्थ ही स्त्री पर संदेह करते हैं और मार-पीट तक कर बैठते हैं। यौवन के अवसान पर जब इनकी रति-शक्ति कम हो जाती है तो ये स्त्री के साथ लड़ाई-झगड़ा करते देखे जाते हैं। बेचारी स्त्री की हालत दयनीय हो जाती है। इस उत्पीड़न को सहने में असमर्थ होने पर वह बेचारी कभी आत्महत्या तक कर बैठती है।

अपने हीन-भाव को छिपाने के प्रयास में ये लोग अनेक बार बड़ी-बड़ी हानियाँ तक सह लेते हैं और निजी व्यक्तित्व को छोटा बना लेते हैं। यदि ये गरीब हों तो इसे छिपाने के लिए धनी होने का स्वांग भरते हैं। रेल-स्टेशन या होटल में ये कुलियों और खानसामों को खूब मोटी बख्शीश देते देखे जाते हैं। किसी को रुपया उधार देने पर फिर उसे वापस माँग नहीं सकते। इसलिए प्रायः ऐसे लोगों का रुपया मारा जाता है। अनेक स्थलों पर इनका यह हीन-भाव दुरारोग्य मानसिक व्याधि का रूप धारण कर लेता है। ऐसे लोग वास्तव की अपेक्षा कल्पना को पसन्द करते हैं। यथार्थ जीवन में जिसकी पूर्ति नहीं होती, कल्पना-जगत् में उसे पूरा करना चाहते हैं। इसलिए कुछ काम-काज न कर वे प्रायः चिन्ता में ही डूबे रहते हैं।

हीन-भाव का एक विपरीत भाव भी है, जिसे बड़प्पन का भाव कहा जाता है। कतिपय लोग अपनी अच्छाइयों को दूसरों के पास व्यक्त करने के लिए खूब व्यग्र रहते हैं। हर वक्त इनके मन में एक गुरुत्व का भाव बना ही रहता है। इसीलिए ये भी पाँच जनों के बीच अच्छी तरह मिल नहीं पाते। यह भाव भी बचपन में ही शुरू हो जाता है। एक पुस्तक में बड़ा ही मज़ेदार किस्सा पढ़ा था। एक लड़का था जो अपने समवयस्क साथियों को पढ़ने-लिखने या बल-बुद्धि किसी बात में भी न पा सकता था। किन्तु एक बात में उसका खूब प्राधान्य था, वह यह कि वह उन सब में सबसे अधिक दूर थूक फेंक सकता था। उसके अन्य साथी यह न कर पाते। इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कारण वह अपने साथियों के समक्ष अपने कृतित्व का प्रदर्शन किया करता।

हीन-भाव या आत्मश्लाघा दोनो ही ख़राब हैं। समाज से लिए ये दोनो ही व्याधियाँ अहितकर हैं। इसलिए यह चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे ये समाज के भीतर न घुस सकें। जिन लड़कों में छुटपन पैदा हो रहा है, उनके लिए प्रयत्न यह होना चाहिये कि जिससे वे वातावरण के साथ अपना सामंजस्य स्थापित कर सकें। मूल में ही इनका उच्छेद न करने पर आगे चलकर इनका ध्वंस प्रायः असम्भव हो जाता है।

शान्ति निकेतन।

●

किसान
(एक मनोवैज्ञानिक चित्रण)

[कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र']

दबे कंधे पिचके-से गाल।
अरे! जर्जर तन क्या? कंकाल॥
क्या तुम्हीं मानव की प्रतिमूर्ति?
कृषक हो, सकल समस्या-पूर्ति॥

तुम्हीं हो जिसके बल पर आज
ध्वंस के साधन औ' सुखसाज
सभी अवलम्बित हैं गय बाजि-
राज, औ' ताज—समस्त समाज।
मगर! तुम पर ढकने को लाज
एक चिथड़ा न मुयस्सर आज॥

दबे कंधे...

शिशिर आया, बीती बरसात।
कटेगी क्यूँ जाड़े की रात?

बढ़ाये दाँत, खलाये पेट।
रहा यह तेरा ही शिशु लेट॥
अधिक दिन का था जो बीमार।
दवा दी होती इसको यार।
शेष है क्या तुझमें भी प्यार?
दूध दे देता अरे गँवार!

दबे कंधे...

हैं, रो उठा! बोल, कुछ बोल!
बहाकर ये मोती अनमोल
बावले मन का भरम न खोल।
ठहर तो! हो मत डाँवाँडोल॥

भूख में सब हो गये निढाल।
एक पशु भी न सका तू पाल?

× × × × × ×

खेत में खपकर ओ नादान!
बढ़ाकर औरों का सम्मान॥
आहुती देकर मान औ' प्रान।
भूल मत रे! अपनी पहिचान॥

दबे कंधे...

मेरठ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम घृणा

[निर्मला मित्रा]

भाषा और वाक् हीन युग के मानवों के बीच सम्बोधन-सूचक कोई भी चिह्न वर्तमान न रहने पर भी, हम इस कहानी में पात्र-पात्री को क्रम से 'उतथ्य' और 'अनिन्दा' कहकर पाठक-पाठिकाओं के सामने रखते हैं।

हाँ तो आदि युग के एक दिन उतथ्य और अनिन्दा एक सुरम्य उपत्यका से बहती हुई झील के किनारे एक दूसरे से मिले।

प्रभात की उस मनोरम वेला में, अनिन्दा झिलमिली धूप की ओर पीठ किये अपने विपुल और गीले केश भार हाथ से सहलाकर सुखा रही थी; सम्भवतः वह अभी ही इस झील के मनोरम जल में अवगाहन कर निकली हो, क्योंकि उसके वे सघन केश अभी तक गीले थे। उनसे पानी टपटप चू रहा था, और उसके गीले शरीर पर वायु के झोंके लगकर उसे कँपा रहे थे।

इसी बीच, चमत्कार-सा धरित्री का सम्भवतः प्रथम भ्रामक मानव यों ही घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा, और दोनो ही एक-दूसरे के सान्निध्य से विचलित और सन्त्रस्त हो उठे; इतने में मारे घबड़ाहट के उतथ्य घुटने पानी में ही उतर पड़ा कि कहीं आक्रमण का ज़रा भी उपक्रम दीखा तो तैरकर पीछा छुड़ा लेगा।

और इधर अनिन्दा भी बेहद घबड़ा गई। वह काँपती हुई नारी—वह मानव-सृष्टि की प्रथम मानवी कल्पना,—सौष्ठववती उस किशोरी कन्या ने चाहा, उठकर ही सरपट दौड़ लगाये; किन्तु ओ राम, पैर उठें तब तो!

आख़िर प्रकृति तो उसने नारी की ही पाई है! अनिन्दा के पैर तो भय से उठे ही नहीं। गड़-से गये और उसने अपने हाथ-पैर और भी ढीले छोड़ दिये, गरदन झुका ली। मानो कह रही हो—लो, अब पकड़ लो। चींथ डालो; फिर खा जाओ, मैं तो अब विवश हरिणी हूँ, तुम्हारे फन्दे जब पड़ ही गई हूँ, तब छूटकारा मुझे यों ही न मिलेगा। तब छटपटाऊँ भी क्यों?

और इस शंकित विस्मय के मध्य कई मुहूर्त कट गये।—फिर दोनो के बीच धीरे-धीरे विस्मय, शंका, सन्देह की प्राचीर हटकर, अब जो कुछ उनके सामने रह गई, वह चंचलता के साथ व्याकुल कर देनेवाली प्रबल जिज्ञासा थी!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोनो एक दूसरे से पूछना चाह रहे थे—तुम कौन ? किन्तु वाक्य और भाषा के अभाव में दोनो ही का हृदय सिकुड़-सिकुड़कर रह गया।

इसी बीच उतथ्य कुछ साहस संचय कर अनिन्दा के समीप ही हरी दूब पर आ बैठा। वह अनिन्दा के हाथ, पैर, मुँह और नाखूनों तक को अपने हाथ-पैर और नाखूनों से बराबर मिला-मिलाकर देख रहा था, और सोच रहा था, यह मुझ-जैसे आकारवाली कौन है ? जहाँ तक उसे ख्याल है, कई दीर्घ-दीर्घ दिवस और रात्रि से पहले, जब कि वह बालक था, उसने अपनी स्तन्य-दात्री को ऐसा ही देखा था। और वह स्तन्य-दात्री उसे हवा, पानी, और तूफ़ानों से बचाकर अपने कन्धे के बराबर ही कर पाई थी कि, एक दिन अकस्मात् उस बूढ़े बरगद के नीचे गिर पड़ी !

उतथ्य तब बहुत छोटा था। एक दिन खेलता-कूदता वह अपनी वन-सीमा को पार कर गया। किन्तु भाग्यवशात् तीन दिन के पहले वापस न लौट सका। वर्षा की अंगद्युति को घेरकर विद्युत की ताण्डव-लीला प्रकृति में इस प्रचण्डता से शुरू हो गई थी कि उतथ्य पशु-प्रकृति पूर्ण मानव-शिशु होते हुए भी, अपने शिशुपन के सहज भय को न छोड़ सका, और एक खोह में दबा-दबाया बैठा ही रह गया।

किन्तु तीन दिन के उपरान्त वर्षा कुछ मन्द होने पर वह अधीरता से व्यग्र पग बढ़ाये अपने नीड़ की तरफ लौटा, तो पाया कि कौए और चीलों ने उसकी स्तन्य-दात्री के शरीर को नोच-नाचकर खा डाला है।

उस दिन उतथ्य एकाकी भीषण वन में शेर, भालू और चीते के आक्रमण-भय से खूब फूट-फूटकर रो लिया। यद्यपि उसकी मा उसे हाथी, गेंडा और अतिकाय भीषण पशुओं से आत्म-रक्षा करने के लाखों उपाय सिखा गई थी, फिर भी वह बालक एकाकीपन में रोने लगा। परन्तु समझ की गम्भीरता न रहने पर, वह शीघ्र ही शोक के अभिभूत भाव को भूल गया।

किन्तु फिर उसे अपने वास-स्थान, वृक्ष पर के मचान तक का कोई आकर्षण न रहा, साँय-साँय करती रात्रि के विकट अन्धकार में, आँखें मूँदकर माता के गरम वक्षस्थल में निर्भावना से चिपट रहना वह खो चुका था।

सो वह उदास पथिक अपने दोनो सबल पैरों के भरोसे, वन-वनान्तरों में होता हुआ कहाँ-से-कहाँ चल निकला। दिन में फल और मांस-मछली पकड़कर और रात में किसी ऊँचे वृक्ष के आसरे या ऊँचे पर्वत-शृंग में निवास कर वह आगे ही बढ़ता रहा।

और ऐसे-ही-ऐसे चलते-चलाते उसके बहुत सारे दिन कट गये। अब उसके शरीर में एक नई उमंग भर गई थी। शरीर में लालित्य ने भी अपना सुकुमार हाट लगाया था, सिर के बाल तक कुंचित-माधुर्य से कन्धे तक लटक गये थे; अठारह-बीस वर्ष का वह आदिम मानव युवा, बल और यौवन की दीप्त कांति से अपूर्व और समुज्ज्वल दीखने लगा था।

किन्तु एक परम अभाव उसे अहरह खटकता रहा। वह उसका एकाकी बटोहीपन! रह-रहकर उसे काँटे-सा चुभता, किन्तु वह समझ नहीं पाता कि किस तरह से उस पीड़ित एकाकी-पन से छुटकारा पाये ?—दरख्तों में विहगकाकली को सुन और सरोवर में हंस-मिथुन के हृदय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देख वह गहरी साँस भरकर रह जाया करता था। शिकार और प्रतिहिंसा की अग्निज्वाला अब उसके हृदय को अभिभूत करके व्यथित करने लगी थी। वह अब व्यर्थ हत्याओं से निवृत्त होकर अहिंसक जीवों का लीला-विनोद देखकर मुग्ध हो जाता था।

इन्हीं दिनों उसे पहाड़ की चोटी पर से, नीचे तराई में कुछ अपने ही अनुरूप जीवों की टोली दीखी, जो उसी जंगल के निवासी हों, और बहुतायत से अर्थात् झुण्डों में एक ही जगह रहते हों, उस झुण्ड में उसे उसकी पालनकर्त्री मा जैसी भी दीखीं। और उसकी याद आते ही उतथ्य की आँखें भर आईं। फिर वह स्नेह-स्मृति की वेदना से व्यग्र हो इन झुण्डों के निकट उतर पड़ा।

किन्तु यह कैसी बला उसके सिर आ टूटी! उस टोली के बड़े-बड़े लोमवाले जीवों ने उतथ्य को देखते ही इतने विकट नाद से हर्ष-ध्वनि की कि उतथ्य भय और विस्मय से वहीं ठिठक पड़ा।

फिर वह सारी टोली अपने-अपने छाती के रोयें फुला-फुलाकर उतथ्य के आगे एक-एक पैर बढ़ने लगी।

उतथ्य घबड़ाया। यह क्रिया, यह शिकार-पद्धति, उतथ्य ने अपनी मा से सीखी थी। किसी का शिकार करने के लिए यह एक विशिष्ट पद्धति है, शिकार मोह-ग्रस्त-सा हो जाता है, समझ ही नहीं पाता है कि आक्रमणकारी उसे मारने आ रहा है या प्यार करने। इस दुविधा, और धोखे से आक्रमणकारी शिकार पर विजय पा जाता है ..।

परन्तु उतथ्य क्यों अपने समजाति जीवों के हाथ मारा जाय? उसकी वह मा उसे बहुत कुछ उन्नत तरीके पर पाल गई थी। बचपन में जब उसके अंग में चीलर पड़ जाते, वह बुद्धिमती धात्री चीलर चुन-चुनकर खुद खा लेने के बजाय झरने के पानी में उतथ्य को पटक मिट्टी से मल-मलकर नहलाया करती थी, उससे यह लाभ हुआ था कि उतथ्य के शरीर में क्रमशः रोयें न बढ़कर भूल से ही नष्ट हो गये थे, और इसके शरीर का रंग साफ़ निकल आया था। किन्तु आज उतथ्य पर इसी कारण आफ़त आई। समजाति और समदेही होने पर भी लोमश देहियों के बीच वह संस्कृत देह मानव जाति-पाँति की बदनामी से, हेय, घृण्य, और हनन-योग्य ठहराया गया।

लेकिन उनका धोखा व्यर्थ करके उतथ्य भाग निकला! एकान्त में वह बैठे-बैठे अपनी बुद्धि को भी काम में लगाने की तरकीब सोचा करता था। ऐन मौक़े पर उतथ्य की बुद्धि काम कर गई! सामने की तीव्र वेग से बहती नदी में अत्यन्त क्षिप्रता से उतथ्य कूद पड़ा! उन टोलियों के कई बलिष्ठ तरुण भी पानी में कूदे; पर उतथ्य-सी क्षिप्रता और दक्षता उनमें न थी।

× × ×

अब काफ़ी वेला चढ़ गई थी, और उतथ्य को कुछ भूख-सी भी लग आई। उसने एक बार अपने सामने बैठी माया की तरफ देखा। फिर अपनी पर्ण झोली से एक सुन्दर पीला फल निकालकर अनवद्या के सामने रख दिया, और कुछ संगत शब्दों से कहना चाहा—'ऊ-ऊ-ऊ...'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् उस दिन उस टोली में क्या तुम भी थी ?

विस्मय का प्रथम मुहूर्त कट जाने पर—अनिन्दा को भी इसके प्रति कुछ मोह, कुछ आकर्षण-सा हो गया था। अब सहानुभूति में भर वह उतथ्य के समीप और ज़रा अग्रसर हो आई, फिर परम संतोष से फल उठाकर उसने खाना शुरू कर दिया और भावों से आभास देकर बोली—हाँ, हाँ, प्रिय, मैं भी उनमें थी; किन्तु उन बर्बरों की घृणित मनोवृत्ति पर मुझे बहुत अश्रद्धा हो आई। तुम जैसे एक तरुण को वे व्यर्थ नष्ट कर डालना चाहते हैं, यह मैं बर्दाश्त न कर सकी सो पथ-विपथ में भाग निकली हूँ, अब तुम्हारे दर्शन हो गये, यही तृप्ति मेरी सबसे बड़ी तृप्ति है।

और उतथ्य ने भी आभासों से अपना प्रगाढ़ प्रेम ज्ञापन कर समझाया—अच्छा किया वहाँ से चली आई, अब हम दोनो मिलकर यहीं अपना उपनिवेश बनायेंगे, हमारी भी टोली क्रमशः बढ़ जायगी, और हम भी तब झुण्ड और श्रेणी में रहा करेंगे। फिर भी अभी अकेली तुम्हें डरना नहीं चाहिये। यह जो मेरे बलिष्ठ बाहु देख रही हो, यह कार्य-क्षम रहते कोई शक्ति तुम्हें मुझसे अलग न कर सकेगी।

और धीरे-धीरे उतथ्य और अनिन्दा की गृहस्थी जम गई। निर्दोष और निर्बल जीवों की हत्या करना उन्होंने छोड़ दिया। अनिन्दा का शिशु अब पाँव-पाँव चलने भी लगा है। उसके खिलवाड़ के लिए अनिन्दा ने कई तरह के जीव खरगोश, हिरण आदि पाल भी लिये हैं, और एक गम्भीरता अनिन्दा के स्वभाव पर और भी फूट पड़ी है। वह है, स्निग्ध जल-धारा-सा उसका सन्तान-स्नेह !...

किन्तु उतथ्य को यह अधिकता नहीं भाती है, दिन-रात एक अनोखा शिशु लेकर उसकी अनिन्दा पड़ी रहे, यह भी कैसी अनहोनी बात ! आज तक ये हरकतें अनिन्दा में नाम को भी नहीं रहीं, अनिन्दा की सुख, हर्ष, आनन्द, पुलक, हँसी और आँसू, जो कुछ भी रहा, सब उतथ्य को घेरकर ही लहलहाता रहा—और अब ? अब तो उसे बोलने-बताने के लिए भी कभी अवकाश नहीं। हाँ, आज ही तो भरे-दुपहर उतथ्य शिकार से लौटकर आया, तब चली अनिन्दा अपने शिशु को लेकर झरने में नहाने। और उतथ्य खून का घूँट पीकर रह गया कि अब कच्चे मांस को आग में झुलसकर मुझे ही रखना होगा, तक़दीर से खाने की यह प्रक्रिया उतथ्य के मस्तिष्क से ही पहले आविष्कृत हुई थी।

खैर—

इधर शिशु को नहलाकर अनिन्दा लौटी तो देखती क्या है कि शिकार को सामने रख उतथ्य निष्क्रिय होकर बैठा है। भूखी अनिन्दा ने भौंह सिकोड़ी : अर्थात् कूड़ा-कचरा तो बटोरकर ही रख गई थी, ज़रा आग जलाकर मांस भूनते न बना ? बैठे हैं पाँव पसारे ! बच्चा, मेरा कितना भूखा है, मेरे आँचल में अब दूध ही कहाँ रह गया है, उन दिनों कितनी बीमार पड़ गई थी, आज तक हाथ-पैर में ताकत तक नहीं आई, तो भला, आँचल में दूध कहाँ से रह जायगा ?

और धीरे-धीरे इनकी गृहस्थी का माधुर्य मिट चला।

अब उतथ्य जो सुबह शिकार को निकले, तो निकला ही रहे। अर्थात् दिन-भर वहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का हो रहे। कोई-कोई रात अब वह घर भी न आता था। घने अन्धकार में भीषण जंगली जानवरों के डर से, अनिन्दा अपने गुहा-द्वार पर मोटे-मोटे लकड़ की अँगीठी जलाकर सारी रात बैठी राह ताकती रहती, लाखों अमंगल की आशंका उसके हृदय को घेरकर ताण्डव मचाने लगती। शिशु को अपनी गोद में खींचकर बेचारी विवश नारी कहना चाहती—ओ बेटा, कहीं दरख्त पर चढ़कर आवाज़ दे सकते, फिर अपने आप ही काँपकर शिशु को थपकियाँ दे-देकर सुनाना चाहती—नहीं, नहीं मेरे लाल, कहीं दरख़्त पर से तू गिर पड़ा तो! माता और पत्नी के मन में प्रबल द्वन्द्व मचता, वाक्-भाषा हीन उस आदिम नारी के जीवन में भी आज-सी जटिलता भरी पड़ी थी।

फिर सुबह, रात-दिन की प्रतीक्षा के बाद उतथ्य ने लौटकर अनिन्दा के सामने चार अण्डे रख दिये। अब तो अनिन्दा के धैर्य का बाँध टूट पड़ा!

उसने रोकर समझाना चाहा कि परसों से उपवासी मैं, और मेरा शिशु और इतने से में तुम्हारी, मेरी और उसकी पेट की माँग कैसे पूरी हो सकेगी?

किन्तु उतथ्य उधर मुँह फेरकर बैठ गया—अर्थात 'गुस्सा, रोना, और अभिमान किसे बताती हो अनिन्दा,—आहरण करनेवाला क्या गृहस्थी में मैं ही अकेला हूँ? आठ-नौ साल के तुम्हारे इस लड़के से क्या झाड़ों से अण्डे उतारते भी नहीं बनता?

फिर वे उपेक्षित अण्डे घंटों वहीं पड़े देखकर, लड़के ने गोली की चोट खेलकर फोड़ डाले—बस, उतथ्य का गुस्सा एकदम उबल पड़ा, और चट-चट दो थप्पड़ उसने लड़के के गाल पर ज्यों ही जमाये—कि अनिन्दा आग बबूला हो गई। झपटकर शिशु को गोद में खींच उसने छाती से लगाया। फिर आँखों में आग भर उसने हाथ उठाकर बाहर निर्देश किया। अर्थात—'निकल जाओ यहाँ से। बड़े आये बच्चे को मारनेवाले! कभी आँचल का दूध पिलाकर किसी को पालना भी पड़ा है? अब तुम्हारी, मेरी नहीं निभती, और तुम जाओ, जाओ, और जाओ।'

परन्तु अनिन्दा को यह कब मालूम रहा कि उतथ्य अब हर प्रकार से अनिन्दा को मना करना चाहता है, तब वह क्यों इसका गुस्सा और अभिमान सहन करने का? सो इशारा पाते ही, बिना बोले-चाले अपने हाथों बनाये कई पत्थर के बेढंगे शस्त्र उठा वह चलता बना।

लेकिन वह नारी का मन! उतथ्य चला जा रहा है। अब वन-सीमा को पार करने ही वाला है कि इधर अनिन्दा सारे विरोध को ही भूल बैठी! अन्दर से उसका हृदय उमड़कर हाहाकार कर उठा, उसने बालक को ढकेलकर अपने से अलग किया और बिल्कुल पागल-सी दौड़ी गई। उतथ्य की राह रोक यों अनाथ-सी गिड़-गिड़ाई कि मुझे असहाय छोड़, ओ अपार स्नेही, तुम कैसे चले?

फिर एक-एककर उसकी कातर दृष्टि में अपार जिज्ञासाएँ आ उमड़ीं कि इस बालक पर तुम्हारा क्रोध बिल्कुल व्यर्थ है। आहरण करने योग्य इसकी उम्र ही अभी कहाँ हुई है? इसका पालन-पोषण कर समर्थ बनाने का ठेका हमारा है। ओ मेरे योग्य स्वामी, तब तुम अपने कर्तव्य से क्यों चुकते हो? आख़िर यह भी तो सोचो कि सभी दिन एक-से नहीं जाते। ये तुम्हारे हाथ भी कभी बुढ़ापे के भार से शिथिल हो जायँगे, तो उन्हीं असमर्थ दिनों के लिए हे प्रियतम, तुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उस बालक पर गुस्सा-द्वेष न रखकर, उसे अपने समान शिकार कुशल बना ही लो न ?

और कुछ विवश भाव से उस दिन उतथ्य लौट आया।

× × ×

किन्तु ऐसे क्रोध, क्षोभ, रोष, द्वेष से कितने दिन कट सकते हैं। दम्पति के बीच में उसी बालक को लेकर नित्य की चख़-चख़ !...

बस एक दिन उतथ्य के उर्वर मस्तिष्क में नई तरकीब सूझ बैठी। उसने अनिन्दा को समझाया—अपने यहाँ अब अच्छे शिकार नहीं मिलते। न ही फलों का विशेष भरोसा रह गया है। और तुम तो देख ही रही हो, सामने का वह करीट दो साल से बिल्कुल नहीं फल रहा है, उस कतार पर जामून और बेल भी फलहीन हैं। अब प्राण-धारण के लिए हमें फल से सुशोभित दूसरा वन ढूँढ़ना होगा।

भोली अनिन्दा अव्यक्त भाषा से हर्ष प्रकट करती हुई उत्साह देकर बोली—हाँ, हाँ, जाओ प्रिय, किन्तु ऐसा वन ढूँढ़ना, जहाँ मांस से फल ज्यादा मिलें। फलों का रस लेकर अपना शिशु तब बेहद तन्दुरुस्त हो जायगा,...

फिर वही शिशु की बात ! उतथ्य ने ईर्षा से मुँह एक ओर फिरा लिया।

अनिन्दा ने गुहा के कोने में संचित सूखे मांसों का ढेर बताकर कहना चाहा—दो-चार दिन कहीं ज्यादा लग जायँ तो हमारे लिए घबड़ाना नहीं। मैंने ढेरों से मांस सुखा कर रख लिया है। भूखों नहीं मरूँगी, और देखो, तुमसे भी मेरा लड़का होशियार निकला, उसने कैसे-कैसे मिट्टी के बरतन बनाये हैं ? उसी में उबालकर मांस ताज़ा बनाने का तरीका मैं सीख चुकी हूँ।

किन्तु उतथ्य गया तो गया ही ! वर्षा शेष होकर हिम ऋतु आई—शीत भी बीत गई। फिर वही, वसन्त का सुहावना वन, फल, फूल, और मौसमी पक्षियों के आनन्द-पुलक से, यौवन में भरकर खिल उठा !

मूक-मौन नारी अनिन्दा के वक्षस्थल से एक तप्त साँस उठकर रह गई। अब वह बहुत कुछ ढल गई है। यौवन की चंचलता मानो प्रिय-विच्छेद के आघात से थमकर उसी में समा गई हो !

उतथ्य के शिकार किये हुए सूखे मांस के ढेर भी अब समाप्त होने आये हैं। फिर भी अनिन्दा अधपेट और किसी दिन अनाहार रहकर ही अपना हिस्सा लड़के को दूसरे दिन पूरा कर देती है।

शीर्ण माता को देख-देखकर लड़का कभी बहुत घबड़ा उठता है, कहने को होता—मा अब तो मैं काफ़ी बड़ा हो गया हूँ। शिकार को जाऊँ, और ताजा शिकार पाने से तू जल्दी तन्दुरुस्त हो जायेगी।

व्याकुल अनिन्दा कातर दृष्टि से समझाती—कहाँ जाओगे मेरे लाल। भयावह जंगल में भयानक-भयानक जानवर हैं। देखते ही तुझे मार डालेंगे। कभी हाथी, गेंडा का शिकार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तू खेलना सीखा नहीं, फिर तुझे अकेले कैसे छोड़ दूँ ?

पुत्र पिता की याद में व्याकुलता प्रकट करता—अच्छा मा, आज तक तो वे लौटकर नहीं आये ! यह देखो, इन झाड़ों के पत्ते जब झड़ने लगे थे, तब वे यहाँ से गये थे और नये पत्ते अब फिर झड़ रहे हैं ...

प्रश्न माता-पुत्र के बीच में सन्देह से भारी बनकर रह जाता। अनिन्दा की आँखों से आँसू ढुलक पड़ते। बालक अस्थिरता से तीर सम्हालकर उठकर खड़ा हो जाता।—अर्थात्, तब मुझे जाने भी दो, उस पालक-पिता, प्रभू हितैषी की खोज में...

अनिन्दा फिर भी बालक को छाती में लगाकर समझाना चाहती—बाप रे, कहाँ जाओगे मेरे लाल। ऊँचे-ऊँचे पर्वत-शिखर। गहरे-गहरे नदी-नालों को लाँघकर वे जाने कहाँ चले गये हैं।

'अच्छा, तब तुम भी साथ चलो, लेकिन उन्हें ढूँढ़ना तो पड़ेगा ही !'

और पुत्र के मुँह पर दृढ़ता की छाप देखकर अनिन्दा एकदम खिल उठी ! 'ओ नाथ, तब तेरी सृष्टि व्यर्थ नहीं है ! संसार में सम्बन्ध की अटूट दृढ़ता है !! नहीं तो पिता के लिए पुत्र की इतनी व्याकुलता !!! आह, अनिन्दा आज सब पा गई !...उसकी शीर्ण देह में मानो, हजारों मील चल सकने की शक्ति उमड़ आई।

माता-पुत्र दोनो ने बड़े-बड़े पत्थरों से गुहा का द्वार ढाँका—अनिर्देश्य उद्देश्य में चल पड़े। उतथ्य के जीवन में जो भी कुछ हुआ हो, एक निश्चय पर पहुँच निसन्देह हो जाना ही मानव की स्वाभाविक प्रेरणा रही है।

× × ×

आखिर एक दिन एक घने दरख़्त की छाया तले उतथ्य प्रसन्नता से जीता-जागता मिला। महुआ के मदिरावेश से वह एक जंगली नारी के जानू के सहारे लेटा था। पथ पर दृष्टि पड़ते ही वह अव्यक्त भाषा में चिल्ला उठा।

किन्तु अनिन्दा एक हृदय-भेदी आर्तनाद से वहीं मूर्छित हो गई।

फिर कुछेक क्षण में होश आने पर उसने अपने कम्पित हाथ पुत्र की तरफ़ बढ़ा दिये—अर्थात् मेरे शेष अवलम्बन, अब सम्पूर्ण भाव से मुझे सम्हाल ले।

किन्तु लड़का आनन्द से खिलकर मा को समझाने चला—अरी मा, इन्हें क्या तुम भूल गई ? यह तो वही हैं, जो अपने हृदय के अत्यन्त निकटतम थे !

लेकिन अनिन्दा के मृत हो रहे देह-भव पर प्रचण्ड घृणा की धू-धू अग्नि एक बार ही लहक उठी। जिसने उसके निकटतम को ही जलाकर भस्म कर दिया। अब उतथ्य के लिए उसके हृदय में, मान रहा न अभिमान, स्नेह रहा न श्रद्धा। काँपते पैरों से उसने उठकर पुत्र का हाथ पकड़ा और बोली—चल।

पुरुष-प्रकृति की हृदय-वृत्ति के नीचे, नारी की सहज करुण-माया घृणा में बदल गई।

शैलंगाबाद।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रात्रिरेवं व्यरंसीत् ❀

[वामन चोरघड़े]
[अनु० प्रभाकर माचवे]

और उसके बाद हड़बड़ाकर वह उठी ही।

उसके उस पत्थर के नीचे हमेशा की तरह धूप खिसक जाने पर उसने कपड़ा धोना बन्द कर दिया। घर में कुछ आवाज़ हुई, इसी से हाथ का काम वहीं छोड़कर वह अन्दर गई। बिल्ले के मुँह से नोची हुई वह आधी रोटी उसने खपरैलों के नीचे छुपा रखी और कोठरी के बाहर निकलकर बाँस का टूटा दरवाज़ा ढाँप दिया। बाहर राधा खड़ी थी। उसकी ओर उसने देखा और—चलो, राधा हो गया, ऐसा कहकर चल पड़ी। अभी आठ भी नहीं बजे होंगे। पर कहीं देर न हो जाय, इसी डर के मारे दोनो ही जल्दी-जल्दी चलने लगीं। चलते हुए उनके हाथ की काँसे की चूड़ियों की आवाज़ आ रही थी।

'राधा, देरी तो नहीं न हुई ?' मिल के चोंगे से उगले जानेवाले धूएँ की ओर देखते हुए रामसिरी ने पूछा।

'नहीं री, पर तुझे आज ऐसी जल्दी क्या पड़ी है ? शाम का घरकाज सब कर रखा दीखै...'

'सुबह का ही तो गाड़ी-भर काम पड़ा हुआ है। तेरे जैसी सुखी कहाँ हूँ मैं ? सास अपनी रोटी टुकड़ा बनाकर रख ही देती है और अपन आराम से...'

'हूँ, सास के रंग देखे नहीं अभी, इसी से सुख के सपने दीख रहे हैं तुझे! खैर, घरकाज तो रोज का ही रोना है। पर ये तो बता कि तेरी आँखें क्यों ऐसी लाल-सूज आईं ?'

'कल रात पलक से पलक नहीं लगे।'

'अच्छा !'—राधा शरारत भरी मुस्कराहट के बाद चुप हो ली।

'क्या हुआ री हँसने को ?'—ज़रा गुस्से से रामसिरी ने उसे कुरेदकर पूछा।

'जो जानना था, सो तो खुल ही पड़ा। अब ऊपर से दुराव काहे को बेकार में।'

❀ महाकवि भवभूति-विरचित 'उत्तर रामचरित' में राम और सीता के विश्रम्भालाप करते-करते उनकी रात कट जाती थी, ऐसा अतीव सुन्दर वर्णन है। उस श्लोक की आखीरी लाईन।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अरी वैसा नहीं। तुझे तो हमेशा कुछ वाहियात ही सूझता है।'

'मैं जो कहूँ सो वाहियात, और तू जैसे बिलकुल बैरागिन बन गई है न? वैसा नहीं तो फिर कैसा? कल की रात कैसी गुलगुलों-सी बीती होगी यही न?'

'क्या मूर्ख है री; ज़रा सुनेगी भी या नहीं? साहूकार कल दरवाजे पर धरना दिये बैठा था। उसे समझाते समझाते रात पाली से हो गई देर और—'

'पर रोज जाता है न तेरा घरवाला रात के काम पर।'

'हाँ, पर कल पचीस बाबिन की टोपली ज्यादह ढोनी थी और लौटकर आते हुए रास्ते में नाच तमाशा जो न हो रहा था, सो वहीं रम गये जरा देर और फिर डोलते-झूलते जो घर आये तो रात के दो बजे थे—'

'और फिर तुझे जगाया क्या?'

'अरी, मैं तो जागती ही बैठी थी। मुझे भला तब तक नींद कहाँ आनेवाली थी'—बेचारी रामसिरी भोलेपन से यह बात कह गई, पर राधा की शरारत भरी हँसी से उसकी ग़लती उसकी समझ में आ गई।

'राधा, आज तुझे बड़ी हँसी आ रही है; जा, मैं तुझसे बोलूँगी ही नहीं।'

'ऐसी भी क्या तुनुक मिज़ाजी। ज़रा मज़ाक में कहा तो।' राधा ने उसका पल्ला पकड़ लिया।

'अच्छा, अच्छा, बड़ी आई मज़ाकवाली—'

'नहीं, नहीं, मैं रोती सूरतवाली ही सही, बस? अब तो बोलेगी न? मुझे भी कई बार अकेली को निंदिया आती ही नहीं बिलकुल, हाँ, तो दो बजे रात को वो आया...' उसकी आवाज समझौते की थी।

रामसिरी का गुस्सा इस आख़िरी वाक्य से उतर गया और वह बोलने लगी।

'रात के दो बजे और सो भी तमाशा देख आने के बाद क्या वो सोने देता मुझे? जरा थोड़ी गपशप होकर पलक झिपी न झिपी त्योंही सवेरे की सीटी बजी—और जग पड़े भई दोनों हड़बड़ाकर!! और फिर उसके बाद...'

मिल के फाटक के पास आते ही दोनों ने बोलना जैसे एकदम बंद कर दिया। फाटक पर का मोटा पठान उनकी ओर रसीली, प्यासी नज़र से देख रहा था। वे शीघ्रातिशीघ्र अन्दर चली गईं। अन्दर की सब विस्तीर्ण जगह काली स्याह हो गई थी। यन्त्रों की खर्रर्रखस्स् कुछ अजीब-सी आवाज आ रही थी। जैसे क़साई लकड़ी पर माँस के टुकड़े काटता है। बाहर के बड़े बड़े चक्के बराबर चल रहे थे। दोनों तरफ लगी मेंहदी पर कोयले की कंकड़ियाँ यों जम गई थीं कि उनका मूल हरा रंग काला मूँगिया बन गया था। कितने ही दिनों से पानी न मिलने पर भूखे आदमी ने अकुलाकर मानो गर्दन एक ओर झुका दी हो, उसी तरह वे पेड़ हवा में सिहर रहे थे। मानो बड़े हो गये इसी से किसी तरह जी रहे थे!!

उन पेड़ों की आड़ में वे दो स्त्रियाँ भी आँखों से ओझल हो गईं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लड़की जिसकी हत्या मैंने की

['आनन्द']
[मूल कन्नड़ से अनु० गुरुनाथ जोशी]

पाँच-छः साल पहले की बात है। गरमी की छुट्टी में मैसूर रियासत घूम आने की मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी, मेरे सिर पर यह सनक सवार थी कि मैं अपने देश के सुन्दर एवं मशहूर शिल्पकारी के चित्रों का संग्रह करूँ। सोमनाथपुर, बेलूर, हलेबीडु आदि मन्दिरों का वर्णन मैंने स्कूल में पढ़ा था। और उस समय मैंने सोचा था कि अगर जीवित रहा तो एक दिन उन दर्शनीय स्थानों को ज़रूर देखूँगा। अबकी बार मेरी वह इच्छा सफल होती देख मुझे बड़ा सन्तोष हुआ और मेरे अन्तःकरण के अन्दर आनन्द का फ़व्वारा छूटने लगा। लेकिन यहाँ मैं अपनी कलायात्रा का वर्णन नहीं करूँगा; बल्कि उन दो-एक घटनाओं को चित्रित करूँगा जो एक देहात में हुई थीं।

उस देहात का नाम है नागवल्ली। उस देहात में जब पहुँचा, तब मेरी तीन चौथाई यात्रा समाप्त हो चुकी थी। मैंने करीब सौ-डेढ़ सौ चित्र संग्रह किये थे। ये सभी मेरे ख़ुद के खींचे हुए चित्र थे।

नागवल्ली में करियप्पा नामक एक सज्जन रहा करते थे। लोग उनकी कदर करते थे। कहिये कि वे उस देहात के मुखिया थे। मैंने उनके घर पर ही अपना डेरा जमाया। आप समझिये कि कहानी यहीं से शुरू होती है।

उस देहात में जब मैंने पदार्पण किया तब रात के नौ बजे थे। अपनी चीज़ें एक बैलगाड़ी में लादकर मैं उस देहात में आ पहुँचा। रात-भर उस बैलगाड़ी में सफ़र करना मुझे अच्छा नहीं लगा, अतः सारी रात उस देहात में बिताने की इच्छा हुई। मैंने गाड़ीवान से पूछा—क्या कोई जगह यहाँ ठहरने के लिए मिल जायगी? उसने नम्रता से कहा—हुजूर, करियप्पा के घर में आप ठहर सकते हैं। वे बड़े सज्जन हैं। आपको वहाँ असुविधा न होने पायगी। अगर आप आज्ञा दें तो मैं उन्हें आपके आने की ख़बर कर दूँ। मैंने कहा—अच्छा। पन्द्रह-बीस गज़ पर ही उनका मकान था। मैं गाड़ी के पास ही था। गाड़ीवान ने एक पुरुष को अपने साथ बुला लाकर परिचय कराया—हुजूर, ये ही करियप्पाजी हैं। करियप्पाजी मेरे पास आये और नम्रता से हाथ जोड़कर कहा—आप पधारें और इसे अपना घर समझें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 2631

मैंने भी नमस्कार कर कहा—मैंने आपको बड़ी तकलीफ़ दी।

'नहीं नहीं! आप हमारे घर पर रहने के लिए राजी हुए, बड़ी कृपा की। कोई तकलीफ़ नहीं हमें।'—कहकर उन्होंने गाड़ीवान को पुकारकर कहा—तिम्मा, बाबूजी का सब सामान उतारकर दालान में रख दो।

हम घर के अन्दर गये। एक दरी बिछी हुई थी, हम उस पर बैठ गये। करियप्पाजी का परिवार बड़ा है। घर भरा हुआ है। मेरे जाकर बैठते ही अन्दर से तीन-चार बालक आकर हमें घेरकर कौतूहल से हमारी ओर देखने लगे। शायद उनको मेरा हैट और बूट अजीब-से दिखाई पड़े हों!

दालान के एक तरफ़ एक कमरा था। नौकर ने उसे खोलकर झाड़ू लगाया और दिया जलाकर रख दिया। गाड़ीवान ने मेरी चीज़ें उसके अन्दर रख दीं और मैंने उसको मज़दूरी देकर बिदा किया। करियप्पाजी ने उसके बाद कहा—बाबूजी, अब आप कपड़े उतार सकते हैं।

मैं कमरे के अन्दर कपड़े उतार, धोती पहनकर बाहर आया। इतने में किसी ने अन्दर से गरम पानी लाकर मेरे सामने रख दिया। मैंने हाथ-मुँह धो लिया। आधे घण्टे में भोजन समाप्त हो गया! सभी दालान में बैठकर पान खा रहे थे और मैंने उनको अपनी यात्रा की कहानी सुनाई। उनको संतोष हुआ कि मैं उनके घर पर ठहर गया। यह मुझे उनकी बातों से और बर्ताव से मालूम हुआ। बातें करते-करते मैंने उनके बारे में सारी बातें जान लीं। वे घर से अच्छे हैं, धन भी उनके पास काफ़ी है। सालाना ४००) कर देते हैं। घर में नौकर-चाकर, गाय-बैल, अनाज इत्यादि किसी चीज़ की कमी नहीं है। परिवार भी बड़ा है। उस सारे देहात में उन्हीं का घर बड़ा है। इन सब बातों की अपेक्षा मेरे मन में उनकी नम्रता ने घर कर लिया। मैंने सोचा कि मेरा यहाँ ख़ूब आदर-सत्कार होगा।

भोजन के बाद हम लोग बहुत देर नहीं बैठे। मैं गाड़ी के साथ चलकर आया था, अतः थकावट-सी मालूम होती थी। मैंने यह बता दिया और कमरे के अन्दर प्रवेश किया और दिया बुझाकर सो गया।

(२)

सुबह जब जागा तब करीब छः बजे थे। कमरे के बाहर गरम पानी तैयार रखा हुआ था। मुँह धोकर फिर कमरे में ही जा बैठा। स्वयं करियप्पाजी एक प्याले में दूध ले आये। उनके घर पर काफ़ी पीने की आदत नहीं थी और मुझे दूध पीने की आदत नहीं थी। आदर के साथ दिया हुआ दूध इनकार करना ठीक न समझकर, किसी तरह पी लिया। उन्हें अपने पास बिठाकर संग्रहीत चित्र दिखलाये और उनके बारे में जितनी जानकारी रखता था, वह बताने लगा। उनको बड़ा संतोष और आश्चर्य हुआ जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। उन्होंने कहा—बाबूजी, पास में ही रंगप्पा का एक बहुत पुराना मन्दिर है। बहुत सुन्दर है! अगर आप चाहें तो चलें।

मैंने तुरन्त पूछा—कहाँ?

'यहीं है। दूर नहीं, एक कोस जमीन होगी। देखिये, वह वहाँ एक पहाड़ दिखाई पड़ता है न, उसी के पदतल में है।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बेलूर में लिये गये चित्रों पर नोट्स लिखना था। लक्ष्मी को पत्र भी लिखना था। इसलिए मैंने कह दिया—ठीक है, कल सुबह वहाँ हो आऊँगा। आज तो मुझे कुछ लिखना है।

'जैसी आपकी इच्छा।'

× × ×

उस दिन नोट्स लिखने में ही बहुत-सा समय बीत गया। करीब १२ बजे मैंने लिखना ख़तम किया। भोजन के बाद लक्ष्मी को पत्र लिखने बैठा। यात्रा से जब कभी मुझे फ़ुरसत मिलती थी, तब मैं उसको पत्र लिखा करता था। उसमें कुछ विशेष नहीं लिखता था—सिर्फ़ अपनी यात्रा का और मंदिरों का वर्णन लिखता था। उसकी स्मृति यात्रा में हमेशा बनी रहती थी। कभी-कभी मैं बोल उठता—हा! इस सुंदर दृश्य को देखने के लिए मेरी लक्ष्मी नहीं है। अगर वह मेरे पास होती तो और ही आनन्द आता! उस दिन मैंने करियप्पाजी के सत्कार, मेहमानदारी और परिवार आदि की बातें और कल मंदिर देखने जाने का कार्यक्रम इत्यादि लिखकर, कुछ—एक दो—अपनी बातें लिख पत्र समाप्त किया। उस देहात में पोस्टआफ़िस नहीं है, किंतु पोस्ट बाक्स है। सप्ताह में एक या दो बार बेलूर से पोस्टमैन आकर उसमें से ख़त ले जाता है, इतना मुझे पूछताछ करने पर विदित हुआ। मुझे मालूम नहीं था कि बॉक्स किधर है। किसी नौकर के हाथ भेजने के इरादे से कमरे के बाहर आया। तब सामने दालान में कुछ दूरी पर एक खंभे के पास एक जवान लड़की बैठी मिली। मालिक की लड़की होगी। मुझे कोई नौकर दिखाई नहीं पड़ा। कुछ सूझ नहीं पड़ा कि क्या करूँ। मुझे देख वह पास आई और पूछा—बाबूजी, क्या चाहिये? और मुस्कुराई। उस लड़की की सरलता और ढंग देखकर मुझे संतोष हुआ। मैंने कहा—कुछ नहीं। मुझे यह पत्र डालना था। मैं नहीं जानता कि पोस्ट-बॉक्स कहाँ है, क्या तुम बता सकोगी?

मुस्कराकर दो कदम आगे बढ़ती हुई वह बोली—आप क्यों तकलीफ़ करें! इधर दीजिये, मैं डाले आती हूँ।

उसकी बातें सुनकर और भी कुछ बातें करने की इच्छा हुई। मैंने पूछा—तुम्हें तकलीफ़ होगी न?

'नहीं! नहीं! तकलीफ़ काहे की! आप बड़े आदमी हैं!'

'तो तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी?'

'जी नहीं। लाइये चिट्ठी—कहकर उसने अपने हाथ आगे बढ़ाये।'

मैंने उसको चिट्ठी देकर पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

कुछ शर्माती हुई वह बोली—मेरा नाम चेन्नी है। और चली गई।

अच्छा नाम है। चेन्नी अच्छी तरह बोलती है। मुख पर की विनीत भावना, हृदय की निर्मल छाया से भरी आँखें, उसकी बोली ने मेरे मन पर ख़ूब प्रभाव डाला।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उस दिन दोपहर के भोजन के बाद थोड़ी देर तक सोया। जब उठा तब चार बज चुके थे। मुँह धो लेने के इरादे से कमरे के बाहर आया। वही लड़की उसी खम्भे के पास बैठी दिखाई पड़ी। मुझे देखते ही उसने अपने पसारे हुए पैर समेट लिये और अन्यमना होकर आँचल का धागा निकालने लगी। मुझे पानी की ज़रूरत थी। किससे माँगू? उस लड़की के सिवा वहाँ पर और कोई नहीं था। पहले एक बार उससे बातें कर चुका था। इसलिए उसी से स्नेह से कहा—चेन्नम्मा, मुझे मुँह धोने के लिए पानी चाहिये। 'जी अभी लाई' कहकर वह मुस्कुराती हुई मनोहर गति से अन्दर चली गई। मुझे ऐसा लगा कि मानो जन्म से ही वह हँसी साथ लाई है। जब कभी मैं उसे देखता, तब मैं उसको हँसते पाता। मैंने शहरों में युवतियों का मंदहास देखा है। वह मंदहास साधारण नहीं है। वह तो बड़े-बड़े पेड़ों को जड़ से उखाड़ फेंकनेवाले तूफान के समान होता है, मन में बड़ी-बड़ी तरंगों को उठाकर हलचल पैदा करनेवाला होता है! किन्तु चेन्नम्मा का मंदहास वैसा नहीं था। इधर-उधर फूलों में से निकल, हृदय में हलकी तरंग-मालायें पैदा करनेवाले मृदु पवन के समान उसकी हँसी थी! आँधी में अगर हम पड़े तो क्या होगा? मुँह में, आँखों में धूल पड़ेगी! उसमें सौरभ कहाँ? इस देहाती लड़की की हँसी में चमेली की-सी शुभ्रता थी! सीमातीत सुगन्ध! उसकी हँसी जैसे बिखरी चाँदनी!...

इतनी बातें हृदय में जबतक उठीं, तबतक चेन्नम्मा पानी ले आई थी। हाथ-मुँह धोकर कमरे के अन्दर जाकर ज्योंही बैठा था, त्योंही चेन्नम्मा मेरे सामने एक प्याले में दूध रखकर चली गई। दूध पी लिया।

घूम आने के इरादे से अपनी बाँसुरी और 'कैमरा' लेकर उठा। फिर उसी स्थान पर वही चेन्नम्मा दिखाई पड़ी! मैं घर के बाहर आकर खड़ा हुआ। यह मुझे नहीं सूझा कि किस तरफ़ जाऊँ। झट मुझे याद आया कि पास ही एक बगीचा है। वहाँ जाने का मैंने निश्चय किया। किन्तु वहाँ तक जाने की राह मैं नहीं जानता था। क्या किया जाय? सोचा चेन्नम्मा से ही पूछूँ कि बगीचे में जाने का रास्ता कौन-सा है। फिर घर के अन्दर जाकर चेन्नम्मा से पूछा—क्यों चेन्नम्मा, सुना है कि तुम्हारा बगीचा है। उसे देखना चाहता हूँ। वहाँ तक जाने का रास्ता कौन-सा है बताओगी?

वह मुझे घर के पीछे ले गई और राह दिखाकर बोली—बाबूजी, यही रास्ता बगीचे को जाता है। आप इसी राह चले जाइये।

'अच्छा, अब मैं जाता हूँ।'—कह मैं आगे बढ़ा। थोड़ी ही दूर गया हूँगा कि मेरी धोती का किनारा काँटे में अटक गया। हवा बह रही थी। धोती को छुड़ाने के लिए पीछे घूमा। चेन्नम्मा वहीं खड़ी थी। मैंने सोचा कि वह मुझे देखती खड़ी होगी कि कहीं राह भूलकर भटक न जाऊँ।

कुछ दूर चलने पर बगीचा आ गया। वह बहुत ही सुन्दर था। सुपारी और नारियल के पेड़ तो आकाश से बातें करते खड़े थे। कुछ फल-फूल के वृक्ष भी थे। आम तौर से सुन्दर बगीचे का सौंदर्य उस दिन के संध्याकालीन सूर्य की सुनहली किरणों से सौगुना बढ़ गया था। बगीचे में प्रवेश करते ही कुछ गज पर एक सुन्दर विशाल कुआँ दिखाई पड़ा। उसमें उतरने के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिए एक तरफ़ सीढ़ियाँ थीं। कुएँ के चारो ओर दो फीट ऊँची पत्थरों की दीवार थी। मैं उसी दीवार पर जा बैठा और बगीचे के सुन्दर-दृश्य का मधुपान करने लगा।

(३)

बगीचे के सौंदर्य से मेरे मन ने एक अनिर्वचीय सुख का अनुभव किया। बगीचे की हवा ठंडी और हलकी थी। कुएँ के चारो तरफ़ कई तरह के पुष्प थे। उनकी सुगंध हवा में मिलकर फैल रही थी। कई तरह की चिड़ियों का कलरव पेड़-पौधों से होकर आता और मधुर सुनाई पड़ता था। मेरा हृदय पक्षियों के साथ पक्षी बन और फूलों के साथ फूल बन नाचने लगा। कवि लोग न जाने उस स्वर्ग का क्यों वर्णन करते हैं, जो दिखाई नहीं पड़ता। जहाँ सुख वहीं स्वर्ग है!...हृदय आनन्द से लबालब भर गया, भरकर बहने लगा। उससे मेरी उँगलियाँ अपने-आप बाँसुरी पर खेलने लगीं, मैं नहीं जान सका कि कब बाँसुरी मुँह से लग गई। मैं बाँसुरी बजाने लगा। उसका स्वर सौगुना होकर बगीचे में फैल गया। मैंने दो-एक कीर्तन बजाये। और खुद ही अपनी बाँसुरी की तान से मंत्र-मुग्ध हो गया। फिर गाने लगा। मैं जानता था कि मेरे सिवा बाग में दूसरा कोई नहीं है, इससे धैर्य के साथ जो आया, सो ही गाने लगा। इतने में अचानक पीछे 'बुड़-बुड़' शब्द सुनाई पड़ा। भौंचक-सा होकर घूमकर देखा तो, वही लड़की चेन्नी सीढ़ियों से उतरकर घड़े में पानी भर रही थी। जब मैं घूमकर देख रहा था, तब वह अपना सिर उठाकर मेरी ओर देख रही थी। मैं शरमा गया। शहर के नागरिक का गौरव और देहाती गोपाल की तरह बाँसुरी बजाना और चिल्लाना दोनो मिल गये! मैं सीढ़ियों की तरफ़ पीठ किये बैठा था, इसलिए उसना आना मुझे मालूम नहीं हुआ। अपने गाने की आवाज़ में न उसकी चूड़ियों की झंकार और न नूपुर की आवाज़ सुनाई पड़ी। मेरी अवस्था हास्यास्पद हो गई थी। मुझे इससे क्या! सोचकर मन को सांत्वना दी; पर समाधान नहीं हुआ। हँसी आने लगी। मैंने बाँसुरी नीचे रख हाथ में 'कैमरा' उठा लिया और यों दिखाने लगा कि मैं उसे देख रहा हूँ। तब मुझे ऐसा लगा कि मानो वह पानी भरकर एक-एक करके सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आ गई है। सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद पैर की आहट सुनाई नहीं दी। पैर की आवाज के बदले चूड़ियों की आवाज सुन पड़ी। उसका मुँह देखने में शरम आने लगी! फिर भी मैंने घूमकर देखा। सीढ़ियाँ चढ़ वह ऊपर आकर खड़ी थी। घड़े कुएँ की दीवार पर रखे हुए थे। इसी समय मैंने उसे देखा, मेरे विचित्र संगीत से जो हँसी उसके अधरों पर खेल रही थी, वह अब भी वहाँ थी। मुझे बड़ी शरम लगी, मुँह फिराकर जो मैं बैठा था, उठ खड़ा हुआ। वह कुछ बोली, किन्तु हृदय की हलचल में सुनाई नहीं पड़ा कि वह क्या बोली। फिर उसकी ओर देखकर पूछा—क्या है चेन्नम्मा?

उसने मुझसे पूछा—आपने गाना क्यों बन्द कर दिया?

उसके प्रश्न से मेरे मन की जो हालत हुई और मैं जितना शरमाया सो परमात्मा ही जाने। उसके बाद 'आ-ऊ' करके मैंने कह दिया कि गाना भूल गया। उसका प्रश्न उपहास-जनक विदित होने पर भी मैं उस पर नाराज़ न हो सका। क्रोध भी कैसे आता! मैंने तो मूर्खता की थी। वास्तव में जो हँसमुखी थी, उसको मेरी हँसी उड़ाने की इच्छा होगी ही।

अच्छा, जो हुआ सो हो गया। अब इस स्थान को छोड़ने के इरादे में मैंने हाथ में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैमरा और बाँसुरी ली और चल पड़ा। दो-चार कदम ही गया हूँगा कि उसने पुकारा—बाबूजी। मैंने उसकी तरफ़ देखा। घड़े को दिखाती हुई, कुछ लजाकर उसने कहा—ज़रा यह घड़ा उठवा देंगे!

मैंने घड़े को उठाकर उसकी कमर पर रख दिया। मेरा यह काम उसको विचित्र-सा लगा। उसके मुँह पर आनन्द की रेखाएं नाच गईं। घर की राह पकड़कर वह तीन-चार कदम चली गई। डूबते सूरज के सुनहले प्रकाश में उस नौजवान लड़की का लचकते हुए चलना बड़ा ही मनोहर दीख पड़ा। तुरन्त उस लड़की की उसी अवस्था में फोटो लेने की इच्छा हुई।

मैंने कैमरा ठीक करके बिना हिचकिचाहट से कहा—चेन्नम्मा!

उसने उसी लचकती चाल से घूमकर पूछा—क्या है बाबूजी? मैं उसके पास गया और उससे कहा—चेन्नम्मा क्या थोड़े देर योंही खड़ी रहोगी? उसको आश्चर्य हुआ, पर वह सुनहले प्रकाश की ओर मुँह कर के खड़ी हो गई। सदा उसके मुँह पर थिरकनेवाली मुस्कराहट उस प्रकाश में अत्यन्त सुखद दिखाई पड़ती थी। मैंने तसवीर खींच ली और कहा—अब तुम जा सकती हो!

उसने कुतूहल से पूछा—बाबूजी, आपने क्या किया? उसको कैसे समझाता कि क्या किया। मैंने कहा—कल बतलाऊँगा। वह धीरे-धीरे घर चली गई।

(१)

रात को भोजन करके कमरे में जाकर सो गया; किन्तु नींद नहीं आई। संध्या को बगीचे में जो कुछ हुआ था, वह अभी तक मन पर अंकित था। मैंने अपने-आप हँसकर कहा—यदि यह घटना लक्ष्मी को बताऊँ तो वह क्या कहेगी! कितना हँसेगी! मेरी हँसी और भी बढ़ गई। मैं अपने-आप ख़ूब हँसा।

× × ×

रात को नींद देर से लगी थी, इसलिए सवेरे भी देर से उठा। तब करीब आठ बजे होंगे। हाथ-मुँह धो, खा-पीकर पहाड़ के पास का मन्दिर देखने जाने के लिए तैयार हो गया। घर के मालिक ने एक नौकर का प्रबन्ध कर दिया था। उसके हाथ में अपनी चीज़ें देकर निकल पड़ा। सब देख-भाल घर जब लौटा तो १२ बजे होंगे। लौटते वक्त राह में इधर-उधर कुछ किसान खेतों में काम करते दिखाई पड़े और कुछ ग्वाले धेनु चराते दीखे। एक ग्वाला ज़ोर से ग्रामगीत गा रहा था। उसको किसका डर था। मुझे सुनने की इच्छा हुई, किन्तु साथ में नौकर जो था। अगर वह कहीं हँस पड़ा तो! अलावा इसके कल संध्या की घटना याद आई। इसलिए मैं रुका नहीं, चला आया। चेन्नम्मा की याद भी आ गई। उसकी हँसी मेरी आँखों के सामने नाचती-सी मालूम हुई। उसका लचकती कमर पर घड़े ले जाने का मनोहर दृश्य भी सामने आ गया। मैं यही अनुमान कर सका हूँ कि वह घर के मालिक की बेटी है। उसके बारे में जानकारी हासिल करने के इरादे से नौकर से पूछा—तुम्हारे मालिक के घर पर रहनेवाली वह लड़की कौन है?

मेरी ओर देखकर नौकर ने पूछा—कौन-सी लड़की हुजूर? उसको विदित नहीं हुआ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि मैं किस लड़की के बारे में पूछ रहा हूँ। मैंने कहा—चेन्नम्मा नाम की वह लड़की कौन है?

मेरा प्रश्न सुन उसने हँसकर अपना मुँह फिरा लिया और बोला—क्यों हुजूर?

मुझे ज़रा शक मालूम हुआ और लज्जा भी। मेरे प्रश्न में नौकर को क्या बुरी भावना दिखाई पड़ी? मुझे दुःख हुआ। उस नौकर को क्या मालूम था कि मेरी लक्ष्मी के सिवा मेरे हृदय में किसी औरत का स्थान नहीं है! उसने तो उपहास कर कह दिया—क्यों बाबूजी!

मैंने कहा—यों ही पूछा। क्या पूछना नहीं चाहिये था?

'नहीं बाबूजी, कोई हर्ज नहीं है। वह तो मालिक की लड़की है।'

और भी एक सवाल करनेवाला था, किन्तु रुक गया। 'वह लड़की कौन है?' पूछने से जो हँस दिया वह 'क्या उसकी शादी हो गई?' प्रश्न पूछे जाने पर क्या समझेगा! मैं इसलिए चुप हो गया।

× × ×

घर आने के बाद स्नान कर भोजन किया। उसके बाद मैंने चेन्नम्मा की तस्वीरों की चार प्रतियाँ निकालीं। तस्वीर बहुत अच्छी आई थी। घर के सब लोगों ने उसे देखा और सभी को सन्तोष हुआ।

× × ×

दोपहर का भोजन देर से किया था, इसलिए रात को भूख नहीं लगी। मैंने घरवालों से कह दिया कि रात का भोजन नहीं करूँगा। नींद नहीं आ रही थी; अतः कुछ देर घूमने के लिए गया। करीब नौ बजे लौट आया। फिर भी नींद नहीं आई। मैं एक उपन्यास पढ़ने लगा। करीब दस मिनट पढ़ा होगा कि कमरे का दरवाजा कुछ खिसका-सा मालूम हुआ। पर यह सोचकर कि हवा के कारण कुछ खिसक गया होगा, फिर उपन्यास पढ़ने लग गया। दरवाजे पर फिर आवाज़ सुन पड़ी। अबकी बार उसे कोई खटखटा रहा था। मैंने पूछा—कौन है? पर उत्तर कोई नहीं मिला। फिर खटखटाहट शुरू हुई। मैंने फिर पूछा—कौन है? चूड़ियों की आवाज़ आई। उसके साथ धीमे स्वर में जवाब आया—मैं हूँ चेन्नी। मुझे आश्चर्य हुआ। इतनी रात इसका मेरे यहाँ क्या काम?...कुछ भी हो। पूछकर देखने के ख़याल से मैंने दरवाजा खोलकर पूछा—क्या है मा? मेरे कमरे की रोशनी उस पर पड़ रही थी। उसके हाथ में एक थाली थी, जिसमें ४-५ केले, चीनी और एक प्याले में दूध रखा हुआ था।

मैंने पूछा—क्या है मा?

उसने कहा—आपने भोजन नहीं किया। इसलिए ये ले आई हूँ बाबूजी?

मुझे कुछ-कुछ भूख-सी लग रही थी। मैंने कहा—अच्छा। और वह थाली उसके हाथ से ले बिस्तर के पास रखने गया। चेन्नम्मा भी मेरे पीछे-पीछे कमरे के अन्दर आई। मेरा हृदय धड़कने लगा। मैंने थाली बिस्तर के पास रखते हुए कहा—मुझे और कुछ नहीं चाहिये। अब तुम जा सकती हो मा।

वह हँसती हुई बोली—यदि मैं रहूँ तो क्या आप खा नहीं सकेंगे?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'ऐसी बात तो नहीं है। खा क्यों नहीं सकता। ऐसा मैंने इसीलिए कहा कि अब मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है और इतनी रात बीते तुम्हारा यहाँ अकेले... ।'

मेरी बात पूरी होने से पहले ही उसने दरवाजा बंद कर कुंडी लगा दी। मेरे कमरे के अन्दर आते ही उसे देख मेरी जो भावना हो गई थी, वह अब बिल्कुल स्पष्टतर हो उठी। दरवाजा बन्द करते देख मेरा सारा शरीर काँप उठा। मुँह पर पसीना निकल आया। गला सूखने लगा और मैं थूक निगलने की कोशिश करने लगा। ख़ूब जोर लगाकर मैंने पूछा—दरवाजा क्यों बन्द किया? फिर उसको खोलने के लिए आगे बढ़ा कि तुरन्त चेन्नम्मा दरवाजे की तरफ दौड़ पड़ी और उससे अपनी पीठ सटाकर खड़ी हो मुसकराने लगी। मेरे पैर काँप रहे थे। बस, अब कोई संदेह नहीं रहा। उसकी इच्छा मेरी छाती पर ठीक लिख गई। मन ही मन में बोला—यह! देहाती मुग्ध युवती!

(५)

मैं खड़ा नहीं रह सका। बिस्तर पर जाकर बैठ गया और दोनो हाथों से सर पकड़कर सोचने लगा।

यहाँ, इसके बाद जो हुआ, उसे कहने से पूर्व कुछ दो और बातें कहने की हैं। उस दिन पाप के जाल से मुझे छुड़ाकर लक्ष्मी ने मेरी रक्षा की थी। उसका प्रेम मेरा कवच था। जब से हम दोनो एक हुए हैं, उसने ऐसा जादू कर दिया था कि मैं उससे विलग कुछ देख नहीं पाता था। रूप, गुण और प्रेम के लिए मुझे कहीं दृष्टि नहीं डालनी पड़ती थी। लक्ष्मी मेरे भाग्य में न बदी होती तो उस रात मेरा चंचल मन उस देहाती युवती की ओर बह जाता। यह घटना तब हुई, जब मैंने यौवन के वसंत में पदार्पण किया था। अपने रूप की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। इतना तो मैं कह सकता हूँ कि मैं कुरूप नहीं हूँ। घटना को अगर अच्छी तरह जान लेना हो तो चेन्नम्मा का वर्णन भी आवश्यक है। उसकी उम्र बीस से अधिक नहीं होगी। उसका क़द न लम्बा था, न नाटा। वह साँवले रंग की थी। मुँह भी सुंदर ही था। यौवन से भरे अंग। और अधरों पर मंदहास की छटा। आँखों में शैशव की निर्दोष चमक। मंदहास और आँखों की झलक मिलकर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। एक ही बात में बताना हो तो बता सकते हैं कि मन हरण करने के सारे साधन उसमें थे। इसके अलावा उस रात का उसका बर्ताव 'देहाती युवती' के बर्ताव से कहीं भिन्न था।

जब बिस्तर पर बैठा मैं यह सोच रहा था तो मेरा सिर चकराने लगा। मन अंधकार के गाढ़ सागर में डूबने-उतराने लगा। गला सूख गया, थूक निगलना भी कष्ट-साध्य हो गया। मेरे स्वप्न में भी यह बात नहीं आ रही थी कि इस युवती में मैं काम-चेष्टा जाग्रत करूँगा! मुझे चाहने की उसकी इच्छा हुई हो तो मैंने उसका कभी समर्थन नहीं किया। वह ज्ञानी नहीं है। जान-बूझकर ही वह ऐसे कार्य में अग्रसर बनी है। यह क्या पागलपन है! यह भी तो एक पागलपन ही है। घरवालों को मालूम हो तो क्या हाल हो। मैं तो बड़े आदमी की तरह इसके घर में मेहमान बनकर हूँ। अब इस मध्यरात्रि में मैं और वह दोनो एक साथ कमरे में...तो इज्जत नहीं बचने की। वह आई भी कैसे? आँखें चुराकर आई है! क्या इसकी शादी नहीं हुई है? मेरे मन को बहुत बुरा लगा। अब एक-एक करके कल संध्या-समय के बर्ताव की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्येक बात का अर्थ मालूम होने लगा। उस वक्त वह मेरे पीछे-पीछे बागीचे में क्यों आई?... पानी भरकर ले जाना केवल बहाना था!...पानी का घड़ा मुझसे क्यों उठवाया?...जाने दीजिये, पानी का घड़ा उठाकर उसकी कमर पर रखते समय अपना हाथ मेरे हाथ से स्पर्श होने दिया। तब मैंने सोचा कि अचानक छू गया होगा। और एक बात है, जब वह पहले घड़ा उठाने के लिए झुकी, तब उसका आँचल ज़रा गिर गया था। उस अवस्था में मैंने उसको देखा, तब उसको शर्म नहीं मालूम हुई। घड़ा ढो लेने के बाद धीरे-धीरे उसने आँचल को ठीक तौर से ओढ़ लिया। तब मैंने इन सब बातों में उसकी मुग्धता और नादानी ही देखी। मैं यह नहीं समझ सका कि वह सब मेरे चारो तरफ़ फैलानेवाले जाल का एक तंतु था।

मैं इन विचार-तरंगों से छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगा। नाराज़ होने से छुटकारा पाना संभव नहीं था। नाराजगी से कभी-कभी बड़े नुकसान होने की भी संभावना रहती है। किसी उपाय से उसको बाहर भेजना चाहिये। कौन-सा उपाय किया जाय? बात कैसे शुरू करूँ। तो अच्छी तरह ओढ़कर सो जाऊँ? पर जब तक वह यहाँ रहेगी मेरे हृदय पर बोझ लदा रहेगा। सो सकना तब होने का नहीं। तो...और एक दूसरा उपाय सूझा। वह अच्छा भी था। तुम जो काम कर रही हो, वह बहुत बुरा है, नीच है, निंदनीय है आदि, आदि उपदेश देकर उसे भेज दिया। मुझ शहर-निवासी को इस देहाती लड़की को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश देने का मौका परमात्मा ने दिया, जिसे देख मुझे हँसी आ गई। मैंने सिर उठाकर चेन्नम्मा की ओर देखा। वह दरवाज़े की ओर पीठ किये खड़ी थी। मुझे हँसता देख वह भी हँस पड़ी। मेरी हँसी का कहीं कुछ और अर्थ उसने न लगा लिया हो। मैंने अपनी हँसी को निगलते हुए कहा—चेन्नम्मा!

'क्या है बाबूजी!'—कहती वह दो-तीन क़दम आगे बढ़ आई और खड़ी हो गई।

मैंने उससे बैठने के लिए कहा और वह मेरे बिस्तर पर ही बैठ गई। मैं कुछ दूर खिसककर बोला—चेन्नम्मा!

उसने धीरे से पूछा—क्या है बाबूजी? उसकी आवाज़ में मुग्धता थी।

मैंने कहना शुरू किया—चेन्नम्मा, देखो; तुम्हें इस तरह नहीं करना चाहिये।

'किस तरह बाबूजी?'

'इस तरह—मध्य रात्रि में चोरी से...'

वह बीच में ही बोली—चुराकर नहीं आई हूँ! मेरे देवता!

'तो कैसे आई हो?'

वह बोल न सकी। मैंने कहा—देखो, अगर तुम्हारे घरवालों को यह विदित हो जाय तो तुम्हारे प्राण भी न बचें, और मेरी इज्ज़त...

'बाबूजी, वे कुछ भी नहीं कहेंगे।'

मुझे और भी आश्चर्य हुआ! मैंने पूछा—क्या?

'वे कुछ भी नहीं कहेंगे।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सुनो, वे कहें या न कहें, यह मुझे पसन्द नहीं आता। चेन्नम्मा, मेरा विवाह हो गया है, मुझे दूसरों की स्त्री...से...।'

'जी ! ऐसा क्यों कहते हैं ! मेरा विवाह नहीं हुआ है, मैं तो देवदासी हूँ।'

'क्या ? क्या कहा ?'

'मुझे देवदासी बना दिया गया है।'

'देवदासी ! देवदासी ? माने ?'

'मैं देव के लिए छोड़ दी गई हूँ।'

'मैंने औरतों का देवता के लिए छोड़ दिया जाना कहीं नहीं देखा था। सुना भर था; पर उसका अर्थ भी मुझे नहीं मालूम था। अब मुझमें डर नहीं रहा। मैं और कौतूहल से भर गया। इस विषय को जानने की इच्छा तीव्र हुई। इसलिए पूछा—परमात्मा के लिए छोड़ दिया ? किसने ?

'मेरे माता-पिता ने।'

'क्यों ?'

'बाबूजी, आज से आठ साल पहले मैं बहुत बीमार हो गई थी। तब माता-पिता ने देव को मनाया कि अगर मैं अच्छी हो जाऊँ तो देवता के अर्पण कर दी जाऊँगी। और मैं अच्छी हो गई।'

'तो तुम बिना विवाह किये रहोगी !'

'हाँ बाबूजी, विवाह नहीं करूँगी।'

'यों ही रहोगी ?'

'जी हाँ।'

'वेश्या की तरह ?'

इस बात से उसका हृदय बिंध-सा गया होगा। एक क्षण के लिए उसकी भौंहें सिकुड़ गईं। उसके होठ फड़फड़ाने लगे। क्रोधित स्त्री के मुख पर एक भीषणता होती है। उस भीषणता से युक्त उसका मुख दिखाई पड़ने लगा। क्रूर दृष्टि से मुझे देखती हुई वह बोली—बाबूजी, ऐसी बात नहीं बोलनी चाहिये।

उसका परिवर्तन देख मैं भ्रम में पड़ गया। मैंने थूँक घोंटते हुए कहा—कौन-सी बात ?

'हम वेश्यायें नहीं हैं, यह आपको जानना चाहिये।'

मुझे और भी आश्चर्य हुआ। विवाह-हीन नारी और ऐसा बर्ताव। फिर भी वह कहे मैं वेश्या नहीं हूँ। मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा—तो और क्या हो ? अन्य औरतों की तरह बिना विवाह किये कुलीना की तरह रहना छोड़, यों इस तरह मध्य-रात्रि में अनजान पुरुष के सामने यों चली आना...

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'बाबूजी, आपको अभी तक मालूम नहीं हुआ ? देवदासी तो विवाह कर ही नहीं सकती।'

'क्यों नहीं कर सकती ?'

'देवता की सेवा में जो मैं अर्पण की जा चुकी हैं। नहीं तो हमारा नाश नहीं होगा ?'

'विवाह कर लेने के बाद क्या देवता की सेवा नहीं की जा सकती ?'

'जी नहीं। यदि विवाह कर लिया जाय तो फिर आप जैसों की सेवा कैसे की जा सकती है ?'

'अच्छा, दूसरे की सेवा क्यों करनी चाहिये ?'

'तो परमात्मा की सेवा नहीं करना चाहिये ?'

'क्या इस तरह से ही सेवा की जाय ? परमात्मा के नाम पर वेश्यापन करते...'

तुरन्त भ्रू आकुंचन करती हुई वह बोली—बाबूजी, फिर वही बात आप मुझसे न कहिये।

'देखो, मैं तुम्हारा पति नहीं हूँ। और इतनी रात बीते तुम मेरे पास आई हो। यह किसका काम है ? फिर भी कहती हो कि मैं वेश्या नहीं हूँ।'

हम वेश्यायें नहीं हैं बाबूजी, हम वेश्यायें नहीं हैं। वेश्याओं को पैसे का लालच होता है, वे आदमी की तरफ़ नहीं देखतीं। उनको देवता की सेवा से मतलब नहीं होता। वह धन्धा ही उनका जीवन होता है बाबूजी !'

'और तुम ?'

'हम धन नहीं छूतीं। ऐसे-वैसे आदमी को पास भी नहीं आने देतीं। आप जैसे कुलीन, सज्जन पुरुष आ जायँ तो उनकी सेवा कर परमात्मा को सन्तुष्ट करती हैं। हमें वेश्यायें न कहें बाबूजी !'

'तो तुम्हारी इस 'सेवा' के बारे में तुम्हारे पिता-माता जानते हैं ?'

'उन्होंने ही मुझे देवता के अर्पण किया था। उनको यह मालूम हुए बिना कैसे रह सकता है ?'

'अच्छा, उन्होंने तुम्हें भेजा है ! उनको यह कैसे मालूम कि मैं इसे स्वीकार करता हूँ या नहीं ? किस धैर्य के बल पर उन्होंने तुमको मेरे पास भेजा ?'

इस प्रश्न का उत्तर उसने नहीं दिया। हँसती हुई मनोहर गति से गर्दन घुमाकर तिरछी नज़र से देखती हुई वह बोली—आपने हमारे नौकर से पूछा था कि मैं कौन हूँ, क्या करती हूँ !

उस नौकर की व्यंग हँसी और उसका 'क्यों बाबूजी' का पूछना अब मेरी समझ में आ गया। मेरे मुँह से निकला—या परमात्मा !

फिर मैंने चेन्नम्मा से कहा—ठीक है, चेन्नम्मा ! मैंने नौकर से सिर्फ अपनी जानकारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के लिए पूछा था। चेन्नम्मा, अपनी लक्ष्मी की कसम खाकर कहता हूँ कि मेरे उस प्रश्न में कोई दुराशा नहीं थी।

'हरे राम! यह भी क्या बात हुई। छोड़िये बाबूजी, इसके लिए आप कसम न खायें।'

'अच्छा चेन्नम्मा, सुनो। एक बार के गये हुए प्राण फिर लौटकर आते हैं?'

चेन्नम्मा चुप रही।

'बोलो।'

'नहीं बाबूजी।'

'तो सुनो, मान ही स्त्री के प्राण हैं। जो स्त्री मान को खो देती है, वह कुत्ते से भी बदतर हो जाती है। तुम्हारे लिए जो कुछ है, वह मान ही है। उसे इस तरह नहीं बेचना चाहिये। ज्ञानी लोग कहते हैं कि मान-त्यक्ता स्त्री को नरक में भी स्थान नहीं मिलता।'

'बाबूजी, आपका कहना उनके लिए ठीक है जो विवाह करके पति के साथ रहती हैं। वे भी अगर हमारी तरह बन जायँ तो उनको जात से बाहर कर देते हैं। हमारे लिए वैसी व्यवस्था नहीं है। हमें तो देवता की सेवा के लिए छोड़ दिया गया है। हमें तो आप जैसे भलेमानुसों की सेवा।...'

'नहीं चेन्नम्मा, तुम नहीं जानती हो। सुनो, अगर परमात्मा के नाम पर स्त्री मान-त्याग करे तो क्या परमात्मा संतुष्ट होगा? जिस देवता के अर्पण तुम की गई हो उसकी सेवा करने से तुम्हें कौन मना करता है? पर क्या यों मान खोना चाहिये?'

'बाबूजी, आप जैसे सज्जन ही हमारे देवता हैं। आपकी सेवा से ही हमें पुण्य मिलता है।'

उसकी ये बातें सुनकर मेरे मुँह से निकल पड़ा—हाय! परमात्मा तुम्हारे नाम से कितना अन्याय और पाप हो रहा है! कुछ देर तक मैं योंही चुप बैठा सोचता रहा।

यह भी क्या मूर्खता है। दुनिया में ऐसी असह्य रूढ़ियाँ परमात्मा के नाम पर हैं। वह तो उनकी भक्ति है। किन्तु यह काम! इस तरह? ये लोग देवता को मानते हैं? परमात्मा के नाम पर इस प्रकार के हेय काम करते हैं—इनकी क्या हालत होगी? यह लड़की तो नादान देहाती युवती है, इसमें सन्देह नहीं। जारज स्त्रियों के लक्षण ही अलग होते हैं, इसके लक्षण ही अलग हैं। यह तो रूढ़ि की बलि की गई है। नादान लड़की है। इसके इस काम से देवता प्रसन्न होंगे, इतना ही जानती है। इस पर उसका विश्वास है। हाय, हाय, परमात्मा! माता-पिता ही अपने हाथ से बेटी को पाप-कूप में ढकेल रहे हैं, उनकी क्या हालत होगी? इसकी हालत क्या होगी? उन्होंने तो समझ रखा है कि उस मनौती से लड़की बच गई। किन्तु आज जो प्रतिक्षण उसका स्त्रीत्व ही मर रहा है! इसे वे कैसे जान सकते हैं? एक दिन जीवन से हाथ धो बैठने की अपेक्षा प्रतिदिन तिल-तिलकर मरना कितना भयंकर अपराध है! इसे वह क्या जानती है! नहीं, और आश्चर्य है! वह विश्वास करती है कि जो कुछ सेवा वह कर रही है, वह अच्छी है। जीवन की अन्तिम घड़ी तक उसे करते जाना ही परमात्मा की इप्सित सेवा है। ब्याही स्त्री के लिए जो कार्य बुरा है, उसीको वह अपने जीवन का धर्म समझकर कर रही है! इस धर्म के अनुकूल उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माता-पिता भी हैं ! बेचारे ! वे भी क्या कर सकते ? वे भी अन्ध-परम्परा के शिकार हैं !

विचारों से मेरा हृदय चूर-सा हो गया। मैंने दीर्घ श्वास छोड़ा। चेन्नम्मा ने, अब तक जो अपना आँचल लपेटती-छुड़ाती खड़ी थी, मेरी तरफ़ देखा। उसके मुँह पर वेदना दिखाई पड़ती थी। विवाहिता होकर अन्य स्त्रियों की तरह सुखमय दांपत्य जीवन बिताना छोड़ वह जो इस हेय रूढ़ि की बलि बनी खड़ी थी, उसे देख मेरा हृदय फट-सा गया और मेरी आँखें गीली हो गईं।

'सुनो चेन्नम्मा, तुम्हारा जो देव है उसी को तुम्हारी रक्षा करनी चाहिये।' कहकर मैंने अपने आँसू पोंछ लिये। मेरे आँसू देख चेन्नम्मा डर गई, और वह और भी पास खिसक आई। अबकी बार मुझे दूर हटने की इच्छा नहीं हुई। वह मनसा पापिनी नहीं थी। अज्ञान के कारण उसकी देह पाप की हिस्सेदारिन बनी थी। कमल के पत्ते पर चमकनेवाले ओस-बिन्दुओं की तरह उसकी आत्मा शुद्ध थी। उसकी सरलता देख मुझे दया आई। उसको जैसे-जैसे देखता जाता और उसके बारे में सोचता जाता था, वैसे-वैसे मेरी सूखी आँखों में आँसू आते गये। अपने आँसुओं से उसकी पापी देह को धोने की इच्छा हुई। मेरी देह और आत्मा में उसके प्रति स्नेह पैदा हो गया। धीरे से मैंने उसका हाथ पकड़ा। मेरी देह में कँपकँपी छूट गई। उसका हाथ बिना छोड़े उसकी उँगलियों पर हाथ फेरते हुए धीरे से मैंने उसे पुकारा। मेरे स्नेह ने, मेरी दया ने उसकी आत्मा का स्पर्श किया। वह और भी मेरे पास आई और सिर झुकाकर धीरे से पूछा—क्या है देव ?

उसके मुँह पर एक वेदना की छाया दिखाई पड़ रही थी। उसका मुख देखते ही मैंने पूछा—सुनो चेन्नम्मा, तुमने मुझे 'देव' कहा था न ?

'जी हाँ, आप मेरे देव हैं।'

'तो मेरे कहे के अनुसार तुमको करना चाहिये न ?'

'आपकी दासी हूँ, कहिये मेरे देव।'

'अब आइंदा तुमको ऐसा पाप-कर्म नहीं करना होगा समझीं ?'

'तो परमात्मा की मनौती ?'

'उस मनौती को डालो भाड़ में ! तुमने आज मुझे देव कहा है। तो इसके पहले क्या तुमने किसी की सेवा नहीं की ?'

उसने सिर झुका लिया।

'तो तुमने किसी की सेवा की है ? किस-किस की सेवा की है, नहीं जानता। आज मुझे देवता कहकर मेरी सेवा करने आई हो। एक का जूठन क्या दूसरे को देना चाहिये ? देव को यह जूठन देकर मनाना ? चेन्ना, तुम नहीं जानती ; मगर यह बड़ा पाप कर्म है। समझतीं तो कदापि तुम ऐसा नहीं करतीं। ज़रा सोचकर देखो, तुम में और वेश्या में अंतर क्या है ? उसके लिए तो वह उपजीविका का साधन है। तुमको उपजीविका के लिए किस चीज़ की कमी है ? किंतु दोनो पाप एक ही हैं। परमात्मा इस पाप को कभी नहीं स्वीकार करता !'

चुप रहकर चेन्नम्मा ने सब सुना। पहले की भाँति वेदना उसके मुँह पर से हट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गई। उसका मुँह कांतिहीन हो गया। देह भी झुक गई। आँखें ज़मीन की ओर हो गईं। धीरे से मैंने उसका हाथ हिलाया। सर उठाकर मेरी ओर उसने देखा। उसकी दृष्टि में भूले-भटके बच्चे की असहायता की छाया थी। मेरी बातें असर कर रही थीं।

'चेन्ना, मेरी बातें सच हैं न ?'

चेन्नम्मा बोली—नहीं। उसने सर झुका लिया। मेरे देखते-देखते उसकी आँखों से दो बूँद आँसू उसके कपोल पर लुढ़क पड़े। उनसे मेरे सवाल का उत्तर मिल गया। उसकी परिशुद्ध आत्मा के चारो ओर फैला अंधकार, अज्ञान दूर करना मेरे भाग्य में बदा था! किसी स्थान को जानेवाला किसी राह पड़कर यह सोचे कि अब उस स्थान के नजदीक आ पहुँचा हूँ और तब कोई कहे कि यह तुम्हारी राह नहीं है, इससे तुम अपने इस स्थान पर नहीं पहुँच सकोगे, यहाँ से वह बहुत दूर है तो उसके मन में क्या भाव उठेंगे। करीब-करीब यही भावना मैंने चेन्नम्मा के हृदय में पैदा की थी।

चेन्नम्मा बहुत रोई। मैंने उसका समाधान किया—देखो चेन्ना, तुमको देख मुझे न क्रोध है, न ग्लानि। बोलो, मुझे क्रोध है ?

एक दर्द भरी आवाज़ में उसने कहा—नहीं बाबूजी।

'तो, तुमको मुझ पर क्रोध कुछ...'

'हाय! नहीं देव! यों न कहें! आपको देख, आपके चरणों पर लोट जाने को जी चाहता है!'

वह मेरे पैर छूनेवाली ही थी कि मैंने उसे उठाकर कहा—तो मेरे हृदय पर हाथ रख, क़सम खाओ कि अब इस तरह का काम न करोगी।

चेन्नम्मा ने मेरे हृदय पर हाथ रखा। वेदना भरी दृष्टि और काँपती आवाज़ में वह बोली—देव—आइंदा—यह काम—नहीं करूँगी!

मेरे हृदय से एक बोझ उतर गया। मैंने एक दीर्घ श्वास छोड़ा। रात बहुत बीत गई थी। फिर भी नींद आने के आसार दिखाई नहीं पड़े। मन में शांति विराजने लगी। चेन्नम्मा ने एक बार जँभाई ली। मुझे एक बहाना-सा मिल गया। 'जाओ चेन्नम्मा, सो जाओ।' कहकर मैं उठ खड़ा हुआ। वह भी उठी। दरवाजे तक उसके साथ जाकर मैंने दरवाज़ा खोल दिया। दरवाजे के पास फिर उसका हाथ पकड़ 'चेन्ना, चेन्ना तुम पर मेरा क्रोध बिलकुल नहीं है।' कह मैंने दोनो हाथों से उसके गाल पकड़कर उसके गाल पर चुंबन किया। चेन्नम्मा चली गई।

(६)

सुबह जागा तो पास में करियप्पाजी खड़े थे। उन्होंने ही मुझे जगाया था। वे अंदर कैसे आ गये, मैं नहीं जान सका। शायद सोते समय दरवाज़े को ठीक तौर से बंद नहीं किया होगा।

'क्या है करियप्पाजी ?'—पूछता मैं आँखें मलता उठ खड़ा हुआ।

'हाय! क्या कहूँ बाबूजी! हाय मेरी बच्ची! मेरी चेन्ना!'—कहते-कहते वे ज़मीन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर गिरकर लोटने लगे। एक अव्यक्त भय से मेरा हृदय धड़कने लगा। इतने में किसी ने आकर कहा—बाबूजी, चेन्नम्मा, बगीचे के कुएँ में गिरकर...

उसकी बात पूरी सुन नहीं सका। मैं बगीचे के कुएँ की ओर भागने लगा। कुएँ के पास दस-बारह लोग खड़े हुए दिखाई पड़े। एक निरर्थक आशा थी कि उसके प्राण अभी गये नहीं होंगे। पर वह केवल दुराशा थी। रात में ही वह डूब गिरी होगी। अब तक प्राण थोड़े ही बचे रहेंगे। यों निराशा भी थी। पास जाकर खड़ा हो गया। सब ने राह छोड़ दी। देखा! हाय! परमात्मा! कैसा दृश्य देखा मैंने! आँखें अँधेरी होने लगीं। हृदय का रक्त आँखों से उमड़ आता-सा गोचर हुआ।

× × ×

इतना ही याद है कि जब होश आया तब मेरे मुँह पर, आँखों पर दो-तीन आदमी पानी छिड़क रहे थे। मेरे नाक से खून बह रहा था। मुझे इसका कुछ भी ज्ञान नहीं था। मुर्दे को इस आशा से छुआ कि प्राण है या नहीं; किन्तु हाय! सिर्फ भ्रम था। अपना भ्रम देख अपने से ही कह लिया—पागल कहीं का! उसकी देह में जो विमल हिमकण था, वह कभी का उड़ गया था। अमृत सूख गया था। किन्तु उसका विष का आवरण-मात्र रह गया था।

वहाँ अधिक खड़ा न रह सका। धीरे-धीरे घर की ओर चला आया।

(७)

उसी दिन शाम को मैं उस देहात से निकल पड़ा। निकलने के पहले चेन्नम्मा की तसवीर उसके घर में ही छोड़ आया। ऐसी लड़की को खोनेवाले उन लोगों को वह तसवीर क्या सांत्वना देगी?

राह में सोचता रहा। पुलीस ने तो 'आत्महत्या' कहकर रेकार्ड कर दिया। किन्तु वास्तव में मैंने ही उस लड़की की हत्या की! किसी तरह यह भावना मुझसे दूर नहीं होती थी। मेरा सारा उपदेश उसको ठीक लगा होगा। इससे जीने की अपेक्षा मरना अच्छा समझकर वह मरी होगी। अब मुझे मालूम हुआ कि जब मैंने उसको कमरे से बाहर भेजा तो उसके हृदय में मृत्यु-पाश फैल रहा होगा। इस विचार के आते ही मुझ पर गाज-सी टूटी। अगर मैं उसको कमरे के बाहर न भेजता तो शायद वह मरने का संकल्प त्याग देती, बच जाती। उसके मन में जीने की आशा त्यागने की इच्छा अगर किसी ने पैदा की हो तो वह मैं हूँ, इसमें सन्देह नहीं। इसका मुझे क्या अधिकार था? उसके धर्म-अधर्म का निर्णय करनेवाला मैं कौन हूँ? मेरी प्रत्येक बात ने उसे कुएँ तक ढकेला होगा। उसके बाद उसको कुएँ में गिरने के लिए प्रेरित किया होगा। हाय! मैंने उसकी हत्या की! परमात्मा के सामने किसी न किसी दिन इसका जवाब देना होगा। क्या जवाब दूँ?...

विचारों की सीमा नहीं थी, कोई रोक-टोक नहीं था। कल मैं घर पहुँचूँगा। यह सारी कहानी सुनकर मेरी लक्ष्मी जाने क्या कहेगी?

मैसूर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्धा वैज्ञानिक

[ब्रजमोहन गुप्त]

[श्री ब्रजमोहन गुप्त एक कवि भी हैं। इधर आपने कई वैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। आपकी प्रस्तुत कहानी 'हंस' के पाठकों के सामने रखते हुए हमें आनन्द है। 'प्रेम-कीटाणु' के नाम से शीघ्र ही आपकी कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित होनेवाला है। — सं०]

एलबर्ट डिलरर विज्ञानशाला में एक कुर्सी पर बैठा अपने हाथों की दोनो हथेलियों पर मस्तक रखे कुछ सोच रहा था। उसकी दोनो कोहनियाँ सामने रखी हुई मेज पर टिकी थीं, और वह उस पर झुका अन्तरद्वन्द्व के थपेड़ों में किसी समस्या को हल करने का प्रयत्न कर रहा था। थोड़ी देर बाद वह सीधा होकर बैठ गया। उसकी आयु सत्तर वर्ष से कम नहीं प्रतीत होती थी। सर के छोटे-छोटे बाल दूध जैसे सफेद थे और बीच से में बाल उड़कर खोपड़ी खल्वाट् हो गई थी।

उसके नेत्र खुले थे और देखने में यों बिलकुल ठीक प्रतीत होते थे; पर जब वह कुर्सी से उठा, टटोलता हुआ चला। क्योंकि वह अन्धा था। वह सामने की ओर हाथ फैलाकर, छोटे-छोटे कदम रखकर, टटोलता हुआ चल रहा था। इधर-उधर लगी मेजों और यंत्रों से बचता-बचाता, वह विज्ञानशाला के एक कोने में रखी हुई मेज के सामने आ खड़ा हुआ। उस पर किसी वृद्ध पुरुष की संगमरमर की, वक्षस्थल तक मूर्त्ति रखी हुई थी। डिलरर ने टटोलकर उस मूर्त्ति पर हाथ फेरा। फिर अपने झुर्रियों पड़े हाथों से, दोनो ज्योतिहीन नेत्र पोंछ डाले, जो गीले हो रहे थे।

'तुम कहते हो मेरा आविष्कार हज़ारों वर्षों तक उन्नत हुई सभ्यता के लिए अभिशाप हो जायगा। मैं पूछता हूँ क्या उन वैज्ञानिकों के आविष्कार, जिन्होंने मोटर, रेल, हवाई जहाज़ बनाये, बन्दूक, मशीनगन, तोप बनाईं, जिन्होंने गोला-बारूद, विषैली गैसों तथा विद्युत-शक्ति का पता चलाया, मानवता के लिए अभिशाप नहीं हो गये? वह और भी अधिक उद्विग्न होकर कहता—क्या इन सब आविष्कारों ने सैकड़ों-हज़ारों वर्षों से किसी अनिश्चित, किसी अज्ञात ध्येय की ओर बढ़नेवाली मानव-जाति के उस ध्येय को और भी अधिक अनिश्चित, और भी अधिक अज्ञात नहीं बना दिया? उस दिन भी मैंने तुम्हारे चरणों में बैठकर कहा था, वैज्ञानिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का कार्य्य सत्य की खोज करना है, उसके अनुसंधान में अपने जीवन को खपा देना है। उसके फलों का प्रयोग मानव-समाज अपने हित के लिए करता है या अहित के लिए, इससे उसे कुछ सरोकार नहीं, कुछ भी सरोकार नहीं। और आज भी मैं यही कहता हूँ। बहुत विचार करने पर भी मेरे इस विश्वास की नींव हिली नहीं। आज फिर मैं उसी आविष्कार के लिए अंतिम प्रयत्न करने जा रहा हूँ। तुम मुझे क्षमा करना।'

उसके बाद उसने शांतचित्त लौटकर नौकर से कहा—जो पत्र कल टाइप कराया था, बन्द करके डोनाटेलो के पास पहुँचा आओ।

× × ×

डोनाटेलो और डिलरर कुर्सियों पर आमने-सामने बैठे वार्तालाप कर रहे थे।

'देखो मैं एक महत्त्वपूर्ण आविष्कार कर रहा था और बहुत कुछ सफलता भी मुझे मिल गई थी।'—डिलरर कह रहा था—किन्तु आयु अधिक हो जाने के कारण अब कार्य्य नहीं होता। नेत्र भी ज्योतिर्हीन हो गये हैं। मैं नहीं चाहता कि मेरे जीवन के साथ ही वे सिद्धान्त भी समाप्त हो जायँ। मैंने निश्चय किया है कि वे सब सिद्धान्त तुम्हें बता दूँ और तुम मेरी सहायता से उन यन्त्रों को पूरा करो।

'इतने महत्त्वपूर्ण पूर्ण कार्य्य के लिए आपने मुझे चुना है, इसके लिए मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ।'—डोनाटेलो ने उत्तर दिया।

'मैं एक यंत्र बनाना चाहता हूँ, जिसके द्वारा कपड़ा, लकड़ी आदि पतली चीज़ों के मध्य से देखा जा सके और ठोस चीज़ों के पीछे की वस्तुओं को भी देखा जा सके।'— डिलरर कुछ आगे की ओर झुककर कह रहा था—लोग कहते हैं कि प्रकाश सदा सीधी रेखाओं में चलता है। उसका कम्पन ध्वनि के कम्पन के समान घूमकर नहीं आ सकता; किन्तु यह बात शत-प्रतिशत सत्य नहीं है। जब प्रकाश की किरणें एक घनत्व के पदार्थ से दूसरे घनत्व के पदार्थ में प्रवेश करती हैं तो वे मुड़ जाती हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर ऐसा यंत्र बनाया जा सकता है, जिसके द्वारा ठोस पदार्थों के पीछे रखी हुई वस्तुएँ भी देखी जा सकें।

'किन्तु पतली चीज़ों के मध्य से देखने की समस्या तो इस सिद्धान्त से हल नहीं होती।'—डोनाटेलो ने आपत्ति की।

'उसके विषय में भी बताता हूँ।'—डिलरर ने फिर कहना आरम्भ किया—उसके लिए दूसरे सिद्धान्त का आश्रय लेना पड़ेगा। विशेष प्रकार की प्रकाश की किरणें, जिन्हें हम एक्सरेज़ कहते हैं, कितनी ही अपार-दर्शक वस्तुओं में से होकर निकल जाती हैं। उसी प्रकार साधारण प्रकाश भी उन अपार-दर्शक वस्तुओं से आंशिक रूप में गुज़र जाता है; किन्तु हमारे नेत्र उसके द्वारा देख नहीं सकते। किन्तु एक ऐसा यंत्र तैयार किया जा सकता है, जिसे प्रभावित करने के लिए वह प्रकाश पर्याप्त होगा।

डोनाटेलो बहुत ध्यान-पूर्वक इन सिद्धान्तों को सुनकर समझने का प्रयत्न कर रहा था। सहसा उसके नेत्र चमक उठे। वह प्रसन्नता-मिश्रित आश्चर्य की ध्वनि में बोला—तब तो इस आविष्कार में सफलता मिल जाने पर मानव की वह स्थिति हो जायगी, जो उस समय थी, जब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह जंगलों और गुफाओं में बिल्कुल नग्न घूमा करता था। अपने शरीर के विभिन्न अंगों को ढँकने के लिए उसे नवीन आवरणों के आविष्कार करने की चिन्ता करनी पड़ेगी और जब तक वह अपनी चिन्ता को कार्य-रूप में परिणत नहीं कर लेगा, तब तक उसकी वही दशा रहेगी जो शायद 'गार्डन आफ़ ईडन' में आदम और हौवा की थी।

डोनाटेलो की इन बातों से डिलरर तिल-मिला-सा उठा। वह कदाचित् अशान्त होकर भर्राई हुई आवाज़ में बोला—इन सब बातों से न हमें कोई सरोकार है और न होना चाहिये। मैं तो केवल यह जानता हूँ कि यदि एक नये सिद्धान्त का पता लगना संभव हो तो उसके लिए हज़ारों मनुष्यों के प्राणों का मूल्य भी अधिक नहीं। और वह आवेश में आ सहसा कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया। यह देख डोनाटेलो सिहर उठा।

× × ×

डिलरर अकेला था, नितान्त अकेला! तीस वर्ष पूर्व उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी। वह निःसन्तान था, किन्तु उसने दूसरा विवाह नहीं किया। उसकी पत्नी बहुत ही सुन्दर थी और उसकी मृत्यु के बाद ही डिलरर ने अपना जीवन पूर्णतया विज्ञान को अर्पित कर दिया। उसी के सहारे वह पिछले ३० वर्षों से अपनी जीवन-नौका को बिल्कुल अकेला खे रहा था और किसी ने उसे उदास नहीं पाया।

× × ×

वृद्ध डिलरर के हृदय में नवयुवक डोनाटेलो के प्रति पुत्रवत् स्नेह उत्पन्न हो गया था। कुछ दिनों से डिलरर बीमार था। वह एक चारपाई पर लेटा हुआ था और डोनाटेलो उसके समीप ही कुर्सी पर बैठा एक भौतिक विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ रहा था। एकाएक डिलरर कुछ गम्भीर होकर बोला—डोना, मुझे तुमसे कुछ कहना है।

डोना ने पुस्तक चारपाई के एक कोने पर रख दी और बात सुनने के लिए प्रस्तुत हो गया।

'देखो, मैं चाहता हूँ कि तुम उस आविष्कार के उपयोगों को बन्द कर दो।'—उसकी आवाज़ में कम्पन था।

'आपने तो मुझसे एक बार कहा था कि मेरे जीवन की सबसे बड़ी साध उस प्रयोग को अपने जीवन-काल में सफल देखने की है।'—डोनाटेलो ने अपनी कुर्सी चारपाई के और निकट खिसका ली थी।

'हाँ कहा तो था; किन्तु...किन्तु...।'—डिलरर को कहने के लिए कुछ भी मिल नहीं रहा था, पर उसने अपना वाक्य पूरा किया ही—मानव की सभी साधें तो जीवन में पूरी नहीं हो जातीं। मैं चाहता था कि...।—और उसने टटोलकर डोनाटेलो का एक हाथ अपने जीर्ण-शीर्ण खुरदरे हाथों में ले लिया।

'आखिरकार आपको किस बात ने इतना शंकित कर दिया है?'—अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा और उससे भी अधिक मूल्यवान अपना सम्पूर्ण स्नेह, इन थोड़े-से शब्दों में उड़ेलकर, डोनाटेलो ने अत्यन्त नम्र तथा मधुर ध्वनि में पूछा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'नहीं, शंका की कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। किन्तु क्या तुम उस आविष्कार को छोड़ नहीं सकते ?'—उसके इस वाक्य के आरम्भ में घबराहट थी जो अन्त में कातरता में परिणत हो गई थी।

'यों तो मुझे आपकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य है; किन्तु उसे छोड़कर मुझे जीवन-भर अशान्त ही रहना पड़ेगा। फिर भी आप यह क्यों चाहते हैं कि मैं वह आविष्कार छोड़ दूँ ?' —डोनाटेलो ने फिर उत्सुकता के साथ पूछा।

'कोई खास बात नहीं है। तुम उसकी चिन्ता न करो।'—डिलरर ने अपनी गर्दन और ज्योतिहीन नेत्र बराबरवाली विज्ञानशाला के उस कोने की ओर घुमाये, जिसमें मेज पर वह संगमरमर की मूर्त्ति रखी हुई थी। एकबारगी ही उसका सर्वाङ्ग काँप उठा और वह अपने हाथ फैलाकर डोना के सिर तथा कन्धों पर फेरने लगा।

× × ×

डोनाटेलो विज्ञानशाला में एक मेज के समीप खड़ा होकर प्रयोग कर रहा था। थोड़ी दूर पर डिलरर एक आरामकुर्सी पर बैठा हुआ था। तभी डिलरर ने पूछा—कितना कार्य्य अभी शेष है?

'यंत्र पूरा बन गया है, केवल आखरी लेंस बनाना बाकी है।'

'क्या डाइनेमो द्वारा आवश्यक वोल्टेज की विद्युत-शक्ति उत्पन्न करने में सफलता मिल गई ?'

'जी हाँ ! वोल्टेज तो उससे अधिक भी बढ़ाया जा सकता है।'

'उससे अधिक की आवश्यकता शायद नहीं पड़ेगी। डाइनेमो के कनेक्शन्स यन्त्र से ठीक हो गये हैं ?'

'सब ठीक हो गये, केवल उस लेन्स ही की कसर है।'—डोनाटेलो की आवाज़ में व्यग्रता तथा उत्सुकता थी।

'देखो, बिना उस लेन्स के यंत्र द्वारा देखने का प्रयत्न मत करना।'

'सिद्धान्त तो कहता है कि इतने बड़े यंत्र से बिना लेन्स के भी देखा जा सकता है।'

'देखा तो जा सकता है, किन्तु अच्छा यही होगा कि लेन्स तैयार कर लिया जाय। एक खास बात के लिए वह लेन्स आवश्यक है। बिना उसके नेत्रों को हानि पहुँच सकती है।'

इतने ही में डोनाटेलो के नौकर ने आकर कहा—लिनले आ गई हैं। आज ही जहाज से प्रातःकाल उतरी थीं।

'क्या अपने इसी पासवाले मकान में है ?'—डोनाटेलो ने अपनी व्यग्रता छिपाने का निष्फल प्रयत्न किया।

'जी हाँ ! वे बहुत कमजोर हो गई हैं, देखने में बहुत दिनों की बीमार-सी प्रतीत होती थीं।'

न जाने कितने वर्षों की सैकड़ों स्मृतियाँ, विद्युत-रेखा के समान, क्षण ही भर में उसके मस्तिष्क में चमक गईं। लिनले से वह बाल्यकाल से ही परिचित था। लगभग चार वर्ष पूर्व वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमेरिका चली गई थी। उसे ज्ञात हुआ था कि वहीं उसका विवाह भी हो गया है। लम्बे अर्से के बाद वह लौटकर आई है।

डोनाटेलो ने हाथ का यंत्र रख दिया। और एक बटन दबाकर सरसराहट की ध्वनि के साथ तेज़ घूमते हुए एक पहिये को बन्द कर दिया।

तभी डिलरर ने पूछा—क्या बात है?

'कुछ नहीं।'—डोनाटेलो का संक्षिप्त उत्तर आया।

'देखो थोड़ी ही देर का तो कार्य्य रह गया है, उसे समाप्त कर लो, तब कहीं जाना।'—डिलरर ने कहा।

'अच्छा' कहकर डोनाटेलो ने बड़े डाइनेमो का पहिया चालू कर दिया और कार्य्य में लग गया।

थोड़ी देर बाद उसके हाथ रुक गये, जैसे उसका ध्यान कहीं और चला गया हो। वह समीप की खिड़की के सामने आ खड़ा हुआ। सामने ही लिनले के घर का द्वार था। द्वार पर एक पर्दा पड़ा हुआ था।

उसने चुपचाप यंत्र उस ओर घुमाया और दो-तीन और पहिये चलाकर उसमें देखने लगा। उसने देखा—लिनले खड़ी है। यंत्र में से उसे वह निरावर्ण दिखाई दी। बिल्कुल निरावर्ण और उसका (लिनले का) दूधिया गुलाबी चेहरा पीला पड़ गया था।

तभी डोनाटेलो को प्रतीत हुआ मानो उसके नेत्रों के सामने अँधेरा-सा आता जा रहा है। हड़बड़ाकर उसने यंत्र नेत्रों से हटाया और देखा कि उसके चारो ओर घुप्प अँधेरा है। बिल्कुल घना अँधेरा ही अँधेरा ! उसे और कुछ भी दिखाई नहीं देता था। एक चीख़ उसके मुख से निकल गई और यंत्र का छोटा काँचवाला भाग उसके हाथ से झन्न से गिरकर चूर-चूर हो गया।

तभी डिलरर ने हड़बड़ाहट के साथ घबराकर पूछा—क्या हुआ?

'मै अन्धा हो गया।'—पागल की भाँति अपने हाथ नेत्रों के सम्मुख फिराते हुए उसने कहा—मैं अन्धा हो गया ! और जैसे ही वह अपने स्थान से हटने का प्रयत्न करने लगा, समीप रखा दूसरा यंत्र उससे टकराकर गिरा और क्षण भर में चूर-चूर हो गया।

'सब कुछ समाप्त हो गया !'—डिलरर ने निराशा-भरे गहरे स्वर में कहा। और वह कुर्सी से उठकर उसी मेज के सामने जा खड़ा हुआ, जिस पर वह संगमरमर की मूर्ति रखी हुई थी।

'तुम कहते थे कि मेरा आविष्कार मानवता के लिए अभिशाप होगा और आज एक और बलि देकर भी मैं उसका विरोध करता हूँ। तुम मुझे क्षमा न करो; पर ज्ञान की खोज के लिए तुम ऐसी बात कह कैसे सके? वैज्ञानिक का काम सत्य का अनुसंधान करना है।'—उसने एक गहरी साँस ली और अन्धे डोनाटेलो का हाथ पकड़कर वह बोला—डोना, हम असफल नहीं हुए हैं।

देहरादून।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् बुद्ध : दो जीवन-चित्र

[प्रभागचन्द्र शर्मा]

[एक]

आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व हमारे देश में ? नहीं समस्त भू-मण्डल में एक दिन असुन्दर ने सुन्दर पर चढ़ाई की थी, अन्धकार ने प्रकाश को पराजित किया था—

भगवान् बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण का समारोह रचा था। अवश्य ही वह असुन्दर, चर्म-चक्षुओं का असुन्दर था। वह अन्धकार, दृष्टि के तेज की तेज-हीनता का अन्धकार था, तो भी बात कुछ ऐसी-सी ही थी।

मानते हैं, सिद्धार्थ की पूर्व-संस्कारित परम साधना की मशाल उसके अन्त-दर्शन से सटकर ठीक आगे-आगे चल रही थी। उन्नत मन की अतृप्त जिज्ञासा अभाव की जड़ झकझोरते हुए, जैसे अप्राप्य को पकड़ बाँधने में बैचेन हो उठती है, उसी तरह गौतम ने जाना कि यह जो राजशाही जीवन बिताया जा रहा है, यह जो सुन्दर का सम्मोहन सजाया जा रहा है, जीवन का यथार्थ नहीं, मानवता का सत्य नहीं। यह तो जीवन की पाठशाला की छुट्टी का दिन है। वह छुट्टी का दिन जो बहुत-बहुत लम्बा है और जिसका कभी अन्त भी शायद न हो। तो फिर ऐसी पाठशाला में सीखना-पढ़ना कैसे होगा ? यह प्रश्न उठा, —सिद्धार्थ का बुद्ध चुपके से कान में कह गया, खोल गया विश्व-रहस्य का मर्म धीरे से कि अरे ! यह देख इस आस-पास फैले हुए प्रकाश से भी अधिक उजेलेवाला अँधेरा पथ—वैराग्य ! निर्वाण !! वहाँ प्रकाश है, वह प्रकाश जहाँ अँधेरा होता ही नहीं।

अब अन्धकार प्रकाश को पराजित किया चाहता था। महात्मा गौतम उठा—मन्दार-मल्लिका के पुष्प-सौरभ की मोहनी सुगन्धि से व्याप्त राजप्रासाद से अपना शयन-गृह सदा के लिए छोड़ने। उसे जैसे भविष्य-वाणी की तरह सुन पड़ा—अरे ओ फूल-सी देह और सुगंधित-सी श्वासवाले, तेरा घर रिमझिम-रिमझिमवाली वर्षा में नहीं, बाढ़ पर है।

सुरम्य सेज से नीचे उतरते-उतरते सिद्धार्थ का स्वयं निर्वासित महान, महर्षि हो उठा। फर्श के स्फटिक रो उठे; 'क्या हमी अभागे इस चहारदिवारी से बाहर विदा देने को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनके चरण अपनी छाती पर सम्हालेंगे ?' सिद्धार्थ के कोमलांग सुहलानेवाले सेज-पुष्प कठोर हो उठे; 'हमारी दिग्विजयिनी कोमलता का यही अस्तित्व ?' राजमहल के षटकोण में बँधी पड़ी सड़ रही छहों ऋतु प्रकृति की परम सत्ता के बल पर घृणा से तेवर चढ़ा बैठीं। राज्य का समस्त वैभव उस क्षण आनन्द बखेरता, खिलखिलाता शयनागार की देहरी पर आ डटा—इस गर्व में कि देखें कौन सूरमा हमें पराजय दे।

रात्रि का तृतीय चरण, बीतते हुए समय की पीठ पर था। वायु का स्पन्दन शुरू था। वृक्ष के पत्ते सिहरने लगे थे। नीलकण्ठ और कौए दोनो ही अपने शकुन-अपशकुन की सुधि बिसारकर अपने नीड़ों में करवटें बदल रहे थे। हंस और मराली बड़ी सुबह अपने मानसरोवर से कुशल नेक पूछने जाने को बेचैन थे, चकोर और कोकिल दोनो प्रणयोन्माद की अग्नि से तप्त अपनी कुहुक और चुप्पी का मुहूर्त ताक रहे थे कि इसी क्षण महोदधि ने अपना रत्नापूरित ही-तल उभाड़कर—'वैराग्य का प्रथम पाठ मुझे याद है, याद है', यह सूचना दी। इधर अखिल ब्रह्माण्ड में प्रकृति अपना रंग-बिरंगा साज सजा रही थी, उधर अखिल ब्रह्माण्ड का स्वामी शयन-गृह में सेज पर बैठे जीवन के रंग-बिरंगे साज छोड़ने की तैयारी कर रहा था। असुन्दर ने सुन्दर पर चढ़ाई जो की थी। समय ने सोचा, अब यदि विलम्ब हुआ; मैं कलंकित हो लूँगा। समय ने अपनी दूतिका वायु को आज्ञा दी—जाओ सिद्धार्थ से कह दो, सोच-विचार यदि किया तो समय बीत चुका होगा। वायु दौड़ी। राज-प्रसाद की आजू-बाजू छूती, महल के सामने बगीचे में लगे लता-पत्रों को साक्ष्य के लिए जगाती, कंगूरे चूमती, जीने के पत्थर झाड़ती, अन्दर के शयनागार के बाहिरी दरवाजे तक पहुँची। अरे यह क्या ? राज्य का समूचा वैभव देहरी पर डटा हुआ। वायु ने पूछा। वैभव ने उसके मुँह से मुँह सटाकर 'क्यों' की ध्वनि अपने ही में पी जाने के लिए चुप रहने का संकेत किया। राजकुमार मौलिक प्रश्नों के विराट कुतूहल पर असफल तर्क के इसी 'क्यों' के जवाब में उलझे हुए हैं। यदि तुम्हारा यह 'क्यों' भी उन्होंने सुन लिया तो अपने 'क्यों' के सुलझाने की और उस 'क्यों' के उत्तर देने की उनकी संलग्नता टूट जायगी और सेज छोड़कर उठ चलेंगे। देवि, हम पर रहम करो, वैभव की पराजय दुनिया के आगे विधाता की पराजय समझो। हमने अपनी लाख भुजाएँ फैलाकर सिद्धार्थ को जकड़ा था; पर वे सारे आबन्ध उसने तोड़ दिये। अब केवल हमने प्राण, मोह को इस महासंग्राम में छोड़ रखा है। बस उसकी 'क्यों' ऐसी विचित्र और सुदीर्घ है कि उससे छुट-कारा राजकुमार को कठिन हो रहा है। वायु ने सब सुना और बड़े ज़ोर से हँसना चाहती थी कि उसे एक बात याद आई—अजी, जरा इस अज्ञानी, विवेकशून्य, अकर्मण्य से पूछूँ तो कि कौन-कौन-से 'क्यों' अब तक तुम्हारे प्राण पूछ चुके और राजकुमार ने उन सब का जवाब क्या-क्या दिया ? अपना यह प्रश्न पूरी तरह कह भी न पाई थी कि किसी ने शयन-गृह के भीतरी द्वार खोले। बिजली की तरह इस विचार ने उसे करारा थप्पड़ जमाया और कहा—बावली, समय की दूतिका होकर मनोरञ्जन और किसी के जीवन-रहस्य जानने में इतनी कमजोर ? इतने ही में बाहिरी द्वार को धक्का लगा, वायु भी आगे बढ़ी, यही दिखाने कि वह समय का सन्देशा सीधे राजकुमार को सुनाने बड़ी तेजी से भागी जा रही है। मोह पराजित-सा मुँह लटकाये, बाहर आ रहा था; बस फिर क्या था, वैभव के पैर उखड़ने लगे। चारो कपाट बड़े ज़ोर के झटके के साथ खुल पड़े!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजकुमार सम्पूर्ण विरागोन्मुख हो महाभिनिष्क्रमण के लिए सेज छोड़ चुका था।

[दो]

जेठ की धधकती दोपहरी में उस दिन कपिलवस्तु के बाल, युवा और वृद्ध नर-नारियों ने गरम लू की लपट के कारण बन्द अप-अपने मकानों के अन्दर सुना—आज अभी हमारे महाराजकुमार नगर-निरीक्षण को निकल रहे हैं। बीमार, दुखी, पीड़ित, गरीब, कंगाल, मजलूम, वृद्ध, कोढ़ी, अन्ध, बधिक, अशक्त कोई सड़क पर न रहे। और हाँ, जब तक रात न हो जाय, न कोई मुर्दा जलाया जाय। स्मरण रहे राजा शुद्धोधन का यह फर्मान है।

लोगों ने यह राजाज्ञा बड़े विस्मय किन्तु हर्ष के साथ सुनी। सौन्दर्य-पुंज राजकुमार सिद्धार्थ के पुण्य छवि-दर्शन की शीतलता की कल्पना-मात्र से गर्मी की असह्य व्यथा का भाव लोग भूल गये और बात की बात में देखा—सड़कें सुगन्धित वारि से सिंच गईं, राजकुमार के रथ-पथ पर अनिर्वचनीय उल्लास और लोचनाभिराम सौन्दर्य विवश फिरने लगा। दरवाजों, छतों, खिड़कियों, छज्जों सब जगह कुल-वधुएँ चन्दन, अक्षत, पुण्यभास लिये आँखों और अधरों में स्वस्थ मुसकान समेटे जमा होने लगीं। कपिलवस्तु की कुमारिकायें अपने गृह-द्वारों पर अंचल की ओर आरती सँजोये राजद्वार तकने लगीं। बड़ी धूमधाम, गड़गड़ाहट और जय-जय ध्वनि के साथ सिद्धार्थ का इन्द्रधनुषी रथ दीख पड़ा।

दो बरफ जैसे सफेद दिव्य बैल रथ खींच रहे थे। उनके गले में ढीली ल उठी थी। उनकी पीठ पर की रेशमी झूलन के बीच से उभरी हुई उनकी पुष्ट खन्दोल हौले-हौले खूब मद-मस्त हिल-डुल रही थी। एक अजीब समा वातावरण में गुँथ चला।

अनंत वैभव के उस कैदखाने में जहाँ स्वयं प्रेम जेलर का काम कर रहा था, राजकुमार सिद्धार्थ वह आनन्द न पा सके, जो आज कपिलवस्तु की डगर-डगर से उठकर उसके अन्तःकरण को गुदगुदा चला। यह सच है कि राजप्रासाद में महाराजा शुद्धोधन ने राजकुमार के विनोद की सब सामग्री एकत्र कर दी थी।

× × ×

शुद्धोधन, कुमार की जन्मकुण्डली के आधार पर यह जानते थे पहले से ही कि 'राजभोग से विराग' का इसका ग्रह प्रबल है। अतः उसने सिद्धार्थ के लिए प्रासाद भी अद्वितीयता के साथ ही सेवा-टहल के लिए परम सौन्दर्यवती परिचारिकाओं का प्रबंध किया था। और उन्हें आदेश दिया गया—मधुर बोलो, हँसमुख रहो, बिना कहे आज्ञा-पालन करो। नृत्य-संगीत और मदिरा की मस्ती के वातावरण से राजकुमार का महल एक क्षण के लिए सूना न रहे। प्रासाद की परिचारिकाओं, नर्तकियों को राजाज्ञा थी कि नाचते समय तुम्हारे पैर मन्द न पड़ें। तुम्हारे आकर्षक भाव में शिथिलता न आने पाये। और सुनो, यह न हो कि भोर में सोकर जागने पर राजकुमार कुम्हलाये फूल, मुरझाई पत्तियाँ या अन्य कोई उदास संकेत अपने आस-पास पा लें। अतः उधर जब राजकुमार सोने को होते तो वे प्रणय-मन्त्रिणी परिचरिकायें सुखी सिद्धार्थ की उनींदी आँखों पर पंखा झलने लगतीं और इधर जब राजकुमार सोकर जागते तो उनका शयन-गृह वीणा के स्वर और नर्तकियों की छूम-छनन से ध्वनित हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उठता। गौतम को समय ही न दिया जाता कि वे आनन्द के परे कुछ सोचें।

× × ×

इतना होने पर भी कपिलवस्तु की प्रजा का उमड़ता हुआ स्नेह-सागर गौतम को उद्वेलित कर उठा। बन्दनवार, तोरण और तुलसी क्यारों से सजे घर के प्रमुख द्वार मानवता के विभिन्न मूर्त-चित्रों से भरे थे। सिद्धार्थ ने देखा, उसकी प्रजा, आज अबीर, गुलाब, पुष्प, अरगजा, गुलाबजल आदि उस पर बखेर रही है। कुमार ने जाना; मेरे चरणों में लोटनेवाला वैभव, मेरे महल का अलौकिक सौन्दर्य इस असीम विश्वोद्यान के वसन्त की एक झलक की भी समता नहीं रखता।

× × ×

'महाराजा की जय!'—एक ध्वनि आई। कुमार ने सब ओर नजर समेटकर देखा—एक अर्ध-नग्न, काला-कलूटा, असुन्दर बालक दोनो हाथों में गुलाब के फूल लिये रथ के बाजू से दौड़ा आ रहा है। बच्चा नजदीक आया और आनन्द की एक किलकारी के साथ फूल सिद्धार्थ पर फेंक गया। राजकुमार को न जाने क्या हो गया। जोर से चीख पड़े—सारथी! लाओ उस लड़के को मेरे पास लाओ। लड़का लाया गया। रथ पर बैठाल दिया गया। लड़का काँप गया। लड़के के मा-बाप भयभीत हो गये। हे प्रभु! न जाने कौन-सा अपराध इस बदबख्त से हुआ। क्या जाने क्या दण्ड भोगना पड़ेगा? एकत्र जनता में इस घटना की यह भाव-धारा फैल रही थी कि लोगों ने देखा—राजकुमार बालक को गोद में लिये उसे प्यार कर रहे हैं। इस अवांछित कार्य की खबर बिजली की तरह राजा शुद्धोधन के पास पहुँच गई। वे घबराये—लौटा दो कुमार का रथ राजमहल की ओर। अब यदि शहर के किसी नये भाग में उसे घुमाया गया तो शायद और कुफल पैदा हो जाय। राजदूतों ने राजाज्ञा का पालन करना चाहा कि सिद्धार्थ बोल उठे—मुझसे महल अधिक लुभावना है, महल से मेरा नगर अधिक आकर्षक है, और नगर से आज यह विश्व अधिक मनोहारी दीख रहा। हाँ पहले नगर-निरीक्षण पूरा कर लूँ, फिर विश्व-निरीक्षण किया चाहता हूँ।

'सारथी, रथ अभी वापस राजमहल न जायगा। चलो, चलें, चलो; राजद्वार के बाहर नजदीकी ग्राम में झोपड़ों की ओर बढ़ो।' और लो रथ चला। थोड़ी ही दूर चलकर सिद्धार्थ ने काँपते स्वर और लड़खड़ाती जबान में एक कराह सुनी—

'ऐ! दयावान लोगों दया करो,
मैं आज या कल में मर जाऊँगा!'

गौतम चौकन्ने हो गये यह आर्त-वाणी सुनकर। पूछती-सी आँखों से ज्योंही उन्होंने अपने दायें-बायें देखा तो देखा कि झुकी कमर और धँसी आँखोंवाला एक जीर्ण जरा-पुरुष जीवन-भार खेता-ठेलता अनन्त समय-सागर में बहा चला आ रहा है।

बस बुद्ध अब अपने को न रोक सके। राज-रथ छोड़ वे परम रथ पर आरूढ़ होने रथ से उतर पड़े! पथ के प्रबन्धकों में गड़बड़ मच गई। प्रहरीगण दौड़े उस बूढ़े को सामने से एक ओर करने को। राजकुमार आगे आ गये। मत रोको, मत रोको, आने दो उसे मेरे पास।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धार्थ नहीं जानते थे कि मानव-जाति का यह भी कोई रूप है। कारण ? उन्होंने अब तक सौंदर्य देखा था। यौवन देखा था, गान सुना था, रुदन वे न सुन पाये थे। दुःख की पहचान न कराई गई थी, जरा वे न जानते थे, कुरूपता का संकेत तक उनसे दूर रखा गया था। फिर भला गौतम का विस्मित हो सारथी से यह पूछना—क्या आदमी कभी ऐसे भी पैदा होते हैं ? सार्थ कहो ? अरे बताओ, 'आज या कल मर जाऊँगा' इसका क्या अर्थ हुआ—कोई आश्चर्य की बात नहीं। सारथी ने झुककर नम्रता से जवाब दिया—प्रिय राजकुमार, यह और कुछ नहीं, एक वृद्ध पुरुष है। कुछ वर्ष पहले इसकी पीठ सीधी थी, आँखें तेजमय थीं, शरीर सुन्दर था; लेकिन चोर समय ने इससे बेजाने ही सब कुछ चुरा लिया नाथ !

'तो क्या यही सबका होगा ? मेरा भी होगा ? यशोधरा का अपूर्व सौन्दर्य भी ऐसा बन चुकेगा ?' बुद्ध ने पूछा—और लो, उनके जीवन का दूसरा अध्याय भी समाप्त हो गया। असुन्दर ने सुन्दर पर विजय दिलाकर सिद्धार्थ को गौतम बनाया। अब विराग ने वैभव को विदा कर गौतम को बुद्ध बनाने का सामान एकत्र कर दिया।

सपडवा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मर री जीवली बाई !

[दुर्गेश शुक्ल]

[अनु० इन्द्र वसावड़ा]

[गुजरात के नये कहानी लेखकों में श्री दुर्गेश शुक्ल का नाम कुछ समय में ही जनता के सम्मुख आ गया है। कला, मानवता और वास्तविकता आपकी कहानियों की विशेषताएँ हैं। आपके दो कहानी संग्रह 'पूजाना फूल' (पूजा का फूल) और 'छाया' प्रकाशित हो चुके हैं।—सं०]

अहमदाबाद स्टेशन पर पैर रखते ही जीवली के होश गुम हो गये।

इतने लम्बे-चौड़े शहर में उसके दुबले-पतले पैर कैसे चल सकेंगे ? शहर के शोरगुल में कौन उसकी आवाज़ सुनेगा—ए घट्टी लो घट्टी अ...खिलौने लो...खिलौने...अ।

धक्कामुक्की में खिलौने से भरी अपनी टोकरी को सँभालने का प्रयत्न करती जीवली बड़बड़ाने लगी—ऊँह। यह शहर है या नरक ? मुझे भी इस बुढ़ापे में क्या सूझा ! किस *जलम की रोटियाँ बाँधने आई हूँ यहाँ ? जीवली ! मेरे तो भाग फूट गये भाग—मेरी बाई !

जीवली की यह शिकायत बिलकुल ठीक थी। सच कहें तो यहाँ आने में जीवली का कुछ भी कसूर न था। वह तो सिधपुर गाँव की गलियों में सिर पर टोकरी धरे घूमा करती थी और अपने खिलौने बेचा करती थी—ए घट्टी ले घट्टी अ···घोड़े ले घोड़े···अ—मिट्टी के खिलौने···अ···।

जो कुछ मिल जाता उसी में जीवली सन्तुष्ट रहती। साफ-साफ कहनेवाली जीवली को सभी विषम परिस्थितियों में आनंदित रहने की आदत-सी पड़ गई थी। इन तीस वर्षों से खिलौने बेचती जीवली को गाँव का बच्चा-बच्चा जानता था; सारा गाँव उसके विनोदी स्वभाव से परिचित था। छोटे-छोटे बच्चों को खिलौने दिखा, जीवली उन्हें खरीदने के लिए प्रोत्साहित करती, और जब कोई मा-बाप पैसा देने से दिल चुराते, तो बच्ची के हाथ में खिलौना रख वह चुपचाप चल देती।

---

* जन्म

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर जीवली को अहमदाबाद जाकर खिलौने बेचने की बात सुझानेवाला तो जापानी खिलौनों का व्यापारी अब्दुल्ला था। उस दिन की बात है। जीवली उसकी दुकान के पास से गुज़र रही थी कि अब्दुल्ला ने कहा था—

अरी ओ जीवली ! ए! इस प्रकार धेले-पाई-पैसे के खिलौने बेचने से तेरा क्या होना है ? इस प्रकार तो मरते दम तक तेरे पास टके नहीं जुड़ेंगे, समझी ?

'न जुड़े तो न सही' जीवली ने उत्तर दिया—यहाँ कौन है पीछे खाने-पीनेवाला जो टके जोड़ूँ ? करे इकट्ठा जो भूखा हो ! मुझे क्या ! दो जून बाजरी के टिक्कड़ मिल जायँ, उसी में चैन है।

'मर री जीवली !' हँसकर अब्दुल्ला ने कहा—अरी, बीमार होकर एक कोने में पड़ी होगी, तब तेरी देख-भाल करने कौन आयेगा। एँ ? गाँठ में दो पैसे होंगे तो कोई रिश्तेदार भी आयेगा। वरना कौन पूछता है आज ? बेंचा और खाया, इसमें क्या धरा है मेरी बहन ?

जीवली सोचने लगी—आख़िर अब्दुल्ला की बात है तो सच ! बुढ़ापे में कौन पूछेगा उसे ! दो पैसे रहेंगे तो कोई अरथी उठाने आयेगा। वरना कौन पूछनेवाला है उसे ? सब स्वारथ के सगे हैं भैया !

जीवली ने कहा—हो। पर हम और करें भी क्या ?

'करें क्या ? अहमदाबाद जा, अहमदाबाद !'

'अच्छा ?'

'हाँ !'

'कैसे जाऊँ ?'

'कैसे क्या ऐसे ? तकस * निकाल के। दस-बाहर आने तो दिन के यूँ कमायेगी। यूँ !'

'दस आने ?'—जीवली साश्चर्य पूछ उठी।

'हाँ।'—अब्दुल्ला ने कहा—अरी ओ ! देख तो ! आजकल तो वहाँ मातमा गाँधी का राज चल रहा है, मातमा गाँधी का। वहाँ के लोग-बाग जापानी खिलोने तो छूते तक नहीं। तेरे खिलौने हैं देशी—यूँ बिकेंगे यूँ !

धेले-पैसे का एक खिलौना बेचनेवाली जीवली को अब्दुल्ला की बात में विश्वास हो गया। बस ठीक है। चलना चाहिये।

दो आने देकर रामशंकर उपाध्याय से मुहूर्त ठीक करवाया, और एक दिन सुबह, जीवली अहमदाबाद के लिए चल दी। साथ लिया एक बड़ा-सा टोकरा, जिसमें ख़ास शहर के लिए बनाये गये खिलौने सजाकर रखे थे। अपनी साड़ी के छोर में अपनी आज तक की पूँजी बाँधी और चल दी—जीवली चल दी अहमदाबाद, अपना भाग्य आज़माने।

किन्तु अहमदाबाद के स्टेशन पर आते ही उसका हृदय बैठ गया। इत्ता बड़ा शहर!

---

* तकस—टिकट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाप रे बाप! और अब्दुल्ला की बात तो स्टेशन पर ही झूठी साबित हुई। भाँति-भाँति के खिलौने से भरी लारियाँ प्लेटफार्म पर दौड़ रही हैं; और लोग खरीद भी रहे हैं। कौन बेचारी जीवली के ये पुराने जमाने के खिलौने लेगा? बुढ़ापे में, इतना लम्बा सफर करके, शहर में आनेवाली जीवली निराश होने लगी।

इन्हीं विचारों में तल्लीन, भौंचक्की-सी जीवली चली जा रही थी कि पीछे से कुली के शब्द कान पर पड़े।

'ए! डोकरी! बीच में से हट!'—चौंककर जीवली एक ओर खिसक गई। कुली को दो-चार खरी-खरी सुना देने की इच्छा उसे इस अनजान वातावरण में पैदा न हुई। सिधपुर में अगर कोई इस प्रकार उसे बुलाने की धृष्टता करता तो जीवली उसे अपने पुरखों की याद दिला देती और सुनाती—मुए! तेरी मा डोकरी। तू डोकरा! जीवली तो बारह बरस की लड़की है, लड़की! समझा? पर यहाँ तो मानो जीवली की ज़बान बंद हो गई थी। मन ही मन बोल उठी—

'मर रे जीवली! तू तो एक ही दिन में बुड्ढी हो गई, मेरी बाई!'

टिकट देकर, जीवली स्टेशन से बाहर आ गई। गाड़ीवालों ने उसे आ घेरा और पूछने लगे—

'किधर जाना है माजी?'

'टेसन से भद्र, एक आना, एक आना' की आवाज़ सुनकर, जीवली उस ओर बढ़ी और एक मोटर बस के पास आकर खड़ी रही। देखा, लोग भीतर घुसने में लगे हैं। खुद भी चढ़ने लगी, पर धक्कामुक्की में मुश्किल से भीतर पहुँच सकी। देखा तो बेंचों पर लोग डटे हैं; उसके लिए कोई जगह नहीं। वह नीचे ही फर्श पर बैठ गई।

यह दृश्य देखकर सब लोग हँसने लगे। जीवली यह सह न सकी, एकाएक खड़ी हो गई। टोकरी उठाकर नीचे उतरी और पीछे की दूसरी बस में जाकर बैठ गई। जीवली को सामने की बस में से नीचे उतर अपनी बस में आते देख, कन्डक्टर पूछने लगा—

'कैसे उतर आईं उस बस में से माजी?'

'मुँए ने उतार दिया बेटा!'

'क्यों?'

'ए बुड्ढी डोकरी को कुण रखे बेटा? मैं जवान थोड़े ही हूँ अब?'—जीवली ने मज़ाक में हँसते हुए कहा। कन्डक्टर भी हँसने लगा और बोला—

'कहाँ से आना हुआ?'

'सिधपुर से बैटा! दो पैसे कमाने आई थी; पर शहर देखकर वह आशा तो चली गई। शहर के लोग मेरे ये घोड़े-हाथी पसन्द करेंगे, ऐसा दिखाई नहीं देता। न जाने कैसे वहाँ से चली आई। भाग्य की बात है भैया!'—जीवली ने अपने ललाट पर मुरझाये हाथ को रखकर कहा—हे बेटा! यहाँ गान्धी के लोग किधर रेवे?

'शहर बाहर! बड़े-बड़े आलीशान बँगलों में।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अच्छा ?'—आशापूर्ण हृदय से जीवली ने कहा—उनके बाल-बच्चे विलाती खिलौने नहीं लेते न ?

कन्डक्टर और दो-चार लोग हँसने लगे। एक ने पूछा—

'डोकरी ! लड़का-वड़का है ?'

'नहीं बेटा ! कुछ भी नहीं।'

'तो फिर यह माथापच्ची किसके लिए कर रही है ? क्यों कर रही है ? यहाँ पर घूम-घूमकर मर जायगी; पर ये तेरे खिलौने बिकनेवाले नहीं। समझी ?'

जीवली की आशा की मीनारें ढह गईं।

उसे अब लगने लगा, अब्दुल्ला ने उसे धोखा दिया। उसके खिलौने नहीं बिकेंगे। अरे, किसी के लिए कमाने की आवश्यकता नहीं। वह तो अब बूढ़ी हो चुकी, ये सब बातें उसे तीर की तरह चुभने लगीं। जीवली इन आघात-प्रत्याघातों से सिहर उठी।

भूत के दुःखद स्मरण उसके सामने नाचने लगे और उसे विकल करने लगे। उसे याद आये अपने यौवन के दिन, जब वह यौवन में मस्त इठलाती फिरती थी और बहुतों को उसने मोहित किया था। वह जवान ! कितना खूबसूरत ! और उन दोनो की शादी हुई। वे सुख के दिन ! पर नहीं, वे अधिक न टिक सके। एक फूल-से सुन्दर बालक को छोड़ उसका पिता उसे अकेली छोड़कर चला गया।

...और...और फिर ? अपने टोकरे में एक ओर खिलौने और दूसरी ओर चादर में लिपटे अपने बालक को रखकर सारे गाँव में वह घूमा करती और चिल्लाती—

'ए घोड़े लो, घोड़...अ ! खिलौने मिट्टी के खिलौन...!'

रोटी के बदले खिलौने देती, उससे अपना पेट भरकर अपने नन्हे बालक को गले से लगा, उसका मुख चूमकर वह दिन बिता देती।

पर विधाता को यह भी न रुचा। बच्चा बीमार पड़ा और जीवली के अपार परिश्रम के बाद भी वह न बचा। माता को छोड़कर चल बसा। मानो जीवली का सर्वस्व लुट गया।

फिर तो वह यंत्रवत् बन गई। देह को निभाना है, इससे खिलौने बेचती और जो कुछ मिल जाता, उसी से पेट भरती। इस प्रकार तीस वर्ष बीत गये। काल-प्रवाह के साथ वह अपना दुःख भी भूल गई। यहाँ तक कि उसका विनोदी स्वभाव औरों के दुःख को भी हलका करने लगा।

किन्तु इस समय उस बसवाले और उन महाशय की बात उसे चुभ गई। सुबह से धक्के खाती, निराश और व्यथित, अब्दुल्ला से वंचित जीवली को यह बात चुभ जाय, यह अत्यंत स्वाभाविक था।

जीवली बड़बड़ाने लगी—मुई मैं भी ! इस बुढ़ापे में पैसे कमाने निकली हूँ। करम फूट गये करम, जीवली बाई, तुम्हारे तो ! तेरा कौन है जो कमाने निकली है ? जो था वह तो चल बसा। मर रे जीवली ! तू तो अपने बुढ़ापे को भी जला देगी। जीवन में अब कौन-सा सुख लूटना है मेरी बाई !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भद्र आते ही बस खड़ी हो गई। जीवली ने अपने विचारों को समेटा और टोकरा उतारकर नीचे उतर पड़ी। बड़े-बड़े रस्ते, मोटर गाड़ियों की दौड़-धूप—कितना बड़ा शहर है? कैसे वह पुकार-पुकारकर अपने खिलौने बेचेगी?

पेट में भूख लगी है। कुछ खाना चाहिये। गाँठ में बँधे पैसों से पेट भरना पड़ेगा। सामने ही एक होटल दिखाई दी। फुटपाथ पर बैठकर चाय और सेवड़े लेकर वह खाने लगी।

खाते-खाते सोचने लगी—होटलवाला सेठ चाय के पैसों के बदले में दो-एक खिलौने क्या न ले लेगा? ले तो कितना अच्छा? क्यों न लेगा? ज़रूर लेगा। ऐसे सुंदर घोड़े-हाथी बाल-बच्चे देखकर ख़ुश हो जाँयगे, नाच उठेगें। जीवली मन ही मन बोल उठी—पूछकर देख न ले। पूछने में कौन टके लगते हैं?

चाय का प्याला और रकाबी लेकर लड़के ने कहा—ए! पाँच पैसे!

'ले बेटा! ये दो खिलौने हैं। गरीब औरत मैं पाँच पैसे कहाँ से लाऊँ? ले तेरी मेहरबानी...'

'ए। डोकरी! ऐसा नहीं हो सकता। पैसे निकाल, पैसे।'—लड़का बोला और अपने मालिक की ओर मुड़ा—देखिये सेठजी! यह बुढ़िया पैसे नहीं देती।

एक मैली-सी मेज़ के पास बैठा एक मोटा-सा मैला आदमी चिल्लाया—नहीं देती? एँ! क्या कहा? नहीं देती? ए डोकरी! पैसे निकाल!

जीवली ने विनय-पूर्वक, कातर स्वर में कहा—

सेठजी, ये दो खिलौने ले लो। घर जाकर बच्चों को दोगे तो खुश हो जायँगे।

न जाने क्यों, पर बच्चों का नाम सुनकर सेठजी आग-बबूला हो गये। मेज़ पर से उठे और उस लड़के को पकड़कर चार-पाँच धौल जमा दिये। इस असाधारण आक्रमण से लड़का घबरा गया और सेठजी का हाथ छुड़ाकर भाग निकला। सेठजी हाँफते-हाँफते चिल्लाने लगे—कम्बख्त शैतान के पिल्ले! मेरा मज़ाक! मेरा? मार डालूँगा। कच्चा चबा जाऊँगा। तेरी ज़बान खींच लूँगा। मेरा मज़ाक! बीवी नहीं है तो मेरी नहीं है, मुझे नहीं है। तुझे इससे क्या पाजी! हरामख़ोर! दो कौड़ी की डोकरी के सामने मेरा मज़ाक उड़ाता है! चोट्टे! तेरी गर्दन मड़ोर डालूँ!

होटल में बैठे इक्के-दुक्के आदमी यह दृश्य देखकर हँसने लगे। जीवली भी हँसने लगी। सेठजी के क्रुद्ध होने का कारण समझ गई। सेठजी अविवाहित दिखाई देते थे; और इसी से लड़के ने खिलौने दिखाये तो वे चिढ़ गये। समझे यह नालायक मेरा मज़ाक़ उड़ा रहा है।

गाँठ में से पाँच पैसे निकालकर सेठजी की ओर फेंककर जीवली बोली—

लो सेठजी अपने पैसे। बेचारे लड़के को फिज़ूल ही पीटा तुमने। भगवान को तो डरो।

जीवली उठी और आगे बढ़ी। सामने बिजली के तार के खंभे के पास लड़का खड़ा हँस रहा था। सेठजी की मार का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ है, यह जीवली देख सकी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने सूखे ओठों पर सूखी मुरझाई उँगली रखकर, आश्चर्य में डूबी, जीवली देखने लगी।

'डोकरी, तूने मुझे पिटवा दिया।'—लड़का बोला। पर जीवली को लड़के की यह शिकायत बुरी न लगी। हँसती-हँसती बोली—

क्या नाम है रे बेटा?

'रघुड़ो!'

'रघु? अच्छा! ले इसमें अपनी पसंद का एक खिलौना ले ले।'—बुढ़िया ने टोकरा ज़मीन पर रखते हुए कहा।

रघु खुश हो गया।

उस टोकरे में से सुन्दर खिलौना ढूँढने लगा। जीवली प्रेम से रघु का प्रफुल्लित चेहरा निहारती रही।

एक सुंदर हाथी निकालकर रघु बोला—

यह ले लूँ माजी?

'हाँ! ले न बेटा।'—जीवली ने उदार बनकर कहा—तेरे सेठजी की जब शादी हो उस दिन हाथी पर बैठकर बरात में जाना। समझा?

'हा, हा हा!'—पेट पकड़कर रघु हँसने लगा।

'अरे! रघु रे!'

'माजी।'

शहर के बाहर किधर से जाते हैं बेटा?'

'सोसायटी में जाना है डोशी मा?'

'ए। वह तो रामजी जाने। बड़े-बड़े बँगले हों—वहाँ जाऊँगी। कोई घोड़ा ले, खिलौने ले, वहाँ जाऊँगी। इस शहर में आकर तो करम फूट गये, करम। मुए अब्दुल्ला ने मुझे भरमाया, नहीं तो यहाँ आती ही क्यों?'

'इस राह, सीधे-सीधे चली जाओ डोशी मा! फिर एक लम्बा पुल आयगा। उसके पार फिर बँगले ही बँगले।'— रघु ने कहा।

'अच्छा मेरे लाल।'

टोकरा सिर पर रख बुढ़िया चल दी। इस हास्यजनक प्रसंग ने जीवली के असन्तोष और दुःख की ज्वाला शान्त कर दी। उसका आनन्दी और विनोदी स्वभाव जाग उठा। मृत पुत्र की याद काफूर हो गई। खिलौने बिकेंगे तो ठीक, न बिकें तो ठीक। परवाह किसे है? होटलवाले सेठ को याद करके जीवली मुस्कराने लगी और बोली—मर रे जीवली! जीने से देखना भला। यहाँ आई तो सेठजी देखने को मिले न मेरी बाई। न आती तो? मुआ कुँआरा निकला? और बेचारे कान्ह कुँवर जैसे लड़के को मारने दौड़ा। शहर के लोग तो बड़े गज़ब के होते हैं। छोटे-से बच्चे को भी धौल जमा दिये। ये खिलौने न बिकेंगे तो चल दूँगी सिधपुर। उसमें क्या?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोग पूछेंगे—अरी ओ जीवली बाई ! शहर देख आई ! ओहो ! इस बुढ़ापे में भी अच्छा मोह पैदा हुआ !

ऊँह ! क्यों न हो ? क्या वह मनुष्य नहीं ? मरने के पहले जो देख लूँ वह भला ! उस मुए अब्दुल्ला की तो ख़बर ले डालूँगी, ख़बर ! दूकान के सामने ही माथा फोड़कर सारे गाँव को इकट्ठा न करूँ तो मेरा नाम जीवली नहीं। बता दूँगी बच्चाजी को हूँ !...मर रे जीवली तू भी बड़ी गुस्सेवाली मेरी बाई। मरने दे—तेरा क्या बिगड़े ? जो करेगा सो भरेगा। तुझे क्या ? ए मुए को हज़ारों पूत हों ; और सब की एक-एक खिलौने की दूकान लगे। तेरा क्या ? तू भी बड़ी बेवकूफ़ निकली जीवली बाई !

साड़ी के आँचल से अपना मुँह पोंछती, इन्हीं विचारों में डूबी जीवली पुल पार कर बहुत दूर निकल आई थी। पर मनुष्यों की भीड़ देखकर खड़ी न रही। गाँव की शान्त गलियों में मीठे मध्याह्न में चिल्ला-चिल्लाकर खिलौने बेंचनेवाली जीवली को इस भीड़-भाड़ में खिलौने बेचना पसन्द न आया। जीवली आगे बढ़ती चली गई।

महालक्ष्मी सोसाइटी के नज़दीक आते-आते जीवली को सन्तोष प्राप्त हुआ। यहाँ की शान्ति जीवली को रुचिकर प्रतीत हुई। बँगलों के द्वार पर बैठी दो-चार स्त्रियाँ बातचीत कर रही थीं। दो-चार बच्चे भी खेल रहे थे। परिचित शान्त वातावरण देखकर जीवली ख़ुश हो गई। जीवली आवाज़ लगाने लगी—

ए हाथी लो हाथी अ...घोड़े लो घोड़...अ...मिट्टी के खिलौने...अ...

एक बँगले में तीन-चार स्त्रियाँ बैठी थीं ; उन्हें देखकर जीवली बोली—

बच्चों के खिलौने लोगी माई ?

'क्या-क्या है ?'—एक स्त्री ने पूछा।

फौरन ही जीवली ने अपना टोकरा नीचे उतारा। तीनेक बच्चे टोकरे के इर्द-गिर्द खड़े हो गये। आनन्द-पूर्वक खिलौने देखने लगे। एक लड़की ने हाथी उठाया। 'अम्मा मैं लूँगी।'—कहती माता को दिखाने चल दी।

'मा मुझे !'—एक बच्चा चिल्लाने लगा। तीसरा माता की केशराशि को खींच-खींचकर माता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगा।

'नहीं लेना है कुछ ! हटो यहाँ से'—माता ने लड़की से कहा जो हाथी लेकर आई थी। लड़की रोने लगी—आँ आँ आँ। जब माता ने कहा—नहीं लेने हैं मिट्टी के खिलौने। टूट जाते हैं। दूसरे लेंगे। तो बच्चे पैर पटककर रोने लगे—अँ अँ अँ ये ही लेंगे।

किन्तु एक माता ने क्रोधावेश में कहा—नहीं लेने हैं ये खिलौने। जाओ, हटो नहीं तो पिटोगे। दो घड़ी चैन से बैठने भी न देंगे, बैठने।

'जा बाई जा ! नहीं लेने हैं खिलौने'—एक औरत ने कहा।

'ए। मा ! मुझे पैसे-टके नहीं चाहिये। खेलने दो बच्चों को। क्यों दुखी करती हो इन्हें ? पैसे दो पैसे के खिलौने हैं। कौन-सी मिल्कियत लुट जायगी मेरी मा !'

खिलौने बच्चों को देकर, सिर पर टोकरा रखकर जीवली जाने लगी तो तीनो स्त्रियाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साश्चर्य एक दूसरे का मुँह ताकने लगीं। एक ने गाँठ में से तीन पैसे निकाल जीवली को दिये। जीवली कहने लगी—रहने दो। पर अंत में लेने ही पड़े।

मन ही मन आनंद में मस्त जीवली उस कम्पाउंड के बाहर हो ली। पाँच-साढ़े पाँच बज चुके थे। लोगों की दौड़धूप फिर से शुरू हो गई थी। छोटे-छोटे बच्चे स्कूलों से घर की राह लौट रहे थे। स्वच्छ कपड़ों में सज्जित बालकों को हाथ में किताबें लिये, लौटते देखकर जीवली एक क्षण रुक गई और उन्हें देखने लगी। उसके हृदय में, स्नेह का झरना मानो फूटकर बहने लगा। क्षीण हो रही आँखों से अमृत की धारा बहने लगी। जीवली बड़बड़ाने लगी।

ओह हो! कैसे हैं नन्हें-नन्हें बाल! कैसी मीठी-मीठी बातें करते हैं और हँसते खेलते, कूदते घर लौट रहे हैं? ऐसे बच्चे भी कभी देखे थे जीवली बाई?

एक छोटी-सी बालिका को देखकर आनंद से विभोर हो उठी। कैसी रूपवती है? छोटे-छोटे कटे बाल सँवारे हुए हैं। गुलाबी रंग का रेशमी फ्राक पहने है। बालों में चमकती सुंदर पिनें हैं, छोटे-छोटे पैरों में छोटे-से चप्पल हैं। कैसे इतमीनान जा रही है। अपने मुरझाये कपोल पर हाथ रख, कौतुक भरी दृष्टि से जीवली उस बालिका के देखने लगी। पर वह लड़की तो बड़ी विनोदी और हँसमुख निकली। जीवली को अपनी ओर ताकते देखकर लड़की ने अपना नीचे का ओठ लंबा किया और जीभ निकालकर खड़ी हो गई। बुढ़िया हँसी न रोक सकी। पेट पकड़कर हँसने लगी। लड़की भी हँसने लगी। लड़की निर्भय बुढ़िया के पास जाकर बोली—

राम राम डोकरी मा!

बच्ची के इन शब्दों को सुनकर जीवली आनंद की पराकाष्ठा पर मानो पहुँच गई। बोल उठी—

'मजे में हूँ मेरी बेटी!'

लड़की ने अपने नाक-भौं सिकोड़े। 'बेटी' पुकारनेवाली बुढ़िया उसे पसंद न आई; पर एक क्षण के लिए ही। बुढ़िया के मुख पर फैले वात्सल्य भाव को देखकर लड़की चुप हो गई। अपना क्रोध भूल बैठी। बच्ची के निर्दोष हृदय ने बुढ़िया के हृदय को परख लिया। वह खड़ी-खड़ी बुढ़िया के मुख पर छाये वात्सल्य-स्निग्ध भावों को देखती रही।

जीवली ने अपना टोकरा सिर पर से नीचे उतारा और बोली—

'खिलौना लोगी रानी?'

खिलौने देखकर बालिका खिल उठी। अपना बस्ता एक ओर रख, टोकरी में हाथ डालकर खिलौनों की जाँच-पड़ताल करने लगी। अपूर्व, अदम्य प्रेम में मदमाती जीवली स्नेह-भरे नैनों से बालिका को देखती रही—देखती रही।

छः-एक खिलौने एक ओर रखकर बालिका ने पूछा—ये ले लूँ?

'हाँ, हाँ। ले जाओ न। खेलना। फेंकना मत हाँ!'

'हूँ। खेलूँगी न। खूब!'—लड़की बोली।

जीवली ने देखा—सामने से एक युवक और युवती बातें करते, झूमते चले आ रहे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं—ग़ौर से वह उन्हें देखने लगी। एक क्षण में तो उसका चेहरा फिर खिल उठा। टोकरे में से एक अत्यंत सुंदर खिलौना उठाकर, उस बच्ची को देकर जीवली बोली—

'एक काम करोगी रानी !'

'हाँ !'

'तो देख—वे जा रहे हैं—वह युवक है न, उसके हाथ में यह गुड़िया दे आ तो !'

'लाओ !'—लड़की ने हाथ बढ़ाकर कहा।

'देख, ठहर मैं छिप जाऊँ तब जाकर देना।'—जीवली ने कहा और सिर पर टोकरा रखकर चल दी और एक पेड़ की आड़ में खड़ी हो गई।

पेड़ की आड़ में खड़ी होकर तमाशा देखने लगी। युवक गुड़िया पाकर खुश होता है या नाराज़। कैसे भाव उसके मुख पर आते हैं? देखा—नन्हीं बच्ची दौड़ी और उस युवक के हाथ में गुड़िया देकर बोली—

ये लो अपनी गुड़िया !

'मु...झे ? मेरी ?'—युवक असमंजस में पड़ गया। युवती हँसने लगी।

'हाँ ! तुम्हारी। तुम्हें।'

युवक फिर देखता रहा—साश्चर्य।

'हाँ, देखो न ! मुझे इत्ते सारे खिलौने दिये—और तुम्हें यह गुड़िया !'

'किसने दी ?'

'माजी ने—डोकरी मा ने।'

'कहाँ है वह डोकरी ?'—युवक के स्वर में क्रोध था।

किन्तु युवती मंद-मंद मुस्कराती रही। वह बोली—

'क्यों क्रोध करता है सुधीर ? बेचारी बुढ़िया के मज़ाक को भी न समझ सका। चलो, आओ चलें।'

युवक के हाथ से गुड़िया अभी गिरकर, चकनाचूर हो जायगी यह देखकर उस छोटी लड़की ने उसके हाथ से वह गुड़िया ले ली और दौड़ने लगी। युवक मुस्करा दिया; और दोनो मुस्कराते-मुस्कराते बातें करते आगे बढ़ गये।

जीवली पेड़ की आड़ में से बाहर आई, और देखने लगी, हँसी को न रोक सकी। पेट पकड़कर हँसने लगी। हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई, आँखों से पानी बहने लगा। कुछ देर बाद जब हँसी रुकी तो बोली—

मर रे जीवली ! तेरा भी जीवन है मेरी बाई !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गान्धीजी का उत्तरदायित्व

[गगनविहारी मेहता]

[अनु० मनोहर शर्मा चतुर्वेदी]

[श्री गगनविहारी मेहता गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ हास्य-लेखक हैं। 'आकाशनां पुष्पो' (आकाश के पुष्प) नामक आपके हास्य-रस के लेखों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है, जिसका आदर गुजरात में श्री रामनारायण वि० पाठक के हास्य-लेखों के बराबर किया जाता है। अंग्रेजी में भी लिखते हैं और आजकल कलकत्ता में सिन्धिया स्टीम नेविगेशन कम्पनी के ब्रांच मैनेजर हैं।—सं०]

हम सब अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व अभी तक ठीक-ठीक नहीं समझ सके, अपना मार्ग हमें स्वयं नहीं दीखता और अपने अमूल्य सिद्धान्तों को भी हम अमल में नहीं ला सकते; किन्तु गान्धीजी का क्षेत्र कौन-सा है ? उनका कर्तव्य क्या है ? उनको कौन-सा मार्ग ग्रहण करना चाहिये ? उन्होंने कब-कब कौन-सी भूलें की हैं, इसका हमको पूर्णरूपेण ज्ञान हो गया है। विविध प्रकार के और भिन्न-भिन्न विचार-सम्पन्न सज्जनों से इस विषय की चर्चा करने के पश्चात् मुझे इस बात में संशय नहीं रहा कि यदि गान्धीजी हम सबों की इच्छानुसार ही कार्य करने लगें तो देश का तो क्या, स्वयं उनका भी उद्धार हो जाय।

× × ×

थोड़े दिनों की बात है, मुझे एक धनवान् गृहस्थ के घर जाने का अवसर मिला था। बातों में से बातें उत्पन्न हुईं और आजकल मिलों में हड़तालें होती हैं, इस विषय की बातें होने लगीं। इसी समय वे ज़रा जोश में आकर बोले—इस तूफान को खड़ा करने का सारा दोष गान्धीजी का ही है, जो सच-सच पूछो तो, गरीब और मजदूरों को सिर पर इन्हीं ने चढ़ाया है। 'दरिद्र-नारायण' 'दरिद्र-नारायण' कहकर ये ईश्वर का अपमान करते हैं और इसके अतिरिक्त गरीब लोगों को नाहक महत्त्व भी देते हैं तथा उनके मगज में तूफान पैदा करते हैं।

मैंने कहा—गांधीजी वर्गयुद्ध (Class-War) के विरुद्ध हैं और मालिक तथा मज़दूर में मेल और समाधान होने के इच्छुक हैं, यह तो आप जानते ही होंगे...

मुझे रोककर उन्होंने कहा—हाँ ! हाँ ! यह सब ठीक ! किन्तु यह तुम्हारे गांधीजी ने ही हज़ारों बार कहा है कि धनवानों की मदद से ही अंग्रेज सरकार राज्य कर रही है। मतलब

[६५८

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह कि धनवान देश-द्रोही हैं और गरीब ही सच्चे देश-प्रेमी ! बहुत बार उन्होंने कहा है कि धनवान तो द्रव्य के बल पर दूसरे देशों में भी जा सकते हैं ; किन्तु गरीब वर्ग का हित तो इस देश के साथ ही जुड़ा हुआ है। इस तरह धनवानों की अपेक्षा गरीबों की सम्पत्ति ज्यादा महत्त्व की है! चोरी हो जाय तो कहते हैं कि इतनी सम्पत्ति क्यों रखनी, जो चोरी हो जाय ? और उनके खादी-प्रचार से मिलों को कितनी हानि हुई है ? खादी की प्रवृत्ति में मुख्य उद्देश्य तो यह है कि धनिक मिल-मालिक को पैसा न मिले, इसी हेतु से अभी-अभी ग्रामोद्धार की योजना गठित की गई है। कारण स्वदेशी की प्रवृत्ति में तो धनवानों को लाभ हो जाने की आशा है न ! आज नौकर उद्धत हो गये हैं, मजदूर बेपरवाह बन गये हैं, किसान सरकारी अमलदारों का अपमान करते हैं, यह सब आपके गाँधी का ही प्रताप है। गाँधीजी कहते हैं कांग्रेस धनवानों के पक्ष में उतने ही अंश में रहेगी, जितने अंश में कि धनवान् पहिले दरिद्र-नारायण के सच्चे सेवक बनें इसका अर्थ तो यह हुआ कि इनके प्राप्त किये हुए स्वराज्य में दरिद्रों की तो पूजा होगी और धनिक रोवेंगे। मैं तो कहता हूँ कि ऐसा स्वराज्य हमें नहीं चाहिये। इससे तो अंग्रेजी राज्य ही अच्छा है, जिससे हमारी सम्पत्ति का तो रक्षण होता है और लाभ में भी अड़चन नहीं पड़ती। गाँधीजी को चाहिये कि ठीक-ठीक रीति से धनवानों को इसका विश्वास दिलायें और सम्पत्ति के संरक्षक बनकर स्वराज्य की लड़ाई लड़ें।

थोड़े दिन पीछे मैं मजदूर-मण्डल के एक कार्यवाहक तथा सोशलिस्ट से मिलने गया। गाँधीजी का नाम सुनते ही इनका रोष न समाया—बस ! इन महात्मा को लेकर ही इस देश की ऐसी विषम स्थिति हो गई है। धनवानों का पैसा लेकर वे स्वराज्य-फण्ड एकत्रित करते हैं, और आश्रम चलाते हैं, इसलिए इनका विरोध नहीं कर सकते। १९२२ में असहयोग इन्होंने क्यों स्थगित किया ?

मैंने कहा—चौरीचौरा के तूफान के कारण !

उन्होंने कहा—यह तो एक अनुकूल कारण मिल गया। लेकिन समय ऐसा नाजुक आया था कि लोक-समूह को अपने पक्ष में बिना लिये असहयोग की प्रवृत्ति अगाड़ी नहीं बढ़ सकती थी। जो प्रवृत्ति धनवानों की सहायता से चल रही थी, बिना इसके विरुद्ध काम किये, बिना इसे छोड़े आन्दोलन मन्द पड़ जाता, ऐसी अवस्था हो गई थी। इसलिए अहिंसा की फिलासफी लेकर विद्रोह का अचूक प्रोग्राम स्थगित कर दिया और सबको सूत कातने तथा साधू बन जाने का आदेश दिया। मानो बुद्ध, क्राइस्ट, मुहम्मद आदि धर्म-गुरु ही न हुए हों, और कबीर तथा तुकाराम की ही अपने राजकीय जीवन में आवश्यकता हो ! दूसरे देशों ने अपने देश की सारी प्रजा के सच्चरित्र हो जाने के बाद ही स्वराज्य प्राप्त किया होगा ? औद्योगिक विषय की गांधीजी की भावना ठेठ मध्यकालीन है। मजदूर-मालिक का सम्बन्ध सेवक-स्वामी का होना चाहिये, ऐसा वे मानते हैं।

मैंने कहा—Masses (जन-साधारण) के विषय में बहुत-से नेता और सरकार भी अब बातें करने लगी है। भाषणों में यह शब्द हमेशा आता रहता है। धनवान भी इनकी स्थिति के लिए आँसू बहाने लगे हैं ; लेकिन फिर भी गरीबों की स्थिति के लिए किसी का हृदय विकल हो जाता हो, और इनकी स्थिति को सुधारने के लिए हर तरह का त्याग स्वीकार करने को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई तत्पर हो जाता हो तथा इसी तरह इनका-सा जीवन...'

उन्होंने कहा—हृदय और त्याग भद्र लोग buorgeoisie मध्य वर्ग के लोगों की विचार-घटना के (Ideology) शब्द हैं। इससे अब कुछ होने जाने का नहीं है। एक ही प्रश्न का उत्तर दो—धनवानों को महत्त्व देनेवाली आर्थिक पद्धति का स्वराज्य में नाश होना चाहिये, इसे स्वीकार करने को गांधीजी तैयार हैं ? तो पीछे किसलिए गरीब स्वराज्य के लिए लड़ें ? इसमें इनका लाभ क्या है ? परदेशियों के बदले स्वदेश के लोग जुल्म करें और लूटें इसी-लिए न ! तो फिर चाहे जैसी अधम स्थिति के होते हुए भी वर्तमान राज्य ही क्या बुरा है ? ना भाई ! गरीबों को मिलनेवाली ऐसी स्वतंत्रता जिसमें धनवानों की जी-हुजूरी करनी पड़े, हमें नहीं चाहिये। जब तक गांधीजी गरीबों का पक्ष लेकर धनवानों का खुलासा विरोध नहीं करते, तब तक फिलहाल प्रबल आन्दोलन होना अशक्य है।

× × ×

देशी राज्य के एक दीवान ने कहा—महरबानी करके गान्धी की बात न करें। इनको ही लेकर, राजा और प्रजा का मधुर सम्बन्ध जो इतने दिनों से भारतवर्ष में था, उसमें इन्होंने विष घोल दिया है। इनके सिद्धान्त और दृष्टान्तों से छोटे-बड़े प्रसंगों को लेकर लोग, राज्य और अमलदारी के विरुद्ध होना सीख गये हैं। इस देश में पहिले बहिष्कार, हड़ताल, पिकेटिंग कहाँ थे ? फिर भी क्या प्रजा कुछ कम खुश थी ? कर न देना, राज्य-नीति के दोष निकालना, राजा और अमलदारों की निन्दा करना आदि बातें, इनके अनुयायी ही देशी राज्यों की प्रजा को सिखलाते हैं। परिणाम-स्वरूप अराजकता फैलनेवाली है। आपको स्मरण नहीं कि काशी की हिन्दू यूनिवर्सिटी का आरम्भ होते समय राजाओं के ही सामने उन्होंने उनके गहने-कपड़े और शान-शौकत की टीका-टिप्पणी की थी ? राजाओं को ऐसी शान-शौकत आवश्यक है, यह तो भूलाभाई देसाई जैसे कांग्रेसमैन भी स्वीकार करते हैं। गान्धीजी के दृष्टान्त से ही, आज भिन्न-भिन्न राज्यों में सत्याग्रह की परछाईं दृष्टिगोचर हो रही है। इनके आने के पहिले इस प्रकार का घर्षण और कलह अपने राज्यों में नहीं था। गान्धीजी को देशी राज्यों की बात में ही न पड़ना चाहिये।

देशी राज्य-प्रजा-परिषद के एक प्रतिनिधि का अभिप्राय ठीक इसके विरुद्ध था। यह कहते थे—गान्धीजी के राजा-प्रजा-सम्बन्ध-विषयक विचार ठेठ मध्यकालीन हैं। देशी राज्यों की तरफ़ से होनेवाले अन्याय का विरोध करने के लिए, जब-जब प्रजा सत्याग्रह करने का प्रयास करती है, तभी-तभी गान्धीजी लोगों की इस प्रकार की चेष्टा को दबा देते हैं। न-जाने किस लिए देशी राज्यों के प्रति इनके अन्तर में पक्षपात हो गया है ? देशी राज्य तो अपने ही हैं, इसलिए इनको सुधारा जा सकता है, ऐसा वे मानते हैं। क्या इस बात में एक प्रकार का जाति-भेद नहीं ? हम स्वराज्य के लिए मरते हैं तो क्या केवल अंग्रेजों को निकाल देने के लिए ही और गोरों के बदले काली नौकरशाही की स्थापना के लिए ? या एक दुष्ट पद्धति और उसकी संस्था को विनष्ट करने के लिए ? तो फिर देशी राज्यों का बन्धन क्या कुछ कम अकिष्टकर है ? गांधीजी जब तक देशी राज्यों के प्रश्न को हाथ में नहीं लेते, तब तक स्वराज्य या फेडरेशन का सवाल हल होने का नहीं है।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राचीन साम्प्रदाय के एक अनुयायी गाँधीजी का नाम भी नहीं सुन सकते थे—इस एक व्यक्ति को लेकर ही समग्र हिन्दू-समाज आज गिरनेवाला है, सब जातियाँ भ्रष्ट हो गई हैं। मन्दिरों में अन्त्यजों का प्रवेश कराकर उन्हें अपवित्र कर दिया है। विधवा-विवाह का समर्थन करके हिन्दू स्त्रियों पर कलङ्क लगाया गया है। जाहिर-जीवन में स्त्रियों को बराबर का भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करके, अपनी प्राचीन प्रणाली को छिन्न-भिन्न कर दिया है। और यह सब धर्म के लिए ही करते हैं, ऐसा उनका कथन है! गाँधीजी को किसी कृस्तानी मिशन ने हिन्दू समाज का नाश करने के लिए प्रेरित किया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं! इनको गीता से अधिक बाइबिल पसन्द है, क्योंकि गीता से पहिले इन्होंने बाइबिल पढ़ी थी न! जाति की संस्था को और स्त्रियों के मानस को जो हानि इन्होंने पिछले थोड़े वर्षों में की है, उतनी हानि पचास वर्ष के लगातार आन्दोलन करने पर भी सुधारक नहीं कर पाये थे! गाँधीजी को हिन्दुओं के धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ और समाज-रूढ़ियों का अध्ययन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इनके जैसे लोगों को तो हिन्दुओं की प्राचीन शास्त्र-निर्मित प्रणाली का संरक्षक बनना ही शोभा देगा। और तभी ये सच्चे अर्थों में राष्ट्र-नेता हो सकते हैं।

'गाँधीजी कोई ठीक-ठीक सुधारक नहीं हैं।'—ऐसा मत एक प्रखर सुधारक का था। वे जाति की संस्था को तो मानते हैं। अस्पृश्यता जाति की संस्था का लक्षण है, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता; बल्कि वे कहते हैं कि वह उसका विपरीत परिणाम है। जाति की संस्था के वे पक्ष में हैं। विधवा-विवाह की बाबत इनके विचार मेरी समझ में नहीं आते। अमुक शर्त और संयोग में विधवा को विवाह करना चाहिये, ऐसी इनकी मान्यता है। तो फिर विधुरों के लिए ऐसी शर्तें क्यों नहीं लगाई जातीं? अंत्यजों के प्रश्न को वे सामाजिक नहीं धार्मिक मानते हैं, इसे सुधारक स्वीकार नहीं कर सकते। अम्बेडकर कहते हैं, हमें तुम्हारे देव नहीं मनुष्य देखने हैं! अस्पृश्यता का नाश करने के पक्ष में तो वे हैं, किन्तु इनके साथ प्रीति-भोज और विवाह-सम्बन्ध के विरुद्ध हैं। संतति-नियमन जैसी रीति के वे विरुद्ध हैं, और प्रजा बढ़ गई हो तो, दुष्काल, रेल, रोग, भूकम्प वगैरह से कुदरत उसे कम कर देगी, ऐसा सिद्धान्त उन्हें मान्य है। यह मान्यता आर्वाचीन नहीं कही जा सकती। हिन्दू-समाज ऐसे सिद्धान्तों से नहीं सुधर सकता। गाँधीजी जैसे महापुरुष को तो समाज-सुधार के सच्चे सिद्धान्तों को पूरा-पूरा समझकर, यदि उन्हीं के शब्दों में कहें तो, 'अपना लेना चाहिये!'

क्रांति के एक उपासक से मिलते समय उन्होंने जनाया—सच्ची क्रांति में गाँधीजी एक अड़ंगा बन गये हैं, नहीं तो देश कभी का स्वतंत्र हो गया होता! १९१४ के महायुद्ध के पश्चात् हिन्दुस्तान में, खासकर बंगाल में प्रचण्ड जागृति उत्पन्न हुई थी, किन्तु गाँधीजी ने इस स्थिति का योग्य उपयोग नहीं किया और लोक-जागरण को अनुकूल दिशा में नहीं ले गये। १९२२ में प्रजा के वेग को नाहक रोक दिया, १९३१ में सरकार के साथ संधि करके और इग्लैण्ड जाकर लड़ाई का फल खो दिया। १९३२ में हरिजन-प्रवृत्ति का आरंभ करके, राष्ट्रीय आन्दोलन का बल मंद कर दिया, पीछे से सविनय भंग बंद करके, धारा-सभा में जाने की अनुमति दी। रचनात्मक कार्य करने के लिए गाँधीजी कहते हैं, किन्तु मौलिक परिवर्तन बिना यह कार्य अशक्य है, कार्य-वाहकों को रुक-रुककर यह बात ज्ञात हो गई है। एक बार लड़ाई आरम्भ करने के बाद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसे बंद कर देने का मतलब है अपनी पराजय स्वीकार करना। इसका बहुत बुरा परिणाम हुआ है, यह अपने अभी के राजकीय जीवन से—

मैंने कहा—दलील के लिए क्षण-भर हम आपका पृथक्करण स्वीकार करें तो, कह सकते हैं कि, कांग्रेस के दूसरे नेता कहाँ चले गये थे ? इनमें कोई क्रांतिकारी हो तो उसने देश में परिवर्तन क्यों नहीं किया ? गाँधीजी को एक तरफ़ रखकर यदि···

क्रांतिकारी ने कहा—यह तो गाँधीजी की सबसे बड़ी मुश्किल है न ! अपने व्यक्तित्व को लेकर यह एक ऐसा जाल बिछा देते हैं कि इनका कोई खुलकर विरोध ही नहीं कर सकता। इनकी उपस्थिति में सब आदमी इनकी 'हाँ में हाँ' मिलाते हैं। और वह ठीक ही हो, ऐसा आचरण भी करते हैं। कांग्रेस और राजनैतिक प्रवृत्तिओं में ऐसी अन्धश्रद्धा विघ्न-कारक है।

मैंने पूछा—यदि ऐसी अन्धश्रद्धा हो तो यह दोष अपना कि गाँधीजी का ?

इन्होंने उत्तर दिया—दोनो का ! किन्तु गाँधीजी का अधिक ! हमारा लोक-मानस तो जैसा है, वह सुविदित है। क्रांतिकारी नेताओं को यह मानस बदलकर, कांतिकारी मनोवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिये। बजाय इसके इन्होंने प्रतिभक्ति का वातावरण उत्पन्न किया है, कांग्रेस पर भी इनका नेतृत्व भार-रूप है।

मैंने कहा—तब तो महात्माजी कांग्रेस से अलग हो गये, यह अच्छा ही हुआ ; ऐसा आप मानते होंगे। अब भार से मुक्त होकर, कृत्रिम वातावरण को त्याग कर, कांग्रेस स्वाभाविक मार्ग ग्रहण करेगी न !

किन्तु क्रांतिकारी बन्धु को गांधीजी का यह कदम बढ़ाना भी पसन्द न था।

इन्होंने कहा—राष्ट्र-नेता क्या इसी तरह, जिस समय कि संग्राम हो रहा हो ; उसे बीच में छोड़कर अलग हो जाते हैं ? प्रजा के प्रति अपने नेताओं की क्या यही जवाबदारी है ! यही दृष्टान्त सामने रखकर, डाक्टर अंसारी, डाक्टर विधानराय, तथा श्री राजगोपालाचार्य भी रिटायर हो गये। राष्ट्र-सेवा में 'रिटायरमेण्ट' नहीं हो सकता। स्वराज्य की लड़ाई किसी नेता का अपना व्यक्तिगत काम-धंधा नहीं है, यह तो लोक के प्रति उनका कर्तव्य है। कांग्रेस में रहकर ही इन्हें कांग्रेस को उचित मार्ग पर ले जाना था। लेनिन की तरह ही इन्हें क्रांति का स्रष्टा बनना था !

विनीत-पंथ के एक नेता का मत था—गांधीजी ने पिछले सोलह वर्षों से देश को गलत रास्ते पर चला रखा है ; किन्तु इस मत का कारण जुदा ही था। सविनय कानून भंग करने से न तो बृटिश प्रजा का ही हृदय पलटा और न सरकार का ही राज्य भंग हुआ। इससे देश अधिक बलवान् नहीं हुआ, केवल थोड़ी अराजकता व्यापक हो गई है। पुराने जमाने में नेता गण और राजनैतिक व्यक्ति, सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों का ख़ूब गहरा अध्ययन करते थे ; शांति और धीरता से लोकोन्नति का प्रयास करते थे, लेकिन आज लोक-जीवन में क्षुद्र उन्माद और विषय की अज्ञानता के बावजूद भी चाहे जिस रीति से भी हो, नेता बन जाने की आकांक्षा जैसी अनिष्टकारक वृत्तियाँ देखने में आती हैं। कांग्रेस के नेता सोचते हैं, विचार की कीमत ही क्या है ? अध्ययन है ही किस काम का ? दुनिया को चकित कर देना ही पर्याप्त है !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु यह ऐसा करके नहीं दिखलाते। धारा-सभा का वहिष्कार करना चाहिये, इसमें जाना पाप है, जो गांधीजी यह बात कहते थे, वही गांधीजी फिर धारा-सभा में कांग्रेस के लोगों को जाने की आवश्यकता बताते हुए, उसमें जाने की अनुमति देते हैं। तो क्या इतने वर्षों से जो बात लिबरल कहते थे, वह झूठी थी ? किन्तु यही बात गान्धीजी ने कह दी, इसलिए ठीक हो गई ? अपने असंगठन और भिन्न स्वार्थों की वजह से स्वतन्त्रता का मार्ग सरल नहीं है और अन्तिम ध्येय सुलभ नहीं है, इसलिए आवश्यकतानुसार सरकार से समझौता करके और उससे विरोध करके, हमको धीरे-धीरे बढ़ना चाहिये।

मैंने कहा—किन्तु तुम्हारे पक्ष की दृष्टि, वाइसराय, इण्डिया-ऑफिस, पार्लमेण्ट, गवर्नर और अफसरों की तरफ़ अधिक है। गान्धीजी हमारी कमजोरियों से अनभिज्ञ नहीं हैं। वह चाहते हैं अपने बल और यत्न से उन्हें दूर करना।

विनय-पूर्वक इन्होंने इसका विरोध किया—यह तो खाली शब्दों की मारा-मारी है। ग्राम-उद्योग के विषय में, मद्य-निषेध में, अन्त्यजोद्धार के कार्य में, सरकार की या कायदे की सहायता लेने में गान्धीजी को कोई बाधा नहीं होनी चाहिये। जेल से उन्होंने आज्ञा की थी, अन्त्यजों के मन्दिर प्रवेश का बिल बनाने के लिए, जिसके परिणाम-स्वरूप बहिष्कृत धारा-सभा की सहायता लेने दौड़े थे। गान्धीजी अन्तर से मॉडरेट ही हैं। और कौन-सा विचारशील व्यक्ति नहीं है ? किन्तु संयोगवश वे उद्दाम पक्ष के होने जाते हैं तब राष्ट्र-जीवन में घुटाला होता है। अच्छी तरह गान्धीजी को विनीत पक्ष में आना चाहिये।

× × ×

हिन्दू-महासभा के एक स्तम्भ का अभिप्राय था—हिन्दू-मुसलमान दोनो के असंगठित रहने का कारण गान्धीजी की प्रवृत्ति है। इन्होंने ही इन मुसलमानों को व्यर्थ बढ़ावा दिया है। खिलाफ़त प्रश्न को राष्ट्रीय बनाकर और कांग्रेस का सहारा लगाकर इनके धार्मिक खब्त को बढ़ाया गया है। स्वराज्य की लड़ाई में, इस तरह मुसलमानों की सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न में ऐक्य तो सधा नहीं किन्तु उनमें कौमियत का प्रबल ज़ोर बढ़ गया। इसी तरह जब मुसलमान अत्याचार या अन्याय करते हैं, तब गान्धीजी और कांग्रेस के नेता मौन ग्रहण करते हैं। मतलब यह कि हिन्दुओं के हितों का रक्षण न तो सरकार की ओर से होता है और न राष्ट्र-नेता ही उस ओर ध्यान देते हैं। साम्प्रदायिक बँटवारे में ही कांग्रेस के विचार और कार्य देखिये। एक चीज खराब है, इसलिए उसे अपने से दूर रखना और फिर भी इसे स्वीकार या अस्वीकार न करना कहाँ का न्याय है ? इसलिए अब मुसलमानों को मनाना-समझाना छोड़कर, गान्धीजी को हिन्दुओं का संगठन करने के लिए और उसे सफल बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। यदि हिन्दू स्त्रियों का रक्षण गांधीजी ही न करेंगे तो करेगा कौन ?

एक मुसलमान नेता ने कहा—हिन्दू-मुसलमानों में एकता नहीं होती, इसमें मुख्य दोष गांधीजी का ही है। सच पूछो तो अब गांधीजी राष्ट्र-नेता नहीं रहे, किन्तु केवल हिन्दू-जाति के ही प्रतिनिधि बन गये हैं। सरकारी नौकरियों में, मुसलमानों को अमुक प्रतिशत स्थान मिले, ऐसा वे नहीं मानते, केवल योग्यता के दृष्टि से ही निर्णय होना चाहिये ऐसी उनकी मान्यता है, तो फिर कार्य-दक्षता की दृष्टि से तो अंग्रेज़ ही अधिक योग्य हैं, फिर उनसे किसलिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम यह माँग करते हैं कि, भारतीयों का भी इसमें (नौकरियों में) प्रवेश हो। १९३१ में गांधी-इर्विन समझौते के बाद, हिन्दू-मुसलमानों के बीच समझौता न हुआ, और गाँधीजी राउण्ड टेबिल कांफ्रेंस में इंगलैण्ड गये थे, तब भी यह न हो सका ; इसकी जवाबदेही गाँधीजी पर है...

मैंने कहा—उस समय जो लोग विलायत में उपस्थित थे, उनका कहना है कि समझौते के लिए गांधीजी ने तो काफ़ी कोशिश की थी, लेकिन दोष कौमी नेताओं का ही था।

उन्होंने कहा—यह बात सच भी हो तो अब तो यह कौमी प्रश्न की ओर से उदासीन हैं, और उसे अनावश्यक समझते हैं। हरिजनों के लिए जेल में अनशन करके इन्होंने दिखा दिया है कि ये हिन्दू-नेता हैं। राष्ट्र-नेता नहीं। ये जो सच्चे राष्ट्र-नेता हों तो क्या इन्हें कौमी झगड़े का निबटारा करना चाहिये, अन्यथा रेमजे मैकडानल्ड का कौमी बँटवारा कबूल करना चाहिये। तभी इस देश में संगठन हो सकता है।

× × ×

एक अर्थशास्त्री का ख्याल था—खादी की प्रवृत्ति से देश को अत्यंत आर्थिक हानि हुई है। हाथ को कारीगरी तथा उद्योग का भी नुक़सान हुआ है। और खादी में शक्ति और धन दोनो का निरर्थक उपयोग हुआ है। सच्ची ज़रूरत तो मिलों और कारखानों को निकालकर आर्थिक सत्ताधारी और स्वावलम्बी बनने की है। लोगों की आर्थिक स्थिति तभी सुधर सकती है। इसलिए गाँधीजी को कारखाने ही हटाने या हटवाने चाहियें।

किन्तु अर्थशास्त्र के एक दूसरे अभ्यासी कहते हैं—गांधीजी मात्र खादी पर ही इतना ध्यान क्यों देते हैं, और कपड़े को ही इतना महत्त्व क्यों देते हैं? वस्त्र से अधिक अन्न ज़्यादा महत्त्व की वस्तु है, वे खेती सुधारने के लिए क्यों कोई योजना नहीं बनाते? जिससे अधिक परिमाण में और अच्छा अन्न अपने देश में उत्पन्न हो। यह अपने को स्वयं किसान कहते हैं, तब फिर क्यों नहीं अपना सुधार करते? इतने अधिक खिलौने विदेश से यहाँ आते हैं, लेकिन फिर भी वे क्यों यहाँ के लोगों से खिलौने बनाने के लिए नहीं कहते? अपना आर्थिक जीवन अधिक परिपूर्ण, समृद्ध और सुन्दर बने, इस तरह की व्यापक प्रवृत्ति गाँधीजी को अपने हाथ में लेनी चाहिये। इनके आर्थिक सिद्धान्त इस देश के लिए अनुकूल हैं तो क्यों नहीं सब क्षेत्रों में वे इन्हें अमल में लाते?

× × ×

एक राजद्वारी पुरुष का दृढ़ मत था—गांधीजी राजकीय जीवन या 'पौलटिक्स' के लिए उपयुक्त नहीं हैं। ये साधु पुरुष हैं, सन्त हैं, इसलिए इनको यह खटपट-प्रवृत्ति अच्छी नहीं होगी। इनके अनुयायी इनकी आँखों में धूल डालकर, अच्छे बनने का प्रयत्न करते हैं। ये (गाँधीजी) अपनी राष्ट्र-नीति के उपदेशक हैं, पूज्य हैं, किन्तु इनके अनुसार कार्य करना विशाल लोक-समूह के लिए अत्यंत कठिन है। इसलिए यदि ये राजनैतिक जीवन से विमुक्त हो जायँ, यही इष्ट है।

मैंने पूछा—तब तो आपको यह अच्छा लगा होगा कि गाँधीजी कांग्रेस से अलग हो गये?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन्होंने कहा—नहीं ! कारण अभी इनके अनुयायी सब कुछ इनसे ही पूछकर करते हैं, इसमें तो इनकी सत्ता ही दिखाई देती है ; बल्कि उसे सत्ता नहीं, प्रताप तथा शक्ति कहना उपयुक्त होगा। किन्तु उत्तरदायित्व नहीं है।

मैंने निराश होकर कहा—किन्तु इनको करना क्या चाहिये ? क्या आत्म-हत्या ?

राजद्वारी भाई ने कहा—नहीं ! नहीं ! ऐसा मैं कह सकता हूँ ? यह तो पाप है। परन्तु इनको इस स्थिति पर गम्भीर विचार करना चाहिये। कदाचित् वह हिमालय चले जायँ, तो बेहतर होगा। पर शिमला, दार्जिलिंग, नैनीताल या मंसूरी नहीं।

एक दूसरे राजनीतिक पुरुष का कहना था—गाँधीजी की जैसी गहरी निरीक्षण-शक्ति दीर्घ दृष्टि, बुद्धिमत्ता, नीर-क्षीर-विवेक, इस समय के अपने किसी नेता में भी नहीं हैं। राउण्ट टेबिल कान्फ्रेंस का भाषण पढ़िये, गांधी-इर्विन समझौते की शर्तें देखिये, या हरिजन-आन्दोलन की व्यवस्था का निरीक्षण करिये, आपको स्पष्ट मालूम होगा कि राजनीति का इनका कितना गहरा अध्ययन है। गांधीजी काठियावाड़ी हैं, वैश्य और वकील हैं, इसलिए ये व्यवहार-कुशल हैं। और इनकी तीव्र बुद्धि राजनैतिक प्रश्नों को बिलकुल ठीक रूप में देखती है। किन्तु मुश्किल तो यह है कि, अस्पष्ट तथा गूढ़ धार्मिक भावना को यह प्रधानता देते हैं। यह धार्मिकता इनके जीवन में प्रवेश कर गई है और वही इनके राजनैतिक दृष्टि का मूल स्वरूप है, तथा यही अपनी राष्ट्रीय प्रगति में विघ्न-रूप हो गई है। गाँधीजी का राजनैतिक नेतृत्व हम स्वीकार करते हैं, इसके मानी यह नहीं है कि हमने उनके धार्मिक विचार भी स्वीकार कर लिये हैं। अपने इस अन्तर्नाद का आखिर वे क्या उपयोग करेंगे ? अगर गाँधीजी अपनी इस गहन धार्मिकता का परित्याग कर दें तो एक आदर्श नेता बन सकते हैं।

इन सब चर्चाओं के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि गाँधीजी को धन तथा सम्पत्ति का चौकीदार बनना चाहिये और निर्धनों का नेता बनकर पूँजीपतियों का विनाश करना चाहिये। देशी राज्यों के बीच में न पड़ना चाहिये और देशी राज्यों के प्रश्न को अपने हाथ में भी लेना चाहिये। प्राचीन प्रणाली के अनुसार काम करना चाहिये और फिर प्रचण्ड सुधारक भी बनना चाहिये। हिन्दू-मुसलिम एकता का प्रयास करना चाहिये और न भी करना चाहिये। आर्थिक उन्नति-सम्बन्धी नीति, इनकी झूठी है, फिर भी इसके अनुसार इनको बड़े पैमाने पर कार्य करना चाहिये। वे राजनैतिक जीवन के लिए अयोग्य हैं ; लेकिन फिर भी वे सबसे अधिक योग्य हैं। इनको कांग्रेस से निकल जाना चाहिये, किन्तु ये निकल गये, यह भी इन्होंने अच्छा नहीं किया।

दूसरे इस निर्णय पर पहुँचा कि अपनी पराजय तथा निष्फलता के लिए मुख्य रूप से गाँधीजी उत्तरदायी हैं ; किन्तु फिर भी सब काम गाँधीजी को ही करने चाहियें तथा सब पक्षों में मिलकर उनका भार भी ग्रहण करना चाहिये।

गाँधीजी के कर्तव्य का हमको इतना ज्ञान हो गया है, यह वास्तव में प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता।

कलकत्ता ५-६-३९।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दौरक्षौर

लाल तारा—ले०, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशक, प्रगतिशील पुस्तकालय, बाँकीपुर, पटना ; मुल्य ।।।), प्रथम संस्करण, १९३९ ।

'प्रगतिशील पुस्तकालय' की योजना और उसके कार्य का हिन्दी में उत्साहसहित स्वागत होना चाहिये, क्योंकि हमारी साहित्यिक प्रगति का यह क़दम ठीक रास्ते पर है। कुछ वर्षों से हिन्दी का साहित्य जीवन से विलग मानो अधर में लटका हो। यह आलोचना हिन्दी के आधुनिक काव्य पर और भी लागू होती है। एक सुन्दर स्वप्न-जग की सृष्टि कर हमारे कलाकार उसमें बस गये हैं। जीवन और मौत का जो संघर्ष हमारे चतुर्दिक जारी है, उसकी कोई प्रतिध्वनि कल्पना की इन दीवारों को पार कर हमारे पास नहीं पहुँच पाती। 'प्रगतिशील साहित्य' की पुकार वास्तव में साहित्य को जीवन के पास लाने और प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए उठी है।

'प्रगतिशील पुस्तकालय' की दो पुस्तकें हमारे देखने में आई हैं—'लाल तारा' और 'हुंकार'। हम इनको एक नई दिशा में प्रयोगात्मक प्रयास समझकर इनका स्वागत करते हैं। पुस्तकों का गेट-अप आदि सुन्दर और मूल्य सस्ता है। आशा है अधिक से अधिक इनका वितरण होगा और हमारी स्वाधीनता के युद्ध में एक वाम-पार्श्वर्नी सेना यह तैयार करेंगी।

आवरण-पृष्ठ पर आकर्षक ढंग से लेखक का परिचय दिया है, जिसमें गद्य-काव्य का रस है : 'बीसवीं सदी ने दो ही क़दम बढ़ाये थे कि पूस की पिछली रात को वह लाल तारा-सा चमक उठा।' श्री बेनीपुरी हमारे साहित्य और राजनीति में काफ़ी पुराने सिपाही हैं। हमें आपके इस काया-कल्प से हर्ष है, क्योंकि आपकी कला में भी नये प्राण और शक्ति की झलक है।

इन कहानियों में जीवन का संघर्ष, उसके घातक कीटाणु, अमीरी और ग़रीबी के विभिन्न चित्र, प्रगति में बाधाएँ—इनके शब्द और रूप-चित्र हमें मिलेंगे। 'लाल तारा', 'जीवन-तरु' 'घासवाली', 'कलाकार', 'गोशाला' उच्च कोटि की कहानियाँ हैं। 'डुगडुगी' सफल एकांकी नाटक है। शेष रचनाएँ निबंध, शब्द-चित्र, गद्य-गीत, स्केच कुछ भी कही जा सकती हैं। इनमें कुछ तो मामूली हैं, जैसे 'कुदाल', 'हरसिंगार', 'गुलाब' अदि। अधिकांश मर्मस्पर्शी हैं, जैसे 'हलवाहा', 'पनिहारिन', 'जवानी'।

'जीवन-तरु' कहानी हमको विशेष अच्छी लगी। स्व० प्रेमचन्द की कहानियों से इसकी तुलना हो सकती है। इस कहानी में 'हाकिम मामा' एक विशेष सफल चरित्र-चित्र है। 'हाकिम मामा' की जोड़ के अनेक नर-रत्न अब भी हमारे ग्राम्य-जग में छिपे पड़े हैं, किन्तु सामन्त-प्रथा, सूद ख़ोरी आदि उन्हें पनपने नहीं देते।

'लाल तारा' बेनीपुरीजी की जीवन और साहित्य-प्रेरणा का चिन्ह है। झुटपुटे आकाश में यह उदय होता है, तो किसान अपनी खाट छोड़ खेत की ओर चल देता है। एक दूर देश में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी यह 'लाल तारा' उदय हुआ है 'जो उसके ऐसे लोगों के लिए प्रभात, रोशनी, ज़िन्दगी और मुक्ति का संदेश लाया है।'

हँसिया हथौड़ा के प्रति आप कहते हैं :

'हँसिया-हथौड़ा ! शक्ति और कर्त्तव्य के ये दो प्रतीक हैं !

'कृषि और उद्योग के !

'प्रकृति और पुरुष के !

संसार-रथ इन्हीं दो पहियों पर बढ़ा जा रहा है...'

इस संग्रह में कहानी की टेकनीक में अनेक नये प्रयोग हैं। इसकी विचार-धारा क्रान्तिकारी और प्रगतिशील है। जीवन के यहाँ सच्चे और मर्मस्पर्शी चित्र मिलेंगे। साथ ही हमारी सामाजिक प्रगति में जो बाधाएँ हैं, उनकी ओर ज़बरदस्त इशारा।

साहित्य की यह परिभाषा मानकर बेनीपुरीजी चले हैं—'साहित्य हमारे सामूहिक जीवन के संघर्षों और उन संघर्षों के परिणाम-स्वरूप अग्रगामी गति का प्रतीक है।...कब तक उसे पीछे की ओर मुड़ने को बाध्य करोगे या आगे बढ़ने से रोके रहोगे ! उसमें गति है, वह रुक नहीं सकती—उसकी गति अग्रगामी है, वह आगे की ओर ही बढ़ेगी।' साहित्य का यह आदर्श ही नहीं, वरन् प्रयोग भी हमें 'लाल तारा' में मिलता है।

देहरादून। प्रकाशचंद्र गुप्त।

• • •

हुंकार—रामधारी सिंह 'दिनकर' ; प्रकाशक—प्रगतिशील पुस्तकालय बाँकीपुर, पटना ; मूल्य ।।।)। प्रथम संस्करण, १९३९।

'प्रगतिशील पुस्तकालय' का दूसरा प्रयास 'दिनकर' की कविताओं का संग्रह है। 'दिनकर' का एक कविता-संग्रह 'रेणुका' हिन्दी के सामने पहले आ चुका है। 'रेणुका' में दो प्रवृत्तियों में परस्पर कशमकश दिखाई देती है। 'अंगारा जिस पर इंद्रधनु खेल रहे' इन शब्दों में 'दिनकर' की आत्मा का आवरण-पृष्ठ पर परिचय दिया गया है। 'रेणुका' में इन्द्रधनुष आकर्षक रंगों में चमका था। 'हुंकार' में 'दिनकर' की आत्मा का अंगारा भभक उठा है।

'आमुख' में 'दिनकर' ने स्वयं अपनी कविता का परिचय दिया है :

'सयय द्रुह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल धाये,
आज खोज से उन्हें बुलाने वर्तमान के पल आये।'

हम यह बात सुनने के अभ्यस्त हो चुके हैं कि कवि को राजनीति से कुछ मतलब नहीं। वह तो जग के राग-द्वेष से अलग कल्पना के जग में सुन्दर मीठे गीत बनाने में तल्लीन रहता है। हम भूल जाते हैं कि एक समय तमाम यूरोप की कविता फ्रांस की राज्यक्रान्ति द्वारा प्रभावित हुई थी। हिन्दी के सभी तरुण कवि आज भारतीय जीवन के निकट आने की कोशिश में हैं। पन्त,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीर-क्षीर

लाल तारा—ले०, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशक, प्रगतिशील पुस्तकालय, बाँकीपुर, पटना ; मुल्य ।।।), प्रथम संस्करण, १९३९ ।

'प्रगतिशील पुस्तकालय' की योजना और उसके कार्य का हिन्दी में उत्साहसहित स्वागत होना चाहिये, क्योंकि हमारी साहित्यिक प्रगति का यह क़दम ठीक रास्ते पर है। कुछ वर्षों से हिन्दी का साहित्य जीवन से विलग मानो अधर में लटका हो। यह आलोचना हिन्दी के आधुनिक काव्य पर और भी लागू होती है। एक सुन्दर स्वप्न-जग की सृष्टि कर हमारे कलाकार उसमें बस गये हैं। जीवन और मौत का जो संघर्ष हमारे चतुर्दिक जारी है, उसकी कोई प्रतिध्वनि कल्पना की इन दीवारों को पार कर हमारे पास नहीं पहुँच पाती। 'प्रगतिशील साहित्य' की पुकार वास्तव में साहित्य को जीवन के पास लाने और प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए उठी है।

'प्रगतिशील पुस्तकालय' की दो पुस्तकें हमारे देखने में आई हैं—'लाल तारा' और 'हुंकार'। हम इनको एक नई दिशा में प्रयोगात्मक प्रयास समझकर इनका स्वागत करते हैं। पुस्तकों का गेट-अप आदि सुन्दर और मूल्य सस्ता है। आशा है अधिक से अधिक इनका वितरण होगा और हमारी स्वाधीनता के युद्ध में एक वाम-पार्श्वनी सेना यह तैयार करेंगी।

आवरण-पृष्ठ पर आकर्षक ढंग से लेखक का परिचय दिया है, जिसमें गद्य-काव्य का रस है : 'बीसवीं सदी ने दो ही क़दम बढ़ाये थे कि पूस की पिछली रात को वह लाल तारा-सा चमक उठा।' श्री बेनीपुरी हमारे साहित्य और राजनीति में काफ़ी पुराने सिपाही हैं। हमें आपके इस काया-कल्प से हर्ष है, क्योंकि आपकी कला में भी नये प्राण और शक्ति की झलक है।

इन कहानियों में जीवन का संघर्ष, उसके घातक कीटाणु, अमीरी और ग़रीबी के विभिन्न चित्र, प्रगति में बाधाएँ—इनके शब्द और रूप-चित्र हमें मिलेंगे। 'लाल तारा', 'जीवन-तरु' 'घासवाली', 'कलाकार', 'गोशाला' उच्च कोटि की कहानियाँ हैं। 'डुगडुगी' सफल एकांकी नाटक है। शेष रचनाएँ निबंध, शब्द-चित्र, गद्य-गीत, स्केच कुछ भी कही जा सकती हैं। इनमें कुछ तो मामूली हैं, जैसे 'कुदाल', 'हरसिंगार', 'गुलाब' अदि। अधिकांश मर्मस्पर्शी हैं, जैसे 'हलवाहा', 'पनिहारिन', 'जवानी'।

'जीवन-तरु' कहानी हमको विशेष अच्छी लगी। स्व० प्रेमचन्द की कहानियों से इसकी तुलना हो सकती है। इस कहानी में 'हाकिम मामा' एक विशेष सफल चरित्र-चित्र है। 'हाकिम मामा' की जोड़ के अनेक नर-रत्न अब भी हमारे ग्राम्य-जग में छिपे पड़े हैं, किन्तु सामन्त-प्रथा, सूद ख़ोरी आदि उन्हें पनपने नहीं देते।

'लाल तारा' बेनीपुरीजी की जीवन और साहित्य-प्रेरणा का चिन्ह है। झुटपुटे आकाश में यह उदय होता है, तो किसान अपनी खाट छोड़ खेत की ओर चल देता है। एक दूर देश में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी यह 'लाल तारा' उदय हुआ है 'जो उसके ऐसे लोगों के लिए प्रभात, रोशनी, ज़िन्दगी और मुक्ति का संदेश लाया है।'

हँसिया हथौड़ा के प्रति आप कहते हैं :

'हँसिया-हथौड़ा ! शक्ति और कर्त्तव्य के ये दो प्रतीक हैं !

'कृषि और उद्योग के !

'प्रकृति और पुरुष के !

संसार-रथ इन्हीं दो पहियों पर बढ़ा जा रहा है...'

इस संग्रह में कहानी की टेकनीक में अनेक नये प्रयोग हैं। इसकी विचार-धारा क्रान्तिकारी और प्रगतिशील है। जीवन के यहाँ सच्चे और मर्मस्पर्शी चित्र मिलेंगे। साथ ही हमारी सामाजिक प्रगति में जो बाधाएँ हैं, उनकी ओर ज़बरदस्त इशारा।

साहित्य की यह परिभाषा मानकर बेनीपुरीजी चले हैं—'साहित्य हमारे सामूहिक जीवन के संघर्षों और उन संघर्षों के परिणाम-स्वरूप अग्रगामी गति का प्रतीक है।...कब तक उसे पीछे की ओर मुड़ने को बाध्य करोगे या आगे बढ़ने से रोके रहोगे ? उसमें गति है, वह रुक नहीं सकती—उसकी गति अग्रगामी है, वह आगे की ओर ही बढ़ेगी।' साहित्य का यह आदर्श ही नहीं, वरन् प्रयोग भी हमें 'लाल तारा' में मिलता है।

देहरादून। प्रकाशचंद्र गुप्त।

• • •

हुंकार—रामधारी सिंह 'दिनकर' ; प्रकाशक—प्रगतिशील पुस्तकालय बाँकीपुर, पटना ; मूल्य ।।।) । प्रथम संस्करण, १९३९ ।

'प्रगतिशील पुस्तकालय' का दूसरा प्रयास 'दिनकर' की कविताओं का संग्रह है। 'दिनकर' का एक कविता-संग्रह 'रेणुका' हिन्दी के सामने पहले आ चुका है। 'रेणुका' में दो प्रवृत्तियों में परस्पर कशमकश दिखाई देती है। 'अंगारा जिस पर इंद्रधनु खेल रहे' इन शब्दों में 'दिनकर' की आत्मा का आवरण-पृष्ठ पर परिचय दिया गया है। 'रेणुका' में इन्द्रधनुष आकर्षक रंगों में चमका था। 'हुंकार' में 'दिनकर' की आत्मा का अंगारा भभक उठा है।

'आमुख' में 'दिनकर' ने स्वयं अपनी कविता का परिचय दिया है :

'सयय द्रुह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल धाये,
आज खोज से उन्हें बुलाने वर्तमान के पल आये।'

हम यह बात सुनने के अभ्यस्त हो चुके हैं कि कवि को राजनीति से कुछ मतलब नहीं। वह तो जग के राग-द्वेष से अलग कल्पना के जग में सुन्दर मीठे गीत बनाने में तल्लीन रहता है। हम भूल जाते हैं कि एक समय तमाम यूरोप की कविता फ्रांस की राज्यक्रान्ति द्वारा प्रभावित हुई थी। हिन्दी के सभी तरुण कवि आज भारतीय जीवन के निकट आने की कोशिश में हैं। पन्त,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'निराला', भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र। किन्तु 'एक भारतीय आत्मा' 'नवीन' और 'दिनकर' के काव्य में निरन्तर ही हमारे स्वतंत्रता-संग्राम की गूँज रही है। 'बेनीपुरी'जी ने 'दिनकर' को 'क्रान्ति का कवि' उचित ही कहा है।

'दिनकर' भावना-प्रधान कवि हैं। जीवन के सुन्दर स्वप्नों ने आपको भी आकर्षित किया है :

'पहन मुक्ता के युग अवतंस
रत्न-गुम्फित खोले कच-जाल
बजाती मधुर चरण-मंजीर
आ गई नभ में रजनी-बाल।'

किन्तु रण-भेरी की पुकार सुन आप उन्हें भूल गये हैं :

'एक राग मेरा भी रण में बन्दी की जंजीर बजे।'

आपकी अनेक कविताओं में क्रान्ति की प्रबल पुकार है : 'हाहाकार', 'नई दिल्ली के प्रति', 'विपथगा' 'मेघ-रन्ध्र में बजी रागिनी', 'हिमालय', 'भविष्य की आहट।'

'उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख
फूँकता हूँ भैरव हुंकार।'

'दिनकर' के काव्य की कोई वैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि नहीं है, तभी आप क्रान्ति को 'विपथगा' समझते हैं। न आपके काव्य में हमारे सामाजिक जीवन के श्रेणी-संघर्ष की आहट। आप उदार उग्र विचारों के राष्ट्रीय कवि हैं। आपने हमारे देश की ग़रीबी पर अश्रुपात किया है और शोषित वर्गों से आपकी प्रबल अनुभूति है :

'विभव-स्वप्न से दूर भूमि पर
यह दुखमय संसार, कुमारी!
खलिहानों में जहाँ मचा करता
है हा हा कार, कुमारी।'

'नई दिल्ली', 'विपथगा' और 'हिमालय' आदि कविताओं में सुन्दर शब्द-चित्र हैं :

'तू वैभव-मद में इठलाती
परकीया-सी सैन चलाती
री ब्रिटेन की दासी! किसको
इन आँखों पर है ललचाती?' ('नई दिल्ली')

'मेरे मस्तक के छत्र-मुकुट वसु-काल-सर्पिणी के शत फन
मम चिर कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर-चन्दन
माँजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अन्ध-तिमिर-अंजन
'संहार-खप्ट का चीर पहन नाचा करती मैं झूम-झूमन।' ('विपथगा')

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'दिनकर' टेकनीक के मामले में क्रान्तिकारी नहीं। आपके राग पुराने हैं और कहीं-कहीं तो आपका संगीत काफ़ी मामूली है :

'जेठ हो कि हो पूस, हमारे
कृषकों को आराम नहीं है;
छुटे बैल से संग कभी
जीवन में ऐसा याम नहीं है।'

'दिनकर, प्रगतिशील कवि हैं क्योंकि उनके पैरों में गति की आतुरता है :

'गति की तृषा और बढ़ती
पड़ते पद में जब छाले हैं।'

और एशिया के नव-प्रभात का आपने हमें सन्देश सुनाया है :

'खेलने हिम-शृङ्ग पर चढ़कर लगीं
रश्मियाँ क्या एशिया के प्रात की!'

भविष्य आपको आशापूर्ण दीख रहा है :

'जागरुक की जय निश्चित है
हार चुके सोनेवाले।'

देहरादून। प्रकाशचन्द्र गुप्त।

• • •

उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ: अनुवादक, रघुवंशलाल गुप्त ; प्रकाशक, किताबिस्तान, इलाहाबाद। मूल्य १)।

किताबिस्तान के इस नेत्र-रंजक प्रकाशन से हमें सन्तोष होता है कि हिन्दी में भी किताबें विलायत जैसी छपाई-सफ़ाई से निकलने लगीं। पुस्तक का आकर्षक गेट-अप देखकर एक बार अनायास ही उसे पढ़ने को जी चाहता है। हमें यह भी हर्ष है कि हमारे आई० सी० एस० वर्ग का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट हो रहा है।

'रुबाइयों' के हिन्दी में अब तक अनेक अनुवाद हो चुके हैं। इस अनुवाद का स्थान उनमें आदरणीय होना चाहिये। छन्दों का प्रवाह यहाँ सहज, अविरल, मुक्त और मधुर है। किन्तु फ़िट्ज़जैरैल्ड का स्थान 'बच्चन' के लिए सुरक्षित है ; 'बच्चन' में ही हमें स्वतंत्र काव्य-प्रेरणा का बोध होता है।

इन रुबाइयों की भूमिका विद्वत्तापूर्ण, ख़ैयाम के जीवन, काव्य, विचार-धारा आदि पर हिन्दी में अभूतपूर्व प्रकाश डालती है। यह भूमिका श्री रघुवंशलाल गुप्त की हिन्दी को बड़ी देन है, किन्तु हम आपके सभी विचारों से सहमत नहीं हो सकते।

भूमिका के विद्वान लेखक में शायद 'विचारशील मनुष्यों की स्वाभाविक धर्महीनता'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'निराला', भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र। किन्तु 'एक भारतीय आत्मा' 'नवीन' और 'दिनकर' के काव्य में निरन्तर ही हमारे स्वतंत्रता-संग्राम की गूँज रही है। 'बेनीपुरी'जी ने 'दिनकर' को 'क्रान्ति का कवि' उचित ही कहा है।

'दिनकर' भावना-प्रधान कवि हैं। जीवन के सुन्दर स्वप्नों ने आपको भी आकर्षित किया है :

'पहन मुक्ता के युग अवतंस
रत्न-गुम्फित खोले कच-जाल
बजाती मधुर चरण-मंजीर
आ गई नभ में रजनी-बाल।'

किन्तु रण-भेरी की पुकार सुन आप उन्हें भूल गये हैं :

'एक राग मेरा भी रण में बन्दी की जंजीर बजे।'

आपकी अनेक कविताओं में क्रान्ति की प्रबल पुकार है : 'हाहाकार', 'नई दिल्ली के प्रति', 'विपथगा' 'मेघ-रन्ध्र में बजी रागिनी', 'हिमालय', 'भविष्य की आहट।'

'उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख
फूँकता हूँ भैरव हुंकार।'

'दिनकर' के काव्य की कोई वैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि नहीं है, तभी आप क्रान्ति को 'विपथगा' समझते हैं। न आपके काव्य में हमारे सामाजिक जीवन के श्रेणी-संघर्ष की आहट। आप उदार उग्र विचारों के राष्ट्रीय कवि हैं। आपने हमारे देश की ग़रीबी पर अश्रुपात किया है और शोषित वर्गों से आपकी प्रबल अनुभूति है :

'विभव-स्वप्न से दूर भूमि पर
यह दुखमय संसार, कुमारी!
खलिहानों में जहाँ मचा करता
है हा हा कार, कुमारी।'

'नई दिल्ली', 'विपथगा' और 'हिमालय' आदि कविताओं में सुन्दर शब्द-चित्र हैं :

'तू वैभव-मद में इठलाती
परकीया-सी सैन चलाती
री ब्रिटेन की दासी! किसको
इन आँखों पर है ललचाती?' ('नई दिल्ली')

'मेरे मस्तक के छत्र-मुकुट वसु-काल-सर्पिणी के शत फन
मम चिर कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर-चन्दन
माँजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अन्ध-तिमिर-अंजन
'संहार-खपट का चीर पहन नाचा करती मैं झूम-घूमन।' ('विपथगा')

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'दिनकर' टेकनीक के मामले में क्रान्तिकारी नहीं। आपके राग पुराने हैं और कहीं-कहीं तो आपका संगीत काफ़ी मामूली है :

'जेठ हो कि हो पूस, हमारे
कृषकों को आराम नहीं है ;
छुटे बैल से संग कभी
जीवन में ऐसा याम नहीं है।'

'दिनकर, प्रगतिशील कवि हैं क्योंकि उनके पैरों में गति की आतुरता है :

'गति की तृषा और बढ़ती
पड़ते पद में जब छाले हैं।'

और एशिया के नव-प्रभात का आपने हमें सन्देश सुनाया है :

'खेलने हिम-शृङ्ग पर चढ़कर लगीं
रश्मियाँ क्या एशिया के प्रात की !'

भविष्य आपको आशापूर्ण दीख रहा है :

'जागरुक की जय निश्चित है
हार चुके सोनेवाले।'

देहरादून।

प्रकाशचन्द्र गुप्त।

• • •

उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ: अनुवादक, रघुवंशलाल गुप्त ; प्रकाशक, किताबिस्तान, इलाहाबाद। मूल्य १)।

किताबिस्तान के इस नेत्र-रंजक प्रकाशन से हमें सन्तोष होता है कि हिन्दी में भी किताबें विलायत जैसी छपाई-सफ़ाई से निकलने लगीं। पुस्तक का आकर्षक गेट-अप देखकर एक बार अनायास ही उसे पढ़ने को जी चाहता है। हमें यह भी हर्ष है कि हमारे आई० सी० एस० वर्ग का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट हो रहा है।

'रुबाइयों' के हिन्दी में अब तक अनेक अनुवाद हो चुके हैं। इस अनुवाद का स्थान उनमें आदरणीय होना चाहिये। छन्दों का प्रवाह यहाँ सहज, अविरल, मुक्त और मधुर है। किन्तु फ़िट्ज़जैरैल्ड का स्थान 'बच्चन' के लिए सुरक्षित है ; 'बच्चन' में ही हमें स्वतंत्र काव्य-प्रेरणा का बोध होता है।

इन रुबाइयों की भूमिका विद्वत्तापूर्ण, ख़ैयाम के जीवन, काव्य, विचार-धारा आदि पर हिन्दी में अभूतपूर्व प्रकाश डालती है। यह भूमिका श्री रघुवंशलाल गुप्त की हिन्दी को बड़ी देन है, किन्तु हम आपके सभी विचारों से सहमत नहीं हो सकते।

भूमिका के विद्वान लेखक में शायद 'विचारशील मनुष्यों की स्वाभाविक धर्महीनता'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है। आप ख़ैयाम को सूफ़ी मानते हैं और सदाचारी, धर्मभीरु मुसलमान। आप उन्हें कोरा पियक्कड़ या नास्तिक मानने के लिए तैयार नहीं। न और कोई ही इसके लिए तैयार होगा। किन्तु 'ईश्वर की सत्ता में उनका अनन्य विश्वास था' और ख़ैयाम की मदिरा संकेत मात्र है, इन बातों में हमको रुबाइयाँ पढ़कर सन्देह होने लगता है।

रुबाइयों में ख़ैयाम की आत्मा सत्य, अकिंचन रूप में झलकी है। रुबाइयों के ही आधार पर हम उन्हें बुद्धिवादी, निराशावादी, अनीश्वरवादी कह सकते हैं। रुबाइयाँ 'अक्ल' के मारे 'अक़्लमन्दों' की आहें हैं।

'क्या जाने किस दूर-देश से, क्यों, किसकी इच्छा से, हाय!
आया था जल की हिलोर-सा, जग में निरुद्देश, निरुपाय?
अन्त पवन का झूका-सा औ', छूट चला जग में ख़ैयाम
क्या जाने किस दूर देश को, असफल; अर्थशून्य, असहाय?'

'अपने ही कर से उसने जब, सबको किया गुणागुण दान
तो क्यों एक नरक भोगेगा और दूसरा सुख-सन्तोष?'

'जो मन्दिर-मसजिद में करते सगुण-निगुण का अनुसंधान,
और मकतबों में पढ़ते जो रीति-नीति का पूरा ज्ञान—
दोनो ही को सम्बोधित कर, मित्र! निराशा-निशि का दूत
कहता है, 'क्यों भटक रहे हो मिथ्या-पथ में ओ नादान?'

यह हमको मानना पड़ता है कि ख़ैयाम की कविता में नैराश्य के साथ-साथ भाग्यवाद का भी प्रबल पुट है:

'हम तुम तो गोटें हैं केवल, है शतरञ्ज जगत का खेल
रात-दिवस दोनो हैं इसके, काले-पीले घर दो-मेल।
इधर-उधर कुछ चाल चलाकर काल खिलाड़ी लेता मार
औ' अनन्त की अगम पिटारी में धर देता अन्त सकेल।'

रुबाइयाँ हम अन्ध-विश्वासी भारतवासियों को जीवन के प्रति 'क्या?' और 'क्यों?' आदि प्रश्न पूछने के लिए विवश करती हैं। इस अनुवाद की रूप-रेखा स्वच्छ, सुस्पष्ट है, अतः इस रूप में 'रुबाइयों' का हिन्दी में स्वागत है।

देहरदून। प्रकाशचन्द्र गुप्त।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनामिका—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रकाशक : भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ; प्रथम संस्करण, मूल्य २।)

पंतजी ने 'रूपाभ' में 'अनामिका' के कवि की स्मरणीय छन्दों में स्तुति की है :

'छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर-सी निःसृत—'

इस प्रकार की श्रद्धाञ्जलि की हिन्दी के इस तेजस्वी कवि के प्रति आवश्यकता भी थी, जिसमें उसका हृदय अकृतज्ञता के भार से क्षुब्ध न हो उठे।

पिछले वर्षों में कवि 'निराला' के मौनप्राय रहने से मन में यह आशंका उठ रही थी कि कीट्स की भाँति कहीं उसकी प्रेरणा का दीपक भी आलोचकों ने न बुझा दिया हो। अब 'अनामिका' और 'तुलसीदास' के सर्वाङ्ग-सुन्दर दर्शन ने बहुत कुछ संतोष प्रदान किया है।

'निराला' हमें अनायास ही ब्राउनिंग का स्मरण दिलाते हैं। कविता की वही अजस्र टेढ़ी-मेढ़ी धार, रूढ़िबद्ध छंदों की उपेक्षा, काव्य के संगीत को जीवन की भग्न ताल से मिलाने का प्रयास।

'अनामिका' में अनेक नई-पुरानी कविता हैं। सन् '२३ और '२४ से लगाकर '३८ तक के प्रयास। इन सबका हमारे ऊपर यह 'इमप्रेशन' पड़ता है कि भावों की बाढ़ को कवि ने भरसक रोका है। उसकी कविता संयम और शासन-भार से दबी है। कभी-कभी उसके कण्ठ का संगीत उमड़ पड़ता है और रोके नहीं रुकता।

'निराला' सर्वप्रथम 'टेकनीशियन' हैं। उनकी कविता से हमें अखंड किन्तु सयत और शासित शक्ति का भान होता है। 'निराला' ने हिन्दी में नये मुक्तक छंदों को सफलतापूर्वक निबाहा है। स्वयं आपके शब्दों में :

'वही तोड़ बन्धन
छन्दों का निरुपाय—
'अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह !'

आपकी भावना मानो प्रत्यञ्चा की भाँति कसी तनी रहती है। पंतजी के कथनानुसार स्फटिक शिलाओं से इस शिल्पी ने कविता का मंदिर गढ़ा है।

'निराला' जनसाधारण के कवि नहीं, यह हमें मानना पड़ता है। आपके काव्य का प्रधान गुण चिन्तन है। कल्पना विद्युत् की भाँति बीच-बीच में चमक जाती है। मुक्तक छंदों में संगीत का निर्वाह कठिन हो जाता है, विशेषकर कथा के प्रवाह में। 'सेवा-प्रारम्भ' में तो हम कभी-कभी भूल भी जाते हैं कि हम कविता पढ़ रहे हैं :

"स्वामीजी घाट पर गये,
'कल जहाज़ छूटेगा' सुनकर
फिर रुक नहीं सके,
जहाँ तक करें पैदल पार—
गंगा के तीर से चले।..."

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'राम की शक्ति-पूजा' अपने शब्दाडंबर से हमें 'प्रिय-प्रवास' का स्मरण दिलाती है।

'निराला' हिन्दी काव्य में क्रान्तिकारी शक्ति हैं। आप हमारे भविष्य की ओर इंगित करते हैं। आपने जो कला में अन्वेषण किये हैं, उनके बल पर हमारा भविष्य बनेगा। टेकनीक में ही नहीं, विचार-प्रणाली में भी 'निराला' क्रान्ति के वाहक हैं।

'तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर,
गंगा-जल-धारा !'

अधिकतर 'निराला' के विषय कविता और छन्दों के प्रति हैं, किन्तु मनुष्य के कठोर जीवन और प्रकृति-बाला के रूप का आभास भी हमें निरन्तर आपकी कृति में मिलता है। आधुनिक हिन्दी काव्य का चिरप्रिय सखा दुखवाद भी हमें यहाँ मिलता है :

'रोग स्वास्थ्य में, सुख में दुख, है अन्धकार में जहाँ प्रकाश,
शिशु के प्राणों का साक्षी रोदन जहाँ वहाँ क्या आश
सुख की करते हो तुम, मतिमन् ?...'

किन्तु मुक्ति का सँदेश भी आपने सुनाया है :

'या निष्ठुर पीड़न से तुम नव जीवन
भर देते हो, बरसाते हैं तब घन !'

आपके नेत्र अतीत की ओर नहीं, भविष्य की ओर लगे हैं।

'अनामिका' में अनेक प्रगतिशील कविताएँ भी हैं : 'दान', 'उद्बोधन', 'तोड़ती पत्थर', 'सहज' आदि। इन कविताओं में जीवन का दारुण सत्य है, साथ-साथ आशा का संदेश भी।

'ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर कर-कठिन प्रहार—'
'पुनर्वार गायें नूतन स्वर, नव कर से दे ताल,
चतुर्दिक छा जाये विश्वास।'

मनुष्य को आपने अविचल समता का राग सुनाया है :

'मानव मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा,
वह नहीं खिन्न ;
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक,
हो कोई सर—'

'अनामिका' में प्रकृति का भी अभिनव दर्शन हमें मिलता है। रूप-माधुरी 'निराला'जी के काव्य में हमें मिलती है, किन्तु आप उसके स्वामी हैं, दास नहीं। आपके कण्ठ में मीठे गीत उमड़ पड़ते हैं, पर उनके प्रति आपको मोह नहीं :

'वे किसान की नई बहू की आँखें
ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बन्द कर पाँखें।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथवा आप सान्ध्य-वधू का आकर्षक चित्र खींचते हैं :

'बीत चुका शीत, दिन वैभव का दीर्घतर
डूब चुका पश्चिम में, तारक-प्रदीप-कर
स्निग्ध-शान्त दृष्टि सन्ध्या चली गई मन्द मन्द
प्रिय की समाधि ओर, हो गया है रव बन्द
विहगों का नीड़ों पर, केवल गंगा का स्वर
सत्य ज्यों शाश्वत सुन पड़ता है स्पष्टतर—'

किन्तु शक्ति के इस उपासक कवि को अपनी रुचि का विषय ज्वालामय 'ज्येष्ठ' में मिलता है :

'घोर-जटा-पिंगल मंगल देव ! योगि-जन-सिद्ध !
धूलि-धूसरित, सदा निष्काम !'

प्रकृति का यह तेजस्वी स्वरूप आपको आकर्षित करता है :

'उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू—'

मिठास आज हिन्दी कविता में बहुत है। बहुत मिठास भी अच्छी नहीं होती। 'निराला' के काव्य में काफ़ी पच्चीकारी है:

'गोमती क्षीण-कटि नदी नवल,
नृत्य पर मधुर-आवेश-चपल।'

किन्तु केवल पच्चीकारी में ही उलझकर आप नहीं रह जाते। आप अपनी कमज़ोरियाँ जानते हैं :

'शुष्क हूँ—नीरस हूँ—उच्छृङ्खल—'
'वहाँ एक यह लेकर वीणा दीन
तन्त्री-क्षीण,—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?'

किन्तु आप अपनी शक्ति भी जानते हैं। कविता-प्रेयसी से आप कहते हैं :

'अगर कभी देगी तू मुझको कविता का उपहार
तो मैं भी तुझे सुनाऊँगा भैरव के पद दो चार !'
'तेरे सहज रूप से रँग कर
झरे गान के मेरे निर्झर,
भरे अखिल सर,
स्वर से मेरे सिक्त हुआ संसार !'

हमें हर्ष है कि हिन्दी के इस तरुण तपस्वी कवि को अपनी शक्तियों पर इतना अधिकार है और इतना आत्मविश्वास उसके मन में है। उसकी प्रतिभा के इस मध्यान्ह से हिन्दी कविता फले-फूलेगी।

प्रकाशचन्द्र गुप्त।

देहरादून।

• • •

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अदबी दुनिया—(उर्दू) वार्षिकांक जनवरी, १९३९; सम्पादक, मौलाना सलाहउद्दीन अहमद। 'अरबी दुनिया' कार्यालय, १० एक्सचेंज मैंशन, दि माल, लाहोर से सवा रुपए में प्राप्य।

उर्दू अखबारों के विशेषांक जिस शान-शौकत से निकलते हैं, हिन्दी के पत्रवाले वैसे विशेषांक नहीं ही निकालते हैं। 'अदबी दुनिया' योंभी उर्दू के बेहतरीन पत्रों में है, पर उसका यह सालनामा तो बस एक चीज़ है। इसके लिए उसके संचालक हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं।

डिमाई १/४ आकार के २७६ पृष्ठों का यह विशेषांक बहुत-से रंगीन और सादे चित्रों से सुशोभित है। इतना सब होने पर भी कीमत सिर्फ़ सवा रुपया है, जो बहुत कम है। चित्र सभी सुरुचि के परिचायक हैं।

सामग्री के विषय में तो पूछना ही क्या। हर क़िस्म की अच्छी से अच्छी सामग्री संग्रहीत की गई है। क्या कहानी, क्या कविता, क्या लेख सभी ऊँचे पाये के हैं। हमें तो विशेष तौर पर कहानियों में श्रीकृष्णचंद (जिनसे हमारे हिंदी के पाठक भी उनकी 'आंगी' और 'दो फ़र्लांग लम्बी सड़क' द्वारा परिचत हो चुके हैं) की 'जन्नत और जहन्नुम; श्री राजेंद्रसिंह बेदी (जिनसे हिंदी के पाठक 'भोला' के लेखक के रूप में परिचित हैं) की 'मन की मन में'; ड्रामों में मौलाना सलाहउद्दीन साहब का 'संत तुकाराम' जिसकी ज़बान इतनी सलीस और प्यारी है कि क्या कहा जाय; और श्री इंद्रजाल दास 'क़मर' का 'कुणाल'; निबंधों में पर्चे के सहकारी संपादक 'मीराजी' का 'विद्यापति और उसके गीत' विशेष तौर पर पसंद आये; और हम उन्हें उर्दू के किसी भी पाठक को पढ़ने की खुशी से सलाह दे सकते हैं। ख़ास बात तो यह है कि इस सब तमाम सामग्री के चयन में दृष्टिकोण बिल्कुल प्रगतिशील रखा गया है।

कविताओं से हमें विशेष दिलचस्पी न थी, इसलिए थोड़ी ही पढ़ीं। और सच तो यह है कि पूरे विशेषांक को पढ़ सकना एक बड़ा मुश्किल काम था। जो कुछ पढ़ा, उसे अच्छा ही पाया। इसीलिए पूरे के विषय में एक धारणा हम बना सके। लेकिन समझ में नहीं आता कि इतना कमज़ोर शेर—

'उम्र इस सोच में तमाम हुई
क्या हुआ और हाय! क्या न हुआ।' (बसंत सहाय)

कैसे इस अंक में स्थान पा सका।

प्रारंभ में श्री 'मीराजी' लिखित इस अंक में दी गई तसवीरों का वर्णन है जो एक लाभप्रद आयोजन है क्योंकि बहुत कम लोग तसवीरों का आनन्द ले सकते हैं जब तक कि उन्हें उसके विषय में बताया न जाय। इसी प्रकार हमारे संपादकजी ने 'बज़्मे अदब' शीर्षक संपादकीय में विशेष सामग्री का गुण-कथन किया है जिससे उन चीज़ों में अधिक रस लिया जा सके। यह ढंग पत्रकारी का अच्छा उदाहरण है।

कुल मिलाकर हम इस अंक से विशेष प्रभावित हुए। और बहुत-से लोग भी हुए होंगे क्योंकि जो अंक हमें मिला है, वह उस अंक का दूसरा एडीशन है। हिंदी के पत्रों के विशेषांकों का दूसरा एडीशन होते तो नहीं सुना गया। इस तरह अंक हर तरह से संग्रहणीय है।

हम मौलाना सलाहउद्दीन और उनके सहकारी श्री 'मीराजी' का इस सुंदर आयोजन के लिए अभिनंदन करते हैं।

'सुशील'।

काशी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

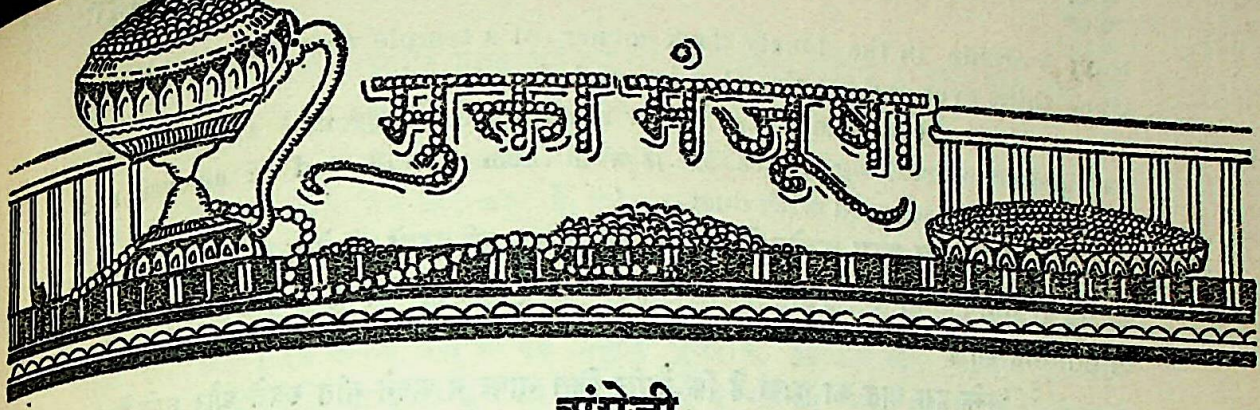

अंग्रेजी

कविवर टैगोर पर एक सोवियट साहित्यकार की सम्मति

[गत ७ मई को कविवर टैगोर की ७९ वीं वर्षगाँठ मनाई गई। इस अवसर पर टैगोर पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में, विशेष कर बंगाल की पत्र-पत्रिकाओं में विविध लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें से एक लेख मास्को के सोवियट साहित्यकार श्री पी० एस० कोगन का है—Tagore and Soviet Russia— जो कुछ वर्ष पूर्व श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित 'The Golden Book of Tagore' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ था और कलकत्ते का सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' ने पुनः प्रकाशित किया है। उस लेख का महत्वपूर्ण अंश हम यहाँ अपने पाठकों के लिए उद्धृत करते हैं। सं० —]

श्री पी० एस० कोगन लिखते हैं:—

'हमारे विरोधी हमारे ऊपर अक्सर यह इलज़ाम लगाते हैं कि हमने संस्कृति को नष्ट किया है। हालाँकि सोवियट रूस की तरह विश्व-साहित्य की एवं गणमान्य साहित्यकारों की क़द्र दुनिया के किसी अन्य देश ने न की होगी। सन् १९३० में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हमारे देश में पधार कर इस बात को स्वयं देखा है कि हमारी श्रमिक जनता उनकी कृतियों में कितनी अधिक रुचि लेती है।··· उनके सभा-स्थान पर प्रेक्षकों का अपार समूह इकट्ठा होता था। मास्को में उनके चित्रों की प्रदर्शनी देखने के लिए हजारों की संख्या में दर्शक आते थे।··· उनकी मातृ-भाषा का ज्ञान न होते हुए भी हमारी जनता अत्यन्त उत्सुकता के साथ उनकी कवितायें सुनने के लिए आती थी···

'राजनीति में और नई दुनिया के निर्माण से हम व्यस्त रहने के कारण···साहित्य-भक्त टैगोर हमें पराये प्रतीत होते होंगे, ऐसी शंका लोगों के मन में पैदा होना स्वाभाविक है। किन्तु ऐसा समझना भूल होगी, शाश्वत जगत् की खोज में लगा हुआ विचारप्रवर्तक, और तात्कालिक समस्याओं को हल करने में लगा हुआ क्रान्तिकारी ये दोनो परस्पर के शत्रु नहीं हो सकते।···आगे चलकर इन दोनो में अवश्य मेल हो सकता है।···हम तो इन विचार-प्रवर्तकों के स्वप्न को सत्य-सृष्टि में अवतीर्ण होते हुए देखना चाहते हैं।···इस कार्य में हम लगे हैं। इसी कारण टैगोर के गीतों से हमारे हृदय में स्वतन्त्रता की पुकार की प्रतिध्वनि उठती है।···टैगोर के रहस्यवाद को हमारे जीवन में स्थान नहीं है।···किन्तु, शोषित और पीड़ित मानव के प्रति उनके गीतों से जो मार्मिक भाव निकलते हैं···वे मानो हमारे ही मनोभावों के प्रतिरूप हैं!'

'दूसरी दृष्टि से भी टैगोर हमारे निकट पहुँचते हैं और हमें प्रिय लगते हैं। वे जहाँ अपने ईश्वर की आराधना करते हैं, वहीं हम अपना ईश्वर पाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

'Pride can never approach to where thou walkest in the clothes of the humble among the poorest and lowliest and lost.'

'गीतांजलि' के उनके ये वाक्य मैंने कितने बार पढ़े होंगे! और उसी ग्रंथ से निम्न-लिखित उद्धरण देखिये:

'Leave the chanting and singing and telling of beads. Whom dost

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

thou worship in the lonely dark corner of a temple with doors all shut, Open thine eyes and see thy God is not before thee !

He is there, where the tiller is tilling hard ground and where the pathmaker is breaking stones. He is with them in sun and in shower and his garment is covered with dust.....'

'रास्ते पर काम करनेवाले इन्हीं लाखों श्रमिक स्त्री-पुरुषों की सेना हमने तैयार की है, जो समूची मानव-जाति के उद्धार के लिए लड़ रही है।...यही कारण है टैगोर के प्रति हमारे स्वागतोत्साह का।

'मुझे इस बात का दुःख है कि टैगोर जिस भाषा में अपने गीत रचते और गाते हैं, वह भाषा मैं नहीं जानता। इतना होने पर भी उन्होंने जब मास्को के हाउस ऑफ् यूनियन के Column Hall में अपने गीत गाकर सुनाये, तब उनके अन्तःसौन्दर्य का आभास मुझे छू ही गया...। इस Golden Book के द्वारा मैं अपने देश की ओर से यह कथन करना चाहता हूँ कि टैगोर से हम परिचित हैं और उनको हम आदर की दृष्टि से देखते हैं। उनकी कृतियों के अच्छे-से-अच्छे अनुवाद हमने अपनी भाषा में प्रकाशित किये हैं। हमारी श्रमिक जनता कुछ ही काल पूर्व अज्ञान और अन्याय से मुक्त हुई है। अब वह संस्कृति-संवर्धन के कार्य में मग्न है; और जितनी शीघ्रता से यह कार्य पूरा होता जायगा उतनी ही शीघ्रता से हम मानव-जाति के उन श्रेष्ठ उपदेशकों के समीप पहुँचेंगे, जिनमें टैगोर की कीर्ति प्रज्ज्वलित दीपशिखा के समान चमकती है !'

काशी।

चयनकर्ता, यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

गुजराती

ऐतिहासिक उपन्यास

[भारती साहित्य-संघ द्वारा संचालित अंजलि ग्रन्थमाला के पाँचवें वर्ष की प्रथम पुस्तक 'बन्धन अने मुक्ति' अभी ही प्रकाशित हुई है। यह ऐतिहासिक उपन्यास है और लेखक ने इसमें एक महान सौन्दर्य की सृष्टि की है। रक्त-पात और लूट-मार के बीच भी एक व्यक्ति, जब कि सारा देश अँग्रेज मात्र के विरुद्ध था और उनके स्त्री-बच्चों की हत्या करते हिचकते न था, किस तरह प्रेम और महानता से भरा अडिग खड़ा रहता है। वह सशस्त्र क्रान्ति का पक्षपाती है; परन्तु विप्लव के महान आदर्श ध्वंस के साथ ही निर्माण करने की बात भी नहीं भूलता। युद्ध में कठोर यमराज की भाँति तलवार चलाता है; परन्तु घायलों और बन्दियों की सार-सँभाल भी उतनी ही तत्परता से करता है।

यहाँ हम 'बन्धन अने मुक्ति' की भूमिका से कुछ अंश उद्धृत करते हैं। कई अनिवार्य कारणों से हम लेखक का असली नाम प्रकट करने में असमर्थ हैं। उनका नाम 'दर्शक' है।—सं०]

'मिट्टी से मानव की सृष्टि होती है; परन्तु वह मिट्टी नहीं है। अथवा जो मनुष्य के मिट्टीवाले भाग को—हाड़-चाम और नश्वर देह को ही महत्त्व देते हैं, वे उसका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। मानव में मिट्टी तो है ही, परन्तु साथ ही कुछ और भी विशेष पदार्थ उसमें है कि जिसे लेकर वह मानव बन सका है।

'समाज के घटना-क्रम और उथल-पुथल का ब्यौरा लिखनेवाला इतिहास जब किसी व्यक्ति-विशेष के जीवन-संघर्ष का वर्णन करता है तो वह कहानी या काव्य में परिणत हो जाता है। तब ऐतिहासिक घटनायें उस व्यक्ति के अन्तर की विविधता और वैभव को प्रकाश में लाने-वाले साधन भर रह जाती हैं। नदी-यात्रा के लिए वे नौका-मात्र हैं।

'फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि क्या लेखक उन घटनाओं का उपयोग ऐसे उपन्यासों में कर सकता है, जो इतिहास में न घटी हों।

'मैं मानता हूँ कि यदि लेखक उस समय की ऐतिहासिक मनोधारा को सुसंगत रूप से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यक्त करने के लिए कुछ काल्पनिक प्रसंग खड़े करे तो उसमें हानि नहीं है। परन्तु उस युग की पुकार के विरुद्ध ही किन्हीं काल्पनिक घटनाओं की सृष्टि अवश्य अनिष्टकर होगी।

'मनुष्य और मिट्टी के बीच जो भेद है वही इतिहास और कहानी के बीच भी है। कहानी में इतिहास से कुछ भिन्न और अपूर्व है, अतएव महत्त्वपूर्ण भी है। उसी अपूर्व और महत्त्व-पूर्ण को लेकर कहानी कहानी है। इतिहास भी उसी के बल जीवित और चरितार्थ होती है।

'मेरा मन कहानी में भूत काल की घटनाओं या किसी युग-विशेष का वर्णन कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। इस सम्पूर्ण सृष्टि में यह मनुष्य पूजनीय, दर्शनीय और भेंटनीय है। और इसीलिए महान है। सृष्टि की दूसरी कोई भी कृति प्रच्छन्न सौन्दर्य और सत्यनिष्ठा में उसका मुक़ाबिला नहीं कर सकती। और रूप-राशि की यह प्रच्छन्नता भारतीय में है; अंग्रेज़ में है; हरि-जन में है; हबशी और भील-कोल में, साधु और हत्यारे-पापी सभी में है। और जिसमें यह जितना अधिक प्रच्छन्नता लिये है, उसके जीवन में अन्तस्तल की आराधनामय और मानवता की महान महँगी और पवित्र पलें भी उतना ही अधिक हैं। प्रभु-साक्षात्कार से जैसे मनुष्य अधिक निर्मल हो जाता है, उसी तरह मानव को अन्तर की इस व्यापक भावना से देखनेवाला भी धीरे-धीरे भेद और कलह को भूल अभेद भय और प्रेम का अनुभव करनेवाला हो जाता है।

'और साहित्य तभी कृतार्थ होता है जब कि वह पाठक में सम भाव जाग्रत कर सके। संसार में साहित्य की यही सफलता और मूल हेतु है कि वह एक-दूसरे के बीच के भौगोलिक और सांस्कृतिक अन्तर को दूर कर अन्तःकरण की निकटता को जाग्रत करे।'

काशी। चयनकर्ता, श्यामू सन्यासी।

• - •

शैली और विचारतत्त्व

[गुजराती दैनिक 'जन्म भूमि' प्रति गुरुवार को 'कलम अने किताब' नाम से एक अतिरिक्त अंक निकालता है। श्री झवेरचंद मेघाणी 'कलम अने किताब' विभाग के सम्पादक हैं और गुजराती साहित्य में श्रेष्ठ आलोचना विवेचना और साहित्यिक चर्चाओं के लिए 'कलम अने किताब' काफी प्रसिद्ध है। यहाँ हम 'जौन ऑफ लण्डन की कली' के उस लेख से कुछ अंश उद्धृत करते हैं जिसका निर्देश श्री मेघाणी भाई ने गुरुवार ८ : ६ : ३९ के 'कलम अने किताब' अंक में किया है।—सं०]

'ऐसी लोकमान्यता है कि साहित्य में लेखन-शैली का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है; पर वास्तव में यह असत्य है। शैली को अलग रूप में रखकर देखनेवाला लेखक आकाश-कुसुम की खोज करता है। मैथ्यु अर्नाल्ड ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में अपने मित्र रसेल से कहा था—लोग ऐसा समझते हैं कि मैं उन्हें शैली सिखा सकता हूँ। कितनी भद्दी बात है यह! अरे भाई, क्या तुम्हारे पास कुछ कहने के लिए है? यदि है तो उसे जहाँ तक हो सके, स्पष्टता से कह दो। बस, शैली का यही एक-मात्र रहस्य है।

'सबसे पहले तो कुछ कहने के लिए होना चाहिये; फिर उसे व्यक्त करते स्पष्ट और स्वच्छ शब्दोच्चार होना जरूरी है। यह कहनेवाला अर्नाल्ड तो शैली का पारखी था। परन्तु वह आलोचना करते समय शैली के दोष कैसे पकड़ा करता था? जब-जब उसने किसी रचना को उसकी शैली के लिए बुरा बताया है तो मूल दोष उस कथावस्तु की निर्बलता ही रही है। बर्क के गद्य के लिए उसने 'सुरुचि से बहुत दूर हो गया' वाक्य का प्रयोग किया है। और वह बर्क की शैली का दोष न होकर उसकी विचार-धारा का ही दोष है।

'सच्ची शैली तो कथा-वस्तु के साथ एकरस होती है; क्योंकि कथा-वस्तु का आन्तरिक तत्त्व ही शैली है। रसास्वाद सफल शैली का सबसे बड़ा गुण है। सीखे हुए शब्दों या वाक्यों में से शैली नहीं बनती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सेम्युअल बटलर ने एक जगह लिखा है : मैं एक भी ऐसे लेखक को नहीं जानता, जिसने अपनी शैली के लिए परिश्रम किया हो । और इसीलिए कोई भी मनन जैसी चीज़ नहीं दे सका ।

'इस तरह सेम्युअल अर्नाल्ड से भी दो क़दम आगे बढ़ जाता है । पर तात्पर्य दोनों का एक ही है कि शैली कोई निराली या स्वतंत्र वस्तु नहीं है । फूल में जो स्थान सुगन्ध का, कन्या की देह में जो स्थान लाली का है वही स्थान लेखन में शैली का है ।

'शैली के रहस्य की चर्चा करता हुआ एक और विद्वान लिखता है : अधिकतर विचार स्वयं ही चोट करनेवाले और असर करनेवाले होते हैं, सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त होकर वे शैली का निर्माण करते हैं । उदाहरण के लिए : 'Rachel weeping for children *because they are not*' के बदले यदि लिखा गया होता कि Rachel weeping for the children because they are dead तो शैली का अधःपतन हो जाता । और शैली का यह अधःपतन मूल कल्पना और विचार के अधःपतन से ही होता है । 'मरे बालकों के लिए' वह रोती थी कहने में 'मरे' शब्द का प्रयोग कुछ यह भाव भी प्रदर्शित करता है कि उन बालकों के शव कहीं पड़े हैं । और उन शवों की कल्पना के साथ शवों के सड़ने, दुर्गन्धित होने की भावना भी निहित है । अब 'क्यों कि वे नहीं रहे थे—Because they were not— कहने में सन्तान के विनाश होने की विराट निगूढ़ता छिपी है । इस वाक्य में क्षुद्र भावनाओं के लिए स्थान नहीं है । इसे ही Sublimity—महानता—कहते हैं । यह शैली हो गई ।

'यदि जौन ब्राइट ने अपने Angel of Death—मृत्युदूत-वाले ऐतिहासिक भाषण में We can almost hear the beating of lins wings—हम उसके पंख मारने का शब्द सुन सकते हैं—के बदले the slapping of his wings—उसके पंखों की फड़फड़ाहट कहा होता तो सारे भाषण का प्रभाव नष्ट हो जाता । केवल एक ही शब्द का फर्क है Slapping' और Beating समानार्थी शब्द हैं । फिर उस महान वक्ता ने केवल शब्दों का ही हेरफार नहीं किया । यह एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने की बात न थी । वहाँ तो एक विचार के बजाय दूसरा विचार रखा गया है । Beating शब्द में एक से अधिक भाव हैं । मृत्युदूत के पंखों की सुगंभीर गति, वायु को वेग मिलने और ताल-बद्ध दुर्दम्य शक्ति की उसमें प्रतिध्वनि है । अर्थात् इसमें केवल शैली का नहीं, अपितु विचार और भावना का भी अन्तर है ।

'शैली को वस्तु द्वारा ही उत्पन्न करना चाहिये । शैली विचार का पुष्प ही है । अर्नाल्ड के इस कथन में कि पहले कुछ कहने के लिए हो तो उसे स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया जाय, एक अस्पष्टता रह जाती है । इस सूत्र की ध्वनि कुछ इस तरह की लगती है कि पहले विचार-वस्तु मन में पूरी पूरी तैयार हो जानी चाहिये और फिर उसके लिए शब्दों की तलाश की जाय । वास्तव में यह ठीक नहीं है । विचार करने की क्रिया के मूल में ही शब्द-प्रयोग और वाक्य-विन्यास समाये हुए हैं । वाल्टर रेले के शब्दों में : विचार केवल इसलिए वाणी प्राप्त नहीं करते हैं कि वे एक दूसरे माध्यम द्वारा व्यक्त हो सकें । परन्तु अपने स्वरूप को एक दूसरे ही सत्य और विषद रूप में व्यक्त कर सकने के लिए वे वाणी की सहायता लेते हैं ।

'दूसरे की शैली का इसीलिए अनुकरण नहीं करना चाहिये कि उसकी भावनाएँ भी अनुकरणीय होती हैं । लिखने में 'कला' की चर्चा बिलकुल आधुनिक है; और यह हमें किन्हीं साहित्यिक चमत्कारों की नक़ल करने के अलावा और कुछ नहीं देती । और ये चमत्कार जैसे-जैसे अधिक परिचित होते जायँगे वैसे-वैसे निर्बल भी साबित होते जायँगे ।

'महान लेखक सदा ही अपने विचारों से भरपूर होते हैं, कला से नहीं । गंभीर क्या हलके साहित्य में अनिवार्य सौन्दर्य तो केवल सत्य का ही है ।'

काशी ।

चयनकर्ता, श्यामू सन्यासी ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

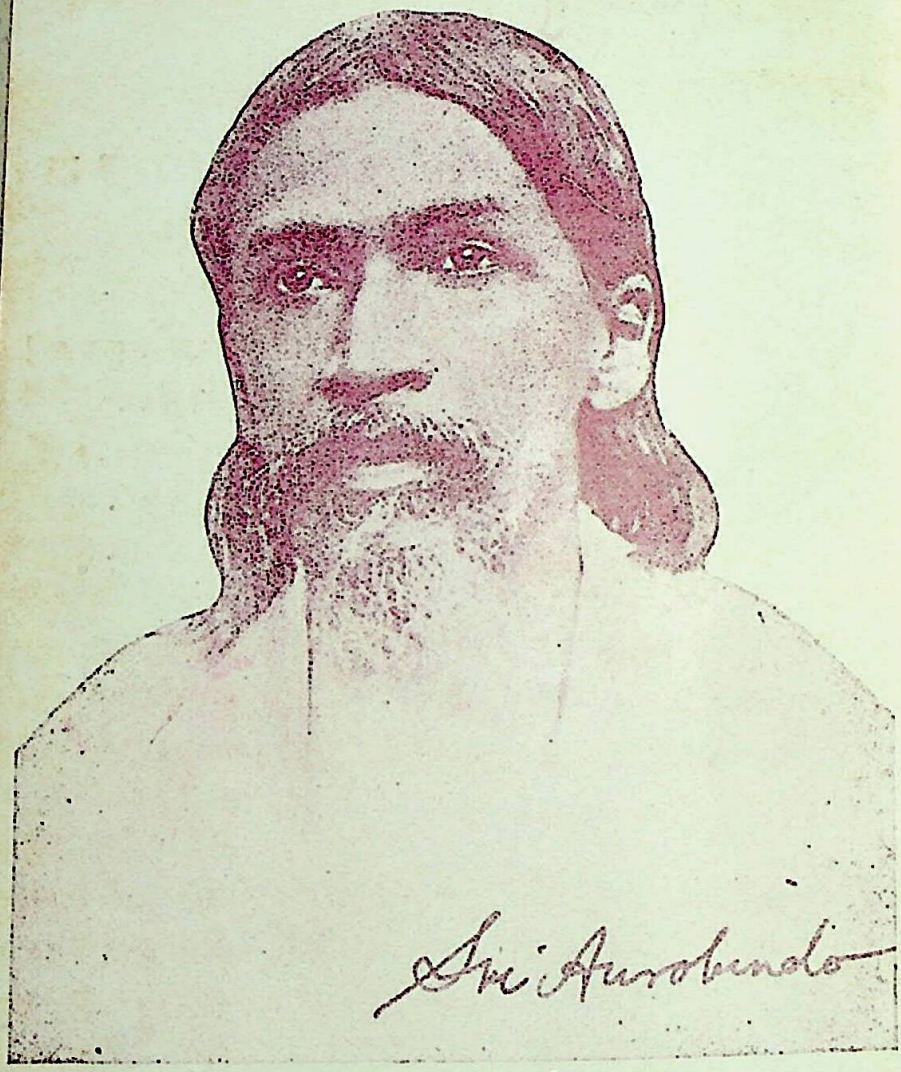

श्रीअरविन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जुलाई-अगस्त १९३९ :: वर्ष ९ : अंक १०-११

श्रीअरविन्द--अङ्क

लक्ष्य

हमें अब भी कौन सी नई वस्तु प्राप्त करती है ?

प्रेम, क्योंकि अभी तक तो हमने केवल द्वेष और आत्म-सन्तोष ही प्राप्त किया है ; ज्ञान क्योंकि अभी तक तो हमें केवल स्खलन, अवलोकन और विचार-शक्ति की ही प्राप्ति हुई है ; आनन्द क्योंकि हम अभी तक सुख-दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं ; शक्ति क्योंकि अभी तक तो निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे पल्ले पड़ी है ; जीवन, अभी हमने जन्म, वृद्धि और मरण ही तो पाया है ; और हमें प्राप्त करना है ऐक्य क्योंकि अभी युद्ध और संघ ही की उपलब्धि हुई है न !

एक शब्द में कहें तो हमें भगवान को पाना है और अपने आपको उसके दिव्य स्वरूप की प्रतिमा के रूप में फिर से गढ़ना है।

—श्रीअरविन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमृत के छींटे

[मातुश्री]

[यह मातुश्री की अमृतमयी वानी के कुछ शब्द हैं। इनका एक संग्रह Words of the mother के नाम से प्रकाशित हो चुका है। आचार्य अभयदेवजी ने 'अमृत विन्दु' नाम से उसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया है। – सं०]

भगवान के बिना जीवन एक दुःखमय धोखा है, और भगवान साथ हों तो सब आनन्द ही आनन्द।

×

प्रभु की विस्तृत भुजाओं का आश्रय ग्रहण करने से सब कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। उनके बाहु हमें प्रेम के साथ अपनाने के लिए सदा खुले हैं।

×

भगवान की ओर अभिमुख होओ, तुम्हारे सब दुख-दर्द विलीन हो जायँगे।

उनके चरणों में हम अपने-आप को सच्चे भाव से अर्पित कर दें, तभी अपने अनगिनत मानवीय दुख-दर्दों से छुटकारा पा सकते हैं।

×

शान्ति असीम हो, अचञ्चलता गहरी और प्रशान्त, स्थिरता अविच्छिन्न हो और भगवान् पर भरोसा नित्य बढ़नेवाला।

×

हम चुपचाप आनन्द-मग्न रहें। भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने का सर्वोत्तम ढङ्ग यही है।

×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो कुछ तुम्हें भगवान की तरफ़ से दिया जाये, उसे सदा प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार करो।

× + ×

एक मुस्कुराहट का कठिनाइयों पर वही असर होता है जो सूर्य का बादलों पर—वे उन्हें छिन्न-भिन्न कर देती है।

×

सुख की चिन्ता करना दुःखी होने का निश्चिततम उपाय है।

×

सुख जीवन का लक्ष्य नहीं है। साधारण जीवन का लक्ष्य है अपने कर्तव्य को पूरा करना और आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है भगवान की प्राप्ति।

शान्ति और अचञ्चलता रोगों को दूर करने के लिए महान् औषधियाँ हैं। जब हम अपने शरीर के अणुओं में शान्ति ला सकेंगे तो हम रोग-मुक्त हो जायँगे।

×

शरीर रोग को वैसी ही प्रबलता के साथ त्यागे जैसे कि मन झूठ को।

×

अभी तक सुख और स्वास्थ्य इस संसार में सामान्य अवस्था की वस्तुएँ नहीं हैं। हमें बड़ी सावधानी से इनकी रक्षा करनी चाहिये कि कहीं इनके वैरी बीच में न आ घुसें।

×

निरन्तर सुख का स्रोत अन्तरात्मा में है।

यदि कला का उद्देश्य दिव्य जीवन के विषय में कुछ अभिव्यक्त करना है तो उसमें भी विशाल और प्रकाशमय शान्ति अवश्य प्रकट होगी।

× × ×

भगवान पर हमारा भरोसा किन्हीं वाह्य परिस्थितियों पर आश्रित न हो।

×

यदि हमें सचमुच भगवान से प्रेम करना है तो हमें आसक्तियों से ऊपर उठना होगा।

×

बिचारा भगवान ! उसे न जाने कैसे-कैसे भयङ्कर कृत्यों का अपराधी ठहराया जाता है।

यदि ये आरोप सच्चे हों तो वह कितना बड़ा दैत्य ठहरेगा। हाँ, वही जो वास्तव में साक्षात् अनुकम्पा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवान को ही अपनी आत्मा का एकमात्र विश्वसनीय साथी रखो।

×

भगवान का साक्षात्कार हमारे जीवन की परम आवश्यकता हो।

×

भगवान के सङ्कल्प को ही अपना सङ्कल्प बनाना, यही तो परम रहस्य है।

×

केवल भगवान का ही चिन्तन करो; भगवान सदा तुम्हारे साथ ही होंगे।

×

हमारा सम्पूर्ण जीवन भगवान के प्रति की गई प्रार्थना-रूप हो।

×

भगवान के लिए कर्म करना शरीर द्वारा उनकी उपासना ही तो है।

×

भगवान के लिए तुम्हारा मूल्य बस उतना ही है जितना कि तुमने उन्हें दिया है।

× × ×

हमें सीखना होगा भगवत् कृपा पर ही आश्रित रहना और हर परिस्थिति में उसी का आवाहन करना। तब यह निरन्तर चमत्कार कर दिखायेगी।

×

हमें भगवान पर जितना भरोसा है उसी के अनुपात में भगवत् कृपा हमारे लिए काम करेगी और हमें सहायता पहुँचायेगी।

×

भगवत् कृपा के आगे कौन पात्र है और कौन अपात्र?

सब उसी एक और अभिन्न मा के बच्चे हैं।

उसका प्रेम सब पर एक-सा बरस रहा है।

पर वह हर एक को उसकी प्रकृति और उसके ग्रहण सामर्थ्य के अनुसार देती है।

× × ×

कामना पर विजय प्राप्त करना, कामना को तृप्त करने की अपेक्षा कहीं अधिक सुखद है।

×

हमें ऐसी हर बात से सावधान रहना चाहिये जो हमारे अन्दर दिखावे के भाव को प्रोत्साहित करे।

×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सच्चे साहस में न अधीरता होती है और न जल्दबाजी।

×

ईर्ष्या अपनी सहचरी असूया के साथ लघु और दुर्बल मनुष्यों में ही पैदा होती है। वह हमारे क्रोध की अपेक्षा दया की पात्री है। हमें इसके प्रति सर्वथा उदासीन रहते हुए अपनी अविचल निश्चितता के आनन्द में विभोर रहना चाहिये।

×

परिभव और अपमान से ऊपर उठना मनुष्य को सच्चे अर्थों में महान बना देता है।

×

सत्य भाषण उच्च कोटि के पुरुष की सर्वोत्कृष्ट पहिचान है।

× × ×

हमारी अभीप्सा का सूर्य अहंकार के बादलों को छिन्न-भिन्न कर दे।

×

प्रत्येक प्रभात एक नई उन्नति की सम्भावना को लिये होता है।

×

यह नये वर्ष का जन्म हमारी चेतना का नया जन्म हो।

चलो भूत को बहुत पीछे छोड़ते हुए आज हम एक प्रकाशमय भविष्य की ओर दौड़ें।

प्रभो ! यह संवत्सर मर रहा है और हमारी कृतज्ञता तुम्हारे चरणों में नतमस्तक है।

प्रभो ! संवत्सर फिर जन्मा है, हमारी प्रार्थना तुम तक पहुँचने के लिए उठ रही है।

भगवन् ! हमारे लिए भी यह एक नवजीवन का प्रभात सिद्ध हो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बन्धन

[श्रीअरविंद]

सारा संसार स्वतन्त्रता के लिए उत्सुक रहता है, फिर भी प्रत्येक प्राणी को कुछ बन्धन प्रिय होते हैं। यह प्रथम पहेली है जो कि हमारी प्रकृति की एक न सुलझाई जा सकनेवाली गुत्थी के रूप में उपस्थित होती है।

मनुष्य को जन्म का बन्धन प्रिय होता है, इसलिए वह उसके साथ आनेवाले मृत्यु के बन्धनों की भी पकड़ में आता है। इन बन्धनों में रहता हुआ वह अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता और अपनी पूर्णता के लिए प्रयत्न करता है।

मनुष्य को शक्ति प्रिय है, इसलिए वह निर्बलताओं के अधीन होता है; क्योंकि संसार शक्ति की लहरों का एक समुद्र है जो लहरें आपस में टकराती हैं और उमड़कर एक दूसरे पर पड़ती हैं। इसलिए वह व्यक्ति जो किसी एक लहर के शिखर पर चढ़ा हुआ है, दूसरी हजारों लहरों की थपेड़ों से व्याकुल होगा ही।

मनुष्य को सुख प्रिय है, इसलिए उसे दुःख और यातना के चक्कर में भी पड़ना पड़ता है। क्योंकि सच्चा सुख जिसमें दुःख का मिश्रण नहीं है केवल स्वतन्त्र और वासनारहित आत्मा का ही विषय है, लेकिन मनुष्य के अन्दर का वह अंश जो कि सुख के पीछे भागता है, स्वयं एक कष्ट और संघर्षवाली शक्ति है।

मनुष्य को शान्ति की भूख होती है; लेकिन साथ ही उसे क्रियाशील मन और पीड़ित हृदय के अनुभवों को लेने की भी चाह होती है। सुख उसके हृदय को एक ज्वर-सा प्रतीत होता है, शान्ति में उसे निष्क्रियता और एकरसता लगती है।

मनुष्य को अपने भौतिक व्यक्तित्व की सीमायें प्रिय होती हैं, पर साथ ही वह असीम मन और नित्य आत्मा की स्वतंत्रता को भी चाहता है।

मनुष्य के अन्दर कोई वस्तु ऐसी है जिसे कि इन सब विरोधों में एक अद्भुत आकर्षण प्रतीत होता है; ये सब उसके मानसिक व्यक्तित्व के लिए जीवन की कला का रूप धारण कर लेते हैं। इन परस्पर-विरोधी पहलुओं में सुखरूपी अमृत का पहलू ही नहीं है जो कि उसकी रुचि और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्सुकता को अपनी ओर आकर्षित करता है, बल्कि दूसरा दुःखरूपी विषवाला पहलू भी उसे अपनी ओर आकृष्ट करता है।

इन सब बातों में कुछ सार्थकता है और इन सब विरोधों से बचने का कुछ उपाय भी है। प्रकृति के सभी विचित्र संयोगों में कोई निश्चित विधि काम कर रही है और उसकी जटिल से जटिल उलझन का भी कुछ-न-कुछ समाधान है।

मृत्यु एक प्रश्न है जो कि प्रकृति लगातार जीवन के आगे रखती है और वह जीवन को याद दिलाती रहती है कि वह अभी तक अपने आपको पूर्णतया प्राप्त नहीं कर सका है। यदि संसार में मृत्यु का आवेष्टन न होता तो प्राणी सदा के लिए एक अपूर्ण जीवन में बँधा रहता। लेकिन मृत्यु से आक्रान्त होकर वह जागता है और इस विचार तक पहुँचता है कि उसे पूर्ण जीवन को पाना है और इसके साधनों की तथा पूर्ण जीवन सम्भव है या नहीं इसकी खोज करता है।

निर्बलता भी शक्ति, उत्साह और बड़प्पन के सामने जिनमें कि हम मान अनुभव करते हैं, यही परीक्षा और यही प्रश्न उपस्थित करती है। शक्ति जीवन का एक खेल है; वह उसकी मात्रा को दिखाती है और उसके प्रकाशन के मूल्य का पता लगाती है। निर्बलता प्रगतिशील जीवन के पीछे पड़ी हुई मृत्यु का खेल है और इसके प्राप्त उत्साह की परिमितता पर बल देती है।

दुःख और पीड़ा प्रकृति की ओर से आत्मा को इस बात की चेतावनी देते हैं कि वह सुख जिसमें कि आत्मा आनन्द ले रहा है, जीवन के वास्तविक सुख की एक हलकी-सी छायामात्र है। प्रत्येक व्यक्ति के दुःख और पीड़ा में उस तीव्र सुख की ज्वाला का रहस्य छिपा हुआ है जिसकी तुलना में हमारे बड़े-से-बड़े सुख एक धुँधली-सी टिमटिमाहट के समान हैं। यही रहस्य है जो कि उन कठिन परीक्षा के अवसरों, कष्टों और जीवन के भयप्रद अनुभवों के प्रति भी आत्मा के लिए आकर्षण उपस्थित करता है जिनसे कि हमारा भावुक मन बचना चाहता है और घृणा करता है।

हमारे क्रियाशील व्यक्तित्व और इसके साधनों की अशान्ति और शीघ्रसमाप्ति प्रकृति की ओर से इस बात के सूचक हैं कि शान्ति ही हमारा वास्तविक आधार है और उत्तेजना आत्मा की एक बीमारी है। केवल शान्ति का कोई फल लाते हुए न दीखना और उसकी एक-रसता प्रकृति की ओर से यह दर्शाते हैं कि केवल उस दृढ़ आधार पर क्रियाओं के खेल को ही वह हमसे चाहती है। परमेश्वर सदैव खेलें रचता है; परन्तु कभी दुःखित नहीं होता।

शरीर की सीमायें एक साँचे के समान हैं; आत्मा और मन अपने आपको उसमें भरते हैं, उन्हें तोड़ डालते हैं और फिर लगातार अपेक्षाकृत विस्तृत सीमाओं में उन्हें ढालते रहते हैं जब तक कि इस शान्ति और उनकी अपनी अनन्तता के बीच में कोई समन्वय का सूत्र नहीं मिल जाता।

स्वतन्त्रता व्यक्ति की असीम एकता का नियम है और प्रकृति का गुप्त स्वामी है। उस व्यक्ति का प्रेम का नियम ही सेवा है जो विविध आत्माओं के खेल को खेलने में सहायता देने के लिए स्वेच्छया तैयार होता है।

जब स्वतन्त्रता बन्धनों में और अधीनता में काम करती है, तब वह शक्ति का नियम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है, प्रेम का नहीं। वस्तुओं का वास्तविक स्वभाव तब विकृत हो गया है और सत्ता के साथ आत्मा के व्यवहारों में झूठ का शासन आ गया है।

प्रकृति इस विकार से प्रारम्भ करती है और इससे हो सकनेवाले सभी संयोगों के खेल खेलती है और अन्त में इसे ठीक अवस्था में आने देती है। इसके बाद वह इन संयोगों के आन्तरिक सार को एकत्र करती है और उसे प्रेम और स्वाधीनता के नये सुन्दर समन्वय में परिणत कर देती है।

स्वतन्त्रता असीम एकता द्वारा आती है क्योंकि यही हमारी वास्तविक स्थिति है। इस एकता का तत्त्व हम अपने अन्दर ही पा सकते हैं; हम इसके खेल को समझ सकते हैं, सबके साथ अपनी एकता स्थापित करके। प्रकृति में आत्मा का वास्तविक प्रयोजन इस विविध अनुभव में ही है।

उस अपरिमित एकता को अपने अन्दर देख चुकने के बाद अपने आपको संसार के लिए समर्पित कर देना यही एकान्त स्वतन्त्रता और अनियन्त्रित साम्राज्य है।

जब हम अनन्त हैं तो मृत्यु के बन्धन से स्वतन्त्र हो जाते हैं, क्योंकि जीवन तब हमारी अमर सत्ता का एक खेल मात्र हो जाता है। हम निर्बलता से स्वतन्त्र हो जाते हैं, क्योंकि हम एक भरे हुए समुद्र के समान हैं जो कि लहरों के असंख्य आघातों में रस लेता है। हम दुःख और यातना से स्वतन्त्र हो जाते हैं, क्योंकि हम सीख जाते हैं कि अपने व्यक्तित्व की उन सबके साथ संगति कैसे करनी चाहिये, जिनका कि इससे वास्ता पड़ता है और हम सब चीज़ों में अपनी सत्ता के आनन्द की क्रिया और प्रतिक्रिया को अनुभव करने लगते हैं। हम सीमाओं से स्वतन्त्र हो जाते हैं, क्योंकि शरीर अनन्त मन का खिलौना-सा बन जाता है और अमर आत्मा की इच्छा को पालन करना सीख जाता है। हम भावुक मन और हृदय के ज्वर से स्वतन्त्र हो जाते हैं, तथापि हम गतिरहितता से बँधे हुए नहीं रहते।

अमरता, एकता और स्वतन्त्रता हमारे ही अन्दर हैं और वहाँ वे इसकी प्रतीक्षा में रहती हैं कि हम उन्हें खोजें। परन्तु प्रेम के आनन्द के लिए परमेश्वर फिर भी हमारे अन्दर अनेक होकर रहेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीअरविन्द

(जीवन में एक झाँकी)

[श्रीअरविंद के जीवन के विषय में श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी के एक आश्रमवासी ने एक यह परिचय भेजा है जो पाठकों की उत्सुकता को शांत करेगा। आश्रमवासी अपना नाम प्रकट करना नहीं चाहते इसलिए उनका नाम हम नहीं दे रहे हैं।—सं०]

सन् अट्ठारह सौ बहत्तर (१८७२) की पन्द्रहवीं अगस्त के दिन कलकत्ते में श्रीअरविन्द का जन्म हुआ। सात वर्ष की अवस्था (१८७९) में, वे और उनके साथ उनके दो बड़े भाई, विद्याभ्यास के लिए इङ्गलैण्ड भेजे गये। वहाँ वे १४ वर्ष रहे। मैंचेस्टर के एक अंग्रेज़ परिवार में इनका भरण-पोषण हुआ। सन् १८८५ में वे लन्दन के सेन्टपॉल विद्यालय में प्रविष्ट हुए और सन् १८९० में यहाँ से उत्तम श्रेणी की छात्रवृत्ति लेकर केम्ब्रिज के किंग्स कॉलेज में भरती हुए, जहाँ उन्होंने दो वर्ष तक अध्ययन किया। इसी सन् १८९० में इन्होंने इन्डियन सिविल सर्विस की भी परीक्षा पास की, पर दो वर्ष के अभ्यास-क्रम के अन्त में अश्वारोहण की परीक्षा में अपने को उपस्थित ही नहीं किया, फलतः वे सिविल सर्विस के लिए अनुपयुक्त माने गये। इस समय बड़ौदा नरेश श्रीमान् (अब स्वर्गीय) सयाजीराव गायकवाड लन्दन में थे। श्रीअरविन्द उनसे मिले और बड़ौदा-राज्य की सेवा स्वीकार कर १८९३ के फेब्रुएरी मास में इंग्लैण्ड से भारत वापिस आये।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि इंग्लैण्ड में श्रीअरविन्द ने जो शिक्षा पाई थी उससे उन्हें यूरोप की प्राचीन, मध्यकालिक और अर्वाचीन संस्कृति का परिचय पूरी तरह प्राप्त हो गया। ग्रीक और लैटिन भाषाओं में उन्होंने असाधारण निपुणता पाई। फ्रेंच भाषा तो उन्होंने मैंचेस्टर में बाल्यकाल में ही सीख ली थी। जर्मन एवं इटैलियन भाषाओं में भी इतनी कुशलता प्राप्त कर चुके थे कि गेटे और दांते के काव्य-ग्रन्थों का उन्होंने मूल से ही अध्ययन किया। उन्होंने केम्ब्रिज की ट्रिपौस परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी और आई० सी० एस० की परीक्षा में ग्रीक और लैटिन में अपूर्व अङ्क पाये थे।

सन् १८९३ से १९०६ तक, तेरह वर्ष, श्रीअरविन्द ने बड़ौदा में व्यतीत किये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहले वे राज्य के राजस्व-विभाग में तथा महाराज के सेक्रेटेरियेट् में कार्य करते रहे। पीछे से बड़ौदा कालेज में आंग्ल-भाषा के उपाध्याय, तथा अन्त में वाइस प्रिंसिपल नियुक्त हुए। यह तेरह वर्ष श्रीअरविन्द के स्व-संस्कार में तथा साहित्यिक कृतियों में बीते—पांडिचेरी से उनके जो काव्य पीछे प्रकाशित हुए वे प्रायः इसी समय लिखे गये थे। इन वर्षों में उन्होंने भावी कार्य के लिए अपने को सन्नद्ध किया। इंग्लैण्ड में, इनके पिता के स्पष्ट निर्देश के अनुसार इन्हें विशुद्ध पाश्चात्य शिक्षा दी गई थी, जिसमें भारत अथवा पूर्व की संस्कृति का कुछ भी संपर्क नहीं था। इस त्रुटि को श्रीअरविन्द ने बड़ौदा में पूरा किया, संस्कृत का गंभीर अध्ययन किया और कई आधुनिक भारतीय भाषाओं (जैसे, बँगला, गुजराती, मराठी, हिन्दी आदि) का ज्ञान प्राप्त किया। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की भावना का तथा इसके पूर्वतर एवं वर्तमान स्वरूप का गहरा विवेचन किया।

इस काल के अन्तिम भाग का अधिकांश उन्होंने लगभग अवकाश पाकर चुपचाप राजनैतिक कार्य में बिताया। क्योंकि बड़ौदा में उनकी जो स्थिति थी उससे वे सार्वजनिक रीति से कोई कार्य नहीं कर सकते थे। सन् १९०५ में बङ्गविच्छेद के विरुद्ध जो आन्दोलन उठा उससे उन्हें बड़ौदा-राज्य की सेवा छोड़कर प्रकट रीति से सार्वजनिक आन्दोलन में सम्मिलित होने का अवसर मिला। १९०६ में उन्होंने बड़ौदा छोड़ा और नये स्थापित हुए बङ्गाल नेशनल कॉलेज के आचार्य होकर कलकत्ता चले आये।

१९०२ से १९१० तक, आठ वर्ष, श्रीअरविन्द के राजनैतिक कार्य के वर्ष थे। पहले चार वर्ष तो वे यवनिका के पीछे रहकर अन्य सहकारियों के साथ, स्वदेशी-आन्दोलन के आरम्भ करने की तैयारी करते रहे। इस समय तक वे प्रकट रूप से प्रसिद्ध नहीं हुए थे। उधर बङ्ग-विच्छेद आन्दोलन से राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) में एक नूतन धारा का प्रवेश हुआ। लोगों के सामने प्रस्ताव पास करके सुधार करना ही उद्देश्य था। अब वह न रह गया, अपितु वे अपना बहुत अधिक उत्तरदायित्व समझने लगे। विशेष क्रियात्मक पुरुषार्थ का समय उपस्थित हुआ।

इस नवीन प्रगति से प्रेरित हो श्रीअरविन्द बङ्गाल में आये और महासभा के नये दल के साथ हो लिये। इस दल ने कांग्रेस में अभी जन्म ही लिया था। यद्यपि यह उदार दल (मॉडरेट्स) की अपेक्षा विचारों की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ा हुआ था, तो भी इसके सदस्यों की संख्या बहुत कम थी—और प्रभाव भी अभी कुछ नहीं था। इस दल का राजनैतिक सिद्धान्त असहयोग की ही एक अस्पष्ट-सी योजना थी। और कार्यतः विषय-समिति के अधिवेशनों की आड़ में उदारदल के नेताओं से निष्फल संघर्ष के अतिरिक्त इस नवीन दल ने कुछ नहीं किया था। श्रीअरविन्द ने इस दल के नेताओं को प्रेरणा दी कि वे एक निश्चित और श्रेष्ठतम कार्यक्रम को लेकर खुले तौर पर सामने बढ़ें और अखिल भारतीय दल के रूप में अपने को संगठित करें। महाराष्ट्र के लोकप्रिय नेता लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को इस दल का नायक बनाया गया और यह संकल्प किया गया कि उदार दल कांग्रेस की पर्याप्त सेवा कर चुका है, अब उसके बदले हमें कांग्रेस पर अधिकार कर लेना चाहिये। उदार और राष्ट्रीयदल (जिन्हें विरोधी गरम दल भी पुकारते थे) के बीच जो प्रसिद्ध ऐतिहासिक संघर्ष हुआ, उसका मूल यही है। इससे दो वर्ष के भीतर भारतीय राजनैतिक प्रगति का रूप और का और हो गया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस नवजात राष्ट्रीयदल (नेशनलिस्ट पार्टी) ने देश के सामने स्वराज्य—स्वाधीनता—का ध्येय प्रस्तुत किया। जहाँ पहले उदार (नरमदल) दल के आगे शासन-सुधार की मन्दी गति से एक-दो शताब्दियों के बाद कहीं जाकर औपनिवेशिक स्वशासन की ही आशा थी।

नवीन दल ने अपने पुरोगम को क्रियात्मक रूप देने के लिए ऐसे उपायों का अवलम्बन किया जो बहुत-से अंशों में सिनफेन (Sinn Fein) नीति से मिलते-जुलते थे। इस नीति का कुछ वर्ष बाद आयर्लैण्ड में विकास हुआ और इसने सफलता-सूचक परिणाम पैदा किये। इस नई नीति का मूल सूत्र था स्वावलम्बन, इसका एक उद्देश्य तो जाति में शक्ति और बल का प्रभावोत्पादक संचार करना था, और दूसरा सरकार के साथ पूर्ण असहयोग, ब्रिटिश और विदेशी माल का बहिष्कार और उसके स्थान पर स्वदेशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना, ब्रिटिश अदालतों का बहिष्कार करके उनके बदले स्वतन्त्र देशी न्यायालयों की स्थापना, सरकारी विश्वविद्यालयों और मदरसों का बहिष्कार करके राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों और शिक्षणालयों को जन्म देना तथा युवक-समाज का निर्माण करना जो पुलिस और आत्मरक्षा का कार्य कर सके, और आवश्यकता पड़ने पर शान्तिमय उपायों से भी प्रतिद्वन्दियों का मुकाबिला कर सके। श्रीअरविंद की यह महत्वाकांक्षा थी कि काँग्रेस को अपने हाथ में लेकर उसे सुव्यवस्थित राष्ट्रीय कार्य का एक केन्द्र बनाया जाय। वह तब तक युद्ध जारी रखे जब तक वह अपना उद्देश्य 'पूर्ण स्वराज्य' प्राप्त करने में सफल न हो।

इसी समय 'वन्देमातरम्' नाम से एक दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन भी श्री अरविन्द करते थे। श्रीअरविन्द के प्रभाव से नये राष्ट्रीय दल ने इस पत्र को अपना मुखपत्र माना और इसका खर्च चलाया। कारावास में जाने से पहले श्रीअरविन्द ही अन्त तक इस पत्र की नीति का संचालन करते रहे। यह पत्र शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हो गया। १९०७ से १९०८ तक के संक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण अरसे में इस पत्र ने भारतवासियों के राजनैतिक विचारों में भारी परिवर्त्तन कर दिया और उस समय के परिवर्तन की छाप आज भी भारतीय मस्तिष्क में दीख पड़ती है। इस संग्राम में यद्यपि उत्साह तथा जोश पर्याप्त था और यह आगामी भविष्य के लिए बहुत उपयोगी था तो भी यह देर तक न रह सका, क्योंकि देश अभी तक ऐसे कार्यक्रम को पूर्णतया क्रियात्मक रूप देने के लिए अपरिपक्व था।

१९०७ में श्री अरविन्द राजद्रोह के अभियोग में बन्दी किये गये, किन्तु वह आरोप प्रमाणित नहीं हो सका और वे बेलाग छोड़ दिये गये। राजनैतिक क्षेत्र में वे अभी तक केवल व्यवस्थापक और लेखक के रूप में ही प्रकट थे, पर अब इस घटना के कारण तथा अन्य नेताओं के कारागार में चले जाने अथवा अलग हो जाने के कारण इन्हें बंगाल में इस दल के नेता के रूप में प्रकट होना पड़ा और तभी वे पहली बार एक वक्ता के रूप में व्याख्यान-वेदी पर उपस्थित हुए। सन् १९०७ में, सूरत में, समान बलवाले दोनो दलों के भीषण संघर्ष के कारण, कांग्रेस के टूटने पर, जो राष्ट्रीयपरिषद् हुई उसका सभापति-पद श्रीअरविन्द ने ग्रहण किया। १९०८ के मई मास में इन्हें अलीपुर षड्यन्त्र केस में गिरफ्तार किया गया। समझा गया कि अपने भाई श्रीबारीन्द्रकुमार द्वारा संचालित क्रान्तिकारी दल में श्रीअरविन्द का भी हाथ था। पर इस बार भी उनके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं ठहर सका और इस मामले में भी वे निरपराधी समझकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छोड़ दिये गये। इस बीच, अभियोग के निर्णय होने तक उन्हें अलीपुर जेल में अभियुक्त बन्दी के नाते रहना पड़ा। १९०९ के मई मास में वे बाहर आये।

बाहर आकर उन्होंने देखा कि उनके दल का संघटन टूट चुका है, नेता लोग जेल में जाने अथवा निर्वासित होने के कारण इधर-उधर बिखर गये हैं और दल में अब किसी प्रकार का उत्साह एवं कार्यशक्ति नहीं रही है। आन्दोलन में फिर से जान फूँकने के लिए एक वर्ष तक उन्होंने अकेले ही रहकर बहुत उद्योग किया। इसी प्रकरण में उन्होंने दो साप्ताहिक पत्र 'कर्मयोगिन्' और 'धर्म' क्रमशः अंग्रेजी और बँगला में निकाले। परन्तु अन्ततोगत्वा उनकी यही धारणा हुई कि भारतवर्ष उनकी नीति को सक्रिय रूप देने के लिए अभी तक पूर्णतया कटिबद्ध नहीं है। उन्होंने सोचा कि पहले कुछ अधिकार प्राप्त करके स्वराज्य-आन्दोलन के लिए आवश्यक तैयारी कर लेनी चाहिये अथवा जिस तरह महात्मा गान्धी ने दक्षिण अफ्रिका में शान्तिमय उपायों का अवलम्बन किया, उसी तरह यहाँ भी करना चाहिये। परन्तु बाद में उन्होंने यह बात अच्छी तरह समझ ली कि इन आन्दोलनों के करने का समय अभी नहीं आया है और इसलिए मुझे इस दिशा में किसी भी प्रकार का नेतृत्व करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त अलीपुर जेल के हवालात के १२ मास उन्होंने योग-साधना में व्यतीत किये थे। उनका आध्यात्मिक जीवन उन्हें एकान्तसेवन के लिए प्रेरित कर रहा था, अतः उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र से, कम-से-कम कुछ समय के लिए, पृथक् होने का निश्चय कर लिया।

उन्नीस सौ दस के फेब्रुवरी मास में वे चन्द्रनगर के एक निर्जन स्थान में चले गये और एप्रिल के प्रारम्भ में समुद्रमार्ग से पांडिचेरी (फ्रेंच उपनिवेश) के लिए रवाना हो गये। इसी समय फिर तीसरी बार उनके विरुद्ध मामला पेश हुआ। यह उनके हस्ताक्षर से 'कर्मयोगिन्' पत्र में प्रकाशित एक लेख के विषय में था। उनकी अनुपस्थिति में मुद्रक पर ही आरोप लगाकर उसे दण्ड सुनाया गया, पर अपील में हाईकोर्ट ने मुद्रक को निर्दोष प्रमाणित किया। इस प्रकार उन पर अभियोग चलाने का यह तीसरा प्रयत्न भी विफल हुआ। श्रीअरविन्द बंगाल छोड़कर इस अभिलाषा को मन में रखे हुए गये थे कि अधिक अनुकूल परिस्थिति में वे फिर लौटकर राजनीति के क्षेत्र में उतरेंगे। पर शीघ्र ही उन्हें यह अनुभव हुआ कि उन्हें अब सब काम छोड़कर अपने आध्यात्मिक उद्देश्य में अपनी समस्त शक्तियों को केन्द्रित कर देना पड़ेगा। तब से अर्थात् १९१० में पाण्डिचेरी आने के समय से अब तक श्रीअरविन्द अपने आध्यात्मिक कार्य और साधना में ही सर्वतः लगे हुए हैं।

उन्नीस सौ चौदह में, अर्थात् चार वर्ष एकान्त योगाभ्यास के बाद उन्होंने एक तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी मासिक पत्र 'आर्य' का अंग्रेजी में प्रकाशन शुरू किया। उनके लिखे हुए बहुत से महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ जैसे 'ईशोपनिषत्', 'एस्सेज ऑन दी गीता' आदि जो पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं तथा 'लाइफ़ डिवाइन्', 'सिन्थेसिस ऑफ़ योग' आदि जो अभी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुए, इसी 'आर्य' पत्र में क्रमशः निकलते रहे हैं। योगाभ्यास करते हुए जो आन्तरिक ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ था, वही बहुत कुछ इन ग्रन्थों के रूप में प्रकट हुआ है। अन्य पुस्तकों में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का स्वरूप और महत्त्व, वेद का वास्तविक अभिप्राय, मानवसमाज की उन्नति का मनोविज्ञान, भावी कविता, काव्य का स्वरूप और विकास, मनुष्यजाति के एकीकरण की संभावना—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि विषयों पर हैं। इसी समय उन्होंने अपनी उन कविताओं को प्रकाशित किया जो उन्होंने इंग्लैण्ड और बड़ौदा में रहते हुए लिखी थीं। कुछ वे भी जो उन्होंने कलकत्ते के राजनैतिक क्षेत्र में तथा पाण्डिचेरी के प्रारम्भिक साधना-काल में बनाई थीं। 'आर्य' पत्र साढ़े छः वर्ष तक लगातार प्रकाशित होने के बाद सन् १९२१ में बन्द हो गया।

श्रीअरविन्द पाण्डिचेरी में पहले अपने चार-पाँच शिष्यों के साथ, एकान्त में ही रहे। पीछे से उनके आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करनेवालों की संख्या बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ गई कि जो साधक अपना सर्वस्व एक परम जीवन के लिए छोड़कर यहाँ आये थे, उनके जीवन-निर्वाहार्थ तथा उनके पथ-प्रदर्शनार्थ साधकों का एक संघ ही कायम करना पड़ा। यहीं से श्रीअरविन्द-आश्रम की बुनियाद पड़ी। यह आश्रम सचमुच बनाया नहीं गया, अपितु श्रीअरविन्द-रूप केन्द्र की परिधि में स्वयं ही बढ़ा और इस वर्तमान विकसित रूप में परिवर्त्तित हो गया है।

श्रीअरविन्द ने सन् १९०५ में अपना योगाभ्यास प्रारम्भ किया। भगवत्-सम्बन्ध और आत्मानुभव की प्राप्ति के जो सम्प्रदाय भारतवर्ष में अब तक प्रचलित हैं, उनसे मिलनेवाले आध्यात्मिक अनुभव के सारतत्त्वों का उन्होंने पहले अपने योगाभ्यास में साक्षात् किया। परन्तु उन्होंने इससे भी एक कदम आगे रखा और एक अत्यधिक अनुभूति-पूर्ण खोज की। इस अनुभूति में, सत्ता के दो विरोधी पहलू अर्थात् चेतन (Spirit) और जड़ (Matter) का भेद लुप्त हो जाता है। योग के बहुत-से मार्ग ऐसे ही हैं, जो साधक को इस संसार से परे ले जाकर उसका परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं, और अन्त में इन मार्गों का अवलम्बन करनेवाले साधक ऐहिक जीवन का सर्वथा त्याग कर देते हैं। पर श्रीअरविन्द परमात्मा को पाकर वहाँ की आत्मज्योति, आत्मशक्ति और आत्मानन्द को लेकर इस संसार के क्रियात्मक जीवन में इसलिए अवतरित होते हैं कि इसे भी बदलकर उस आत्मज्योति, आत्मशक्ति और आत्मानन्द का पूर्ण पात्र बना दें। इस दृष्टि में, जड़ जगत् में, मनुष्य की वर्तमान अवस्था, अज्ञान और अन्धकार से व्याप्त है, परन्तु इस अज्ञान और अन्धकार के आवरण के पीछे एक दिव्य ज्ञानमय ज्योति उपस्थित है जो यहाँ अभिव्यक्त की जा सकती है। भौतिक संसार कोई व्यर्थ चेष्टा अथवा भ्रम नहीं है, जिसकी निर्वाण अथवा मुक्ति में पहुँचकर उपेक्षा कर देनी चाहिये। प्रत्युत यह आध्यात्मिक विकास की ही रंगभूमि है। और इसी अज्ञानावृत जड़ (भौतिक) जगत् में रहकर, अध्यात्म विकास द्वारा अज्ञान और अँधियारे को दूर करके, यहीं परमात्म चैतन्य का प्रादुर्भाव किया जा सकता है। सांसारिक विकास की शृंखला में अब तक सबसे ऊँची चीज़ मन है। अथवा उच्च चैतन्य का सम्बन्ध-बीज मनुष्य की आत्मा है। परन्तु इससे भी आगे एक परम आत्मा, परम सत्, परम चित् और परम आनन्द (परात्परा प्रज्ञाशक्ति या विज्ञान) है। जो स्वभाव से ही आत्मज्ञ और, परम की स्वतःसिद्ध ज्योति और शक्ति है। मानवीय मन बुद्धि अज्ञानावृत है और इसीलिए सत्यानुसन्धान किया करती है। पर वह परात्परा प्रज्ञाशक्ति स्वतः ज्ञानमय है और अपने रूपों एवं शक्तियों को सर्वत्र अभिव्यक्त कर रही है। मनुष्यजाति में जिस सर्वोच्च पूर्णत्व की सम्भावना है, उसकी सिद्धि इसी परम आत्मा (विज्ञान) के अवतरण से सम्भव है। पर यह तभी हो सकता है जब मनुष्य उस महान् दिव्य चैतन्य की ओर अपने आत्मा और हृदय के किवाड़ खोल दे, उस ज्योति और आनन्द की ओर ऊपर चढ़े, अपने वास्तविक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सच्चे आत्मा का पता पा ले, विश्व की दिव्य चेतना के साथ ऐकात्म्य एवं सतत सम्बन्ध स्थापित करे और मन-बुद्धि-प्राण-शरीर को दिव्य बनाने के लिए उस परात्परा विज्ञान शक्ति को नीचे उतार लाये।

इस दिव्य रूपान्तर की सम्भावना को सिद्ध कर दिखाना ही श्रीअरविन्द के योग का क्रियाशील (Dynamic) लक्ष्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीअरविन्दाश्रम

[श्रीअरविंदाश्रम का यह परिचय भी हमारे उन्हीं आश्रमवासी बंधु ने लिखा है जिन्होंने श्रीअरविंद का परिचय लिखा है।—सं०]

पांडिचेरी का आश्रम

श्रीअरविन्द उन महापुरुषों में से हैं जो संसार में कभी-कभी उत्पन्न होते हैं। उनकी महानता अभी संसार को विदित नहीं है, पर मेरी ऐसी श्रद्धा है कि एक दिन संसार उसे अवश्य जानेगा।

ऐसे महापुरुष के विषय में भी भारतवर्ष में और विशेषतः उत्तर भारत में लोगों को बहुत कम परिचय है। इसका कारण यही है कि इस विज्ञापन और प्रचार के युग में भी उनको विज्ञापनबाजी प्रौपेगेन्डा—में ज़रा भी विश्वास नहीं है। सत्य में, सत्य-स्वरूप परमेश्वर में प्रतिष्ठित होने के कारण उन्हें संसार की और किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। वे स्पष्ट देखते हैं कि जो सत्य है, वह स्वयमेव प्रकट होता है। सूर्य की तरह उदित होता है। और जो उससे लाभ उठाना चाहते हैं, वे स्वयं उसके लिए आकृष्ट होते हैं। दस-बारह वर्ष पहले की बात है, जब कवि रवीन्द्र ठाकुर यूरोप जाने लगे तो वे श्रीअरविन्द से मिलने आये। उस समय उन्होंने श्रीअरविन्द से कोई सन्देश माँगा जिसे वे जहाँ जाकर सुना सकें। श्रीअरविन्द का उत्तर था 'मैं सत्य को दूसरों के दरवाजे पहुँचाने में विश्वास नहीं रखता'—(I do not believe in bringing truth to anothar's door) जिसको मुझसे कुछ लेना होगा वह मेरे पास आयेगा। यही कारण है कि हम लोग इनके विषय में कुछ भी नहीं जानते, अधूरा जानते हैं या भ्रमपूर्ण बातें जानते हैं।

ईश्वर-कृपा से पिछले दो-तीन वर्षों में मुझे श्रीअरविन्द-आश्रम में जाकर रहने का कई बार अवसर मिला है। इस परिचय के आधार पर ही श्रीअरविन्द-आश्रम के विषय में पाठकों को कुछ जानकारी देने का यत्न करूँगा।

श्रीअरविन्द की सिद्धि

सरकार श्रीअरविन्द को एक भयंकर विद्रोही समझती है—ऐसा मालूम होता है। भारत की शिक्षित जनता उनको एक महान् देशभक्त के रूप में पूजती है। इसी कारण उनको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कई बार कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए निमंत्रित किया जा चुका है। पर वे अब इस स्थिति से ऊपर हो चुके हैं। अब से लगभग तीस वर्ष पूर्व अर्थात् उन्नीस सौ दस में वे अपने तीन पागलपन बताते हुए इधर आये थे। अपना सर्वस्व भारतमाता के चरणों में समर्पित करना, भारतमाता को बन्धन-मुक्त करना और तीसरे, भगवान् का साक्षात्कार, यह थे उनके तीन पागलपन। पर शीघ्र ही पहली दो बातें, तीसरी विराट साधना में समा गईं। पांडिचेरी पहुँचकर वे पूरी तरह योग-साधन में लीन हो गये। पाठकों को आश्चर्य होगा कि पिछले बीस वर्षों से वे अपने मकान से बाहर तक नहीं निकले। वे योग के जिस ध्येय के लिए साधना कर रहे थे, उसमें उनको सन् उन्नीस सौ छब्बीस (१९२६) की चौबीसवीं (२४) नवम्बर को सफलता प्राप्त हुई। तभी से श्रीअरविन्द ने अन्य साधकों को भी योग साधना में सहायता करने का कार्य अपने ऊपर लिया। यहीं से श्रीअरविन्द आश्रम का वास्तविक आरंभ होता है।

माताजी

आश्रम की व्यवस्था के विषय में जानने के लिए माताजी के व्यक्तित्व को जानना बहुत आवश्यक है। माताजी जन्म से एक फ्रेंच महिला हैं। इनका नाम है मीरादेवी। आश्रम में सभी उन्हें माताजी, मा, दि मदर (Mother) इसी नाम से जानते या संबोधित करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से वे श्रीअरविन्द के समकक्ष ही मानी जाती हैं। आश्रम का आरंभ होने से पहले जब श्रीअरविन्द अपनी एकान्त साधना में थे, तब कुछेक साधक उनके साथ साधना में रहते थे। उसी बीच में, अर्थात् उन्नीस सौ चौदह (१९१४) में माताजी भारत में आईं। वे जापान में भी कुछ वर्ष रही हैं। भारत आने से पहले वे यूरोप और उत्तर अफ्रिका में रहकर अपनी साधना करती रही हैं। पांडिचेरी में उनका आना अनायास ही हुआ। श्रीअरविन्द से मिलीं, और तब से आश्रम में रहने लगीं। १९१४ में यूरोपीय युद्ध के कारण उन्हें तुरन्त ही फ्रांस जाने की ज़रूरत पड़ी। युद्ध के बाद वे फिर यहाँ आईं। माताजी के ही आग्रह से श्रीअरविन्द ने 'आर्य' पत्र का १९१४ में प्रकाशन आरंभ किया था। परिचय होने पर श्रीअरविन्द को मालूम हुआ कि माताजी की आध्यात्मिक स्थिति बहुत उन्नत है। पर अब तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दोनों की स्थिति एक समझी जाती है। जो बात श्रीअरविन्द को कहनी हो वह निस्संकोच माताजी को कही जा सकती है। जब से आश्रम की स्थापना हुई है—अर्थात् नवम्बर १९२६ से—उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था माताजी के ही हाथों में है। और तभी से श्रीअरविन्द किसी से न बात करते हैं और न मिलते हैं। माताजी ही सारा कार्य-संचालन करती हैं। मानो माताजी प्रकृति-रूप हैं, और श्रीअरविन्द पुरुष-रूप।

माताजी भी कम से कम बोलती हैं। आवश्यकता होने पर वे साधकों को मिलने का अवसर भी देती हैं। उनके दर्शन सम्मिलित ध्यान के समय प्रतिदिन हो सकते हैं। किन्तु बिना विशेष आज्ञा लिये उनसे भी कोई वार्तालाप नहीं हो सकता।

कभी-कभी माताजी को प्रणाम करने का अवसर भी सब साधकों को मिलता है।

माताजी के संपर्क में आने पर ही उनकी महिमा और दिव्यता की कुछ अनुभूति हो सकती है। मुझे उनसे मिलने का अवसर भी मिला है। इस मुलाकात का मुझ पर कुछ विशेष प्रभाव हुआ है, ऐसा कह सकता हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीअरविन्द के दर्शन

श्रीअरविन्द चौबीस नवम्बर उन्नीस सौ छब्बीस से सर्वथा एकान्त-सेवी हो गये हैं। तब से उनसे न कोई मिल सकता है, न उन्हें देख सकता है, बात तो करेगा ही क्या। माताजी ही एकमात्र अपवाद हैं। पर उन्हें भी बहुत ही कम मिलने की आवश्यकता होती है। तो भी आम लोगों के लाभ के लिए यह व्यवस्था की गई है कि वर्ष में तीन दिन उनके दर्शन किये जा सकते हैं। वे तीन दिन निम्नलिखित हैं—

२१ फेब्रुएरी (माताजी का जन्म-दिन)

१५ अगस्त (श्रीअरविन्द का जन्म-दिन)

२४ नवम्बर (श्रीअरविन्द का सिद्धि-दिवस)

इन तीन दिन जो उनके दर्शन प्राप्त करना चाहें, उन्हें पहले से दर्शन की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये। बिना आज्ञा प्राप्त किये किसी को वहाँ नहीं जाना चाहिये। ऐसे ही जाना व्यर्थ भी हो सकता है। मैंने सन् उन्नीस सौ पैंतीस की इक्कीस फेब्रुएरी के दिन प्रथम बार उनका दर्शन-लाभ किया। इस अवसर पर लगभग तीन सौ व्यक्ति, भिन्न-भिन्न जगह से, दर्शनार्थ आये थे। पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिये कि दर्शन के समय में भी उनसे बातचीत नहीं की जा सकती। दर्शन के लिये लगभग आधा, एक या डेढ़ मिनट (संख्या के अनुपात में) प्रत्येक दर्शनार्थी को मिलता है। प्रथा यह है कि दर्शनार्थी अपने नियत क्रम से फूल व मालाएँ लेकर अथवा खाली हाथ जाते हैं, श्रीअरविन्द को और उनकी दाहिनी ओर बैठी माताजी को प्रणाम करते हैं। इस पर वे दोनो सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हैं। उनकी तरफ़ देखते हुए, ध्यान करते हुए, या देर तक प्रणाम करते हुए अपनी-अपनी शैली के अनुसार दर्शनार्थी यह अपने एक-दो क्षण बिना देते हैं। दर्शन में मैंने उनकी मूर्त्ति को चित्र में देखी मूर्ति से अधिक भव्य पाया। उनका कोई भी चित्र बीस बरस से कम पुराना नहीं है। तब से उनका चित्र लेने की कभी अनुमति नहीं मिली।

बहुत-से दर्शनार्थी ऐसा अनुभव करते हैं कि इस दर्शन से उनकी आत्मिक उन्नति होती है। पहली बार पांडिचेरी जाता हुआ जब मैं वर्धा से मद्रास के लिए गाड़ी पर सवार हुआ तो उसी डिब्बे में एक मद्रासी युवक से मेरी भेंट हो गई। वह दर्शन के लिए जा रहा था, पहले भी कई बार दर्शन कर चुका था। मैंने उससे पूछा कि—तुम क्यों दर्शन करने जाते हो, क्या कौतूहल-वश ? 'इससे मुझे आन्तर बल (Inner strength) प्राप्त होता है।' उसने कहा। 'तुम तो पहले भी दर्शन कर चुके हो, क्या कभी ऐसा अनुभव भी हुआ ?'—मैंने फिर प्रश्न किया। उसने कहा—हाँ ! तभी तो फिर दर्शन करने की इच्छा होती है। यह बात औरों के भी अनुभव की है। बहुतों में एक बार का दर्शन आध्यात्मिक भूख जगा देता है और उन्हें फिर-फिर दर्शन करने की उत्कण्ठा होती है। ऐसे भी हैं जिनको एक बार के दर्शन के बाद फिर कभी दर्शन की इच्छा नहीं होती। यह प्रत्येक की अपनी ग्रहण-शक्ति और अभीप्सा पर निर्भर करता है।

आश्रम

लोग समझते हैं श्रीअरविन्दाश्रम किसी एक बड़े-से दायरे में शहर से बाहर किसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संस्था की तरह अलग बना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। आश्रम बनाया नहीं गया है। स्वतः बन गया है। वृक्ष की तरह स्वभावतः विकसित हुआ है। अतः जिस मकान में श्रीअरविन्द रहते थे उसमें तथा उससे कुछ दूरी पर लगभग ४५ अलग मकानों में आश्रमवासी रहते हैं। बीच-बीच में दूसरे नगरवासियों के मकान भी आ जाते हैं। आश्रमवासियों को जोड़नेवाले श्रीअरविन्द तथा माताजी हैं। कोई घिरा हुआ स्थान या किसी अन्य बाहिरी स्थिति की उन्हें जोड़ने के लिए आवश्यकता नहीं है। हाँ, सब साधक, भोजन, प्रणाम व ध्यान के सामुदायिक कार्य प्रायः एक स्थान पर एकत्र होकर मिलकर करते हैं।

आजकल लगभग दो सौ (२००) साधक वहाँ रहते हैं। इनमें सवा सौ के लगभग साधक और शेष पचहत्तर के लगभग साधिकायें हैं। कुछ लोग फ्रान्स, इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि के भी आये हुए हैं। कुछ मुसलमान भी हैं। पर यह तो केवल पाठकों के कौतूहल की दृष्टि से लिखा। वहाँ तो वस्तुतः जाति, रंग, मज़हब का कुछ भी भेद नहीं है। वहाँ के वातावरण की एकतानता में इस सब की कल्पना भी नहीं है। वहाँ ये सब एक हैं। प्रान्तों की दृष्टि से गुजराती सबसे अधिक हैं। दूसरी संख्या बंगालियों की है और फिर मद्रासी हैं। महाराष्ट्र की एक-दो महिलाएँ अभी आई हैं। पंजाब और संयुक्तप्रान्त से अभी हाल ही में पाँच-छः साधक वहाँ पहुँचे हैं। चार-पाँच बिहार के हैं। राजपूताने के भी एक सज्जन हैं। सब साधक अपने समस्त अतीत को, जातीयता, प्रान्तीयता आदि सब राग-भावना को छोड़कर ही आगे बढ़ते हैं। वहाँ की व्यावहारिक भाषा अंग्रेज़ी है। श्रीअरविन्द और सब भाषाओं के पत्र भी प्रायः पढ़ लेते हैं किन्तु उनका उत्तर सदा अंग्रेजी में ही होता है। आपस में साधक बंगाली, गुजराती, फ्रेञ्च, तामिल, तेलुगु और हिन्दी में भी बात करते हैं। कुछ मद्रासियों के अतिरिक्त हिन्दी प्रायः सब समझते हैं। महिलाएँ तो प्रायः निरपवाद रूप से हिन्दी में बातचीत कर सकती हैं, और समझ सकती हैं। भारतीय भाषा का प्रतिनिधित्व यहाँ हिन्दी ही करती है, यद्यपि मूलतः संयुक्त-प्रान्त के तो तीन-चार ही साधक हैं और वे भी एकदम नये। हिन्दी के ठीक जाननेवाले तो अवश्य गिने-चुने ही हैं।

आश्रम में पति-पत्नी सम्बन्ध से कोई नहीं रह सकता। ऐसे साधक भी हैं, जिनकी पत्नी भी उनके साथ या कुछ बाद में आश्रमवासिनी साधिका के रूप में स्वीकृत हुई, किन्तु वे सब जुदा रहते हैं। वहाँ जितने साधक-साधिका रहते हैं, वे केवल साधना के लिए ही। सब साधक-साधिकाओं का संबन्ध सीधा माताजी और श्रीअरविन्द से है। अतः वहाँ स्त्री-पुरुषों का परस्पर सम्बन्ध एक मा-जाये भाई-बहिनों का पवित्र संबन्ध है। यही सम्बन्ध उनका है जो पूर्व जीवन में परस्पर विवाहित दम्पति के रूप में रहे हैं।

श्रीअरविन्द ब्रह्मचर्य पर अत्यधिक बल देते हैं। जो व्यक्ति काम-वासना को सर्वथा शान्त नहीं करना चाहे, उसका श्रीअरविन्दाश्रम में कुछ काम नहीं है। ऐसे आदमी को श्रीअरविन्द कहते हैं कि यदि तुम इसके लिए भी तैयार नहीं हो तो तुम बाहर दुनिया के सामान्य जीवन में ही रहो। यह मार्ग तुम्हारे लिए नहीं है। मैं जहाँ तक अनुभव कर सका हूँ, वहाँ तक यही कह सकता हूँ कि वहाँ ब्रह्मचर्य का प्रबल वातावरण है। सब इसका प्रेम से पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साधक-रूप में आश्रम में प्रविष्ट होने का कुछ रेखाबद्ध नियम नहीं है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि मैंने किसी को नहीं बुलाया है। जो व्यक्ति उनसे आश्रमवासी होने की प्रार्थना करते हैं, उन्हें वे अपनी दृष्टि के अनुसार ही स्वीकृत या अस्वीकृत करते हैं। वे स्वीकृत (आश्रम में प्रविष्ट) उसे ही करते हैं जिसे वे अपने योगकार्य का अधिकारी समझें या उसमें किसी प्रकार सहायक समझते हों।

मैं बहुत-सी अच्छी संस्थाओं और आश्रमों को अन्दर से जानता हूँ। पर मैंने जितनी कम से कम रगड़ के साथ, शान्ति के साथ इस आश्रम का काम चलता देखा है, वैसा और कहीं नहीं। संभवतः इसका कारण यह है कि यहाँ सब लोग श्रीअरविन्द में पूर्ण भक्ति से प्रेरित होकर ही आये हैं और इसी श्रद्धा से यहाँ रहते हैं। इस परिवार का उद्देश्य—जैसा कि मैं बताने का यत्न करूँगा—अत्यन्त महान है। यह भी यहाँ की व्यवस्था की उच्चता का कारण है। और फिर उस आश्रम में व्यक्तियों को पूरा परखकर लिया जाता है। यह कहा जा सकता है कि श्रीअरविन्द अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर ही किसी को आश्रमवासी बनाते हैं और इस आश्रम में सब कुछ श्रीअरविन्द व माताजी की आज्ञा ही है, सब लोग उन्हें अपना पूरा समर्पण करके रहने का यत्न करते हैं।

यह आश्रम कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है। यद्यपि आश्रम के व्यय का पूरा-पूरा हिसाब रखा जाता है, तो भी उस हिसाब को देखने का जनता का अधिकार हो ऐसी बात नहीं है। जैसे अपने घर की सजीव व्यवस्था के लिए आय-व्यय का पूरा नियन्त्रण रखना आवश्यक है, उसी तरह श्रीअरविन्द के इस घर में होता है। यह सब कुछ उनकी अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति है, सब पर उनका या माताजी का अपना स्वत्व है, और आश्रमवासी इस विशाल घर में उनके अपने बच्चे हैं।

दर्शकों को आश्रम दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। कभी-कभी किन्हीं विशेष अवस्थाओं में माताजी की आज्ञा लेकर ही दिखाया जाता है। इसलिए वैसी उत्सुकता मन में लेकर वहाँ किसी को नहीं जाना चाहिये।

भोजन-व्यवस्था

बहुतों का शायद भ्रम ऐसा होगा कि वहाँ आहार के विषय में कोई संयम नियम नहीं है। वहाँ जाने से पहले मैंने भी यह सुन रखा था कि वहाँ मांस, शराब का भी परहेज नहीं है। पर वहाँ जाकर मैंने इस बात को एकदम गलत पाया। गौ का दूध, दही, बिना मसाले का शाक व दाल, चावल, केले, नींबू और बिना छने आटे की डबल रोटी—यही वहाँ का नियत आहार है। मांस, मछली, शराब का वहाँ कुछ काम नहीं, मिर्च-मसाले और सिगरेट आदि सब का निषेध है।

वहाँ तीन समय भोजन होता है। प्रातः-सायं का भोजन हलका होता है। आश्रमवासियों का भोजन निम्न प्रकार से है।

प्रातराश—पाव भर गो-दुग्ध, एक चम्मच कोको-द्रव, डबल रोटी के तीन टुकड़े और एक केला।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मध्याह्न—चावल, रोटी, दाल या शाक, नींबू का एक टुकड़ा, पाव-भर दही, दो केले।

सायम्—पाव-भर दूध, रोटी, शाक।

श्रीअरविन्द और माताजी भी फलों का रस, दूध, शाक, रोटी आदि ही बहुत थोड़ी मात्रा में सेवन करते हैं।

भोजन बनाने का सब काम साधक-साधिकाओं के हाथ में है। अतः वहाँ का भोजन बहुत सफ़ाई से बनता है। भोजन बार-बार नहीं परोसा जाता। भोजनशाला के एक कमरे में एक बड़ी-सी मेज़ पर भोजन सामग्री स्वच्छता और व्यवस्था से रखी रहती है। तीन-चार साधक ठीक समय पर वहाँ देने के लिए खड़े रहते हैं। अन्य साधक अपने-अपने समय पर आते हैं। भोजन लेते हैं, और दूसरे बड़े कमरों में बिछे आसनों पर बैठकर, सामने रखी तिपाइयों पर अपनी थाली रखकर शान्ति से भोजन करने लग जाते हैं। साधिकाओं के बैठने की व्यवस्था अलग कमरों में है। जो साधक कार्यवश नियत समय से कुछ देर में आते हैं, उनके लिए एक अलग कमरा है। वहाँ एक जालीदार अलमारी में उनके भोजन की थाली ढककर रख दी जाती है। जब उन्हें अवकाश मिलता है, वे आकर अपना भोजन कर जाते हैं। बर्तन माँजने-धोने का काम भी साधक ही करते हैं।

डबल रोटी बनाने के लिए आश्रम की अपनी बिजली की चक्की और बेकरी है। यहाँ भी सब काम साधक ही करते हैं।

अन्य व्यवस्था

उनके योग में 'कर्म' को उत्तम स्थान प्राप्त है। वहाँ सभी साधक कुछ न कुछ कार्य करते हैं। माताजी जिस साधक को जो काम सौंपती हैं, उसे वही करना होता है। और प्रायः साधक उसे अपना कल्याणकारी कार्य समझकर, भगवदर्पण बुद्धि से करते हैं। 'कर्म' साधना से अलग नहीं हो जाता। अपितु दिये गये अपने-अपने 'कर्म' में ही साधक अपनी आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया को परखता है और अपनी स्थिति को समझने का प्रयत्न करता है। आटा पीसना, डबल रोटी बनाना, रसोई पकाना, सफाई, द्वार-रक्षा, बढ़ई का काम, वस्तु-विभाग, लोहारी, उद्यान-विभाग, टाइपिंग, ग्रन्थ-लेखन, कविता, संगीत, चित्राङ्कन, आलेख्य, वस्तु-वितरण पुस्तकालय-प्रबन्ध, चिकित्सा, दफ़्तरी काम, आदि सभी प्रकार के काम जो आश्रम में किये जाते हैं, उन सबको साधना की दृष्टि से, समता, पवित्रता, सौन्दर्य और विवेकपूर्ण शान्ति से करने का यत्न किया जाता है।

प्रत्येक साधक अपना वही कार्य करता है, जो उसे सौंपा गया है, अथवा जिसे करने की उसने अनुमति प्राप्त कर ली है। ऊपर से देखने में वहाँ साधक को बहुत स्वाधीनता है; पर अपने अन्तर्नियम से प्रत्येक साधक बँधा हुआ है। वहाँ कोई ऐसा सार्वजनिक नियम नहीं है कि साधक इतने बजे जागें, इतने बजे स्नान करें, इतने बजे सोयें—आदि। फिर भी प्रत्येक साधक अपनी वैयक्तिक दिनचर्या का पालन करने में सचेत रहता है।

व्यय

पाठकों को उत्सुकता होगी कि इस प्रकार दो सौ साधकों का व्यय कैसे चलता होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसंगवश यह कहना अनुचित न होगा कि आश्रम में जो भी श्रम-विभाग चलते हैं, वे सब, आश्रम की आन्तरिक आवश्यकता के लिए ही चलते हैं। किसी भी रूप में आश्रम की बनी कोई चीज़ बेची नहीं जाती। और फिर जैसा कि हमारा अनुमान है, आश्रम का खर्च भी पाँच-छः हज़ार रुपए मासिक से कम नहीं होगा।—वैसे तो जो आश्रमवासी के रूप में स्वीकृत होता है, वह अपना सब कुछ (जहाँ अपना अन्तरात्मा और मन, वहाँ अपना सब भौतिक धन भी) मा के चरणों में अर्पित कर देता है। इस प्रकार कुछ सम्पत्ति आश्रम को मिली है। पर वह बहुत थोड़ी है। आश्रम में अधिकांश तो ऐसे ही साधक हैं, जिनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी। प्रत्येक आश्रमवासी पर ३०-४० रुपया मासिक तो व्यय होता ही है।—यह रुपया कुछ भक्त लोगों से अनायास प्राप्त होता है। श्रीअरविन्द ने कभी आश्रम के लिए चन्दे की अपील नहीं की। बल्कि औरों को भी आश्रम के लिए धन एकत्र करने की कभी अनुमति नहीं दी। आश्रम को सर्वजनिक संस्था नहीं समझते। अतः जनता से न माँगते हैं और न जनता के प्रति उत्तरदायिता समझते हैं। जो कुछ स्वभावतः आता है उसी से उनका कार्य चलता है। श्रीअरविन्द की इस विषय में भी अपनी ही विशेष दृष्टि है। किसी मिलते हुए धन को वे अस्वीकृत भी कर देते हैं—यह तो देखा गया है। पर वे किस दृष्टि से अस्वीकार करते हैं यह मैं नहीं जानता। वे मानते हैं कि यह परमेश्वर का ही कार्य है, परमेश्वर ही रुपया देता है और देगा। जो कुछ उन्हें मिलता है उसे भगवान् से मिला जानकर ही स्वीकार करते हैं। अतएव धन के व्यय आदि के विषय में वे अपने को भगवान् के ही प्रति उत्तरदायी समझते हैं, अन्य किसी के प्रति नहीं। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि देखने में वहाँ कभी-कभी आर्थिक तंगी होती है तो भी अर्थाभाव के कारण उनका कार्य कभी भी रुका नहीं है।

योग-मार्ग

श्रीअरविन्द जिस योग के गुरु हैं उसे उनके शब्दों में 'पूर्णयोग' कहना चाहिये। यह योग, हठयोग व राजयोग आदि की तरह, केवल शरीर या मन आदि से सम्बन्ध रखनेवाला नहीं, किन्तु सम्पूर्ण आधार और सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध रखता है।

पूर्णयोग शक्ति—ईश्वरीय शक्ति को मुख्य मानकर चलता है। श्रीअरविन्द ने 'The mother' में लिखा है कि तीन बातें हैं जो कि मनुष्य को अपने प्रयत्न से सतत करनी हैं। फिर, शेष सब माता की शक्ति कर देगी। पहली बात है अभीप्सा। परमेश्वर की तरफ़ जागे की अभिकांक्षा, तीव्र संवेग। ऐसी अभीप्सा जो केवल मन और बुद्धि में ही नहीं अपितु प्राणों के प्रत्येक स्पन्दन में, शरीर के अणु-अणु में समाई हो। यह हमें ही करनी है, यह हमारे लिए भगवान् नहीं करेंगे।

दूसरी बात जो हमें करनी है वह है 'अस्वीकार' या 'त्याग' अर्थात् अपने अन्दर ही हीन प्रकृति की गतिओं का त्याग। मन से कल्पनाओं, पक्षपातों, आदतों आदि का त्याग। प्राण से राग-द्वेष आदि सब वासनाओं का त्याग। भौतिक प्रकृति से मूढ़ता, संशय, आलस्य आदि का त्याग।

तीसरी बात है आत्म-समर्पण, पूर्ण शरणागति, परमेश्वर में अपना पूर्णतया प्रणिधान। जो कुछ हम हैं, जो कुछ हमारा है—उस सबका सर्वांश समर्पण।—ये यत्न हम करते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहें तो ऊपर से उतरनेवाली ईश्वरीय शक्ति हममें अद्भुत परिवर्त्तन करके हमें भगवान का विशुद्ध यन्त्र बना देगी।

ऐसा कहा जा सकता है कि उस मार्ग में ऊपर से (शिर के ऊपर) शक्ति के अवतरण का तथा अन्दर (हृदय में) पवित्रता और भक्ति आदि की स्थापना का अभ्यास किया जाता है। इन दोनो केन्द्रों का विकास आवश्यक है।

श्रीअरविन्द के मार्ग की दो विशेषताएँ हैं। पहली है—विज्ञानमय अवस्था को प्राप्त करना। उनका कहना है कि अभी तक संसार मनोमय दशा से ऊपर नहीं उठ सका है। और जब तक इससे ऊपर न उठ जाय तब तक इस संसार में कोई वास्तविक उन्नति व परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए उनके योग का पहला ध्येय उस परमोच्च अवस्था तक पहुँचना है। और फिर उस अवस्था तक पहुँचकर भी वहीं स्थित हो जाना नहीं है, किन्तु उस विज्ञानमय शक्ति को नीचे लाकर अपने मन, प्राण और शरीर का सर्वथा दिव्यरूपान्तर कर देना है। अतः दूसरी बात है—'दिव्य रूपान्तर' (Transformation) इस प्रकार यह योग मार्ग अपनी इस आरोह-अवरोह की उज्ज्वल प्रक्रिया से इस धरती की अत्यन्त स्थूल मरणावसन्न जड़ता को उस परम चैतन्य की ज्योति और दिव्य-जीवन के संपर्क द्वारा नवीन उद्बोधन और सनातन जीवित सौन्दर्य की ओर ले जाता है। श्रीअरविन्द की मान्यता है कि पहले के यद्यपि कोई विरले योगी विज्ञानमय तक पहुँचे थे, पर उन्होंने भी उसकी शक्ति द्वारा अपने नीचे के भागों का रूपान्तर करने की आवश्यकता नहीं समझी या नहीं कर पाये। कुछ ने मन तक का रूपान्तर किया, पर प्राण और शरीर के रूपान्तर का कार्य शायद किसी ने नहीं किया। श्रीअरविन्द की साधना के पिछले दस वर्ष 'शरीर का रूपान्तर उस दिव्य शक्ति द्वारा किया जा सकता है या नहीं?' इसी प्रयत्न में बीते हैं। और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नवम्बर उन्नीस सौ छब्बीस में उन्हें इस साधना में सफलता प्राप्त हो गई। अतएव चौबीस नवम्बर का दिवस उनका सिद्धि-दिवस माना जाता है।

भावी कार्यक्रम

'क्या वे फिर राजनैतिक क्षेत्र में आयेंगे?' यह प्रश्न है जो प्रायः पूछा जाता है। यह प्रश्न आम लोगों के लिए स्वाभाविक भी है। पर जो मनुष्य जान गये हैं कि वे कितने अति-महान् कार्य में लगे हैं, उनके लिए ऐसे प्रश्नों का अवकाश नहीं रह जाता। यद्यपि आज तक भी उनके दरवाजे के सामने फ्रेंच और ब्रिटिश सी० आई० डी० का पहरा लगातार लगा रहा है, और उस मकान में घुसनेवाला व्यक्ति अपने विषय में पता लगाये जाने से अपने को बचा नहीं सकता, तो भी यह सच है कि वहाँ विशुद्ध आध्यात्मिकता के सिवाय और कुछ नहीं है। सन् उन्नीस सौ छब्बीस तक तो श्रीअरविन्द यह कहते रहे कि 'अभी नहीं,' 'अभी कुछ नहीं कह सकता।' पर उसके बाद से तो वे उस महान कार्य में लग चुके हैं जिसका कुछ संकेत हमने ऊपर किया है। यह कार्य है एक नयी 'जाति' उत्पन्न करना, मनुष्य को देव बनाना। वे ऐसा मनुष्य तैयार कर रहे हैं जो विज्ञान तत्त्व को प्राप्त करेगा और उसके कारण उसका मन अज्ञान और संशय की क्रीड़ा-भूमि न रहकर सत्य ज्योति का निर्मल मार्ग बन जायगा, उसका प्राण बदलकर, काम, क्रोध, राग द्वेष आदि से सर्वथा शून्य होकर कार्य करेगा और उसके शरीर का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी ऐसा रूपान्तर हो जायगा कि वह यूँ ही मृत्यु के वश न होगा। यह बहुत भारी साधना है, इसमें शायद एक युग लग जाय ; परन्तु श्रीअरविन्द जिस कार्य के लिए आये हैं वह यही कार्य है। इसी महान् कार्य का प्रकट आरम्भ इस आश्रम की अनुमति देकर उन्होंने किया है। यद्यपि वे बोलते और मिलते नहीं हैं, तो भी लिखकर और अपनी आन्तरिक शक्ति से आश्रम का पथ-प्रदर्शन करते हैं। उनके लगभग ६ घंटे प्रतिदिन साधकों के पत्रों के उत्तर देने में या उनकी डायरी अथवा दिनचर्या पुस्तकों को देखने और निर्देश लिखने में व्यतीत होते हैं। सुना है, यह काम वे अधिकतर रात्रि को ग्यारह बजे के बाद करते हैं। दिन रात में दो-तीन घण्टे ही वे निद्रा लेते हैं। वह सोना भी एक प्रकार से अपनी उच्च चेतना में ऊपर हटकर शारीरिक विश्राम लेना ही कहा जाना चाहिये। शेष २०-२२ घंटे वे कुछ न कुछ 'कर्म' करते ही हैं। ऐसा मालूम होता है कि उनका बहुत-सा समय ध्यान व विज्ञानमय शक्ति द्वारा विविध कार्य करने में जिनमें साधकों को सहायता पहुँचाना भी है—व्यतीत होता होगा। कुछ समय संभवतः उनकी अपनी उस साधना को उत्तरोत्तर अभिव्यक्त करने में भी लगता होगा जिस (अर्थात् विज्ञानमय शक्ति द्वारा भौतिक जगत् पर प्रभाव डालने) के अनुभव कर लेने पर वे इस तरह एकान्तसेवी हो गये हैं। वे इस समय जितना कार्य कर रहें हैं।उतना कार्य कोई साधारण पुरुष नहीं कर सकता। देश की स्वाधीनता तो उनके इस महान् कार्य में कहीं स्वयमेव आ जायगी। उसकी कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

मेरा तो यही विश्वास है कि वहाँ पर एक बड़ा भारी आध्यात्मिक कार्य हो रहा है जिसकी महत्ता को आज हम नहीं समझ रहे हैं।...पर मेरी ऐसी श्रद्धा है कि एक दिन संसार उसे अवश्य जानेगा।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, VARANASI.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुछ झाँकियाँ

[श्रीअरविन्द]

कुछ लोग किसी विशेष ईश्वरीय रक्षा में विश्वास करने या अपने आपको एक उपकरण की तरह ईश्वर के हाथों में छोड़ देने में एक गौरव अनुभव करते हैं। लेकिन मैं तो इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर एक विशेष ईश्वरीय शक्ति है और मैं तो समझता हूँ कि ईश्वर ही मज़दूर के कुदाल को चलाता है और वही एक छोटे बच्चे के मुख में तुतलाता है।

ईश्वरीय रक्षा केवल वही नहीं है जो कि टूटी हुई नैया से जिसमें कि और सब डूब जाते हैं, मुझे बचा लेती है, वह भी ईश्वरीय रक्षा ही है जो कि मेरी रक्षा के अन्तिम तख्ते को मुझसे छीन लेती है और मुझे निर्जन महासागर में डुबो देती है, जब कि दूसरे सब बच जाते हैं।

कभी-कभी कष्ट, आपत्ति और संघर्ष के प्रति आकर्षण की अपेक्षा विजय का सुख कम होता है। तो भी विजयशील मानवीय आत्मा का जयघोष विजयमाल ही होना चाहिये, न कि सूली।

वे आत्मायें जिनका कोई ऊँचा ध्येय नहीं होता, जिनमें कोई अभीप्सा नहीं होती, परमेश्वर की असफलतायें हैं। लेकिन प्रकृति उनसे खुश होती है और उनकी संख्या को बढ़ाना चाहती है, क्योंकि वे उसके साम्राज्य को स्थिर रखने और बढ़ाने का निश्चय दिलाते हैं।

ग़रीब, अज्ञानी, जन्म से ही अपंग और अभागे लोगों की जन-साधारण में गिनती नहीं है, बल्कि जन-साधारण वे हैं जो कि छोटी-छोटी चीज़ों में और साधारण मनुष्यता में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

मनुष्यों की सहायता करो, लेकिन उन्हें उनकी शक्ति से ही वञ्चित मत कर दो। बेशक मनुष्यों का पथप्रदर्शन करो और उन्हें शिक्षित करो, लेकिन ध्यान रखो कि उनकी अपनी नवीन कार्य करने की शक्ति और मौलिकता अक्षुण्ण बनी रहे। बेशक दूसरों को अपने में मिलाओ, पर बदले में उन्हें उनकी प्रकृति का पूर्ण दैवत्व भी प्रदान करो। वही नेता और गुरु है जो कि यह सब कर सकता है।

[१०६२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमेश्वर ने संसार को एक युद्धक्षेत्र बनाया है, जिसमें कि लड़ाकू एक दूसरे को पैरों तले कुचल रहे हैं और जिसमें बड़ी-बड़ी लड़ाई और संघर्ष की पुकारें हो रही हैं। क्या तुम ईश्वरीय शान्ति को उस मूल्य के जो कि उसने इसके लिए निर्धारित किया है, बिना चुकाये ही पा सकते हो ?

पूर्ण प्रतीत होनेवाली किसी भी सफलता पर विश्वास मत करो। सफल हो चुकने के बाद भी तुम देखोगे कि अब भी बहुत कुछ करने को बाकी है। आनन्दित रहो और आगे बढ़ते चलो; क्योंकि इससे पहले कि तुम वास्तविक पूर्णता को प्राप्त करो तुम्हें सुदीर्घ श्रम का मार्ग तय करना होगा।

इससे बड़ी घातक भूल और क्या होगी कि तुम बीच की किसी मंज़िल को ही उद्देश्य समझे रहो या अपने असली लक्ष्य को भूलकर बीच के किसी विश्रान्ति-स्थान पर बहुत देर तक टिके रहने की ग़लती करो।

जब कभी तुम्हें कोई महान् अन्त दिखाई दे तो विश्वास रखो कि महान् प्रारम्भ होनेवाला है। जहाँ कोई बड़ा दर्दनाक विनाश तुम्हारे मन को भयभीत करता हो तो अपने मन को सान्त्वना दो कि किसी महान् रचना का होना अवश्यम्भावी है। परमेश्वर अन्तरात्मा की धीमी आवाज़ में ही नहीं, बल्कि अग्नि और तूफ़ान में भी है।

जितना ही बड़ा विनाश होगा उतना ही अधिक रचना का खुला अवसर होगा। परन्तु विनाश दीर्घकाल तक धीरे-धीरे होता रहता है और दबानेवाला होता है, और रचना बहुत विलम्ब से आती है और इसकी सफलता में बाधायें पड़ती हैं। रात्रि बार-बार लौटकर आती है और दिन देरी से आता है या ऐसा प्रतीत होता है मानो थोड़ी देर के लिए एक मिथ्या उषाकाल आकर चला गया हो। इसलिए निराश मत हो, बल्कि सावधान रहो और अपना काम करते जाओ। जो कि उत्कट आशा रखते हैं वे जल्दी निराश होते हैं। न आशा लगाओ और न डरो, परन्तु निश्चित रहो कि परमेश्वर का कोई लक्ष्य है, तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

उस दैवी कलाकार का हाथ बहुधा इस तरह काम करता है, मानो वह अपनी प्रतिभा और अपने उपकरण के विषय में अनिश्चित हो। ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी चीज़ को हाथ लगाता है, उसकी परीक्षा करता है और छोड़ देता है, उठाता है, फेंक देता है और फिर उठा लेता है; श्रम करता है और प्रकृतकार्य हो जाता है; अधूरा काम करता है और फिर उसे जोड़ देता है। आश्चर्य और निराशायें उसके काम के नियम रहते हैं, जब तक कि सब कुछ बनकर तैयार नहीं हो जाता। जिसको पहले चुना था, अब उसे निन्दित करके अस्वीकृति के अथाह गढ़े में डाल देता है और पहले जिसे अलग कर दिया था, वह अब उसके विशाल महल के कोने का पत्थर बनता है। परन्तु इस सबके पीछे हमारी तर्कणाशक्ति का अतिक्रमण कर जानेवाली ज्ञान की एक दिव्य चक्षु और अनन्त योग्यता की मन्द मुस्कान है।

परमेश्वर के सामने अपरिमित समय है और उसे हमेशा जल्दी में रहने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने उद्देश्य और सफलता के विषय में निश्चिन्त है और उसे कुछ चिन्ता नहीं है, यदि वह अपने काम को पूर्णता के अधिक समीप लाने के लिए सैकड़ों बार भी तोड़ता है। धैर्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमारे लिए सबसे बड़ा आवश्यक पाठ है। लेकिन डरपोक, सन्देहवादी, श्रान्त, आलसी, महत्त्वाकांक्षा-रहित और निर्बल व्यक्ति की प्रगति करते हुए मानसिक सुस्ती धैर्य नहीं है; धैर्य वह है जो शान्ति से ओत-प्रोत है, शक्ति का संचय करता रहता है और उन उत्कट महान् प्रहारों की प्रतीक्षा करता है और उनके लिए अपने आपको तैयार करता रहता है जो चाहे थोड़े हों, फिर भी भाग्य को पलटने के लिए पर्याप्त हैं।

क्यों परमेश्वर इतनी उग्रता से संसार पर हथौड़े की चोटें कर रहा है, इसे कुचले देता है, आटे की तरह गूँद रहा है, रुधिर की नदी में स्नान करा रहा है और धधकती हुई भट्ठी की नारकीय आग में तपा रहा है? इस कारण क्योंकि आम जनता की मनुष्यता अब भी उस कठोर, खराब, अशुद्ध कच्ची धातु के रूप में है जो कि बिना तपाये पिघलाई और किसी सुन्दर आकृति में ढाली नहीं जा सकती है। जैसा उसके पास माल है, वैसी ही उसकी कार्य-प्रणाली है। यदि उसका माल अधिक कोमल और शुद्ध धातु के रूप में बदल जाय तो उसकी प्रणाली भी अधिक कोमल, मधुर, श्रेष्ठ और उपयोग के लिए अधिक अच्छी होगी।

उसने ऐसा माल क्यों बनाया या चुना जब कि उसके सामने चुनने के लिए सभी सम्भव क्षेत्र खुले हुए थे। इस कारण क्योंकि उसके दिव्य विचार के सामने न केवल सौन्दर्य, मधुरता और पवित्रता ही थी, बल्कि शक्ति, संकल्प और महत्ता का विचार भी उसके सामने था। शक्ति को तुच्छ मत समझो, न ही इसके कुछ पहलुओं की कुरूपता के कारण इससे घृणा करो, यह भी मत समझो कि परमेश्वर केवल प्रेममय ही है। सम्पूर्ण पूर्णता में कुछ अंश वीरता का भी और क्रूरता तक का होना चाहिये। बड़ी से बड़ी शक्ति बड़ी से बड़ी कठिनाइयों में से गुज़र कर ही प्राप्त होती है।

सब कुछ बदल जाता यदि मनुष्य एक बार अपने आपको आध्यात्मिकता के साँचे में ढालने के लिए तैयार हो जाता। परन्तु उसकी मानसिक और भौतिक प्रकृति इस ऊँचे नियम के प्रति द्रोह करती है। उसे अपनी अपूर्णता ही प्रिय है।

आत्मा हमारे व्यक्तित्व का असली स्वरूप है। मन और शरीर अपनी अपूर्ण दशा में इसके आवरण हैं, परन्तु पूर्ण अवस्था में इसके ढाँचे हैं। केवल आध्यात्मिक होना ही पर्याप्त नहीं है; बेशक यह कुछ आत्माओं को स्वर्ग के लिए तैयार कर देता है, लेकिन इस लोक को जहाँ वह था, बहुत कुछ वहीं छोड़ देता है। न ही समझौता युक्ति का मार्ग है।

संसार तीन प्रकार की क्रान्तियों से परिचित है। प्राकृतिक क्रान्ति कई प्रबल परिणामों को पैदा करती है; नैतिक और बौद्धिक क्रान्ति का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है और इसके फल अत्यन्त श्रेष्ठ हैं; किन्तु आध्यात्मिक क्रान्ति महान् बीजों का वपन-मात्र है।

यदि त्रिविध परिवर्त्तनपूर्ण संगति में मिल सके तो एक निर्दोष कार्य होगा। परन्तु मनुष्य का मन और शरीर आते हुए प्रबल आध्यात्मिक प्रवाह को सँभाल नहीं सकते। बहुत सारा तो बिखर जाता है, शेष बहुत-सा विकृत हो जाता है। हमारी भूमि के बौद्धिक और शारीरिक क्षेत्र में उन्नति की दिशा में बहुत-से परिवर्त्तन की आवश्यकता है, तभी विशाल आध्यात्मिक बीजों को बोने का कुछ लाभ होगा।

[१००४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्येक धर्म ने मनुष्य-जाति की कुछ न कुछ सहायता की है। प्राचीन बहु देवतावादी मूर्तिपूजक धर्म (पैगनिज़्म) ने मनुष्य के अन्दर सौन्दर्य के प्रकाश का विकास किया है; उसके जीवन को उच्च और विशाल बनाया है और उसके उद्देश्य को चहुँमुखी पूर्णता की ओर अग्रसर किया है। ईसाइयत ने उसे दैवीय प्रेम और दान का कुछ दर्शन कराया है। बौद्ध धर्म ने उसे शुद्ध, बुद्ध और नम्र होने का एक श्रेष्ठ मार्ग दिखाया है। यहूदी धर्म और इस्लाम ने धार्मिक रूप से क्रिया में सच्चे और ईश्वर के प्रति उत्कट भक्तिवाला होना सिखाया है। हिन्दूधर्म ने उसके सामने बड़ी से बड़ी और गहरी से गहरी आध्यात्मिक संभावनाओं को खोल दिया है। एक बहुत महान् कार्य हो जाता यदि ये सब ईश्वरीय दृष्टियाँ आपस में मिल जातीं और अपने आपको एक दूसरे में अन्तर्हित कर देतीं। लेकिन बौद्धिक सिद्धान्तवादिता और साम्प्रदायिक अहंकार मार्ग में रुकावट बनकर खड़े हो जाते हैं।

सभी धर्मों ने बहुत-सी आत्माओं को बचाया है, पर मनुष्य को आध्यात्मिकता के साँचे में कोई भी नहीं ढाल सका है। क्योंकि इसमें सम्प्रदाय या मत की आवश्यकता नहीं है, बल्कि अपने आत्मिक विकास के लिए एक स्थिर और सर्वाङ्गीण प्रयत्न की अपेक्षा है।

आजकल संसार में हमें दीखनेवाले परिवर्त्तन अपने आदर्शों और उद्देश्यों में बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक हैं। आध्यात्मिक क्रान्ति अपने अवसर की प्रतीक्षा में है और इस बीच में इधर-उधर अपनी लहरें उछाल रही है। जब तक यह नहीं आती है, अन्य क्रान्तियों का महत्त्व समझ में नहीं आ सकता और तब तक वर्त्तमान घटनाओं की व्याख्यायें और मनुष्य के भविष्य-दर्शन के प्रयत्न सब व्यर्थ हैं। क्योंकि इसका स्वरूप, शक्ति और घटना ही मनुष्य जाति के अग्रिम चक्र को निश्चित करेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञान-योग

[अम्बालाल पुराणी]

[श्रीअरविन्द के योग-मार्ग को पूर्ण योग, विज्ञान-योग आदि नामों से जाना जाता है, इस लेख में पुराणीजी ने अति संक्षेप में उसका सुन्दर चित्रण किया है ।—सं०]

A new light shall break upon the earth,
A new world shall be born, things that
were promised shall be fulfilled.

विज्ञानमय भूमिका !—श्रीअरविन्द के योग में जब देखो तब 'विज्ञानमय चैतन्य', विज्ञानमय भूमिका की प्राप्ति की ही बातें होती रहती हैं; पर यह विज्ञान चीज़ क्या है ? मानव उसे क्यों प्राप्त करे ? शायद यहाँ इन प्रश्नों पर कुछ विचार करना उपयुक्त होगा ।

विज्ञानमय चेतना का अर्थ है सत्य की चेतना, ऋतचेतना । विज्ञान की भूमिका का अर्थ है सत्य, ऋत और वृहत की भूमिका । ऋत कहते हैं क्रियात्मक सत्य को और अस्तित्व में रहा हुआ सत्य 'सत्य' कहाता है । चैतन्य की हर एक भूमिका की तरह विज्ञान का भी एक लोक है जिसे हम सूर्य लोक या सत्य लोक कह सकते हैं ।

तो क्या जिसे वेदान्ती निरंजन, निराकार, अचिन्त्य, ब्रह्म कहते हैं—जो महान, अनन्त, शून्याकार, शुष्क, निरपेक्ष, मानव से दूर—दूर ही नहीं बहुत दूर है, जिसमें प्रवेश करते ही मानव की मानवता गुम हो जाती है, मर जाती है—क्या वही विज्ञानमय चेतना है—नहीं, यह तो विज्ञानमय चेतना के विषय में झूठे भ्रम हैं । यह तो ठीक है कि विज्ञानमय चेतना भूमिका मनोमयता से ऊपर है; पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसका मनोमय, प्राणमय या अन्नमय भूमिका से कोई सम्बन्ध ही नहीं । इसके विपरीत विज्ञानका तो धर्म ही यह है कि वह जीवन को, स्थूल-भूमिका को और सभी मानव करणों को स्वीकार करे और प्राण की सम्पूर्ण प्रफुल्लता, परिपूर्णता, भोग सामर्थ्य और आनन्द धारण कर सकने की अनन्त विपुलता को प्रकट करे । अभी तो मानव के इन करणों में यह शक्ति इतनी कम है कि उसे अति क्षुद्र कहा जा सकता है ।

यहाँ प्रश्न उठता है तो क्या विज्ञानमय भूमिका प्राप्त करने से मानव जीवन के आनन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसकी प्राण-शक्ति, शरीर इत्यादि का त्याग नहीं करना पड़ता ? इस समय जो उपकरण अविद्या के वश में हैं, जो अपूर्ण आनन्द के रूप हैं तथा प्राण और शरीर में जो सीमित शक्ति है उसका तो त्याग होना ही चाहिये पर यह त्याग समूल सन्यास नहीं है—यह त्याग उन शक्तियों का उच्छेद नहीं है। आज मानव के प्राण में भोग-शक्ति है ही कितनी? प्राण की शीघ्र क्लान्त उत्तेजना और नाड़ियों की विशेष गति—और फिर वह भी सीमित, अपूर्ण और क्षणिक! इसकी जगह जब इन करणों में विज्ञानमय चैतन्य का अवतरण होगा और उनका रूपान्तर हो जायगा तब शरीर के एक-एक अणु में, एक-एक परमाणु में, नाड़ी में, प्राण-शक्ति में, मानस में अनन्त गुण शक्ति और अनन्त गुण आनन्द धारण करने की क्षमता पैदा हो जायगी।

इस सबसे कुछ-कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है कि विज्ञान की भूमिका के चैतन्य को प्राप्त करने से क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं। विज्ञान में गति करनेवाली चेतना को दुहरा काम करना होता है।

(१) निम्न स्तरों में से अर्ध्व स्तरों में आरोहण (२) विज्ञान की चेतना सहित निम्न स्तरों में अवरोहण। आरोहण जितना ही ऊँचा होगा, अवरोहण भी उसी अनुपात में गहरा और विशेष सम्पत्ति सहित होगा। और जैसा कि ऊपर कहा गया है विज्ञान की विशेषता ही यह है कि जब मानव के आधार में उसका अवतरण होता है तो वह अपने साथ प्राण और अन्नमय भूमिका की सत्य चेतना और सत्य धर्म को प्रकट करता है।

यहाँ फिर एक सवाल उठ खड़ा होता है कि क्या विज्ञान की यह चेतना व्यक्तित्व-विहीन होती है ? हम मानस-शास्त्र की दृष्टि से सोचते हैं उसमें बुद्धि की सन्तुष्टि के लिए हमें यह सब कुछ व्यक्तित्व विहीन ही मान लेना पड़ता है पर वास्तव में यह ठीक नहीं। पर हाँ सदा अपने क्षुद्र व्यक्तित्व में फँसे रहनेवाले मानव को विज्ञान का दिव्य व्यक्तित्व समझ में आ जाये यह काफ़ी कठिन है। विज्ञान की यह दिव्य चेतना, अखिल विश्वों से कहीं परे होती हुई भी 'दिव्य माता' 'आद्य शक्ति' के रूप में है। आद्य शक्ति का अर्थ है परम भागवत चेतना। भगवान की सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी चेतना को केवल यह आद्य शक्ति ही अपने अन्दर धारण कर सकती है। जगत के सामने क्षर और अक्षर रूप में यह आद्य शक्ति ही भगवान का आविर्भाव करती है। जगज्जननि के रूप में अनन्त कोटि विश्वों का सृजन भी यही करती है।

इस दृष्टि से भगवान की चेतना और उसकी शक्ति ही आद्य शक्ति है और वही है विज्ञानमय चेतना। यह आद्य शक्ति अपनी ऊर्ध्व भूमिका में तीन तरह से प्रकट होती है। परात्पर, विराट और व्यक्ति यह तीन उसके रूप हैं। परात्पर रूप में वह ब्रह्माण्ड के परे रहकर भगवान के अप्रकट स्वरूप के साथ विश्वों का सम्बन्ध जोड़ती है। आद्य, परात्पर शक्ति अपनी सनातन चेतना में भगवान की परम चेतना को धारण करती है, प्रभु अपने अप्रकट स्वरूप में से जो-जो सत्य विश्व में प्रकट करना चाहते हैं उन सब को यह अपने में धारण करती है, अपनी शक्ति में से उन्हें प्राण देती है और अपने रूप में से उन्हें रूप देती है। इस आद्य शक्ति में भागवत चेतना सनातन और सच्चिदानन्दमयी होती है।

विराट शक्ति के रूप में यह महाशक्ति सब जगत को उत्पन्न करती है और स्वयं उसमें प्रविष्ट होकर छोटी-बड़ी सभी क्रियाओं, प्रक्रियाओं, विश्वनियमों और अनन्त प्रकार की प्रवृत्तियों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को चलाती है, प्रत्येक लोक महाशक्ति की लीला है। इस विराट लीला की भी कोई सीमा है ? उच्चतम शिखर के भी ऊपर अनन्त सत, अनन्त चैतन्य और अनन्त आनन्द के लोक फैले हुए हैं और महाशक्ति सनातन आद्य शक्ति के रूप में उनसे भी ऊपर विद्यमान है। वहाँ उस ऊर्ध्व लोकत्रय में सभी सत् पूर्णता के रूप में है क्योंकि महाशक्ति स्वयं उसे अपने हाथ में सम्हाले हुए है। उसके नीचे, हमारी मानवता के अधिक समीप विज्ञानमय सृष्टियाँ हैं। इनमें महाशक्ति स्वयं दिव्य, सर्वत्र तपःशक्ति के रूप में तथा सर्वशक्तिमान ज्ञान के रूप में उपस्थित है। यह सत्य की सहज पूर्णता की भूमिका है, वहाँ सब कुछ सत्य स्वरूप है। वहाँ सत् दिव्य और ज्योतिर्मय है और अनुभूति आनन्दमय। मानव जिस जगत में उत्क्रान्त हुआ है, वह हमारी पार्थिव भूमिका—मन, प्राण और शरीर की भूमिकात्रय अविद्या में स्थित है पर फिर भी इसका पथ-प्रदर्शन भी महाशक्ति ही कर रही है। अविद्यामय सत्यस्वरूप विज्ञान की भूमिका के बीच अन्तराल लोक में महाशक्ति इस अविद्यामय भूमिका की अधिष्ठात्री के रूप में निवास करती है। उसकी यह भूमिका सब देवताओं से ऊँची है। वहीं से वह समय-समय पर विभूतियों और अपना प्रादुर्भाव करनेवाले अंशों का पृथ्वी पर आविर्भाव करती है।

इतना ही नहीं कि महाशक्ति इस ऊर्ध्व भूमिका ही में रहकर हमारे त्रिलोक का सञ्चालन करती हो, वह तो हमारी पार्थिव भूमिका पर अवतरण भी करती है। जगत की अनन्त प्रकार की शक्तियों में भी यही महाशक्ति काम कर रही है। इस सर्वमान्य बात के अतिरिक्त महाशक्ति व्यक्ति-स्वरूप में भी अवतरित होती है और मानव-जाति को ऊर्ध्व भूमिकाओं की ओर ले जाती है। महाशक्ति दिव्य परात्पर चैतन्य और मानवता के बीच दूत का काम करती है।

विज्ञान लोक की आद्य शक्ति के चार व्यक्ति स्वरूप हमें विश्व की घटनाओं में दिखाई देते हैं और वे चार स्वरूप हैं महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। प्रथम स्वरूप शान्त, सर्वग्राही, ज्ञान-सामर्थ्ययुक्त प्रशान्त प्रेम और अनुराग दयालुतावाला है। यह सम्राट सम अलौकिक महिमावाला तथा सर्वशासक प्रभाव का मूर्त स्वरूप है। दूसरा है उसकी तेजस्वी सामर्थ्य और अप्रतिहत दुर्धर्ष वेगवाला महाशक्ति का क्षात्र स्वरूप—दुर्धर्ष, अविकारी तपः-शक्ति का, विद्युत सम वेग का और सकल विश्व को कँपा सकनेवाली तूफानी शक्ति का स्वरूप। तीसरा स्वरूप मधुरिमा और विशदतावाला, सौन्दर्य तथा सम्वाद के गहन रहस्य से परिपूर्ण, सूक्ष्म नाना विधि सम्पत्ति और सिद्धि से युक्त। यह स्वरूप अपनी ओर खींचनेवाले चुम्बक की तरह आकर्षण शक्तिवाला और मुग्ध करके अपने वश में कर लेनेवाले लावण्य से भरा है। चौथे स्वरूप में आत्मसंरक्षक गहरा ज्ञान तथा लगन के साथ बिना स्खलन के क्रिया करने की शक्ति है। सभी पदार्थों में शान्त और ठीक-ठीक चौकस कार्य करके पूर्णता प्रकट करने का सामर्थ्य इसी में है। इन चार स्वरूपों में क्रमशः ज्ञान, शक्ति, सम्वाद और सिद्धि यह चार गुण प्रधान होते हैं।

संसार में जो देवता हैं यह उस आद्य शक्ति से स्वतन्त्र शक्तियाँ नहीं हैं और सच पूछो तो सभी देव एक ही भूमिका के होते भी नहीं। सब चैत्य की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं पर होते हैं। ग्रामों में पूजी जानेवाली बेराई माता से लेकर हनुमान, भैरव, भद्रकाली, गणपति, सूर्य, शिव, ब्रह्मा, विष्णु वगैरः सब एक ही भूमिका के तो नहीं हैं। वास्तविक देवता विज्ञान से पहिले की 'दिव्य मनीषा' Overmind की भूमिका में रहते हैं। वहाँ के सभी देव महाशक्ति के ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यक्ति-स्वरूप, उसी के अन्दर से प्रकटती हुई किरणों और उसी के अंश रूप हैं। महाशक्ति जब ऐसे अंशों को पृथ्वी पर प्रकट करती है तो आन्तर चैतन्य द्वारा उनके साथ सतत सम्बन्ध बनाये रखती है और जब विश्व में उनके आविर्भाव का हेतु सिद्ध हो जाता है तो वे फिर से महाशक्ति के अन्दर विलीन हो जाते हैं।

विज्ञान की भूमिका में सभी देव महाशक्ति के अंश होने की वजह से सदा परस्पर सम्पूर्ण सम्वाद में रहकर काम करते हैं। विराट के कामों पर अधिष्ठाता बनाये गये यह देव महाशक्ति की इस विराट लीला में सनातन अंश के रूप में नित्य उपस्थित रहते हैं।

पर इस सब से तो यह लगेगा कि यह अच्छी खिचड़ी तैयार हुई। विज्ञानमय कोश, विज्ञानमय चेतना को प्राप्त करने की बात हुई और यहाँ कह दिया कि विज्ञानमय शक्ति आद्य-शक्ति, महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती यह सब एक ही हैं तो क्या मानव इन्हें ही प्राप्त करे? इसका उत्तर हाँ में है।

लेकिन अपनी बुद्धि से कुछ समझ सकने के लिए हम यहाँ पर विज्ञान की इस मान-सातीत भूमिका का मानस-शास्त्र की दृष्टि से निरूपण करेंगे।

प्राचीन काल से आर्य मानस शास्त्र मानसातीत और अतीन्द्रिय भूमिकाओं का अस्तित्व स्वीकार करता आता है। कई स्थानों पर चैतन्य के दो गोलार्ध भी माने गये हैं, एक ऊर्ध्व और दूसरा निम्न। ऊर्ध्व गोलार्ध तीन स्तरों का बना हुआ है। इसे सच्चिदानन्द या सत्, चित् और आनन्द के मौलिक तत्त्वों की अनन्तता से बना हुआ ऊर्ध्व गोलार्ध कहते हैं। अनन्त के इस ऊर्ध्व गोलार्ध और मन, प्राण तथा अन्नमय चेतना के बने हुए हमारी मानवता का निम्न गोलार्ध के बीच में विज्ञानमय भूमिका इन्हें जोड़ने के लिए एक कड़ी का काम दे रही है।

पर यह ठीक नहीं है कि मनोमय चेतना को छोड़ते ही हम विज्ञानमय चेतना में पहुँच जाते हैं। मनोमय और विज्ञानमय की उच्चतम भूमिकाओं के बीच बहुत-से स्तर आ जाते हैं। उदाहरणतः विज्ञान से निचले स्तरों में 'दिव्य मनीषा' की भूमिका है। शायद प्राचीन काल के बहुत-से साधकों ने इस भूमिका की अनुभूति को ही विज्ञान की भूमिका मान लिया था। दिव्य मनीषा की इस भूमिका के ऊपर कार्य करती हुई शक्ति Formative power रूप गढ़नेवाली शक्ति है। वहाँ बहुत-सी चीजें ऐसी हैं जो हमारी स्थूल भूमिका पर उतरने की तैयारी में मालूम होती हैं। पर केवल अमुक ही स्थूल जगत् तक आकर अपना आविर्भाव करने में समर्थ हो सकती है।

इस प्रकार दिव्य मनीषा की भूमिका को चैतन्य की सबसे ऊँची और सत्यतम भूमिका मान बैठनेवाले बहुतेरे साधक यह निर्णय कर लेते हैं कि यह दिव्य शक्ति ही उच्चतम सृजक-शक्ति है और जब वह भी अपने सारी बातें स्थूल भूमिका पर प्रकट नहीं कर पाती—तब वह भी अपनी चीजों को प्रकट करना नहीं चाहती तो फिर यह माया नहीं तो और क्या है? इस प्रकार अन्तिम सत्य की खोज करते हुए रास्ता भटक जाने से अपूर्ण मानव प्रकृति का विज्ञानमय सत्य और पूर्णता में रूपान्तर करने की बात उनकी नज़र के आगे आ ही न सकी। और ऐसी एकदेशीयता की भूल करनेवाले साधक कोई ऐसे-वैसे नहीं थे। शंकराचार्य जैसे प्रखर बुद्धिशाली और उच्चकोटि के साधक भी यही निर्णय कर बैठे! वैष्णव-धर्म और तन्त्र मार्ग में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानव प्रकृति को स्वीकार करके उसका रूपान्तर करने के लिए लगभग सफलता की सीमाओं तक पहुँचनेवाले प्रयत्न किये गये ; परन्तु शायद अन्तिम रहस्य उनके हाथ भी न लगा। वैष्णव धर्म में भक्ति का विशुद्ध स्वरूप प्राण के मिश्रण से कलुषित हो गया और प्रभु के वैकुण्ठ को पृथ्वी पर प्रकट करने के प्रयत्नों की जगह पार्थिकता को ही दिव्यता का नाम देकर सन्तोष कर लिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान की प्राप्ति को हमारे यहाँ एक प्रकार की निष्क्रिय चैतन्यावस्था की प्राप्ति का परियाय समझा जाता है। शायद लोग यह भूल गये हैं कि भगवान विश्वव्यापी जागृत ज्योति है और हैं जीवन का सक्रिय दिव्य सत्य। इसके बहुत-से कारणों में से एक कारण यह भी है कि बहुतों ने विज्ञान से पहिले आनेवाली दिव्य मनीषा की भूमिका में काम करनेवाली शक्ति को ही सच्ची विज्ञान की शक्ति मान लिया या उसे भी माया और मिथ्या कहकर छोड़ दिया और अपौरुषेय निरंजन, निराकार, अव्यक्त में लय होने का आदर्श गढ़ लिया। असली बात तो यह है कि दिव्यमनीषा की यह भूमिका तो केवल मनोमयता का उच्चतम शिखर पर विज्ञान की भूमिका तक पहुँचने के लिए साधक को इससे गुजरना ही होता है।

मानव की मनोमय चेतना और विज्ञान की भूमिका के बीच बहुत-सी बीच की भूमिकाएँ हैं, इन्हें मध्य दशा या सीढ़ियाँ कहा जा सकता है। यह विज्ञान-योग सारा का सारा इन बीच की भूमिकाओं में से किन्हीं के धर्म का वर्णन करने का प्रयत्न है—शायद यह कहना गलत न होगा। यहाँ तो स्थानाभाव के कारण इसके विस्तार में जाना सम्भव नहीं है। यहाँ हम केवल चैत्य के ऊर्ध्व गोलार्ध की रूप-रेखा देने का प्रयत्न करेंगे।

प्राचीन मानस-शास्त्र की एक प्रणाली के अनुसार ऊर्ध्व गोलार्ध में ईश्वर, शक्ति और जीव इन तीन की गणना होती है। दूसरी प्रणाली सच्चिदानन्द, माया और जीव इन तीन का समावेश करती है। श्रीअरविन्द की विज्ञान की पद्धति के अनुसार आनन्द, (सत् और चित् इन दोनो को इसी पर प्रतिष्ठित होने के कारण अलग नहीं गिनते) विज्ञान और दिव्य मनीषा यह तीन तत्त्व ऊर्ध्व गोलार्ध के कहे जा सकते हैं।

दिव्य मनीषा के नीचे विज्ञान-बुद्धि, दृष्टि, श्रुति और स्मृति और उसके नीचे है मनोमय भूमिका, जिसमें शुद्ध बुद्धि और समझने की शक्ति है, उसके साथ कल्पना, निर्णय, विवेक वगैरः की शक्तियाँ हैं। वे भी इसी में आ जाती हैं। इनके नीचे भ्रूमध्य में सूक्ष्म दृष्टि और तपः शक्ति का गले में वाणी द्वारा अभिव्यक्ति का केन्द्र और उसके नीचे हृदय के पास ही इन्द्रियाधिष्ठित मनस् और हृदय की सतह पर भाव प्रधान चित्त और गहराई में चैत्य पुरुष या अन्तरात्मा का स्थान है। हृदय के नीचे नाभि में ऊर्ध्व प्राण का केन्द्र है और वहाँ से नीचे के भाग में निम्न प्राण और मेरु-दण्ड के अन्त में मूलाधार में अन्नमय चेतना का केन्द्र है।

परन्तु यहाँ यह न मान लिया जाय कि मानव के मानस के करणों का भेद प्रभेद करने के लिए यही एक रीति हो सकती है, उसकी योजना तो हम भिन्न-भिन्न रीति से कर सकते हैं। पर हैं सारी ही योजनाएँ हमारी बुद्धि को समझाने और उसके लिए विषय को सरल करने के हेतु व्यवहार में इन करणों के कामों में बहुत फेर पड़ जाता है और उनकी क्रिया परस्पर मिलकर बहुत ही पेचीदा बन जाती है। एक दूसरी पद्धति के अनुसार हम कह सकते हैं कि चैत्य पुरुष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केन्द्र में है और अन्य सब इसके चारो ओर वर्तुलाकार बनाये हुए हैं। यह सब हमारी आसानी के लिए है नहीं तो इन बातों से सूक्ष्म करणों में तो कोई भेद पड़ता नहीं।

लेकिन यह विज्ञानमय सत्य प्राप्त कैसे किया जाये ? श्रीअरविन्द ने अपने पूर्ण योग के ग्रन्थों में इसके भिन्न-भिन्न उपाय दिखलाये हैं, उनमें से कई विधि-निषेधात्मक प्रतीत होते हैं। पर हम पहिले विज्ञान प्राप्ति के मौलिक सिद्धान्त को स्पष्टता के साथ समझने का प्रयत्न करेंगे। दो शक्तियाँ जब परस्पर न्यूनतापूरक कार्य करें तभी विज्ञान की प्राप्ति में सफलता मिल सकती है : (१) व्यक्ति की अविरत-अविच्छिन्न और सतत अभीप्सा और (२) ऊर्ध्व भूमिका में से मानव की अभीप्सा का प्रत्युत्तर देनेवाली परम भागवत करुणा। अपने अंगत प्रयत्न से साधक मानवता से ऊपर की दिव्य शक्ति को अपने अन्दर अवतरण करने के लिए बाधित नहीं कर सकता और न ही स्व-प्रयत्न-मात्र से इन भूमिकाओं में आरोहण कर सकता है।

स्व-प्रयत्न से मानव अपने आपको ऊर्ध्व भूमिका में गति करने लायक बना सकता है और यह भी ठीक है कि अपने आधार को दिव्य शक्ति के अवतरण के योग्य बनाने के लिए वह दिव्य शक्ति की शर्तों को भी पूरा कर सकता है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि यह मानव साध्य-प्रयत्न मुख्यतया तीन रूपों में अभिव्यक्त होता है और वे हैं : १. अभीप्सा, २. अस्वीकार या त्याग ३. आत्म-समर्पण। अपने से ऊर्ध्व चेतना के लिए, सत्य के लिए, अविद्या दूर करने के लिए और इसी प्रकार के इष्ट तत्त्वों के लिए साधक अपने अन्दर अभीप्सा की ज्योति जगा सकता है। कई प्रारब्धवादी साधक सोचते हैं कि सब कुछ भगवान करते हैं अतः हमारे बदले की साधना, उसकी अभीप्सा भी वे स्वयं ही कर लेंगे ; पर यह ख्याल एकदम गलत, आध्यात्मिक प्रगति का ध्वंसक और मानव आत्मा के लिए हानिकारक है। अभीप्सा के साथ ही साथ अस्वीकार या त्याग करने का प्रयत्न—अर्थात अपनी प्रकृति के अनिष्ट तत्त्वों और कार्यों का शक्तियों और गतियों का अस्वीकार करना भी साधक को अपने आप ही करना होता है। भगवान हमारे अन्दर से सभी अनिष्ट वस्तुओं को निकाल बाहर करेंगे यह सोचकर साधक को हाथ पर हाथ धरकर बैठ न रहना चाहिये।

यह तो सच है कि अपनी इच्छा और अपने प्रयत्नों के होते हुए भी साधक अपनी प्रकृति की बहुत-सी त्रुटियों और कठिनाइयों को आसानी से दूर नहीं कर पाता ; पर इसका यह मतलब न लेना चाहिये कि साधक को अपने-आप कुछ करना ही न चाहिये। अपनी प्रकृति में जो कुछ असत्य हो, जो कुछ अज्ञान से आच्छादित हो उसे खोजना होगा, हाँ इसमें प्रभु की मदद माँगी और ली जा सकती है। इन वस्तुओं को खोजने के बाद साधक को इनको निरन्तर अस्वीकार करते रहना चाहिये ; अपने अविचल निश्चय और प्रयत्नों के साथ ही भगवान की सहायता का आवाहन किया जा सकता है। श्रीअरविन्द कहते हैं 'सत्य और असत्य, ज्योति और अंधकार, आत्म-समर्पण और स्वार्थ को इकट्ठा कैसे रखा जा सकता है ?'

समर्पण के बारे में भी वही बात है जो ऊपर अन्य दो चीजों के लिए कही गई। भगवान स्वयं या उनकी महाशक्ति ही योग साधना कर रहे हैं अतः आत्मसमर्पण भी वे ही कर देंगे, यह मानना तमोगुण का परिणाम है। यह तो साधना की अन्तिम दशा में ही सम्भव हो सकता है कि भगवान की शक्ति ही साधक के अन्दर सब कुछ करना शुरू कर दे। प्रारम्भ करनेवाला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कभी सचाई के साथ ऐसी वृत्ति नहीं धारण कर सकता। इस प्रकार हम कभी-कभी यह समझ बैठते हैं कि हम सब कुछ भगवान की शक्ति को समर्पित कर चुके हैं। भगवान साधक से समर्पण की आशा तो रखते हैं; पर अपनी सर्वशक्तिमत्ता का लाभ उठाकर वे किसी को आत्म-समर्पण के लिए बाधित नहीं करते। भगवान चाहते तो हैं कि मानव आत्म-समर्पण करे, पर साथ ही यह भी चाहते हैं कि वह आत्म-समर्पण स्वेच्छापूर्वक और आनन्द के साथ किया जाये। बहुत बार जड़ता भरी तामसिक निष्क्रियता को ही सच्चा सक्रिय आत्म-समर्पण समझने की भूल की जाती है पर इस तामसिक निष्क्रियता में से समर्थ और उच्च प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति कभी नहीं जन्मती।

इस ऊर्ध्व गति के लिए अभीप्सा करनेवाले साधक को कई चीज़ों से सावधान रहना पड़ता है। हम पहिले इन निषेधात्मक बातों को ही लेते हैं।

साधक को अपने मानस को सब प्रकार के अहङ्कार से मुक्त करने का सतत प्रयत्न करना चाहिये। 'मैं बहुत महान हूँ' इस प्रकार के अभिमान से लेकर 'मैं प्रभु का दिव्य करण हूँ, मेरे बिना प्रभु का कार्य भी न हो सकेगा' इस प्रकार के विचार सब अहङ्कार में समाविष्ट हैं। यही नहीं 'मैं हूँ ही किस लायक, मेरे अन्दर कोई योग्यता नहीं', 'मैं नम्र हूँ' आदि ऊपर से निरभिमानी और नम्रता-युक्त प्रतीत होती हुई मान्यताएँ भी उसी अहङ्कार का रूप हैं। साधक को चाहिये कि अहङ्कार के सब रूपों को उसकी सब क्रियाओं को खोज-खोजकर अपने में से निकाल दे और उनको सतत अस्वीकार करे।

यहाँ पर एक साधारण व्यावहारिक प्रश्न किया जा सकता है कि अहङ्कार के बिना साधक कार्य ही किस प्रकार करेगा। प्राचीन साधना-प्रणालियों में 'सात्विक अहङ्कार' या उसके किसी आकार को कर्ममात्र के लिए आवश्यक बताया गया है और यदि साधना का अन्तिम उद्देश्य विलयात्मक मोक्ष की प्राप्ति हो तो बहुत हद तक यह बात ठीक भी हो सकती है। परन्तु पूर्ण योग में जीवन को अर्थात कर्म को भी स्वीकार किया गया है; लेकिन उसमें साधक को जिन कर्मों के करने की छूट है, वह उसकी साधना या अहंता में से या उसके सीमित, क्षुद्र व्यक्तित्व-स्वरूप में से नहीं अपितु उसके अन्दर बसे हुए सत्य स्वरूप, उसके 'जीव' में से जन्म लेते हैं। यहाँ फिर एक बार श्रीअरविन्द की योग-साधना की भावात्मकता पर जोर देना आवश्यक लगता है। 'अहंता' को दूर करना अभीष्ट तो है परन्तु उसे दूर करके साधक को शून्य में या जड़ता में डुबकियाँ नहीं लगानी हैं। अहङ्कार से जो स्थान खाली करवाया है, वहाँ पर साधक को अन्तरात्मा या चैत्य पुरुष और विज्ञान की दिव्य भूमिका में रहनेवाले अपने 'जीव-स्वरूप' की स्थापना करनी है।

ज़रा ज्यादा स्पष्ट रूप में रखकर इस निषेध के पीछे रहे हुए भावात्मक व्यावहारिक उपायों की समालोचना करें तो हमें मालूम होगा कि अभी मानव-चेतना की सतह पर जिस पर व्यक्तित्व को मनुष्य अपना सच्चा स्वरूप मानता है, उसके पीछे अन्तर की गहराइयों में उतर-कर अपनी अन्तरात्मा को प्राप्त करना तथा क्रम से उसे बाहर चैतन्य की सतह पर ला कर मनो-मय, प्राणमय तथा स्थूल अन्नमय प्रकृति का उसके द्वारा संचालन करना इस योग के लिए बहुत उपयोगी और आवश्यक है, तथा विज्ञान की प्राप्ति के लिए भी अनिवार्य है। यह भी प्रश्न हो

[१०१२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकता है कि साधक अपने अन्दर अन्तरात्मा को किस भाँति जागृत करे। इसके लिए सबसे पहिली बात तो यह है कि साधक शुद्ध आध्यात्मिक हेतु के साथ अपने प्राण में उद्भव पाते हुए अन्य कामनामय हेतुओं का मिश्रण न होने दे तो अन्तरात्मा ज्यादा सरलता से जागृत हो सकती है। अर्थात किसी प्रकार की महत्त्वाकांक्षा, अभिमान, आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने की अथवा सिद्धियाँ प्राप्त करने की इच्छाएँ पैदा हों तो अन्तरात्मा की जागृति असम्भव हो जाती है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि जिसकी जागृति के बिना विज्ञान की प्राप्ति असम्भव है और जिसका हमारे अन्दर इतना अधिक महत्व है—वह अन्तरात्मा या चैत्य पुरुष आखिर चीज़ क्या है। संक्षेप में कहें तो साधक की अज्ञात अवस्था में कार्य करता हुआ, अपूर्ण अहंता के पीछे उसका अपना व्यक्तित्व अन्तरात्मा है। यह अन्तरात्मा विज्ञान में भगवान के अंश रूप दिव्य व्यक्तित्व का—जीव का निम्न प्रकृति में सक्रिय प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार वेदान्तियों की यह पुरानी धारणा कि 'जीव तो अविद्या में पड़ा हुआ शिव है' ठीक नहीं। 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः' में श्रीकृष्ण भगवान भी यह बात स्पष्ट कर देते हैं कि जीव भगवान का अंश है और जहाँ भगवान विज्ञानमय भूमिका में रहकर काम करते हैं वहाँ जीव भी उनके साथ है। कहने का तात्पर्य यह कि जीव स्वयं अविद्या में चलनेवाले जन्म-जन्मान्तरों के चक्र में नहीं पड़ता, अपितु ऊर्ध्व विज्ञानमय भूमिका में रहता हुआ ही वह निम्न प्रकृति को अपने प्रतिनिधि चैत्य पुरुष या अन्तरात्मा द्वारा ऊर्ध्व भूमिकाओं की ओर लिये जाता है। यहाँ पर यह बात ध्यान में रहे कि इस विषय में श्रीअरविन्द की मीमांसा और बहुत-से आर्य मीमांसकों से भिन्न है।

पर इस चैत्य पुरुष को जागृत कैसे किया जाय और ऐसी स्थिति कैसे पैदा की जाय जिससे वह आगे आकर नेतृत्व करे? इसके लिए अपने चैतन्य को बहिर्मुख प्रकृति की ओर से खींचकर अन्दर गहराइयों में डुबकी मारने का अभ्यास चाहिये। सतत ऐसा करने से मनोमय भूमिका की क्रियाओं में आन्तर मन का भाग, प्राणमय सत् की सभी क्रियाओं में आन्तर प्राण की प्रवृत्ति आगे आती है। विचार द्वारा और बुद्धि द्वारा काम करने के अपने पुराने अभ्यास को छोड़कर उसके स्थान पर चैत्य पुरुष की प्रवृत्ति के पथप्रदर्शन में काम करने की अभीप्सा और उसके अनुसार व्यवहार करना आवश्यक है। जब तक कामनामय प्राण, मनोमय बुद्धि या कोई और तत्व हमारी प्रकृति का नेतृत्व करता है, तब तक इस प्रकृति के पीछे रहनेवाले शुद्ध व्यक्तित्व को आगे आने का मौका नहीं मिलता और जीवन सच्ची दिशा में गति नहीं कर पाता।

जब इसमें कुछ सफलता प्राप्त होनी शुरू हो जाती है तो मालूम पड़ता है कि अन्तर में डुबकी लगाने की क्रिया के साथ ही साथ ऊर्ध्व गति यानी चैतन्य का ऊर्ध्वारोहण भी शुरू हो गया है। साधक यही राह देखता है कि निम्न प्रकृति में होनेवाली प्रत्येक क्रिया का प्रारम्भ ऊर्ध्व भूमिका में से हो। इसके बाद एक तीसरी क्रिया होती है और वह यह कि ऊपर की आध्यात्मिक भूमिका की दिव्य शक्ति साधक की निम्न प्रकृति में अवतरण करती और उसका रूपान्तर कर देती है।

पर यह कोई अल्पकाल में होनेवाला काम नहीं है। यह आरोहण, अवरोहण और रूपान्तर का काम लम्बी तपश्चर्या के बाद ही हो सकता है और बिरले ही पूरी तरह से सिद्ध कर सकते हैं। इस राह पर चलते हुए बहुत-सी खाइयाँ आती हैं, कठिनाइयों और विरोधी शक्तियों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के हमले होते हैं, जिनका मुकाबिला करके सही सलामत अपने ध्येय तक पहुँचना बहुत कठिन है। अन्तःकरण की पवित्रता, प्रभु-प्राप्ति के सिवाय और सभी हेतुओं का अभाव, दम्भ या व्यापार वृत्ति रहित, अहङ्कार शून्य शुद्ध आत्मसमर्पण करने की शक्ति साधक को अपने अन्दर पैदा करनी होती है। और यह सारी की सारी क्रिया कष्टसाध्य है।

यहाँ पर यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि इस प्रकार प्रकृति का समूल रूपान्तर करने की साध रखनेवाले में धैर्य का कितना अक्षय भण्डार होना चाहिये। लापरवाही या काम-चलाऊ वृत्ति काम की गम्भीरता कम कर देती है। जल्दी-जल्दी काम कर डालने के अधीरपन के परिणाम-स्वरूप जहाँ काम में वेग आता है, वहीं सावधानी और पूर्णता में खामी रह जाती है। ऊपर यह तो कहा गया है कि साधक को अपने अन्दर सदा तीव्र अभीप्सा जागृत रखनी चाहिये; पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसे उतावला हो उठना चाहिये और न ही यह ठीक है कि वह जड़ता और निष्क्रियता में डूबा रहे। न तो राजसिक आतुरता हो और न तामसिक जड़ता और निरुत्साह। हाँ साधक में होनी चाहिये, सतत जागृत शान्त अभीप्सा तथा अनासक्त विवेक की क्रिया।

साधक को अनेक कठिनाइयों, भिन्न-भिन्न संयोगों और परिस्थितियों में पूर्ण शान्ति और समता रखनी चाहिये। उसे असाधारण अनुभव हों—चाहे उच्च और भव्य साक्षात्कार हों या निम्न प्रकृति के अन्धेरे कुएँ में गिरने की सम्भावना उपस्थित हो, फिर भी उसे अपनी समता अखण्ड रखना सीखना होगा। ऐसी शान्ति और समता स्थापित करने का मुख्य कारण यह है कि साधक की अविद्यामय प्रकृति का रूपान्तर करने के प्रयत्न में पुरानी वृत्तियाँ (१) फिर-फिर लौट आने का (२) नई उन्नत प्रकृति की स्थापना का विरोध करने का और (३) बाहर निकाले जा चुकने पर भी पुनरावर्तन स्थापित करने का प्रयत्न करती रहती हैं। यह सारी क्रिया सीधी-सादी सही-सलामत यात्रा नहीं है, अपितु सतत युद्ध करती हुए सेना की कूच के समान है। बाह्य जीवन के बाह्याचार में कोई सामान्य बुद्धि की खामी न हो, ऐसी तटस्थ समता ज़रूरी है। अपनी प्रकृति की सभी क्रियाओं के प्रति एक प्रकार की अपौरुषेय तटस्थता स्थापित करना जरूरी है, जिससे साधक अपने आन्तर और बाह्य सभी प्रकार के कर्मों के प्रति तटस्थ और अनासक्त रह सके।

बहुत बार यह भी होता है कि साधक अपने आध्यात्मिक विकास के बारे में अपने पुराने विचारों में फँसा रहता है या मानसातीत अन्तिम सत्य के विषय में भी अपने मानसिक विचार और सम्मतियाँ बना बैठता है और परिणामतः मानसातीत सत्य की प्राप्ति के प्रयत्न में अड़चन पड़ती है, क्योंकि मानसिक विधि-विधान चाहे वह किसी प्रकार का ही क्यों न हो, इस सत्य के अवतरण में रोड़ा अटकाता है और कुछ नहीं तो कम-से-कम उसके लिए सीमा तो बाँध ही देता है।

साधना करते हुए साधक को जो अनुभूतियाँ हों, उनमें से किसी के साथ भी अति पक्षपात न करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से और अधिक ऊँची अनुभूतियाँ नहीं हो पातीं, असम्भव हो जाती हैं। साधक के मानस में एक प्रकार की विवेक-शक्ति की ज्योति का रहना बहुत वाञ्छनीय है, क्योंकि उसके बिना वह बड़ी भारी गलतियाँ कर सकता है। अनेक स्खलनों, कठिनाइयों और विरोधी शक्तियों के हमलों से बचानेवाली शक्ति है विशुद्ध अभीप्सा की सतत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जागृत ज्योति। ऊर्ध्व शक्ति को कब्जे में करके अपने उपयोग में लाने का विचार छोड़कर उस ऊर्ध्व सत्य के प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करने के लिए साधक को सदा तैयार रहना चाहिये। किसी प्रकार की कोई शक्ति प्राप्त हो तो उसे भगवान की देन ही समझना चाहिये, अपना माल नहीं। संक्षेप में कहें तो साधक को और सब कामनाओं का परित्याग करके ऊर्ध्व भूमिका में भगवान की महाशक्ति की विशुद्धि, उसकी शक्ति, उसकी ज्ञानज्योति, उसकी विशालता और शान्ति को अपनी प्रकृति में करने के लिए सतत अभीप्सा करनी चाहिये। उसकी निम्नमुख प्रकृति का ऊर्ध्व प्रकृति की क्रिया में रूपान्तर हो जाय यही साधक की एक माँग सदा होती रहनी चाहिये।

इस प्रकार करने से धीरे-धीरे व्यक्तित्व की सीमाएँ दूर होती हुई प्रतीत होंगी और साधक की चेतना क्रमानुसार विराट के साथ एक होती जायगी। जगत के मध्यबिन्दु में 'अहं' को रखकर विचार करने की पुरानी आदत चेतना में से जाती रहेगी और यह तो स्पष्ट ही है कि तभी यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी।

जब साधक का चैतन्य इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो वह अपने आधार को ऊर्ध्व भूमिका की दिव्य महाशक्ति—शुद्ध विज्ञानमय शक्ति—के प्रति खोल सकता है और केवल यह मयाशक्ति ही मानव के आधार का सच्चा रूपान्तर कर सकने में समर्थ है। यहाँ भी दो-एक सावधानियाँ रखनी आवश्यक हैं। कई बार महाशक्ति की जगह कोई साधारण और सामान्य शक्ति साधक में प्रवेश करने का प्रयत्न करती है और यह बताने का प्रयत्न करती है, मानो वही महाशक्ति है। यह भी हो सकता है कि साधक की अपनी अहंता ही उसे भुलावा देकर अपने निर्णय, अपने विचार और अपने अनुभवों को महाशक्ति बतलाकर उस पर लादने का यत्न करे। इन दोनों ही मौकों पर साधक को जागृत रहकर असत्य को परख सकनेवाले विवेक का उपयोग करना चाहिये।

साधना के फल-स्वरूप किसी प्रकार की सिद्धि माँगना भी एक प्रकार की कामना है। अगर माँग करनी ही हो तो भगवान से विज्ञानमय, परम दिव्य सत्य की माँग करो। उसी की विजय, उसी के साक्षात्कार, इस पृथ्वी पर और अपने अन्दर उसी के स्थापित होने का वरदान माँगो; बाकी सब कुछ इसी दिव्य महाशक्ति के हाथ में सौंप दो—यही सारी कठिनाइयों से सही-सलामत पार हो जाने का सबसे सुगम उपाय है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् की ओर भावों की गति

[श्रीअरविन्द]

['आर्य' नामक अंग्रेजी मासिक में श्रीअरविन्द ने Synthesis of Yoga नामक एक पुस्तक धारा-वाही रूप में प्रकाशित की थी। यह लेख उसके भक्तियोगवाले खण्ड में से लिया गया है।—सं०]

मानव-चैतन्य की सभी शक्तियों अथवा किसी एक शक्ति को प्रभु की ओर लगाना, जिससे उसके द्वारा प्रभु के चैतन्य का स्पर्श हो सके और उनके साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सके, यही योग का मौलिक सिद्धान्त है। भक्ति-योग में मानव की भाव-प्रधान प्रकृति को, और उसके चित्त को योग-साधन का उपकरण बनाया जाता है। इसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि मानव और प्रभु में किसी प्रकार का मानुषी सम्बन्ध स्थापित किया जाय, ताकि मानव-हृदय के भाव और अधिकाधिक बढ़ती हुई तीव्रता और उत्कटता के साथ प्रभु की ओर गति करती हुई आत्मा प्रभु का वरण कर सके और दिव्य प्रेम की प्रचुरता और उत्कटता में प्रभु के साथ एक हो रहे। भक्ति-योग द्वारा साधक प्रभु के साथ अद्वैत की विशुद्ध शान्ति या अद्वैत के लिए प्राप्त होनेवाली शक्तियाँ निष्काम अनासक्त तपःशक्ति नहीं माँगता, वह माँगता है केवल योग के आनन्द की मस्ती। भक्ति योग ऐसी हर एक गति को, ऐसे हर एक भाव को स्वीकार करता है जो मानव-हृदय को इस निरतिशय आनन्द के पाने योग्य बना सके और जैसे-जैसे अपने प्रेम द्वारा भक्त प्रभु के साथ मिलता जाय, जैसे-जैसे यह मिलन अधिकाधिक प्रगाढ़ और सम्पूर्ण होता जाय, वैसे वैसे ही जो-जो चीज़ें इस आनन्द की पराकाष्ठा को अनधिकारी बनानेवाली होती हैं वे साधक की प्रकृति में से दूर होती जानी चाहियें।

प्रत्येक धर्म पूजा, सेवा तथा प्रभु-प्रेम की वृत्ति का आश्रय लेकर भगवान् की ओर गति करता है। भक्ति-योग में भी इन्हें स्वीकार तो किया जाता है; पर अन्तिम प्राप्तव्य के रूप में नहीं, अपितु प्राथमिक भूमिका तैयार करनेवाले साधन के रूप में। मनोभावों में भी एक ऐसा भाव है, जिसके साथ इस योग का—खास कर भारतवर्ष में प्रचलित योग का—कोई सम्बन्ध नहीं। कई धर्मों में, नहीं बहुत-से धर्मों में भगवान का भय बहुत महत्त्वपूर्ण कभी-कभी सबसे ऊँचा स्थान पाता है, इन धर्मों में 'धर्म भीरु' भक्त ही दिखाई देते हैं। किसी विशेष प्रकार की भक्ति के साथ तो यह डर मेल खा जाता है और किसी हालत में ठीक भी है; पर जब यह भाव बढ़ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है तो भगवान की दिव्य हुकूमत, प्रभु का न्याय, दिव्य नियम या सत्य धर्म की पूजा का रूप धारण कर लेता है। अन्त में चुपचाप प्रभु के नियमों का पालन करने में, सर्वशक्तिमान सत्ताधीश प्रभु या धर्मराज के रूप में भगवान के लिए आश्चर्य तथा भय-मिश्रित सम्मान पैदा हो जाता है। इस वृत्ति का नीति धर्म के साथ अधिक सम्बन्ध होता है, अतः यह जितनी दिव्य विधाता और कर्मों के स्वामी के प्रति भक्तिपूर्वक अपना काम करते चलनेवाले कर्मयोगी के लिए ठीक हो सकती है, उतनी एक भक्त के लिए नहीं। ऐसा भाव प्रभु को सम्राट मानता है और यह प्रभु के सिंहासन तक तभी पहुँचने देता है, जब या तो व्यक्ति अपनी धार्मिकता के बल पर यह अधिकार प्राप्त कर ले, अथवा पाप के प्रति प्रभु का रोष क्षमा करवा सकनेवाला कोई तारनहार व्यक्ति उसे वहाँ ले जाये। जब वह अधिक से अधिक प्रभु के पास पहुँच जाता है, तब भी प्रताप से और तेज के आगे चकाचौंध में पड़कर अपने और भगवान के बीच अहंभाव का अन्तर तो रखता ही है। जैसे एक निर्भय बालक श्रद्धापूर्वक अपनी मा से चिपट जाता है या प्रणयी अपनी प्रियतमा से आलिंगन करता है, उस तरह वह प्रभु के साथ नहीं मिल सकता, सम्पूर्ण प्रेम में जो गाढ़ अद्वैत का भाव होता है, उसकी अनुभूति नहीं प्राप्त कर सकता।

इस भय का मूल प्राथमिक स्थिति के लोकप्रिय धर्मों और उनकी असंस्कारिता में है। जगत में मनुष्य से बढ़कर महान और उसके लिए अज्ञात, आवरण से ढकी हुई प्रकृतिवाली सक्रिय सत्ता का अर्थात देवों का ज्ञान इस भय का कारण है। यह माना जाता था कि देवता सम्पदा में फँसे हुए मानव को अधोगति में पहुँचा देते हैं या जो काम उन्हें नापसन्द हो ऐसा काम करनेवाले को विनष्ट करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। प्रभु के स्वरूप और संसार पर शासन करनेवाले नियमों को न जानने की वजह से मानव के अन्दर देवों का भय पैदा हो गया। उसने अपने से ऊँची सत्ताओं में, आवेगों, वृत्तियों और सनक का अध्यारोप किया। इसी अज्ञान के कारण देवताओं को पार्थिव जगत के महान व्यक्तियों के साँचे में ढाला गया, उन्हें सनकी, विचित्र, अत्याचारी, अंगत वैर रखनेवाला ; मानव अपनी क्षुद्रता छोड़कर उन्नति करता हो और दिव्य प्रकृति के समीप पहुँच रहा हो, इन्हें ईर्ष्या होने लगे कुछ इस तरह का स्वरूप दिया गया। ऐसी अवस्था में कोई ऊँचे प्रकार की सच्ची भक्ति तो सम्भव ही नहीं है, वहाँ तो भक्ति सम्भव है जैसी कि एक निर्बल में एक बलवान सत्ता की पूजा-अर्चना करके, भेंट चढ़ाकर अपने लिए अभयदान और आत्म-रक्षा खरीदने के समय हो सकती है। उन देवों ने अपने से नीचे प्राणी के लिए इनाम और सजा के प्रतिफल के साथ जो नियम बना दिये हों, उनका पालन करके उनसे रक्षक भी प्राप्त किया जा सकता है। पार्थिव भूमिका से परे, उसके सब नियमों और घटनाओं के नियन्ता, महत्ता, गौरव तथा ज्ञान-युक्त सम्राट के लिए मानव-हृदय में शरणागत भाव, साष्टाङ्ग नमस्कार करनेवाली भक्ति ही पैदा हो सकती है।

भक्ति मार्ग के निकट पहुँचने के लिए ऊपर वर्जित दिव्यता और शक्तिमत्ता के सारे असंस्कृत ख्यालों को तिलाञ्जलि देना आवश्यक है। यह ध्यान रहना चाहिये कि प्रभु विश्व का सम्राट, सृष्टि का सर्जक और पृथ्वी तथा अन्य लोकों का नियंता तो है ही। पर साथ ही अपने उत्पन्न किये हुए लोकों का गुरु, सहायक और त्राता भी तो है। प्रभु-विषयक इस विशाल विचार में भी पुरानी असंस्कारिता और अपक्वता बहुत समय तक रही और किन्हीं अंशों में अभी तक विद्यमान है। सब से बढ़कर यहूदियों ने इस विचार को प्रधानता दी और उनके द्वारा यह दुनिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के बहुत बड़े भाग में फैल गया। यहूदियों के मतानुसार भगवान केवल न्यायकारी और धर्मात्मा ही नहीं अपितु सङ्कुचित, स्वार्थी, स्वेच्छाचारी, क्रोधी, ईर्ष्यालु, और बहुत बार क्रूर और भावहीन तथा रक्त बहानेवाला ठहरता है। आज-कल भी बहुत-से मानते हैं कि प्रभु सनातन स्वर्ग और नरक का स्रष्टा है। बहुतेरे धर्म तो यह भी मानते हैं कि प्रभु ने प्राणियों को पैदा तो किया है; पर उनके कर्म, उनके पाप और पाप का दण्ड यह सब पहिले से ही निश्चित कर रखा है। इतना ही नहीं उनके लिए सनातन नरक भी निश्चित कर रखा है। इस प्रकार के मन्तव्यों और अतिशयोक्तियों को अलग कर के देखें तो भी सर्वशक्तिमान, न्यायाधीश, नियन्ता, शासक या सम्राट के रूप में प्रभु का ख्याल, यदि उसे अलग करके अकेला देखा जाय तो अपक्व, गँवारू और अपूर्ण ही है क्योंकि वह एक गौण और बहिर्मुख सत्य को मुख्य सत्य मान बैठता है और प्रभु के स्वरूप के अधिक निकट की वास्तविकता के पास जाने का ऊर्ध्वगामी मार्ग बन्द कर देता है। इस विचार से मानव में अपने पाप-के मान को अत्यधिक महत्त्व मिल जाता है और आत्मा के अन्दर तथा अविश्वास की खामियाँ और निर्बलताएँ चिरायु और पुष्ट बन जाती हैं। सद्गुण के अनुशीलन और पाप के त्याग के साथ वह पारितोषिक और दण्ड के भाव को मिला देता है—हाँ यह दोनो मिलते मौत के बाद ही हैं। इस प्रकार सद्गुण और सदाचार की भित्ति और स्वार्थ और भय के आधार पर खड़ी की जाती है। ठीक-ठीक देखें तो उच्चनीतिमयता की भावना की जगह धार्मिक जीवन का अन्तिम हेतु स्वर्ग या नरक—स्वयं प्रभु-प्राप्ति नहीं—ठहरता है। मानव मन के धीमे विकास में इस विचार ने भी हिस्सा लिया है; पर योगी के लिए तो इसका कोई उपयोग नहीं; क्योंकि उसके अन्दर जो सत्य विद्यमान है वह मानव की विकास करती हुई आत्मा और विश्व के बाह्य नियमों का सम्बन्ध जोड़नेवाला है। मानव की अन्तरात्मा का प्रभु के साथ आन्तरिक आध्यात्मिक सम्बन्ध है, उससे इस प्रकार के विचार मेल नहीं खा सकते। योग का कार्य-क्षेत्र तो आन्तरिक आध्यात्मिक सम्बन्ध ही है।

ऐसा होते हुए भी प्रभु-विषयक इन विचारों द्वारा किसी दिशा में ऐसा विकास अवश्य होता है जो मानव को भक्तियोग के प्रवेश-द्वार के समीप पहुँचा दे। पहिले तो अपनी नैतिक भावना के मूल और जीवन के नियन्ता तथा अन्तिम प्राप्तव्य के रूप में प्रभु को स्वीकार किया जाता है। इससे हमें ज्ञात होता है कि हमारी क्रियात्मक प्रकृति जिस उत्तम पुरुष को प्राप्त करने की अभीप्सा करती है, वह उत्तम पुरुष तो भगवान ही है। साधक जान लेता है कि जिस दिव्य तपःशक्ति के साथ अपनी तपःशक्ति को एक कर देता है, जिस सनातन सत्य धर्म, पवित्रता, सत्य और ज्ञान स्वरूप के साथ अपनी मानव-प्रकृति को अधिकाधिक मिलाना है तथा जिसके प्रति समग्र चैतन्य आकर्षित हो रहा है, वह सत्ता भी तो प्रभु की ही है। इस मनोवृत्ति के द्वारा हम कर्मयोग तक आ पहुँचते हैं और कर्मयोग में भक्ति के लिए स्थान है, क्योंकि दिव्य तपःशक्ति हमें अपने कामों के स्वामी के रूप में दिखाई देती है, उसकी आज्ञा का पालन करना, उसकी दिव्य प्रेरणा अथवा दिव्य आदेश के अनुसार चलना तथा उसी का काम करना हमारी तपःशक्ति तथा सक्रिय जीवन का एक-मात्र हेतु बन जाता है। इसी मनोवृत्ति से सबको अपने कल्याणकारी आश्रयदायिनी गोद में बिठानेवाले तथा सभी प्राणियों को चाहनेवाले जगत-पिता का विचार आता है, इसके परिणाम-स्वरूप मानव की आत्मा और प्रभु में पिता-पुत्र का प्रेम और वात्सल्यमय सम्बन्ध स्थापित होता है और इसके साथ ही सब मनुष्यों के साथ भ्रातृ-भाव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का सम्बन्ध अपने आप जुड़ जाता है। मानव को प्रभु की शान्त, विशुद्ध और दिव्य प्रकृति की ज्योति में अपने चैतन्य का विकास करना है। इस विकास के लिए प्रभु के साथ ऊपर बताये हुए सम्बन्ध स्थापित करना, अपने कर्मों और अपनी सतत सेवा के लक्ष्य एक प्रभु को ही मानना। अपने सब कामों के स्वामी के रूप में उन्हें ही स्वीकार करना तथा बालक भाव से बढ़नेवाली अपनी अन्तरात्मा के साथ पिता-स्वरूप में प्रत्युत्तर देनेवाले जगत पिता का साक्षात् करवाना—यह सब तो भक्ति योग के सुविदित तत्व हैं।

जिस क्षण से हम विकास की इस भूमिका में प्रवेश करते हैं और उसके गहरे आध्यात्मिक अर्थ में उतरते हैं उसी क्षण से भगवान के भय का हेतु अर्थहीन, फालतू और असम्भव बन जाता है। जब तक मनुष्य की आत्मा इतनी उन्नत नहीं हो चुकी होती कि वह शिव के लिए ही शिव का वरण करे तथा जब तक उसे अपने से परे किसी क्रोधी अथवा निष्पक्ष और निर्लेप डरावनी सत्ता की ज़रूरत अनुभव होती हो तभी तक भय का हेतु नीति के क्षेत्र में प्रधान रहता है तथा सद्गुणों के प्रति वफादारी की भित्ति इसी पर चुनी जाती है। जब हम आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते हैं तो यह भय का हेतु निभ नहीं सकता। यह और बात है कि मन की उलझी हुई अवस्था जारी रहने के कारण या पुरानी मनोदशा और पुराने संस्कारों के बचे रहने के कारण वह कुछ समय बना रहे। सद्गुण, पुण्य वगैरः सामान्य बहिर्मुख नैतिक विचारों में जो नियम काम करता है उसकी अपेक्षा योग साधना का नियम कुछ भिन्न ही है। साधारणतः यह माना जाता है कि नीतिशास्त्र का मतलब है सत्य को अपने आचरण में घटाने की यन्त्रवत योजना और नीति में कर्म ही मुख्य स्थान पाता है। नीति के सामने केवल एक ही प्रश्न होता है और वह यह कि सत्य पर किस तरह आचरण किया जाय। पर योगी कर्म की खातिर नहीं लगाता। उसके लिए तो कर्म अपनी आत्मा को प्रभु की ओर विकसित करने का एक साधन है। इसीलिए आर्यावर्त के आध्यात्मिक ग्रन्थों में कर्म के स्वरूप और लक्षणों पर इतना जोर नहीं दिया जाता जितना कर्म के मूल आत्मा की स्थिति पर और गुणों पर अर्थात् आत्मा की सत्यमत्ता, निर्भयता, विशुद्ध प्रेम, करुणा, परोपकारवृत्ति, कल्याणवृत्ति, किसी अन्य को हानि पहुँचानेवाली तपःशक्ति का अभाव आदि बातों पर ज़्यादा जोर दिया जाता है और कर्म का मूल्य आत्मा या चेतना की अवस्था से ही आँका जाता है। यह पुराना पाश्चात्य विचार कि मानव प्रकृति अपने-आप में पापी है और हमें अपनी पतित प्रकृति होते हुए उसके खिलाफ पुण्य करते चलना है—अति प्राचीन काल से योगियों के विचार में पले हुए भारतीय मानस के लिए एकदम नया और अपरिचित है। आवेग राजसिक वृत्तियों और अधोमुख तामसिक वृत्तियों के साथ-साथ हमारी प्रकृति में अधिक विशुद्ध सात्विक गुण भी तो मौजूद हैं। मानव प्रकृति के इस उच्चतम गुण को उत्तेजना देना ही नीतिशास्त्र का काम है। नीति के अनुशीलन द्वारा हमारी 'दैवी प्रकृति' में वृद्धि होती है और हम आसुरी सम्पत्ति का त्याग करके उससे छुटकारा पाते हैं। इस विचार के अनुसार नैतिक विकास का अन्तिम उद्देश्य प्रभु से डरनेवाले, धर्मभीरु भक्त, या यहूदियों द्वारा कल्पित प्रामाणिकता और धार्मिकता प्राप्त करना नहीं है; अपितु सन्त और भगवत्भक्त की पवित्रता, प्रेम, कल्याण-वृत्ति, सत्य, निर्भयता और निर्दोषता प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य है। और अधिक व्यापक दृष्टि से देखें तो नीति का अनुसरण करनेवाली हमारी प्रकृति की सार्थकता प्रभु की दिव्य प्रकृति में विकास पाने में ही है और इसका सर्वोत्तम उपाय प्रभु को अपना उच्चतर स्वरूप, अपना पथप्रदर्शक,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तारनहार और उन्नतिकारक तप, शक्ति मानकर उसका साक्षात्कार करना है। या इस रूप में उसका साक्षात्कार करें कि हम इसे ही चाहते हैं उसी की सेवा करते हैं, वही हमारा मालिक है। अर्थात् हमारी भक्ति का हेतु प्रभु का भय नहीं, अपितु प्रेम हो और उसकी दिव्य प्रकृति में जो सनातन मुक्ति और पवित्रता है, उसके लिए अभीप्सा हो।

मालिक और नौकर के सम्बन्ध में भय का स्थान है और पिता-पुत्र के सम्बन्ध में भी हो सकता है परन्तु जब तक यह सम्बन्ध सामान्य मानव चैतन्य की भूमिका पर रहता है और जब तक संयम, धाक, काबू, हुकूमत और दण्ड के तत्व प्रधान होते हैं और प्रेम चाहे थोड़ा बहुत ही क्यों न हो, अधिकार के पीछे छिपा रहता है, उसका छिपाना आवश्यक होता है, तभी तक भय को स्थान मिल सकता है। मालिक तथा प्रभु के रूप में भी भगवान किसी को दण्ड नहीं देते, किसी को धमकी नहीं देते और न ही किसी से जबरदस्ती आज्ञा-पालन करवाते हैं। मानव आत्मा को अपने-आप स्वतन्त्र रूप से प्रभु के समीप जाना है और अपने-आप को उसकी सर्व-विजयी शक्ति के सुपुर्द कर देना है, ताकि प्रभु उसे स्वीकार करके अपनी दिव्य भूमिका में ले लें, उसकी उन्नति करें तथा सान्त प्रकृति पर प्रभुता पाने और परमात्मा की सेवा करने का आनन्द उसे प्रदान करें। इस आनन्द द्वारा अहङ्कार और अधोगामी प्रकृति से छुटकारा मिल जाता है। इस सम्बन्ध की चाबी है 'प्रेम।' सखा रूप में आनन्द-पूर्वक या प्रियतम के रूप में उत्कट राग-सहित प्रभु की सेवा को भारतवर्ष की योग-पद्धति में 'दास्य' कहते हैं। जो भगवान गीता में सकल विश्व के स्वामी के रूप में अपने सेवक और भक्त को केवल अपने उपकरण के रूप में जीवन बिताने के लिए कहते हैं, वे ही प्रभु भक्त को मित्र रूप में, गुरु और पथप्रदर्शक के रूप में तथा भक्त के अपने उत्तम दिव्य स्वरूप में उसे मिलते भी हैं। वे अपने-आप को 'सर्वलोक महेश्वर सुहृदं सर्व भूतानाम्' बताते हैं। यदि ठीक-ठीक देखा जाये तो यह दोनो रूप साथ-साथ चलने चाहियें, क्योंकि एक के बिना दूसरा पूर्ण नहीं हो पाता। प्रभु सरजनहार के रूप में हमारे पिता हैं, उन्होंने हमें पैदा किया है, इसलिए वे हमसे अपनी आज्ञा मनवाना चाहते हों यह बात नहीं है, उनका तो प्रेम-भरा पितृत्व ही, जो हमारी अन्तरात्मा के ज्यादे गहरे और आन्तरिक सम्बन्ध की ओर अंगुलि-निर्देश करता है, हमसे ऐसी मांग करता है। दोनो प्रकार के सम्बन्धों की असली चाबी प्रेम है और सम्पूर्ण प्रेम कभी भय के साथ मेल नहीं खा सकता। यह योग प्रभु के साथ मानव की आत्मा का सामीप्य पैदा करना चाहता है; लेकिन भय हमेशा बीच में एक खाई उप-स्थित करता रहता है। विस्मय और अहोभाव तथा साष्टाङ्ग प्रणिपात की भावना भी मानव आत्मा और प्रभु के बीच अन्तर और भेद होने की निशानी है और प्रेम के अद्वैत और गाढ़ मिलन में यह सब विलीन हो जाते हैं। भय हमारी निम्न प्रकृति की क्रिया है, उसका सम्बन्ध हमारे अधोमुख स्वरूप के साथ है, अतः अपने उच्चतर स्वरूप की ओर जाने से पहिले, उसकी उपस्थिति में हाजिर होने से पहिला इसका परित्याग आवश्यक है।

प्रभु के साथ यह पिता जैसा सम्बन्ध और इससे भी बढ़कर मा और विश्वजननी के-से करीबी रिश्ते का मूल धर्म के एक अन्ध हेतु में है। गीता में कहा है कि प्रभु को अपने निर्वाह का दाता, योग-क्षेम करनेवाला अपनी आन्तरिक और बाह्य सभी तरह की आवश्यकताएँ पूरी करनेवाला समझना भी एक प्रकार की भक्ति है। गीता में भगवान कहते हैं 'योगक्षेमं वहाम्य-

[१०२०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम्।' मानव-जीवन अवश्यकताओं और माँगों से भरा हुआ है ; जीवन कामनामय है। केवल स्थूल अन्नमय और प्राणमय जीवन में ही नहीं, मनोमय और आध्यात्मिक सत में भी यह तत्त्व रहता है। जगत पर शासन करनेवाली, अपने से महान ईश्वरीय सत्ता का जब मनुष्य को ज्ञान होता है तो वह अपनी आवश्यकताएँ पूरी करवाने, अपनी कठिनाइयों भरी दुष्कर यात्रा में सहायता लेने और अपने जीवन-संग्राम में रक्षण और सहायता के लिए प्रार्थना करने प्रभु के ही समीप पहुँचता है। प्रार्थना सहित ईश्वर विमुख होने की सामान्य धार्मिक क्रिया में बहुत-सी गँवारू बातें भी है ; विशेषतः यह ख्याल कि स्तुति, याचना, भेंट वगैर के द्वारा भगवान को प्रसन्न किया जा सकता है, घूस देकर या खुशामद करके अपनी इच्छाएँ पूरी करवाई जा सकती हैं, विलास करने की छूट या उस का लाड़ प्राप्त किया किया जा सकता है—यह सारी मनोवृत्ति ही बहुत गँवारू है। इस में यह दिखाई देता है कि मानव के अन्दर प्रभु के प्रति गति करने के आन्तरिक भाव का आदर नहीं है। लेकिन फिर भी धार्मिक भाव की रट लगानेवाले लोगों में प्रार्थना करने की एक मौलिक वृत्ति पाई जाती है और यहाँ यह भी स्वीकार करना चाहिये कि इसके पीछे विराट् का कोई सत्य अवश्य छिपा हुआ होगा।

प्रार्थना के प्रभाव के बारे में बहुत बार शङ्का की जाती है। उसे तर्क-विरुद्ध कहकर बेधड़क उसे बेकार और निष्फल बताया जाता है। यह ठीक है कि विराट तपःशक्ति तो हमेशा अपना कार्य करती ही रहती है और अहङ्कार भरी याचनाओं या प्रसन्न करने के तरीकों से उसे अपने मार्ग से विचलित नहीं किया जा सकता। परात्पर परमात्मा के विषय में भी यह विचार ठीक है क्योंकि भवान स्वयं विराट सृष्टि में अपना आविर्भाव कर रहे हैं और विराट के मूल रूप में उन्हें यह पहिले से ही मालूम है कि आगे क्या किया जाना है और उन्हें मानव के विचार-द्वारा उत्तेजना या मार्ग-प्रदर्शन की ज़रूरत नहीं। विराट की किसी भी रचना में व्यक्ति की इच्छाओं का अन्तिम निर्माण करने में कोई हिस्सा नहीं होता और न हो सकता है। पर साथ ही यह बात भी उतनी ही ठीक है कि विराट तपःशक्ति का काम केवल यन्त्रवत् नियमों द्वारा नहीं, अपितु सचेतन शक्तियों और सत्ताओं के द्वारा हो रहा है। और यह नहीं हो सकता कि मानव जीवन में मानव तपःशक्ति, उसकी अभीप्सा और उसकी श्रद्धा को नगण्य माना जा सके। मानव अपनी इस तपः-शक्ति, अभीप्सा और श्रद्धा को जो विशिष्ट रूप देता है, उसीका नाम है प्रार्थना। प्रार्थना का स्वरूप बहुत बार असंस्कृत, गँवारू और बच्चों का-सा—पर बच्चों का-सा होना कोई कमजोरी नहीं है—नादानी-भरा होता है। लेकिन फिर भी प्रार्थना में वास्तविक शक्ति और अर्थ-घनता भरी हुई है। मानव की तपःशक्ति, अभीप्सा और श्रद्धा सचेतन सत्ता के साथ अपना सचेतन और जीता-जागता सम्बन्ध जोड़ सकती है और प्रार्थना का लक्ष्य यही है कि वह उस दिव्य तपःशक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़े, उसके स्वरूप को स्पर्श करा दे। मानव की तपःशक्ति और अभीप्सा दो ही तरीकों से सफल हो सकती हैं। पहिला तरीका यह है कि वह अपनी शक्ति और अपने प्रयत्न के आधार पर सफलता प्राप्त करे और इस छोटी-सी प्राप्ति को भी वह महान् तथा प्रभावोत्पादक बनाकर किसी शुभ या अशुभ हेतु साधने के काम में ला सकता है। बहुत-से साधन-ग्रन्थ इसी विधि पर आश्रित हैं जिसमें केवल प्रार्थना को ही साधना का एक-मात्र रूप समझा जाता है। दूसरी विधि में मानव की तपःशक्ति और अभीप्सा प्रभु की दिव्य तपःशक्ति पर या विराट तपः-शक्ति का आश्रय लेकर उसके वश में होकर सफलता साधती है। इस दूसरी विधि में भी हम यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मान सकते हैं कि दिव्य शक्ति मानव की तपःशक्ति और अभीप्सा को प्रत्युत्तर देती है। इसमें हमें यह लगता है कि यह प्रत्युत्तर लगभग यन्त्रवत् किसी स्थूल शक्ति के नियमानुसार मिलता है या यह दिव्य शक्ति तटस्थ सत्ता के रूप में मानव को प्रत्युत्तर देती है। पर यह तो उसके धर्म का एक पहलू है। दूसरी ओर से देखें तो यही नहीं कि वह मानव आत्मा की दिव्य अभीप्सा तथा तपःशक्ति तो मानव को सचेतन प्रत्युत्तर देती है अपितु वह दिव्य तपःशक्ति तो मानव को सहायता, पथ-प्रदर्शन रक्षा तथा अभिप्सित वर की सिद्धि भी प्रदान करती है—योगक्षेमं वहाम्यम्।

शुरू-शुरू में जब प्रार्थना अहंता और आत्म-वंचना के साथ निम्नभूमिका से ही उठती है, तब भी वह हमारे और प्रभु के बीच उपरिवर्जित सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता करती है। इस प्रकार प्रारम्भ हो जाने पर हम इसके पीछे छिपे हुए आध्यात्मिक सत्य के समीप जा सकते हैं। प्रार्थना में मुख्य बात यह नहीं है कि इसके द्वारा हमारी इच्छा पूरी हो जाती है या हमारी याचित वस्तु हमें मिल जाती है। इसमें सबसे बड़ी बात तो यह है कि मानव-आत्मा का प्रभु के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है और मानव-जीवन प्रभु तक पहुँचने लगता है। आध्यात्मिकता के विषय में और आध्यात्मिक प्रगति में ऐसा सचेतन सम्बन्ध एक बहुत बड़ी शक्ति है। पूरी तरह से अपने ऊपर आश्रित, अपने ही प्रयत्न और परिश्रम करनेवाली अंगत शक्ति की अपेक्षा यह शक्ति कहीं अधिक महान है और इसके द्वारा साधक ज्यादा सर्वदेशीय विकास और साक्षात् को प्राप्त कर सकता है।

अन्त में प्रार्थना जिस महान उद्देश्य के लिए हमें तैयार कर रही होती है, उसकी प्राप्ति के साथ-साथ ही प्रार्थना अपने-आप बन्द हो जाती है। सच पूछो तो यदि मानव के अन्तर में श्रद्धा, तपःशक्ति और अभीप्सा सतत जागृत रहें तो 'प्रार्थना' कहलानेवाली चीज़ की कोई आवश्यकता नहीं रहती; लेकिन फिर भी यदि वह जारी रहे तो प्रभु के साथ सम्बन्ध का आनन्द प्राप्त करने के लिए ही रह सकती है। हाँ प्रार्थना के 'अर्थ' यानी याचित पदार्थ भी बराबर ऊँचे प्रकार के होते जाते हैं और अन्त में अहैतुकी भक्ति में बदल जाते हैं—यह पराकाष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। और अहैतुकी भक्ति का अर्थ है प्रभु के लिए विशुद्ध सरल प्रेम—जो किसी प्रकार की माँग नहीं करता।

इस प्रकार की मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप मानव आत्मा और परमात्मा में बच्चे और दिव्य माता तथा दिव्य पिता का सम्बन्ध पैदा हो जाता है, उसे हम दिव्य सुहृद और सखा जान लेते हैं। सहायता, रक्षा, मार्ग-प्रदर्शन और अपनी अन्तिम सार्थकता प्राप्त करने के लिए मानव आत्मा पिता, माता और सखा रूप परमात्मा के समीप जाती है और यदि ज्ञान-प्राप्ति अन्तिम हेतु हो तो प्रभु को मार्गदर्शक गुप्त तथा ज्योति प्रदाता मान लेती है; क्योंकि प्रभु ही तो ज्ञान-सूर्य है। मानव आत्मा अपने दुःखों और क्लेशों से छुटकारा पाने के लिए आश्वासन और मुक्ति की खोज में हो, तब प्रभु की ही ओर गति करता है फिर चाहे यह मुक्ति क्लेश में से हो या क्लेश के निवास-रूप संसार में से अथवा उसके आन्तरिक और वास्तविक कारणों से। इन सब बातों में हमें एक सोपान श्रेणी दिखाई देती है, एक चढ़ता, उतरता क्रम दिखाई देता है। योग-साधना का हेतु निकटतम परिचितिवाला अद्वैत प्राप्त करना हो, तो पिता के कुछ कम सामीप्यवाले कुछ कम आवेग-भरे सम्बन्ध में कम ही आश्रय मिलता है। उसके लिए दिव्य सखा

[१०३२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का रूप ज़्यादा मधुर और ज्यादा करीबी है ; उसमें समानता है और असमानता भी हो तो उसमें भी एक प्रकार की परिचिति है और परस्पर आत्म-समर्पण का प्रारम्भ है। जब यह सम्बन्ध भी गाढ़ा हो जाता है और आदान-प्रदान का विचार लुप्त हो जाता है, जब यह सख्य सम्बन्ध भी अहैतुक अर्थात केवल प्रेम की खातिर ही रह जाता है, तब जीवन लीला में कल्लोल करते हुए साथियों के मुक्त और सुखी सम्बन्ध में बदल जाता है। पर इससे भी ज्यादा नजदीकी सम्बन्ध है मा और बच्चे का। जहाँ-जहाँ मानव की धर्म भावना, उसके हृदय की उर्मियों में से उद्भव पाती है, उसकी धार्मिक वृत्ति में उदात्तता, उदारता और सहृदयता का प्रवेश होता है वहाँ-वहाँ अधिकतर प्रभु का मा के रूप में ही भजन किया जाता है। अपनी सभी कामनाओं और कठिनाइयों को लेकर मानव आत्मा मातृरूप प्रभु की शरण में जाती है। दिव्य माता भी यही चाहती है और वह अपने दिव्य वात्सल्य का स्रोत बहाकर मानव को निहाल कर देती है। मानव आत्मा प्रभु को अपनी मा समझकर उसकी ओर बढ़ती है क्यों कि यह प्रेम स्वयंभू है। यह प्रेम जगत की यात्रा में से दिव्य धाम की ओर जानेवाला मार्ग दिखाता है और बताता है कि मानव आत्मा को सम्पूर्ण शान्ति और सुख दिव्य हृदय में ही मिल सकता है।

परन्तु प्रभु के साथ उँचे से ऊँचा और सबसे महान सम्बन्ध सामान्य धार्मिक हेतुओं में से किसी को भी स्वीकार किये बिना शुरू होता है। इस हेतु को योग का सार या निष्कर्ष कह सकते हैं। इसकी उत्पत्ति प्रेम से ही होती है ; प्रियतम और प्रिया का सम्बन्ध इसका स्वरूप है। जहाँ-जहाँ मानव की आत्मा में प्रभु के साथ यह निरपेक्ष अद्वैत करने की अभीप्सा जागृत होती है, तब-तब ऐसे धर्मों में भी जो प्रभु के लिए दिव्य तृषा भरे मधुर भाव के बिना भी काम चला लेते हैं और जो अपनी सामान्य धार्मिक विधियों में इसे कोई स्थान नहीं देते, ऐसे धर्मों में भी मधुर भाव प्रवेश कर जाता है। इस प्रेम-मार्ग में बस एक ही माँग होती है—प्रेम की, एक ही डर होता है—प्रेम के विलोप का और शोक होता है तो केवल एक—प्रेमी के वियोग का। सच्चे प्रेमी के मन में प्रेमपात्र के सिवाय और किसी पदार्थ के लिए स्थान ही नहीं होता। वह अन्य पदार्थों को देखता भी है तो प्रेम में आगन्तुक घटना के रूप में या उसके परिणाम के रूप में—प्रेम के हेतु या प्रेम की शर्त के रूप में नहीं। सभी तरह का प्रेम स्वयंभू होता है, क्योंकि वह अस्तित्व में छिपी हुई किसी गूढ़ एकता में से जन्म लेता है। यह ऐक्य भाव या इसकी इच्छा ऐसी दो आत्माओं में पैदा होती है जो अपने को एक दूसरे से विभक्त समझ सकें। प्रभु के साथ के दूसरे सम्बन्ध भी—यदि प्रेम के लिए ही पैदा हुए हों—स्वयंभू और अहेतुक आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। पर वे प्रेम से इतर किसी अन्य हेतु को लेकर शुरू होते हैं और अन्त तक किन्हीं अंशों में अन्य हेतुओं की लीला में सन्तोष पाते रहते हैं। पर इस मधुर भाव का तो आदि भी प्रेम है और अन्त भी प्रेम। इसका तो सब कुछ प्रेम ही प्रेम है। पर हाँ प्रेम-पात्र को प्रेयसी को 'अपना' बना लेने की वृत्ति तो इसमें होती है। लेकिन वह भी स्वयंभू प्रेम की सम्पूर्णता में नहीं रह पाती। भक्त की अन्तिम अभिलाषा यही रह जाती है, उसकी एकमात्र माँग यही होती है कि 'मेरी भक्ति कभी नष्ट न होने पाये, उसका प्रेम कभी कम न हो।' भक्त स्वर्ग की कामना या जन्म-मरण से मुक्त होने की अभिलाषा या किसी और चीज़ के फेर में नहीं पड़ता। उसकी तो बस एक ही चाह होती है कि 'मेरा प्रेम सनातन रहे,' 'मेरा प्रेम अहैतुक, निरपेक्ष और अविचल रहे।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम एक महान् आवेग है और वह दो चीज़ों की खोज में रहता है ; एक सनातनता और दूसरी उत्कटता। प्रियतम और प्रेयसी के सम्बन्ध में यह सनातनता और भावोद्रेक अन्ध प्रेरणा-युक्त और स्वयंभू होते हैं। प्रेम परस्पर प्राप्ति के लिए खोज है और प्रेम में ही परस्पर मिल्कियत का दावा निरपेक्ष बनता है। प्रेम-पात्र से जुदाई सिद्ध करनेवाली मिल्कियत या प्राप्ति की इच्छा से भी परे हो जाने पर यह प्रेम अद्वैत की खोज का रूप धारण कर लेता है। प्रेम में परस्पर एक दूसरे पर अधिकार करने की इच्छा जुदाई सिद्ध करनेवाली तो है ; ही इस इच्छा को हटाकर ही प्रेम अद्वैत की खोज का रूप धारण करता है। दो आत्माएँ एक दूसरे में लीन होकर एक हो जाने में अपने अद्वैत की अभिलाषा की पराकाष्ठा और उसके सन्तोष की निरपेक्षता का अनुभव करती हैं। प्रेम सौन्दर्य की तृषा भी है। और इस मधुर सम्बन्ध में यह अभिलाषा, यह तृषा निखिल सौन्दर्य-धाम प्रभु के दर्शन, स्पर्श और आनन्द में अपना सनातन सन्तोष प्राप्त करती है। प्रेम आनन्द का बालक है और सदा आनन्द की खोज में रहता है और प्रभु के इस दिव्य प्रेम से भक्त को अपने चित्त की ओर चैतन्य के एक-एक तन्तु की ऊँचे से ऊँची, जितनी वह धारण कर सके, उतनी आनन्द की मस्ती प्राप्त होती है। जब यह मधुर भाव मानव-मानव के बीच होता है तो वह अपने प्रेम-पात्र से अधिक से अधिक की माँग करता है और मानव में जब प्रेम-भाव की अधिक से अधिक तीव्रता होती है तब भी न्यूनतम सन्तोष ही प्राप्त होता है क्योंकि वास्तविक और निरपेक्ष सन्तोष तो एकमात्र भगवान में ही मिल सकता है। इस दिव्य प्रेम में सभी मानुषी भावों या उर्मियों को प्रभु की ओर केन्द्रित करके उन की सार्थकता प्राप्त होती है और मानव-जीवन में व्यक्त होनेवाला मानुषी प्रेम जिसका प्रतीक रूप है, उस दिव्य वस्तु के समग्र सत्य की प्राप्ति होती है ; उसकी सारी अन्ध प्रेरणाओं का दिव्य रूपान्तर हो जाता है, वे उन्नत होती हैं और आनन्द द्वारा सन्तुष्ट होती हैं, सन्तोष पाती हैं। इसी आनन्द में से हम जन्मे थे और प्रेम के अद्वैत द्वारा हम दिव्य जीवन के इसी आनन्द की ओर गति कर रहे हैं। वहाँ उस दिव्य भूमिका में प्रेम निरपेक्ष, सनातन और विशुद्ध है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम

[मातुश्री]

[कुछ वर्ष पहले मातुश्री ने साधकों द्वारा किये गये प्रश्नों के जो उत्तर दिये थे वे अंग्रेजी में Conversations with the Mother के नाम से प्रकाशित हुए। यहाँ हम उसके नवम अध्याय 'प्रेम' का अनुवाद दे रहे हैं।—सं०]

प्रश्न—मानवीय प्रेम का दिव्य प्रेम के साथ क्या सम्बन्ध है? क्या मानवीय प्रेम दिव्य प्रेम में बाधक है? अथवा क्या मानव-प्रेम को धारण करने की योग्यता दिव्य-प्रेम के धारण-सामर्थ्य की सूचक नहीं है? क्या महान् आध्यात्मिक व्यक्ति जैसे कि ईसा, रामकृष्ण और विवेकानन्द स्वभावतः अत्यन्त प्रेमी और स्नेही नहीं हुए हैं?

उत्तर—प्रेम महान् विश्वव्यापक शक्तियों में से एक है; यह स्वाश्रय से सत् है और इसकी चेष्टा उन पदार्थों से जिनमें और जिन द्वारा यह आविर्भूत होता है, स्वतन्त्र और स्वाश्रित है। जहाँ कहीं भी इसके प्रादुर्भूत होने की सम्भावना होती है, जहाँ इसके लिए सुग्रहता होती है, जहाँ इसके लिए द्वार होता है, वहाँ यह प्रादुर्भूत हो जाता है। जिसे तुम प्रेम कहते हो और एक गुण या वैयक्तिक वस्तु के रूप में समझते हो, वह केवल इस सार्वभौम शक्ति का स्वागत और आविर्भाव करने की तुम्हारी सामर्थ्य है।

परन्तु क्योंकि यह सार्वभौम है, अतएव यह कोई अचेतन शक्ति नहीं; यह तो महान् रूप में एक चेतन शक्ति है। यह इस भूतल पर अपने प्रकाशन और पूर्ण सिद्धि के लिए चेतन के तौर पर प्रयत्न करता है, यह अपने यन्त्रों को सावधानी से चुनता है। जो उत्तर देने में समर्थ हैं उनको अपनी तरङ्गों के प्रति सचेत करता है, जो कुछ इसका शाश्वत उद्देश्य है उसे उनमें सिद्ध हुआ देखने का यत्न करता है, और जब यन्त्र उपयुक्त नहीं होता, उसे छोड़ देता है और दूसरों की तलाश के लिए मुँह फेरता है। मनुष्य सोचते हैं कि वे एकाएक प्रेम-पाश में फँस गये हैं, वे अपने प्रेम को उत्पन्न होता और बढ़ता देखते हैं और फिर यह मुरझा जाता है—या यह भी सम्भव है कि कुछेक में जो उसकी स्थायी चेष्टा के लिए विशेषतर उपयुक्त होते हैं, कुछ अधिक देर तक रहता है। परन्तु इसमें एक ऐसे निजी अनुभव को समझना जो सारा अपना ही है, एक भ्रम है। यह सार्वभौम प्रेम के नित्य समुद्र से एक उठी हुई एक लहर है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम सार्वभौम और शाश्वत है ; यह सदा अपने को प्रकाशित कर रहा है और सारतः एक रूप है। और यह एक दिव्य शक्ति है ; क्योंकि इसकी प्रत्यक्ष चेष्टाओं में हम जो विकृत रूप देखते हैं, वे इसके यन्त्रों से सम्बन्ध रखते हैं। प्रेम केवल मानव-प्राणियों में ही व्यक्त नहीं होता, यह सर्वत्र है। इसकी चेष्टा पौदों में है, शायद पत्थरों तक में है। पशु-पक्षियों में इसकी सत्ता का मालूम करना आसान है। इस महान् और दिव्य शक्ति के सब विकृत रूप परिमित यन्त्र की अस्पष्टता, अज्ञान और स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं। प्रेम—नित्यशक्ति—में कोई आसक्ति, नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, स्वत्व के लिए कोई भूख नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, आत्म-सम्मान के लिए राग नहीं है। अपनी पवित्र चेष्टा में, यह आत्मा के परमात्मा के साथ मेल के लिए खोज है—एक पूर्ण और अन्य सब वस्तुओं से निरपेक्ष खोज है। मानव जीवों ने इसका क्या बना डाला है, यह कहने की हमें आवश्यकता नहीं है। उन्होंने इसे कुरूप और घृणाजनक वस्तु के रूप में परिणत कर दिया है। मानव जीवों में भी प्रेम का प्रथम संसर्ग अपने पवित्रतर सार का कुछ अंश अवश्य ले आता है। वे क्षण भर के लिए अपने को भुलाने में समर्थ हो जाते हैं। इसका दिव्य स्पर्श उस सब को जो कुछ सूक्ष्म और सुन्दर है, थोड़ी देर के लिए जागृत और विस्तृत कर देता है। परन्तु पीछे मानव-प्रकृति—अपनी अपवित्र माँगों से भरी हुई, बदले में किसी वस्तु की याचना करती हुई, बदले में प्रेम जो कुछ देता है, उसे स्वीकार करती हुई, अपनी निकृष्ट तृप्तियों के लिए शोर मचाती हुई, जो दिव्य था उसे विरूप और कलुषित करती हुई—उपरि-पृष्ठ पर आ जाती है।

दिव्य प्रेम को आविर्भूत करने के लिए तुम्हें उसको ग्रहण करने में समर्थ बनना चाहिये। क्योंकि सिर्फ़ वे ही इसे प्रकट कर सकते हैं जो स्वभावतः इसकी आन्तरिक चेष्टा के लिए खुले द्वार रहते हैं। उनका द्वार जितना अधिक विशाल और स्पष्ट होता है, उतना ही वे दिव्य प्रेम को उसकी मौलिक पवित्रता में प्रादुर्भूत करते हैं ; जितना ही यह नीच मानव भावों से मिश्रित होता है, उतनी ही बड़ी विरूपता इसमें आ जाती है। जो व्यक्ति प्रेम के प्रति उसके सार और सचाई के लिए खुला हुआ नहीं है, वह परमात्मा के समीप नहीं पहुँच सकता। ज्ञान के अन्वेषक भी एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जिसके परे, यदि वे आगे जाना चाहते हैं, तो, अपने को उस समय प्रेम में प्रवेश करने में बाध्य पाते हैं और दो को एक के रूप में अनुभव करने को बाधित होते हैं। ज्ञान को दिव्य-योग के प्रकाश और प्रेम को ज्ञान के हृदय के रूप में। आत्मा के उदय के क्षेत्र में एक ऐसा स्थान आता है, जहाँ वे मिल जाते हैं और तुम एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते। प्रारम्भ में दोनो के बीच जो विभाग या विभेद तुम करते हो, वे मन की सृष्टि हैं ; जब तुम एक बार ऊँची सतह पर पहुँच जाते हो, वे लुप्त हो जाते हैं। उन व्यक्तियों में से जो देव को इहलोक में प्रकट करने के लिए और पार्थिक जीवन को बदलने के लिए चर्चा करते हुए इस संसार में अवतीर्ण हुए हैं, कुछ ऐसे हैं जिन्होंने दिव्य प्रेम को महत्तर पूर्णता में आविर्भूत किया है। कुछेक में आविर्भाव की पवित्रता इतनी महान् होती है कि सारी मनुष्य-जाति उन्हें ग़लत समझ लेती है और कठोर तथा प्रेम-शून्य होने तक का भी दोषारोपण करती है, यद्यपि दिव्य प्रेम वहाँ विद्यमान होता है। किन्तु उनमें यह अपने रूप में भी अपने सार की तरह दिव्य ही होता है, मानवीय नहीं। क्योंकि मनुष्य जब प्रेम के बारे में कहता है, वह इसे भावात्मक तथा भावनात्मक दुर्बलता से जोड़ देता है। परन्तु आत्म-विस्मृति की दिव्य गहराई, कोई भी बाधा और गुंजाइश न रखते हुये अपने को पूर्णतया एक भेंट के तौर पर, प्रतिफल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के रूप में कुछ न माँगते हुए समर्पण कर देने का सामर्थ्य यह मानव जीवों को अज्ञात-सा है। और जब यह उनमें दुर्बल भावनात्मक भावतरङ्गों से अमिश्रित उपस्थित होता है, वे इसे कठोर और ठंडा समझते हैं। वे इसमें प्रेम की अति उच्चतम और तीव्रतम शक्ति को नहीं पहचान पाते।

देव के प्रेम का संसार में आविर्भाव महान् आहुति थी, प्रधान आत्म-दान था। पूर्ण चेतना ने प्रकृति की अचेतना में निमग्न और विलीन होना स्वीकार कर लिया ताकि इसके अन्धकार की गहराइयों में चेतना जागृत की जा सके और थोड़ा-थोड़ा करके एक दिव्य शक्ति इसमें उदित हो सके और इस सम्पूर्ण आविर्भूत संसार को दिव्य चेतना का और दिव्य प्रेम का एक उच्चतम प्रकट रूप बना सके। यह प्रधान प्रेम था, प्रधान दिव्यता की पूर्ण अवस्था, इसकी पूर्ण चेतना, इसके अनन्त ज्ञान की हानि को स्वीकार करना, अचेतना के साथ मेल करना, अज्ञान और अन्धकार से युक्त संसार में रहना है। फिर भी शायद कोई इसे प्रेम नहीं कहेगा, क्योंकि यह अपने आप को ऊपरी भावना से आच्छादित नहीं करता, इसने जो कुछ किया है उसके बदले में कोई माँग नहीं रखता, और अपने बलिदान का कोई दिखावा नहीं करता। संसार-वर्ती प्रेम की शक्ति उन चेतनाओं को ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रही है, जो इस दिव्य चेष्टा को इसकी पवित्रता में ग्रहण करने में और इसे प्रकाशित करने में समर्थ हैं। यह सब जीवों के प्रेम के प्रति दौड़, यह अदम्य गति और संसार के हृदय में तथा सब हृदयों में खोज, मानवीय लालसा और अभीप्सा के पीछे वर्तमान दिव्य-प्रेम से दी हुई प्रेरणा है। यह लाखों यन्त्रों पर प्रभाव डालती है, सदा यत्न करती हुई, सदा असफल होती हुई, परन्तु यह सतत प्रभाव इन यन्त्रों को तैय्यार करता है और सहसा एक दिन उनमें आत्मोत्सर्ग की योग्यता, प्रेम करने का सामर्थ्य जाग जायेगा।

प्रेम की चेष्टा मानव जीवों तक ही परिमित नहीं है और शायद यह मानव-जगत् की अपेक्षा अन्य लोकों में कम विकृत है। फूलों और वृक्षों को देखो। जब सूर्य अस्त होता है और सब कुछ शान्त हो जाता है, क्षणभर के लिए बैठो और अपने आपको प्रकृति के संसर्ग में लाओ, तुम अपने को पृथ्वी से, वृक्षों की जड़ों के नीचे से उठते हुए और ऊपर चढ़ते हुए, उनके तन्तुओं में से होकर उच्चतम बाहर फैली हुई शाखाओं तक जाते हुए, एक प्रबल प्रेम और लालसा की आकांक्षा तक जाते हुए अनुभव करोगे, लालसा, एक ऐसी वस्तु के लिए जो प्रकाश लाती है और सुख देती है, उस प्रकाश के लिए जो अस्त हो चुका है और जिसे वे फिर पाना चाहते हैं। वहाँ एक ऐसी पवित्र और तीव्र लालसा होती है कि यदि तुम वृक्षों में की गति को अनुभव कर सको, तो तुम्हारी अपनी आत्मा भी उस शान्ति, प्रकाश और प्रेम के लिए जो यहाँ अप्रकट हैं, भावुक प्रार्थना में मग्न हो जायेगा। एक बार भी तुम इस विशाल, पवित्र और सच्चे दिव्य प्रेम के संसर्ग में आ जाओ, चाहे तुमने इसे थोड़े समय के लिए और इसके लघुतम रूप में ही अनुभव किया हो, तुम अनुभव कर लोगे कि मानवीय इच्छा ने इसको कैसी नीच वस्तु बना डाला है। मानव प्रकृति में यह एक क्षुद्र, पाशविक, स्वार्थमय, हिंसात्मक, कुरूप वस्तु हो गया है, या अन्यत्र यह एक दुर्बल भावनात्मक तुच्छतम भावों से घटित, भङ्गुर बाहरी और निर्यातक वस्तु बन गया है। और इस नीचता या पशुता को या इस आत्म-सम्मान की इच्छुक निर्बलता को हम प्रेम कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्या हमारी प्राण-शक्ति दिव्य प्रेम में भाग लेने के लिए है ? यदि यह लेती है, तो इसके भाग लेने का ठीक और शुद्ध रूप क्या है ?

दिव्य-प्रेम के आविर्भाव का रुकना कहाँ अभिप्रेत है ? क्या इसे किसी अवास्तविक और अप्राकृतिक क्षेत्र तक परिमित रखता है ?

दिव्य-प्रेम अपने आविर्भाव को इस पृथ्वी पर सबसे अधिक प्राकृतिक प्रकृति में गहराई तक पहुँचाता है। निस्सन्देह मानवीय चेतना के स्वार्थमय विकृत रूपों में यह अपने को नहीं पाता है ; परन्तु प्रायः शक्ति स्वतः दिव्य प्रेम में इतना ही आवश्यक तत्त्व है, जितना यह सम्पूर्ण आविर्भूत संसार में है। प्राण के माध्यम के बिना गति और प्रगति की कोई संभावना नहीं है ; परन्तु क्योंकि प्रकृति की यह शक्ति इतनी भद्दी तरह से विरूप हुई है कि कुछ लोग यह विश्वास करना पसन्द करते हैं कि इसका सर्वथा समूलोन्मूलन कर देना चाहिये। परन्तु सिर्फ प्राण द्वारा ही आत्मा की परिवर्तक शक्ति प्रकृति को प्रभावित कर सकती है ; यदि प्राण अपनी प्रचण्ड गति को और जीवित शक्ति को संचारित करने के लिए वहाँ न हो, प्रकृति मृत रहेगी, क्योंकि आत्मा के उच्चतर अंश पृथ्वी के साथ संस्पर्श में नहीं आयेंगे, जीवन में मूर्त नहीं होंगे, और वे असन्तुष्ट लौट जायेंगे तथा अन्तर्हित हो जायेंगे।

जिस दिव्य-प्रेम के संबन्ध में मैं कह रही हूँ वह एक ऐसा प्रेम है जो यहाँ इस भौतिक पृथ्वी पर, प्रकृति में प्रादुर्भूत होता है, परन्तु इसे यदि अवतरित होना है तो अपनी मानवीय विरूपताओं से अकलुषित अवश्य होना चाहिये। प्राण सब आविर्भावों की तरह इसमें भी एक अनिवार्य साधन है। परन्तु जैसा कि सदा ही हुआ है, विरोधी शक्तियों ने इस अमूल्य वस्तु पर अपना अधिकार जमा लिया है। यह प्राण की ही शक्ति है, कि यह मन्द और अनुभव शून्य प्रकृति में घुसती है और इसे उन्मुख और जागरूक बना देती है। परन्तु विरोधी शक्तियों ने इसे विरूप कर डाला है, उन्होंने इसे हिंसा और स्वार्थ तथा इच्छा और प्रत्येक प्रकार की कुरूपता के क्षेत्र में पहुँचा दिया है, तथा दिव्य कार्य में भाग लेने से रोक दिया है। हमारा एकमात्र कर्तव्य इसे बदलना है, न कि इसकी गति को दबाना या नष्ट कर देना। क्योंकि इसके बिना कहीं भी कोई तीव्रता संभव नहीं है। प्राण हमारे में अपने स्वभाव से ही वह चीज़ है जो अपना उत्सर्ग कर सकती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यही वह वस्तु है जिसमें लेने की प्रेरणा और सामर्थ्य सदा विद्यमान है, यही वह वस्तु भी है जो अत्यन्त आत्मोत्सर्ग करने में समर्थ है ; क्योंकि यह स्वत्व रखना जानती है, वह यह भी जानती है कि बिना कुछ पीछे बचाये आत्म-त्याग कैसे करते हैं। सच्ची प्राण की गति अत्यन्त सुन्दर और शानदार गतियों में से एक है ; परन्तु यह तोड़-मरोड़ कर अत्यन्त भद्दी, कुरूप और घृणास्पद कर दी गई है। प्रेम की मानव-कथा में जहाँ कहीं भी पवित्र प्रेम का एक अणु भी प्रविष्ट हुआ है और इसे अत्यधिक विरूपता के बिना उद्भूत होने दिया गया है, वहाँ हमें एक सच्ची और सुन्दर वस्तु दीख पड़ती है। और अगर गति स्थिर नहीं रहती है, तो ऐसा इसलिए होता है कि यह अपने उद्देश्य, और चर्चा को नहीं जानती है ; इसे इस बात का ज्ञान नहीं है कि इसकी चर्चा का विषय एक जीव का दूसरे के साथ मेल नहीं है, परन्तु सब जीवों का देव के साथ मेल है।

प्रेम एक प्रधान शक्ति है जिसे नित्य चेतना ने अपने से नीचे एक अपूर्ण और अन्धकार-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 2631

मय संसार में भेजा ताकि यह इस संसार को तथा इसके जीवों को देव की तरफ़ ला सके। प्राकृतिक जगत् अपने अन्धकार और अज्ञान में देव को भूल चुका था। अन्धकार में प्रेम प्रविष्ट हुआ, इसने उस सब को जो वहाँ प्रसुप्त पड़ा था, जगाया, इसने उन कानों को जो आवृत थे, खोलकर उनमें धीमे से यह फूँका, 'कोई ऐसी वस्तु है जिसके प्रति गति करना उचित है, जिसके लिए जीना योग्य है, और यह प्रेम है!' और प्रेम के प्रति जागृति के साथ संसार में देव के प्रति वापिस लौटने की संभावना भी संसार में प्रविष्ट हुई। सृष्टि प्रेम के द्वारा देव के प्रति ऊपर की ओर गति करती है और उत्तर में वहाँ दिव्य-प्रेम और प्रसाद सृष्टि से मिलने के लिए नीचे की ओर नत होते हैं। प्रेम अपने पवित्र सौन्दर्य में नहीं रह सकता, प्रेम अपनी सहजात शक्ति को और पूर्णता के तीव्र हर्ष को धारण नहीं कर सकता, जब तक कि यह पारस्परिक विनिमय, पृथ्वी और परम शक्ति के बीच यह पिघलाव (मिलाव) न हो: देव से सृष्टि की तरफ़ और सृष्टि से देव की ओर इस प्रेम की गति न हो। यह संसार मृत प्रकृति का एक संसार था, जब-तक कि दिव्य प्रेम इसमें अवतरित नहीं हुआ और इसने इसे जागृत करके जीवन का रूप नहीं दे दिया। तब से यह जीवन के इस दिव्य स्रोत में लगा रहा है, परन्तु अपनी खोज में यह प्रत्येक प्रकार के ग़लत मोड़ों पर पहुँच गया है और भूल गया है, यह अन्धेरे में इधर-उधर भटक गया है। इस सृष्टि की जनता अज्ञात वस्तु की खोज करती हुई अपने मार्ग पर अन्धे की तरह चली है, खोज करती हुई परन्तु जिसे यह खोजती थी, उससे अनभिज्ञ रहती हुई। जिस महत्तम वस्तु पर यह पहुँची है वह मानव जीवों को प्रेम प्रतीत होती है, प्रेम अपने उच्चतम रूप में अपने पवित्रतम और निःस्वार्थ प्रकार में माता के पुत्र के लिए प्रेम के समान। प्रेम की यह मानवीय गति, अब तक इसने जो कुछ पाया है, उससे इतर किसी वस्तु की गुप्त तौर पर तलाश कर रही है; परन्तु यह यह नहीं जानती कि इसे कहाँ पाना है, यह क्या है इस बात को भी यह नहीं जानती। जिस क्षण भी मनुष्य की चेतना पवित्र मानवीय रूपों में सर्वविध आविर्भाव से स्वतन्त्र दिव्य प्रेम के प्रति जागृत हो जाती है, वह जान जाता है कि किस चीज़ के लिए उसका हृदय हर समय सच्चाई से तरसता रहा है आत्मा की महान् आकांक्षा का यह प्रारम्भ है, यह चेतना को और इसके देव के साथ मेल की लालसा को जागृत करता है। सब रूप जो अज्ञान के कारण होते हैं (अज्ञान-जनित सब रूप), सब विकृत रूप जो इसने थोपे हैं, उस क्षण से अवश्य मुरझा जायेंगे और लुप्त हो जायेंगे तथा देव के प्रति अपने प्रेम के द्वारा दिव्य प्रेम का उत्तर देनेवाली सृष्टि की एकमात्र गति को स्थान दे देंगे। ज्योंही सृष्टि देव के लिए प्रेम के प्रति चेतन, सजग और मुक्त-द्वार हो जाती है त्योंही दिव्य प्रेम अपने को पुनःसृष्टि में निःसीम बरसाता है। गति का चक्र अपने पर वापस लौटता है और सिरे मिल जाते हैं, दो सीमाओं का परम आत्मा और विकसित होनेवाली प्रकृति का मेल होता है, और उनका दिव्य मेल स्थिर और पूर्ण हो जाता है।

महान् आत्मायें इस संसार में जन्म ले चुकी हैं जो श्रेष्ठ पवित्रता और दिव्य प्रेम की शक्ति का कुछ अंश अवतरित करने के लिए आईं। दिव्य प्रेम ने उनमें व्यक्तिगत रूप धारण किया है ताकि पृथ्वी पर इसकी सिद्धि अधिक सरल और साथ ही अधिक पूर्ण हो सके। दिव्य प्रेम, जब एक सशरीर आत्मा में आविर्भूत होता है तो इसे अनुभव करना अधिक सुगम होता है; इसे अनुभव करना बहुत अधिक कठिन होता है जब यह प्रादुर्भूत अवस्था में न हो या अपनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गति में व्यक्ति से असंबद्ध हो। एक मानव प्राणी इस व्यक्ति-गत स्पर्श से, इस व्यक्तिगत तीव्रता के साथ, दिव्य प्रेम की चेतना के प्रति जागृत हुआ, अपने काम और परिवर्तन को अधिक सुगम पावेगा; जिस मेल के लिए वह तलाश करता है वह अधिक निकट और स्वाभाविक हो जाता है। और मेल, सिद्धि उसके लिए बहुत अधिक भरी हुई, अधिक पूर्ण हो जायेगी; क्योंकि एक सार्वभौम और अव्यक्तिगत प्रेम की विशाल एकरूपता प्रकाशमान हो जायेगी और देव के साथ सब संभव सम्बन्धों के रंग और सौन्दर्य से सजीव हो जायेगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धिः उसका धर्म और सीमाएँ

[श्रीअरविंद]

बुद्धि हमारी सत्ता पर अन्तिम शासन नहीं करती। उसकी स्थिति एक सचिव से अधिक कुछ नहीं। इसलिए इस राष्ट्र के दूसरे देशों को, ऊँची पूर्णता की राह पर ले जाने के लिए, वह अपनी सामयिक और अधूरी आज्ञा तो दे सकती है; किन्तु अन्तिम और पूरी व्यवस्था देने में सफल नहीं हो सकती। तार्किकया बुद्धिजीवी आदमी मानवता का अन्तिम और उच्चतम आदर्श नहीं है, न ही एक तर्क-प्राण समाज समूचे मानव-जीवन की शक्यताओं की अन्तिम और उच्चतम अभिव्यक्ति बन सकता है,—यदि हम सचमुच इस शब्द को ही अधिक व्यापक अर्थ न दे दें, और अपनी ज्ञान की उन सब शक्तियों की मिली-जुली प्रज्ञा को इसमें न जोड़ लें जिनका स्थान मति, विवेकी मन और साथ ही हमारे अन्दर के इस कट्टर तार्किक अंश से नीचे और ऊपर है। वह आत्मा जो मानव में अपने को अभिव्यक्त करता है और प्रच्छन्न रूप से उसके विकास की श्रेणियों पर प्रभुत्व करता है, उसकी बुद्धि से कहीं अधिक महान् और गंभीर है और उसे उस सम्पूर्णता की ओर बढ़ाये ले जा रहा है जो उसकी बुद्धि की मनमानी बनावट में बन्द नहीं की जा सकती।

पर, इस बीच में बुद्धि अपना असली काम पूरा करती है। यानी वह मनुष्य को एक अधिक बड़ी आत्मचेतना के द्वार तक ले जाती है और उसकी आँखों पर बँधी पट्टी खोलकर उस विशाल देहली पर बिठा आती है, जहाँ एक अधिक तेजस्वी देवदूत उसकी अगवानी के लिए खड़ा है। बुद्धि सबसे पहले मनुष्य की नीची शक्तियों को उठाती है, जिनमें से हरेक अपनी ही चेष्टा में मग्न है, अपनी सहजवृत्तियों और अनघड़ वेगों की तृप्ति के लिए अन्धी आत्म-पर्याप्ति के साथ प्रयत्न कर रही है। बुद्धि उन्हें अपने को समझना, मेधा की विचारशील आँखों से अपनी सत्ता के नियमों को देखना सिखाती है। उन्हें अपने अन्दर ऊँच-नीच का विवेक करने योग्य बनाती है। शुचि और अशुचि में फ़र्क करना बताती है और असंस्कृत अस्त-व्यस्तता से अपनी शक्यताओं के उत्तरोत्तर प्रकाश भरे सूत्रों पर पहुँचने का सामर्थ्य देती है। उन्हें आत्मज्ञान देती है, राह दिखाती है, शिक्षित करती है। वह उन्हें निर्मल करनेवाली है, जुड़ानेवाली है। वह उन्हें इस लायक बनाती है कि वे अपने से परे भी देखें, आपस में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक दूसरे का भी ध्यान रख सकें और नई भावनाओं और तीव्रतर क्रिया के लिए एक दूसरे पर झुक भी सकें। वह सुखवादी और रसात्मक वृत्तियों को नैतिक सत्त्व द्वारा पवित्र और सबल बनाती है, फिर व्यवहार और क्रिया के क्षेत्र में उनको थापी देकर और जीवन की कठोर वास्तविकताओं के अधिक निकट संपर्क में लाकर इनमें खरापन और गंभीरता लाती है। नैतिक सत्त्व में सुखेच्छा और रसवृत्ति का माधुर्य डालती है और इन दोनो से मनुष्य की व्यावहारिक, क्रियाशील और उपयोगितावादी प्रकृति को उन्नत करती है। साथ ही यह न्यायपति और व्यवस्थापक के मंच पर भी प्रकट होती है। ध्रुव सिद्धान्तों का निर्णय करती है, ऐसी पद्धतियाँ और नियमित योजनाएँ ढूँढ़ती है जिनसे मानवी आत्मा की शक्तियाँ एक जमी हुई राह पर चल सकें, निश्चित व्यवस्था के अनुसार समझी बूझी मात्रा और समतोल छन्द में काम करने योग्य हो जायँ। यहाँ आकर, थोड़ी देर में बुद्धि देखती है कि अब उसका शासन रोकनेवाली शक्ति बन गया है, बन्धन में बदल रहा है; और वह नियमित पद्धति जिसका उपक्रम उसने व्यवस्था और संरक्षण के सद्भाव से किया था, जीवन के बहते स्रोतों को सुखाने और बन्द करने का हेतु बन चुकी है। और अब बचाव के लिए उसे संशय की शक्ति को बुलाना होगा। जीवन के, नीति के, रस-वृत्ति के रुके हुए झरनों की पीड़ा एक धुँधले-से विद्रोह में हमारी मति को चेतावनी दे डालती है, और उसके वेग के नीचे समाज के, राजनीति के, अर्थ शास्त्र के सब नियम अपने पर भी प्रश्न और सन्देह करने लगते हैं। शुरू में ऐसा मालूम होता है कि फिर से वह सब उथल-पुथल, अव्यवस्था और डाँवाडोलपन हमारे अन्दर चला आ रहा है। किन्तु यह प्रश्न और वितर्क कल्पना की, अन्तर्दृष्टि की, आत्मज्ञान की और आत्मसाक्षात्कार की नई गतियों को जगा देते हैं। ये गतियाँ पुरानी पद्धतियों और सूत्रों को मिटाकर नये-नये परीक्षण करती हैं और अन्त में अधिक फैली हुई संभावनाओं और अधिक विशाल योजनाओं को इस खेल में उतार लाती हैं। बुद्धि अपने देखे हुए की प्रतिज्ञा करती है, उसे दूसरे क्षेत्रों पर थोपती है और जो कुछ सिद्ध हुआ, उस पर सवाल उठाती है जिससे नई प्रतिज्ञाओं की राह खुले। वह नियम और व्यवस्थाएँ बनाती है, साथ ही नियम और व्यवस्था से छुड़ाती भी है। यों, बुद्धि की इस दुहरी कार्य-शैली से मानव-जाति का उत्थान सुरक्षित हो गया है।

परन्तु, बुद्धि की दिशा केवल अधोमुख या हमारे आन्तरिक और बाह्यजीवन की ओर बहिर्मुख ही नहीं है कि वह इसे समझकर इसकी वर्तमान गति की नियम व्यवस्था और भावी की संभावनाओं का निर्णय करे, बल्कि वह उन्मुख और अन्तर्मुख भी है। उसकी दृष्टि अपने से ऊपर के एक सत्य की ओर खुली है, जहाँ से हमारे अस्तित्व और उसकी शक्यताओं के विश्वनियमों का ज्ञान बुद्धि में उतरता है। वह उन्हें ग्रहण करती है, अपना बौद्धिक वेश देती है और विशाल अधिष्ठातृ विचारों के साथ हमें मिला देती है। हमारे प्रयत्न इन्हीं नियमों में उबलते हैं, इन्हीं के चारो ओर वे पुञ्जीभूत या एकत्र होते हैं। जिन आदर्शों को हम पाना चाहते हैं, उनकी परिभाषा हमें बुद्धि से मिलती है। बुद्धि उन महान् विचारों को हमारे सामने लाती है जो कि शक्ति हैं, वे विचार जो अपने ही बल पर हमारे जीवन पर सवार हो जाते हैं और उसे बलात् अपने ही साँचे में भर लेते हैं। उन विचारों को जो रूप हमसे मिलता है, केवल वही बौद्धिक है; वे स्वयं तो भाव के उस सत्य लोक से उतरते हैं जहाँ ज्ञान और शक्ति एक हैं, विचार और विचार में आत्म-पूर्ति की शक्ति दोनो अलग नहीं किये जा सकते। दुर्भाग्य से, वही विचार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब हमारी बुद्धि के रूपों में होकर आते हैं तो ऐसे विषम और टकराते हुए आदर्श बन जाते हैं कि उन्हें इस लोक के स्तर पर किसी भी तरह के तसल्ली भरे समंजस में लाना दुःसाध्य हो उठता है। कारण—बुद्धि तो अपना काम अलग-अलग टुकड़े करके या विश्लेषण को मिलाकर ही करती है, और उसकी कर्मस्थली है यह हमारे जीवन का प्रयत्न, जो एक तरह की जोड़-तोड़ और परीक्षणात्मक खोज भर है। स्वतन्त्रता और व्यवस्था, शिव, सुन्दर और सत्य, शक्ति का आदर्श और प्रेम का आदर्श, व्यष्टिवाद और समष्टिवाद, आत्मनिग्रह और आत्मपूर्णता, तथा और सैकड़ों तरह के मूल सिद्धान्त या वाद इसी प्रकार की विषमता के नमूने हैं। मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, हमारी सत्ता और हमारी क्रिया के प्रत्येक भाग में बुद्धि हमारे सामने ऐसे प्रधान विचारों और टकराते सिद्धान्तों की एक पूरी श्रेणी विरोध में ला खड़ा करती है। वह इन सभी में एक सच पाती है और हमारे अन्तर का कोई तत्त्व—हमारे उच्च पुरुष में का कोई नियम या हमारे निम्न पुरुष में कोई सहज वृत्ति का अंश—उनके ऊपर झुकता है। बुद्धि उन सब को एक-एक करके पूर्ण कर देना चाहती है। क्रमशः प्रत्येक के चारो ओर एक क्रिया-पद्धति का निर्माण करती है। एक से दूसरे पर जाती है और फिर लौटकर पहले पर पहुँचती है। वह उनमें मेल बैठाना चाहती है, पर अपने बनाये हुए किसी भी मेल में उसे सन्तोष का दर्शन नहीं होता। कारण—उनमें से एक भी उस पूर्ण समाधान तक नहीं पहुँचता जो कि वास्तव में एक अधिक विशाल और अधिक ऊँची चेतना की वस्तु है। वहाँ इस क्षेत्र के सब प्रतीप आदर्श समंजसता पा जाते हैं, बल्कि एक हो जाते हैं। उस चेतना तक मानवजाति अभी नहीं उठी। किन्तु बुद्धि का एक-एक बढ़ा-चढ़ा प्रयत्न हमारे अन्दर और बाहर के जीवन को सँभालता हुआ, हमारी सत्ता के विस्तार और ऐश्वर्य को बढ़ाता हुआ, हमारे आगे आत्मज्ञान और आत्म-प्रत्यक्ष की बृहत्तर संभावनाओं को खोलता हुआ हमें उत्तरोत्तर उस विराट् चेतना के समीप लिये जा रहा है।

इस प्रकार, मानव की अपनी और सामाजिक उन्नति एक दुहरी गति है। उसे एक तरफ़ आत्मोद्भासन भी करना है और दूसरी ओर आत्मा और उसके कार्यों के बीच दूत बनी हुई बुद्धि और सविवेक संकल्प के साथ आत्म-सामञ्जस्य भी। मनुष्य को अपनी सहज प्रवृत्तियों और अवश वेगों से भरे पहले के अनघड़ जीवन में से अपने को समझने, अपने ऊपर अधिकार पाने और अपना निर्माण करने की अगणित संभावनाओं को प्रकट करना पड़ा है। अधूरी आत्म-संज्ञा को लिये हुए अपने उस निम्नस्तर के अस्तित्व को उसने बुद्धिशील प्राणी के रूप में गढ़ा है, सहज प्रवृत्तियों को विचारों में ढाला है, अवश वेगों को सविवेक संकल्प की सधी हुई गतियों में बदला है। फिर, मनुष्य को अपने साधन सँभालते हुए, आजू-बाजू पर अधिकार पाते हुए और क्रम से अपने को पहचानते हुए धीमी-धीमी श्रमभरी गति से ही अज्ञान से निकलकर ज्ञान में जाना है। और उसकी बुद्धि उसके पूरे स्वरूप को अपने ज्ञान में एक ही साथ नहीं पकड़ सकती, अथवा उसकी संभावनाओं के पूरे संघ को एकसाथ काम पर लगाने की क्षमता नहीं रखती। इसलिए उसे थोड़ा-थोड़ा करके चढ़ना है, क्रम-क्रम से आंशिक परीक्षण करते हुए चलना है, अलग अलग शैलियों का सृजन करते हुए, अपने सामने उपस्थित विविध संभावनाओं में और विभिन्न तत्त्वों में—जिनमें उसे समंजसता लानी है—लगातार आगे और पीछे झूलते हुए बढ़ना है।

फिर, मानव को अपनी सत्ता में अन्नमय और प्राणमय, व्यावहारिक और क्रिया-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शील, रसात्मक, भावनात्मक, सुखात्मक, नैतिक, बौद्धिक आदि विविध तत्त्वों के बीच ही कोई नई समंजसता निरन्तर लाते रहना है। इतना भर ही नहीं, बल्कि इन सब में से भी एक-एक की अपनी बिखरी-बिखरी सामग्री को किसी तरतीब में लाना है। उसके आचार-शास्त्र ने उसे न्याय और दया, स्वावलम्बन और परोपकार, आत्मोन्नति और आत्म-संयम और बल की प्रवृत्तियाँ और प्रेम की प्रवृत्तियाँ, प्रवृत्तिवाद का नैतिक सिद्धान्त और निवृत्तिवाद का नैतिक सिद्धान्त—ऐसी विभिन्न नैतिक प्रवृत्तियों में बाँट रखा है। मनुष्य की भावनाएँ, उसके आवेग उसके विकाश में अनिवार्य हैं, उनका उधार उसकी भरी-पूरी मानवता के खिलने के लिए आवश्यक है। फिर भी उसे सदा आवेगों को रोकने और उनका निग्रह करने के लिए कहा जाता है। और इस दुहरी दुविधा में कोई भी निश्चित नियम उसे राह दिखाने को नहीं है। उसकी सुखवृत्ति का वेग कई विभिन्न क्षेत्रों में, उद्देश्यों में, आत्म-तृप्ति के आदर्शों में होकर बिखर पड़ता है। उसका रसात्मक आस्वाद, उसका रसात्मक सृजन, बुद्धि के बोझ के नीचे अपने लिए जुदा-जुदा मर्यादाएँ और बनावटें बना लेता है—फिर इनमें से हरेक अपनी ही श्रेष्ठता और प्रामाणिकता बिठाना चाहती है। और यदि, एक को भी अपना दावा चलाने दिया जाय तो सिवाय इसके कि वह मनुष्य की शक्ति और उसके उल्लास को क्षीण और बन्दी बनाकर समाप्त हो जाय, और कुछ परिणाम नहीं होगा। और उसकी राजनीति और समाज? वह है—निर्बाध एक तन्त्र, आधिराज्य, सैनिक कुलीन तन्त्र, व्यावसायिक श्रेणीतन्त्र, प्रस्ट अथवा छद्म श्रेष्ठी तन्त्र। अनेक प्रकार का प्रजातन्त्र, बोर्जुआ (मध्य श्रेणी का) राज, व्यक्तियों का राज, समष्टि का राज, नौकरशाही, निकट आता हुआ समाजवाद, दूर होती हुई अराजकता—इन सबकी विविध संभावनाओं में परीक्षणों और साहसों की एक लम्बी शृंखला। और इन सभी में उसके समाज-पुरुष की कोई सचाई अनुरूपता देखती है, उसकी संकुल सामाजिक प्रवृत्ति की कोई माँग पूरी होती है, उसमें की कोई सहज प्रवृत्ति अथवा शक्ति अपनी सिद्धि के लिए उस रूप को चाहती है। मानव-जाति, विविध शैलियों के सतत परिवर्त्तन को जन्म देती हुई, इन सब कठिनाइयों को अपने अन्दर की आत्मशक्ति के प्रभाव के नीचे सुलझाती है। वह आचार और शील की शैलियों का, व्यावहारिक प्रवृत्तियों की शैलियों का, रसात्मक सृजन की, राजनीति की, समाज की, नैतिक व्यवस्था की, बौद्धिक पद्धति की शैलियों का विन्यास करती है। ये सब शैलियाँ शुद्ध से मिश्र की ओर, समंजसभरी सरलता से संकुल जटिलता में विपर्यस्त होती जाती हैं। और इनमें से एक-एक बढ़ते हुए प्रगतिशील ज्ञान के प्रकाश में व्यष्टि और समष्टि के आत्म-निर्माण के कितने ही परीक्षण लिये हुए है। वह ज्ञान भी उन बहुत-से टकराते हुए विचारों और आदर्शों द्वारा संभृत होता है जिनके चारो ओर ये परीक्षण जुटते हैं। बारी-बारी से प्रत्येक विचार और प्रत्येक आदर्श जितनी दूर तक हो सके, अपनी शुद्धता में वापिस फेंका जाता है, और फिर से उसमें जितनी हो सके उतनी दूसरों के साथ मिलावट और संकरता पैदा की जाती है जिससे रूप अधिक सघन बने और क्रिया अधिक समृद्ध अथवा बलवती हो। प्रत्येक शैली तोड़ी जाती है, जिससे नूतन शैलियों को स्थान दिया जा सके। हरेक मिलावट को नई मिलावटों के लिए राह छोड़नी पड़ती है। इस सब में से आत्मानुभव और आत्म साक्षात्कार का क्रम-संचित मूलधन बढ़ता जाता है, जिसमें से सामान्य मानव किसी बहते प्रस्ताव को उठाकर एक रूढ़ि बना डालता है, जैसे बस वही एकमात्र नियम और सम्पूर्ण सत्य हो—और प्रायः मनुष्य इसी रूप में उसे समझता है। किन्तु अधिक विकसित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और उठा हुआ पुरुष या तो उस रूढ़ि को तोड़ने की खोज में रहता है अथवा उसे अधिक विशाल, अधिक गंभीर या अधिक सूक्ष्म व्यवस्था में बदल देना चाहता है, जिससे कि मानवी क्षमता की, उसके पूर्णत्व की, उसके सौख्य की वृद्धि हो—कम से कम उस वृद्धि को अवसर तो मिले।

जीवन की इस दृष्टि में, अपने विकास की प्रक्रिया के इस दर्शन में—और इस पर अन्तर्मुख वृत्ति सहज रूप से ले जाती है—हम मानवीय गति में बुद्धि का स्थान अच्छी तरह देख पाते हैं। हम देख आये कि बुद्धि का कार्य दुहरा है। वह एक ओर मुक्त-संग है तो दूसरी ओर पूरा रस लेती है। एक तरफ वह बिना किसी दूर के हेतु के, निष्काम होकर, सत्य का सत्य के लिए और ज्ञान का ज्ञान के लिए सरल भाव से अनुगमन करती है; दूसरे सब विचारों को वह एक ओर रख देती है, केवल अपने लक्ष्य पर दृष्टि रखती है, अपनी जाँच के विषय पर एकाग्र रहती है और उसके सत्य को पा लेने में, उसकी प्रक्रिया को समझ लेने में और उसके नियम का दर्शन करने में वह सजग होकर लगी रहती है। दूसरी तरफ वह व्यवहार के लिए उत्सुकता से भरी हुई है, अपने आविष्कृत सत्य द्वारा जीवन का शासन करने को उत्कंठित है अथवा उस विचार की मोहिनी में मस्त है जिसे उसने हमारे जीवन और कर्म के सर्वोपरि नियम के रूप में प्रतिष्ठित करने को ढूँढ़ लिया है। फिर हम यह भी देख आये हैं कि मनुष्य के दूसरे गुणों पर बुद्धि की यह ज्येष्ठता है कि वह अपनी ही किसी विलग तल्लीन क्रिया में सीमित नहीं हो जाती, किन्तु अन्य सब को साधती है, उनके नियम और सत्य का आविष्कार करती है, अपने आविष्कारों का उन्हें लाभ देती है, और अपने ही झुकाव और उद्देश्य पर चलती हुई साथ ही उनके उद्देश्यों में भी उपकार करती है और एक सर्व-सामान्य उपयोगिता पर पहुँचती है। मनुष्य वास्तव में केवल ज्ञान के लिए ही नहीं जीता; अपने विस्तृततम अर्थों में जीवन ही उसका प्रधान विषय है, और वह ज्ञानी बनने के शुद्ध आनन्द की अपेक्षा जीवन की उपयोगिता के लिए ही ज्ञान को ढूँढ़ता है। किन्तु बस यहीं, ज्ञान को इस प्रकार जीवन का अनुजीवी बनाने में ही, मानव की बुद्धि उस उथल-पुथल और विकलता में जा पड़ती है, जिसका असर सारे मानवीय कर्म पर छा जाता है। जब तक हम ज्ञान को ज्ञान के लिए खोजते हैं, हमें कुछ नहीं कहना; बुद्धि अपना स्वाभाविक कर्त्तव्य पूरा कर रही है और अपने ऊँचे से ऊँचे अधिकार का सुरक्षित उपयोग कर रही है। एक दार्शनिक का, वैज्ञानिक का, पण्डित का श्रम हमारे ग्राह्य ज्ञान के मूलधन में कुछ बढ़ती ही करता है, और उनके श्रम में उतनी ही निर्दोष पवित्रता और सन्तोष है जितनी कि लोक के रसात्मक आनन्द के लिए सौन्दर्य के रूपों का सृजन करते हुए कवि और कलाकार के श्रम में। उसमें वैयक्तिक भूल और सीमितता कितनी भी हो, परवाह नहीं; क्योंकि लोक के सम्मिलित और बढ़ते हुए ज्ञान ने उस आविष्कृत सत्य को तो पा ही लिया और भरोसा करना चाहिये कि समय आने पर भूल भी ठीक हो जायगी। बस, केवल जब मानवी बुद्धि उन आविष्कारों को जीवन पर लागू करने चलती है, तभी वह लड़खड़ा जाती है और अपने को गलती पर पाती है।

सामान्यतः, यह इसलिए होता है कि कर्म से अपना सम्बन्ध रखते समय मनुष्य की बुद्धि एक दम पक्षपात और राग में भर आती है और शुद्ध सत्य को छोड़कर किसी और की अनुचर बन जाती है। किन्तु यदि वह अपने को जितना हो सके, उतना निष्पक्ष और निष्काम भी रखे—और सर्वथा निष्पक्ष, सर्वथा निष्काम मानवी बुद्धि हो नहीं सकती, जब तक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि वह व्यवहार को पूरा ही तलाक न दे दे अथवा विशाल परन्तु निष्फल सहिष्णुता, जहाँ से जो जँचा उसे चुन लेने की वृत्ति या संशयशील उत्सुकता तक ही पहुँचकर चुप न रहे—तब भी उसके आविष्कृत सत्य और उसके उद्घोषित विचार, ज्यों ही जीवन पर लागू किये जाते हैं, उसी क्षण उन शक्तियों के खिलौने बन जाते हैं, जिन पर बुद्धि का कोई वश नहीं। विज्ञान ने अपने ठण्डी और सीधी राह पर चलकर आविष्कार किये हैं, जिन्होंने एक ओर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की क्रियात्मक संभावनाएँ पैदा की हैं तो दूसरी ओर अहंकार और परस्पर संहार के हाथों दानवी हथियार पकड़ा दिये हैं। उसने संगठन की एक अतिमानुष कुशलता को संभव बना दिया है जो एक हाथ राष्ट्रों के आर्थिक और सामाजिक अभ्युदय में काम आई है तो दूसरे हाथ हरेक को आक्रमण और परस्पर विनाश के, चूरा चूरा कर देनेवाले दैत्याकार घन बना रही है। एक पासे इसने एक विस्तृत विवेक-संपन्न और परोपकार-परायण विश्व-बन्धुता का उदय किया है तो दूसरे पासे ईश्वर-हीन अहंकार, प्रभुत्व और जय की ग्राम्य आकांक्षा और जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धान्त को सहारा दिया है। इसने राष्ट्रों को पास पास ला दिया है, मानव-जाति को जोड़ दिया है, उसमें एक नई आशा का संचार किया है और साथ ही उसे व्यवसायवाद के दानवी बोझ से पीस दिया है। और यह सब इसलिए नहीं है, जैसा कि आमतौर पर दुहाई दी जाती है, कि विज्ञान ने धर्म से नाता तोड़ लिया है अथवा उसमें आदर्शवाद की कोई कमी है। आदर्शवादी फ़िलासफी भी भलाई और बुराई दोनो शक्तियों की उसी बराबरी पर सेवा करती रही है, प्रतिक्रिया और प्रगति दोनो ही के लिए उसने बौद्धिक प्रत्यय उपस्थित किये हैं। स्वयं धर्म ने भी अभी अतीत में जब तब मनुष्यों को अपराध और हत्या में जोता है और अत्याचार तथा दकियानूसी अनुदारता को ठीक ठहराया है।

सचाई तो यह है जिस पर कि हम अब बल दे रहे हैं कि बुद्धि अपनी प्रकृति ही से एक अधूरी ज्योति है जिसका उद्देश्य बहुत विशाल होते हुए भी सीमित ही है। और कि एक बार यह अपने को जीवन और कर्म पर लगाती है कि यह अपने विषय के आधीन हो जाती है और उन शक्तियों की सलाहकार और दास बन जाती है जिनकी अँधेरी और ग़लत समझी हुई लड़ाई में यह अपना हाथ डालती है। यह अपने स्वभाव से ही जीवन के किसी भी सिद्धान्त का, विचार का, समाज अथवा शासन की किसी भी संस्था का, व्यष्टि या समष्टि के किसी भी आदर्श का, जिस ओर भी मानव का संकल्प इसे चलाये उसी का समर्थन कर सकती है और सदा करती रही है। दर्शन में, यह अद्वैतवाद और अनेकेश्वरवाद के लिये अथवा दोनो के बीच के किसी पड़ाव के लिए Being. अक्षर में विश्वास के लिये अथवा Becoming' क्षर में विश्वास के लिए, आशावाद और निराशावाद के लिए, प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग के लिए, एक जैसी सुन्दर युक्तियाँ उपस्थित करती है। यह अत्यन्त गूढ़ धर्मप्राणता को भी ठीक ठहरा सकती है और एक दम साफ अनीश्वरवाद के हक में भी फैसला दे सकती है। भगवान को छुट्टी दे सकती है या फिर उसके सिवाय किसी और को देखती ही नहीं। सौन्दर्य-शास्त्र में क्लासिसिज़्म और रोमान्टिसिज़्म दोनो ही बुद्धि से एक-सा आधार पाते हैं। कला में आदर्शवाद के, धार्मिकता के अथवा रहस्यवाद के सिद्धान्त को भी बुद्धि का उतना ही आश्रय मिलता है, जितना अत्यन्त पार्थिव यथार्थवाद को। यह जिस बल से कठोर तपस्या भरी कट्टर और सकरी नैतिकता को थाम सकती है, उसी बल से एन्टिनोमियनिज़्म की प्रतिज्ञा को विजयी रूप में साबित कर सकती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। यह हरेक तरह के एकतन्त्र की अथवा श्रेणीतन्त्र की और प्रत्येक प्रकार के प्रजातन्त्र की समर्थ और प्रामाणिक वकील रही है। स्पर्धात्मक वर्गवाद के पक्ष में यह बहुत सुन्दर और सन्तोषजनक युक्तियाँ प्रस्तुत करती है, उधर साम्यवाद के पक्ष में या साम्यवाद के विरोध में और सामाजवादी राज्य अथवा समाजवाद के एक भेद के पक्ष में और दूसरे के विपक्ष में उसी कोटि की सुन्दर और सन्तोषजनक युक्तियाँ पेश करती है। उपयोगितावाद, मितव्ययिता, सुखवाद, रसात्मकता, भोगवृत्ति, संयम, आदर्शवाद अथवा मानव की किसी भी प्रवृत्ति या आवश्यकता के लिए बुद्धि एक-सी तत्परता से अपनी सेवाएँ दे सकती है और उसके चारो ओर एक दर्शन, कोई राजनैतिक और सामाजिक पद्धति, जीवन और आचार का कोई सिद्धान्त खड़ा कर लेती है। उसे कहिये कि वह किसी एक ही विचार पर नहीं झुके, बल्कि जहाँ से जो अच्छा मिले, उस सबका मेल चुने अथवा एक समन्वयात्मक समंजसता पर पहुँचे और वह आपको सन्तुष्ट कर देगी। फिर विभिन्न प्रकार की कितनी भी मिलावटें या सामंजसताएँ संभव हो सकती हैं; बुद्धि उनमें से किसी एक की या दूसरे की समान रूप से अगवानी कर सकती है, उनमें से किसी को भी चढ़ा या गिरा सकती है—बस, जिधर भी मानव के आत्मा को आकर्षण या दबाव हो उसी के अनुसार बुद्धि अपना पासा बदल लेती है; क्योंकि असल में तो वही है जो निर्णय करता है और बुद्धि तो इस पर्दानशीन और प्रच्छन्न सम्राट् की एक उज्ज्वल अनुचर और सचिवमात्र है।

यह सचाई बुद्धिवादी तार्किक से छिपी हुई है, वह इसे नहीं देख पाता क्योंकि उसको विश्वास की दो निरन्तर प्रतिज्ञाएँ सहारा देती हैं। एक—कि उसका अपना तर्क ठीक है और उससे मतभेद रखनेवालों का ग़लत। दो—कि मानवी बुद्धि की वर्तमान न्यूनताएँ कुछ भी हों, सम्मिलित मानवी तर्क अवश्य ही अन्त में विशुद्धि पर पहुँचेगा और मनुष्य के विचार और जीवन को अभय देकर एक सुथरे, युक्तिसिद्ध और बुद्धि को सन्तोष देनेवाले आधार पर खड़ा कर सकेगा। उसकी पहली प्रतिज्ञा तो सचमुच हमारे अहंकार और गलती करने के उद्धत स्वभाव का ही सामान्य प्रदर्शन है। पर इसमें कुछ और भी है। इसके पीछे एक सचाई है कि बुद्धि का सही काम यही है कि वह आदमी के आगे उसके काम को, उसकी आशा को, उसमें की श्रद्धा को ठीक साबित करे और उसे ऐसा प्रकाश देवे चाहे वह कितना भी परिमित हो, ऐसी कार्यशील आस्था देवे जो बेशक कितनी भी सकरी और असहिष्णु हो, जिसकी उसे ज़रूरत है; जिससे वह जहाँ तक भी उसकी पहुँच है, ऊँचे से ऊँचे प्रकाश में जी सके, कर्म कर सके, बढ़ सके। बुद्धि अपनी बाँहों में सारे सत्य का एक साथ आलिङ्गन नहीं कर सकती, वह इसके लिए कहीं अधिक अनन्त है। फिर भी, यह उसमें का कुछ अंश जिसकी हमें तुरन्त जरूरत होती है, ग्रहण कर ही लेती है और इसकी अपर्याप्तता इसके काम की कीमत कम नहीं करती, बल्कि वह इसके मूल्य का मान है। कारण—मनुष्य अपनी सत्ता के सम्पूर्ण सत्य को एक ही दम ग्रहण करने के लिए नहीं है, किन्तु उसे बिना रोक-टोक के अथक रूप से तो हर्गिज़ नहीं, फिर भी लगातार अपने फैलाव और अपने अनुभवों की तरतमता में से होकर ही उस सत्य की ओर बढ़ना है। तब बुद्धि का पहला काम यह हो जाता है कि वह मनुष्य के आगे उसके विविध अनुभवों की पुष्टि करे, उन्हें माँजे और उसे अपने आत्म विस्तारों को थामे रहने की श्रद्धा और दृढ़ आस्था दे। यह उसके सामने अभी इसका समर्थन करती है तो अभी उसका; अभी इस क्षण के अनुभव पर इशारा करती है, तो अभी अतीत के हटते हुए उजाले की तरफ, फिर अभी भविष्य के अधदेखे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सपने की ओर संकेत करती है। इसकी तरलता, अपने ही प्रतिकूल इसका बँटवारा, इसकी परस्पर विरोधी विचारों की प्रतिपादन-शक्ति—यही तो इसकी कीमत का सब रहस्य है। उद्बोधन और अवस्था क्रान्ति के कुछ क्षणों को छोड़कर, एक ही व्यक्ति में बहुत अधिक टकराते हुए विचारों को आश्वासन देने में सचमुच इसका काम नहीं चलता; किन्तु मनुष्यों के संघ में इसका सारा धन्धा यही है। कारण—इसी प्रकार मानव सत्य की विभिन्नता के अनुभवों में से होकर उस परम सत्य की अनन्तता की ओर उठता है; इसी प्रकार उसकी बुद्धि जोड़ने में, बदलने में, जो कुछ उसने बनाया उसे तोड़ने में, एक शब्द में उन्नति में, बढ़ती में, आत्मज्ञान और उसके कार्यों में अपना विस्तार करने में उसकी मदद करती है।

बुद्धि को माननेवाले की विश्वास की दूसरी प्रतिज्ञा भी एक गलती है। फिर भी उसमें एक सत्य है। बुद्धि किसी अन्तिम सत्य पर नहीं पहुँच सकती, क्योंकि वह न तो वस्तुओं के मूल तक उतर सकती है और न उनके रहस्यों का पूरी तरह आलिङ्गन कर पाती है। वह एक शान्त, जुदी और परिमित राशि के साथ ही बर्त्ताव करती है, उसके पास समूचे और अनन्त के लिए कोई पैमाना नहीं है। मानव के लिए पूर्ण जीवन अथवा एक पूर्ण समाज की स्थापना भी वह नहीं कर सकती। शुद्ध बुद्धिवादी मानवी जीवन अपनी अत्यन्त ओजस्वी प्रेरक शक्तियों से वञ्चित और वास्तविक स्रोतों से ठगा-सा गया होगा। यह सम्राट् के आसन पर मन्त्री को बिठा देने जैसा होगा। एक शुद्ध बुद्धिवादी समाज कभी पैदा नहीं हो सका, और यदि वह जन्मा भी होता, तो पहले तो वह जीवित ही न रह पाता या फिर मानव के अस्तित्व को वन्ध्य और जड़ीभूत बना देता। मानवजीवन की मूल शक्तियाँ, उसके गहरे बीज या तो नीचे हैं अनघड़ पशुधर्म के रूप में, या ऊपर हैं बुद्धि से परे। किन्तु यह सच है कि लगातार फैलते, पवित्र होते और खुलते-खुलते मानव की बुद्धि उस ऊँची समझ तक पहुँचकर ही रहेगी—जो आज इससे छिपा है उस तक भी। वह अपने से परे के दिव्य प्रकाश की विच्छिन्न ही सही फिर भी एक समरूप छाया तो डाल ही पायगी।

बुद्धि की हद पूरी हो गई, उसका काम समाप्त हो गया, जब वह मनुष्य को यह कह सकेगी कि—

'जगत् में और मानव में एक आत्मा है, एक स्व है, एक ईश्वर है जो प्रच्छन्न रूप से कार्य करता है और सब कुछ उसी का अपने को छिपाना और धीरे-धीरे अपने को खोलना है। उसी की सचिव मैं आज तक रही हूँ। धीरे-धीरे तुम्हारी आँखें खोलने के लिये, तुम्हारी दृष्टि के स्थूल आवरण हटाने के लिये। जब कि अब उसके और तुम्हारे बीच बस मेरा ही एक चमकीला परदा रह गया है। उसे भी उठा दो और मानव की आत्मा को उस परम के साथ सचमुच प्रकृति में एक कर दो। तभी तुम अपने स्वरूप को जान पाओगे, अपनी सत्ता के ऊँचे से ऊँचे और अधिक से अधिक विस्तृत विधान को पहचान सकोगे, मुझ से कहीं ऊँचे संकल्प और ज्ञान के अधिष्ठाता अथवा कम से कम उसके उपकरण और पात्र बन जाओगे, और अन्त में मानवीय होते हुए भी दिव्य उस जीवन की सम्पूर्ण भावना और सच्चे रहस्य पर अपना अधिकार कर लोगे।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थिरता, अभीप्सा और शान्ति

[श्रीअरविन्द]

[श्रीअरविन्द के बहुत-से पत्र Bases of yoga नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए हैं। इस लेख में हम उसी पुस्तक में से कुछ पत्रों का अनुवाद दे रहे हैं।—सं०]

मन में शान्ति और निश्चल नीरवता की प्रतिष्ठा करना साधक का पहला कर्तव्य है। इसके बिना, साधक को आध्यात्मिक अनुभव तो हो सकते हैं, पर कोई चिरस्थायी चीज़ प्राप्त नहीं होती। शुद्ध चेतना के निर्माण के लिए अचंचल मन ही एक योग्य स्थान है।

मेरा आशय यह नहीं है कि अचंचल मन में विचारों या मनोवृत्तियों का अभाव होता है। विचार और मनोवृत्तियाँ अचंचल मन की सतह पर ही तैरते रहेंगे, मन को अपने प्रवाह में बहा नहीं सकते। तुम अचंचल मन की गहराई में बाह्य वृत्तियों से भिन्न, उनके प्रवाह में न बहनेवाले, साक्षीरूप, उनके सावधान अध्यक्ष बनकर शुद्ध चेतना और सत्य अनुभवों को अङ्गीकार करनेवाले और सब त्याज्य विचार वृत्तियों का सतत बहिष्कार करनेवाले अपने असली शुद्ध स्वरूप का अनुभव करोगे।

मन की निष्क्रियता अच्छी है, पर इस बात का ध्यान रहे कि वह परम सत्य और महाशक्ति के सम्पर्क में ही निष्क्रिय और निश्चेष्ट रहे। यदि मन अविद्यामय प्रकृति के प्रस्तावों और प्रभावों के बारे में भी निश्चेष्ट रहेगा तो तुम प्रगति न कर पाओगे, अथवा तुम्हें योग-भ्रष्ट कर सकने वाली, योग-मार्ग से दूर फेंक देनेवाली आसुरी सत्ताओं के शिकार बन जाओगे।

मन की इस निश्चल अचंचलता और स्थिरता के लिए इस सतत स्मरण के लिए कि तुम्हारी अन्तरात्मा बाह्य प्रकृति से भिन्न साक्षी की ओर से मुँह फेर परम सत्य और परम ज्योति की ओर उन्मुख है—सदा अपनी अभीप्सा द्वारा मा को पुकारते रहो।

जो सत्ताएँ साधना की राह में आड़ी आती हैं वे अविद्यामय प्राण, मन और शरीर में से उठा करती हैं और मन, प्राण और सूक्ष्म शरीर की विरोधी शक्तियाँ इन्हें पीछे से सहारा दिये रहती हैं। इन सत्ताओं को ठिकाने लगाना तभी सरल हो सकता है जब मन और हृदय परमात्मा-प्राप्ति की अनन्य अभीप्सा में एकचित्त हों।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निस्पन्द मन और स्थिर मन में भेद यह है कि निस्पन्द मन में एक ऐसे तात्त्विक बोध के सिवाय जिसने अभी विचार का रूप नहीं धारण किया, और कोई विचार, कोई मनोमय सृजन या और कोई मानसिक क्रिया नहीं होती ; लेकिन यदि मन स्थिर हो तो उसमें मनोमय तत्त्व इतना स्थिर होता है कि कोई भी उसकी मनोमय स्थिरता को भङ्ग नहीं कर सकता। यदि मन में विचार या सङ्कल्प उठते हुए प्रतीत भी हों तो वे साधक के अपने मन से नहीं उठते, अपितु निस्तब्ध वातावरण में किसी प्रकार क्षोभ पैदा किये बिना पक्षियों की टोली उड़ती चली जाती है। उसी प्रकार वे भी साधक के मनोमय आकाश में किसी प्रकार की गड़बड़ किये बिना और अपने पद-चिन्ह छोड़े बिना गुजर जाते हैं। चाहे हजारों विचार या अति उग्र घटनाएँ उसके आगे से क्यों न गुजरें, फिर भी मन वैसा का वैसा ही प्रशान्त बना रहता है, मानो सारा का सारा मन किसी अक्षय, शाश्वत शान्तिमय तत्त्व का बना हुआ हो, जिस मन में ऐसी प्रशान्ति स्थापित हो चुकी हो, वह अपनी मौलिक स्थिरता को कायम रखते हुए अपना बहुत गहरा और सामर्थ्य-युक्त प्रभाव फैला सकता है।

यह मन अपने-आप कोई काम शुरू नहीं करता, परन्तु ऊपर की भूमिका में से आनेवाली वस्तु को अपनाकर उसे मनोमय रूप दे देता है, अपनी ओर से उसमें कुछ भी मिलावट नहीं करता। यह सारी क्रिया शान्ति और अनासक्ति के साथ करते हुए भी वह सत्य के आनन्द का और उसके अवतरण के परिणाम-स्वरूप मिलती हुई सुखद शक्ति और ज्योति का अनुभव करता है।

× × ×

यह कोई अवाञ्छनीय बात नहीं है कि मन नीरव और निस्पन्द होकर विचारों से मुक्त और प्रशान्त बन जाय, क्योंकि प्रायः मन की नीरवता में ही ऊर्ध्व लोक से विशाल शान्ति का अवतरण होता है और इस व्यापक शान्ति में मनोमय चेतना से ऊपर सर्वव्यापी विराट नीरव ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। परन्तु जब चेतना में यह शान्ति और मन में यह नीरवता हो तो प्राणमय मन वहाँ घुसकर धाँधली मचाने की कोशिश करता है या यान्त्रिक पुनरावृत्ति करनेवाला मन अपने रोज के निर्जीव विचारों का चक्कर चलाने के लिये उठ खड़ा होता है। इन बाहरसे घुस आनेवालों को अस्वीकार करने और उन्हें भगा देने में साधक को सावधान रहना चाहिये जिससे कम से कम ध्यान के समय तो मन और प्राण की स्थिरता और शान्ति पूर्ण रह सके। इसके लिए नीरव और बलवान तपःशक्ति को जागृत रखना सब से अच्छा उपाय है। वास्तव में तो यह नीरव तपःशक्ति मन के पीछे रहनेवाले पुरुष की तपःशक्ति है। मन जब नीरव और प्रशान्त हो तो उस पुरुष की चेतना का साक्षात्कार हो सकता है। यह पुरुष भी नीरव और प्रकृति की क्रियाओं से अलग होता है।

शान्त, धीर और स्थिर होना, मन में शान्ति रखना और बाहर की प्रकृति से अन्दर के पुरुष की भिन्नता का अनुभव करना बहुत सहायक और अपरिहार्य-सा है। पर जब तक मानव विचारों के भँवर में या प्राण की क्रियाओं की अशान्ति में फँसा हो, तब तक इस प्रकार धीर और स्थिर नहीं बना जा सकता। अपने-आप को अलग कर लेना, इन क्रियाओं से अलग खड़ा रहना और यह अनुभव करना कि मैं इन सब से भिन्न हूँ—अनिवार्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने असली व्यक्तित्व को खोजने के लिए तथा उसे अपनी प्रकृति में उठने देने के लिए दो बातों की आवश्यकता है। पहिली है—हृदय के पीछे रहनेवाली अपनी अन्तरात्मा के विषय में सचेतन रहना और दूसरी चीज़ है—पुरुष और प्रकृति का पृथक्करण; क्योंकि सच्चा व्यक्तित्व बाह्य प्रकृति के झंझटों उसकी कार्य-व्यग्रताओं, उसके कामों के पीछे छिपा हुआ है।

× × ×

हाँ, यह बिलकुल ठीक है कि संशयों और शङ्काओं से मुक्त होने का अर्थ है, अपने विचारों पर काबू पाना। पर योग में—और केवल योग में ही नहीं सभी जगह प्राण की वासनाओं तथा राग-वृत्तियों पर और शरीर की क्रियाओं पर काबू पाना उतना ही ज़रूरी है जितना विचारों पर अधिकार कर लेना। कोई पूर्णतया विकसित मानव भी कैसे हो सकता है, जब तक कि उसे अपने विचारों पर काबू न हो, जो अपने विचारों का साक्षी, अनुमन्ता और ईश्वर न बन सके। जैसे वासना और रागवृत्तियों का या जड़ता का दास बनना ठीक नहीं है, कामनाओं के समुद्र की उथला-पुथली में बिना पतवार का जहाज बनना ठीक नहीं है। उसी प्रकार मनोमय पुरुष का उच्छृङ्खल और अदम्य विचारों की थपेड़ों के आगे एक टेनिस की गेंद बन जाना भी ठीक नहीं। मैं जानता हूँ कि यह ज्यादा कठिन है, क्योंकि मानव प्रधानतः मानसिक प्रकृति का बालक है और इस कारण बड़ी सरलता से मन की क्रियाओं के साथ अपना तादात्म्य कर लेता है और उसमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वह एकदम अपने विचारों के चक्कर से या अपने मन के भँवर में से आसानी से निकल सके। उसे यह बड़ा कठिन लगता है। शरीर पर या कम से कम शरीर की किन्हीं गतियों पर अधिकार कर लेना अपेक्षाकृत सरल काम है। प्राण के छन्द और उसकी वासनाओं पर मानसिक अधिकार कर लेना यद्यपि कुछ कष्ट-साध्य है, पर फिर भी अधिक सम्भव तो है ही। पर विचारों की धारा के प्रवाह पर बैठे हुए तान्त्रिक योगी की नाईं अपने विचारों के भँवर से अलग रहना सरल नहीं है। लेकिन फिर भी यह किया जा सकता है। सभी विकसित मनुष्य, औसत दर्जे से ऊँचे लोग कभी न कभी, एक न एक प्रकार से किसी न किसी उद्देश्य के लिए अपने मन के दो भागों में विभक्त होने का अनुभव प्राप्त करते हैं। एक क्रियाशील भाग—जो विचारों का कारखाना है और दूसरा स्थिर और प्रभुतावाला भाग जो सारी मानसिक क्रियाओं पर देख-रेख रखता है, इष्ट को स्वीकार करता है और अनिष्ट का परित्याग करता है। यह भाग गलतियाँ सुधारता और परिवर्तन करता है, तटस्थ ईश्वर-स्वरूप मन के घर का गृह-स्वामी है और सम्राट् होने का अधिकारी है।

लेकिन योगी इससे भी आगे जाता है, वह केवल गृह-स्वामी ही नहीं है। वह मन में रहता हुआ भी मानो मन के बाहर निकल जाता है। वह मन के ऊपर या मन के बिलकुल पीछे मुक्त रूप में तटस्थ होकर रहता है। इसके लिए यह कहना ठीक नहीं रहता कि इसका मन विचारों का कारखाना है, क्योंकि उसे तो स्पष्ट दिखाई देता है कि विचार बाहर से, विराट मन या विश्व प्रकृति में से कभी पक्वावस्था में और स्पष्ट रूप से तो कभी अपक्व और अस्पष्ट रूप में उसके मन में दाखिल होते हैं और हमारा मन उन्हें केवल एक निश्चित रूप देने का काम करता है। इन विचार-धाराओं को (और इसी प्रकार प्राणोर्मियों और सूक्ष्म भौतिक शक्ति की लहरों को) स्वीकार करना या अस्वीकार करना और आसपास की प्रकृति में से आनेवाले विचार तत्त्व या प्राण-वृत्तियों को वैयक्तिक मनोमय रूप देना हमारे मन का मुख्य कार्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनोमय पुरुष के विकास की शक्यताओं का कोई संकुचित क्षेत्र नहीं है, वह स्वतन्त्र साक्षी या अपने घर का पूरा-पूरा मालिक बन सकता है। श्रद्धा और दृढ़ संकल्प-शक्ति हो तो हर एक व्यक्ति धीरे-धीरे अपने मन को मुक्त कर सकता है और उस पर अधिकार कर सकता है।

× × ×

स्थिर और अक्षुब्ध मन तो पहिला कदम है। निश्चल नीरवता इसके बाद आती है। पहले-पहले तो स्थिरता होनी ही चाहिये। 'स्थिर मन' से मेरा मतलब है, एक ऐसी मनोमय चेतना जो अपने अन्दर विचारों को आता-जाता और चलता-फिरता तो देखे; पर यह न समझे कि यह विचार उसके अपने हैं, उसे यह अनुभव न हो कि वह स्वयं विचार कर रही है, वह विचारों के साथ एकीभूत न हो जाये। जैसे राही सुनसान प्रदेश में घुसते हैं और चुपचाप गुजर जाते हैं, उसी तरह विचार और मानसिक क्रियाएँ अक्षुब्ध और स्थिर मन में से होती हुई निकल जाती हैं। अक्षुब्ध मन इस सबको देखता रहता है या देखने की भी परवाह नहीं करता; लेकिन हर हालत में अपने-आप क्रिया-कलाप नहीं कर उठता और न ही अपनी स्थिरता को हाथ से जाने देता है। निश्चल नीरवता स्थिरता से कुछ बढ़कर है। अन्तर की सूक्ष्म मानसिक चेतना में से विचारों को समूल निकाल बाहर करने और आन्तर मन को बिलकुल नीरव निःशब्द बना देने से या विचारों को मन के बाहर ही रखने से यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। परन्तु यदि ऊर्ध्व लोक में से दिव्य चेतना का अवतरण हो तो नीरवता ज्यादा आसानी से स्थापित हो सकती है। साधक इस ऊर्ध्व चेतना को अपने अन्दर प्रविष्ट होते हुए अनुभव करता है और अपनी व्यक्तित्व चेतना को घेरते हुए या उस पर कब्जा करते हुए देखता है और तब उसकी वैयक्तिक चेतना भी नीरव, अपौरुषेय, विराट् ब्रह्म में विलीन होने के लिए अग्रसर होती है।

× × ×

मेरे अँग्रेजी लेखों में Peace. calm, Quiet और Silence हर एक शब्द एक अलग अर्थ रखता है, पर इनकी व्याख्या करना सरल नहीं।

Peace = शान्ति

Calm = स्थिरता

Quiet = अचञ्चलता

Silence = निश्चल नीरवता

जिस स्थिति में चञ्चलता या क्षोभ का अभाव हो वह अचञ्चलता; किसी भी क्षोभ का जिस पर असर न हो ऐसी प्रशान्त अविचल स्थिति Calm या स्थिरता कहाती है। स्थिरता अचञ्चलता की अपेक्षा कम अभावात्मक स्थिति है।

शान्ति (Peace) शब्द स्थिरता (Calm) की अपेक्षा ज्यादा भावात्मक स्थिति का द्योतक है; यह स्थिर और Harmonions लयताल भरे आराम और बन्धन से छुटकारे के भाव का वाहक है।

निश्चल नीरवता (Silence) में दो अर्थों का समावेश है (१) ऐसी स्थिति जिसमें मन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गतिहीन हो (२) जिसमें ऐसी गहन प्रशान्ति हो जिसे चेतना की सतह पर होनेवाली गतियाँ न तो बींध सकें और न विकृत कर सकें।

× × ×

आखिरकार तुम साधना के सच्चे आधार तक पहुँच गये। अन्य सभी तत्त्व-ज्ञान, बल और आनन्द के अवतरित होने के लिए स्थिरता, शान्ति और समर्पण का वातावरण बहुत उपयुक्त है, इसे अपने अन्दर पूरी तरह जमने दो।

जब तुम काम में लगे होते हो, तब यह स्थिरता नहीं रहती। इसका कारण यह है कि तुम्हारे मन को जो निश्चल नीरवता की थोड़ी-बहुत प्राप्ति हुई है, उसका प्रभाव अभी तक मन की शुद्ध भूमिका तक ही सीमित है! जब नवचेतना का पूर्ण निर्माण हो जायेगा और वह चेतना समग्र प्राण की प्रकृति और समग्र स्थूल आधार पर पूरी तरह अधिकार कर लेगी—निश्चल नीरवता ने अभी प्राण प्रकृति को छुआ भर है, अभी पूरी तरह उस पर कब्जा नहीं किया—तब यह दोष हट जायेगा।

शान्ति की जो अचञ्चल चेतना तुम्हें अभी मन की भूमिका पर प्राप्त हुई है, उसके स्थिर हो जाने पर उसका विशाल होना भी आवश्यक है। तुम्हें सर्वत्र इसका अनुभव होना चाहिये। तुम्हें यह अनुभूति होनी चाहिये कि तुम भी और बाकी सब कुछ भी इसी के अन्दर स्थित हो। यह चेतना स्थिरता को कर्म का आधार-स्तम्भ बनाने में बहुत सहायक होगी।

जैसे-जैसे तुम्हारी चेतना विशाल होती जायेगी, वैसे-वैसे ही तुम ऊर्ध्व चेतना के कार्य को धारण करने के अधिकाधिक योग्य बनते जाओगे। इस प्रकार महाशक्ति तुम्हारे आधार में अवतरण कर सकेगी तथा उसमें सामर्थ्य, ज्ञान ज्योति और शान्ति की स्थापना कर सकेगी। जिस क्षुद्र, सङ्कुचित, परिमित वस्तु का तुम्हें अनुभव होता है, वह तुम्हारा इन्द्रियाधिष्ठित मन है। यदि विशाल और ज्योतिर्मयी चेतना नीचे उतरकर प्रकृति को अपने अधिकार में कर ले तो तुम्हारा मन उदार और विशाल बन सकता है। तुम जिस शारीरिक जड़ता में फँसे हो, यह भी तभी घटेगी और समूल नष्ट होगी, जब पराशक्ति का प्रवाह नीचे आधार में अवतरित होगा।

अचञ्चल रहो; अन्तरात्मा की भगवती शक्ति की ओर उन्मुख करके अपने अन्दर स्थिरता और शान्ति कायम करने की, चेतना को विशाल करने की, तुम्हारा आधार इस समय जितनी धारण कर सके उतनी शक्ति और ज्ञान ज्योति उसमें स्थापित करने की प्रार्थना करो।

ध्यान रहे कि कहीं अति उत्सुक न हो जाओ, क्यों कि इससे तुम्हारी प्राण प्रकृति में जो अचञ्चलता और समता प्रतिष्ठित हो चुकी है, उसके अन्दर खलल पड़ेगा।

अन्तिम परिणाम पर विश्वास रखो और शक्ति को अपना काम करने का अवकाश दो।

× × ×

अपनी निर्बलताओं और कुप्रवृत्तियों को परखना और उनसे निवृत्त होना मुक्तिधाम की ओर ले जानेवाला रास्ता है। जब तक मन और प्राण को स्थिर करके चीज़ों को परखना न आये तब तक अपने सिवाय किसी और के न्यायाधीश न बन बैठो, यह सुवर्ण मार्ग है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किन्हीं बाह्य आभासों के आधार पर मन अपने उतावलेपन में सम्मतियाँ न बनाने पाये और प्राण इस प्रकार की सम्मतियों पर अमल न करने लगे। तुम्हारे अन्तः करण में एक ऐसा स्थान है जहाँ तुम सदा स्थिर रह सकते हो और वहाँ से चेतना की सतह के विचारों को समतुलित न्याय द्वारा परखकर उन्हें बदलने के लिए उन पर अपनी हुकूमत चला सकते हो। यदि तुम अपने अन्तःकरण की इस स्थिरता में रहना सीख लो तो तुम साधना में दृढ़प्रतिष्ठ हो जाओगे।

× × ×

भगवती दिव्य शक्ति को अपने अन्दर ग्रहण करने के लिए तथा बाह्य जीवन की चीज़ों में भी अपने द्वारा उसीसे काम करवाने की क्षमता प्राप्त करने के लिए तीन आवश्यक शर्तें हैं।

१ अचंचलता, समता—चाहे कुछ क्यों न हो जाये, फिर भी विचलित न होना, मन को शान्त और दृढ़ रखना, मन शक्तियों का खेल भले ही देखता रहे; पर स्वयं प्रशान्त रहे।

२ निरपेक्ष पूरी-पूरी श्रद्धा—इस बात पर श्रद्धा कि जो कुछ सबसे ज्यादा कल्याणकारी है, वही होगा और साथ ही यह भी कि हम अपने आपको भगवान का सच्चा उपकरण बना दें तो भगवान को दिव्य ज्योति के पथ-प्रदर्शन द्वारा हम अपनी तपःशक्ति से जिस कार्य को 'कर्तव्यकर्म' समझेंगे, वही फल-स्वरूप प्राप्त होगा।

३ ग्रहण-सामर्थ्य या ग्रहण-क्षमता—दिव्य शक्ति को ग्रहण करने की सामर्थ्य और अपने अन्दर उसकी उपस्थिति और उसके अन्दर मा की उपस्थिति का अनुभव करना तथा उसे हमारी दृष्टि, तपःशक्ति और कर्म का पथ-प्रदर्शन करते हुए अपना काम करने देना—ग्रहण-सामर्थ्य है। यदि साधक इस शक्ति और मा की उपस्थिति का अनुभव कर सके और काम करते हुए भी अपनी चेतना को इस संस्कार-ग्राहकता का अभ्यस्त बना सके—पर किसी विजातीय तत्व की दख़ल अन्दाजी के बिना केवल भगवान के प्रति संस्कार-ग्राहकता हो तो अन्तिम परिणाम निश्चित ही है।

× × ×

समता के बिना योग की बुनियाद पक्की नहीं हो सकती। संयोग चाहे जितने अनिष्ट हों, दूसरों का व्यवहार चाहे जितना Disagreeable अप्रिय हो, फिर भी सम्पूर्ण स्थिरता सहित अपने-आप को अशान्त करनेवाली प्रतिक्रिया के बिना उनका ग्रहण करना तुम्हें सीखना चाहिये। यह चीज़ें समता की कसौटी हैं। जब सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा हो, आस-पास के व्यक्ति और संयोग अनुकूल हों तो स्थिर रहना और समता कायम रखना आसान है। पर जब ये सब उल्टे और विपरीत हों, तब स्थिरता, शान्ति और समता आदि की पूर्णता परखी जा सकती है, उन्हें अधिक दृढ़ और सम्पूर्ण बनाया जा सकता है।

× × ×

योग-साधना में बलवान मन, शरीर और प्राण की आवश्यकता है। तमोगुण को परे फेंक देने और प्रकृति के चौखटे में बल और शक्ति का संचय करने के लिए खास तौर पर उपाय करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योग-मार्ग एक जीवित जाग्रत चीज़ होनी चाहिये। जो आवश्यक परिवर्तनों की राह में भी दीवार खड़ी करे, ऐसा कोई सिद्धान्त या निश्चित पद्धति नहीं।

× × ×

विक्षेप-ग्रस्त न होना, अचञ्चल और श्रद्धावान् बनना चेतना की सम्यक व्यवस्थिति है, इस पर भी मा की सहायता प्राप्त करना आवश्यक है, किसी भी बहाने मा की प्रेम भरी उत्कण्ठा से पीछे हटकर वञ्चित न रहना चाहिये। 'मैं निर्बल हूँ, मा के योग्य प्रतिक्रिया कर सकने में असमर्थ हूँ' इस प्रकार के विचारों में फँसे रहना ठीक नहीं। अपनी गलतियों और असफलताओं का बहुत विचार कर करके मन को दुखी और लज्जित न किया जाय, क्योंकि इस प्रकार के भाव और विचार अन्त में कमजोरी पैदा करनेवाले निकलते हैं। कठिनाइयाँ, स्खलन और असफलताएँ आयें तो अस्थिर हुए बिना उन पर नजर डालो और शान्ति तथा आग्रह के साथ उन्हें दूर करने के लिए मा से प्रार्थना करो। घबराओ मत, दुःखी मत होओ, हिम्मत न हारो। योग-साधना कोई आसान काम नहीं है और प्रकृति का पूर्ण रूपान्तर एक दिन में हो जाये यह सम्भव नहीं है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कठिनाई में

[श्रीअरविन्द]

[साधना का मार्ग तलवार की धार पर चलने के समान ही कठिन है। यहाँ पर साधना में आनेवाली कुछ मुश्किलों का हल बतलाया गया है। पाठक देखेंगे कि साधारण जीवन में भी यह कितने काम आनेवाली चीज है।—सं०]

साधना की प्रारम्भिक दशा में सदा कठिनाइयाँ आया करती हैं ; प्रगति में रोड़े अटकते हैं और आधार के तैयार होने तक अन्तर चेतना के द्वार खुलने में भी देर लगती है। ध्यान में बैठने से यदि अन्तःशान्ति का अनुभव होता हो, अन्तरज्योति की चमक दिखाई पड़ती हो, आन्तरिक उद्रेकमयी प्रेरणा इतनी प्रबल हो जाती हो कि बाह्य वस्तुओं के बन्धन ढीले होने लगें, प्राण के विघ्नों का बल घटता जाय तो यह अपने-आप में एक बड़ी प्रगति की निशानी है। योग की राह तो बहुत लम्बी है, एक-एक इञ्च ज़मीन को प्रबल विरोध का सामना करते हुए जीतना पड़ता है। इस राह में विलम्ब, कठिनाइयों, और कथित असफलताओं के बीच दृढ़ और अविचल रहनेवाली श्रद्धा, अटूट धैर्य, और एकनिष्ठ अध्यवसाय से बढ़कर आवश्यक गुण और कोई नहीं है।

× × ×

मानव-प्रकृति का हर एक भाग, मानव के अन्तर का एक-एक उपकरण सदा अपने पुराने ढर्रे पर ही चलना चाहता है और जहाँ तक उससे बन पड़े वह अपनी गति-विधि में कोई परिवर्तन नहीं होने देता, क्योंकि ऐसा होते ही उसे अपने से उच्च तत्त्व की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी और उसे अपने क्षेत्र में मनमानी चलाने का अधिकार न रहेगा, उसका अपना अखण्ड साम्राज्य न रह पायेगा। इसी कारण रूपान्तर की क्रिया इतनी कठिन और लम्बी हो जाती है।

साधक का मन सुस्त और जड़वत् हो जाता है, क्योंकि उसकी तह में स्थूल मन (या बहिर्मुख बुद्धि) है जो जड़ता और तमोगुण-युक्त है। प्रकृति का मौलिक गुण जड़ता है। जब लम्बे समय तक उच्च भूमिका की अनुभूतियाँ होती रहें तो मन का यह भाग थक जाता है, उसमें क्लान्ति, अनमनापन, और ढील पैदा हो जाती है। समाधि इससे छूटने का एक

[१०४८

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपाय है। इसमें शरीर को निश्चल और स्थिर कर दिया जाता है, बहिर्मुख स्थूल मन एक प्रकार से सुप्त-सा पड़ जाता है और आन्तरिक चेतना को अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त करने के लिए खुली छूट मिल जाती है। पर इस ढंग में घाटा यह है कि समाधि की स्थिति अनिवार्य हो जाती है और जागृत चेतना की समस्या वैसी ही उलझी हुई रह जाती है, वह अपूर्ण ही रहती है।

\+ × ×

तुम्हारी चेतना में जो कुवृत्तियाँ उठती हों, उन्हें देखना और परखना आवश्यक है; क्योंकि वे तुम्हारे सभी दुःखों की मूल हैं और मुक्त होने के लिए उनका बल-पूर्वक त्याग आवश्यक है।

पर सदा अपनी कमजोरियों और असद्वृत्तियों का ही विचार न किया करो। तुम भविष्य में जो बननेवाले हो—जो तुम्हारा आदर्श है—उस पर ही अपने चित्त को एकाग्र करो और श्रद्धा-पूर्वक यह निश्चय रखो कि तुम ने अब इसे अपना लक्ष्य बना लिया है तो यह पूरा होकर रहेगा।

सारे समय अपने दोष देखते रहने और अधम वृत्तियों को जाँचते रहने से साधक में निरुत्साह पैदा हो जाता है और श्रद्धा कम होने लगती है। अभी के अन्धकार को देखने की जगह आते हुए प्रकाश की ओर अपनी निगाह जमाये रखो। श्रद्धा, आनन्दी स्वभाव, हँसता हुआ चेहरा और अन्तिम विजय पर विश्वास—ये बातें साधक के लिए सहायक हैं, इनसे प्रगति ज्यादा सरल और ज्यादा तेज होती है।

तुम्हें जो अच्छी अनुभूतियाँ प्राप्त हुई हों, उनका अधिक सदुपयोग करो। ऐसी एक अनुभूति अनेक स्खलनों और असफलताओं से ज्यादा महत्त्व-पूर्ण है। जब अनुभूति अदृश्य हो जाय तो जबरदस्ती उसे पकड़ रखने की कोशिश न करो और न निरुत्साहित ही होओ। अन्तर में स्थिर रहो और यह अभीप्सा करो कि यह अनुभूति और अधिक समर्थ स्वरूप में फिर से जागृत हो और उत्तरोत्तर ज्यादा गहन और ज्यादा परिपूर्ण अनुभूतियों को जागृत करे।

अभीप्सा की अग्नि को सदा जागृत रखो और प्रभु के प्रति अपने अन्तर को स्थिरता-पूर्वक और पूरी सरलता के साथ उन्मुख करो।

× × ×

अपूर्णता का अस्तित्व—चाहे बहुत-सी और बहुत गम्भीर अपूर्णताएँ ही क्यों न हों—आध्यात्मिक प्रगति में सदा के लिए बाधक नहीं हो सकता। (यहाँ मेरा मतलब यह नहीं है कि आधार की जो पहिले ऊर्ध्व शक्ति के प्रति उन्मुखता थी वह उतनी की उतनी ही वापिस आ जाएगी, क्यों कि मेरा अनुभव तो यह है कि साधना में बाधाओं से परिपूर्ण अन्तः कलह के समय के बाद प्रायः नवीन और अधिक विशाल उन्मुखता आती है, अधिक विशाल और व्यापक चेतना जागृत होती है और पहिले जो प्राप्ति हुई थी, पर देखने में जो नष्टप्राय हो चुकी थी, उसकी अपेक्षा साधक ज्यादा आगे बढ़ जाता है। साधना की प्रगति में सदा बाधक होती रहने-वाली केवल एक ही चीज़ है और वह है दिल की सचाई और एकनिष्ठता की खामी। लेकिन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह आवश्यक नहीं हैं कि यह भी हमेशा बनी रहे, क्योंकि यह भी बदली जा सकती है। पर यह बाधा तुम्हारे अन्दर नहीं है, योग-साधन में अपूर्णता ही कोई बाधा हो तो कोई भी मनुष्य साधना में सफल न हो सके, क्योंकि सभी अपूर्ण हैं। मेरे अनुभव के अनुसार तो बहुत बार जिनमें योग-साधना की सब से अधिक योग्यता होती है, उनमें अपूर्णता भी सब से ज्यादा होती है या रह चुकी होती है। सुकरात ने अपने चरित्र के विषय में जो टीका की थी, शायद तुम उसे तो जानते ही होगे; बहुत-से योगियों की प्रारम्भिक प्रकृति के बारे में भी यही कहा जा सकता है। योग-साधना में जो तत्त्व सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है, वह तो है दिल की सचाई और एक-निष्ठता, और उसके साथ ही साथ अपने मार्ग पर डटकर चलते रहने का धैर्य भी साधक में होना ही चाहिये। बहुतेरे इस धैर्य के बिना भी यात्रा के अन्त तक पहुँच जाते हैं; क्योंकि विरोध, अधीरता, निरुत्साह, निराशा, क्लान्ति, कुछ समय के लिए श्रद्धा का अभाव इन सब के होते हुए भी साधक की बहिर्मुख चेतना की अपेक्षा कहीं अधिक बलवती कोई शक्ति—आत्मा की शक्ति और अन्तरात्मा की आध्यात्मिक क्षुधा—उसे आगे बढ़ाये लिये जाती है और अज्ञान के तिमिरा-वरणों तथा नीहारों को चीरती हुई उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचा देती है। यह तो ठीक है कि अपूर्णताओं में साधक ठोकरें भी खाता है और गिरता भी है, पर फिर भी यह कोई स्थायी रुकावटें नहीं हैं। साधक की प्रकृति में कोई भाग साधना का विरोधी हो जो अज्ञान-तिमिर में छिपा हुआ हो तो वह प्रगति को धीमा करने में ज़्यादा कारण बन सकता है, पर यह कठिनाई भी स्थिर नहीं है।

तुम्हारे अन्दर मन्दता लम्बे अर्से तक चलती है; लेकिन यह भी तुम्हारे लिए अपनी शक्ति में या अपने आध्यात्मिक भविष्य के बारे में श्रद्धा न रखने का कोई कारण नहीं। मैं समझता हूँ कि अंधकारमय और ज्योतिर्मय काल लगभग सभी योगियों की साधना में आया करते हैं। इसके अपवाद न के बराबर ही होंगे। हमारी अधीर प्रकृति को खेलनेवाले इस चक्र, (इस घटना) के कारण दो हो सकते हैं। पहिला तो यह कि ऊपर से आनेवाले आनन्द, शक्ति या ज्योति के सतत स्रोत को सहन करने में और उसे धारण करके अपने अन्दर घटाने में मानव-चेतना अशक्त होती है। इस आध्यात्मिक पाचन-क्रिया में समय लगता है और यह क्रिया बाह्य-चेतना की सतह के नीचे, पर्दे के पीछे होती है। जो अनुभूति या जो नई चेतना ऊर्ध्व-भूमिका में से साधक की चेतना में आई हो, वह इस पर्दे के पीछे छिप जाती है और बहिर्मुख चेतना को कुछ समय यूँही खाली पड़ा रहने देती है और इस प्रकार नई अनुभूति के योग्य बनाती है। साधना में अधिक प्रौढ़ता आने पर तो यह अन्धकारमय काल भी अल्पजीवी हो जाता है; और उतना कठिन नहीं रहता। एक ऐसी महत्तर चेतना का ख्याल जो यद्यपि तात्का-लिक प्रगति को साधती नहीं दिखाई देती, फिर भी स्थिर रहती है और बाह्य प्रकृति को टिकाए रखती है, साधक को हल्का रखती है। इस मन्दता का दूसरा कारण प्रकृति का विरोध है। अर्थात् साधक की प्रकृति में कोई ऐसा तत्त्व होता है जिसे ऊर्ध्वचेतना के अवतरण का भान ही नहीं या जो इस अवतरण के लिए तैयार नहीं। वह अपने अन्दर हेर-फेर करने और परिवर्तन करने की अनुमति नहीं देता। बहुत बार यह विरोध मन या प्राण की गढ़ी हुई प्रबल आदतों या शरीर की जड़ता की ओर से उठा करता है और साधक की प्रकृति का अङ्ग नहीं होता। यह भाग प्रकट या प्रच्छन्न रूप से कठिनाइयाँ और बाधाएँ उपस्थित करता रहता है। यदि कोई अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्दर इस कारण को ढूँढ़ सके, उसे पहिचानकर, उसके कार्यों को देखे और उसे दूर करने के लिए दिव्य शक्ति का आवाहन करे तो यह मन्दता का काल बहुत छोटा किया जा सकता है और उसकी तीव्रता भी कम हो जाती है। लेकिन चाहे कुछ क्यों न हो प्रभु की दिव्य शक्ति तो पीछे से अपना कार्य करती ही रहती है और एक दिन, शायद जब उसकी कोई आशा भी न हो, सब बाधाएँ हट जाती हैं, काले-काले बादल छँट जाते हैं और फिर से ज्योति और प्रकाश के दर्शन होते हैं। जो बन पड़े तो ऐसे समय सर्वोत्तम बात यह है कि साधक न तो फूले और न निराश हो; अपितु अन्तर से स्थिरता के साथ अपना सदाग्रह जारी रखे, अपनी चेतना को प्रभु के प्रति उन्मुख रखे, भगवान की ज्योति में की राह में अपने-आप को बिछा दे और उसके आने की प्रतीक्षा करे। मेरा अनुभव है कि ऐसा करने से यह अग्नि-परीक्षा जल्दी पार हो जाती है। जब बाधायें दूर हो जायें तो मालूम होता है कि जबरदस्त प्रगति हो चुकी है और अब चेतना पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक ऊर्ध्व चेतना को स्वीकार करने और धारण में समर्थ है। आध्यात्मिक जीवन की प्रत्येक परीक्षा और प्रत्येक कठिनाई का बदला अवश्य मिलता है।

× × ×

यह ती ठीक है कि भगवान् की दिव्य शक्ति को पहिचानने और अपनी प्रकृति का उसके साथ समवाय करने के लिए अपनी प्रकृति की अपूर्णताओं को स्वीकार करना और जानना आवश्यक है; लेकिन फिर भी इन अपूर्णताओं पर या उनकी पैदा की हुई कठिनाइयों पर अतिशय बल देने की वृत्ति भी गलत है। अपने मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों के कारण भगवान के कार्य में अविश्वास करना या सदा हरएक चीज़ के अन्धेरे पहलू पर ही ज़ोर देते रहना भी गलत तरीका है। ऐसा करने से त्रुटियों का बल और बढ़ता है तथा उन्हें हमेशा डटे रहने का अधिकार मिलता है। मैं डा० कूए की तरह अत्यधिक आशावादी वृत्ति रखने के लिए आग्रह नहीं करता यद्यपि अति-आशावाद अति निराशावाद की अपेक्षा ज्यादा सहायक है। कूए का अति आशावाद कठिनाइयों को ढक देना चाहता है उन्हें दूर नहीं करता। सभी बातों में एक प्रमाण तो रखना ही चाहिये। तुम्हारी बाबत मुश्किलों को ढककर अति आशामय स्वप्नों द्वारा अपने-आपको धोखा देने का सवाल ही नहीं उठता; तुम्हारे सम्बन्ध में तो इससे उल्टी बात है। तुम तो सदा अन्धकार और छाया पर ही ज्यादा ज़ोर देते रहते हो और इस प्रकार अंधकार को ज्यादा गाढ़ कर देते हो; और प्रकाश में आ सकने के जो रास्ते हैं उन्हें भी ढक देते हो। श्रद्धा रखो; अधिक से अधिक श्रद्धा रखो अपनी भावी शक्यताओं पर और पर्दे के पीछे से काम करनेवाली शक्ति पर श्रद्धा रखो। अपने अन्दर होनेवाले कार्य में और अपने-आप आते हुए पथप्रदर्शन में श्रद्धा रखो।

कोई भी महान कार्य ऐसा नहीं—और आध्यात्मिक-क्षेत्र में तो अवश्य ही—जिसमें गम्भीर कठिनाइयाँ बार-बार आग्रह-पूर्वक उठती न हों या जिसमें इन मुसीबतों का सामना न करना पड़ता हो। ये बाधाएँ आन्तरिक और बाह्य दोनो ही प्रकार की होती हैं। सामान्य रूप से मूलतः सभी के लिए एक जैसी हैं, फिर भी इनके बल के अनुसार या बाह्य-स्वरूप में भिन्न-भिन्न लोगों की कठिनाइयों में बहुत भेद होता है। पर भगवान की दिव्य ज्योति और दिव्य शक्ति के कार्यों के साथ अपनी प्रकृति का समवाय कर सकना असली कठिनाई है। इस कठिनाई को हल करके ही अन्य सब कठिनाइयाँ और मुश्किलें या तो लुप्त हो जायँगी या बहुत गौण रह जायँगी। जो कठिनाइयाँ ज्यादा सामान्य प्रकार की हैं और मौलिक रूप से रूपान्तर की राह में आड़ी आने-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाली होने की वजह से ज्यादा लम्बे अर्से तक टिकी रहती हैं, वे रहेंगी तो भी इतनी असह्य न मालूम पड़ेंगी, क्योंकि तब तो तुम्हें सहायता देनेवाली शक्ति का भान और उसके पीछे चलने की शक्ति भी अधिक प्राप्त हो जायगी।

× × ×

अपने पर आक्रमण करनेवाली कठिनाइयों तथा कुवृत्तियों का मुकाबिला करने में तुम उन्हें अपनी ही प्रकृति का भाग गिनने और आवश्यकता से अधिक उन्हें उनके साथ तादात्म्य पैदा करने की गलती कर रहे हो। ज्यादा अच्छा तो यह है कि तुम अपने-आपको उनसे अलग कर लो और उनके साथ किसी प्रकार का कोई सम्पर्क न रखो। तुम्हें चाहिये कि उन्हें विराट् की अपूर्ण और अशुद्ध निम्न प्रकृति की वृत्तियाँ समझो जो बाहर से तुम्हारे अन्दर घुस रही हैं और जो अपना आविर्भाव करने के लिए तुम्हें अपना हथियार बनाना चाहती हैं। इस प्रकार इनसे अलग होकर और इनके साथ किसी प्रकार का सम्पर्क न रखने से तुम्हारे लिए अपने-आप को ढूँढना सरल हो जायगा और तुम अधिकाधिक अपने अन्दर—अपनी अन्तरात्मा में—रह सकोगे। प्रकृति में से आनेवाली यह वृत्तियाँ न तो अन्तरात्मा पर हमला कर सकती हैं और न ही उसे कष्ट दे सकती हैं। अन्तरात्मा को यह वृत्तियाँ विजातीय लगती हैं और वह अपने आप इन्हें अनुमति देने से इंकार करता है। वह अपने-आप को सदा प्रभु-परायण या प्रभु की दिव्य शक्तियों और चेतना की ऊर्ध्व भूमिकाओं के साथ एक अनुभव करता है। अपने अन्दर रहने-वाले इस अन्तरात्मा को ढूँढ निकालो और उसकी चेतना को धारण करो। यह कर सकना ही साधना की सच्ची प्रतिष्ठा है।

इस प्रकार प्रकृति की क्रियाओं के पीछे खड़े रहने से, चेतना की सतह पर होनेवाली गड़बड़ों के पीछे खड़े रहने से—तुम्हें अपने अन्तरात्मा के अन्दर एक स्थिर, अक्षुब्ध अवस्था सरलता से प्राप्त हो सकेगी। इस स्थिर अवस्था में प्रतिष्ठित होकर तुम ज्यादा प्रभावात्मक रीति से अपने को मुक्त करने के लिए ऊपर की शक्तियों का आवाहन कर सकोगे। प्रभु की दिव्य उपस्थिति, स्थिरता, शान्ति, शुद्धि, शक्ति, ज्योति, आनन्द और विशालता आदि तुम्हारे अन्दर अवतरण करने के लिए प्रतीक्षा में हैं। प्रकृति के पीछे रहकर अचञ्चलता प्राप्त करो, तुम्हारा मन भी अधिक अचञ्चल हो जायेगा और अचञ्चल मन द्वारा तुम पहिले पवित्रता तथा शान्ति और फिर दिव्य शक्ति का आवाहन कर सकते हो। यह शान्ति और पवित्रता जब अपने अन्दर अवरोहण करती मालूम पड़ने लगे तो उसका बार-बार आवाहन करो, यहाँ तक कि वह तुम्हारी चेतना में पैठने लगे। तुम्हें अपने अन्दर क्रियाओं में परिवर्तन करती हुई और चेतना का रूपान्तर करती हुई दिव्य शक्ति का भी अनुभव होगा। (क्रियाओं में परिवर्तन करने का रूपान्तर करने के काम में लगी हुई दिव्य शक्ति का भी अनुभव होगा)। उसके इस कार्य में तुम्हें मा की उपस्थिति तथा उसकी शक्ति का भी अनुभव होगा। एक बार इतना हो जाये तो फिर बाकी सब काम तो समय आते ही हो जायँगे, तुम्हारे अन्दर तुम्हारी सच्ची और दिव्य प्रकृति के विकास का प्रश्न रह जायेगा।

× × ×

यदि ध्यान करते हुए यह मुश्किल पेश आती हो कि मन में हर तरह के विचार उठते रहते हों तो यह किन्हीं विरोधी शक्तियों के कारण नहीं है; अपितु मानव-मन की सामान्य प्रकृति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यही है। सभी साधकों के सामने यह कठिनाई पेश आती है और बहुतों में यह लम्बे अर्से तक चलती है। इससे छुटकारा पाने के कई तरीके हैं, एक उपाय तो यह है कि विचारों की तरफ़ देखते रहो, और यह विचार किस प्रकार का मानव-मन दर्शाते हैं, 'इसका सूक्ष्म अवलोकन करो, पर उन्हें किसी प्रकार की अनुमति न दो और जब तक वे अपने-आप थककर, रुक न जाएँ तबतक इन्हें दौड़ लगाने दो, स्वामी विवेकानन्द ने अपने राजयोग में यही विधि बताई है, दूसरा तरीका यह है कि विचारों को अपना मत समझो। उनसे स्वतन्त्र साक्षी पुरुष के रूप में उन्हें देखो और अपनी अनुमति देने से इंकार करो। इस विधि में विचारों को बाह्य प्रकृति में से आनेवाला, अपने साथ कोई सम्बन्ध न रखनेवाला, जिसमें तुम्हें कोई रुचि नहीं है, ऐसा पथिक समझा जाता है जो तुम्हारे मनोमय आकाश में से गुजर रहा है। इस प्रकार करने से प्रायः साधक का मन दो भागों में बँट जाता है। एक मनोमय भाग मनोमय साक्षी-रूप पुरुष का बना हुआ जो प्रकृति को देखता है, जो पूरी तरह अक्षुब्ध और स्थिर रहता है और दूसरा वह भाग जो इस पुरुष चेतना की दृष्टि का क्षेत्र होता है और जिसमें से होकर विचार गुजरते रहते हैं, वहीं भटकते रहते हैं। इसके बाद साधक प्रकृति भाग को भी नीरव और स्थिर करने में लग सकता है। तीसरी विधि सक्रिय है। इसमें साधक को यह शोध करनी होती है कि विचार कहाँ से आते हैं और वह इस सत्य को ढूँढ़ निकालता है कि ये विचार उसके अन्दर से नहीं, अपितु मानो सिर के बाहर से आते हैं। यदि साधक इन्हें अपने अन्दर आते हुए ही पकड़ पाये तो उन्हें प्रविष्ट होने से पहिले ही उठाकर एकदम दूर फेंक देना चाहिये। पर शायद यह सब से कठिन विधि है और हर एक ऐसा कर सके, यह सम्भव नहीं। पर यदि कोई ऐसा कर सके तो नीरवता प्राप्त करने का यह छोटे से छोटा और अधिक से अधिक समर्थ उपाय है।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुछ भ्रान्तियाँ

[अम्बालाल पुराणी]

[जन-साधारण में योग के बारे कितनी अधिक गलतफहमियाँ फैली हुई हैं। खास कर हिन्दी भाषा-भाषी जनता तो श्रीअरविन्द के योग के विषय में बहुत कम जानती है। साधना की उपयोगिता क्या है, साधक जनहित के काम से अलग क्यों प्रतीत होता है, संसार के बड़े-बड़े प्रश्नों को छोड़कर वह भगवान की प्राप्ति में ही क्यों लगा रहता है—आदि प्रश्नों का उत्तर इस लेख में दिया गया है। इसके पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि श्रीअरविन्द के योग में कर्म का कितना महत्त्व-पूर्ण स्थान है। जहाँ कर्म पर इतना जोर दिया जाता हो, निष्क्रियता या निठल्लेपन को वहाँ फटकने की भी हिम्मत हो सकती है? पुराणीजी का यह लेख मननीय है।—सं०]

योग-साधन की उपयोगिता, उसके हेतु और उसकी पद्धतियों के विषय में हमारे समाज के एक बड़े भाग में बहुत-सी अकारण और कुछ आंशिक रूप में साधारण शङ्काएँ और ग़लतफहमियाँ फैली हुई हैं। साधना करनेवाले को ऐसे प्रश्न बहुत ही ओछे प्रतीत होते हैं और सामान्यतः वह इन्हें हल करने की ओर प्रवृत्त नहीं होता। जब सिर पर आ ही पड़े तो व्यक्ति प्रसंग-वातावरण आदि के अनुकूल तर्क करके ही वह सन्तुष्ट हो जाता है, पर इसीसे सामान्य आदमी के मन का समाधान बहुत बार नहीं होता और गलत-फहमियाँ बढ़ती जाती हैं। आखिरकार थककर जब उन्हें कुछ समझ में नहीं आता, तो वे यही मान लेते हैं कि इसमें समझने की कोई बात है ही नहीं। उधर साधक यह मान बैठता है कि जिन प्रश्नों का हल सामान्य जीवन बितानेवाला समझ नहीं सकता, उन्हें चाहे वह कितनी भी अच्छी तरह क्यों न समझाये फिर भी वह इन दुनियादारों के गले से न उतार सकेगा। विषय-भोग के कीड़े आध्यात्मिक आनन्द की शक्यता या आत्मानन्द की दिव्यता को कहाँ से समझ सकते हैं? साधक यह सोच-कर कि एक समय था जब वह भी ऐसे ही भ्रमों में फँसा हुआ था, औरों को समझाने के बजाय यह सोचने लगता है कि जैसे प्यासा कुएँ के पास जाता है, उसी प्रकार मानव भी प्रभु के पास जायेगा और जरूर जायेगा, दोनो में एक प्रकार का झूठा आत्म-सन्तोष व्याप रहा है।

साधना की उपयोगिता के विषय में विचार करने से पहिले देखना यह है कि जैसे हम भूख-प्यास जैसी शारीरिक जीवन की आवश्यकताओं के बारे में दलीलें करते हुए समय नहीं गँवाते वैसे ही आध्यात्मिक-आत्मा की भूख के बारे में कहा जा सकता है। साधक के जीवन में

[१०५४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साधना एक आवश्यक अङ्ग बन चुकी होती है। श्री माताजी ने एक जगह क्या ठीक कहा है—'प्रभु तुम्हारे जीवन का एक मात्र—अनेक में से एक नहीं—उद्देश्य है', 'उसके बिना जीना तुम्हें असम्भव लगता है।' इतनी बड़ी आवश्यकता उपयोगिता-विषयक चर्चा की प्रतीक्षा में ठहरी न रहेगी, यह तो स्पष्ट है।

पर हमारा जमाना इतनी आसानी से साधक का पिण्ड छोड़ दे, यह तो सम्भव नहीं। आज तो प्रत्येक व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चञ्चुपात करने का हक समझता है। इसमें उसका कोई दोष भी नहीं है। बुद्धि-विकास के समय उसके आगे बरसाती कीड़ों की तरह नये-नये प्रश्न उपस्थित होते जाते हैं।

अर्थ को मानव-जीवन का केन्द्र मानकर बाकी सब चीजों का आर्थिक गठन करने वाले नवीन समाज के विधाता, अर्वाचीन मनु और याज्ञवल्क्य मानव-जीवन में प्रभु को पैर रखने के लिए भी स्थान नहीं दे सकते। इनके पास तो सर्वशक्तिमान की अशक्तियों की एक लम्बी फेहरिस्त तैयार है। प्रभु निरुपयोगी है (अर्थशास्त्र की दृष्टि से), इतना ही नहीं जगत के यह त्राता तो कहते हैं कि वह अफीम की भाँति हानिकर है और जितनी जल्दी उसके पंजे से छूटेगा, उतनी ही जल्दी उसके दुःख और क्लेश नष्ट हो सकेंगे।

इन लोगों को चुप करने के लिए दलीलों की ज़रूरत नहीं। एक-आध ज्वलन्त उदाहरण चाहे वह रामकृष्ण परमहंस हों या रमण महर्षि ही काफ़ी है।

कई बार कट्टर विरोधी थोड़ा-बहुत पक्ष लेनेवाले की अपेक्षा अच्छे होते हैं। 'भई मैं तो ईश्वर के विषय में तुम से ज्यादा ही जानता हूँ, पर जब जमाने के सामने इतने बड़े-बड़े प्रश्न खड़े हों, तब भला योग-साधना चल कैसे सकती है?' इस प्रश्न में कितना अज्ञान भरा है। ऐसा प्रश्न करनेवाले योग अथवा मानव-जाति के वास्तविक प्रश्नों से कितने अनभिज्ञ हैं।

'साधना-साधना क्या लगा रखी है, मानव-जीवन में काम आनेवाले तो यही चार-पाँच मोटे-मोटे नियम हैं—चोरी न करो, शराब न पियो, झूठ मत बोलो; पर क्या एक चोरी, मदिरापान और असत्य भाषण न करनेवाला कभी रामकृष्ण परमहंस की बराबरी कर सकता है। यह तो ठीक है कि इस प्रकार के सर्व-सामान्य नियमों का पालन करने से व्यक्ति प्रभु का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बन सकता है, पर यह भी ठीक है कि इतने में ही परमात्म-ज्ञान की इतिश्री नहीं हो जाती।

यह तो एक 'अंध कुवाँ' है, पर किसके लिए? मानव के मन के मिथ्या प्रयत्नों के लिए, चेतना के लिए या अन्तरात्मा के लिए नहीं। यह सारा बखेड़ा मानव के मनघड़न्त विचारों का है। रामकृष्ण परमहंस के शब्दों में भोजन से पहिले पहिले बहुत गाल बजाये जाते हैं, पर भोजन शुरू होते ही चुप्पी साधनी पड़ती है। इसी प्रकार यह सारे झगड़े साधना का आस्वाद करते ही समाप्त हो जाते हैं।

पर यह बात भी आज के समाज को तसल्ली देनेवाली नहीं। 'अरे भई चुप-चाप निठल्ले बैठकर हम योग-साधन कर रहे हैं' की रट लगाने से क्या लाभ, कुछ लोकोपकार का काम करो न।' कई लोग बेचारे साधक पर तरस खाने लगते हैं। कहते हैं कि वह व्यर्थ जीवन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नष्ट कर रहा है। पर यही लोग प्रतिदिन तापमान देखते रहने और उसके कोष्टक तैयार करने, अर्थशास्त्र के आँकड़े तैयार करने या बच्चों के सिर नाप-नापकर उनके कोष्टक तैयार करने को उपयोगी कार्य गिनते हैं, लेकिन अन्तर-चेतना का अवलोकन तथा उसके संचालन में हेर-फेर करने के प्रयत्न उन्हें व्यर्थ लगते हैं।

कच्ची सहानुभूति रखनेवाला यहीं पर कह उठता है—यह तो हम भी मानते हैं कि अन्तर प्रगति करनी चाहिये ; पर यह किसने बताया कि वह केवल योग से ही हो सकती है। इसके जवाब में तो यही कहा जा सकता है कि सारी प्रगति योग ही तो है। श्रीअरविन्द ने पूर्ण योग के विषय में लिखते हुए शुरू में ही कहा है—All life is yoga समग्र जीवन ही योग है ; पर इसका मतलब यह नहीं कि सभी योगी हैं या योग कर रहे हैं। सारा जीवन योग तो है, पर किसका ? प्रभु की ओर अनन्त प्रकार से गति करती हुई प्रकृति का। जो इस गति की दिशा को जानते हैं, उसके हेतु को समझते हैं या इसके लिए जागृत रूप से प्रयत्न करते हैं, उसके अन्तिम उद्देश्य के साथ तादात्मा पैदा करते हैं, वे योगी हैं, बाकी प्राकृत मानव। हमारे चारों ओर की वायु में वाष्प तथा विद्युत दोनों विद्यमान हैं, पर केवल इसी से न तो कोई मशीन चल सकती है और न रोशनी हो सकती है। इसी प्रकार अज्ञान के कारण प्रत्येक व्यक्ति के योग से लाभ नहीं उठा सकता।

इस सबका अर्थ यह नहीं है कि केवल साधना करनेवालों ने ही प्रगति का ठेका ले रखा है। श्रीकृष्ण भगवान तो कहते हैं—

न हि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

जो अपना सारा जीवन साधना में तो नहीं लगाते पर यथाशक्ति उच्च जीवन बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे भी उन्नति कर रहे हैं। इसलिए साधना न करनेवाला किसी प्रकार भी साधना करनेवाले से नीचा नहीं ठहरता।

'लेकिन जब संसार में इतनी जटिल समस्याएँ उपस्थित हों, तब योग के लिए अवकाश कहाँ है।' वास्तव में योग तो सारी समस्याओं का पूरी तरह से हल करनेवाला उपाय है। बाकी सब उपाय तो केवल थिगड़े लगाने या मरहमपट्टी करने की नाईं हैं। योग इन सब व्याधियों को दूर करने के लिए रामबाण है। श्रीअरविन्द ज्ञानयोग पर लिखते हुए १८ वें अध्याय में कहते हैं, 'मुक्तात्मा या सिद्ध के लिए यह असम्भव है कि वह दुःखी और दीनबन्धुओं की तरफ़ से उदासीन रहे, क्योंकि उसे तो इन दुःखी और अज्ञानी लोगों के अन्दर भी अपनी ही आत्मा व्याप्त दिखाई देती है। अपने-आप अज्ञान और दुःख से मुक्ति पाकर वह स्वाभाविक रूप से औरों को भी इसी ओर खींचता है। एक तरफ वह स्वयं और दूसरी तरफ़ और सब जगत और इन दोनों के बीच में कोई अज्ञानमय सम्बन्ध अर्थात् ईश्वर को अलग रखकर स्थापित किया हुआ किसी प्रकार का सम्बन्ध तो मुक्तात्मा में असम्भव है। इसी कारण कोई पार्थिव सम्बन्ध या उच्च परोपकार वृत्तिवाले सम्बन्ध से मुक्तात्मा परिमित नहीं हो सकता। उसकी आध्यात्मिक स्थिति की पराकाष्ठा दूसरों के लिए अपने-आपको अर्पित कर देने या अपने-आपको दूसरों के भोग के लिए दे देने में नहीं, अपितु ईश्वर-प्राप्ति करने में, मुक्ति पाने में और दिव्य आनन्द हासिल करके अपने-आपको कृतकृत्य कर देने में है। उसका उद्देश्य अपने-आप सिद्धि प्राप्त करना और दूसरों को भी पूर्ण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या सिद्ध बनाना होता है। क्योंकि केवल ईश्वर से ही, ईश्वर-प्राप्ति से ही मानव-जीवन के सब क्लेशों का अन्त हो सकता है। जिससे मानव प्रभु की ओर उत्थान करे ऐसी प्रवृत्ति सारी मानव-जाति की सहायता करने का सर्वोत्तम और फलदायक उपाय है।

× × ×

साधना करनेवाला जानता है कि मानव-जीवन के प्रश्न वास्तव में मानव-प्रकृति के ही प्रश्न हैं। जीवन में आमूल परिवर्तन करना हो तो इधर-उधर कुछ थोड़े-बहुत सुधार कर देने से दो-चार दस-पाँच थिगड़े लगा देने से काम नहीं चल सकता, उसे दीखता है कि इसके लिए तो मानव-चेतना का एकदम रूपान्तर ही करना होगा। मानव-जाति का इतिहास उसे बुद्धि की परिमितता दिखाता है। उसे स्पष्ट दीखता है कि हजारों वर्ष बुद्धि लड़ाने के बाद भी समस्याएँ बढ़ती ही जाती हैं और वह नये-नये गोरखधंधे पैदा होते जाते हैं, ऐसी अवस्था में उसे यह आवश्यक लगता है कि बुद्धि से परे चेतना की किसी अन्य अवस्था द्वारा इन समस्याओं का हल ढूँढ़ने का यत्न करे। उस स्थिति के मिलने तक वह अपने कर्म बन्द तो नहीं करता; पर हाँ अपनी मर्यादा में रहकर ही कर्म करता है। इसमें भीरुता का कोई स्थान नहीं है।

कहा जाता है कि समाज में रहनेवाले को समाज के लिए भी कुछ न कुछ तो करना ही चाहिये। आध्यात्मिक जीवन को अपना ध्येय बना लेनेवाला सामान्य सामाजिक हेतुओं का—अर्थ और कामना का—परित्याग कर देता है। अतः समाज के बन्धन उस पर लागू नहीं हो सकते। समाज को उन्नत करना तो उसे आवश्यक लगता है; पर कोई समाज कभी समाज के रूप में शायद ही प्रगति करता हो। प्रायः व्यक्ति ही समाज को उन्नति के पथ पर ले जाते हैं और अवनत होने से बचाते हैं। व्यक्ति का विधान तो अन्दर से ही आता और यदि अन्दर का विधान बाह्य विधानों का विरोधी हो तो साधक उन्हें तोड़कर भी, समाज का विरोध करता हुआ भी, उसे आगे बढ़ाता है। श्री चैतन्य देव के जीवन में ही कितने नास्तिक बन गये, कितने लुटेरे सन्त बन गये और बँगला-साहित्य की कितनी अभिवृद्धि हुई।

कहा जाता है कि धर्म, अन्तर विकास, योग-साधना आदि का लाभ तो सभी को मिलना चाहिये, साधु सन्त और महात्मा स्वयं ज्ञान प्राप्त करके जनहित के लिए कितना-कितना करते थे। यह बात है तो कुछ-कुछ ठीक; पर क्या कोई कट्टर से कट्टर प्रजासत्ता और समानता का पोषक भी यह प्रतिपादित कर सकता है कि योग-साधना में अधिकार का स्थान नहीं है। कितने धर्म-प्रचारक और धर्म-प्रवर्तक हो गये, जिन्होंने बहुत-से विधि-निषेधात्मक सूत्र बना दिये; पर उन्हीं के अनुयायी इन सब नियमों को जानते हुए भी उनका उल्लंघन करते हैं। इन नियमों को करनेवाली वृत्तियाँ बहुत प्रबल हैं और वे केवल जोर-जोर से उपदेश दे लेने से नष्ट नहीं हो जायँगी। योग-साधन करनेवाला यथा-शक्ति इन नियमों का पालन करता है और उन्हें अपने आचरण द्वारा प्रसारित करता है।

प्रत्येक व्यक्ति अमुक रीति से ही, जन-समाज की इच्छा के अनुसार ही सेवा करे ऐसी माँग करना तो कुछ ज्यादती है। प्रत्येक राजनैतिक दल और नेता भी अपनी रीति से, अपने ही सिद्धान्तों के पीछे चलकर सेवा करते हैं, फिर योगी से ही यह सवाल क्यों किया जाता है कि वह औरों के पथ पर क्यों नहीं चलता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन दलीलों से ज़रा ज्यादा गहराई में जाकर देखें कि आखिर यह 'परोपकार', 'सेवा', 'जनहित', 'मानव जाति की सेवा' इत्यादि दूसरों के हित की प्रवृत्ति 'अहं' तथा 'मम' की प्रवृत्ति से कुछ अधिक भी है ? किसी ने कहा है कि परोपकारी धनाढ्यों की दानवृत्ति अधिकतर दूषित हुआ करती है ; क्योंकि इनकी उदारता बहुतों की निर्धनता और गरीबी की भित्ती पर खड़ी होती है और इनकी उदारवृत्ति के प्रकट होने के लिए आवश्यक है कि दूसरों में गरीबी भी रहे, बहुतेरे धनाढ्य अपनी दानशीलता के ही बल पर गरीबों का शोषण करते हैं। उन्हें अपनी वर्तमान स्थिति में ही सन्तुष्ट रहने के लिए प्रेरित करते हैं जिससे कि वे मानवता के विशाल अधिकारों की माँग न करें।

स्वामी विवेकानन्द एक जगह कहते हैं कि जगत तो एक ढहते हुए घर की नाईं है जबतक एक जगह मरम्मत की जाय तबतक वह दूसरी ओर से गिरने लगता है। मुश्किल तो यह है कि जो बात एक समय, एक समाज में हितकर उत्तम और इष्ट लगती है वही अन्य समय या अन्य समाज में हानिकारक और त्याज्य बन जाती है।

आज तक संसार में जो व्यवस्थित दानवृत्ति चली आई है, वह दरिद्रता में ज़रा भी कमी नहीं कर पाई। इन सब बातों से यही लगता है कि कोई बाह्य कर्म जगत के दुःखों को दूर कर सकेगा, यह विचार यकतरफा है। सुख या दुःख का आधार बाह्य परिस्थितियों पर नहीं, आन्तरिक अवस्था पर है। विपुल धनराशिवाला भी दुखी और दीन हो सकता है और अकिंचन त्यागी भी सुखी हो सकता है। शायद यह दावा नहीं किया जा सकता कि बाह्य जीवन के अन्दर परिवर्तन में सुखी रहने की शक्ति में वृद्धि होगी।

× × ×

इसी प्रकार जन-साधारण में यह धारणा बहुत प्रचलित है कि योग और खासकर श्रीअरविन्द के योग का कर्म के साथ कुछ बैर है, दुनिया से और कर्म से दूर भागकर ही साधना की जा सकती है। पर यह एक भ्रम है और सर्वथा निर्मूल है। लेख लम्बा तो हो जायेगा, पर विषय की आवश्यकता को देखते हुए हम यहाँ श्रीअरविन्द के कुछ पत्रों का उदाहरण देते हैं। ये पत्र अपने-आप अपना परिचय हैं।

'साधना करते हुए काम जारी रखने से आन्तरिक अनुभूति तथा प्रकृति के बाह्य विकास को समतुलित रखने में सहायता मिलती है। नहीं तो एकतरफापन पैदा हो जाता है और समतुलन तथा प्रमाण में खामी आ जाती है। भगवान के लिए कर्म करने की, कर्मयोग की साधना आवश्यक है ; क्योंकि वह अन्त में साधक को आन्तरिक प्रगति के बाह्य प्रकृति तथा जीवन में ढालने में सहायक होती है और इससे साधना की सर्वदेशीयता बढ़ती है।

× × ×

आध्यात्मिक दृष्टि से केवल वही काम पावन है जो किसी निजी अज्ञात हेतु, कीर्ति, जनता की आँखों में जँच जाने की इच्छा (जनता द्वारा प्रमाणित होने की इच्छा) या किसी दुनियावी बड़प्पन की कामना के बिना किया जाता है। जो कार्य मनवदन्त हेतुओं, प्राण की वासनाओं और दुराग्रह के बिना, स्थूल शरीर के पक्षपात से मुक्त रहकर, मिथ्या अभिमान या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भद्दे बड़प्पन और शेखी के बिना, किसी पद या मान की लालसा के बगैर, केवल भगवान की खातिर और भगवान की आज्ञा से किया जाता है, वही आध्यात्मिक दृष्टि से विशुद्धिकारक है। अहङ्कारमय भावना से किये गये कार्य, अविद्यामय जगत् में रहनेवाले सामान्य लोगों के लिये चाहे जितने हितकारी हों, पर योग के जिज्ञासु के लिए उनका कोई उपयोग नहीं।

× × ×

सामान्य मानव-जीवन से सम्बद्ध केवल ऐसा ही काम गिना जाता है जो निजी हेतुओं को साधने के लिए और किसी मानसिक और नैतिक संयम में रहकर कामनाओं को सन्तुष्ट करने के लिए और कभी-कभी किसी मानसिक आदर्श का स्पर्श करते हुए किया जाय। गीता के योग में सारे काम भगवान के लिए यज्ञ के रूप में करने, कामनाओं पर विजय पाकर अहङ्कार और कामना से रहित होकर, भगवान् की भक्ति, विराट् चेतना में प्रवेश, सब भूतों के साथ अद्वैत का साक्षात्कार करने तथा भगवान् के साथ एकता अनुभव करने का समावेश होता है। पूर्ण योग इसमें विज्ञानमय ज्योति और विज्ञानमय शक्ति का अवतरण तथा प्रकृति का रूपान्तर यह दो बातें और बढ़ा देता है।

× × ×

आत्म-समर्पण तुम्हारे कार्य के बाह्य-स्वरूप पर निर्भर नहीं है, अपितु काम चाहे किसी प्रकार का हो, सब कुछ इस बात पर आश्रित है कि तुम उसे किस भाव से करते हो। अच्छी तरह से, पूरी सावधानी के साथ, यज्ञ-रूप में भगवान् को समर्पित कर के किया गया कार्य कर्मयोग का साधन बन सकता है। ऐसा कार्य कामना-रहित और अहङ्कार-शून्य होकर किया गया हो, मानसिक समता, सुख और दुःख में एक समान प्रशान्त रहकर किया गया हो, एक मात्र भगवान के लिए ही किया गया हो, किसी वैयक्तिक लाभ, पुरस्कार या परिणाम की दृष्टि से नहीं, सब कर्म भगवान् की दिव्य शक्ति के ही हैं, इस भावना के साथ किये गये सब काम, कर्म द्वारा भगवान को आत्मसमर्पण करने में सहायक होते हैं।

× × ×

यदि अशक्ति, जड़ता और निष्क्रियता को स्वीकार कर लिया जाय तो पूर्णतया स्थूल पदार्थों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले और यंत्रवत् किये जानेवाले कार्य भी भली भाँति नहीं किये जा सकते। इसका उपाय यह नहीं है कि केवल स्थूल और यन्त्रवत् किये जानेवाले कार्यों में ही अपने-आप को बाँध दिया जाय, अपितु अशक्ति, निष्क्रियता और जड़ता को पूरी तरह से अपने में से निकाल फेंकना और अपनी चेतना को मा की ओर उन्मुख करना ही एक सच्चा इलाज है। यदि मिथ्याभिमान, महत्त्वाकांक्षा और मत्सर तुम्हारी राह में आड़े आयें तो उन्हें उखाड़ फेंको। अगर यह मानकर बैठे रहोगे कि ये दोष अपने-आप चले जायेंगे तो तुम इनसे कभी भी मुक्त न हो पाओगे। किसी कार्य को सम्पन्न होने के लिए यदि तुम केवल हाथ पर हाथ धरे प्रतीक्षा करते रहो तो वह हो ही कैसे? अक्षमता और निर्बलता यदि तुम्हारी राह के रोड़े बन रहे हों, तो जैसे-जैसे तुम मा के प्रति अपने-आप को खोलते जाओगे, वैसे-वैसे ही तुम्हारे कार्य के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आवश्यक सामर्थ्य और क्षमता की तुम्हें प्राप्ति होती जायगी—वे तुम्हारे आधार में बढ़ती जायेंगी।

× × ×

जो लोग पूरी तरह एक निष्ठा के साथ मा के लिये कार्य करते हैं, वे भले ही ध्यान करने न बैठें या योग की किन्हीं विशेष पद्धतियों का अनुसरण न करें तो भी अपने काम के परिणाम-स्वरूप सम्यक्-चेतना के अधिकारी बन जाते हैं। तुम्हें यह बताना आवश्यक नहीं है कि ध्यान कैसे किया जाय। यदि तुम काम में और हर समय एक निष्ठा के साथ, सच्चे दिल से मा की ओर को खुले रहोगे तो जिस-जिस बात की तुम्हें आवश्यकता होगी, वह स्वयमेव तुम्हारे पास आती जायेगी।

× × ×

चेतना को प्रभु की ओर उद्‌घाटित करना और काम में प्रभु की ओर उन्मुख होना एक ही बात है। ध्यानावस्था में जो दिव्य शक्ति तुम्हारी चेतना में काम कर रही होती है, और जब कभी तुम उसकी ओर उन्मुख होओ, वह तुम्हारी चेतना में से अविद्या-रूपी आवरणों और हर प्रकार की अव्यवस्था को दूर कर देती है, वही दिव्य शक्ति तुम्हारे कामों को अपना सकती है। केवल इतना ही नहीं कि वह तुम्हें अपने काम की त्रुटियों का भान करा दे, अपितु वह जो कुछ करना है, उसका ध्यान सतत जागृत-रूप से तुम्हारे अन्दर रख सकती है और कार्य के अनुष्ठान में तुम्हारे मन और हाथ को मार्ग दरशा सकती है। यदि अपने कर्म द्वारा तुम उस शक्ति के प्रति खुलने लगो तो इस मार्ग प्रदर्शन की अनुभूति बढ़ती जायेगी और अन्त में अपनी सब प्रवृत्तियों के पीछे तुम्हें मा की शक्ति का ज्ञान होने लगेगा।

× × ×

साधना की ऐसी कोई अवस्था नहीं है जिसमें काम करना असम्भव हो जाय। साधना की यात्रा में ऐसी कोई राह नहीं जहाँ धरती पर पैर धरना असम्भव हो तथा भगवान के ऊपर चित्त एकाग्र करने और कर्म करने में परस्पर इतना विरोध हो जाय कि कर्म का त्याग करना पड़े।

साधना करते हुए भी पैर तो हमेशा पृथ्वी पर ही रखने होंगे। पग रखने की प्रतिष्ठा का अर्थ है भगवान् पर भरोसा, अपनी चेतना, तपः शक्ति और तमाम शक्तियों को भगवान की ओर उन्मुख करना और भगवान को आत्म-समर्पण। इस भाव से किये गए सभी कर्म साधना में साधक हो सकते हैं। किसी एक-आध व्यक्ति के लिए थोड़े समय के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि वह ध्यानावस्था गहराइयों में डुबकी लगाकर कुछ समय के लिए काम बन्द कर दे या उसे गौण स्थान दे। पर यह तो एक आध खास व्यक्ति के लिये और वह भी कुछ समय का एकान्त-वास हुआ। कर्म को पूरी तरह बन्द कर देना और समस्त चेतना को पूरी तरह अन्दर खींच लेना बहुत ही कम अवस्थाओं में उपयुक्त हो सकता है। ऐसा करने से साधक केवल आत्मलक्षी—स्वानुभव रसिक—अनुभूतियों से बने अन्तराल प्रदेश में ही रह जाता है, उसकी स्वप्नसेवी अवस्था और एक तरफापन को उत्तेजना मिलती है। बाह्य जगत की स्थूल वास्तविकता पर या अन्तर की परम आध्यात्मिकता पर उसका कोई वश नहीं होता। ऊर्ध्व भूमिका का परम सत्य और जीवन में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसके साक्षात्कार में सम्बन्ध स्थापित कर अन्त में दोनो में एकता पैदा करना आत्मज्ञी, अनुभूतियों का सच्चा उपयोग है, पर यह साधक ऐसा करने में अशक्त होता है।

काम दो प्रकार का हो सकता है। साधना के लिए उपयोगी अनुभवों के क्षेत्र के रूप में किया गया काम, चेतना और उसकी क्रियाओं में प्रगतिशील संवाद (Prugressive harmonisation) और रूपान्तर करने के लिये किया गया काम ; और दूसरा वह जो भगवान का साक्षात्कार करने के बाद योगारूढ़ स्थिति में किया जाए। दूसरी प्रकार का कार्य तो तभी हो सकता है, जब साधक की पार्थिव चेतना में भी भगवान के साक्षात्कार का पूर्णतया अवतरण हो जाये, तब तक सभी काम आध्यात्मिक प्रयत्न के क्षेत्र और अनुभव की पाठशाला के रूप में होने चाहियें।

× × ×

मैंने भक्ति की कभी मनाही नहीं की। मुझे ध्यान नहीं आता कि मैंने कभी किसी समय ध्यान करने की मनाही की हो, मैंने तो अपने योग में भक्ति और ज्ञान दोनो पर जोर दिया है। हाँ, यह ठीक है कि मैंने शङ्कराचार्य या चैतन्य की तरह इनमें से किसी एक ही को सारा महत्त्व नहीं दिया है।

तुम्हें या किसी और साधक को जो-जो कठिनाई अनुभव होती है, उसमें वास्तव में भक्ति बनाम कर्म, बनाम ध्यान या कोई ऐसा प्रश्न उपस्थित नहीं होता। असली कठिनाई तो यह है कि कैसी मनोवृत्ति अपनाई जाये, किस दृष्टि-बिन्दु से देखा जाये।

यदि अभी तक काम करते हुए तुम भगवान का सतत स्मरण नहीं रख सकते तो कोई घबराने की बात नहीं है। कार्यारम्भ में भगवान का स्मरण और उन्हें समर्पण और काम के अन्त में भगवान का धन्यवाद—फिलहाल यही काफी है। अधिक करना हो तो काम के बीच-बीच में उनका स्मरण कर सकते हो। तुम अपने मन के एक ही भाग से काम करने और भगवान को स्मरण करने का प्रयत्न करते हो। मुझे यह कष्टप्रद और कठिन लगता है। न जाने सम्भव भी है या नहीं। जब लोग अपना कार्य करते हुए सतत स्मरण जारी रखते हैं (यह किया जा सकता है) तो वे प्रायः अपने मन के निचले स्तर से ही ऐसा करते हैं, अथवा धीरे-धीरे एक समय में दो विचार कर सकने की शक्ति पैदा हो जाती है, अथवा एक काम करनेवाली और दूसरी अन्तर में रह कर साक्षी भाव से देखने और भगवत स्मरण करने वाली द्विदल चेतना का आश्रय लेते हैं। एक और भी विधि है जिसे मैं बहुत काल तक करता रहा था—चेतना की ऐसी स्थिति प्राप्त की जाये जिस में काम अपने-आप होता चला जाये, हमारे विचार या मानसिक क्रियाओं का वहाँ दखल न हो और अन्तर की चेतना सारे समय भगवान में लीन और नीरव रहे। पर यह स्थिति जैसे सरल और अतन्द्रित—सतत जागृत अभीप्सा तथा तपःशक्ति के परिणाम-स्वरूप अथवा अन्तरात्मा को अपने उपकरण—प्रकृति—से जुदा रखने के अभ्यास से आती है, वैसे प्रयत्नों के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकती। यह निश्चित है कि चाहे वह बहुत समय क्यों न ले, परन्तु अभीप्सा और समर्पण करने की तपःशक्ति से मानव से महत्तर शक्ति का आह्वान करने की पद्धति महान् परिणाम ला सकती है। अपने मानसिक प्रयत्नों द्वारा सब काम करने की अपेक्षा, चेतना के पीछे या मनोमय भूमिका से परे की महान् शक्ति द्वारा काम करवा सकना साधना का एक बड़ा रहस्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। मेरा मतलब यह नहीं है कि मन की चेष्टा अनावश्यक है या इसका कोई परिणाम ही नहीं होता। भाव केवल यही है कि यदि मन सब कुछ अपने-आप ही करना चाहे तो आध्यात्मिक पहलवानों को छोड़कर औरों के लिए प्रयत्न बहुत कष्ट-साध्य होता है। हाँ, दूसरी राह भी कोई छोटी पगडण्डी नहीं है; जैसा कि मैं कह चुका हूँ, इसमें भी परिणाम आते-आते बहुत समय लग सकता है। हर प्रकार की साधना में धैर्य और दृढ़ सङ्कल्प तो आवश्यक है ही।

बलवान के लिए बल ठीक है, पर मानव-हृदय की अभीप्सा और उसके उत्तर में आनेवाली भगवत् कृपा भी कोरी कल्पनाएँ नहीं हैं—ये आध्यात्मिक जीवन की परम वास्तविकताएँ हैं।

× × ×

अहंकार और अविद्या में किये गये, अपने अहंभाव को सन्तुष्ट करने के लिए या राजसिक कामनाओं के वशीभूत होकर किये गये कामों को मैं (कर्म-योग की दृष्टि से) काम नहीं मानता। अविद्या के मुद्रारूप अहंकार, रजोगुण तथा कामनाओं से मुक्त होने के संकल्प के बिना तो कर्म-योग सम्भव ही नहीं है।

काम से मेरा मतलब परोपकार-वृत्ति या मानव-जाति की सेवा अथवा नैतिक और आदर्शमय कामों से भी नहीं है, जिन्हें मन, कर्म के गहन सत्य के बदले में उपस्थित किया करता है।

काम से मेरा मतलब है केवल वह काम जो भगवान के लिए, भगवान के साथ अधिकाधिक एकता प्राप्त करते हुए किया गया हो, जो एक-मात्र भगवान के लिए ही किया गया हो और किसी के लिए नहीं। जैसे शुरू में ध्यान की गहराइयों में उतरना, ज्योतिर्मय ज्ञान प्राप्त करना या सच्चा प्रेम और भक्ति प्राप्त करना सरल नहीं है, उसी तरह भगवान के लिए काम करना भी आसान नहीं—और यह स्वाभाविक है। लेकिन और चीज़ों की तरह इसके लिए भी सच्ची भावना और ठीक प्रवृत्ति के साथ प्रारम्भ करना चाहिये, बाकी सब अपने-आप आता जायेगा।

इस भाव से किये गये काम करनेवाले भक्ति और ज्ञान जैसे ही प्रभावोत्पादक और फलदायी होते हैं। कामना, रजोगुण और अहङ्कार का त्याग करने से साधक में अचञ्चलता और पवित्रता की स्थापना होती है। इस स्थिरता और पवित्रता में ही ऊर्ध्व भूमिका में से अनिर्वचनीय शान्ति का अवतरण हो सकता है। कर्म करते-करते अपनी तपःशक्ति को प्रभु की तपःशक्ति (सङ्कल्प Will) के साथ एक कर देने से अहङ्कार मर जाता है और साधक की चेतना विराट् में विस्तार पाती है, या विराट् से भी परे परात्पर पुरुषोत्तम-भाव में आरोहण करती है। साधक प्रकृति से पुरुष की भिन्नता (मुक्ति) का अनुभव करता है और बाह्य प्रकृत के बन्धनों से भी छुटकारा पा जाता है। कर्म-योग द्वारा साधक में अपनी अन्तरात्मा का भाव जागृति होता है और वह अपनी बाह्य प्रकृति को एक उपकरण के रूप में देखना सीखता है। इसके अपने काम खतम हो जाते हैं। उसे अनुभव होता है कि वास्तव में तो विराट् शक्ति ही सारे कार्य कर रही है। अन्तःकरण के पीछे से वह आद्यशक्ति उसके सारे कार्य कर रही है और उस पर नियन्त्रण कर रही है, इसकी उसे प्रतीति होती है। अपने सब संकल्प और कार्य भगवान को सदा समर्पित करते रहने से भक्ति और आश्चर्य भावयुक्त भक्ति बढ़ती है और अन्तरात्मा अपनी प्रकृति में आगे आ जाता है। इस ऊर्ध्व शक्ति को अपने सब कर्म अर्पित करते-करते साधक अपने ऊपर इसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुभव करने लगता है और इसके अवतरण को देखता है। उसे ज्ञात होता है कि वह किसी विस्तार पाती हुई चेतना और ज्ञान के प्रति खुलता जा रहा है। आखिरकार कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों में एक साथ एक-सी प्रगति होने लगती है और हम पूर्णयोग में जिसे प्रकृति का रूपान्तर कहते हैं, वह आत्मसिद्धि भी सम्भव बन जाती है।

यह तो निश्चित है कि ये परिणाम इकट्ठे ही एक समय नहीं आ सकते। यह न्यूनाधिक रूप से धीरे-धीरे ही आते हैं। साधक के अन्तर के विकास और उसकी स्थिति के प्रमाण में ही न्यूनाधिक पूर्णता लिये हुए आते हैं। भगवान के साक्षात्कार के लिए कोई राजपथ तो है ही नहीं। यही गीता का कर्मयोग है, जिसे मैंने पूर्ण आध्यात्मिक जीवन या पूर्णयोग के लिये विकसित किया है। यह बुद्धि की उड़ान पर या तर्क पर आश्रित नहीं है। इसका आधार अनुभव पर है, इसमें ज्ञान बहिष्कृत नहीं है और भक्ति निषिद्ध नहीं है, क्योंकि इस कर्मयोग का सार—भगवान को आत्मसमर्पण और समग्र चेतना को प्रभु के चरणों में करने का अभ्यास—वस्तुतः भक्ति की ही क्रिया है। पर हाँ, जीवन से दूर भागकर किया गया आत्मरत ध्यान-योग, लय-योग या अपने में ही बन्द अपने स्वप्नों को ही योग की पूर्णता मानती हुई भावुकतामय भक्ति इस कर्मयोग से बहिष्कृत है। शुद्ध आत्मलीन ध्यानावस्था में या आन्तर प्रतिष्ठित गतिहीन अक्रिय भक्ति और उसकी मस्ती में साधक घण्टों पर घण्टे बिता सकता है; पर पूर्ण योग इतने में ही समाप्त नहीं हो जाता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीता में अवतारवाद

[श्रीअरविन्द]

१. आधुनिक व्यक्ति के मानस की कठिनाइयाँ

आधुनिक मानस के लिए अवतारवाद पूर्व से (पश्चिम की) तार्किक मानव-चेतना पर पड़नेवाले उन विचारों में से है, जिन्हें स्वीकार करना या समझना बहुत कठिन है। अधिक से अधिक उत्तम रूप में इसे यह समझा जा सकता है कि यह मानवीय शक्ति, चरित्र और प्रतिभा के उच्च विकास का अथवा जगत् में या जगत् के लिए किये गये महान् कार्य का सूचक अलङ्कार-मात्र है, निकृष्ट रूप में इसे अन्धविश्वास ख्याल किया जा सकता है। जड़वादियों के लिए यह मूर्खता तथा ग्रीस देशवासियों के लिए यह उन्नति में प्रतिबन्धक है। प्रकृतिवादी इसे सोच भी नहीं सकता; क्योंकि वह ईश्वर में विश्वास नहीं रखता। तर्कवादी और देववादी के लिए यह मूर्खता और मज़ाक की वस्तु है। एक पक्के द्वैतवादी को जो मानवीय तथा दैवीय स्वभावों में इतना अधिक अन्तर देखता है कि इस अन्तर की खाई को पाटा भी नहीं जा सकता—यह ईश्वर-निन्दा प्रतीत होती है। ईश्वरवादी का आक्षेप यह है कि यदि परमात्मा की सत्ता है तो वह विश्व से विभिन्न एवं उच्च है। जगत् के कार्यों में वह परमात्मा हस्तक्षेप नहीं करता। किन्तु नियमों की निश्चित कल से उन कार्यों को परिचालित होने देता है। वस्तुतः वह एक सुदूरवर्ती वैध शासक या आध्यात्मिक राजा है। अधिक से अधिक, वह प्रकृति की क्रियाशीलता के पीछे एक उदासीन, निष्क्रिय आत्मा है। वह सांख्य-मतानुसार सार्वभौम या अमूर्त साक्षी पुरुष है। वह पवित्र आत्मा है, अतः शरीर नहीं धारण कर सकता, असीम है और मनुष्य की तरह सीमित नहीं हो सकता। अजन्मा परमेश्वर जन्म धारण करनेवाला जीव नहीं बन सकता। वह पूर्ण सर्व-शक्तिमत्ता से भी ऐसा नहीं कर सकता है। द्वैतवादी इन आक्षेपों के अतिरिक्त यह आक्षेप करता है कि परमात्मा का शरीर, कार्य तथा स्वरूप मनुष्य से भिन्न एवं पृथक है। पूर्ण परमेश्वर मानवीय अपूर्णता में नहीं उतर सकता। अजन्मा पुरुष—परमेश्वर एक मनुष्य के व्यक्तित्व में जन्म नहीं धारण कर सकता। लोक-लोकान्तर का शासक प्रकृति-बद्ध मानव-क्रिया में तथा भंगुर मानव-शरीर में सीमा-बद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसा जान पड़ता है कि यह सब आक्षेप प्रारम्भिक दृष्टि से इतने प्रबल लगते हैं—गीता के उपदेष्टा के मन में उस समय समुपस्थित हैं जब कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह यह कहता है कि यद्यपि दिव्य वस्तु अजन्मा और अपनी आत्म-सत्ता में अविनाशी है ; किन्तु फिर भी वह अपने स्वरूप की क्रिया के महान् आश्रय तथा स्वमाया के बल से जन्म धारण करता है। भ्रान्त व्यक्ति मनुष्य-शरीर में अवस्थित होने के कारण उस परमात्मा से घृणा करते हैं। वास्तव में वह अपने सर्वोच्चरूप में सबका स्वामी है। वही दैवी चेतना की क्रिया में चतुर्विध नियम का स्रष्टा, विश्व के कार्यों को करनेवाला और उसी समय दैवी चेतना की शान्ति में अपनी प्रकृति के कामों को देखनेवाला निष्पक्ष साक्षी है। क्योंकि वह पुरुषोत्तम सदा शान्ति और क्रिया दोनो से परे है। गीता इन सब विरोधों का मुकाबिला करने में तथा इन्हें परस्पर मिलाने में समर्थ है, क्योंकि वह सत्ता, ईश्वर तथा विश्व के वेदान्ती दृष्टिकोण से प्रारम्भ होती है।

वस्तुओं के वेदान्ती दृष्टिकोण में ये सब महान् दिखाई देनेवाले आक्षेप प्रारम्भ से ही नगण्य, और शून्य हो जाते हैं। अवतार का विचार वेदान्त में वास्तव में अनिवार्य नहीं है। किन्तु यह उसमें स्वभावतः एक पूर्ण तार्किक और यौक्तिक कल्पना के रूप में आ जाता है। अतः यहाँ सब कुछ परमात्मा है, स्वयम्भू आत्मा है, ब्रह्म है (एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म) यहाँ इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस ब्रह्म से पृथक् और भिन्न कुछ नहीं है। उसके अतिरिक्त भी कुछ नहीं हो सकता। उस ब्रह्म से पृथक् और भिन्न भी कुछ नहीं हो सकता। प्रकृति देवी चेतना की शक्ति से अतिरिक्त न तो कुछ है और न ही कुछ हो सकती है। सभी प्राणी उस दैवी सत्ता के जो अपनी चेतना की शक्ति में अवस्थित है या उसका परिणाम है—अन्तः तथा बाह्य, आत्मिक तथा शारीरिक रूपों के अतिरिक्त न कुछ हैं और न कुछ हो सकते हैं। निःसीम सत्ता परिच्छिन्न होने में अशक्त है—इसके स्थान पर हम यह पाते हैं कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मातिरिक्त कुछ भी नहीं है, चाहे किसी प्रकार देखें, हम इस विशाल विश्व में जिसमें हमारा वास है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं देख सकते। आत्मा शरीर धारण करने में असमर्थ है अथवा इस आत्मा को प्रकृति या मन के साथ जोड़ना और उसके एक सीमित स्वरूप या शरीर की कल्पना करना निन्दनीय है—इन बातों के स्थान पर हम यह देखते हैं कि दुनिया में उसके सिवाय कुछ भी नहीं है। विश्व की सत्ता केवल उसके सम्बन्ध तथा शरीर-धारण से ही है। विश्व नियमों का एक यन्त्र है। इस विश्व की शक्तियों के परिचालन में अथवा इसके मानसों और शरीरों की क्रिया में कोई आत्मा शान्त भाव से इस जगत के बाहर या ऊपर वर्तमान है—इन मान्यताओं के स्थान पर हमें यह दिखाई देता है कि सम्पूर्ण जगत और उसका प्रत्येक अणु कार्य करती हुई दैवी शक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है और वह दैवी शक्ति इस विश्व की प्रगति का निश्चय और शासन करती है, इसके स्वरूप में बसी हुई है। प्रत्येक आत्मा और मन को अपने अधिकार में किये हुए है। सभी कुछ ब्रह्म में है, उसी में गति करता है और उसी में अपनी सत्ता रखता है। सभी चीज़ों में वह विद्यमान है, क्रिया करता है और अपनी सत्ता प्रदर्शित करता है। प्रत्येक प्राणी प्रच्छन्न रूप में नारायण है।

अज जन्म धारण करने में असमर्थ है—इसके स्थान पर यह बात है कि सभी प्राणी अपने व्यक्तित्व में अज आत्माएँ हैं, वे सनातन हैं जो अनादि और अनन्त हैं और वे सब अपनी आवश्यक सत्ता और सार्वभौमिकता में एक अजन्मा आत्मा है, जिसके लिए जन्म और मरण-स्वरूप-परिवर्तन की घटना-मात्र है। पूर्ण ब्रह्म से अपूर्णता का धारण विश्व की रहस्यमयी घटना है ; किन्तु अपूर्णता स्वरूप में, मन के कार्य में या धारण किये शरीर में ही प्रतीत होती है। जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धारण करनेवाला है, उसमें अपूर्णता नहीं है। जैसे सबको प्रकाशित करनेवाले सूर्य में प्रकाश या दृष्टि का कोई दोष नहीं, किन्तु प्रकाश ग्रहण करने वाले अङ्ग के सामर्थ्य में दोष सम्भव है। परमात्मा किसी दूरस्थ लोक से विश्व का शासन नहीं करता, किन्तु अपनी अन्तरंग सर्वशक्तिमत्ता से शासन करता है। शक्ति का प्रत्येक शान्त कार्य अनन्त की क्रिया द्वारा निष्पन्न होता है। हम इच्छा और ज्ञान के प्रत्येक सीमित कार्य में, जिसे हम देख सकते हैं, एक शक्ति को अपने नैसर्गिक बल के साथ काम करते हुए देखते हैं। यह शक्ति सीमित, पृथक् और स्वयं सत् नहीं है। परमात्मा का शासन अनुपस्थित रहनेवाले, विदेशी या बाह्य व्यक्ति का शासन नहीं है। वह सब पर सिर्फ़ इसलिए शासन नहीं करता कि वह सर्वातिशायी है, किन्तु इसलिए भी शासन करता है कि वह सब प्रगतियों के अन्दर बसता है, और सबका पूर्णात्मा है।

अतः अवतारवाद की संभावना के विरोध में हमारी तर्क-बुद्धि से किये गये आक्षेप अपने सिद्धान्त पर नहीं टिक सकते; क्यों कि वह सिद्धान्त तो केवल बौद्धिक तर्क बुद्धि से उत्पन्न किया गया, थोथा भेद-मात्र है। जिसको सारी घटनायें तथा विश्व की सारी वास्तविकता प्रतिक्षण खण्डित कर रही है, और नापसन्द कर रही है।

परन्तु फिर भी सम्भावना को छोड़कर वास्तविक दैवी कार्यों के बारे में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या वास्तव में दैवी सत्ता आवरण से निकलकर सीमित, मानसिक, भौतिक और अपूर्ण जगत् में कार्य करने के लिए आगे बढ़कर आती हुई प्रतीत होती है। निःसन्देह सान्तता एक लक्षण-मात्र है। यह अनन्तता के चेतनता के कारण बदलनेवाले रूपों के आत्म प्रतिनिधित्व की परिचायक है। प्रत्येक सान्त घटना का वास्तविक मूल एक स्वयंभू अनन्तता है, चाहे प्राकृतिक स्वरूप के कार्य में अथवा अपने भौतिक आत्म-प्रतिनिधित्व में यह कुछ भी क्यों न हो। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो मनुष्य अपने तईं अकेला नहीं है, एक पृथक् स्वयं सत्तावान् व्यक्ति नहीं है, किन्तु मन और शरीरवाली मानव-जाति भी कोई पृथक् या आत्म-सत्तावान् जाति नहीं है। यह तो सर्वव्यापक, सार्वभौम परमात्मा अपने को जाति के रूप में अभिव्यक्त कर रहा है, वहाँ यह कुछ सम्भावनाओं को कार्य-रूप में परिणत करता है, आत्माभिव्यक्ति की कुछ शक्तियों का विकास करता है, आविर्भाव करता है, जो कुछ भी यह आविर्भाव करता है, वह यह अपने-आप है, आत्मा है।

२. अवतारवाद के विषय में गीता—

सर्वप्रथम हमें उपदेष्टा के उन शब्दों को अनूदित कर लेना चाहिये जिनमें अवतारवाद का स्वरूप और उद्देश्य संक्षेप से बताया गया है और जो तत्संबंधी अन्य संदर्भों की याद दिलाता है। 'मेरे बहुत से अतीत जन्म हैं। हे अर्जुन, तेरे भी अतीत जन्म हैं। मैं उन सबको जानता हूँ; किन्तु हे परन्तप! तू उन्हें नहीं जानता। यद्यपि मैं अज हूँ, अविनश्वर हूँ, सब सत्ताओं का स्वामी हूँ, फिर भी मैं अपनी प्रकृति में रहता हूँ और अपनी माया से जन्म धारण करता हूँ। जब कभी धर्म का लोप होता है, अधर्म का उदय होता है तब मैं जन्म धारण करता हूँ। साधुओं के परित्राण, दुष्टों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए युग-युग में जन्म ग्रहण करता हूँ। जो इस प्रकार मेरे दिव्य जन्म और दिव्य कर्म को ठीक-ठीक जानता है, उसका एक बार शरीर छोड़ने पर पुनर्जन्म नहीं होता। हे अर्जुन! वह मेरे पास आता है। वह इच्छा, भय और क्रोध से मुक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होता है और मेरे भाव से भरा हुआ मुझमें शरण लेता है। ज्ञान के तप से पूत हुए बहुत-से लोग मेरे स्वरूप (मद्भावम् पुरुषोत्तम का दैवी स्वरूप) को प्राप्त हुए हैं। जब मनुष्य मेरे पास पहुँचते हैं, मैं भी प्रेम से उन्हें स्वीकार करता हूँ। हे पार्थ! मनुष्य प्रत्येक प्रकार से मेरे मार्ग का अनुसरण करते हैं।'

विभूति अवतार नहीं है, अन्यथा अर्जुन, व्यास, उशना भी कृष्ण की तरह अवतार हो जाते, यद्यपि अवतारवाद की शक्ति की दृष्टि से घटिया दर्जे के ही होते। केवल दैवी गुण ही आवश्यक नहीं है, अपितु परमात्मा की आन्तरिक चेतना और दैवी उपस्थिति से मानवीय स्वभाव को शासित करनेवाला स्व भी आवश्यक है। अपनी योग्यताओं की शक्ति बढ़ाना भूतग्राम होने का एक अंग है। भूतग्राम सामान्य अभिव्यक्ति में आरोह का ही नाम है। अवतार में ऊपर से दैवी जन्म, सनातन सार्वभौम परमात्मा का वैदिक मानवता में अवतरण, तथा न केवल आवरण के पीछे अपितु बाह्य प्रकृति में भी एक विशेष प्रकाशन है।

३. श्रीकृष्ण का अवतार

गीता बहुत आगे तक जाती है। यह स्पष्ट रूप में परमात्मा का जन्म ग्रहण बताती है। कृष्ण अपने बहुत-से पुराने जन्मों का वर्णन करता है और अपनी भाषा से वह स्पष्टतया कहता है कि यह केवल ग्रहणशील मानव प्राणी ही नहीं; किन्तु दैवी सत्ता है। इसी के बारे में उसका कथन है, यतः वह स्रष्टा की उसी भाषा में बोल रहा है—जिसमें भाषा का प्रयोग अपनी जगदुत्पत्ति के वर्णन के सम्बन्ध में करता है। 'यद्यपि सब प्राणियों का अधीश्वर मैं अज हूँ, किन्तु मैं माया से जन्म ग्रहण करता हूँ। अपनी प्रकृति के कार्यों का अध्यक्ष हूँ। यहाँ परमात्मा और जीवात्मा का अथवा पिता और दैवी मनुष्य-रूप पुत्र का कोई प्रश्न नहीं है। परमात्मा और उसकी प्रकृति का ही सवाल है। दैवी सत्ता अपनी प्रकृति से मानवीय स्वरूप और प्रकार में जन्मधारणा कर अवतरित होती है तथा इस स्वरूप में दैवी चेतना तथा दैवी शक्ति लाती है। यद्यपि मानवता के स्वरूप और प्रकार में कार्य करने में सहमत तथा इच्छुक होते हुए वह शरीर में अन्दर-बाहर रहनेवाले अधिष्ठाता आत्मा की तरह सब क्रियाओं का शासन करता है। ऊपर से तो वह सदा शासन करता है, क्योंकि इसी तरह वह प्रकृति जिसमें मनुष्य भी है, का शासन करता है। अन्तर केवल यही है कि वह यहाँ पर प्रकट है; प्रकृति पर स्वामी और सब में बसनेवाले परमात्मा की दैवी सत्ता से परिचित है, और ऊपर से उसकी गुप्त इच्छा से नहीं, किन्तु अपनी सीधी और प्रत्यक्ष इच्छा से वह प्रकृति को चलाता है। यहाँ मानवीय मध्य-गामी की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि वह परमात्मा अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर मानवीय जन्म धारण करता है (प्रकृति स्वाम्) जीव की विशेष प्रकृति का आश्रय लेकर वह ऐसा नहीं करता।

यह सिद्धान्त बहुत कठिन है, मानवीय तर्क का इसे स्वीकृत करना मुश्किल है। इसका कारण स्पष्ट है कि अवतार में मानवता प्रत्यक्ष है। अवतार सदा मानवता और दिव्यता की एक दोहरी घटना है। दैवी सत्ता मानव-स्वभाव को सभी बाह्य बन्धनों, सीमाओं के साथ ग्रहण करती है। और वह इन सीमाओं को दैवी चेतना और शक्ति की परिस्थितियाँ, साधन और उपकरण बनाता है। वह इसे दिव्य जन्म और कार्यों का एक पात्र बनाता है। परन्तु यह बहुत निश्चय के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साथ होना चाहिये, क्योंकि अन्यथा अवतार का उद्देश्य पूर्ण न होगा, क्योंकि वह उद्देश्य तो यही दिखाने के लिए है कि मानवीय जन्म सब बंधनों के साथ भी दैवी जन्म और दैवी कार्यों का साधन और उपकरण बनाया जा सकता है। चेतनता का मानवीय प्रकार प्रकाशित चेतना के दैवी सारभूत अंश के साथ संगत होना संभव है, और वह चेतनता का मानवीय प्रकार दैवी चेतना का पात्र बन सकता है। ढाँचे के परिवर्तन से इससे अधिक अनुकूलता में लाया जा सकता है और इसके प्रकाश, प्रेम, शक्ति और पवित्रता को बढ़ा सकता है और यह उद्देश्य यह भी बताता है कि यह किस प्रकार किया जा सकता है। यदि अवतार बिल्कुल अधिसामान्य ढंग से कार्य करे तो यह उद्देश्य पूरा न होगा। एक दैवी या चमत्कारिक अवतार एक निरर्थक बेहूदगी है। यह मतलब नहीं है कि दैवी शक्तियों का बिल्कुल अभाव हो। ईसा में स्वस्थ करने की दैवी शक्ति थी। दैवी शक्तियों का प्रयोग मानव प्रकृति में संभव है; परन्तु यही सब कुछ नहीं होना चाहिये। यह किसी अवस्था में प्रकृति की भूल नहीं है और इससे काम भी नहीं चल सकता, यदि जीवन दैवी आतिशबाजी के प्रदर्शन के सिवाय कुछ भी न हो। अवतार एक ऐन्द्रजालिक जादूगर की तरह नहीं आता; किन्तु मानवता का दैवी नेता होकर आता है तथा दैवी मानवता का प्रदर्शक है। उसे मानवीय दुःख और शारीरिक कष्ट भी झेलने चाहियें ताकि वह यह दिखा सके कि कष्ट किस प्रकार मुक्ति का साधन हैं। जिस प्रकार ईसा ने यह दिखाया था और दूसरे यह भी दिखाने के लिए कि दैवी आत्मा मानव-स्वरूप में मिलनेवाले दुःखों को किस प्रकार जीत सकती है जैसे कि बुद्ध ने दिखाया है। वह तर्कवादी जो ईसा को पुकारकर यह कहता है कि यदि तुम परमात्मा के पुत्र हो तो सूली से उतर आओ या बुद्धिमत्ता पूर्वक यह कहता है कि वह अवतार नहीं था, क्योंकि वह मरा और एक बीमारी से मरा जैसे कि एक कुत्ता भी मरता है—यह नहीं समझता कि वह क्या कह रहा है। दुःख और कष्ट का अवतार दैवी प्रसन्नता के अवतार से पूर्व आना चाहिये। मानवीय बंधन इसलिए स्वीकार करने चाहिये कि यह दिखाया जा सके कि उन्हें किस प्रकार जीता जा सकता है। इस विजय का मार्ग और मात्रा चाहे वह आन्तरिक हो या बाह्य, मानव-प्रकृति की अवस्था पर निर्भर है। यह अमानुषी चमत्कार से नहीं किया जाना चाहिये।

इसी प्रकार की भावना में विष्णु के दस अवतारों की कुछ लोग व्याख्या करना पसन्द करेंगे। पहले पशुओं के रूप में अवतार, फिर पशु और आदमी के रूप में, फिर वामन में सर्व-मनुष्यात्मा का, उग्र आसुरी व्यक्ति परशुराम का, दिव्य स्वभाववाले बड़े राम का, उद्बुद्ध आत्मिक व्यक्ति बुद्ध का, और उससे, समय में पहले तथा दर्जे में सबसे बड़े पूर्ण दैवी मानवतावाले कृष्ण में श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। सबसे अन्तिम अवतार कल्कि है। जिसने कृष्ण का शुरू किया हुआ काम पूरा करना है, वह उस महान् संघर्ष का पूर्ण करनेवाला है जो पहले अवतारों ने शुरू किया था।

राम और कृष्ण का जीवन प्रागैतिहासिक भूत से संबद्ध है। उस अतीत का जीवन केवल हमें कविताओं और दन्तकथाओं तथा पौराणिक गाथाओं द्वारा होता है। यह बात महत्त्व-पूर्ण नहीं है कि हम उन्हें उपाख्यान समझते हैं या ऐतिहासिक तथ्य—क्योंकि उनका सनातन सत्य और महत्त्व इसमें है कि वे जाति की आन्तरिक चेतना तथा मानवीय आत्मा के जीवन में एक आध्यात्मिक स्वरूप, सत्ता और प्रवाह के रूप में जम गये हैं। अवतारवाद दैवी जीवन का एक तथ्य है और वह चेतना जिसने बाह्य कार्य में आत्माभिव्यक्ति पाई है, उस कार्य के समाप्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो जाने पर भी आत्मिक प्रभाव के रूप में बनी रहनी चाहिये। अथवा अपने को आध्यात्मिक प्रभाव और उपदेश में अभिव्यक्त करे—किन्तु इसका स्थायी असर होना चाहिये।

४. सामान्य जन्म और अवतार में भेद

अब यह वर्णनीय बात है कि भाषा के बहुत थोड़े-से किन्तु महत्त्व-पूर्ण अन्तर के साथ गीता एक ही ढंग से दैवी सत्ता के जीवों को, सामान्य रूप से जन्म देने के कार्य को तथा अवतार रूप में अपने जन्म के कार्य को बताती है। 'अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर मैं प्राणियों के इस विशाल समुदाय को पैदा करता हूँ। प्रकृति के वश में होने से अवश है। (अवशं प्रकृतेर्वशात्)। अपनी प्रकृति पर स्थित होकर मैं अपनी माया से पैदा होता हूँ।' 'अवष्टभ' शब्द से जो क्रिया सूचित होती है, वह जोरदार निम्नाभिमुख दबाव है जिससे नियन्त्रित पदार्थ जीता जाता है, दबाया जाता है या अपनी गति और संचालन में बँध जाता है और नियामक शक्ति का बेबस दास हो जाता है। प्रकृति इस कार्य में यन्त्रवत् हो जाती है और इसका प्राणि समुदाय अपने कार्य का स्वामी न होकर जड़ यन्त्र में निगृहीत होकर अवश हो जाता है। इसके प्रतिकूल 'अधिष्ठाय' शब्द से सूचित क्रिया केवल अन्दर रहना ही नहीं, किन्तु प्रकृति के ऊपर ठहरने की क्रिया है, अन्दर बसनेवाले अधिष्ठात्री देवता का चेतन नियन्त्रण और शासन है जिसमें पुरुष अज्ञान के कारण प्रवृति से बेबस होकर नहीं खिंच रहा, अपितु प्रकृति प्रकाश से तथा पुरुष की इच्छा से परिपूर्ण है। अतः सामान्य जन्म में जो पैदा किया जाता है, वह प्राणियों का समूह भूतग्राम है। दिव्य जन्म में जो पैदा किया जाता है, वह स्वयंचेतन स्वयंभू सत्ता है। वेदान्त के आत्मा और विभूति में वही अन्तर है जो योरोपियन दर्शन में सत्ता (Laeing) और उसके स्वरूपों (Lecominys) में है। दोनो अवस्थाओं में माया उत्पत्ति या प्रकाशन का साधन है। परन्तु दिव्य जन्म में यह आत्म-माया है। यह निचली माया में अज्ञान का उलझाव नहीं है; किन्तु स्वयंभू परमात्मा की अपने प्राकृतिक आत्म-प्रतिनिधित्व में चेतना क्रिया है जिसे अपने काम और उद्देश्य का ज्ञान है। इसे गीता में योग-माया कहा गया है। सामान्य जन्म में परमात्मा योग-माया का प्रयोग निचली चेतनता से अपने को ढाँपने या बचाने के लिए करता है, अतः यह हमारे लिए अज्ञान का साधन 'अविद्या माया' हो जाती है। परन्तु इसी योग-माया से आत्मज्ञान हमारी चेतना की परमात्मा के प्रति निवृत्ति के रूप में प्रकाशित होता है। यह ज्ञान का साधन 'विद्या माया' है और दिव्य जन्म में यह इस प्रकार कार्य करता है—ज्ञान का नियामक है, तथा अज्ञान से किये जानेवाले कर्मों को ज्ञान से प्रकाशित करनेवाला है।

अतः गीता की भाषा यह दिखाती है कि दिव्य जन्म चेतन परमात्मा का मानवता में आना है, और यह आवश्यक रूप से सामान्य जन्म का विलोम है। यद्यपि वही साधन काम में लाये जाते हैं, क्योंकि यह अज्ञान का जन्म नहीं, किन्तु ज्ञान का जन्म है, एक भौतिक घटना नहीं, किन्तु आत्मिक जन्म है। यह स्वयंभू सत्ता के रूप में इसके स्वरूप की चेतन नियामक आत्मा का जन्म है जो अज्ञान के मेघ में आत्मज्ञान को खो नहीं बैठी। यह शरीर में ऐसी आत्मा का ऐसा जन्म है जो प्रकृति का स्वामी और अध्यक्ष होकर अपनी इच्छा से स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रकृति में काम कर रही है, जो इस यंत्र में फँसी हुई चक्कर नहीं काट रही है, क्योंकि यह ज्ञान में कार्य करती है, न कि अज्ञान में जैसा कि बहुत-से करते हैं। यह गुह्य आत्मा है जो सबमें से बाहर आती है। यह आवरण के पीछे से एक मानवीय प्रकार में सबका स्वामी बनने आती है। किन्तु दैवी रूप में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सामान्य रूप से जिस जन्म का यह स्वामी होती है, वह ईश्वर-रूप पर्दे के पीछे से आता है। आवरण के सम्मुख की बाह्य चेतनता शासक की अपेक्षा शासित अधिक होती है; क्योंकि वहाँ एक आंशिक चेतन सत्ता जीव है जो आत्म ज्ञान में खोया हुआ है तथा वह इसके कामों में प्रकृति की प्राकृतिक परवशता के कारण बँधा हुआ है।

अतः अवतार* दैवी आत्मा कृष्ण द्वारा मानवता में उस सत्ता की दैवी शर्त का प्रकाश है जिस तक ऊपर उठने के लिए अर्जुन को—जो कि उच्चतम मानव-सत्ता का एक प्रकार, एक विभूति, एक मानवात्मा है—कहा गया है। इस पद तक वह तभी उठ सकता है, जब कि वह अपने अज्ञान तथा सामान्य मानवता के बंधन से ऊपर उठ सके। यह ऊपर से उस चीज़ का प्रकाश है, जिसे हमने नीचे से विकसित करना है। यह परमात्मा का मानवसत्ता में वह दैवी जन्म है, जिस तक हम मरणधर्मा प्राणियों को पहुँचना चाहिये। यह एक आकर्षक दैवी उदाहरण है जो परमात्मा ने मनुष्य को उसी प्रकार रूप और मानवसत्ता के पूर्ण आदर्श में दिया है।

किन्तु सामान्य मनुष्य अज्ञानी है, क्योंकि उसकी आत्मा की आँखों पर और उसके सब अंगों पर प्रकृति और माया की मुद्रा है, जिससे वह परमात्मा की सनातन सत्ता से बाहर के स्वरूप में ढाल दिया गया है। उसने उसे दैवी पदार्थ की बहुमूल्य धातु से एक मुद्रा की तरह बना है, परन्तु अपने प्राकृतिक गुणों के मिश्रण के तीव्र आवरण से आच्छादित है। जो अपनी मुद्रा तथा पाशविक मानवता की मुद्रा से अङ्कित किया गया है। यद्यपि परमात्मा का गुप्त चिन्ह इस पर विद्यमान है, किन्तु यह पहले तो पहिचाना ही नहीं जा सकता और सदा बड़ी कठिनाई से बताया जा सकता है। जो वास्तव में केवल हमारे सत्ता के रहस्य में प्रवेश द्वारा जाना जा सकता है, जो प्रवेश ईश्वराभिमुख और लोकाभिमुख मानवता में भेद करता है। दिव्य-जन्म-प्राप्त अवतार में जो वस्तु तत्त्व है, इस आवरण में से चमकता है। मुद्रा का चिन्ह केवल आकार के लिए है। वहाँ पर गुप्त परमात्मा के दर्शन होते हैं। जीवन-शक्ति गुप्त परमात्मा की शक्ति है और यह धारण की हुई मानव-प्रकृति की मुद्राओं में से फूट पड़ती है। परमात्मा का चिह्न जो कि एक आन्तरिक आत्मा का चिह्न है, बहिर्मुख या भौतिक नहीं है। वह सब के लिए जो उसे देखना चाहते हैं या देख सकते हैं, स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। क्योंकि आसुरी प्रवृत्ति सदा ऐसी चीज़ों को न देखनेवाली होती है। यह शरीर को देखती है, आत्मा को नहीं। आन्तरिक सत्ता को देखती है, बाह्य को नहीं। आवरण को देखती है, परन्तु व्यक्ति को नहीं। सामान्य मनुष्य-जन्म में सार्वभौम दैवी सत्ता का प्राकृतिक अंश जो मानवता को धारण करता है, वही मुख्य होता है। अवतार में उसी प्राकृतिक घटना का ईश्वरीय अंश घटित होता है। एक में वह मानव-प्रकृति को अपनी आंशिक सत्ता का अधिपति बनने देता है और प्रभुत्व करने देता है। दूसरे में वह अपनी सत्ता और प्रकृति के आंशिक प्रकार का अधिपति बनता है तथा दैवी ढंग से उसका शासन करता है। एक सामान्य मनुष्य की तरह न तो विकासवाद या आरोहण से और न ही दिव्य जन्म में बढ़ने से, किन्तु मानवता के उपादानों में प्रत्यक्ष अवरोहण से और इसके ढाँचों को ग्रहण करने से ही वह शासन करता है। ऐसा गीता हमें बताती हुई प्रतीत होती है।

---

* अवतार का अर्थ है 'अवरोहण' यह दैवी सत्ता का उस रेखा से नीचे आना है जो दैवी सत्ता को मानव-विश्व से विभक्त करती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवतारवाद का उद्देश्य

हमें ध्यान-पूर्वक यह समझना चाहिये कि धर्म को दुनिया में प्रतिष्ठापित करना ही उस अवतार के अवरोहण का केवल उद्देश्य नहीं है, जो मानवता में अभिव्यक्त दैवी सत्ता का महान् रहस्य है। क्योंकि धर्म की प्रतिष्ठा अपने-आप में एक सर्वतोभावेन पूर्ण उद्देश्य नहीं है। और न ही एक कृष्ण, ईसा और बुद्ध की अभिव्यक्ति के लिए सर्वोपरि संभव लक्ष्य है, किन्तु एक महत्तर उद्देश्य और एक उच्चतर तथा दैवी उपयोगिता की एक सामान्य शर्त है, क्योंकि दिव्य जन्म के दो पहलू हैं। एक तो अवतरण, मानव-समाज में परमात्मा का जन्म, परमात्मा का मानवीय रूप और प्रकृति में प्रदर्शक तथा सनातन अवतार; तथा दूसरा पहलू एक आरोहण, मनुष्य का परमात्मा में जन्म तथा मनुष्य की दैवी प्रकृति तथा चेतना में उन्नति (मद्भावमागताः) यह आत्मा के दूसरे जन्म में नये सिरे से उत्पन्न होना है। यह वही नया जन्म है, जिससे अवतारवाद और धर्म का संस्थापन किया जाना अभिप्रेत है। गीता के अवतारवाद के सिद्धान्त का यह दोहरा पहलू एक ऐसे विहङ्गम दृष्टिवाले पाठक से जैसे कि बहुत-से होते हैं और जो गीता की गम्भीर शिक्षाओं की एक उथली दृष्टि से सन्तुष्ट हो जाते हैं, उपेक्षित होने की संभावना है और यह बात संप्रदायों की कठोरता में ग्रस्त रूढ़िप्रिय भाष्यकारों से भी उपेक्षित की गई है। किन्तु यह सिद्धान्त के समग्र अर्थ के लिए आवश्यक है। अन्यथा अवतार का विचार एक कट्टर सिद्धान्त, एक लोकप्रिय अन्ध-विश्वास या किसी ऐतिहासिक अथवा गाथा-प्रधान अधिमानवों के एक कल्पनात्मक या रहस्यमय देवी करण (Deification) ही होगा। किन्तु वह नहीं होगा जो गीता अपने सारे उपदेशों में उसे बनाती है। अर्थात् एक गहन दार्शनिक एवं धार्मिक सत्य तथा सबके उत्तम रहस्य की दिशा में एक पग अथवा उसका आवश्यक अंग (रहस्यमुत्तमम्)।

यदि मनुष्य का परमात्मा में उद्गमन परमात्मा के मानवता में अवतरण से सहायता न किया जाये तो अवतारवाद धर्म के लिए केवल एक निष्प्रयोजन घटना होगी। क्योंकि केवल सत्य, न्याय या धर्म का माप-दण्ड सदा दैवी सर्वशक्तिमत्ता से अपने सामान्य साधनों द्वारा थामा जा सकता है। महापुरुषों द्वारा या महान् आन्दोलनों द्वारा, सन्तों, राजाओं और धार्मिक गुरुओं के जीवन और कार्य से बिना किसी वास्तविक अवतार द्वारा यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। अवतार मानव-प्रकृति में दैवी प्रकृति की अभिव्यक्ति के रूप में होता है, इसके कृष्णत्व, बुद्धत्व और ईसात्व का इलहाम है ताकि मानव-प्रकृति अपने सिद्धान्त, विचार, संवेदन (Feelings), क्रिया और सत्ता को उस कृष्णत्व, ईसात्व और बुद्धत्व की रूप-रेखापर ढालकर अपने को दैवी सत्ता में रूपान्तरित कर सके। अवतार जिस धर्म की स्थापना करता है, वह मुख्यतः इसी प्रयोजन के लिए होता है। कृष्ण-ईसा और बुद्ध इसके केन्द्र में द्वार बनकर स्थित होते हैं। वह अपने में से रास्ता बनाता है, जिसका मनुष्य अनुगमन करते हैं। यही कारण है प्रत्येक अवतार मनुष्यों के सामने अपना उदाहरण रखता है और अपने बारे में घोषणा करता है कि वही मार्ग और द्वार है। वह अपनी मानवता से दैवी सत्ता की एकात्मता की भी घोषणा करता है और यह कहता है कि मनुष्य का पुत्र और वह ऊपर का पिता जिससे वह उतरा है, एक हैं। मनुष्य शरीर में कृष्ण (मानुषीं तनुमाश्रितम्) और परम-प्रभु और सब प्राणियों का मित्र उसी दैवी पुरुषोत्तम के दो रूप हैं। एक जगह वह अपनी सत्ता में अभिव्यक्त है और दूसरी जगह यहाँ पर मानवता के प्रकार में अभिव्यक्त है। गीता अपने मूल में अवतारवाद का यह दूसरा और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वास्तविक उद्देश्य रखती है, यह बात इसी उद्धरण से सम्यक विचार करने पर स्पष्ट है। परन्तु यह और भी ज्यादा स्पष्ट हो जाता है, यदि हम केवल इसे ही न लें जो कि सदा गीता के मूल पाठ के साथ व्यवहार करने का एक ग़लत तरीका है, किन्तु इसे अन्य संदर्भों तथा सम्पूर्ण शिक्षा के साथ उचित और घनिष्ठ संबन्ध में ग्रहण करें तो यह ज़्यादा स्पष्ट हो जाता है। इसकी सब में एक स्व का प्रत्येक प्राणी के हृदय में परमात्मा के बैठे होने का सिद्धान्त, स्रष्टा और सृष्टि के बीच में संबन्धों के बारे में इसकी शिक्षा, विभूति का प्रबल विचार हमें याद रखना चाहिये और एक साथ ग्रहण करना चाहिये। उस भाषा का ध्यान रखना चाहिये जिसमें उपदेष्टा अपने निःस्वार्थ कार्मों का दैवी उदाहरण देता है, जो मानवीय कृष्ण और लोक-लोकान्तरों के दैवी प्रभु पर समान रूप से लागू होता है और इस प्रकार के संदर्भों पर जो कि ९ वें अध्याय में हैं बल देते हुए याद रखना चाहिये 'मूढ़ात्मा मनुष्य शरीर में स्थित मेरा तिरस्कार करते हैं, क्योंकि वे भूत महेश्वर मेरे परम भाव को नहीं जानते' यह इस बात की सहायता करने को है।

अवरोहण को आरोहण या विकास की सहायता के लिए स्वीकार किया जाता है, इस बात को गीता बहुत स्पष्ट कर देती है। हम कह सकते हैं कि यह इस बात का उदाहरण देने के लिए है कि मानवसत्ता में दैवी सत्ता के आविर्भाव की संभावना है, ताकि मनुष्य देख सके कि वह क्या है और उसमें बढ़ने का उत्साह ले सके। इसका यह भी मतलब है कि यह, पृथिवी, प्रकृति और अभिव्यक्ति की उस आत्मा पर जो ऊर्ध्व प्रयत्न की अधिष्ठाता थी, अपनी अभिव्यक्ति का एक जीवित प्रभाव छोड़ जाये। इसका उद्देश्य दैवी मानवता के एक आध्यात्मिक ढाँचे को देना है जिसमें मानव सत्ता की अन्वेषक आत्मा उस ढाँचे में अपने को ढाल सके। यह एक धर्म देने के लिए होता है न कि एक मत, एक ऐसा धर्म जो कि आन्तर और बाह्य जीवन का एक ढंग है तथा अपने को ढालने का एक नियम है, जिससे मनुष्य देवाभिमुख विकास कर सकता है। यह इसलिए है कि क्योंकि यह विकास, आरोहण केवल पृथक् कृत और वैयक्तिक घटना नहीं है, किन्तु सभी दैवी, दुनियावी क्रियाओं, सामूहिक कार्य और जाति के लिए किये जानेवाले कार्य मानवीय प्रगति को सहायता देना, इसके बड़े संकटों में इसे थामे रखना, अधोमुख आकर्षण की शक्तियों का नाश करना जब कि वे बहुत दुराग्रही हो जाती हैं। मनुष्य की प्रकृति में ईश्वराभिमुख नियम-वाले महान् धर्म को कायम रखना या पुनः स्थापना करना प्रभु के राज्य की चाहे वह कितनी दूर ही क्यों न हो, तैय्यारी करना, साधुओं की विजय (साधूनाम्) और दुष्कर्मी पुरुषों के विनाश के लिए कार्य करना ये सब अवतार के अवरोहण के माने हुए उद्देश्य हैं। प्रायः उसके काम से ही मनुष्य-समुदाय उसको प्रसिद्ध करना चाहता है और इसीलिए वह पूजने को तैय्यार होते हैं। केवल आत्मिक व्यक्ति ही ऐसा है, जो देखता है कि यह बाह्य अवतारवाद मानव-जीवन की मूर्ति में एक इस बात का चिन्ह है कि सनातन आन्तरिक परमात्मा मानव-मनोवृत्ति और शरीर में अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। ताकि वे मनुष्य उसके साथ एकात्मता का विकास कर सकें और उसी के बन सकें। कृष्ण, ईसा, बुद्ध का बाह्य मानवता में दैवी प्रादुर्भाव अपने आन्तरिक सत्य के लिए हमारी आन्तरिक मानवता में सनातन अवतार का वही प्रकटीकरण है जो पृथ्वी के बाह्य मानव-जीवन में किया जा चुका है, वही सब मानव-सत्ताओं के आन्तरिक जीवन में भी दोहराया जा सकता है। वह काम जिसके लिए अवतार अवतरित होता है—उसके जन्म की तरह एक दोहरा भाव और दोहरा रूप रखता है। इसका एक बाह्य पहलू है जिसमें दैवी शक्ति बाह्य जगत् पर कार्य कर रही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है, ताकि वह एक ऐसे दैवी धर्म को स्थापित कर सके और पुनः रूप प्रदान कर सके, जिस धर्म से मानवता का ईश्वराभिमुख प्रयत्न निश्चित अधोगति से बचाया जाता है और इसके स्थान पर क्रिया और प्रतिक्रिया के, प्रगति और पश्चाद्गति के ऐसे नियमों के बावजूद भी जिनसे प्रकृति बढ़ती है, वह धर्म आगे ही आगे ले जाया जाता है। इसका एक आन्तरिक पहलू भी है जिसमें ईश्वराभिमुख चेतना की दैवी शक्ति व्यक्ति के आत्मा पर क्रिया करती है और इस प्रकार जाति की आत्मा मनुष्य में दैवी सत्ता के प्रकाश के नये रूप प्राप्त कर सके और अपनी उन्मुख आत्माभिव्यञ्जक शक्ति को धारण कर सके, फिर से नई कर सके। अवतार केवल एक महान् बाह्य कार्य के लिए अवतरित नहीं होता, जैसा कि मानवता का अनुभववादी प्रायः कल्पना करने को लालायित होता है। कार्य और घटना अपने-आप में कोई महत्त्व नहीं रखते, परन्तु उस शक्ति से वे महत्त्व पाते हैं जिस शक्ति का वे प्रतिनिधित्व करते हैं। उस विचार से महत्त्व पाते हैं, जिसका वे संकेत करते हैं और जिस विचार की पूर्ति के लिए वह शक्ति है।

वह संकट जिसमें अवतार प्रकट होता है, यद्यपि बाह्य द्रष्टा को घटनाओं और भौतिक परिवर्द्धनों का एक संकट प्रतीत हो, वास्तव में अपने स्रोत में और वास्तविक अर्थ में मानवता की चेतनता में एक नाजुक मौका होता है जब कि इसमें कोई महान् परिवर्तन होना होता है और कोई नया विकास होना होता है।

अवतार के अवतरण का आन्तरिक फल उनको प्राप्त होता है, जो इससे दिव्य जन्म और दिव्य कर्म सत्य-स्वरूप समझते हैं और जो अपनी चेतना में उसके भाव से भरे हुए और उसमें आश्रय लिये हुए होते हैं, (मन्मया मामुपाश्रिताः), अपने ज्ञान की शक्ति से शुद्ध होते हैं, निम्न प्रकृति से मुक्त होते हैं, दिव्य सत्ता और दिव्य स्वरूप को प्राप्त करते हैं (मद्भावम्)। अवतार मनुष्य में निम्न प्रकृति के ऊपर दैवी भाव का प्रकाश करने के लिए आता है और यह दिखाने आता है कि दिव्य कर्म स्वतन्त्र, निरहंकार, निःस्वार्थ अवैयक्तिक, सार्वभौम दिव्य प्रकाश-परिपूर्ण, दिव्य शक्ति और दिव्य प्रेम क्या चीज़ हैं। वह एक व्यक्ति के रूप में आता है जो मानव सत्ता की चेतना को परिपूर्ण कर लेगी और सीमित अहंकारी व्यक्ति को हटा देगी, ताकि यह अहम्भाव से मुक्त होकर आनन्त्य और सार्वभौमता प्रवेश कर सके; जन्म से अमरता में जा सके। वह एक दैवी शक्ति और प्रेम के रूप में आता है, जो मनुष्यों को अपने पास बुलाता है, ताकि वे उसमें आश्रय ले सकें और अपनी मानवीय इच्छाओं और मर्मों के युद्ध में, क्रोध और काम के अपूर्ण घेरे में न रहें और इस सब अशान्ति और दुःख से मुक्ति पा सकें। परमात्मा की शान्ति और आनन्द में रह सकें। इसका कोई महत्त्व नहीं कि किस रूप और किस नाम में या दैवी सत्ता के किस पहलू को आगे रखकर वह आता है, क्यों कि सभी प्रकारों में अपनी प्रकृति के साथ बदलते हुए मनुष्य दैवी सत्ता से निर्धारित मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। वह दैवी सत्ता अन्त में उन्हें अपने पास ले आयेगी और उसका वह अंश जो उनकी प्रकृति के अनुकूल है, वह वही है जिसका वे उत्तम रीति से अनुसरण करते हैं जब कि वह उनका नेतृत्व करने के लिए आता है। मनुष्य जिस किसी भी रूप में परमात्मा को स्वीकार करते हैं, प्रेम करते हैं और उसमें आनन्द लेते हैं, परमात्मा भी उसी रूप में उन्हें स्वीकार करता है, प्रेम करता है, और उनमें आनन्द देता है (ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्री अरविन्द क्या करते हैं ?

[आचार्य अभयदेव संन्यासी]

[अभयजी से हिन्दी-संसार परिचित ही है, 'वैदिक विनय', 'ब्राह्मण की गौ', 'तरङ्गित हृदय' आदि आपकी पुस्तकें काफी नाम पा चुकी हैं। आजकल आप गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता होते हुए भी वर्ष में ६ मास श्रीअरविन्दाश्रम में रहते हैं। आपका यह लेख पठनीय है।—सं०]

यह जानकर कि मैं पाण्डीचेरी के अरविन्दाश्रम में बहुत दिन रहकर आया हूँ, जो एक प्रश्न आमतौर पर पूछा जाता है—और प्रायः सभी प्रकार के लोगों द्वारा पूछा जाता है, वह है—यह तो बताइये कि श्रीअरविन्द के फिर कार्य-क्षेत्र में आने की भी कोई सम्भावना है ? वे अपनी साधना ख़तम करके फिर मैदान में कब आयेंगे ? वे अब कुछ काम क्यों नहीं करते ?

इस प्रश्न को सुनकर मैं प्रायः मन में कहता हूँ, (कभी-कभी बोल भी पड़ता हूँ) 'इसका मतलब तो यह हुआ कि मानो श्रीअरविन्द अब तक पांडीचेरी में निठल्ले पड़े हुए हैं या चैन-आराम से दिन बिता रहे हैं।' यह नहीं कि प्रश्न-कर्त्ताओं का मतलब मैं नहीं समझता, पर मेरा ध्यान उस समय मनुष्य की उस दुर्बलता की तरफ़ आकृष्ट हो जाता है, जिसके कारण जिस प्रकार के कार्य को कुछ मनुष्य बड़ा ज़रूरी और उपयोगी समझकर स्वयं कर रहे होते हैं, जब तक वैसे ही या उससे मिलते-जुलते ही कार्य को दूसरे लोग भी न करते हों, तब तक वे मनुष्य उन दूसरे लोगों को निरर्थक काम करनेवाले मूर्ख या समय खोनेवाले निठल्ले समझते हैं। अतः यदि श्रीअरविन्द भी देश-विदेश में दौरे करें, उनके जलूस निकलें, वे भाषण दें, सम्मेलनों का सभापतित्व करें और हर रोज़ नहीं तो दूसरे तीसरे दिन अपने वक्तव्य प्रकाशित कराते रहा करें, तभी उन लोगों का मन सन्तुष्ट होगा कि 'हाँ, श्रीअरविन्दजी कुछ काम कर रहे हैं।'

यह भी मैं जानता हूँ कि प्रायः उपर्युक्त प्रश्न लोग श्रीअरविन्द में श्रद्धा रखने या उनसे आशा लगाने के कारण ही प्रेम और आदर-भाव से पूछते हैं, कभी-कभी उनमें उपकार-सम्बन्धी अपने विचारों के कारण और श्री अरविन्द को वैसा उपकार करता हुआ न देखकर एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार का रोष भी होता है, पर उनका वह रोष भी ईमानदारी का और हार्दिक होता है। इस लिए ऐसे लोगों के लिए ही मैं इस लेख द्वारा कुछ निवेदन करने का प्रयत्न करता हूँ।

मेरे इतना कहने से तो कुछ बनेगा नहीं कि 'अकेले रहते हुए भी श्रीअरविन्द बहुत भारी काम कर रहे हैं।' मुझे उनका काम दिखाना होगा। तो पहिले मैं यह कहना चाहता हूँ कि वे एक ऐसे योगाश्रम को चला रहे हैं जिसमें लगभग २०० साधक (और साधिकाएँ) रहते हैं। जिनके कि खाने-पीने, रहने-सहने, अर्थात् सब शारीरिक और भौतिक भी, मानसिक और आध्यात्मिक, आवश्यकताओं की पूर्त्ति की जिम्मेदारी भी उन्होंने अपने ऊपर स्वभावतः ले रखी है। यदि मेरे जैसे किसी संस्था के चलानेवाले के बारे में यह कहा जा सकता है कि मैं गुरुकुल का आचार्य या मुख्याधिष्ठाता होने के कारण बड़ा काम कर रहा हूँ (यद्यपि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के प्रति मेरी वैसी उच्च आध्यात्मिक जिम्मेवारी नहीं है—न आशा की जाती है और न मुझमें उसका सामर्थ्य है, जैसी बड़ी दुःसाध्य, गहन और अवर्णनीय जिम्मेवारी वे अपने आश्रमवासी २०० साधकों की तथा अपने अन्य बाहर के शिष्यों की भी उठाते हैं) तो यह तो नहीं समझा जाना चाहिये कि वे कुछ काम नहीं कर रहे हैं। एक संस्था चलाना ही बहुत भारी काम है, यदि हम इस बात की तरफ़ न भी ध्यान दें कि वह संस्था अपने अति महान् उद्देश्य के कारण कितनी बड़ी और कितनी असाधारण है।

यह और बात है कि संस्था-संचालन के इस काम को वे बिना किसी बाहिरी प्रयत्न के चुपचाप, स्वाभाविक रूप से करते हैं। वे किसी साधक से बात-चीत करना तो दूर रहा—साल में तीन दिन के सिवाय कभी किसी साधक को दर्शन तक नहीं देते और उन दर्शन के तीन अवसरों पर भी मौन ही रहते हैं। फिर भी देश-विदेश से आये दो सौ साधक उनके चरणों में बैठकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर रहे हैं। उनको वहाँ कुछ मिल रहा है, तभी तो वे लोग वहाँ ठहरे हुए हैं—नहीं तो उन्हें आश्रम छोड़कर चले जाने से रोकनेवाली अन्य कोई बात नहीं है। इन साधकों का श्रीअरविन्द से सम्बन्ध जोड़नेवाला यदि कोई भौतिक साधन है तो वह चिट्ठी-पत्री है। हर एक साधक चिट्ठी-पत्री द्वारा श्रीअरविन्द से प्रतिदिन बात-चीत कर सकता है। श्रीअरविन्द साधकों की चिट्ठियों का जो रोज़ जवाब देते हैं, उसमें सुना है कि उनके ५-६ घंटे खर्च हो जाते हैं। यदि हम उनका इतना ही, ५-६ घंटे लिखने का ही काम देखें तो भी वह पूरा काम है; क्योंकि दिन में ५-६ घंटे काम करना प्रोफ़ेसरी, अध्यापकी, संपादकी, अफसरी आदि बहुत से ऊँचे पेशों में भी पूरा काम समझा जाता है और मैं तो यह भी कहना चाहता हूँ कि हम लोग तो दिन-रात में ७-८ घंटे सोकर भी अपना समय काट लेते हैं। पर श्रीअरविन्द तो एक-आध घंटा यौगिक विश्राम लेते के अतिरिक्त चौबीसों घंटे सोते भी नहीं। कुछ काम ही करते रहते हैं। तो वे हमारी अपेक्षा कितना अधिक काम अथक-रूप से करते हैं, इसका कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

पर शेष समय वे क्या करते हैं? पाठक यह जानना चाहेंगे। पर इसका कुछ उत्तर देना कठिन है। जो कुछ कहा जा सकता है, वह यह कि यदि केवल आश्रम की दृष्टि से देखें तो वे साधकों को उन्नत करने के लिए—उनकी नानाविध कठिनाइयों में से उन्हें निकालने के लिए—अपनी आध्यात्मिक शक्ति की सहायता पहुँचाया करते हैं। विश्व की दृष्टि से देखें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तो वे इस पृथिवी पर एक नई सृष्टि रचने के काम में—भगवान् की दिव्यविज्ञानमयी शक्ति को अवतरित कर जगत् का एक दिव्य रूपान्तर करने के बड़े ऊँचे और अति विशाल कार्य में तत्पर हैं। पर इन बातों का यहाँ वर्णन करना निरर्थक-सा हो जाता है; क्योंकि केवल लेख द्वारा इस कथन को समझा सकना सम्भव नहीं है। इसके लिए आध्यात्मिक जगत् का कुछ अनुभव होना आवश्यक है।

यहाँ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक गीत याद आता है। उन्होंने लिखा है—(यहाँ पर स्मरण शक्ति के आधार पर ही उसका भाव दिया जाता है)

'मा, तू आखिर मुझे मना क्यों करती है? यही न कि मैं कलमें स्याही में डुबा-डुबा कर कागज़ पर फेर रहा हूँ।

'मा, मैं तो आज ही यह करने बैठा हूँ और एक ही काग़ज़ पर लकीरें कर रहा हूँ और तू मुझे मना कर रही है।

'लेकिन अम्मी, बताना तो जब पिताजी दिन भर बैठे-बैठे कागज़ों पर स्याही पोतते रहते हैं, इतने कागज खराब करते हैं, पुलन्दे पर पुलन्दे काले करते हैं तब तू कुछ नहीं कहती। तब तू शान्त बनी रहती है।

'मा, तू मुझे मना क्यों करती है?'

बच्चा अपने द्वारा काग़ज़ खराब किये जाने को और अपने बाप द्वारा या किसी विद्वान् महापुरुष द्वारा कोई आवश्यक काग़ज़ या कविता या ग्रन्थ लिखे जाने को एक ही बात समझता है। इनमें कोई भेद नहीं समझता। जैसे बच्चा यह नहीं जान सकता कि लेखन-द्वारा वाणी-शक्ति का प्रसार होता है—किसी महापुरुष के काव्य और उनके ग्रन्थ-लेखन द्वारा सारे जगत में प्रभाव उत्पन्न होता है, अतः वह उनके लिखने को भी अपने जैसा काग़ज़ खराब करना समझता है, वैसे ही हो सकता है कि हम लोग भी अध्यात्म-जगत से अनभिज्ञ होने के कारण वहाँ की सम्भावनाओं और शक्तियों से अपरिचित होने से भी श्रीअरविन्द के बड़े भारी जगत-व्यापी आध्यात्मिक कार्य को (जो वह अकेले, जगत से स्थूल सम्बन्ध तोड़कर, स्थूल दृष्टि से कुछ भी कार्य न करते हुए) कर रहे हैं, उसे हम अपने आलस्य या व्यर्थ काल-यापन की तरह व्यर्थ में समय बरबाद करना या अकर्मण्यता समझ रहे हैं। लेकिन जैसे वह बच्चा बड़े होकर लेखन का महत्व—उस पर भी किसी बड़े से बड़े लेखक के लेखन का महत्व—समझ सकता है, वैसे हम भी आध्यात्मिकतया विकसित होकर श्रीअरविन्द के कार्य की महत्ता को अनुभव कर सकेंगे।

एक बार एक गाँव का आदमी हम पढ़े-लिखे लोगों की मज़ाक उड़ाता हुआ कहता था कि जब हम हल चलाते हैं तो हमें यह काम करता देखकर आप जैसे लोग जिन्होंने कभी हल नहीं चलाकर देखा, समझते हैं कि यह काम बड़ा आसान है, इसकी मूठ पर हाथ रखे-रखे और दूसरे हाथ से चाबुक से बैलों को हाँकते जाओ बस। पर फाल को ज़मीन में ठीक दिशा में धँसाये रखने में जो बड़ा ज़ोर पड़ता है—जो श्रम खर्च होता है—उसे तुम लोग नहीं जानते, वह कलम घिसना नहीं है और वह ठीक कहता था। उसी तरह मैं कहता हूँ कि जो लोग समझते हैं कि

[१०७६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीअरविन्द या उनके शिष्य (या कोई सच्चे योगी) आराम से संसार के संघर्ष से जुदा बन्द कमरे में या सुरक्षित आश्रम में रहते हैं, उनका जीवन कितना आसान है, वे यह नहीं जानते कि आन्तरिक जीवन में प्रविष्ट हो जाने पर ठीक दिशा में उसे चलाने के लिए बलात् उन पर दिन-रात कितना ज़ोर पड़ता है—कितनी शक्ति खर्च होती है—जिससे बहुत-से लोग घबरा जाते हैं; वे यह नहीं जानते कि असल में सारी दुनिया अन्दर है। दुनिया का असली संघर्ष अन्दर है, अन्दर दुनिया की लड़ाई सीधी है, और बड़ी ज़बरदस्त है, अतः वे यह नहीं जानते कि श्रीअरविन्द एकान्त में रहते हुए भी एक बड़ी भारी लड़ाई लड़ रहे हैं, सारे जगत् के कल्याण के लिए, मनुष्य जाति के दिव्य उत्थान के लिए दिन-रात लड़ाई के मैदान में हैं और विजय पर विजय कर रहे हैं। यदि यह ठीक है तो यह समझना अज्ञान है कि श्रीअरविन्द कुछ उपकार नहीं कर रहे है। असल में उपकार करनेवाले तो परमेश्वर ही हैं, मनुष्य का तो केवल अहंकार ही है। पर यदि जिस द्वारा उपकार-कार्य होता है, उसे उपकार-कर्त्ता समझा जाय तो मैं जहाँ तक देखता हूँ, इस समय श्रीअरविन्द जिस विश्वव्यापी महाकल्याण के साधन बन रहे हैं, उसकी दृष्टि से उन-जैसा उपकार-कर्त्ता दूसरा कोई नहीं।

तत्त्वज्ञान की गूढ़ बातें करना इस लेख का उद्देश्य नहीं हैं, अतः तत्त्व विवेचन में बिना पड़े आम लोगों के अनुभव में आने योग्य भाषा में यह कहना चाहता हूँ कि ज्यों-ज्यों अन्दर सूक्ष्मता में प्रवेश किया जाता है, त्यों-त्यों चंचलता (जिसे हम ज़रूरी कर्मण्यता या बड़ा भारी काम समझते हैं) घटती जाती है, पर सच्ची शक्ति, क्षमता, प्रभाव, बल बढ़ते जाते हैं। जैसे सब जगत् में अपार कर्म करता हुआ, सब ब्रह्माण्ड को प्रतिक्षण अपनी शक्ति से हिलाता हुआ परमेश्वर बिलकुल शान्त, कुछ भी न करता हुआ 'न' के तुल्य दिखाई देता है, वैसे ही परमेश्वर के नज़दीक पहुँचे हुये, जगत् की अन्तरात्मा के पास काम करनेवाले अन्तःप्रविष्ट विरले योगी यद्यपि बड़ा भारी काम कर रहे होते हैं, पर उनका कर्म हम स्थूल पुरुषों को दृष्टि-गोचर नहीं होता। महात्मा गान्धी को तो कोई अकर्मण्यता, अपरोपकार-रतता का दोषी नहीं ठहरा सकता। पर ज्यों-ज्यों वे अधिक मौन रखते हैं—आजकल तो वे मौन को बढ़ाते जा रहे हैं और आधा दिन मौन रहते हैं—त्यों-त्यों उनकी कार्यक्षमता, लेखों की शक्ति, आत्मिक बल बढ़ता जाता है। यह उनके साथी भी अनुभव करते हैं, वे स्वयं तो कहते ही हैं। गान्धीजी ने तो बहुत बार शान्ति और स्थिरता की महिमा गाई है। उन्होंने कहा है शान्ति ही प्रवृत्ति है, 'जो अपने आपको पत्थर की तरह बनाकर शान्त रह सकता है वह एक ही जगह बैठा हुआ सारे संसार को हिलाया करता है।' अपने विषय में भी वे कहा करते हैं कि ज्यों-ज्यों मेरी आन्तर-शक्ति बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों मेरी बाहिरी क्रिया कम होती जायगी। तो हमें भी एक ऐसे महात्मा पुरुष के अनुभव की सत्यता स्वीकार करनी चाहिये और उससे लाभ उठाना चाहिये, जिन्हें हमने अपने समझ में आने लायक बहुत भारी कार्य करते हुए साक्षात् देखा है और उनका भी अनुभव यही हुआ है।

और नहीं तो हम यह समझ सकते हैं कि जैसे भौतिक-विज्ञान (सायंस) के वेत्ता लोग बीसियों वर्ष या जीवन भर किसी खोज में लगे रहते हैं और उनके विषय में नहीं समझा जाता कि वे निरर्थक समय खो रहे हैं, वैसे भौतिक विज्ञान से बहुत अधिक विशाल, बहुत अधिक सच्चे और बहुत अधिक शक्तिशाली आध्यात्मिक ज्ञान—असली विज्ञान के भारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परीक्षणों में लगे हुए श्रीअरविन्द भी जगत् के लिये कुछ उपयोगी कार्य ही साध रहे हैं।

आशा है मेरे इस नम्र निवेदन से यह अनुमान लगाया जा सकेगा या इसका आभास मिल सकेगा कि श्रीअरविन्द जो तीस बरसों से पांडीचेरी में बैठे हुए हैं और पिछले १२-१३ वर्षों से उनके चारो तरफ एक आश्रम भी बन गया है, वह सब बेकार नहीं है।

गुरुकुल कांगड़ी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काम-वासना

[श्रीअरविन्द]

इस योग का एकमात्र नियम यही है कि अपने-आपको पूरी तरह भगवान के अर्पण कर दिया जाए उनके सिवाय और किसी को नहीं। दिव्य मातृशक्ति के साथ एकता पैदा करके परात्पर ज्योति, शक्ति, विशालता, शान्ति, पवित्रता, सत्य चेतना और अतिमानस भगवान के आनन्द को अपने अन्दर उतारा जाय, अतः इस योग में किसी के साथ प्राण की भूमि पर किसी प्रकार के सम्बन्ध या लेन देन की कोई गुंजाइश नहीं है। इस प्रकार का हर एक सम्बन्ध और हर एक वास्ता आत्मा को निचली चेतना और अधःप्रकृति के साथ बाँध देता है और भगवान् के साथ सच्चे और पूर्ण एकीकरण को रोकता है, अतिमानस की सत्य चेतना की ओर आरोहण करने में और अतिमानस की ईश्वरीय शक्ति के अवतरण में बाधक होता है। यदि यह सम्बन्ध काम-वासना-युक्त हो या इससे सम्भोग का हर्ष प्राप्त होता हो तब तो और भी बुरा है, चाहे फिर उसमें बाह्य क्रिया हो या न हो। इसी लिए साधना में इन चीज़ों का पूरी तरह से निषेध है। यह तो कहने की जरूरत ही नहीं कि इस प्रकार की कोई शारीरिक क्रिया एकदम वर्जित है और इतना ही नहीं उसके सूक्ष्म रूप का भी निषेध है। अतिमानस भगवान के साथ एक हो जाने पर ही हम भगवान के अन्दर स्थित औरों के साथ अपना सच्चा आध्यात्मिक सम्बन्ध जान सकते हैं, पर उस ऊँची एकता में इस प्रकार की निचले प्राण के स्तर की स्थूल क्रियाओं का कोई स्थान नहीं है।

काम-वासना पर पूरा स्वामित्व प्राप्त कर लेने से (उसके केन्द्र पर इतना अधिकार कर लेने से कि काम शक्तिवीर्य का ऊर्ध्वारोहण हो, बाहर निकलकर विनाश न हो) वीर्य की शक्ति को और सहारा देनेवाली मौलिक शारीरिक शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है अर्थात् रेतस को ओजस में बदला जा सकता है। लेकिन इससे बढ़कर और कोई खतरनाक गलती नहीं हो सकती कि काम-वासना और उसके किसी सूक्ष्म उपयोग के मिश्रण को साधना का ही एक अङ्ग मानकर स्वीकार किया जाय। आध्यात्मिक पतन या योग-भ्रष्टता की ओर ले जानेवाला यह सबसे सुगम उपाय है। इससे वातावरण में ऐसी शक्तियाँ फैल जाती हैं जो अतिमानस के अवतरण में बाधक होती हैं और जो प्राण की विरोधी शक्तियों को गड़बड़ पैदा करने और अनर्थ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करने के लिए निमन्त्रित करती हैं। यदि सत्य को अवतरित करना है और कुछ आध्यात्मिक कार्य करना है तो इस प्रकार के स्खलन को निकाल फेंकना चाहिये।

यह समझना भी गलती है कि यद्यपि सम्भोग का तो परित्याग करना है; पर उसे किसी प्रकार का आन्तरिक रूप दे देना काम-वासना के केन्द्र का रूपान्तर करना है। प्रकृति में पाशविक काम-शक्ति अविद्या की भौतिक सृष्टि में मितव्ययता के एक खास उद्देश्य को लिये हुए है। लेकिन इसके साथ प्राण की भूमिका में जो उत्तेजना पैदा होती है, वह प्राण की उन शक्तियों के घुस पड़ने के लिए अत्युत्तम वातावरण पैदा कर देती है, जिन शक्तियों और सत्ताओं का एक-मात्र उद्देश्य ही विज्ञान की ज्योति के अवतरण को रोकना है। इसके साथ जो एक सुख जुड़ा हुआ है, वह तो अधःपतन है भागवत आनन्द का सच्चा स्वरूप नहीं। शारीरिक भूमिका में वास्तविक भागवत आनन्द एक और ही प्रकार का, भिन्न गतिवाला तत्त्व है। वह तत्त्वतः स्वयंभू है और उसकी अभिव्यक्ति केवल भगवान के साथ आन्तरिक एकता पर निर्भर है। तुमने भागवत प्रेम की बात कही है पर भागवत प्रेम जब भौतिक भूमिका का स्पर्श करता है तो वह निम्न प्राण की भौतिक आसक्तियों को नहीं जानता। फँसने से तो वह फिर ऊपर खिंच जायेगा जहाँ से उसे इस भौतिक सृष्टि की स्थूलता में उतारना बहुत कठिन है। इस भौतिक स्थूलता का रूपान्तर करने का सामर्थ्य केवल उस भागवत प्रेम में ही है। भागवत प्रेम की खोज करनी है तो उसी मार्ग से खोजो जिससे होकर वह आ सकता है और वह मार्ग है अन्तरात्मा का। अन्य सब निम्न प्राण की गलतियों को ठुकरा दो, निकाल बाहर करो।

भौतिक सिद्धि के लिए काम-शक्ति और उसके केन्द्र का रूपान्तर आवश्यक है, क्योंकि शरीर में यह मानसिक, शारीरिक और प्राण की सभी प्राकृतिक शक्तियों का आधार है।

इसे अन्तरतम ज्योति के पुञ्ज और उसकी गति में परिवर्तित करना है, सर्जक शक्ति और विशुद्ध भागवत आनन्द में बदलना है। केवल अतिमानस की ज्योति, शक्ति और आनन्द का अवतरण ही इस केन्द्र का रूपान्तर कर सकता है और बाद के कार्यों के लिए तो अतिमानस सत्य, मा की सर्जक दृष्टि और तपःशक्ति ही निश्चय करेगी। वह सचेतन सत्य का कार्य होगा, अविद्या और अन्धकार का नहीं जब कि काम-वासना और सम्भोग इस अविद्या और अन्धकार का नहीं जब कि कामवासना और सम्भोग इस अविद्या और अन्धकार की चीज़ें हैं। वह जीवन शक्तियों के रक्षण के निष्काम मुक्त प्रसार की प्रक्रिया होगी, उन शक्तियों का अपव्यय करने और उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने की नहीं। यह मत समझो कि अतिमानस जीवन शरीर और प्राण की कामनाओं की पूर्ण सन्तुष्टिमात्र है। सत्य के अवतरण में इससे बढ़कर और कोई बाधा नहीं हो सकती कि हम इस प्रकार मानव के अन्दर पाशविक वृत्ति को चार चाँद लगाने की आशा करें। मन चाहता है कि अतिमानस उसके अपने विचारों और पूर्वकल्पनाओं पर मुहर लगानेवाला हो, प्राण चाहता है कि वह उसी की कामनाओं का अपराजित गौरव हो और शरीर चाहता है कि वह उसके सुख, उसकी आदतों और उसके आमोद-प्रमोद का समृद्ध दीर्घीकरण मात्र हो। यदि कहीं वास्तव में ऐसा हो जाये तब तो वह मानव-प्रकृति के भागवत प्रकृति में रूपान्तर की अपेक्षा मानव और पाशविक वृत्तियों के सम्मिलन की चरम सीमा बन जायेगा।

जो कुछ अवतरित होने की कोशिश कर रहा है उसके आगे से 'सब प्रकार की आत्म-

[१२८०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रक्षण और विवेक की बाधाएँ हटा लेने का विचार भी खतरनाक है। क्या तुमने यह भी सोचा है कि यदि कहीं अवतरित होनेवाली चीज़ भागवत् सत्य के साथ मेल खानेवाली न हो या उसके विपरीत हो तो इसका क्या परिणाम होगा? साधक पर कब्जा करने के लिए विरोधी शक्ति ऐसे ही मौके की ताक में रहती है। केवल मातृशक्ति और भागवत सत्य को ही अपने अन्दर निर्विघ्न और अनवरत रूप से दाखिल होने देना चाहिये। लेकिन वहाँ भी विवेक-शक्ति तो होनी ही चाहिये, ताकि कोई झूठी चीज़ मातृशक्ति या भागवत सत्य के रूप में घुसने की कोशिश न करे। इस प्रकार के मिश्रण का परित्याग करने की शक्ति भी आवश्यक है।

अपने आध्यात्मिक परिणाम पर श्रद्धा रखो, गलतियों से बचो और अपनी अन्तरात्मा को अधिकाधिक मा की शक्ति और ज्योति की ओर उन्मुख करो। यदि केन्द्रीय तपःशक्ति सहृदयता और एक निष्ठा से काम करे तो एक-एक गलती की पहचान सत्य, प्रगति, और उन्नति की एक-एक सीढ़ी बन सकती है।

× × ×

पिछले पत्र में मैंने संक्षेप से काम-वासना और योग के विषय में अपने विचार बतलाये थे यहाँ पर यह और कह दूँ कि मेरा निर्णय किन्हीं मानसिक सम्मतियों पर या नैतिक आदर्श के लिये दृढ़ राग पर आश्रित नहीं है, अपितु कसौटी पर कसी जा सकनेवाली वास्तविकताओं पर, निरीक्षण और अनुभवों के आधार पर बना है। मैं इससे इंकार नहीं करता कि यदि जब तक आन्तर अनुभव और बाह्य चेतना में एक प्रकार का भेद रहने दिया जाय, बाह्य चेतना को घटिया प्रकार की प्रवृत्ति समझकर उसका समूल रूपान्तर किये बिना केवल उस पर अंकुश ही रखना हो तब तो काम-वासना की प्रवृत्ति का सम्पूर्ण त्याग किये बगैर भी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं और आध्यात्मिक प्रगति भी की जा सकती है। ऐसे साधक का मन बाह्य प्राणमय और शारीरिक चेतना से अलग होकर अपना स्वतन्त्र आन्तर जीवन बसर करने लगता है। पर इस बात को वास्तविक रीति से और पूर्णतया कोई विरला ही सिद्ध कर पाता है। लेकिन जब साधक आध्यात्मिक अनुभवों को प्राण और शरीर की भूमिकाओं में भी प्रसारित करता है तो काम-वासना के प्रश्न का इस रीति से हल नहीं किया जा सकता। इस भूमिका पर वह किसी क्षण भी विक्षेप करनेवाली विकार-पूर्ण शक्ति का रूप धारण कर सकता है। मेरा अनुभव है कि अहङ्कार (अभिमान, मत्सर और महत्त्वाकांक्षा) राजसी लोभ तथा इच्छाओं की तरह ही काम-वासना भी साधना में होनेवाले पतन और योग-भ्रष्टता का मुख्य कारण होती है। इसमें से पूर्ण उद्धार पाये बिना, अनासक्ति-मात्र से इस प्रश्न का निराकरण करने के प्रयत्न धोखे की टट्टी हैं। काम-वासना को उच्च भूमिका में ले जाकर दूसरा रूप देने का प्रयत्न—अर्वाचीन अगम्यवादी जिसका बहुत पक्ष लिया करते हैं—एक अंधाधुन्ध और बहुत खतरनाक परीक्षण है। सब से ज्यादा खतरा तो तभी है जब इस तरह से काम-वासना और आध्यात्मिकता की खिचड़ी कर दी जाये। यह उसमें पैदा होनेवाली विकृतियों और उसके दुरुपयोगों से स्पष्ट दीखता है। काम-वासना को भगवन्मुखी बनाकर वैष्णवों के 'मधुर भाव' की तरह उदात्त बनाने के प्रयत्न में भी बहुत विपत्तियाँ खड़ी हो सकती हैं, (यह राह भी खतरे से खाली नहीं) पर इस योग में जहाँ हमने भगवान के साक्षात्कार जैसी महत्त्व-पूर्ण और आवश्यक बात को ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपना अन्तिम लक्ष्य नहीं माना है, अपितु समग्र आधार और प्रकृति के रूपान्तर का अपने अन्तिम लक्ष्य में समावेश किया है। मुझे यह सर्वथा आवश्यक मालूम हुआ है कि काम-वासना पर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त करना भी साधना का एक लक्ष्य गिना जाय, ऐसा न किया जाय तो प्राण की चेतना कलुषित और मिश्रित रहती है। कलुषिता आध्यात्मिक मन की पवित्रता को विकृत करती है और ऊर्ध्व गति करती हुई शारीरिक शक्तियों के लिए एक जबर्दस्त बाधा के रूप में उपस्थित होती है। इस योग की माँग तो यह है कि नीचे की चेतना अर्थात् समग्र सामान्य चेतना अपने से ऊपर की आध्यात्मिक चेतना के साथ मिलने के लिए ऊर्ध्वारोहण करे और आध्यात्मिक चेतना (अन्त में अतिमानस की चेतना) मन, प्राण और शरीर में पूरी तरह से अवतरित होकर उनका रूपान्तर कर दे। जब कामवासना रास्ता रोके बैठी हो तो पूरी तरह से ऊर्ध्वारोहण सम्भव नहीं। जब तक प्राण में काम-वासना प्रबल हो, तब तक ऊर्ध्व शक्तियों का अवतरण खतरनाक हो सकता है, क्योंकि यह सम्भव है कि उसके अवतरित होते हुए प्रवाह को पीछे लौटानेवाली, उतरती आध्यात्मिक शक्ति का अन्य कामों में उपयोग करनेवाली, भ्रामक, मलिन और असम्यक अनुभूतियों के लिए चेतना की सारी शक्ति लगा देनेवाली विकृतियाँ किसी भी समय छिपी हुई काम-वासना के कारण उपस्थित हो जायँ। अतः साधक के लिए आवश्यक है कि इस विघ्न को अपने मार्ग से हटा दे, नहीं तो उसकी साधना सुरक्षित नहीं है, और अन्तिम लक्ष्य की ओर मुक्तगति नहीं।

तुमने इसकी विपरीत सम्मति के विषय में जो कहा शायद उसकी तह में यह विचार काम करता है कि काम-वासना भी भोजन और निद्रा की तरह प्राणमय और स्थूल शरीर के लिए आवश्यक है और इसके विग्रह से मनुष्य में बहुत-सी व्याधियाँ और मानसिक असमतुलन पैदा हो जाता है। यह तो ठीक है कि काम-वासना का अनेक सूक्ष्म रीतियों से लालन करते हुए केवल बाह्य निग्रह करने से शरीर में व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं और दिमाग भी खराब हो सकता है। जो डाक्टरी विचार-प्रणाली लोगों को ब्रह्मचर्य पालन करने से रोकती है, उसकी जड़ में यही विचार काम करता है। लेकिन मैंने देखा है कि चित्त-विभ्रम और अन्य महाव्याधियों में आदमी तभी फँसता है, जब सामान्य सम्भोग क्रिया के स्थान पर गुप्त और विकृत स्वरूप का लालन हो रहा हो, या कल्पना द्वारा प्राण भूमि पर होनेवाले एक प्रकार के सूक्ष्म लेन-देन का आश्रय लेकर विलास किया जाय। मैं समझता हूँ कि ब्रह्मचर्य पालन करने से और काम-वासना पर प्रभुत्व प्राप्त करने के सच्चे आध्यात्मिक तरीके पर चलने से लेशमात्र भी हानि नहीं हो सकती। आज यूरोप के भी बहुत-से डाक्टर मानने लगे हैं कि काम-वासना का संयम—यदि वह अविकृत, और सहज हो—लाभदायक है; क्योंकि रेतस् का जो तत्त्व इति में खर्च होता है वह तत्त्व जितेन्द्रिय होने से प्राण, मन और शरीर की शक्तियों का पोषण करनेवाले, एक और तत्त्व में बदल जाता है। इससे आर्यों का ब्रह्मचर्य का आदर्श—'रेतस' का 'ओजस' में रूपान्तर करके उसकी शक्तियों को ऊँचा उठाकर आध्यात्मिक शक्ति के रूप में परिवर्तित करना—न्याय्य और सप्रमाण ठहरता है।

केवल स्थूल निग्रह से कोई जितेन्द्रिय नहीं बन जाता। उसके लिए अनासक्ति-युक्त त्याग भाव ज़रूरी है और यह आवश्यक है कि चेतना काम-विकार से अपने-आप को अलग कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ले। चेतना यह अनुभव करे कि काम-वासना उसकी अपनी नहीं है, बाहर से आई हुई है, प्रकृति ने उसकी ओर फेंकी है और वह उसके साथ तादात्म्य करने के लिए या उसे अनुमति देने के लिए तैयार नहीं है। इस प्रकार अस्वीकार करने से हर बार वह अधिकाधिक दूर फेंकी जाती है; मन पर इसका कोई असर नहीं होता और कुछ समय बाद इसका मुख्याधार प्राण-शक्ति भी इसकी ओर से अपना हाथ खेंच लेती है और अन्त में शरीर भी इसे सहारा देना बन्द कर देता है। यह क्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक अवचेतना Subconcient तक इसे स्वप्न में भी जागृत करने में असमर्थ नहीं हो जाती, जब तक इस भिन्न अग्नि को फिर से सुलगाने के बाह्य प्रकृति के प्रयत्न बन्द नहीं हो जाते। यह विधि उनके लिए है जिनमें काम-वासना बहुत मजबूत जड़ पकड़े हो, पर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो इसे एकदम निश्चय-पूर्वक अपनी प्रकृति से निकाल बाहर कर सकते हैं, लेकिन हाँ, ऐसे विरले ही होते हैं।

काम-वासना को जड़-समेत निकाल बाहर करना साधना की सब से बड़ी कठिनाइयों में से एक है और इसमें बहुत समय लग सकता है, यह समझकर साधक को इसके लिए तैयार रहना चाहिए; परन्तु काम-वासना का समूल लोप सिद्ध किया जा चुका है और इससे व्यावहारिक मुक्ति जिसे कभी-कदाच ही अवचेतना के गाढ़ स्तर स्वप्नों के द्वारा भङ्ग करते हैं— बहुतों ने प्राप्त की है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्येष्ठ का मध्याह्न

[नरेन्द्र शर्मा]

(१)

ज्यों घेर सकल संसार, कुण्डली मार
पड़ा हो अहि विशाल,
आक्रान्त धरा की छाती पर
गुम-सुम बैठा मध्याह्न-काल !

मध्याह्न-काल ज्यों अहि विशाल,
केंद्र में सूर्य—
शोभित दिनमणि से गर्वोन्नत ज्यों भीम भाल !
कर गरल-पान सब विश्व शान्त ;
तृण-तरु न कहीं भय से हिलते—
जीवनीशक्ति जैसे, परास्त हो महामृत्यु से, पड़ी क्लान्त !
अधबुझी चिताओं के मसान के ही समान सर्वत्र शान्ति,
डिगती न तनिक तिल भर भी जो ज्यों भीषण भूधर दुर्निवार !
जब रण समाप्त ज्यों समरभूमि—
है दूर दूर तक धूलि-धूसरित ऊसर का विस्तृत प्रसार !
जड़-जंगम के सोते जग की निश्चल छाती,
क्षय के रोगी के, आखिर दम घुटते दम-सी सब कहीं हुँमस व्याकुल विषाक्त,
जो गिनी हुई या बची-खुची साँसें हैं, हैं वे भी दुर्लभ,
अब जगद्धात्री पयविहीन प्रस्वेदग्रस्त ज्यों मृत्यु-ग्रस्त रग-रग में विष होगया व्याप्त !

(२)

लो, महानाश के विजय-नाद-सी भस्म-भूत सबको करती
उठती लू ज्यों अहि-फूत्कार !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सामने, डसे मानव शव-सा नीरव है भव का देह-भार,
नीरव, ज्यों हत होते आहत के तृषित कण्ठ से निकल न पाती चीत्कार !
मर रहे प्यास से पक्षी-पशु,
पर नहीं रहे अब प्यास बुझाने को अधीर !
उर वसुंधरा का फट न सका,
भूतल पर से पर लोप हो गया कहाँ नीर ?
पहचान न पाओगे उनको—
अपने प्रेतों-से खड़े हुए हैं रूख सूख ठठरी ऐसे !—
भीषण भुजंग-फुफकार चार करती ले गई खींच सब सत जैसे !
धन-धान्य-पूर्ण थी वसुंधरा,
धमनियों-शिराओं-सी नदियों-सरिताओं को लू सुखा गई जैसे अजान !
वह गरज-गरज, धू-धू करती बहनेवाली अहि-फूत्कार,
हर-हर कर लू हरती चलती है विश्व-प्राण !
विषभरी भयावह फूत्कार !
भीषण बेरहम थपेड़ों से सबको पछाड़,
बेबस धरणी की छाती पर चर-अचर सभी को झुलस-जला, नीचे दबोच,
औ' कूट-कुचलकर मांस-हाड़,
लो, सहसा ठहर गई पल में ज्यों महाशून्य में महानाश का-सा पहाड़ !

(३)

क्या जीवन का अवशेष कहीं ?—
उपहास क्रूर अधरों पर धर अजगर अब देख रहा है भव !
(देखा सगर्व) सामने पड़ा उन्मूल, धूलि में मिले, पुराने बरगद-सा
ज्यों निखिल विश्व के पूर्ण पराभव का वैभव !
देखा सगर्व, सब ओर रेत-सी सूखी हुई प्यास देखी,
देखा, तरुओं में पत्ते भी तो नहीं रहे,
हरियाली जो नीलम-प्याली से ढलका दी नभ ने भू पर—
वह नहीं रही, बीती बहार के फूलों की तब कौन कहे !
देखा सगर्व, चुप बैठ न पाया अब जीवन !—
मृतप्राय पेड़ की कोटर से, लो, काँव-काँव कर उठा काग !
'जीवन-तरु का चिर-अजर पत्र, जिसको न जलाती प्रलय-ज्वाल,
उसको न डुबाते प्रलय-सिंधु,
फिर भस्म उसे कैसे करती मध्याह्न-काल के विषधर की विषभरी आग ?'—
यों काँव-काँव कर उठा काग !
देखा सगर्व, टूटी-सी एक झोंपड़ी है, जिसके समीप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छप्पर छाता चुपचाप एक मरियल चमार,
सूखा शरीर, ऋण-रोग-शोक की कठिन मार से झुकी कमर,
पर गले फूँस के छप्पर को छाता जाता मरियल चमार,
वह भी सँभाल लेगा आतप की विष-वर्षा का कठिन-भार !

धीरे धीरे अब बीत चला मध्याह्न-काल !
ढल गई दुपहरी की बेला, झुक गया सूर्य, झुक गया भाल,
चल दिया किसी अज्ञात विवर को अहि कराल !
हो चुका पराक्रम पूर्ण, हो गया दर्प-चूर्ण,
अब बीत गया मध्याह्न-काल !

इलाहाबाद ।

(०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गांधीजी का नया प्रकाश

[हरिभाऊ उपाध्याय]

गांधीजी को राजकोट की प्रयोग-शाला से 'नया प्रकाश' मिला है। यद्यपि राजकोट का प्रयोग राजनीति से संबंध रखता है, फिर भी गांधीजी का यह नया प्रकाश जीवन-व्यापी है; क्योंकि गांधीजी वास्तव में एकांगी नहीं हैं। वे जीवन के उपासक हैं, जीवन-शोधक हैं, और उनका कोई प्रयोग जीवन से पृथक् नहीं हो सकता। प्रयोग का क्षेत्र भले ही मर्यादित हो, पर उसका मूल्य और परिणाम मर्यादित नहीं रह सकता। जिसने गांधीजी के जीवन के और उनके प्रयोगों के इस मर्म को समझ लिया है उसे गांधीजी को समझने में दिक्कत नहीं हो सकती—न उनसे अकस्मात् परिवर्तनों से उसे भौंचक रह जाने या चकाचौंध हो जाने की ही ज़रूरत रहेगी।

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में गांधीजी ने जो अहिंसा का प्रयोग आरंभ किया है, वह वास्तव में भारतीय जीवन बल्कि मानवी जीवन को अधिक शुद्ध और सुसंस्कृत बनाने का ही उद्योग है। अहिंसा का सीधा-सादा अर्थ है—दूसरे को जान-बूझकर अपने स्वार्थ के लिए किसी प्रकार कष्ट न पहुँचाओ यह एक पहलू हुआ। दूसरा अर्थ है—सब को अपने समान समझो—अपनी ही तरह सबको प्रेम करो। यह दूसरा पहलू हुआ। अब क्या यह विस्तार से और दलीलें देकर समझाने की ज़रूरत है कि यही भाव और यही स्पिरिट है, जिसके बल पर कोई कुटुम्ब, संस्था, समाज या राष्ट्र सुख, शान्ति, सुव्यवस्था और सुन्दरता के साथ टिक सकता है और आगे बढ़ सकता है, या ऊँचा उठ सकता है? यदि नहीं, तो हम ज़रा सोचें कि क्या हम जीवन के तमाम व्यापारों में इस भाव से काम लेते हैं, ऐसी वृत्ति रखते हैं? यदि नहीं तो क्या हम अपने और अपने समाज, देश, संस्था, परिवार के प्रति सच्चे हैं और रह सकते हैं? और यदि यहाँ भी 'नहीं' ही कहना पड़े तो क्या यह हमारे लिए गंभीरता से सोचने की वस्तु नहीं है?

हममें और गांधीजी में ही फर्क है। वे जिस चीज़ को पकड़ते हैं जोर से पकड़ते हैं और उसकी ठेठ गहराई तक जाते हैं। जब तक ऐसा नहीं करते, उन्हें चैन नहीं पड़ती। इसी से वे जो बात कहते हैं, उसमें जोर—आत्मविश्वास—होता है और होती है गहराई। हम जो सतह पर रहते हैं और उथलाई में ही सन्तुष्ट रहते हैं, वे उस गहराई को पा नहीं सकते और इसलिए,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहते हैं, गांधीजी की बात हमारी समझ में नहीं आती। हम कहते तो सच हैं पर इससे गांधीजी की बात का मूल्य और महत्त्व कम नहीं हो सकता। जिस जगह से गांधीजी बोलते हैं उस जगह यदि हम नहीं हैं तो जैसा हमारे लिए उन्हें समझना मुश्किल है, वैसा उनके लिए भी तो हमें अच्छी तरह समझा देना आसान नहीं है। इसके दो ही उपाय हैं—या तो हमारी निगाह इतनी तेज़ हो, हमारी बुद्धि इतनी तीव्र हो कि उसे देख सकें या ग्रहण कर सकें, या इतनी श्रद्धा हो कि बात मान सकें। जिनमें दो में से एक भी आज नहीं है, उनके लिए भटकते रहने के सिवा कोई रास्ता नहीं है।

तो हम ज़रा समझें कि यह 'नया प्रकाश' है क्या चीज़? मेरी राय में असल में यह चीज नई नहीं है, हाँ गांधीजी देश को जहाँ ले जाना चाहते हैं, उसके विकास की वर्तमान अवस्था में उनके सामने यह चीज़ एकाएक प्रधान रूप से सामने आ गई—और उन्हें नई मालूम हुई; क्योंकि जिस तरह से उन्होंने इस चीज़ को अभी देखा—उस तरह इससे पहले शायद खुद नहीं देखा था। आखिर अब वे कहते क्या हैं? 'हमारी अहिंसा का असर प्रतिपक्षी—सामनेवाले—पर पड़ना चाहिये। उसकी सज्जनता, सात्त्विकता या दिव्यता हमारे सम्पर्क से जाग्रत होनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता है तो हमारी अहिंसा की साधना में कमी है। संख्याबल या बड़े प्रदर्शनों से हम सामनेवाले को भयभीत कर सकते हैं, दबा सकते हैं, पर उसका हृदय-परिवर्तन नहीं कर सकते। भयभीत होकर या दबकर वह जो कुछ करेगा, वह उसी क्षण मिट जायगा या वही मिटा देगा, जिस क्षण वह भय या दबाव निकल जायगा।' राजकोट में ऐसा ही हुआ। भय या दबाव से मिली अधिक वस्तु की बनिस्बत प्रसन्नता से, मत या, हृदय-परिवर्तन से मिली थोड़ी वस्तु अधिक स्थायी और मूल्यवान् है—यह विशेष समझाने की ज़रूरत नहीं।

अब तक अहिंसा के सार्वजनिक प्रयोगों में अर्थात् सत्याग्रहों में जो सफलतायें मिलीं वे अधिकांश में गुण-बल की अपेक्षा संख्याबल से मिलीं, ऐसा कहना अयथार्थ न होगा। अब तक गांधीजी इस बारीकी से इस चीज़ को न देख सके थे। अब राजकोट में ठाकुरसाहब ने या दरबार वीरावाला ने इस हाथ चीज़ दी और उसी समय उस हाथ से खींच ली—यही नहीं, सही चीज़ के होने देने में कितनी उलझनें डालीं, कितनी परेशानियाँ गांधीजी और उनके सहायकों के लिए पैदा कर दीं। इसका कारण यही है कि राजकोट-सत्याग्रह के भीषण स्वरूप से डरकर या दबकर मूढ़ता में या चालाकी से पहले कुछ कर दिया और बाद में उसी को उलटने की कोशिश की। इसका असली कारण खोजते हुए गांधीजी के हाथ सही कुञ्जी लग गई। उन्होंने चोर पकड़ लिया। जब तक उसे पकड़ा नहीं था—बड़े परेशान थे—थक से गये थे। अब उसे पकड़ ही नहीं लिया—दुनिया के सामने लाकर रख दिया और डंके की चोट ऐलान कर दिया कि मेरे प्रयोग में मेरे साथियों की कार्रवाइयों में—यह त्रुटि या गलती थी। अब बूढ़ा फिर जवान हो गया है और हमें हाथ पकड़के उल्लास से रास्ता दिखा रहा है।

यदि चीज़ गलत तरीके से हासिल की गई है तो उसे रखने का हमें क्या हक है? क्या वह हमारे पास रह भी सकेगी? क्या यह नीति और व्यवहार का ज्ञान 'हंस' के पाठकों को नये सिरे से कराना होगा? इसीलिए गांधीजी ने ग्वायर-अवार्ड के लाभों को खुशी से छोड़ दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षुद्रबुद्धि इसे मूर्खता कह सकती है, शुद्ध और दीर्घ दृष्टि इसे उचित ही मानेगी।

अहिंसात्मक प्रतीकार का जिसे हम सत्याग्रह कहा करते हैं, असर सामनेवाले पर तीन तरह से होता हुआ दिखाई देता है—

(१) हमारी अहिंसा अर्थात् प्रेम-भाव या आत्म-भाव का सीधा असर हृदय-परिवर्तन के रूप में हो—

(२) जाग्रत लोकमत के प्रभाव के सामनेवाले की बुद्धि जाग्रत हो, वह हानि-लाभ का विचार करके हमारे पक्ष में फैसला करता है—मत-परिवर्तन करता है—

(३) हमारे संगठित भीषण आयोजनों से वह किंकर्तव्य-मूढ़ और हतबुद्ध होकर हमारी शरण आता है।

राजकोट का उदाहरण इसमें मेरी समझ में तीसरे नम्बर का है—ब्रिटिश सरकार ने जो संघ-शासन की योजना पेश की है, वह दूसरे नम्बर का है और अब राजकोट-दरबार जो कुछ देंगे, वह शायद पहले नम्बर का होगा। वैसे तो प्राचीन उदाहरण वसिष्ठ और विश्वामित्र का प्रसिद्ध ही है—गांधीजी के व्यक्तिगत जीवन में तो ऐसी मिसालें बहुत मिलती हैं और आज यह निःशंक रूप से कहा जा सकता है कि गाँधीजी का व्यक्तिगत शत्रु कोई नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र में उनके विरोधी व्यक्ति और दल जरूर हैं; मगर सार्वजनिक क्षेत्र में जो कुछ विरोध है, उसकी जिम्मेदारी तो उन सब लोगों पर भी है जो उस क्षेत्र में उनके साथी, सहायक या अनुयायी हैं। क्योंकि उनके दोष, त्रुटियाँ, अपूर्णतायें—सबका वह सम्मिलित असर है।

अहिंसा की महिमा में हमारे पूर्वजों ने कह रखा है कि जो पूर्ण अहिंसामय हो गया उसके सामने शत्रु अपना बैर-भाव छोड़ देते हैं। शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं। योग-दर्शन में पतंजलि ने यही कहा है—अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। इस तरह गांधीजी का 'नया प्रकाश' वास्तव में कोई नई कल्पना या तरंग नहीं है, बल्कि एक अनुभव-सिद्ध तथ्य है। हाँ, उसका सामूहिक प्रयोग अलबत्ते गाँधीजी की संसार को नई देन है और अब जो 'नया प्रकाश' उन्होंने लोगों के सामने रखा है, वह अवश्य भारत की राजनीति को ही नहीं, सारे भारतीय जीवन को ऊँचा उठाये बिना नहीं रहेगा। जो बात जितनी ही निर्दोष और शुद्ध होगी, वह उतना ही बल और मजबूती रखेगी—इसमें भी भला किसी को कोई सन्देह हो सकता है? जब एक बार हम यह बात मान लेते हैं कि हिंसा से अहिंसा का मार्ग श्रेष्ठ है, और हमने हिंसा के मार्ग को छोड़ दिया है, अहिंसा के ही मार्ग से हमें जाना है, तो फिर गांधीजी के 'नये प्रकाश' को हमें उपेक्षा, खिजलाहट और कुत्सा से न देखना चाहिये। यह आत्म-घात के समान होगा। गाँधीजी गहरी जमीन में बीज बोते हैं, गहराई में जाते और वहीं से बहुत बार बोलते हैं—इसलिए उसे समझने में या प्रकट रूप से फल के दिखाई देने में देर लग सकती है—और उतना धीरज हमें रखना भी होगा—परन्तु यह नहीं हो सकता कि वह अन्यथा निकले। फिर गांधीजी अपनी थोड़ी भी त्रुटि के प्रति बहुत जाग्रत रहते हैं, इसलिए तो हम उनके हाथों में 'राजनीतिज्ञ' या 'कूटनीतिज्ञ' के कहलानेवालों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित हैं। ऐसों की भूल से कष्ट उठाने में भी मुझे तो सौभाग्य और गौरव का अनुभव होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोपहर की बात

['अंचल']

घूम-घूमकर उड़ते सूखे पत्ते
दबे-दबे-से, आते
क्षुब्ध बवंडर
लाठी लेकर थका काबुली बैठा
गली के कोने पर,
करता जैसे भूली किसी शैल-संध्या की याद।
धूल के ये अम्बर
और शून्यता-सी भर देते
गंदी स्तब्ध कोठरी में अनजान
सो रहा अन्धा कुत्ता एक
वहीं पर मैली शय्या
धानी चुनरी बिछाये लेटी नारी,
घायल चील-सी
अधनंगी अज्ञात
किसी श्रमजीवी की अभिशाप
चूसता फिर निचोरता सूखे स्तन
भूखा शिशु।
ऊँघते कौवे करते शोर
आर्त कण्ठ से जैसे।
सड़क के जुक्कड़ के उस पार
मृत्यु-से सन्नाटे को चीर
बरतनों के मलने की आती कुछ आवाज़
घरों की गरीब बहुएँ
गृहस्थी के विषाद से व्याकुल

[१०६०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मर्म में मरी-सी याद लिये।
मुहल्ले की नवजवान पगली
नंग-धड़ंग लैम्प के खंभे से टिकी
सोच रही जैसे अँधियारे की बात
तन्द्रालुस दिवा
जैसे आकाश युग-युग से दिगन्त में फैली धरणी
गंभीर यातना से आच्छन्न
तीखी धूप की जलन से दग्ध
फुँकी जाती अपने में आप
झाँ-झाँ करती रौद्रमयी रजनी-सी।
उधर छाया में वहीं,
सृजन के सुख से अन्ध
परन्तु चिररिक्ता, चिरनिःस्व।
भूखा मज़दूर
उसका नर
हाँ मज़दूर
कयामत जिसकी मुट्ठी में बन्द है,
बाजार से अब लौटेगा
ख़ाली हाथ—मुमकिन है बन्द हाथ
उसका मालिक
उस अधपके मांस पिण्ड का स्रष्टा।
दो रोटी पाने पर भूले
फिर पयस्विनी-सी संहार।
सामने पीपल के दरख्त
बाल कटी भोंडी औरतों से
खड़े खड़े घोंसलों से ख़ाली
पूर्व करते पर्व वह नाश का
देखते कैसी भयावक ध्वंस की यह लग्न।
जब आता थका मज़दूर
भूखा किन्तु मुफ़लिस मौन
बोले एक हाहाकार
जैसे एक जुम्बिश में हिला देगा
सृष्टि का, शोषकों का सत्ता भार
प्रलय का ज्वालागिरि साकार
आता मूक कातर दीन
देखता भूखी पड़ी उसकी छबीली नार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फ़ाकों से घिरी कमज़ोर दुबली
नव प्रसूता-सी शिथिल निस्पन्द
वह बच्चा सलोना
टूटते तरु-सा उसी के बिन्दु का इतिहास
वासना का यह प्रथम पग-चिह्न
बिन रहा सति कुत्ते के
पागल;स्यार-सा उन्मत्त हो
बैठा वहीं गरदन उठाके।
पास मस्जिद से निकलती
भूत सी अल्लाह की आवाज़
बस तनिक-सी दोपहर की बात।

प्रयाग।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवन और आकांक्षा

[वृजबिहारी महाँती,]

[अनु० प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक]

[लेखक उत्कल-साहित्य के इने-गिने चिन्ताशील लेखकों में है। मौलिकता को साथ लेते हुए ऐसे बहुत कम किसी भी साहित्य में मिलते हैं। उत्कल-साहित्यक्षेत्र में दिनों-दिन आपकी ख्याति बढ़ती जा रही है।—सं०]

जीवन के अशेष प्रकार की गति और परिणति के भीतर एक आकर्षण है। इसे बाद देकर देखा जाय तो, जीवन में कोई भी महत्त्व नहीं रह जाता। आकर्षण की अभिव्यक्ति से आकांक्षा की उत्पत्ति ने कर्म-जगत को बराबर उद्बुद्ध कर रखा है। कर्म-धारा के वैचित्र्य-विधान में जीवन का स्वाच्छन्द्य केवल आकांक्षा को ही अनुसरण करता रहता है। जीवन को एक विराट शक्ति का सामान्य स्पन्दन मान लिया जाय, तो आकर्षण उस स्पन्दन की व्यापक क्रिया है, जिसकी परिसमाप्ति के लिए किसी भी सीमा का निर्देश नहीं। जीवन के सामने एक आकर्षण है। जिस समय वह बन्द हो जायगा, उस समय जीवन में और विकास की अवस्था नहीं आ सकती। आकर्षण ही यह दिखा देता है कि यह जीवन वस्तु-जगत की सीमा में आबद्ध नहीं है। जीवन की गति अनंत न हो; पर यह परिमित सांसारिक आयुकाल के भीतर शेष नहीं हो जाती।

सबों की आकांक्षा समान नहीं होती। जीवन की व्यापकता को जो जिस तरह से अनुभव करता है, उसकी आकांक्षा भी वैसी ही उन्नत विवेचित होती है। साधारण लोगों की आकांक्षा में कोई विशेषता नहीं रहती; कारण, उसके जीवन के आकर्षण में उतनी व्यापकता नहीं। एक दूरदृष्टि-संपन्न राजनीतिज्ञ या मनस्वी वैज्ञानिक, जीवन के एक उन्नत स्तर में पहुँचकर, अपनी आकांक्षाओं की जो सफलता दिखलाते हैं, वह साधारण एक विषयवान् व्यक्ति की धारणा में भी नहीं आ सकती। आकांक्षाओं के तारतम्य के अनुसार, उच्च या नीच कर्म-धारा के साथ-साथ, कर्मियों का एक स्वतः श्रेणी-विभाग हो जाता है। क्षुद्र आकांक्षाओं की फल-प्राप्ति में जीवन का सब उत्साह अगर खर्च हो जाय, तो मनुष्य की दृष्टि-रेखा अधिक दूर नहीं जा सकती। मानविकता का उन्नत विकास, सामान्य वस्तु-मोह की आबद्ध आकांक्षा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के मन्त्रों से नहीं आता। जीवन की व्यापकता एक सरलता चाहती है, इसमें शक्ति का संघर्ष नहीं। जगत में कोई भी जाति समर-प्रिय नहीं है; किन्तु जिस समय कुछ विरुद्ध क्रियाएँ उसके जातीय जीवन की स्पन्दन-गति में बाधा देती हैं, उस समय वह स्वतः कुछ खौल उठता है। स्वार्थ की दुहाई देकर भी जातीय उत्तेजना लाई जा सकती है और समर को जाति की स्वार्थ-सिद्धि के लिए भी वरण किया जा सकता है। उपर्युक्त दोनो उदाहरणों से, एक में जाति की मौलिकता की रक्षा और दूसरे में जाति का स्वार्थ निहित रहने पर समर की आवश्यकता होती है। जाति की उन्नति-कामना के लिए राजनीतिज्ञ समर को शेष और सामयिक अवलम्बन के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। जब जाति की भाव-धारा में कोई प्रबल प्रतिबन्ध नहीं आता, तब तक जाति की आकांक्षा को संघर्ष की ओर चालित करना उचित नहीं। जातीय जीवन की स्थिति जिस समय असम्भव हो उठेगी, उस समय प्रतिक्रियाशील शक्ति के ध्वंस-साधन में अयथार्थ नहीं प्रतीत होगा। अतएव, जाति के कर्णधार के रूप में जो लोग देश के राजनीतिक क्षेत्र में विचरण कर रहे हैं, उनका विशेष सावधान होना आवश्यक है। एक दुराकांक्षा हृदय में पोषण कर, समग्र जाति विप्लववादी कर देने से देश का मंगल नहीं होता। देशवासियों के अन्तर की अनुभूति के साथ, उनके वास्तविक अभाव का अनुभव कर, जातीय कर्मप्रेरणा लाने के लिए आकांक्षित न होने पर देश-नायक का स्थान अधिकार करना वृथा चेष्टा है। देशसेवा का व्रत अवलम्बन करना बहुत कठिन है। एक की व्यक्तिगत आकांक्षा अपूर्ण रहने पर केवल एक ही जीवन बाधाग्रस्त होता है; किन्तु समस्त जातीय जीवन की आकांक्षापूर्ण न होने पर देश का अधःपतन होता है। अनेक धर्म-विप्लव और राजनीतिक आंदोलनों से यह प्रमाणित हो चुका है। एक असाधारण धर्म-संस्कारक या राजनीतिक सब दिन के लिए जाति के कर्म-मार्ग का नियंत्रण नहीं कर सकता। उनकी दीक्षा जो ग्रहण करेंगे, उन्हें ही उच्चाकांक्षाओं का पोषण करना उचित होगा। इन आकांक्षाओं के ऊपर स्वार्थ की अगर सामान्य छाया भी पड़ जाय, तो समग्र जाति के बीच एक विद्वेष-भाव उत्पन्न होने की संभावना रहती है। जातीय जीवन के स्रोत में अपनी सत्ता को मिला देने पर ही देश सेवा का व्रत सार्थक होता है। ऐसा ही व्रत जो पालन करते हैं, उन्हीं का जीवन धन्य है। और ऐसे लोगों की आकांक्षा का अनुसरण करने पर जाति का महत्व स्वतः प्रकाशित हो उठता है।

शक्ति के उन्मेष में आकांक्षा की सफलता निहित है। शक्ति-हीन की आकांक्षा आकाश-कुसुम के समान कल्पना का एक अलीक विकास-मात्र है। वह एक मुहूर्त के लिए ही उसके प्राण में एक क्षीण स्पंदन-मात्र ला सकता है; किंतु जगत में उसकी गणना नहीं। शक्तिमान् और शक्ति-हीन के आकांक्षा-गत पार्थक्य में जगत के जावनीय महत् और क्षुद्र कर्मों की सृष्टि है। अगर एक विपुल यश और ऐश्वर्य का अधिकारी, तो दूसरा पथ का भिखारी है—जिसे दिन-भर के समस्त परिश्रम के विनिमय में भी एक टुकड़ा रोटी तक नहीं मिलता। एक के सामान्य इंगित के लिए असंख्य नर-नारी प्रस्तुत रहते हैं, पर दूसरे की जीवन-व्यापी कातर-वाणी भी किसी के कर्ण-गह्वर में प्रवेश तक नहीं करती। यह पार्थक्य क्यों? दरिद्र क्या धनवान होने की इच्छा नहीं रखता? शक्ति-हीन क्या शक्ति-प्राप्ति की अभिलाषा नहीं रखता? जीवन की गति को अनुसरण न करने पर इसका उत्तर नहीं मिलता। इसे लेकर कोई पूर्व-जन्म के संस्कार की ओर निर्देश कर सकता है; पर वास्तव में इसके मूल में एक क्रियात्मिका शक्ति ही काम करती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। जन्मांतर को कोई स्वीकार करे अथवा न करे, उन्हें यह तो मानना होगा कि शक्ति ही आकांक्षा का पोषण करनेवाली है। हृदय में आकांक्षा का पोषण करने ही से वह फलवती नहीं हो जाती, उसके लिए मन की चंचलता को दूर कर शक्ति-संचय करने की आवश्यकता होती है। स्वप्नाविष्ट मनुष्य असंख्य कर्मों का संपादन जैसे एक मुहूर्त में ही कर देता है, किंतु जाग्रतावस्था में उसकी असारता का अनुभव करता है, उसी प्रकार मन की क्षिप्रगति में असंख्य भित्तिहीन आकांक्षाएँ उठकर फिर किसी अतल में विलीन हो जाती हैं। जो आकांक्षाएँ जीवन की गति में रेखा-पात कर चली जाती हैं, उनका अनुसरण कर मनुष्य की कर्म-धारा सदा प्रभावित है। शक्ति-हीनता से जीवन की गति जब निम्नगामी होती है और मानविकता का विकास संकुचित होने लगता है, उस समय आकांक्षा का स्पर्श भी मानस-पटल में मलीन हो जाता है। मनुष्य जब तक उपयुक्त शक्ति का अधिकारी है, तब तक उसके जीवन में ऐसा पतन नहीं आता। बहुत समय मनुष्य स्वतः प्रेरित होकर शक्ति-हीन होता है। नीच कल्पनाओं को सार्थक बनाने के उद्देश्य से वह जीवन के नीच-से-नीच पतन तक चला जाता है। एक बार केवल जीवन का महत् लक्ष्य भूल जाने पर फिर ऊपर चढ़ना सहज नहीं। मनुष्य की अधोगति में उसके आत्म-विश्वास का ह्रास हो जाता है।

जीवन की गंभीर चिन्ता में आकांक्षा की गति महान् होती है। उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट कर्म इसका परिचय देते हैं। जीवन केवल भोग-विलास की ही सामग्री नहीं। परितृप्त कामनाओं में इसका विचार नहीं किया जाता। जीवन का दुर्गम पथ चिरदिन रहस्याच्छन्न रहता है। मनुष्य की आकांक्षा इस रहस्य को भेद करने के लिए शायद ही अग्रसर होती है। दुनिया में उसकी (मनुष्य की) कुछ दिनों की अवस्थिति, उसे केवल वस्तु के मोह में भुला रखती है। कामिनी और कांचन की प्राप्ति में वह सब आकांक्षाओं की सफलता समझ बैठता है। वह जीवन के आकर्षण को एक कृत्रिम सौन्दर्य में संयुक्त कर देता है; किन्तु परिणाम में देखता है, केवल एक अभाव जिसे दूर करने के लिए वह कभी आकांक्षित नहीं हुआ। कुछ घटनाओं के दर्शन से एक दिन राजपुत्र गौतम के जीवन में जो परिवर्तन आया था, उससे इतिहास के पाठक विस्मृत नहीं। समग्र मानव-जाति की पीड़ा को दूर करने के लिए वे संसार-त्यागी बने। मनुष्य को मुक्ति का पथ दिखाना उनके जीवन की एकमात्र आकांक्षा हुई। इस आकांक्षा का अनुसरण कर उन्होंने जिस महत् सत्य का आविष्कार किया, वह युग-युग तक मनुष्य के अज्ञानांधकार को दूर करता रहेगा। प्रत्येक युग में मनुष्य के जीवन से कल्मष को दूर करने के लिए महापुरुषों का आविर्भाव होता है। उनकी वाणी में एक असाधारण प्रेरक शक्ति रहती है। जड़ता-ग्रस्त, हीन और कामना परतंत्र मनुष्य भी इन वाणियों के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकता। श्रीचैतन्यदेव के धर्म-प्रचार के समय दुर्वृत्त जगाई और मधाई के जीवन में भी ऐसा ही परिवर्तन हुआ था। मनुष्य जीवन के जितने ही उन्नत स्तर तक पहुँचता है, उसकी आकांक्षा भी वैसी ही महत् होती जाती है। सत् आकांक्षा प्रायः अपूर्ण नहीं रहती।

शक्ति-संरक्षण में मनुष्य के आत्म-विश्वास का प्रादुर्भाव होता है। आत्म-विश्वास आकांक्षा की सफलता से उन्नत कर्म-मार्ग की सृष्टि करता है। जगत् के श्रेष्ठ कवि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिकों की भाव-धारा में इसका प्रभाव अचञ्चल रहता है। उनके अन्तर की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गंभीरतम आकांक्षा की अभिव्यक्ति इसी के ऊपर प्रतिष्ठा चाहती है। कर्मियों की आकांक्षा भिन्न हो सकती है; किन्तु उनके आत्मप्रत्यय की न्यूनता वांछनीय नहीं। जगत में अमर कीर्ति के अधिकारी विशाल आकांक्षा का पोषण कर मौन नहीं रह सकता। उसकी कर्म-प्रचेष्टा बहुत असाधारण हो उठती है। जीवन के निम्न या उच्च स्तर उसे बाधा नहीं पहुँचा सकते। उसकी गति में जो स्वतंत्रता रहती है, वह सर्वसाधारण में लक्षित नहीं होती। वह जगत् से जो कुछ भी ग्रहण करता है, वह सर्वों के आयत्ताधीन रहती है; किन्तु उसकी प्रकाश-प्रणाली जगत के समक्ष एक अमर विशेषता दिखाकर उसकी महत्ता को बढ़ा देती है। एक मनीषी का कथन है जगत में मौलिकता का कभी परिवर्त्तन नहीं होता। केवल प्रकाश-प्रणाली की भिन्नता उसमें एक न्यूनता ला देती है। प्रकृति का वर्णन सब कवि करते हैं; किन्तु औरों से एक को क्यों हम बड़ा मान लेते हैं? कालिदास और शेक्सपीयर ने काव्य-जगत में जो वैचित्र्य दिखा दिया, वह क्यों आज तक दूसरों से संभव न हो सका? कोई-कोई कह सकते हैं, जन्मगत प्रतिभा के बल पर कालिदास और शेक्सपीयर जगत में इतने पूज्य हो गये; किन्तु प्रतिभा के विकास में कोई खास ऐसा नियम नहीं है। साधना के बल पर शक्ति-संचय करने पर कोई भी प्रतिभावान हो सकता है। आर्य मनीषियों ने अपने जीवन में इसका यथेष्ट दृष्टान्त दिया है। जीवन की व्यापकता को लक्ष्य में रखकर आकांक्षा को विस्तीर्ण कर देने पर मनुष्य की कर्म-साधना स्वतः महत् हो उठती है। मनुष्य के जीवन में तरह-तरह की बाधाएँ आती हैं, जटिल कर्म-समस्या में वह कभी-कभी घबरा भी जाता है, छोटी-छोटी आकांक्षाओं की विफलता से वह अपने को असहाय भी समझ सकता है; पर जब तक उसके पास आत्म-विश्वास है, तब तक उसको हेय ज्ञान करना उचित नहीं। बहुत बार यह देखा गया है, संसार की दृष्टि में जो अवहेलित है, उसने एक असाधारण प्रतिभा का विकास दिखाया है। जगत में हठात् किसी की हीनता का परिचय देना समीचीन नहीं। विल्वमंगल (महाकवि सूरदास ही उत्कल-साहित्य में इसी नाम से परिचित हैं।) ऐसे कामान्ध भी कभी महात्मा हो सकते हैं। क्षुद्र के महत् होने में जीवन का विकास स्पष्ट लक्षित होता है। इसीलिए आकांक्षा को किसी क्षुद्र सीमा में आबद्ध कर देना कभी उचित नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाँगीरी इन्साफ़

[इक़बाल वर्मा 'सेहर']

एक दिन नूरजहाँ पहुँची महल पर जाकर, और लगी देखने जमना का सुहाना मंज़र[1]।
सुबह का वक़्त जो था अर्ज़ समा[2] पर हारी, ताज़ादम[3] हो के फ़ज़ा[4] खेल रही थी यकसर।
मछलियाँ भी पए-तफ़रीह[5] वहीं दरिया में, उसके पानी से उछलती थीं इधर और उधर।
देखते ही यह समाँ नूरजहाँ ने सोचा, आज़माइश हो निशाने की कुछ इस मौक़े पर।
ले लिया हाथ में फिर उसने तमंचा फ़ौरन, एक मछली प उसी वक़्त पड़ी जाके नज़र।
और उसी वक़्त तमंचे की कड़क से हर सू[6], एक जमहे को हुआ वह समाँ ज़ेरो-ज़बर[7]।
लेकिन अफ़सोस कि चाही हुई मछली के बजाय, एक धोबी प पड़ा जाके निशाने का असर।
जान से अपनी ही वह हाथ ग़रज़ धो बैठा, पार्चे[8] धोने को पानी में गया था जो उतर।
सदमे-ग़म से यकायक तड़प उठी धोबन, पहुँची दरबारे-शही में वह मलूलो-मुज़तर[9]।
की शहंशाह जहाँगीर से जाकर फ़रियाद, और रो-रोके कहा हाले-वफ़ाते-शौहर।
इस क़दर रंजे-रऐयत से हुआ दिल को अलम[10], ख़ुद शाहंशाह की आँखों में भी अश्क[11] गये भर।
यह हुआ हाल मगर देखते ही देखते फिर, आ गया चेहरए-आली पै महान[12] रंगे-दिगर[13]।
हो के संजीदा वहीं उसने तमंचा अपना, रख दिया हाथ पै धोबिन के बिला ख़ौफ़ो-ख़तर।
साथ ही तान के सीने को हुआ इस्तादा[14], और ये अल्फ़ाज़[15] हुए उसके दहन[16] से बाहर:—
'इस तमंचे से मुझे जल्द ही कर तू भी हलाक, ताकि हो जाय सब इस तरह मुदावाय-ज़रर[17]।'
'क्योंकि इन्साफ़ का बेशुबह तक़ाज़ा है यही, बेवगी ही में हो बेगम की भी अब उम्र बसर।'
सुन के उस वक़्त जहाँगीर के मुँह से यह बात, जो भी मौजूद थे दरबार में सब थे शशदर[18]।
और उनसे भी बुरा हाल था फ़रियादी का, यानी धोबिन भी खड़ी काँप रही थी थर-थर।
आख़िरश उसने तमंचे को पटककर उसजा, यों कहा डाल के क़दमों प जहाँगीर के सर।
'है शहंशाह का इर्शाद[19] बजा और दुरुस्त, ऐसे इन्साफ़ की तो चाह नहीं मुझको मगर।'
'जिससे इकगूना[20] रऐयत ही की हालत हो जाय, बेवगी की भी ज़रूरी[21] से ज़ियादह अबतर।'
'बस यह बेहतर कि अब इस हाल में जो कुछ गुज़रे, पड़ के मुझ एक ही बेवा प वह सब जाय गुज़र।'
कर चुकी अर्ज़ इसी तरह जहाँगीर से जब, मुतमइन[22] हो के वह फ़िलफ़ौर[23] गई अपने घर।
'सेहर' अलबत्ता शहंशाह की फ़ैयाज़ी[24] से, अपने घर लेके गई सीमो-ज़रो-लालो-गुहर[25]।

---

१. दृश्य ; २. अर्ज़=पृथिवी, समा=आकाश ; ३. छाया हुआ ; ४. वातावरण ; ५. विनोदार्थ ; ६. तरफ़ ; ७. अस्तव्यस्त ; ८. कपड़े ; ९. मलूल=दुःखी, मुज़तर=परेशान, १०. रंज ; ११. आँसू ; १२. तत्काल ; १३. दूसरा रंग ; १४. खड़ा ; १५. शब्द ; १६. मुँह ; १७. नुक़सान का इलाज (प्रतिशोध) ; १८. हैरान (चकित) १९. हुक्म ; २०. एक ही प्रकार ; २१. अवतरी ; २२. सन्तुष्ट ; २३. तुरन्त ; २४. उदारता ; २५. सीम=चाँदी, ज़र=सोना, गुहर=मोती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दो स्केच

[भुवनेश्वरप्रसाद]

अँधेरी घुप गलियों में हवा लपटों की तरह ऊँचे सीले मकानों से टकराकर एकरस हिंसक आवाज़ करती हुई भर-भर जाती थी।

मोटा, भद्दा डाक्टर और दुबला रोगी-सा विद्यार्थी, विलास हाथ में हाथ डाले फिसलौने खड़चड़े पर खामोश चले जा रहे थे। कीचड़ से बचने के लिए वह बराबर मेढकों की तरह फुदक रहे थे...। एकबारगी विलास का पैर कीचड़ में छपक गया और वह उतावली से चिल्ला पड़ा—'डाक्टर तुम मुर्दा हो, बिलकुल मरे हुए, इससे ज़्यादा कुछ भी तो नहीं। तुम जानते हो तुम मुर्दा हो ?...मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ, लेकिन मेरे चाहने से क्या होता है, तुम तो मरे हुए हो।'

'अच्छा, अच्छा',—डाक्टर ने अपने हाथ का पूरा सहारा देते हुए बे-मन कहा—मैं तुमसे इतनी साफ़गोई इसलिए कर रहा हूँ कि मैं तुम्हें चाहता हूँ। क्या तुम जानते हो मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ ?'

'हाँ, हाँ...क्यों नहीं जानता।'

'यह तो नरक है डाक्टर, नरक ! यह मुर्दों की बस्ती है। यह भरा-पूरा शहर मुर्दों की बस्ती है...बाज़ मरतबा तो मैं सोचने लगता हूँ कि यह बिलकुल ख़ाली है...यह शहर है ही नहीं, यह कोई प्रेत है ! डाक्टर क्या यह मुमकिन है कि इस मनहूस शहर में हज़ारों-हज़ारों आदमी सिर्फ़ खाने, पीने और सोने के लिए ही ज़िंदा है। अँधेरा, कीचड़, आँधी, बारिश चारो तरफ देखो कहीं जीवन का हल्का सा भी इशारा है। नहीं ! घूम कर देखो। कोई यह यकीन करेगा कि यह एक शहर है जहाँ आदमी रहते हैं—ज़िंदा, पूरे-पूरे मनुष्य जो ह्यूमेनिटी कही जाती है ?...वह क्यों ज़िंदा हैं। माताएँ प्रसव की मुसीबत आखिर क्यों झेलती हैं ?...कल्पना करो कि यह बस्ती गारत हो गई, इसका नाम-निशान मिट गया। गोबर के चोथ की तरह बारिश ने धुलाकर बहा दिया। लेकिन दुनिया में कोई फर्क न पड़ा। कोई जानेगा भी नहीं कि घूरे पर गोबर का एक चोथ नहीं रहा। और कोई जाने भी क्यों...थोड़े-से क्लर्क, दुकानदार, दलाल, अफसर—और हर एक शहर में बिल्कुल ऐसे ही क्लर्क, दुकानदार दलाल और अफ़सर हैं, बिल्कुल ऐसे ही !...यह इतनी डुपलीकेट कापियाँ आखिर क्यों हैं। जब खुद असल ही इतना जलील है। शायद सैकड़ों जगह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी तरह बारिश हो रही होगी, इसी तरह हवा फुफकार रही होगी...डाक्टर तुम इस पर भी निराश नहीं होते...इतने पर भी।'

'नहीं-ईं, मैं मायूस क्यों हूँगा।'—डाक्टर ने जवाब दिया जो विलास को सँभालने की 'मेहनत' से हाँफ-सा गया था।

'हूँ फ़ तुम्हें किसी बात पर गुस्सा ही नहीं आता। तुम मरे हुए हो न—तुम तो मुर्दा हो!'

'मैं तो खुद ही कहता हूँ।'

'तुम यह कहते ही तो हो, महसूस तो नहीं करते। क्या तुम महसूस करते हो कि तुम जिंदा होते हुए भी एक लाश की तरह धीरे-धीरे गल रहे हो, बिथर रहे हो?'—We are all decaying with little patience—little patience... हमें तो कब का मरघट पहुँच जाना चाहिये था।

'वाक़ई कब का पहुँच जाना चाहिये था', डाक्टर ने और अनमने कहा।

'समझ में नहीं आता तुम किस तरह जिन्दा हो, यह तो मौत है, डाक्टर मौत!'

'मौत?'

विलास ने कुछ ही कदम चलने के बाद अपने-आप को झटककर छुड़ा लिया और क़रीब-क़रीब गिर ही पड़ा था। सँभलकर वह अपनी बहस जारी रखने के लिए एक सीली दीवार से सटकर खड़ा हो गया।

'मुझे नहीं मालूम, नहीं मालूम—जब तक जिन्दगी से कोई Campelling Contact न हो, कोई कैसे जिन्दा रह सकता है।'

'नहीं रह सकता...लेकिन रहता ही है,'—डाक्टर अब वाक़ई ऊब गया था।

'जिंदा रहता है? हम लोग जिंदा कहाँ रहते हैं। हम लाशों की तरह सड़ते-गलते रहते हैं। हमारा खून एक क्रूर कांसप्रेसी से पानी होता रहता है तुम इसे जिंदगी कहते हो। तुमसे आब-हवा गंदी होती है। तुम इसे ज़िन्दगी कहते हो, ज़िन्दा चीज़ें तुमसे छूकर झुलस जाती हैं। तुम इसे ज़िन्दगी कहते हो डाक्टर'—उसने अपने स्वाभाविक चिड़चिड़ेपन से डाक्टर का हाथ पकड़ते हुए कहा। 'इसे कौन ज़िन्दगी कहेगा?.....डाक्टर मेरे पास एक छदाम नहीं है, एक सिगरेट नहीं.....एक किताब नहीं जिसे मैं बेंच सकूँ, इसलिए मैंने शराब पी ली.....और इसके बाद। डाक्टर क्या मैं जानता नहीं कि इसके बाद अथाह प्रलय है।'

'चलो, क्या बेवकूफी है'—डाक्टर ने कुछ डाटकर और कुछ हौसला बँधाते हुए कहा। अँधेरे में वह फिर रेंगते हुए चल दिये। तो भी शीत हवा की लपटें इधर-उधर लपलपा जाती थीं। गीली छतों और काले दरख़्तों के ऊपर बादल धूल के बगूलों की तरह उठ रहे थे...ऊपर...ऊपर। विलास बार-बार कीचड़ में फिसल जाता था। मोड़ पर तो वह गिर ही पड़ा था, अगर डाक्टर ने उसे इतनी कठिनाई से सँभाल न लिया होता। बायें बाजू पर विलास के पूरे बोझे को रोके हुए डाक्टर वाक़ई थक गया था—इतना कि एक सेकंड में उसे यह सब अयथार्थ ख़्वाब-सा मालूम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होने लगा। वह जानता था विलास का हाथ जो उसके हाथ में पड़ा हुआ है, काफी ऊँचा उठ गया है और वह क़रीब-क़रीब पीछे घिसट रहा है, पर वह बहुत थक गया था और उस मकान के साथ उसके मन में एक अजीब कुरूपता आ गई थी। अपने हाथ को ज़रा···आराम देने में अजाने उसने विलास का हाथ और ऊँचा कर लिया और विलास ठोकर खाकर एकबारगी गिरा-गिरा हो गया। 'डाक्टर' जैसे विलास का दिमाग़ ठोकर खाकर एकबारगी बिचक गया हो 'आओ हम यह दुनिया त्याग दें, बुद्ध की तरह हम इसे त्याग दें···हुम्फ—आओ हम इसकी किसी झूठे देवता के सामने कुर्बानी दे दें' और विलास की जबान लडखड़ाने लगी थी·····'लेकिन मैं इस दुनिया को प्यार जो करता हूँ! डाक्टर तुम जानते हो मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ, लेकिन तुम तो मुर्दा हो···डाक्टर ने एकबारगी चमककर कहा 'शट' प' और फिर जैसे धीरे-धीरे बच्चों की तरह सुबकने लगा हो।

विलास ने अपना हाथ छुड़ा लिया, 'मैं इसे प्यार करता हूँ। यह दुनिया विलास को नहीं चाहती, विलास ने अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर दी, दुनिया की दुकानदारी में उसका साझा नहीं रहा; पर विलास इसी दुनिया के अनगिनत प्रोलीटे—प्रोलिततीयत को प्यार करता है; क्योंकि उसे जीना है, ज़िन्दा रहना है। उसने डाक्टर का, जो अनजाने उससे आ भिड़ा था, फिर हाथ पकड़ लिया। हाथ को सञ्जीदगी से दबाते उसने डाक्टर के मुँह के पास मुँह ले जाकर फुसलाने के स्वर में कहा—डाक्टर तुम समझते हो हमें जीना है, हमें ज़रूर जीना है, रात का जशन ख़त्म हो गया, सुबह को काग़ज की क़न्दीलों की तरह हम लोग बुझे हुए फर्श पर पड़े हैं। पर देखना हम लोग फिर जल उठेंगें, डाक्टर! डाक्टर! पर डाक्टर अब भी सुबक रहा था, वह बेहद ऊबा था। विलास हारकर चुपचाप चल दिया। दूर पर एक गीली छत पर सुबह की रमक ने एक बेशक्ल बादल बिथरा दिया था। सामने म्यूनिसिपलटी की लाल धुयेंदार लालटेन जल रही थी। आँख की तरह, चिपकी, सूजी हुई आँख जिसमें सामने की रोशनी से खून का एक बूँद डबडबा उठा है। विलास उसे देखकर चिल्ला ही उठा—'देखो वह नई दुनिया की रोशनी है, उस दुनिया की जिसके लिये हम जियेंगे और वह वाक़ई खड़ा होकर, एक पैर मोड़कर उसे हाथ जोड़ रहा था वैसे ही जैसा उसने अपनी हिस्ट्री की किताबों में सूर्य-पूजकों की शक्लें देखी थीं।

पर डाक्टर अब भी सुबक रहा था, बच्चों की तरह, बेहद ऊबे हुए बच्चे की तरह।

शाहजहाँपुर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलन

[कुमारी इन्दु]

आत्मा का संसार से नवीन परिचय हुआ। वह भयभीत, चकित-सी चारो ओर देख रही थी। प्रत्येक वस्तु में नवीनता का आभास था। वह व्याकुल होकर एक वृक्ष के तले खड़ी हो गई और एक डाल पर अपना मुख रखकर देखने लगी—सुदूर प्रतीची में अस्त होते हुए सूर्य को। उसका मुख आनन्द से खिल उठा। उसने कहा—अहा! कैसा मोहक दृश्य है। यह कितना सुन्दर प्रदेश है। आत्मा की दृष्टि जिधर जाती थी उधर ही उसका हृदय खिंच जाता था। वह मौन, ठगिता-सी खड़ी थी।

इतने में कुछ शब्द हुआ। मोह ने आकर उसकी आँखें मीच लीं। आत्मा ने हाथ हटाकर पीछे घूमकर देखा—मोह खड़ा मुस्करा रहा था। उसने कहा—प्रिये! चलो मेरे साथ। यहाँ इस निर्जन स्थान में एकाकी क्यों खड़ी हो? आत्मा मुग्ध-सी मोह का अलौकिक रूप निहार रही थी। उसने मुँह फेर लिया और बोली—नीच! हट यहाँ से। तूने मुझे स्पर्श किया! तेरा यह दुःस्साहस!

मोह धीरे से चला गया।

आत्मा उसी भाँति खड़ी थी। उसकी दृष्टि पुनः पश्चिम में गड़ गई। सहसा किसी ने उसका अंचल पकड़कर खींचा। आत्मा चौंक पड़ी। बोली—कौन?

माया ने सहमी हुई वाणी में उत्तर दिया—मैं.....माया...तुम्हें साथ ले चलने के लिए आई हूँ।

आत्मा ने देखा—एक कोमलांगी किशोरी उससे अत्यन्त विनीत शब्दों में आग्रह कर रही है। वह उसके भोलेपन पर रीझ गई, किन्तु दूसरे ही क्षण क्रोधित होकर बोली—छलने! तेरा मुझसे क्या प्रयोजन। अभी मेरी दृष्टि से ओझल हो जा नहीं तो...।

माया सिर नीचा किये हुए चली गई।

संध्या का वैभव नष्ट हो चुका था। अन्धकार प्रगाढ़ हो रहा था। तारिकाएँ एक-एक करके रजनी का अभिनन्दन करने आ रही थीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मा संसार के बाह्य रूप पर अवाक् थी।

यकायक किसी ने वृक्ष की डाल को झकझोर दिया। आत्मा फिर भी विचलित न हुई, वह अपने विचारों में तल्लीन थी। काम उधर से जा रहा था। वह आत्मा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था। उसने देखा—एक अनुपम सुन्दरी उदास-चित्त अपलक दृष्टि से नभ की ओर देख रही है। उसकी चितवन में विरह का अवसाद था। काम के हृदय में विकार उत्पन्न हुआ। उसने प्रश्न किया—'सुन्दरी! इस रात्रि की निस्तब्धता में यहाँ खड़ी रहने का क्या कारण है? तुम इतनी दुखी क्यों हो? क्या मैं यह जान सकता हूँ?'

आत्मा उसी भाँति तन्मय थी। उसने कुछ भी न सुना। काम उत्तर की बाट जोहता रहा। अन्त में एक निःश्वास छोड़ता हुआ चला गया।

आत्मा मूर्तिवत् बैठी थी। न मालूम कितने पथिक उधर से आये और चले गये। पर उसे किसी की भी सुधि न थी। वह संसार में अकेली थी। उसका किसी प्राणी से परिचय न था।

वह प्रियतम के वियोग में तड़प रही थी। उसका एक-एक पल दूना होकर व्यतीत हो रहा था। उसके प्राण प्रिय से मिलने के लिए आतुर हो उठे। वह वृक्ष की जड़ पर बैठ गई और उसने अपने नेत्र मूँद लिये।

× × ×

ऊषा का आगमन हुआ। उसका झीना, गुलाबी चीर वायु की शिथिल तरङ्गों में लहरा रहा था। उसका बड़ा भोला सौन्दर्य था। ऊषा का पदचाप सुनकर आत्मा ने नेत्र खोल दिये। उसे भ्रान्ति हुई। प्रियतम के स्थान में ऊषा थी। वह उद्भ्रान्त होकर इधर-उधर घूमने लगी। प्रभात का दृश्य मनोहर था। वृक्ष ऊषा की लालिमा में लाल हो रहे थे। विहग-गण ऊषा का स्वागत-गीत गा रहे थे। भ्रमर सुमनों पर गुञ्जार कर रहे थे। आत्मा ध्यान से एक अर्ध-विकसित मुकुल को देखने लगी। उसे ऐसा भास हुआ मानो प्रियतम इस कलिका के मिस मुस्करा रहे हैं। आत्मा ने अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली। पर उसने देखा कली-कली में प्रियतम का रूप साकार हो रहा था। भगवन् कैसा अचरज! वह पागल हो उठी। उसने दौड़कर एक पुष्प तोड़ लिया और कहने लगी—हे प्रभो! मुझे कितने भयङ्कर स्थान में छोड़ दिया था। ओफ़ कितना भीषण स्थान है। कितने प्रलोभन जीव को आकर्षित करते हैं। अभागा जीव बन्धनों में पड़कर तुमसे दूर-दूर बहुत दूर होता जाता है। पर नाथ! क्या तुमसे वियुक्त होकर उसे कभी शान्ति मिलती है। आत्मा आत्म-विस्मृत हो रही थी। वह प्रियतम के चरणों पर लोट गई। अश्रु की अविरल धारा बह रही थी।

प्रियतम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। इसी समय तीव्र आलोक हुआ और धरती काँप उठी। आत्मा, परमात्मा एकाकार हो रहे थे और यह था उनका आध्यात्मिक मिलन।

अलाहाबाद।

[११०४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सार्वजनिक कार्यकर्ता
[एक स्वभाव-चित्र]

[य. गो. जोशी.]

[अनुवादक—'रविनाथ']

पूने से बंबई जा रहा था। गाड़ी छूटने में अभी देर थी। डिब्बे में अधिक भीड़ न होने के कारण मैं अपने स्थान पर टोपी रख, अखबार ख़रीदने के लिए नीचे उतरा। अखबार खरीदकर मैं प्लेटफार्म पर टहलने लगा।

गाड़ी छूटने की घंटी बजी और मैंने जल्दी से डिब्बे में प्रवेश किया।

अब डब्बा खचाखच भर गया था। कई व्यक्ति तो खड़े थे। मैं अपने स्थान पर आया, लेकिन एक महाशय मेरी टोपी हाथ में लिये मेरे स्थान पर बैठे हुए थे।

मुझे देखते ही वह बोले—क्या, आपकी टोपी है?

'हाँ मैं यहाँ बैठा हूँ।'

वह ज़ोर से हँसते हुए बोला—अब तो मैं बैठा हूँ! खैर कोई हर्ज़ नहीं। इतना कहकर बड़ी उदारता दिखलाते हुए मुझे अपने पास ही बैठने को जगह दी। मैं खिड़की से बाह्य सौंदर्य का अवलोकन करने लगा, मुझे उन महाशय पर मन ही मन बड़ी हँसी आई कि वह तीन आदमियों के बैठने लायक बेंच थी। एक आदमी का स्थान तो उसने अपना सामान रखकर ही घेर लिया था। दूसरे आदमी के स्थान पर वह अस्तव्यस्त बैठा था, बची हुई थोड़ी-सी जगह में मैं सिकुड़कर बैठा था। गाड़ी अब अपनी निश्चित गति पर चल रही थी। मेरे स्थान पर बैठे हुए महाशय ने मेरी ओर एक बार देखा, शायद मेरी नम्रता को देख उसे विश्वास हो गया था कि उसका प्रभाव मुझ पर खूब ही जमा।

सामने ही एक यात्री, दो यात्रियों का स्थान रोककर बैठा उसे दिखाई दिया।

तुरन्त उसके पास जाकर वह अधिकार-वाणी में बोला—अजी मिस्टर, यह क्या आपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपना मकान समझ लिया, बड़े आराम से बैठे हैं ? ज़रा सरककर बैठिये। देखिये कितने आदमी खड़े हैं—उन्होंने भी टिकिट लिये हैं ?

योग्य बोलनेवाले व्यक्ति के विरुद्ध बोलना प्रायः लोगों को कठिन ही होता है। वह यात्री चुपचाप सरककर बैठ गया। उस सामाजिक कार्यकर्त्ता ने उन खड़े हुए यात्रियों में से एक यात्री को बैठने के लिए कहा।

लेकिन दूसरा ही व्यक्ति उस रिक्त स्थान पर आ डटा, यह देख वह क्रोध से लाल होकर बोला—

'जनाब, आपके लिए यह जगह खाली नहीं कराई।' उस आदमी ने अपना टिकट बतलाते हुए कहा कि मैंने भी टिकट खरीदा है, और इतना कहकर वह खिड़की से बाहर देखने लगा।

वह सामाजिक कार्यकर्त्ता इस रूखे उत्तर से बहक उठा कि हमारे यहाँ सभ्यता तो कोई जानता ही नहीं ! अजी जनाब उठिये, मैं आपको यहाँ नहीं बैठने दूँगा।

'क्यों ?'

'क्योंकि यह जगह मैंने खाली कराई थी।'

'धन्यवाद'—वह बैठा हुआ व्यक्ति बोला।

'मुझे आपके धन्यवाद की ज़रूरत नहीं है, आप मेरा कहना मानते हैं या नहीं ?'

'पाँच मिनिट बाद आपको इसका उत्तर दिया जायगा।'

'मुझे, अभी, इसी वक्त जवाब चाहिये।'

'नहीं दिया जायगा।'

और इसी वादविवाद में पाँच मिनट निकल गये। गाड़ी खिड़की स्टेशन पर रुकी।

उस बैठे हुए व्यक्ति ने अपना सामान उठाया और उतरा।

'कहिये अब घबराकर क्यों दूसरे डिब्बे में भागे जा रहे हैं।'

वह प्लेटफ़ार्म पर उतरकर बोला—मुझे यहीं उतरना है। आप कौन हैं जो आपसे घबराऊँ ? स्वतः के मनोरंजनार्थ व बड़प्पन का व्यर्थ ही प्रदर्शन करनेवाले बहुत-से सार्वजनिक कार्यकर्त्ता मैंने देखे हैं और लोगों को इनसे ही बड़ा कष्ट होता है।

अपमान ! अपमान !!

सामाजिक कार्यकर्त्ता को यह सब सहना पड़ता है ; क्योंकि भावी सम्मान व नेतागीरी के बीज इसी में एकत्रित रहते हैं।

'बड़ा-ही मगरूर था'—सहानुभूति प्राप्त करने के हेतु उसने डब्बे में चारो ओर देखा।

'चलता ही है' एक महाशय शायद चुप बैठे-बैठे ऊब गये थे। इस लिए बोल उठे। इतना ही नहीं एक सिगरेट भी उस सामाजिक कार्यकर्त्ता को उक्त महाशय ने भेंट की। आनन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से उसने सिगरेट सुलगाई। सिगरेट के धुएँ में शायद अपने अपमान को ढँककर उसने डिब्बे में पुनः आन्दोलन प्रारंभ कर दिया।

एक युवती एक बेंच पर दो बच्चों को लिये बैठी थी और उसी बेंच से टिककर एक बूढ़ा खड़ा था।

'बहनजी, यहाँ जो आपने एक जगह घेर रखी है, इससे औरतों के डिब्बे में क्यों न बैठीं। देखिये, आप ही के पास यह बूढ़े सज्जन खड़े हैं!'

हमारे कान और मन कुछ ऐसे तैयार हो गये हैं कि किसी के कहने भर ही की देर है कि उसके कथन पर विचार न कर श्रद्धा-पूर्वक उसे हम मान लेते हैं। तब वह तो एक स्त्री ही थी। वह युवती उठने लगी, लेकिन पास ही खड़े हुए वृद्ध सज्जन ने कहा—क्यों—क्यों उठी। बैठ! वह युवती फिर वहीं बैठ गई।

'मैं यह सब आपही के लिए कर रहा था'—वह सामाजिक कार्यकर्त्ता बोला।

'यह मैं सब समझ गया!'—वह बूढ़ा बोला—यह मेरी लड़की है और इसे यहीं बैठना चाहिये। आप कष्ट न करें। मैं अपना इंतजाम करना खुद जानता हूँ।

लेकिन आप जैसे वृद्ध खड़े...। 'अजी यह तो चलता ही है, अच्छे-अच्छे आदमी अकाल मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं और हम आप जैसे व्यर्थ ही जीवित रहते हैं। हम मरकर भी उनकी आयु में वृद्धि तो नहीं कर सकते। संसार में यह अव्यवस्था तो चलने ही की है।'

यहाँ भी उस कार्यकर्त्ता का आंदोलन असफल रहा।

वह शांत बैठना तो शायद चाहता ही नहीं था। उस डिब्बे की सामाजिक गुत्थी उससे नहीं सुलझ रही थी। इसलिए वह डिब्बे में विचार-क्रांति करने का विचार कर उसके लिए योग्य व्यक्ति की तलाश में लग गया।

एक खादी-वेषधारी के पास जाकर वह महात्मा गांधी की स्तुति करने लगा, परन्तु वह गांधी-विरोधी निकला! अब वह एक हंगेरियन टोपी धारण किये हुए सज्जन के पास हिंदू-महासभा के विषय में बात-चीत करने लगा, परन्तु वह कट्टर गांधीवादी निकला। खादी पहनने की आदत नहीं है। इस लिए वह खादी नहीं पहनता था, लेकिन बिना खादी के स्वराज्य नहीं मिल सकेगा। यह भी उसने सिद्ध कर दिखाया! एक तेजस्वी युवक जवाहरलाल-जैसी पोशाक में उसे दिखाई दिया। उसने, उसके पास जाकर राजनीति पर चर्चा प्रारम्भ की, परन्तु वह एक सिनेमा कम्पनी का एडवरटाइजिंग मैनेजर (विज्ञापन-व्यवस्थापक) निकला! राजनीति पर चर्चा करते हुए वह अपनी भाषा में कहने लगा कि जनाब, गांधीजी ने तो कमाल कर दिया। कितने हफ्ते उन्होंने अपना आंदोलन चलाया। हम विज्ञापन की इतनी कलाबाजियाँ करते हैं, फिर भी हमारा चित्रपट इतने हफ्ते नहीं चलता! न जाने इतने हफ्ते आंदोलन कैसे चलता है। इतना सुनकर भी जब उस सामाजिक कार्यकर्ता को हँसी नहीं आई, उसने अपना अपमान समझकर एक बड़ा सिगार सुलगाया और उसी के धुएँ में शायद वह सिनेमा-शो देखने लगा।

एक क्रूर चेहरे का—लाल आँखोंवाला, फैज़ केप धारण किये गुंडे-जैसा दिखाई देने-वाले व्यक्ति से वह बातें करने लगा, परन्तु वह हैदराबाद जानेवाला सत्याग्रही निकला।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह यात्रा करने निकला था, या लोक सेवा करने !

तैरना न जाननेवाला परन्तु तैरने की इच्छा रखनेवाला जैसे किनारे का पानी ही उछाल कर खराब करता है, वैसाही शायद कुछ वह कर रहा था। सामाजिक कार्य में असफल हो अब वह अपने स्थान पर आ बैठा।

उसे अपने स्थान पर आता देख मैं पुनः सरककर बैठने लगा, परन्तु बड़ी उदारता दिखाते हुए वह बोला—बैठे रहिये ! यह क्या अखबार हैं ? अभी खरीदे हैं ? आप तो अखबारों के बड़े शौकीन दिखाई देते हैं ! मेरा काम उसने ही कर डाला, पाँच ही मिनट में सब अखबारों को उसने सरसरी निगाह से देखकर रख दिया। एक-दो मिनट वह किसी गंभीर विचार में मग्न हो शांत बैठा रहा, फिर कुछ खिन्नता-पूर्वक हँसा और उसी खिन्न अवस्था में वह बोला—मैं कुछ कहूँ आप से ? अभी तक जो नम्रता उसमें नहीं थी वह अब आ गई थी, न मालूम क्यों ?

अब तक शायद वह दूसरों के जीवन से खिलवाड़ कर रहा था। अब शान्त हो जाने से शायद उसने अपने जीवन को टटोला हो, और सम्भव है, इसीसे नम्रता व उसके पीछे छिपी करुणा उसमें आ गई हो।

अपने विचार-चक्र को बन्द कर मैंने उससे पूछा—कहिये !

वह बोला—'संसार सुधर रहा है या बिगड़ रहा है, आपका क्या मत है ? 'पहले आपका मत क्या है सुनाइये !' मैंने कहा। वह जोर से हँस पड़ा, कुछ ठहरकर पुनः हँसकर डिब्बे की बिजली की ओर देखते हुए वह बोला—संसार के विचारों में द्रुतगति से सुधार हो रहा है ; परन्तु बर्ताव उसी गति से बिगड़ता जा रहा है। कुछ दिन पूर्व मेरे यह विचार नहीं थे। अब मेरा मत यही है, और हाँ—भविष्य में मेरे यही विचार रहेंगे, नहीं कह सकता ! अच्छा चाय पियेंगे ?

'हाँ-हाँ अवश्य ! चायवाले को दो कप चाय लाने के लिए मैंने कहा। 'मेरा ऐसा विचार है कि चाय के साथ कुछ खाने के लिए भी लिया जाय।' उसके इस कथन में मुझे दीनता का भास हुआ। 'अच्छा कहिये क्या लिया जाय'—मैंने कहा।

हमारा खाना-पीना निपट चुका था। सारी कीमत मैंने ही चुकाई थी। 'आपके विचार तो सुनने रह गये।' उसने पुनः वही प्रश्न किया।

'मैं पूछूँ क्या ?' मैंने प्रश्न किया।

'हाँ-हाँ अवश्य।'—उसने कहा।

'आपका व्यवसाय ?'

'परीक्षा पास करके २, ३ वर्ष हो गये हैं, व्यवसाय अभी निश्चित नहीं किया।

'क्यों इतनी देर।'

'मेरा व्यवसाय तो मेरी परिस्थिति पर अवलम्बित है। मेरे हाथ में क्या है ?'

'आपकी शादी इत्यादि ?'

'अभी नहीं।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'शायद विचार नहीं है, वह अत्यन्त निराशापूर्ण हँसा।'

'क्यों कहीं प्रेमभंग इत्यादि।'

'हाँ वही तो', खूब जोर से वह हँसा। 'लेकिन प्रेमभंग एक तर्फा ही हुआ है। मैंने तो बहुत प्रयत्न किया प्रेम करने का, परन्तु मुझसे किसी ने प्रेम नहीं किया। अखबारों व शहरों में प्रेम की रसीली खबरें बहुत सुनाई देती हैं; लेकिन वह सब प्रेमी युवतियाँ न मालूम कहाँ होती हैं या प्लेग की अफवाह की भाँति एक ही केस की खबरें सनसनी पूर्ण बन उठती हैं।' इस विषय पर उसका विषण्ण विनोदी भाषण मुझे बुरा मालूम दिया। मैं अधिक विचार-पूर्वक उसकी ओर देखने लगा।

देखने में वह सुन्दर था। उसके नेत्र सतेज थे। उसमें अतृप्तता थी, बड़बड़ाहट थी। फलों से बीज प्राप्त करने के हेतु जैसे फल को पेड़ पर सुखाते हैं, उसी प्रकार वह देह, मन व विचारों से सूखता दिखाई दिया।

'अब क्या ब्रह्मचारी रहने का विचार है?'—मैंने पूछा।

'इसका निश्चय करने की तो आवश्यकता नहीं है। मान लीजिये परिस्थिति वैसी हो गई तो ब्रह्मचर्य-जीवन मैं नहीं सह सकूँगा। नियमित तो नहीं, या इतना साहस भी न कर सका, फिर भी कभी-कभी वाममार्ग से इस सुख की प्राप्ति को मैं नहीं छोड़ सकता।'

मैंने विषयांतर करते हुए उससे पूछा—कहाँ जायेंगे!

'हें' आप कहाँ तक जायेंगे, 'वह बोला शायद आनेवाले स्टेशन पर ही उतर जाऊँ या फिर बम्बई तक चलूँगा। मैं कुछ दिन सफर में व्यतीत करना चाहता हूँ।

'क्या मैं आपका राजकीय पक्ष जान सकता हूँ?' मैंने पूछा—किसी भी पक्ष का लेबल मैंने नहीं लगाया, कारण बिना लेबल के काम चल जाता है जनाब, पक्षापक्ष तो केवल भुलावा है और इस प्रकार की संधि-साधना का राजकारण मुझे पसंद नहीं है। सारांश में मैं व्यवहार में अभी कच्चा हूँ। सत्य तो यह है कि मैं खुद नहीं समझ पाया हूँ कि मैं क्या हूँ।'—उसने कहा।

इतने ही में गाड़ी तेलगाँव स्टेशन पर रुकी। तेलगाँव से गाड़ी चलते ही हमारे डिब्बे में टिकट-इन्सपेक्टर ने प्रवेश किया। टिकट इन्सपेक्टर ने चारो ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, अर्थात् मेरा नूतन परिचित मित्र उसकी काक-दृष्टि से कैसे छूटता।

एक दूसरे को देखते ही मेरे मित्र ने उसे नमस्कार किया। मैंने सोचा शायद आपस में इनकी मित्रता होगी, परन्तु उसे नमस्कार करके मेरे मित्र ने अपना सामान सँभालना शुरू किया। मुझसे वह कहने लगा—अब मुझे आनेवाले स्टेशन पर ही उतरना चाहिये—यह महाशय आज मिल गये, सोचा था शायद आज बम्बई तक पहुँच जाता।

'क्यों आपकी इनसे मित्रता...'

'वाह बड़ी गहरी, इनके हद में हम बेकायदा सफ़र करते हैं, कारण इनकी हद में टिकट लेना आवश्यक है। मेरे पास आज टिकिट नहीं है, और न कभी मैं लेता हूँ, न ले भी सकता हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरी समझ में अब सारी बातें आ गईं, 'सुनिये' वह बोला—हमारी इच्छा नहीं है, फिर भी हमारा जीवन सार्वजनिक हो गया है, यानी—हमारे जीवन का सम्बन्ध सब लोगों से है ! मेरे कुछ विचार हैं, परन्तु परिस्थिति-वश मैं उनका पालन नहीं कर सकता ! सार्वजनिक कार्य करने की मुझे बड़ी इच्छा है ! कभी सफल हो सका तो हमारा नाम भी एकदिन अखबारों में चमकेगा इच्छा बलवती है, आशावादी हूँ ।

इतने ही में वह टिकिट-इन्सपेक्टर कुछ रोष से बोला—अजी जनाब, बस करिये, आप शिक्षित हैं, और परिस्थिति भी आपकी वैसी होगी । कई बार आपको मैं छोड़ चुका, लेकिन आज अवश्य आपका चालान करूँगा ।

'वाह—यह क्या कह रहे हैं'—उसने हँसते हुए कहा—यानी हमारा जीवन अब प्रगति के मार्ग की ओर जा रहा है, 'खूब' वह टिकिट इन्सपेक्टर कुछ खिसियाकर बोला, 'गांधी टोपी और खादी पहनकर बिना टिकट घूमना, गांधी तत्त्वज्ञान की दुर्दशा करना ही है ।

वह कुछ विनोद करते हुए बोला—इसमें गांधी तत्त्वज्ञान की दुर्दशा कहाँ हुई । महात्मा गांधी काँग्रेस के चवन्नी-सदस्य भी नहीं हैं फिर भी वे कांग्रेस पर हुकूमत करते हैं ! उनका यह 'विदाउट टिकिट' कार्यक्रम आपको पसन्द है और हमारी विदाउट टिकिट यात्रा·····'लेकिन आपको सफर की क्या आवश्यकता है'—टिकिट इन्सपेक्टर बोला ।

'तो क्या करें, साल-भर घर बैठे गुज़ारा, सोचा चलो सफर ही करें, और यह कपड़े मेरे मतों के द्योतक नहीं हैं, खादी सस्ती पड़ती है, इसलिए पहन लिये हैं । जितने खादीधारियोंने प्रसंगानुसार अपने मतों को रँगकर खादी में ढँक लिया है, क्या वे सब शुद्ध सात्त्विक हैं !

'मुझे वादविवाद नहीं करना है, आप उठकर यहाँ खड़े हो जाइये ।'—टिकट इन्सपेक्टर ने कहा—मैंने टिकिट इन्सपेक्टर से नम्रता-पूर्वक उसके विषय में कहा और उसने मेरी बात को मान लिया । उसने मेरे मित्र को अपने स्थान पर बैठने की इज़ाज़त दे दी ।

अब तक वह बड़े आनंद में था, पर अब वह लज्जा से चूर हो गया था । डिब्बे में खूब हँसी उड़ी जब लोगों को यह मालूम हुआ कि यह सामाजिक कार्यकर्त्ता विदाउट टिकिट हैं, परन्तु सार्वजनिक कार्यकर्त्ता को जब तक वेतन नहीं मिलता, तब तक ऐसी स्वार्थी खाज पर लोग क्यों हँसते हैं ! यह आनंद की बात है, कोई वैसा निस्पृह हो, पर चरित्र की ओर नहीं देखना चाहिये, यही लोगों का मत है न ? जिव्हा रूपी कैंची ही अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है ।

सार्वजनिक कार्यक्रम का उपयोग जनता मनोरंजन के लिए कर लेती है और मनोरंजन कार्यक्रम के खिलाड़ी चरित्र से कुछ ढीले रहते हैं, यह नहीं होना चाहिये, परंतु हमें हँसी चाहिये और वे हमें हँसाते हैं ! यहीं आपका संबंध समाप्त हुआ ! चरित्र—यह तो पुरानी बात है । अब तो चरित्र की भूमिका आतिशबाज़ी ने ले ली है ।

उसने माथे का पसीना पोंछते हुए मुझसे कहा—शायद अब आपकी इच्छा भी नहीं होगी कि मुझसे बात की जाय !

'आप यह विचार न लाइये'—मैंने कहा ।

वह बोला—'देखिये शिक्षा (विद्या) से मत जीवित होते हैं, विचारों में स्वतंत्रता आ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाती है, और स्वतंत्र विचारों को दबा देने से मनुष्य-स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। कई व्यक्तियों के मत उनके उदर-ज्वाला से अधिक तेज़ होते हैं, और उन्हीं लोगों में से मैं हूँ! यानी भूखा रहना तो मैं सहन नहीं कर सकता।' २-४ मिनिट वह चुप रहा फिर कहने लगा—अभी-अभी आपसे मैंने कुछ खाने व चाय पीने की इच्छा प्रकट की थी। अजी, जेब में तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है, और यह सिगरेट का शौक किये एक-दो साल हो गये, लेकिन इसके लिये मैंने आजतक एक पैसा भी खर्च नहीं किया। मिल गई तो पी लेता हूँ—नहीं तो कोई ज़रूरत नहीं। इसी अनिश्चित आनंद में मैं मग्न रहता हूँ।

मैंने उसे एक सिगरेट दी। वह खुशी से उसे पीने लगा। सिगरेट की राख झाड़ते हुए वह बोला—विदाउट टिकिट को डिब्बे से उतार देने का कायदा है, उसी प्रकार जीवित रहने के साधन न होने पर आत्महत्या की इज़ाज़त क्यों नहीं है, अगर नहीं तो शिक्षा द्वारा युवकों के मन को जीवित नहीं करना चाहिये। इसी में अच्छे-बुरे का स्पष्टीकरण करियेगा—शायद आप मेरी बातों से ऊब गये?

'नहीं-नहीं।'—मैंने कहा।

इसीलिए मैंने यह निर्भयता स्वीकार की है। बड़ी सभ्यता से किसी के सर खान-पान का बोझ रखा, जितना हो सका सफर किया, किसी ने कहा उतर जाओ तो उतर गया, शायद मेरे विषय में लोगों के मत बदल जायँ। मेरे मत तो कायम ही रहेंगे, इतनी ही बौद्धिक शान्ति है।

'आपके मत तो सुनाइये'—मैंने पूछा।

अजी कहाँ के मत हैं—बंधनहीन मन की एक प्रवृत्ति मात्र है वह। आज तक ३-४ अखबारों के दफ्तरों में मैंने नोकरियाँ कीं, पर वहाँ मन को एक बंधन ही हो गया। मैंने अब तो निश्चय कर लिया है कि पेट भरने के लिए अब नौकरी बौद्धिक विभाग में नहीं करेंगे, शारीरिक विभाग में वही नौकरी करेंगे, जहाँ का मालिक हमारे शरीर पर हुकूमत करे न कि हमारे मन पर। अच्छा, छोड़ो भी इन बातों को। आपने टिकिट इन्सपेक्टर से क्या कहा।' उसने पूछा।

'आपके टिकिट के पैसे मैं देता हूँ चलिये मेरे साथ बम्बई।'

'वाह, चलिये, मुझे इसमें संकोच नहीं है। आप मनोरंजनार्थ सिनेमा टिकिट खरीदते हैं। आप मेरे टिकिट के पैसे देंगे, उसके बदले में मैं अपने विचार व जीवन का चित्रपट दिखाने तैयार हूँ, यह भी एक सौदा समझिये!'

'जो कुछ समझना होगा मैं समझ लूँगा। आप मेरे साथ बंबई चलिये। मैं वहाँ एक दिन रहूँगा। मेरे साथ ही आप वापिस लौटिये, मैं आपका इन्तजाम करूँगा।'

'कोई हर्ज नहीं, पर मेरे विचारों का क्या होगा? और अपने पेट पर वह हाथ फेरते हुए बोला—इसका क्या होगा—इसीलिए आप मेरे मतों पर हुकूमत नहीं चला सकेंगे। मेरा मत है, जहाँ अच्छा दिखाई दे, उसे अच्छा कहना, और बुरा दिखाई देने पर स्पष्टतः कह डालना। स्पष्ट कथन में किसी की महत्ता का रोड़ा मैं पसन्द नहीं करता हूँ। भारत में जितने भी आन्दोलन चल रहे हैं, और वे सब अच्छे के लिए ही चल रहे हैं, तब उन सबको अपनेपन की भावना से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखना चाहिये। मैं यहाँ हूँ, इसलिए वहाँ नहीं हो सकता, यह विधान न हो। व्यक्ति-पूजा का सीमोल्लंघन नहीं होना चाहिये। जातीय संगठन होना चाहिये, लेकिन जातीय द्वेष नहीं होना चाहिये। सिनेमा कम्पनी के नायकों जैसी हमारे नेताओं को नट-सम्राट्, संगीत-भैरव या शमशेर जंग, दरकदार जैसी उपाधियाँ देकर उनका दर्प नहीं बढ़ाना चाहिये और ऐसा करनेवाले के लिए विधान बनना चाहिये, इत्यादि। मेरे बहुत कुछ ऐसे ही विचार हैं।

'आप मेरे साथ चलिये' मैं आपकी बेकारी दूर करने का प्रयत्न करता हूँ और मेरे भविष्य में आपका भिन्न मत हो तो मुझे उसका दुःख नहीं है।

वह टिकिट इन्सपेक्टर मेरे पास आया, उसके टिकिट के पैसे मैंने दिये और एक बार मैंने अपने मित्र की ओर देखा—वह इसी ठाठ में बैठा था जैसे गाड़ी का मालिक ही बैठा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा

[रवीन्द्रचन्द्र गैरोला]

(१)

आठ या साढ़े आठ बजे होंगे रसिकलाल मेरे कमरे में आ धमका। उसकी हरक्युलीज़ साइकल की घंटी सुनते ही मैंने सबसे क़रीबवाली किताब उठाकर खोल दी। पढ़ने का बहाना था। खुशकिस्मत—किताब सीधी ही खुली।

'वाह यार, आज भी कोई पढ़ने का दिन है। क्या इसीलिए छुट्टी मिली है!'—रसिक मेरे हाथ से किताब छीन कर बोला।

'आज कुछ मूड ठीक नहीं है। मुझे Brain-fag सा हो गया है।' मैं अंगड़ाई लेते हुए बोला।

'तोबा, ऐसी भी क्या तबियत है। जब सुनो Mind ठीक नहीं—Mood ठीक नहीं। यह सब झोल है—फिजूलियत है। अरे, खुदा के नाम पर कम से कम चार क़न्दील तो खिड़की के पास जला दिये होते।'

'भाई मेरे पास पै...।'

'घूरे की दुकान में पैसे-पैसे के बड़े अच्छे कन्दील हैं। मैं तो अपना सारा कमरा सजाकर आया हूँ। देखिये ज़नाब—हमारा होस्टल सबसे अच्छा सजा है।'

'हाँ, तुम्हारा होस्टल सबसे अच्छा जला है'—मैं हँसते हुए बोला।

'बस अब मज़ाक रहने दीजिये। जल्दी से कपड़े पहनिये। चलकर चौक की रंगत देखें। सब तो चले गये।'

मेरी तबियत ज़रा भी जाने की न थी। मैं कमरे में अकेला रहना चाहता था। आज की रोशनी में मुझे अन्धकार मालूम होता था। एकान्त में कुछ सोचना चाहता था। न जाने क्या। पर रसिक तो मुझे लेने को ही आया था। वह मुझे साथ लिये बिना कब टलता।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टप्...टप्...टप्...घोड़ों की टाप।

मोटर की पों पों।

ताँगे और इक्कों की ठनठनाती हुई घन्टियाँ।

चारो ओर लाल हरी चौंधियाती हुई बिजली का प्रकाश। कहीं-कहीं जीर्ण, जर्जर आधे गिरे हुए पुराने मकानों में टिमटिमाते हुए छोटे अधजले दीपक—कोई आटे के, कोई मिट्टी के।

'बाबू जी अब आगे ताँगा न जायगा। भीड़ बहुत है।'

'अरे ज़रा और आगे चले चलो। हमें घन्टाघर के पास उतार देना।'—मैंने चिढ़ते हुए कहा।

× × ×

बायें हाथवाली पान की दुकान पर बढ़िया सुगन्धित बनारसी पान खाये। खूब चकमक हो रही थी यह दुकान भी। भला क्यों न हो? आज की रात में तो ताम्बूल का भी एक विशेष रहस्य और महत्त्व है।

पासवाला शिवजी का छोटा-सा मंदिर आज उतना विरक्त न लगता था। संन्यासी-राख पोतनेवाला शंकर—कैलाश से इस छबीले मर्त्यलोक में आकर भी क्या समाधि ही लगाये? असंभव। उसके भी तो दिल है। ऐसे ही जैसे आपका और हमारा। और, फिर आज न उसकी समाधि की ज़रूरत है और न संन्यास की, हाँ, भंग पिये—मस्त रहे। ताण्डव हो—भयानक ताण्डव हो। हिल जाय सृष्टि। हो जाय क्षण भर में परिवर्तन। न हम रहें और न आप।

लेकिन क्यों हो ताण्डव? क्यों खुले तृतीय नेत्र? क्यों बजे डमरू? क्यों हो ब्यालों की फुंकार!

चार छोटे-छोटे मिट्टी के दीपकों से ही आशुतोष का मुख जाज्वल्यमान हो रहा था। हँसी थी—प्रकाश था। देख रहे थे संसार को। केवल दो ही नेत्रों से।

× × ×

दूसरी दुनिया।

मानवता के उस पार,—हमारी ही सृष्टि का चिरपरिचित भाग।

अन्धकार, किन्तु सुनसान नहीं।

चहल-पहल—भय की और मद की।

ऊँची और तंग गली, पान की पीक और आधी जली हुई बीड़ी की दुमों से नाली भरी थी। हवा और प्रकाश को कहीं से भी आने का मौक़ा न मिलता था।

पर इस संसार के जन्तुओं में भी किसी से कम उत्साह न था। इस दुनिया में स्वयं दीपक थे, किन्तु यहाँ इनके सिवाय और कोई भी सदा के लिए न रहता था। जब मानवों के संसार में सूर्य उदय होता था तो इस सृष्टि में अन्धकार का साम्राज्य छाया रहता और वहाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूर्यास्त होने पर इस ओर आलोक होता था—थोड़ा थोड़ा कहीं से आवाज़ आई—

'फ़ातमा—फ़ातमा—अरी फ़ातमा—'

'हाँ री—तयार हो गई री मुमताज़ ! जल्दी कर मेरे लिए घुँघरू ले लेना, मेरे एक पैर का इस समय नहीं मिलता। तक़दीर—इस खास मौके पर क्यों मिलेगा जल्दी से।'

'फिर—'

'झिज्जू—उस्ताद जी कहाँ हैं ? जोड़ी ले लो। कोतवाली चलना है मुज़रे में। दरोगाजी ने बुलाया है, नीचे दीवानजी बड़ी देर से खड़े हैं।'

'फिर—'

'ओ रमजनियाँ—कितने घंटे लगायगी बनने में, चल न—बड़ी अच्छी दीखती है। हम सब में नफ़ीस, तू तो आज···ही···ही···हि···हि।

× × ×

अन्दर जाते पैर काँपते थे।

'न···न···मैं न जाऊँगा।'

अँधेरे छोटे गन्दे कमरे में जाने की मेरी हिम्मत न होती थी। ऐसा डर लगने लगा जैसे अमावस की रात को रास्ता भूलकर श्मसान में पहुँच गये। क्या सामने खड़ी यह पिशाचिनी थी ? हड्डी निकली हुई, गालें पिचकी हुई। आँखों से ज्वाला निकलती थी—प्रतिशोध की। किसी के रक्त-शोषण के लिए उसकी जीभ चटचटा रही थी।

क्षण भर मौन, फिर एक शुष्क हँसी, यह हमारा स्वागत था ? मैं पीछे हटने लगा, किन्तु मेरी दृष्टि उसी की ओर लगी रही। मुझे भय था कि यदि मैंने पीठ फेरी तो यह पीछे से झपटेगी।

वह समझ गई कि ये रास्ता भूले हैं। जान-बूझकर मेरे राज्य में नहीं आये। पास आकर बोली – 'जब आये हो तो थोड़ा बैठो, डरने की क्या बात है, आज तो दीवाली है।'

आवाज़ मानवी थी। कोमल, किन्तु आतुर, मैंने मित्र की ओर देखा, मेरे देखते ही वह अन्दर प्रवेश कर गया, पास ही मैं भी एक टूटी कुरसी पर बैठ गया।

दो मिनट तक मौन रहे। न मेरी हिम्मत बोलने की होती थी और न रसिक की। वह स्वयं मौन भंग करके बोली—आप दोनो साहब नये मालूम होते हैं, इसीलिए शर्माते हैं।

मैं धीरे से बोला—नहीं।

रसिक ने भी सिर हिलाया—नहीं।

फिर एक क्षण के लिए मौन।

उसमें मानवता थी। नहीं तो यह हमारा सत्कार क्यों ? क्या वह न समझी थी कि हम भूलकर ही आये हैं और अभी चले जायँगे ? फिर क्यों दो शब्दों से उसको सान्त्वना न दें ? क्यों उस संसार की एक झलक उसे फिर न मिले ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैं—आपका इस्मशरीफ़ !

वह—अजी रहने दीजिये क्या करेंगे आप मेरा नाम जानकर। मैं चाहती हूँ कि मेरा नाम इस संसार से मिट जाय। कोई न सुने, न कहे।

मैं—नाम बताने में तो हर्ज़ नहीं।

वह—नाम, मेरा नाम ? कुछ नहीं।

मैं चुप।

वह—आज मैं अपना नाम भी भूल गई—नहीं, भूली नहीं, याद है।...बताती हूँ... बताती हूँ।

'नूरजहाँ।'

मैं—नूरजहाँ ? बड़ा अच्छा नाम है। लेकिन मुसलमान होने पर भी तुम हिन्दी बड़ी अच्छी बोलती हो।

नूरजहाँ की सुन्दर गोल-गोल आँखें छलछला गईं। उसने एक पल के लिए शून्य की ओर देखा। वहाँ—शून्य में उसने सब कुछ देख लिया। अभिनेता—दर्शक—रंगमंच। उसकी आँखें न मुझ पर अटकीं न शून्य पर। अब वह हज़ारों, सैकड़ों पिशाचों के पैरों से अपमानित वसुन्धरा को सींच रही थी—लेकिन गरम जल से।

वह अन्यमनस्क थी।

मैंने रसिक की ओर देखा और उसने मेरी ओर।

नूरजहाँ का ध्यान टूटा।

बोली—जी हाँ, हिन्दू भाई भी आते हैं, उन्हीं से दो-एक बातें करते-करते आदत हो गई है, सभी को तो खुश करना है।

मैं—मुझे यक़ीन नहीं होता।

नूर०—ये बातें यक़ीन करने की भी नहीं हैं। सुनिये और भूल जाइये।

मैं—मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।

नूर०—आप पहिली ही दफ़े इस रास्ते आये हैं न। तो अभी कुछ देर लगेगी मुझे समझने में। मैं पापों से ढक गई हूँ। मैंने कई पाप किये हैं, इसीलिए कोई मुझे न देख सकता है और न समझ सकता है।

मेरे लिए यह सब अब पहेली होने लगी। मैं समझा बस अब वशीकरण-मन्त्र का श्रीगणेश हो गया।

कुछ चुप रहकर वह फिर बोली—आपसे अब क्या छिपाऊँ। कहकर कुछ दिल ही हलका होगा।

मैं उसकी ओर ताकने लगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कानपुर के पास एक गाँव में मेरा विवाह हुआ था। तब मैं पन्द्रह वर्ष की थी, मेरे पति अग्रवाल वैश्य थे। किन्तु विवाह के एक साल बाद ही वह मर गये। मेरे सास और ससुर ने समझा कि उनके इकलौते पुत्र को खाने के लिए मैं ही डाइन आई हूँ। तानों पर ताने पड़ने लगे। मेरा दिल जलकर चलनी हो गया। वे मुझे मायके भी न भेजते थे। किसी तरह एक साल तक रही। मेरा घर से निकलना भी मुश्किल हो गया। जवान थी। मुझ पर इशारे होने लगे, पड़ोस में मेरे रिश्ते के एक जेठ होते थे। मेरे ससुर का उन पर बहुत विश्वास था, एक त्योहार पर मुझे प्रयाग त्रिवेणी स्नान को जाने को कहा। जेठजी जा रहे थे। मैं साथ हो ली। तब से मैं घर नहीं लौटी और न मेरे जेठजी फिर कभी मुझे मिले। उनका भला हो। मेरा उस जन्म का नाम 'दया' था।

× × ×

उसी संसार की एक दूसरी गली।

एक ऊँचा, कुछ पुराना-सा मकान, चारो ओर अँधेरा, तङ्ग ज़ीने के पास एक छोटा-सा स्थान। आगे एक फटे मैले टाट का परदा पड़ा था। शायद यह कभी इस मकान का गुसलखाना रहा होगा।

'आइये—आइये—तशरीफ लाइये।'

मैं—हाँ...अच्छा।

वह—बैठिये। आप ही दोनो हैं या और भी कोई है?

मैंने क्षण भर में सारे महल को छान डाला। धुयें से दीवाल काली हो गई थी। उसी पर बिना चौकठ और काँच की कृष्ण की एक रंगीन तसवीर टँगी थी। ऊपर से एक सूखे मुर्झाये हुए फूलों की माला भी पड़ी थी। एक कोने में कुछ पुराने बर्तन और लकड़ी रखी थी।

मैं—यह कौन है?

वह—मेरा बड़ा भाई। यहीं मेरे साथ रहता है। कोई हर्ज़ नहीं।

मैंने कोने की ओर इशारा किया, वह तकिया तो न था। कुप्पी के धुँधले प्रकाश में ऊपर का वस्त्र कभी-कभी उठता और हिलता था। उसमें भी प्राण था छुपा हुआ। बाज़ बाज़ दफे वह कनखियों से उस ओर देखती थी और फिर हमारी ओर। गर्व न था उसकी आँखों में, न थी तृप्ति। अक्षय भार था और विषाद।

मैं—व.....ह...?

वह—मे.....मेरा लड़का।

हमने ज़ीने से उतरते हुए सुना—भगवान किसी के बच्चा न हो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हाँ, वही पागल

[रवीन्द्र]

'पागल आया पागल आया' कहते हुए आस-पास के दस-पाँच लड़के ताली बजाते हुए दौड़ रहे थे। मैं अपनी बैठक में बैठा हुआ किताब पढ़ रहा था, अचानक यह शोर सुनकर बाहर निकल आया। एक नौजवान देखने में बड़ा सभ्य और पढ़ा-लिखा लगता था। वह आगे-आगे लम्बे डग भरता चला आ रहा था और पीछे-पीछे यह लड़कों का जमघट। शकल देखते ही मुझे कुछ कुतूहल हुआ और मैं ने लड़कों को भगाकर नौजवान को अपनी बैठक में बुला लिया।

नौजवान की आयु यही कोई तेईस-चौबीस वर्ष की होगी। मसें भीग रही थीं और शक्ल पर पागलपन का कोई चिन्ह दिखाई न देता था। मैं सोचने लगा कि शायद शैतान लड़कों ने नया आदमी देखकर उल्लू बनाना शुरू कर दिया है; पर उससे पूछता कैसे कि वह पागल है या नहीं। थोड़ी देर हम दोनो चुप बैठे रहे फिर उसने अपने-आप ही बोलना शुरू किया।

'बाबूजी आप सोचते होंगे कि यह पागल कौन है और इधर कैसे आ निकला, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं पागल नहीं हूँ। यह लड़के यूँही मेरे पीछे पड़ गये और मुझे खदेड़ने पर तुले हुए हैं। मेरे पागलपन का इतिहास लम्बा है। आप सुनकर क्या करेंगे।'— इस प्रकार की बातें सुनकर मेरा कौतूहल और बढ़ा और मेरे आग्रह करने पर उसने सुनाना शुरू किया।

'मेरा जन्म एक अच्छे घराने में हुआ था; पर मेरे जन्मते ही मेरी मा का देहान्त हो गया। मा मुझे और मेरे एक भाई को मरने से पहिले अपने भाई के सुपुर्द करती गई। मैं अपने मामा के घर ही पलने लगा। बाबूजी, मैं यह भी न जानता था कि मा कहते किसे हैं; पर मेरी नानी ने मुझे बहुत लाड़-प्यार से पाला। एक दिन किसी ने मामी को बता दिया कि जो भाञ्जे पालता है, उसके सन्तान नहीं हुआ करती। अब क्या था मेरी चारो ओर से मुसीबत आने लगी। सीधा मुझे तो कोई कुछ न कहता, पर यह मैं जानता था कि घर में महाभारत मचे रहने का मुख्य कारण मैं ही हूँ। फिर भी मैं एक लाड़ला बेटा बना ही रहा, कम से कम मेरी नानी तो मेरे साथ बहुत ही प्यार करती थी न। बाकी सब भी अपना तो समझते ही थे।

'मेरे मामा पुराने ढर्रे के आदमी थे। सरकार-परस्ती में अद्वितीय और सरकार के विरुद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वे जा भी कैसे सकते थे जिसने उन्हें 'बचपन से ही पाला था।' मैं भी इसी वातावरण में हँसता-खेलता और रोता-रुलाता बढ़ता रहा। मुझे पढ़ाने के लिए तीन-चार मास्टर लगा दिये गये और मैं उन्नति करने लगा। इसी बीच मेरे पिता और मेरे मामा में कुछ झगड़ा हो गया और मैंने यही समझा कि शायद उनका भी देहान्त हो गया।

'हाँ तो मैं कह रहा था मेरे मामा सरकार-परस्त थे। उनके पास शायद केवल शान दिखाने के लिए स्टेट्स्मेन आया करता था और मैं बड़े अचरज के साथ सोचा करता था कि आखिर खबरें पढ़ने में धरा ही क्या है? यह लोग अखबार क्यों पढ़ते हैं; लेकिन एक बार भूल से मैंने भी अखबार उठा लिया। शायद मैं उन दिनों आठवीं श्रेणी में पढ़ता था; पर अंग्रेजी की शिक्षा मुझे मैट्रिक तक की मिल चुकी थी। लाहौर कांग्रेस के दिन थे और सारा अखबार वहाँ की कार्यवाही से भरा हुआ था। मेरे ऊपर जवाहरलाल और गान्धी क छाप पड़ गई और मैंने अखबार पढ़ना शुरू कर दिया। डांडी-कूच के दिन आये। मेरे पास पैसा तो था नहीं फिर भी गान्धीजी का अखबार 'यंग इण्डिया' खरीदने की इच्छा प्रबल हो उठी। लेकिन करता ही क्या बेबस था। घरवालों से पैसा माँगता भी कैसे! सरकार-परस्त घर में 'यंग इण्डिया' का स्थान कहाँ। लाचार नानी की थैली से कुछ रुपए चुराये और 'यंग इण्डिया' का ग्राहक बन गया। चोरी-चोरी डाकिये से अखबार ले लेता और लुक-छिपकर कहीं किसी कोने में पढ़ लिया करता; पर बकरे की मा कब तक खैर मनाये। एक दिन उनकी नजर पड़ ही गई। घर में कुहराम मच गया। घर की जड़ों को खोखला करनेवाला, अस्तीन का साँप और न-जाने क्या-क्या खिताब मुझे मिल गये। मेरी फाइल छीनकर अग्निदेव के सुपुर्द कर दी गई। मैं मन मसोसकर रह गया और कर ही क्या सकता था? फाइल तो जल गई, पर मेरी राष्ट्रीय-भावना और तेज हो उठी।

जैसे-तैसे करके मैं एंट्रेंस की परीक्षा में पास हो गया। अब आगे क्या पढ़ूँ, यही सवाल था। कोई डाक्टर बनने को कहता था, कोई वकील, कोई इंजीनियर बनाना चाहता था तो कोई बैरिस्टर; पर मुझे इनमें से कुछ भी बनने की इच्छा न थी। मेरे ऊपर तो गान्धी और जवाहरलाल की छाप पड़ी हुई थी। मैं देश-भक्ति की ही तान छेड़े रहता था। दिन हो या रात, सोता होऊँ या जागता, भारत-माता और उसके दीन-दुःखी लाल मेरी आँखों के आगे रहते। और मैं मा का दुःख हरने की तैयारी में सारा समय व्यतीत करता। अब मैं इतना बड़ा हो ही गया था और इतनी चालाकी भी सीख ली थी कि मैं जो चाहे करता रहूँ; पर घर में किसी को पता भी न लगे।

धार्मिक प्रवृत्ति का तो मैं था ही। गान्धीजी ने राजनीति और अर्थशास्त्र में भी धर्म की पुट लगाकर दरिद्र को नारायण बना दिया था। मैं भी इन्हीं दरिद्रनारायण की अर्चना करने के लिए गरीब बन गया। मैंने सुना था कि हिमालय जाकर तपस्या करने से आदमी की शक्ति बहुत बढ़ जाती है और इष्ट की पूर्ति बहुत जल्दी होती है। मैंने वहीं जाने की ठानी। वहाँ से अपने-आपको तपाकर निकलूँगा और मा की सेवा में लग जाऊँगा, यही निश्चय था। घरवाले भला इसकी स्वीकृति कैसे दे देते। चोरी से भाग निकलने का कोई रास्ता न दीखता था। मैंने एक प्रकार का युद्ध शुरू कर दिया। बिना शाक, दाल के दिन-भर में तीन पतली-पतली सूखी रोटियों का भोजन, जैसा कम्बल गधों पर डाला जाता है ऐसे कम्बल पर शयन और इसी प्रकार शरीर को गलानेवाली बहुत-सी विधियाँ अख्तयार कर लीं। सम्बन्धियों की चिन्ता बढ़ चली और मेरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वास्थ्य गिरने लगा ; फिर भी दोनो पक्ष अपनी-अपनी बात पर डटे हुए थे। मेरे कानों में भारत के दीन दुःखी लोगों का आर्तनाद गूँजता रहता था ; फिर भला मैं किसी और की कैसे सुन लेता। नौ मास इसी तरह बीत गये, मेरा निश्चय दिन दूना रात चौगुना दृढ़ होता गया और मैं हर समय उपयोगी पुस्तकों के पाठ में लगा रहने लगा। मेरे मामा कहीं गये हुए थे। उनके पास मेरे स्वास्थ्य के समाचार पहुँचते रहते होंगे। मैं भी तीसरे-चौथे दिन अपनी माँग पेश कर ही देता था। वे तङ्ग आ गये। नौ मास की कठिन तपस्या के बाद जैसे एक सुन्दर-से पुत्र का मुख निहारकर जननी धन्य हो जाती है। मैंने उसी अवस्था का-सा अनुभव किया, जब मेरे मामा ने ताने में लिख भेजा—अच्छा चले भी जाओ। मैं भला यह अवसर क्यों चूकने लगा। झटपट बिस्तर बाँध उसी शाम की गाड़ी पकड़ी और हरिद्वार जा पहुँचा।

हरिद्वार से कुछ हिमालय की घाटी में एक बड़ी जबर्दस्त संस्था राष्ट्रीय सेवक तैयार करने में लगी हुई है। मैंने इसकी प्रशंसा भी सुन रखी थी। एकदम वहीं की राह ली और आव देखा न ताव, सीधे वहीं डेरा डण्डा डाल दिया। लोग कुछ चौकन्ने हुए। किसी ने सोचा मैं कोई चोर, उचक्का हूँ किसी ने जाना कि घर से तङ्ग आकर उनकी शरण आया हूँ ; पर मुझे इस सब से क्या मतलब ! मुझे तो मा का सेवक बनना था, किसी से प्रशंसापत्र तो लेना ही न था।

यहाँ के अधिकारी मुझसे प्रसन्न हो गये। एक ने कहा—तेरा शील बहुत अच्छा है, दूसरे ने कहा—तेरे भाव बहुत ऊँचे हैं, पर यहाँ के विद्यार्थी भला कब यह सह सकते थे कि मैं नवागन्तुक होता हुआ अधिकारियों की नजरों में चढ़ जाऊँ। उन्होंने तरह-तरह से मुझे जलील करने की ठानी ; पर मैं अपनी राह पर चलता गया। अपने ढंग की तपस्या मैंने जारी रखी अर्थात् नमक-मीठा खाने से परहेज, जाड़ा हो या गर्मी, वर्षा हो या कड़ाके की धूप, हमेशा नंगे पैर नंगे सिर केवल एक धोती-चादर में रहना, चाहे बरफ पड़ रही हो या आग बरस रही हो, मैंने कभी अपने नियम को ढीला न होने दिया। जरा सोचिये तो यहाँ की सर्दियों में सवेरे तीन बजे उठकर बासी पानी से स्नान करना और फिर छत पर बिना कुछ ओढ़े-पहिने घूमते रहना या माघ-पौष की रातों में खुली हवा में बिना कपड़ों के सोना कोई मजाक तो नहीं है। पर मैंने यह सब कुछ किया, पूरी गम्भीरता के साथ किया। केवल यही विचार मेरे आगे रहता था कि आज करोड़ों आदमी भारत में ऐसे पड़े हुए हैं, जिन्हें यह सब मुसीबतें झेलनी पड़ रही हैं, जब तक मैं उनके दुख दूर न कर सकूँ तब तक मुझे सुख भोगने का, ऐश-आराम करने का अधिकार ही कहाँ है। जिस दिन मेरी संस्था में मिष्टान्न बन जाता या प्रीति-भोज होता तो उस दिन मेरा तीनो समय का उपवास हो जाता। मैं यह कैसे सह लेता कि भारत में चार-पाँच करोड़ आदमियों को तो एक समय भी पेट भरकर भोजन न मिले और मेरे साथी लड्डू, पूरी, हलवा, कचौरी उड़ाते रहें। अपने साथियों के पाप के अन्दर भी मुझे अपनी त्रुटि अपने मज़बूत आचरण की कमजोरी दीखती थी। मेरे किसी बन्धु ने एक बड़ा नियम भङ्ग किया, मेरे समझाने और विरोध करने के बाद भी किया। मुझसे रहा न गया और मैंने तीन-चार दिन का उपवास कर डाला और तब कहीं जाकर मुझे शान्ति मिली। ये भारत के पुजारी होंगे और इनका आचरण इतना कमज़ोर है यह चीज़ मुझसे देखी न जाती थी। खाने पीने उठने-बैठने और हर एक काम करने में मुझे यह ख्याल अवश्य रहता था कि यह चीज़ करोड़ों को नहीं मिल रही। अतः मैं इसे खाता हूँ, तो मानो पाप करता हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैंने अपने उपवासों का या अपनी कठिन तपस्या का रहस्य किसी को नहीं बताया, अपने किसी मित्र को भी नहीं और सच पूछिये तो मेरा कोई मित्र था भी नहीं। मेरा मत हर एक से भिन्न था और मेरा उद्देश्य हर एक से ऊँचा, अतः मुझे अपने ऊपर कुछ गर्व भी था। दूसरे लोग मुझे सदा ढोंगी और पाखण्डी ही समझते रहे। अतः मेरा उनका मेल होता भी तो कैसे। मैं अपने नियमानुसार सब को नापता था। जिसके अन्दर मुझे भारत के लिये सच्ची कसक न दिखाई दे, उसका मूल्य मेरे मन में कुछ भी न था। मेरे आराध्य देव थे तो गांधी और जवाहरलाल, मेरे मन में किसी के लिए आदर था तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी दयानन्द और तपस्वी श्रद्धानन्द के लिये। ब्रह्मचर्य में जो चीज़ बाधक हो, भारत माँ के लिए जो तड़पता न हो, तपस्यामय जीवन से जिसका लगाव न हो, उसके साथ मुझे सदा घृणा और वह भी तीव्र घृणा रही। गोरी चमड़ी देखकर मैं समता का सिद्धान्त भूल जाता था। जीवन का कोई उद्देश्य मेरी आँखों में जँचता था तो चम्पा चमारिन, लल्लू लुहार की अर्थात् नंगे-भूखों की सेवा। जो यह न करे, फिर चाहे वह हरिभजन करे या तत्त्व मनन, साहित्यिक हो या वैज्ञानिक, मेरी दृष्टि में उसका कोई मूल्य न था। किसी को जूठन छोड़ते हुए देख या भोजन की निन्दा करते देख मैं तड़प उठता था। हाय, मेरे नंगे-भूखे भाइयों को तो इसके स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, पर यह इसपर भी नाक भौं सिकोड़ते या अपनी जूठन किसी दूसरे को खिलाकर मानवता का अपमान करते हैं।

दिन बीतते गए और मैं अपनी दिशा में उन्नति करता गया। इस बीच बहुतों के साथ मेल हुआ और बहुतों से बिगाड़, इन सब की कहानी लम्बी है, कहाँ तक सुनाऊँगा। आखिर में जब उस संस्था से बिदा लेने के दिन आये तो एक अत्यन्त लज्जाजनक घटना घटी। मेरे कुछ साथियों ने सामूहिक रूप से एक सामाजिक पाप किया वह क्या था यह तो मैं न बताऊँगा। पर यह जरूर है कि उसने मेरे मन पर बहुत बड़ा आघात किया। उन्हें डर था कि कोई फूट गया तो भण्डाफोड़ हो जायेगा और हमारे पूजनीय और वास्तव में श्रद्धास्पद अधिकारी इसे यों ही न जाने देंगे। फिर क्या था एक तरफ से मेरी खुशामदें होने लगीं दूसरी तरफ अधिक से अधिक मुझसे बात गुप्त रखने की कोशिश की जाने लगी।

पाप को देखकर मेरा दम घुटने लगा, सोचा छोड़कर चलता बनूँ। ख्याल आया नहीं यह कायरता है। विरोध में डटना ही मुझे अपना धर्म लगा। एक तरफ मैं अकेला और दूसरी तरफ वे सब जिनसे भारत को बड़ी-बड़ी आशाएँ लगी हुई थीं। युद्ध शुरू हो गया। ताने दे देकर मेरा दिल छेदने की कोशिश की गई। मुझे मार-पीट कर ठीक कर देने के लिए कमर बाँधी गई। पर अचानक परमात्मा ने न जाने कैसे मुझे बचा लिया। मेरे सामान पर और मेरी पुस्तकों पर गुस्सा उतारा गया। मैंने समझ लिया कि यह भी मेरी मातृ-सेवा की तैयारियाँ हैं। मुझे कठिनाइयाँ झेलने के लिए अनुकूल अवसर मिल रहे हैं। ताकि आगे-आगे आनेवाली मुसीबतों के लिए तैयार हो सकूँ। अपने आदर्शों की छत्रछाया में भारत-माता के पैरों तले बैठा मैं क्यों किसी से डरता या घबराता। मेरी दृढ़ता की विरोधियों ने भी दाद दी। उनमें से कुछ को यह विश्वास हो गया कि मैं ढोंगी तो नहीं चाहे पागल भले होऊँ। बस यहीं से मुझे यह उपाधि मिलनी शुरू हो गई।

खैर जैसे-तैसे यह मुसीबत टली। सत्यमेव जयते नानृतं के अनुसार हम विजयी रहे पर कम से कम मैं अपने लिए तो कह ही सकता हूँ कि मेरे अन्दर घमण्ड पैदा हो गया। मैं अपना मूल्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुछ ज्यादा आँकने लगा। अपने आचरण, अपने सदाचार और अपनी दृढ़ता पर मुझे गर्व हो उठा। घरवालों ने विवाह की तैयारी शुरू की तो मैंने उन्हें एक डाँट बताकर, आँखें दिखाकर अपने को एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी समझ लिया; क्योंकि अभी तक तो मैं बराबर ही स्त्री के मुख देखने और नारी के साथ बात करने से भी बचता था न। हाँ, नंगी-भूखी माताएँ तो अपवाद थीं ही। शायद मैंने इस समय तक किसी भी नारी की मुखाकृति भी ठीक अच्छी तरह न देखी थी। फिर भला सगाई या विवाह का विचार ही मन में कैसे लाता।

हाँ, तो अब मैं पढ़-लिखकर विद्वान् बन गया और अपने आठ-दस वर्ष तक हृदय में बसाये हुए आदर्शों की ओर चलने का अवसर हाथ लगा। अपने आपको भारत की जड़ों के लिए खाद बना देने, नंगे-भूखों की सेवा में लग जाने का समय आ गया।

जुलाई का महीना था। गजब की गर्मी पड़ रही थी। मैंने सोचा दो महीने सुस्ता लूँ फिर नई स्फूर्ति और नई शक्ति के साथ काम में लग पड़ूँगा। मैं कुछ ऊपर चढ़ गया गङ्गा के किनारे एक रमणीक स्थान ढूँढ़ वहाँ कुटी बनाकर रहने लगा और आगे की स्कीम को अन्तिम स्वरूप देने लगा। एक महीना बीत गया, दो बीते और पलक मारते-मारते तीसरा भी बीत गया पर मैंने हिलने का नाम तक न लिया कितनी मनोहर घाटी थी वह। करते-करते दीवाली आ गई। मेरी कुटी पर अन्धकार का राज्य था। नंगे-भूखों का सेवक भी उत्सव मना सकता है क्या? मैं सोच रहा था आज बड़े-बड़े सेठ चैन से बैठकर त्यौहार मनाएँगे। हजारों-लाखों के वारे-न्यारे करेंगे। लाखों की आतिशबाजी फूँक देंगे और पायँगे क्या? उधर नंगे-भूखे हसरत भरी निगाहों, दिल के अरमान दिल में दबाये हुए कलेजा मसोसते, और बारबार ओठ चाटते हुए इनकी जूठी पत्तलों की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। हा देव! मानवता का यह अपमान अब असह्य हो उठा है। देव! तुम भी दानव हो क्या? मनुष्य की इतनी बर्बरता देखकर, अपने अमृत पुत्रों को कुत्ते की मौत मरते देखकर भी तुम्हारा हृदय पत्थर बना हुआ है। न हुआ मैं तुम्हारे स्थान पर नहीं तो दिखा देता।

ऐसी ही बातें सोचते-सोचते न-जाने कब मेरी आँख लग गई। स्वप्न में देखता क्या हूँ, मेरे आदर्श, मेरी महत्त्वाकांक्षाएँ, मेरे व्रत और मेरे नियम सब मूर्त रूप में चिता पर जल रहे हैं और मैं दाढ़ें मार-मारकर खड़ा रो रहा हूँ। मेरे अतिरिक्त वहाँ कोई है ही नहीं। मैंने अचानक ऊपर देखा गङ्गा माई एक देवी का रूप धारण किये सिर पर मुकुट लगाये, रत्न-जटित दण्ड लिये मेरे आगे खड़ी है। मुस्कुराते हुए उन्होंने अपना पाणि-पङ्कज मेरे सिर पर रख दिया। मेरी आँख खुल गई। वास्तव में मेरी घिघी बँधी हुई थी, पर यह अवस्था देर तक न रही। शायद गंगा में बाढ़ आई हुई थी। मेरी कुटिया का कहीं चिन्ह भी न था। मैं अपने तख्त सहित गंगा में बहा चला जा रहा था। मैंने तख्त मजबूती से पकड़ लिया। पर कब तक? नंगे भूखों का चित्र, अन्याय का चित्र और अपने आदर्शों का चित्र मेरी आँखों के आगे था, इतने में एक बड़ी-सी लहर की वजह से मेरा तख्त एक टीले से टकराया। मेरे हाथ छूट गये। मैं पूरी तरह गङ्गा के रहम पर था।

मुझे होश आया तो देखता क्या हूँ: एक अत्यन्त मनोहर प्राकृतिक कुञ्ज में पड़ा हूँ। पैर में कई जगह चोटें भी आई हैं और गङ्गा का पानी उन्हें धोता हुआ चला जा रहा है। इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीरव शान्ति पर मैं लट्टू हो गया ; पर भूख के मारे पेट में चूहे कूद रहे थे और अँतड़ियाँ 'कुलहो अल्लाह' का पाठ कर रही थीं। इधर-उधर नजर दौड़ाई तो पास में ही कुछ जङ्गली फलों के पेड़ लगे थे। बस फिर क्या था। नाम तो मुझे मालूम नहीं, पर हाँ इतने स्वादु फल कभी खाये न थे, यह जानता हूँ। उस दिन से गङ्गा वास्तव में मेरी माई बन गई और मैं इसका लाल। अब मैं इसी पर दीवाना हूँ और इसी का दामन पकड़े इसके पीछे-पीछे चला जा रहा हूँ। कोई कपड़ा इसमें बहता हुआ आ जाता है, तो उसे पहन लेता हूँ कोई फल आ जाता है तो खा लेता हूँ और चलता रहता हूँ। यहाँ गङ्गा शहर के बीच में से जा रही है तो मैं शहर में हूँ, यह वन में होगी तो मैं भी अपनी मा की रक्षा में वहीं होऊँगा, सुना है कि यह समुद्र से मिलने जा रही है। अपनी मैया के साथ-साथ मैं भी समुद्र में मिल जाऊँगा। आहा, ओहो क्या मजा है।'—यह कहते कहते उसने एक छलाङ्ग मारी और यह जा वह जा।

मैं निस्तब्ध बना बैठा था।

श्री अरविंदाश्रम, पांडिचेरी।

उलझन

[चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र']

[श्री चन्द्र प्रकाश वर्मा प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हैं। जीवन के प्रति आपका दृष्टि-कोण यथार्थवादी है।

मेरे आँगन में भीड़ लगी—
मैं किसको, कितना प्यार करूँ ?

(१)

सब आते उर में प्यास भरे,
अतृप्ति भरे, उच्छ्वास भरे ;
मुझमें असीम विश्वास भरे,
है मेरा उर-मधु-कलश एक—
मैं किस-किस का सत्कार करूँ ?

(२)

कुछ जग-जीवन के रोग लिये,
कुछ सुधियाँ लिये, वियोग लिये,
सब दुख पाने के योग लिये—
आते हैं, एक मसीहा मैं—
मैं किस-किस का उपचार करूँ ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३)

प्रति पल पर नूतन आकर्षण,
प्रति पल नूतन मेरे बन्धन,
प्रति पल नूतन मेरा जीवन,
मैं ऊब गया सुख से, इसको—
कैसे दुख का उद्गार करूँ?

(४)

किससे मैं किस प्रकार बोलूँ?
किस उर में कितना रस घोलूँ?
किस गोदी में सिर रख सो लूँ?
मैं हूँ प्रेमी नादान, हाय,
किससे कैसा व्यवहार करूँ?

(५)

दो पल राजा की आन-बान,
दो पल फ़क़ीर का करुण गान,
दो पल सबकी हलचल महान,
दो पल का मेरा जीवन है—
मैं कैसे, किससे, रार करूँ?

(६)

कितने दृग मुझको रहे ताक,
कितने दृग मुझको रहे झाँक,
मैं क़ीमत सब की रहा आँक,
मेरे दो, पर वे अनगिन हैं—
किस-किस से लोचन चार करूँ?

(७)

जब कुंज कुंज कलियाँ फूलीं,
जब तरु-तरु लतिकायें झूलीं,
तब पद-ध्वनियाँ भटकी भूलीं,
मैं सुनता हूँ, आती समीप—
किस आहट को स्वीकार करूँ?

(८)

मैं किसको कितना प्यार करूँ?
कैसे न किसी का सत्कार करूँ?
मानव हूँ फिर बोलो तो
मानव की दुर्बलताओं का
मैं कैसे तो परिहार करूँ?

लक्ष्मी-भवन, नरसिंहपुर।

[११३४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीत

[भगवतीप्रसाद सकलानी]

बीतती यह सभीत रजनी
तारकों को आज गिन-गिन,
सुन न पाया पर सजनि वह—
चरण नूपुर की रिनिन-रिन !

रात के पथ-हीन वन में
कंटकों की सेज पर
बाँसुरी पर कौन विरही
गीत करुणा के रहा भर ?
आ रचा जिसके सुरों ने
वेदना का विश्व सारा
बैठ पीपल-तल विकल हो
सकल-पथ जो देख हारा।

सलज, चंचल-दृग, अरुण-मुखि,
पिक-वयनि, ऋजु तरुण-मन,
लाज घूँघट में छिपी तुम—
कर रही क्यों विकल छिन-छिन ?

नील-नील निरभ्र-नभ में
नीलिमा के यान पर
कौन बैठी शशि सुहासिनि
हीरकों के हार बिंधकर
ज्योति की प्रतिमा रमा-सी,
युवति, रति-सी कुंद-दशना
मुक्त-केश अशेष छाए,
वरण-चम्पक, किरण वसना
क्यों लजाती हो सुमुखि तुम
मानिनी उन्माद छोड़ो !
प्रिय तुम्हारा हेरता पथ
दूब-दल के ओस गिन-गिन !

काशी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीत

[देवीलाल सामर]

अपने घर में दीप जलाऊँ।
काली रातें टूटा घर है,
बाहर रखवाले बर्बर हैं,
घर में मैं ही बचा अकेला
दुख दर्दों का मारा झेला
ऐसी निर्जन रातों में किसको मैं अपनी कथा सुनाऊँ।
अपने घर में दीप जलाऊँ।
पथिक यहाँ जो नित आते थे
मेरे घर आश्रय पाते थे;
उनके हित मैं पलक बिछाकर
स्वागत को मैं रहता तत्पर
केवल स्मृतियाँ ही अब रखकर अपना जीवन सफल बनाऊँ।
अपने घर में दीप जलाऊँ।
टूटे घर को पुनः बनाना
मैंने अब तक तो नहिं जाना;
जैसा भी अब मेरा घर है
मुझको तो वह भी सुखकर है
जिनके रहने का न ठिकाना उनको ही अब यहाँ बसाऊँ।
अपने घर में दीप जलाऊँ।
कौन निरंतर रहने आया,
जग में सबकी नश्वर काया।
प्रलय बीच में जीवन जीकर
खेलूँ सफल खिलाड़ी बनकर
दुख-सुख के परिणाम तुच्छ हैं उनका फिर क्यों स्थान बनाऊँ।
अपने घर में दीप जलाऊँ।

विद्याभवन, उदयपुर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दौर-दौरा

शरत्-साहित्य (१२ वाँ भाग) : 'रमा नाटक' और 'परिणीता'—लेखक : स्व० शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय, प्रकाशक: हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर, गिरगाँव, बम्बई; मूल्य ॥)

शरत्-साहित्य-माला का बारहवाँ भाग सस्ते और सुन्दर सुरुचि-पूर्ण प्रकाशन में पहले से भी आगे बढ़ गया है। प्रकाशकों को हमारी बधाई के लाभ की अपेक्षा पुस्तक-वितरण उन्होंने अपना ध्येय बनाया है। 'रमा' (देहाती समाज) और 'परिणीता' पहले भी इंडियन प्रेस से उपलब्ध थीं, किन्तु उनका मूल्य साधारण हिन्दी पाठकों के लिए वर्जित-सा था।

'रमा', 'देहाती समाज' का नाटक के रूप में काया-कल्प है। प्रकाशकों के अनुसार इसका कलकत्ता के रंग-मंच पर सफल अभिनय भी हुआ है। शरत् बाबू के उपन्यास नाट्य घटनाओं से भरे तो रहते ही हैं, यह विचार चित्रपट पर अभिनीत उनकी अनेक कथा और भी दृढ़ करती हैं। 'रमा' नाटक के रूप में कुछ छोटा तो अवश्य हो गया है, किन्तु ज़रूरी बात कोई छूटी नहीं है।

'रमा' नाटक बंगाल के देहाती समाज का एक सजीव चित्र है। देहाती समाज के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। हम समझते हैं कि भारत के ग्राम्य-जगत में देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की अटूट धारा चिरकाल से अपने निर्मल स्वरूप में बही है, और ग्राम की ओर मुड़ने के लिए हमारे बीच व्याकुल आवाज़ उठ रही है। किन्तु हम देखते हैं कि ग्रामीण समाज में क्रूरता, दुराचार, मक्कारी कूट-कूटकर भरे हैं। इस काले पट पर केवल रमेश और 'ताई' थोड़ा-सा आलोक डालते हैं। स्व० प्रेमचन्द के ग्राम्य-चित्र अपेक्षाकृत आकर्षक होते थे। शरत् बाबू मध्य वर्ग का चित्रण कर रहे हैं, ग्राम के ज़मीन्दार, ब्राह्मण और सूदखोरों का ; प्रेमचन्द कृषक-समाज का चित्र खींचते थे। इन दो चित्रों की विभिन्नता यह मूल कारण है। शरत् बाबू के चित्रण में इस कारण हम नग्न यथार्थवाद देखते हैं और प्रेमचन्द में आदर्शवाद।

प्रचलित समाज-योजना के प्रति असंतोष ही विकास की ओर हमें ले जाता है। शरत् बाबू किसी आदर्श हिन्दू-प्रणाली की खोज में थे ; उनके 'स्वामी' आदि अपन्यास हमें यह सुझाते हैं। किन्तु 'श्रीकान्त', 'देवदास' आदि कथाओं में सामाजिक विप्लव के लिए भी काफ़ी मसाला है।

'रमा' हमारे जर्जर, जराजीर्ण सामन्तीय प्रथा, ज़मीन्दारी आदि की निर्मम कहानी है, साथ ही प्रबल विरोध भावना और परिवर्त्तन के भी हमें यहाँ चिह्न मिलते हैं। रमेश और नीची जातियों के उसके कुछ समर्थक एक नई समाज-योजना के प्राण-वाहक हैं।

'रमा' भारतीय साहित्य का एक प्रमुख दीप-स्तम्भ है और भविष्य के साहित्य और समाज-निर्णय में हमारा पथ आलोकित करता रहेगा।

'परिणीता' एक विशेष भाव-पूर्ण लम्बी कहानी है। इसकी गिनती न तो उपन्यास में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो सकती है, न गल्प में। इसी श्रेणी में 'मेज दी' 'विन्दोर छेले' आदि अन्य कहानियाँ भी आती हैं। तीर की तरह सीधी जाकर वे हमारा मर्म-स्थान स्पर्श करती हैं।

'परिणीता' बंगीय परिवारिक और सामाजिक जीवन की एक झाँकी है। गिरीन बाबू, ललिता, ललिता के मामा, शेखर की मा अनेक चरित्र मनुष्य के प्रति हमारी श्रद्धा बढ़ाते हैं और मनुष्य-जीवन की विषम समस्याओं को हमें कुछ देर के लिए भुला देते हैं। समाज के रोगों का निदान आदर्श व्यक्ति कुछ हद तक ही हैं। हम ऐसी समाज-प्रणाली चाहते हैं जो शेखर के पिता सरीखे मनुष्यों को शोषण और अनाचार का अवसर ही न दे। मनुष्य ही संस्था निर्माण करता है, किन्तु संस्था भी मनुष्य को कुछ-का-कुछ बना देती है।

'शेखर' का चरित्र मनुष्य की दुर्बलताओं और आकांक्षाओं का अच्छा उदाहरण है। कुछ हद तक गिरीन से भी अधिक यह सफल व्यक्तित्व-चित्र है, क्योंकि इसमें अधिक शिल्प-कला है। मनुष्य के अन्तर्जगत की जटिल और उलझी गुत्थियों की यहाँ नक़्काशी मिलती है।

हम कृतज्ञ हैं कि भारतीय साहित्य के यह भव्य स्मारक इतने सहज ही हमारे पथ में दीख रहे हैं।

• • •

१ ज्ञानरथ २ तराजू—लेखक—स्व०, सुब्रह्मण्य भारती, प्रकाशक : भारती प्रचुरालयम्, मदरास मूल्य ॥), ।=)

हिन्दी भाषा में भारत के विख्यात साहित्यकारों की कृति का अनुवाद हो, इस नीति के हम पक्षपाती हैं। आज रवि ठाकुर और शरत् बाबू की रचनाएँ हृदयंगम कर हमारा आत्म-सम्मान बढ़ जाता है। स्व० भारती जी का तमिष साहित्य में क्या स्थान है, उनकी मूल तमिष-शैली क्या है—यह हम नहीं जानते। किन्तु केवल ऊपर की अनुवादित पुस्तकों के बल पर हम आपके प्रति बहुत उत्साहित नहीं होते।

स्व० भारतीजी की कृति में सरल विनोद के साथ-साथ सहज गंभीरता है। काव्य में डूबी भाषा जो अनायास मन विभोर करती है, इन पुस्तकों में हमें नहीं मिली। कवि-कल्पना के गढ़े चित्र अवश्य मिलते हैं। कुछ धार्मिक, देश-प्रेम से भरी, प्राचीन संस्थाओं को आदर से देखने वाली मनोवृत्ति जिसके अभ्यस्त हम दक्षिण के विद्वानों से हो चुके हैं, इन पुस्तकों में भी मौजूद है। शायद मद्रास के प्रधान सचिव श्री चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य ऐसी पुस्तकें लिखने बैठें, तो आसानी से लिख सकें। ऐसी पुस्तकें हमारे साहित्य-मंदिर की खिड़कियाँ खोल कुछ नई हवा लाती हैं, यह उनका मूल्य अवश्य है।

'ज्ञान-रथ' पर बैठ कवि ने अनेक लोकों की फेरी लगाई। 'उपशान्ति लोक' में मन को जलाकर चिन्ता-मुक्त तपस्वी रहते हैं; उन्हें न सुख का बोध है, न दुःख का। 'गंधर्व लोक' में सुख ही सुख है। यह भोग-मार्ग है। भोग से भी मनुष्य आकांक्षा-रहित शान्ति पा लेता है। 'गंधर्व लोक' का चित्र लेखक ने सुंदर देखा और रंगों से बनाया है। 'मृत्यु लोक' का चित्र और भी अधिक भाव-पूर्ण बन सकता था। 'सत्य लोक' और 'धर्म लोक' घूमकर भी लेखक ने देखा कि जीवन में दुःख-सुख धूप-छाँह की तरह साथ-साथ रहते हैं; बिना एक के दूसरे का अस्तित्व नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्राचीन भारतीय विचार-शैली की 'तराजू' में भारतीजी ने जीवन की अनेक घटनाओं को तोला है। 'वेद'—यह कहने से सब पाप दूर हो जाते हैं। भगवद्गीता में भरोसा रखनेवाले, चाहे कोई भी हों, हमारे भाई हैं।...' आदि 'तराजू' के कुछ मंतव्य हैं। विमल हास्य की मात्रा अवश्य तराज़ू में ख़ूब है।

भारतीजी की विचार-प्रणाली से हमारा घोर मतभेद है। हम सुख-दुःख को काल्पनिक और अनिवार्य मानकर अब अधिक दिन नहीं जी सकते। हमको मनुष्य की विषम परिस्थितियों में महद् परिवर्त्तन करना होगा। क्रान्ति की पोषक भारतीजी की विचार-धारा नहीं। आप पीछे मुड़ रहे हैं, हम आगे जाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त भी—वह बड़प्पन की छाप जो मतभेद रहते हुए भी पाठक को परवश कर देती है—भारतीजी में हमें नहीं मिल रही।

• • •

देश-देश के लोग—लेखक : विट्ठलराव घाटे, प्रकाशक : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, बम्बई ; मूल्य १।)

राष्ट्र-निर्माण में इस ढंग की पुस्तकें बहुत मदद करती हैं। अन्य देशों में ऐसी सैकड़ों पुस्तकें निकला करती हैं। हमारे देश के विद्यार्थियों के पास पुस्तक ख़रीदने को पैसा तो नहीं है, किन्तु ज्ञान-वर्धन का उत्साह भी नहीं।

'देश-देश के लोग' हमें अन्य देशों के निवासी और उनकी संस्कृति का परिचय कराती है। एक प्रकार से इसे भूगोल की पाठ्य-पुस्तक कह सकते हैं। किन्तु स्कूलों का भूगोल केवल सूखी हड्डियों का पिंजर-मात्र होता है। ऐसी पुस्तकें पाठ्य-विषय में जीवन डाल देती हैं। कहानी-सी सहज और तरल गति इस पाठ की है। बीच-बीच में कुछ स्केच भी दिये हैं जो विषय को सजीव बनाने में सहायक हैं। लेखक की शैली मँजी और प्रौढ़ है।

किसी देश के नदी, पर्वत, बन्दरगाह, उपज आदि का संपूर्ण हवाला तो इस पुस्तक में नहीं है, किन्तु वहाँ की संस्कृति का ख़ाका अवश्य है। केवल विद्यार्थी ही नहीं, देश के तरुण और वृद्ध पाठक भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

इस नवीन प्रयास पर प्रकाशकों को बधाई।

• • •

शेफाली—लेखक, श्री राजेश्वर गुरु। प्रकाशकः सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद ; मूल्य १।)

'शेफाली' का कवि हमें हिन्दी काव्य के भविष्य की रूप-रेखा समझने में काफ़ी मदद देता है। यद्यपि पुस्तक का शिथिल सा 'गैट-अप' हमें उसकी ओर अनायास ही आकृष्ट नहीं करता। श्री 'अज्ञेय' और हजारीप्रसाद द्विवेदी के प्राक्कथन पढ़कर हम समझ जाते हैं कि 'शेफाली' के कवि का उदय और विकास हिन्दी जगत ध्यान से देखेगा। विशेष कर 'स्मृति' नाम की कविता हिन्दी की आदरणीय चीज़ होगी।

'शेफाली' का विशेष आकर्षण उसकी टेकनीक की नवीनता है। आधुनिक हिन्दी काव्य परिपाटी की दलदल में फँसता जा रहा है, किन्तु उसकी जीवन-प्रेरणा उसे उबार अवश्य लेगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक आशा का उज्ज्वल चिह्न यह है कि हमारे कवि जीवन के समकक्ष आने का प्रयास कर रहे हैं, 'निराला', भगवतीचरण वर्मा, 'दिनकर' आदि।

'शेफाली' की प्रारम्भिक कविताएँ तो परिपाटी के ही अनुगत हैं। उनमें चिकनाई, सुघराई संगीत-माधुरी सब कुछ है, किन्तु कोई अपनी विशेषता नहीं :—

'सजनि, वातायन खुली, री !
मैं कुसुम-तन चौंकती-सी नयन अलसित खोल जागी,
कौन सपने की परी-सी पुतलियों के दोल जागी ?
कौन मुझ पर झर गई अनजान बनकर नेह-रोरी ?
लाज-सी कुछ भर गई तन में, किसी की रूप-आगी !
छू गई मुझको पुलक स्वर्णिम किरन मधु की धुली, री !'

पिछले भाग की कविताएँ हमारे सीमा-क्षेत्र को विस्तृत करती हैं और हिन्दी-काव्य को नवीन दिशाओं में आने का आमन्त्रण देती हैं। 'मृत्यु', 'कवि', 'चित्रकार', 'स्मृति' आदि कविताओं में मुक्तक छंदों का अभिनव और सफल प्रयोग है, साथ-ही-साथ अनेक आकर्षक और मोहक शब्द-चित्र। मुक्तक छंद का स्वयं अपना स्वतंत्र और अखंडित प्रवाह-संगीत होता है। कुशल शिल्पकार ही उसकी धारा को अटूट रख सकते हैं। यह आत्मा का संगीत कवि की शब्द-लहरियों में उमड़ पड़ा है :—

'वह स्वर जहाँ से—
प्रान के लघु कम्पनों पर ताल देता आ रहा था।'

'तुम्हारा शीत-परस अनमोल
हृदय-पंछी की, पाँखें खोल
उड़ा ले जाता जग से दूर—विश्व की धूप-छाँह से दूर—
वहाँ पर-
जहाँ
यहाँ के सुख-दुख से अज्ञात
इन्द्र-धनु की गोदी में खेल
बहा करती प्रति क्षण, सब काल
सौख्य की धार,
तुम्हारा कितना सुन्दर प्यार'
('मृत्यु' से)

'शेफाली' का कवि जगत के राग-द्वेष से दूर अपने में ही भूला शिल्पी है। इस कारण उसकी कविता में एक उदासीनता और उल्लास-रहित कौशल है। प्रकृति के सौन्दर्य से तो वह आकर्षित हुआ है, किन्तु मनुष्य की सत्ता के प्रति वह अचेतन है। 'शेफाली' की अधिकांश कविताएँ 'तारक-कन', 'शबनम', 'अन्धकार, 'प्रभात', 'पल्लव' आदि विषयों पर हैं; और इनमें प्रकृति-बाला का अभिनव श्रृंगार है। जब कवि का स्वर व्यक्तिगत पीड़ा से कम्पित हुआ है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तभी उसके काव्य में अभूतपूर्व प्राण और शक्ति का स्पन्दन है; और 'स्मृति' जैसी कविता का जन्म हुआ है। जीवन के प्रति कवि का दृष्टिकोण शायद 'पल्लव-दल' कविता में प्रगट हुआ है।

'हम चिर-प्रसन्न,
क्या हर्ष-शोक, क्या शूल-फूल,
हम दोनों से ही चिर-अजान।'

श्रीयुत् गुरु की कविता का प्रसार हम उत्सुकता-पूर्वक देखेंगे। आशा है भविष्य में आपकी कला की रूप-रेखा और भी प्रौढ़ता प्राप्त करेगी और आप प्रकृति के साथ-साथ पुरुष का राग भी उठाएँगे।

प्रकाशचन्द्र गुप्त।

• • •

नीलमदेश की राजकन्या और अन्य कहानियाँ—ले०; जैनेन्द्रकुमार, प्रकाशक; हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। मूल्य १॥।)

किसी ने एक महान् साहित्यक की एक कहानी पढ़ी। पढ़कर उसने लेखक से पूछा—आपने यह किस उद्देश्य से लिखा है? लेखक ने कहा—उद्देश्य! कहानी लिखने के उद्देश्य से ही मैंने कहानी लिखी है। बस!

यह उस महान् साहित्यक की बात है। कोई इसे माने या न माने। एक मत होना ज़रा कठिन है, पर जैनेन्द्रकुमार की प्रस्तुत पुस्तक के विषय में जब हम कहते हैं कि वे कुछ कहना चाहते हैं, कुछ भी वह जो बहुत गहरा है तो दो मत न होंगे। जीवन में बहुत गहरा पैठकर और फिर स्तर पर आकर वे हमें वहाँ की झाँकी देते हैं। झाँकी एक दम सत्य है, पर एक तो जैनेन्द्र स्वयं उद्विग्न हैं, दूसरे साधारण पाठक इतना गहरा पैठता नहीं इसी से वे (पाठक) इस सचाई को परख और समझ नहीं पाते।

साधारण पाठक, जिसे लेखक के प्रति श्रद्धा भी है, अधिकांश कहानियों को पढ़कर कहेगा—बड़ा ऊँचा स्टैन्डर्ड है, भाई! हमारी वहाँ पहुँच कहाँ?

लेकिन यह राय तो अच्छी नहीं है। समय बिताने के लिए जो कहानी पढ़ते हैं, वे इस पुस्तक में मनो जन न पा सकेंगे। हाँ! जो बौद्धिक ज्ञान के प्रति सजग हैं, वे इन कहानियों में दिन-रात चलती-फिरती मानव-मूर्तियों के दर्शन करेंगे। पर स्पष्ट होकर भी वे सरल नहीं हैं। यही लेखक की असफलता है। इसी कारण इनमें जो कसक, वेदना, अनुभूति और प्रेरणा है वह साधारण पाठक के मन-मस्तिष्क को छू नहीं पाती। कोरे हृदय को लेकर बहुत कम कहानियाँ इस संग्रह में हैं। कहानी लिखते समय हृदय की उपेक्षा करके मस्तिष्क पर सारा बोझ रख देना किसी भी प्रकार उचित नहीं है।

लेकिन इतना कुछ कहकर संग्रह की सुन्दर कहानियों को हम भुला नहीं सकते हैं।

'दृष्टि दोष', 'विस्मृति', 'त्रिवेनी', 'जाह्नवी' 'एक गो', 'पानवाला' आदि कहानियों में जो दर्दमय अनुभूति है, वह सचमुच हृदय मसोस देती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'रेल में' कहानी के नायक के प्रति पाठक का मन गहरी दर्द भरी सहानुभूति से भर उठता है।

'दुर्घटना', 'सम्बोधन', 'कुछ उलझन में', 'कः पन्था', 'चिड़िया की बच्ची', 'व्यर्थ प्रयत्न', 'इक्के में', 'कहानीकार', 'देवी देवता', 'अनबन' 'हवा महल' बड़ी उलझी हुई कहानियाँ हैं। लेखक किसी गहरी समस्या को लेकर मानो पाठक से विचार-विनिमय कर रहा है। उन्हें कहानी कहना मुश्किल है।

'ग्रामोफोन का रिकार्ड', 'एक कैदी' व 'गँवार' बड़ी सुन्दर कहानियाँ हैं।

'नीलम देश की राज कन्या' एक प्राकृतिक और मनोवैज्ञानिक सत्य का दिग्दर्शन है।

'पानवाला', 'जाह्नवी', व 'गँवार', 'एक गो' जैसी कहानियाँ संग्रह की ही नहीं बल्कि कहानी साहित्य की सुन्दरतम कहानियाँ हैं।

जैनेन्द्रकुमार की शैली और भाषा अपनी है। उनकी तुलना हमें नहीं मिलती। पर यह निश्चित है, इधर उनकी शैली कहानी के कहानीपन को बहुत कुछ खोती जा रही है। लेकिन कुछ भी क्यों न हो, कहानी-साहित्य को अभी उनसे बहुत पाना है।

पुस्तक सब प्रकार से संग्रहणीय है। छपाई-सफ़ाई बड़ी सुन्दर है।

विष्णु।

• • •

स्मृति स्थल—(मराठी) सम्पादकः श्री वामन नारायण देशपाण्डे; प्रकाशकः डॉ० पु० वि० देशमुख, एम्० बी० बी० एस्० कार्याध्यक्ष, सरस्वती प्रकाशन, यवतमाल (बरार) मूल्य २) रु०।

महाराष्ट्र के प्राचीन इतिहास में 'महानुभाव' पंथ एवं उसके साहित्य को एक विशेष महत्त्व का स्थान प्राप्त हुआ है। पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि महानुभाव-पन्थियों ने अपना साहित्य लगभग ६०० वर्षों तक अनेक आपत्तियों से बचाकर बड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ गुप्त रखा था! अपने धर्मग्रन्थ सुरक्षित रखने के हेतु से उन्होंने उनकी रचना एक विशिष्ट सांकेतिक लिपि में की थी! महाराष्ट्र सुदैव से यह गुप्त धन अभी लगभग ४० वर्ष पूर्व स्व० राजवाडे आदि महाराष्ट्रीय विद्वानों के प्रयत्नों से मराठी पाठकों को उपलब्ध हुआ। इस उपलब्धि से मराठी के साहित्य-भण्डार की अपूर्व श्री-वृद्धि होकर प्राचीन साहित्य के अनुसन्धान का एक नया और विस्तृत क्षेत्र खुला है। अस्तु।

श्री वामनरावजी ने सन् १९३५ में 'आद्य मराठी कवयित्री' नामक महानुभाव-साहित्य के एक सरस काव्य-ग्रन्थ का सम्पादन किया था, जिसका परिचय इन पंक्तियों के लेखक ने 'हंस' की मार्च १९३६ की संख्या में (पृ० १११) पाठकों को करा दिया था। प्रकृत 'स्मृति स्थल' आपका सम्पादित दूसरा महानुभावीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का विषय महानुभाव-पन्थ का पहला आचार्य नागदेव उर्फ भटोबास की जीवन-कथा है। यह प्राचीन महानुभाव-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है; विशेषकर प्राचीन मराठी के अभ्यासकों के लिए तो वह बहुत ही महत्त्व

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का है। इसका कारण यह है कि यह चौदहवीं शताब्दि में रचित एक सम्पूर्ण एवं उत्कृष्ट गद्यग्रन्थ है। मराठी में—बल्कि भारत की अन्यान्य भाषाओं में—प्राचीन गद्य-ग्रन्थ बहुत ही कम—केवल इने-गिने ही—पाये जाते हैं, यह सर्व-विश्रुत ही है। महानुभाव-पन्थ की दृष्टि से इस ग्रन्थ की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें उक्त पन्थ के आरम्भिक साहित्यकारों के सम्बन्ध में कतिपय ज्ञातव्य बातें बिखरी हुई मिलती हैं। तीसरा महत्त्वपूर्ण लाभ है—तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थिति का ज्ञान, इस ग्रन्थ की रचना चौदहवीं शताब्दि में यानी प्राचीन देवगिरि (आधुनिक दौलताबाद) के राजा रामदेव यादव के शासनकाल में हुई थी। अतः तत्कालीन परिस्थिति के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ के अध्ययन से बहुत-सी जानकारी प्राप्त हो सकती है।

'आद्य मराठी कवयित्री' की भाँति इस ग्रन्थ का सम्पादन भी श्रीवामनरावजी ने अत्यन्त परिश्रम-पूर्वक किया है। पाठभेद, तीन परिशिष्ट, टिप्पणियाँ, शब्दकोष, सूची, प्रस्तावना आदि जोड़कर आपने ग्रंथ सर्वाङ्ग-पूर्ण बनाने की पूरी कोशिश की है। आशा है, महानुभाव पंथ के अनुयायी तथा प्राचीन मराठी के अभ्यासक इस ग्रंथ का समुचित आदर कर सम्पादक के परिश्रम को सार्थक करेंगे।

नागपुर। आनन्दराव जोशी।

• • •

प्रस्तुत प्रश्न—लेखक : श्री जैनेन्द्र कुमार—प्रकाशक : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई। मूल्य २)

आलोचना करना सबसे आसान भी है और कठिन भी। आसान इसलिए कि मानव स्वभाव से ही आलोचक है। कठिन इसलिए कि बहुधा उसकी स्वाभाविक आलोचना के मूल में अज्ञान रहता है। ज्ञानमूलक समीक्षा के लिए जिस विचारशक्ति की ज़रूरत होती है, उसका प्रयोग कहीं-कहीं ही हो पाता है। 'प्रस्तुत प्रश्न' जैसी पुस्तक तो समीक्षक के लिए एक जटिल समस्या पैदा कर देती है। जैनेन्द्र हिन्दी-संसार के परिचित लेखक हैं। उनकी दार्शनिकता भी प्रकट है। वे प्रतिभा को पागलपन कहते हैं, पर बहुतों के मतानुसार उनकी प्रतिभा प्रखर है। इसीलिए उन्होंने मौजूदा दुनिया में पैदा हो रहे, लगभग सभी प्रश्नों पर विचार किया है। उनकी राय में 'इस युग की सभ्यता को राजनीतिक कहिये'। और 'राजनीतिक सभ्यता से जीवन सभ्य नहीं होता'। 'तब ज़रूरी है कि एक अधिक स्वस्थ, अधिक निर्भय और समन्वयशील जीवन-विधि का सूत्रारम्भ हो और वही दृष्टिकोण लोक में प्रतिष्ठित किया जावे।'

यह विचार इस पुस्तक के अस्तित्व का कारण है। पुस्तक के तीन खंड हैं और तीन खंडों के तीन प्रश्नकार। सर्व श्री हरदयाल 'मौजी', गजानन पोतदार, और प्रभाकर माचवे, M. A.।

हमारे साहित्य में प्रस्तुत पुस्तक एक नया आयोजन है, यह तो हम नहीं कह सकते। पुरातनकाल में प्रश्नोत्तर-रूप में अनेक पुस्तकें हमें मिलती हैं। विशेषकर उपनिषत् काल और उसके बाद धर्मशास्त्र में इसी शैली का प्रयोग किया गया है। अपने को व्यक्त करने और प्रचार की दृष्टि से इसका अपूर्व महत्त्व है। यह सरस भी है। लेकिन प्रश्न करने और उत्तर देने की इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रीति के लिये लोगों में एक धारणा है। वह यह कि उत्तर देनेवाले की पात्रता एक निश्चित रूप-रेखा बना बैठी है। जीवन को ऐसी अनेक जटिल समस्याओं पर अपने को वही व्यक्त कर सकता है जिसने उन्हें खूब परखा हो और जो बहुत ऊपर उठ गया हो। इसीसे प्रश्न उठ सकता है—क्या जैनेन्द्र उस स्थिति पर पहुँच गये हैं, जहाँ से वे अधिकार-पूर्वक ऐसे जटिल प्रश्नों पर अपने को व्यक्त कर सकें। कहीं वे अपने पीछे किसी 'वाद' या 'डम' की सृष्टि तो नहीं कर रहे हैं।

अपने को व्यक्त करने का अधिकार सबका है। कैसे व्यक्त करे यह उसकी शक्ति योग्यता की बात है। 'वाद' और 'डम' की बात भी शक्ति में है। लेकिन यहाँ प्रश्नों का उत्तर देते समय एक निश्चित सिद्धान्त का आश्रय लिया गया है। वह गांधी की अहिंसा है। मूलतः वे जैन हैं इसीसे 'अहिंसा' पर विचारने का उनका और भी अधिकार है। समूची पुस्तक में यही स्थिति है। कोई नया वाद नहीं अपितु पुराने अहिंसावाद (यदि यह वाद है) के आधार पर ही सब प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है। पाठक इसे 'प्रयत्न' से अधिक कुछ न लें। फिर भी जो अहंकारिता पाठक इसमें पायेंगे, वह स्वाभाविक है और प्रतिभाशाली उससे छूट नहीं सकता।

हमारे साहित्य में इतने व्यापक क्षेत्र को छूनेवाली दूसरी पुस्तकें कम हैं! Thought culture पर भी इसकी उपादेयता अक्षुण्ण है। समाज-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, धर्मशास्त्र तथा कुछ बहुत ही आधुनिक वादों पर विचार इसमें हैं। 'समाज विज्ञान' जैसी पुस्तक के अनुसार शुद्ध विकासवाद की दृष्टि से तो विचार नहीं किया गया है, पर अहिंसा के सिद्धान्त पर बड़ी व्यापक दृष्टि डाली गई है। फिर भी यह पुस्तक एक सिद्धान्त का प्रतिपादन-मात्र है। उत्तरदाता स्वयं कहते हैं—मेरा विश्वास है कि अहिंसा-वृत्ति से ही मानवता का काम चलेगा।

पुस्तक की एक सबसे बड़ी कमी यह है कि प्रश्न प्रत्यक्ष से अधिक तर्क पर आश्रित हैं, इसी से श्री मश्रुवालाजी ने इसे 'मानसिक प्रयत्न' मात्र कहा है।

पुस्तक के अनेक उद्धरण देकर उनपर तर्क किया जा सकता है, परन्तु यह समीक्षा इसलिए नहीं है। हो भी तो उसके तर्क का अन्त नहीं; पर कुछ भी हो पुस्तक किसी भी प्रकार अनुपयोगी नहीं है। गांधी के सिद्धान्त के प्रति जो श्रद्धावान् हैं वे इसमें अपना प्रबल पक्ष पायेंगे और जो नई पौध अब उग चली है, उसे भी इन उत्तरों को खूब जाँचकर आगे बढ़ने की ज़रूरत होगी।

यह पुस्तक खूब पढ़ी जानी चाहिये। विष्णु।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

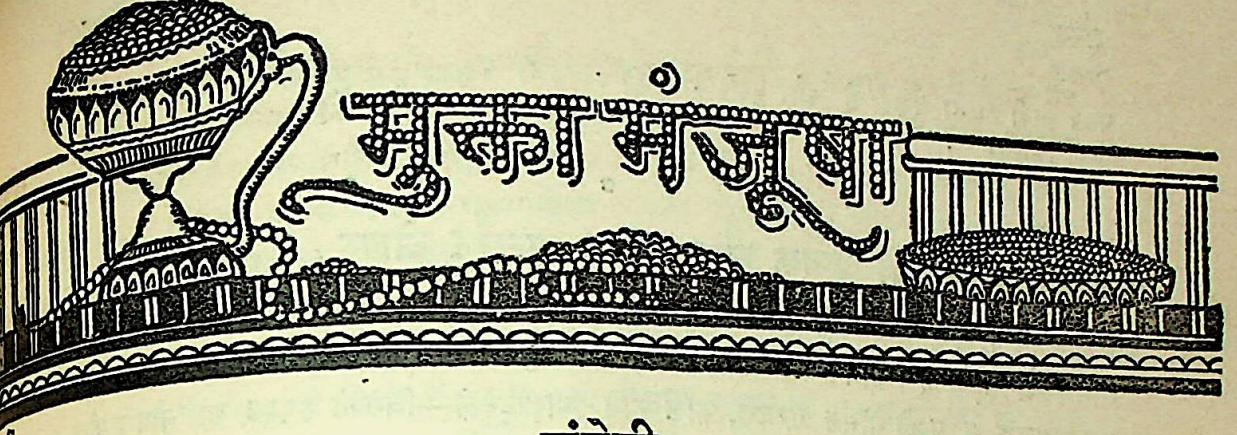

अंग्रेजी

नाटककार बर्नार्ड शॉ की पाठकों तथा प्रेक्षकों को नई चेतावनी

[विनोद-मूर्ति जॉर्ज बर्नार्ड शॉ दुनिया से न्यारी अपनी विचार-धारा को लेखनी तथा वाणी के द्वारा समान रूप से स्वच्छन्द बहने देने में ख्यात हो चुके हैं। शॉ की इस मनोवृत्ति का ताजा उदाहरण है—बम्बई के 'टाइम्स' प्रेस द्वारा दो भागों में प्रकाशित अपने समग्र नाटकों पर स्वयं शॉ महोदय की ही लिखी हुई भूमिका। शॉ की इस भूमिका का महत्त्व-पूर्ण अंश अपने पाठकों के मनोरंजन के लिए हम यहाँ उद्धृत करते हैं।—सं०]

बर्नार्ड शॉ लिखते हैं:—

'...आप मेरे नाटकों का संपूर्ण रसास्वाद लेना चाहते हैं न? तो पहले मेरे सम्बन्ध की वे सब बातें, जो आपने समय-समय पर अखबारों में पढ़ी होंगी, बिलकुल भूल जाइये। ऐसा किये बगैर आप मेरे नाटकों का रसास्वादन कर नहीं सकते। मेरे सम्बन्ध की जो भी भली या बुरी धारणायें आपके मन में पैदा हुई हों, उन सबको निकाल बाहर कीजिये।...अखबारवालों ने मेरी जो तसवीर खींची है, इस तसवीर-वर हुस्न कोई भी जीव सत्यसृष्टि के भीतर अस्तित्व में ही नहीं है, और न कभी हो भी सकता है। उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा किसी दैत्य को निर्माण करके उसको मेरा नाम दे दिया है!...

'मैं सीधे तरीके से लेखन पर उपजीविका चलानेवाला आदमी हूँ। मेरा जीवन-निर्वाह पाठकों और प्रेक्षकों पर ही निर्भर करता है। भला आप लोगों की हँसी-मजाक कैसे उड़ा सकता हूँ? क्या कोई भी वणिक अपने ग्राहक की मजाक उड़ा सकता है? हाँ, मेरे लिखे हुए नाटक पढ़कर अथवा देखकर आप लोग कभी-कभी स्वतः का ही उपहास करने लग जाते हों सो बात अलग है।...किन्तु आप जानते ही होंगे कि जनता को हास-परिहास के जरिये नीति का पाठ पढ़ाना विनोदी लेखक का कर्तव्य ही है। शायद आप लोग कहेंगे—आपके नाटक पढ़ने पर हमें अपनी बेवकूफी का ख़याल होने लगता है।' आपकी इस दलील पर मैं यह जवाब दूँगा कि जिस तरह दन्तवैद्य मरीज़ का निकम्मा दाँत उखाड़ देता है, उसी तरह मैं आपकी बेवकूफी को उखाड़कर बाहर फेंकता हूँ, लेकिन ऐसा करते वक्त आपको हास्यरस (Laughing gas) की पर्याप्त मात्रा देने को कभी भूलता नहीं!...

मेरे जीवन का यह निचोड़ पहली बार के वाचन से पचा सकेंगे ऐसे भ्रम में मत फँसना। साल में दो बार इस हिसाब से कम से कम दस साल तक मेरी समस्त पुस्तकों का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पठन ज़ारी रखना जरूरी है और इसी बात को ध्यान में रखकर इस पुस्तक का आवरण इतना मोटा रखा है...।

यशवन्त तेंडुलकर

• • •

एक युद्ध-विरोधी लेखक और कवि : अर्न्सट् टोलर

[बीस साल बीते एक महायुद्ध को समाप्ति हुए ; और अब दूसरे महायुद्ध का संकट सामने आ पहुँचा है। मानव-जाति तथा सभ्यता का संहार करनेवाले इस संकट का सच्चा स्वरूप गत महायुद्ध के पहले नॉर्मन एन्जल, कॉर्ल फॉन आसीट्स्की—जिसको १९३६ का 'नोवल पीस प्राइज़' मिला—सरीखे इने-गिने व्यक्ति ही जान पाये। किन्तु युद्धकाल में यूरोप के कितने ही प्रतिभाशाली लेखक युद्ध-विरोधी बन गये। इनमें प्रमुख हैं सॉमरसेट मॉम, रोमाँ रोलाँ, हेनरी बार्बो, लुदविग रेन आदि। 'महायुद्ध' और अन्य दो युद्ध-विरोधी उपन्यासों का लेखक ऐरिच रेमार्क का नाम भी पाठकों ने सुना होगा। इन्हीं युद्ध-विरोधी लेखकों में से एक था अर्न्सट् टोलर, जिसकी कुछ ही दिन पूर्व मृत्यु हुई। समाचार-पत्र कहते हैं कि उसने आत्महत्या कर ली। किन्तु इस सम्बन्ध में अनेक लेखको ने अविश्वास प्रकट किया है, जिनका कहना है कि हिटलर के हस्तकों ने ही इस प्रगति-वादी जर्मन लेखक की हत्या की है। हमारे सुप्रसिद्ध समाजवादी कवि श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने इसी मत का प्रतिपादन करते हुए कलकत्ते के 'एडवान्स' दैनिक के गत २० जून के अंक में एक लेख लिखा है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी कुछ दिनपूर्व टोलर पर एक लेख लिखकर उसे अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी।—सं०]

यहाँ हम श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के लेख का महत्त्व पूर्ण अंश उद्धृत करते हैं।

श्री हरीन्द्रनाथ लिखते हैं:—

'अर्न्सट टोलर का बाप शिक्षित आदमी था। किन्तु गरीबी के कारण उसे दुकान करनी पड़ी।...बाप के दूकान पर जो रद्दी काग़ज़ रहते थे, उनमें से चाहे जितने उलट-पुलटकर बालक अर्न्सट् ने अपनी साहित्य-पिपासा शमन कर ली। उसकी मा भी पढ़ने की बड़ी शौकीन थी।...

साहित्य के नाते कीर्ति प्राप्त करने की लालसा अर्न्सट् में बचपन में ही पैदा हुई। एक रोज अपने घर की नौकरानी से वह बोला—देखो जुली, अब मैं एक नाटक लिखूँगा। वह बर्लिन के थियेटर में खेला जायगा। तब तुमको नाटक देखने के लिए ले जाकर रॉयल बक्स में बैठा दूँगा!...

'उसका मन किसी बालक के मन के समान सीधा-सादा था।....कवि ही जो ठहरा! अपनी भावना-प्रधानता के कारण गत महायुद्ध में वह भरती हुआ। जर्मनी की तरफ से युद्ध में भरती होते वक्त उसकी कल्पना थी कि वह मातृभूमि के लिए लड़ने जा रहा है। किन्तु...

'सर्वनाशी युद्ध की भीषणता देखकर उसका मृदु मन तड़प उठा। युद्ध-काल में ही वह जबर्दस्त युद्ध-विरोधी बन गया। उसने एक जगह लिखा है, "The war itself had turned we into opporent of war!...

'पूँजीपतियों का वह घोर विरोधी बन गया और साम्यवाद की ओर वह आकर्षित हुआ।...जर्मनी का मजदूर नेता Eisner से जब उसकी मुलाकात हुई, तब वह उस समय के

[११३९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मजदूर आन्दोलन में शामिल हुआ। वक्तृता देता, लेख लिखता और गुप्त रूप से अनेकों काम करता रहता था। १९१८ में जर्मनी में क्रान्ति हुई। Eisner के नेतृत्व में समाजवादी सरकार की स्थापना की गई। अर्न्सट टोलर डेप्युटी प्रेसिडेन्ट नियुक्त हुआ।...किन्तु, कुछ ही दिन बाद प्रतिक्रान्ति ने उग्र रूप धारण किया Eisner गोली से उड़ा दिया गया। रोज़ा लक्सेम्बर्ग आदि के खून हुए और टोलर को पाँच साल की सजा मिली। सिपाही उसको म्यूनिच के रास्ते से मिलीटरी जेल में ले गये...

'जेल के दिन उसने एकान्तवास में बिताये। केवल एक Swallow पक्षी का उसे साथ था। उस पक्षी ने टोलर की कोठरी के छत में एक घोंसला बनाया था। उस घोसले की रक्षा करने को टोलर कभी भूला नहीं। अपनी मूक वेदनायें टोलर ने उस पक्षी को ही निवेदन की, जो 'The Swallow Book के रूप में प्रकाशित हुई हैं और टोलर की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

'पाँच साल का कठिन कारावास समाप्त करके जब वह जेल से छूटा, तब उसकी आयु केवल तीस साल की ही थी। किन्तु इसी अल्प आयु में बुढ़ापे की काली छाया से वह ढक चुका था...

'जेल से छूटने के बाद वह स्पेन की संरक्षता में चला गया। निरपराधी जनता पर अत्याचार करने वालों के प्रति उसे कितनी घृणा थी, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है...

'किन्तु, हाय! एक रोज़ वह मरा हुआ पाया गया! क्या उसने आत्महत्या कर ली? यह कभी हो नहीं सकता। नाजी सरकार के गुप्तचरों ने उसका खून किया है। वह आत्महत्या करनेवालों में से नहीं था। वह काम अनार्किस्टों का है। कम्युनिस्ट ऐसा क्षुद्र कृत्य कर नहीं सकता।

'Hoplla ! we live' नामक अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास में उसी ने लिखा है :—
'A communist never dies like that...'

यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

गुजराती

गुजरात का बाल-साहित्य

[किसी भी राष्ट्र के साहित्य में बाल-साहित्य का क्या स्थान है, यह सबको विदित ही होगा। पाश्चात्य देशों में, विशेषतः रूस सरीखे उदीयमान राष्ट्र में बालकों के साहित्य के प्रति बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। रूसी सरकार रेड आर्मी की अपेक्षा देश के बालकों की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देती है, और इस सम्बन्ध के साधनों में साहित्य का स्थान निर्विवाद रूप से माना गया है।

किन्तु, हमारे देश में साहित्यिक और सरकार दोनो का इस ओर दुर्लक्ष ही हुआ है। यहाँ हम 'गुजरात का बाल-साहित्य' शीर्षक एक संक्षिप्त लेख उद्धृत करते हैं, जो बड़ौदा की चिल्ड्रेन्स लायब्रेरी की प्रमुख श्रीमती आनन्दीबाई प्रभुदेसाई ने लिखा है और पूने के 'केसरी' पत्र के गत २६ जून के अंक में प्रकाशित हुआ है। इस लेख से और प्रान्तों की बाल-साहित्य की स्थिति के सम्बन्ध में पाठक कल्पना कर सकते हैं। —सं०]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'गुजरात का बाल-साहित्य पूर्णतया प्रकाशन संस्थाओं पर ही अवलम्बित है। गुजरात में कुल मिलकर ३३ प्रकाशन-संस्थायें और सौ-सवासौ साहित्यिक व्यक्ति हैं। प्रमुख प्रकाशन-संस्थाओं में भावनगर का श्री दक्षिणामूर्ति प्रकाशन-मन्दिर, बड़ौदा की श्रीसयाजी बाल-ज्ञान माला तथा अशोक प्रकाशन-मन्दिर, अमदाबाद की गुर्जर ग्रंथमाला तथा ज्योति-कार्यालय की गणना होती है। श्री गिजुभाई बधेका (इनकी हाल ही में मृत्यु हुई), श्रीमती ताराबाई मोडक, श्री धीरजलाल ठोकरशी शहा, रमणलाल शहा, नागरदास पटेल इत्यादि लेखकों की बाल-साहित्य-सेवा प्रशंसनीय है।

'सन् १९३२ से लेकर सन् १९३६ तक प्रकाशित बाल-साहित्य की संख्या विषयानुक्रम से नीचे दी जाती है :

लोकसाहित्य	४
कथा-साहित्य : ऐतिहासिक और पौराणिक	२७०
विज्ञान और प्राणिशास्त्र	५१
स्वदेश-भक्ति	९
सामान्यज्ञान तथा खेल-कूद	३६
संक्षिप्त पुस्तकें	१६
पद्य	६३
नाटक	४२
सन्दर्भ-ग्रन्थ	१२
जीवनियाँ	३७
हास्य-विनोद	१७
प्रवास-वर्णन	४

कुल मिलाकर ५६१ पुस्तकें चार साल में प्रकाशित हुई हैं।

गुजराती बाल-साहित्य का सूचीपत्र—विषय लेखक तथा प्रकाशकों के नामोंसहित—तैयार करने का भार 'बड़ौदा राज्य पुस्तकालय मण्डल' ने अपने ऊपर लिया है। मण्डल का प्रकाशन बाल-साहित्य का सन्दर्भग्रंथ के नाते निहायत जरूरी है। इस सूचीपत्र का पहला भाग सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ था, जिसका सम्पादन श्री गिजुभाई ने किया था। अब का सूचीपत्र (१९३२—१९३६) श्री जीवराम जोशी तथा मोतिभाई अमीन के सम्पादकत्व में तैयार हुआ है।'

यशवन्त तेंडुलकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंस-वीथी

यह अंक—

यह अंक जुलाई और अगस्त के संयुक्त अंक के रूप में पाठकों के सम्मुख जा रहा है। और इसे 'श्रीअरविंद-अंक' नाम भी दिया गया है। बात यह है कि पहिले हमारा विचार जुलाई का साधारण अंक निकालने का था, और अगस्त का अलग 'श्रीअरविंद-अंक' निकालने का। पर 'हंस' इधर कुछ देर से निकलने लगा था, यानी १६-१७ तारीख तक। उसे समय पर लाने का साहस इन पंक्तियों के लेखक को उसकी वर्तमान परिस्थितियों में न था। और अभी वह अपने पूर्ण मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य में भी नहीं है। तो इस संयुक्त अंक की सारी ज़िम्मेदारी उस पर है और इसके लिए वह पाठकों से एक बार क्षमा माँग लेता है। अब भविष्य में सब अंक नियमित हो जायँगे।

श्रीअरविंद भारत की उन विभूतियों में हैं जिनके विषय में जनता का ज्ञान सचमुच ही बहुत थोड़ा है, और उनके विषय में भ्रान्तियाँ भी जनता में बहुत फैली हुई हैं। और किसी की बात क्यों कहें, हमें भी उनके विषय में बहुत ही थोड़ा ज्ञान था, जब तक कि हमने इस विशेषांक का काम अपने हाथ में नहीं लिया था। इसका कारण केवल यही है कि श्रीअरविंद अपने विषय में इतने अपरिग्रही हैं कि किसी को कुछ बताते ही नहीं। प्रोपेगैण्डा से उनका कोई सरोकार ही नहीं है। उनकी चेतनाएँ अब अतर्मुखी हो गई हैं, और वे अपनी साधना में रत हैं। उनका प्रत्येक कार्य उनकी निर्लिप्तता का द्योतक है। और सच ही प्रत्येक संपूर्ण मनुष्य सांसारिक अकांक्षाओं से ऊपर उठ जाता है।

श्रीअरविंद जैसे महापुरुष का इन कुछ पृष्ठों में परिचय कराना उद्देश्य न था। यह भी न था कि हम उनका गुण-कथन करें और बतावें कि संसार या संसार के कुछ विशिष्ट पुरुष उनके विषय में क्या धारणा रखते हैं, या क्या कहते हैं। साधारणतया विशेषांकों के द्वारा यही किया जाता है। पर हमने परिपाटी से अलग, प्रगतिशीलता से प्रेरित, अपना एक नया रास्ता निकाला। हमने श्रीअरविंद के ही शब्दों में उनका परिचय जनता को कराया। परिचय में यह नहीं बताया कि वे क्या हैं और कितने महान हैं। यह बताया कि वे क्या कहते हैं, उनकी साधना से संसार का क्या हित हो सकता है; हम और आप उनसे क्या ग्रहण कर सकते हैं। जो कुछ उनमें ग्रहण करने की चीज़ है वह ले लीजिये। यही उनकी शिक्षा है।

अपनी बिसात के मुताबिक़ ही हमने उनके लेखन का एक बहुत छोटा, बहुत ही छोटा अंश अनुवाद में उपस्थित किया है। उन्होंने इतना लिखा है कि बहुत कम आदमियों ने लिखा होगा। इसलिए हमें उनके विचारों के एक बहुत ही छोटे अंश से संतोष करना पड़ा। पर वह अंश उनकी विचार-धारा को चारों खूँट घेर लेता है, यह हम किन्हीं अंशों में कह सकते हैं। श्रीअरविंद के विचारों से अधिक सान्निध्य प्राप्त करने के लिए उनकी: Life Divine, Defence of Indian Culture, Synthesis of Yoga, Future of Poetry, Secrets of Vedas आदि पुस्तकों का अध्ययन किया जा सकता है।

बँगला में श्रीनलिनीकांत गुप्त और श्रीअनिलबरन राय ने उनके बहुत-से ग्रन्थों का अनुवाद किया है। तेलुगु में श्रीकृष्णैयागारु ने कुछ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। गुजराती भाषा में हमारे सुपरिचित श्रीअम्बालाल पुराणी के प्रयत्नों से श्रीअरविंद का बहुत-सा साहित्य उपलब्ध है। हिन्दी में श्रीमदनगोपाल ने तीन-चार पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह अंक जैसा कुछ बन सका, आपके सामने है। झूठी नम्रता अच्छी बात नहीं है, और हम कहते हैं कि यह सामग्री बड़ी प्रामाणिक तथा उनके लेखन में से बहुत उत्कृष्ट चुनाव है। इस अंक के तैयार करने तथा अनुवाद के कार्य में हमें अपने मान्य बन्धु श्रीअम्बालाल पुराणी तथा उनके सहयोगियों से जो सहायता मिली है उसके लिए हृदय कृतज्ञता से भर आता है। उन्हें धन्यवाद देना तो शायद अपने-आपको ही धन्यवाद देने के बराबर होगा।

श्रद्धाञ्जलि—

बाल-शिक्षा के आचार्य श्रीगिजुभाई बधेका का गत मास स्वर्गवास हो गया। इधर कई महीनों से वे बीमार थे, पर जब दशा कुछ सुधार पर आई तो वे चल बसे। यह दीप-शिखा की अन्तिम चमक ही थी। श्री गिजुभाई बधेका से 'हंस' के पढ़नेवाले भलीभाँति परिचित हैं। उनके कई लेख हिन्दी में हमने प्रकाशित किये थे। पर उनके गहन विचारों और लेखन की योग्यता के अतिरिक्त उनकी कर्तृत्व-शक्ति का जिन्हें कुछ भी पता है, वे उन्हें एक महान आत्मा अवश्य मानेंगे। हिन्दी में उनका अधिक परिचय इन्दौर से प्रकाशित होनेवाली 'हिन्दी-शिक्षण पत्रिका' के पढ़नेवालों को है। गुजरात की तो इस नई पीढ़ी पर उनका आधिपत्य रहा है और उनकी महानता का अनुमान करने के लिए हमें गुजरात के परिवारों में जाना पड़ेगा, जहाँ उनकी शिक्षा से सुख और शान्ति विराज रही है। बच्चों के लिए उन्होंने जो कार्य किया है, वह शताब्दियों तक बाल-शिक्षकों के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य करेगा।

श्रीगिजुभाई ने अपना समस्त जीवन बच्चों की भलाई के लिए और माताओं पिताओं की शिक्षा में व्यय कर डाला। उनके इस परिवार का क्रन्दन आप तक संभवतः नहीं पहुँच सकेगा, पर उसकी प्रतिध्वनि आप तक पहुँच जाय तो भी कुछ कम नहीं है। इन्हीं राष्ट्रीय क्षतियों से राष्ट्र में बल और चेतना जागती है।

किसी की मृत्यु होने पर उसकी आत्मा की शांति की प्रार्थना करने की प्रथा है। वह तो आप करलेंगे; जिसने अपना समस्त जीवन परोपकार में व्यतीत किया उसकी आत्मा को शांति मिलेगी इसमें संदेह भी नहीं है। हम तो आज इस महान आत्मा को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और अपने जीवन में उसके जीवन से त्याग की महत्ता की प्रेरणा पाने की प्रार्थना करते हैं।

श्रीगिजुभाई के प्रेमियों को यह जानकर संतोष होगा कि उनके गुजराती और मराठी शिक्षण-पत्रिका के प्रकाशन के साथ-ही-साथ हिन्दी की पत्रिका के भी प्रकाशन की व्यवस्था बम्बई से उनके बन्धुओं ने की है। यह अपने आप में अल्प नहीं है।

लेखकों से एक विनीत प्रार्थना—

'हंस' के लिए बहुत-से लेखक रचनाएँ भेजने की कृपा करते हैं। हमारे कार्यालय में ऐसी व्यवस्था है कि अस्वीकृत सामग्री को निर्णय के समय ही लेखकों को वापस कर दिया जाय। पर जब तक डाक के टिकट न आवें यह करना सर्वथा अशक्य है, विशेषतः जब कि रचनाओं की संख्या बहुत बड़ी हो। और कार्यालय में आदमी कम होने के कारण अधिक पत्र-व्यवहार करना या अस्वीकृत रचनाओं को सुरक्षित रखकर बाद में ढूँढ़ना भी सम्भव नहीं है। इसलिए हमारी यह विनीत प्रार्थना है कि लेखक-गण अपनी रचनाओं के साथ डाक के टिकट अवश्य भेज दिया करें। अस्वीकृत होने की दशा में उसी से रचना लौटा दी जायगी, स्वीकृत होने पर उससे इसकी सूचना भेज दी जायेगी। ऐसा न करने से कार्य में विघ्न पड़ेगा और सम्पादक पत्र-व्यवहार में विलम्ब का जिम्मेदार न रहेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्ष—९ : अंक—१२

सितम्बर, १९३९ भाद्रपद, १९९६

अंग्रेज़ी अख़बारनवीसी के कुछ मनोरंजक अनुभव

[रामनाथ 'सुमन']

अभी पिछले वर्ष अंग्रेज़ी में एक किताब निकली है। इसका नाम है 'देयर्स फन इन फ्लीट स्ट्रीट' (फ्लीट स्ट्रीट में भी मज़ा है) इसके लेखक सेसिल हण्ट हैं। अंग्रेज़ी पत्रकारों में इनका स्थान हम बहुत ऊँचा तो नहीं मान सकते, पर इतना अवश्य है कि इनको लोकप्रियता प्राप्त हुई है। अख़बारनवीसी के सम्बन्ध में लिखी हुई इनकी कई किताबें खूब चलती हैं। 'कहानी उन्हें कैसे लिखना चाहिये' (Short stories—How to Write them) 'कलम से जीविकोपार्जन' (Living by the pen) तथा 'सम्पादकों को पछताना क्यों पड़ता है' (Why Editors Regret) इनकी अच्छी और काफ़ी व्यवहारिक पुस्तकें हैं। यह सब मैं इंग्लैण्ड और अमेरिका की अख़बारनवीसी के ख्याल से लिख रहा हूँ। दूसरी पुस्तकों की तरह, बल्कि उससे भी ज्यादा, हण्ट की यह नई किताब लोकप्रिय हुई है। हण्ट का अधिकांश कार्य-काल कहानियों के चुनाव, सम्पादन और संस्करण में बीता है, इसलिए वह पाठक के अन्दर अपने प्रति दिलचस्पी पैदा करने की कला जानते हैं। उनकी नई पुस्तक इसका एक अच्छा नमूना है।

फ्लीट स्ट्रीट लन्दन का वह भाग है जहाँ प्रधान अंग्रेज़ी समाचार-पत्रों के कार्यालय हैं। इन पत्रों के साथ हण्ट ने जीवन के चौदह वर्ष बिताने के बाद यह पुस्तक लिखी है। इससे कुछ मनोरंजक बातें यहाँ दी जा रही हैं।

(१)

'रॉंग फाण्ट'

प्रेस से सम्बन्ध रखनेवाले लोग जानते हैं कि जब कोई ग़लत आकार-प्रकार का अक्षर कम्पोज़ हो जाता है तो उसे काटकर सामने हाशिये पर 'W. F.' (डब्लू, एफ़ यानी 'रॉंग फाण्ट') लिख दिया जाता है।

एक बार की बात है कि हण्ट अपने कार्य में व्यस्त थे। 'मेक-अप' करनेवाला आदमी बड़ा परेशान मालूम पड़ रहा था। यह आदमी भला था और हण्ट की सहानुभूति भी उसके प्रति थी। हण्ट के दरियाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि उसकी स्त्री को प्रसव-पीड़ा जारी है, अतः वह जल्दी काम खत्म करके जाना चाहता है। हण्ट ने पूछा—पहली बार ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'प्रथम ?' उसने कुछ ऐसे लहजे में कहा, मानो हण्ट ने यह प्रश्न पूछकर उसका कुछ अपमान कर दिया हो। 'चतुर्थ। परन्तु पहली तीनो लड़कियाँ हुईं। इस बार मैं उम्मीद करता हूँ, वह सिलसिला टूट जायगा अन्यथा चार की जरूरत नहीं।'

कई दिन बीत गये। एक दिन वह कुछ सुस्थ मालूम पड़ा। हण्ट ने पूछा—सब कुछ ठीक ?

उसने कुछ खीझकर उत्तर दिया—सब कुछ ठीक ? दूसरी भली लड़की। मैं तो सोचता हूँ उसे 'डब्लू. एफ.' (रॉंगफांट) मार्क' करके लौटा दूँ।'

(२)

अशुद्धियाँ

नई और अत्यन्त कार्यक्षम मशीनों के आविष्कार से समाचारपत्रों की छपाई की कला में इन दिनों काफी उन्नति हुई है। अच्छे पत्रों में प्रूफ़ की ग़लतियाँ बहुत कम रहती हैं; पर कभी-कभी बड़े कुअवसर पर भद्दी भूलें हो जाती हैं। मार्च १९३२ में एक दिन प्रिंस ज्यार्ज नार्थक्लिफ़ हाउस देखने गये। वहाँ से विदा होने तक अखबार की कापियाँ (जिनमें उनके आगमन की रिपोर्ट थी) तैयार हो गईं। पर प्रथम एडीशन में खुद प्रिंस की ही सम्मति छपने में एक भद्दी भूल हो गई—How quickly everything *it* dore ! I think it is wonderful that so few mistakes are made' ('कैसी शीघ्रता से सब काम होता है। और यह अद्भुत बात है कि इतनी कम भूलें होती हैं।) उपर्युक्त अंग्रेजी वाक्य में 'इट' की जगह 'इन' छपना चाहिये था जब कम भूलें न होने के लिए प्रशंसा की जा रही थी, तभी यह गड़बड़ हो गई। यह भाग्य का व्यंग्य है।

(३)

इंगलैण्ड तथा पश्चिम के बहुत-से देशों में अनेक साहित्यकार केवल अपने-अपने विषय की पुस्तकों के सम्पादन का काम करके काफ़ी रुपया कमा लेते हैं। बड़े-बड़े प्रकाशकों के पास उस विषय की जो पुस्तकें आती हैं, उन्हें वे इन संपादकों के पास भेज देते हैं और उनके निर्णय के अनुसार पुस्तक-प्रकाशन का धन्धा करते हैं। हण्ट ने उपन्यास, आख्यायिका तथा दूसरी तरह के काल्पनिक साहित्य के सम्पादन में काफ़ी नाम कमाया था। उनका कई पुस्तक-प्रकाशकों से सम्बन्ध था। इस सम्पादन-कार्य के सम्बन्ध में कई बार उनको मनोरंजक अनुभव होते थे। वह लिखते हैं :—

'एक बहुत प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक ने एक अत्यन्त प्रसिद्ध औपन्यासिक का एक उपन्यास मेरे पास भेजा। मैंने उसे नामंजूर कर दिया। कुछ हफ़्तों के बाद वह फिर लौट आया। मैंने फिर नामंजूर कर दिया। कुछ दिनों बाद फिर प्रकाशक ने उसे मेरे पास भेजा। मैंने लिख दिया—यद्यपि तीसरी बार मुझसे पूछा गया है पर मेरी राय है कि अनेक कारणों से इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

'एक दूसरी फर्म ने मेरे पास एक ऐसे लेखक के उपन्यास की पाण्डुलिपि भेजी जिसका नाम घर-घर मशहूर है। पाण्डुलिपि में सामने ही दूसरे सम्पादक की अस्वीकृति की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चिट्ठी मौजूद थी। यह जानना बड़ी उत्साहजनक बात है कि कितनी यात्रा करते हुए यह पुस्तक हमारे पास पहुँची है!'

× × ×

(४)

नवीन लेखकों के पत्र

सम्पादकों के पास नये-नये लेखकों के कैसे-कैसे मनोरंजक पत्र आते हैं, इसके चन्द नमूने भी हण्ट ने दिये हैं। इन पत्रों से दैनिकों में काम करनेवाले सम्पादकों के शुष्क जीवन में किंचित विनोद का स्पर्श होता है। एक लेखिका ने जो अपनी बुद्धि पर भरोसा रखती थी, लिखा कि क्या तीन हज़ार शब्द की कहानियाँ भेजते समय 'a' और 'I' इत्यादि को भी शब्दों में गिनना होगा या इन्हें अक्षर मान लेना होगा।

एक आदमी ने अपनी रचना के साथवाले पत्र में लिखा कि यदि यह रचना योग्य न हो तो क्या आप मुझे बोझा ढोने का कोई काम दे सकते हैं?

सब से मज़ेदार पत्र किशोर या बालक लेखकों के होते हैं। ऐसे एक पत्र के आवश्यक अंश ये हैं:—

'जब मैं कहता हूँ कि मैं सिर्फ़ सोलह साल का हूँ तो मैं यह नहीं चाहता कि आप इस पर सिर्फ़ हँस दें और इस रचना को रद्दी की टोकरी के हवाले करें। आपको इसे पढ़ना पड़ेगा। यदि आप इसे ठीक पायें तो प्रकाशित करें। यदि ठीक न हो तो इसे लौटा दें।—यदि आप को स्पेलिंग में ग़लतियाँ दिखाई दें या आप सोचें कि कहानी बड़े सीधे ढंग पर लिखी गई है, तो इस पर मेरा कहना इतना ही है कि आख़िर मैं बच्चा ही हूँ (कम से कम मेरे घर के लोग मुझे बच्चा ही समझते हैं) ...उन्हें मालूम नहीं है कि मैंने कहानी लिखकर आपके पास भेजा है (पर मुझे निश्चय है कि पिताजी आश्चर्य कर रहे होंगे कि मैं टाइपराइटर पर क्या खट-खट करता रहा हूँ) इसलिए जब आप उत्तर दें तो पत्र मेरे नाम लिखें। यदि आप रचना लौटायें तब तो ऐसा अवश्य करें। परिवार के लोग हँसते हैं; आप भी हँस सकते हैं।'

कुछ अज्ञात व्यक्ति, जिनको लिखना भी नहीं आता, कभी-कभी ऐसे दंभपूर्ण पत्र सम्पादकों को लिखते हैं कि उनके साहस पर आश्चर्य होता है। हण्ट ने एक ऐसे पत्र का ज़िक्र किया है:—

'मैंने अभी तक अपनी कोई रचना प्रकाशित करने का अवसर आपको नहीं दिया है। इसलिए मैं साथ की रचना भेज रहा हूँ। इसे मैंने खास तौर से आपके लिए लिखा है। मेरा जो नियमित बाज़ार है वह मेरे क़लम से लिखी हुई इस नई और सर्वथा मौलिक कहानी को पाकर उछल पड़ेगा; परन्तु चूँकि मैंने कई बार अपनी बढ़ती हुई सूची में आपके पत्र को भी स्थान देने की बात सोची है, इसलिए मैं पहला मौक़ा आपको दे रहा हूँ।'

'मेरे पास इतना समय नहीं है कि स्थायी बाज़ारों के अलावा दूसरों के लिए मैं कहानी लिखने का वादा कर सकूँ; पर अगर आपके ग्राहक मेरी क़लम से लिखी रचनाओं के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशेष आग्रह करेंगे, जैसा कि सदा ही मेरी रचनाओं के लिए होता है, तो मैं चंद रचनाएँ आपको देने की कोशिश करूँगा...'

हग्ट लिखते हैं—यह पत्र उस सम्पादक को लिखा गया था, जिसने वेल्स, मिल्ने, कापर्ड और पिरांदेलो की रचनाएँ प्रकाशित की हैं और जिसके पास बीस से तीस हज़ार तक रचनाएँ प्रति वर्ष आती रही हैं।'

× × ×

[५]

दो विरोधी पत्रों का एक ही सम्पादक

कुछ वर्ष पहले पेरिस में 'रेज़र' (उस्तुरा) और 'स्कार्पियन' (बिच्छू) नाम के दो पत्र निकलते थे। दोनो का अस्तित्व मानो एक दूसरे पर हमला करने के लिए था। दोनो एक दूसरे के जानी दुश्मन मालूम पड़ते थे। हर सप्ताह हज़ारों आदमी इन पत्रों के व्यंगपूर्ण आक्रमण और तुर्की-बतुर्की जवाब देने की कला का स्वाद लेने के लिए खरीदते थे।

दिन-दिन दोनो का विरोध, और एक दूसरे पर उनका आक्रमण बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि वह सीमा के बाहर हो गया। तब एक साहित्यानुरागी सहृदय पुरुष ने दोनो में मेल-मिलाप कराने के ख्याल से एक दिन अपने घर दोनो को भोजन करने के लिए निमंत्रित किया। वह चाहते थे कि दोनो की प्रतिभा का उपयोग विधायक पत्रकारिता में हो।

उनको बड़ी प्रसन्नता हुई कि दोनो ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। नियत समय पर उनमें से एक मेहमान का आगमन हुआ। कुछ समय तक दूसरे मेहमान का इन्तज़ार किया गया; पर जब कोई न आया तो आमंत्रित करनेवाले सज्जन ने मेहमान से पूछा—'क्या आप कृपापूर्वक बतायेंगे कि आप 'रेज़र' और 'स्कार्पियन' में से किस पत्र के सम्पादक हैं?'

'दोनों के'—उत्तर मिला। वह सज्जन दंग रह गये।

शायद इस पत्रकार को यश से कोई सरोकार न था; वह केवल पैसा एवं लोकप्रियता चाहता था। उसके जीवन के सामने सर जान स्क्वायर की ये पंक्तियाँ रही होंगी :—

For me, I never cared for fame,
Solvency was my only aim !

श्री बेवरली बैक्सटर ने लिखा है कि कई तरह की अख़बार-नवीसी में तुमको अपना 'कैरियर' हर सुबह को शुरू करना पड़ता है और हर रात को उसके ख़त्म होने का डर रहता है। इस दिशा में अनेक विचित्र अनुभव सम्पादकों को होते हैं। श्री बैक्सटर ने अपने एक मनोरंजक अनुभव का ज़िक्र किया है। वह लिखते हैं :—जब मैंने लार्ड बीवरब्रुक के यहाँ काम शुरू किया तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या तुमने पहले भी किसी समाचारपत्र में काम किया है? जब मैंने कहा—नहीं। तब लार्ड बीवरब्रुक ने उत्तर दिया—बहुत अच्छा! यहाँ हर एक आदमी मुझसे ज़्यादा जानता है। मैं किसी ऐसे आदमी की तलाश में हूँ जो मुझसे कम जानता हो। मैं तुमको 'डेली एक्सप्रेस' का सम्पादक बनाऊँगा।

जब लार्ड बीवरब्रुक का ज़िक्र आया है तब उनके सम्बन्ध में एक और विनोद एवं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यंग की चर्चा कर देना आवश्यक हो गया है। 'स्पेक्टेटर' में यह घटना प्रकाशित हुई थी। एक राजनीतिज्ञ ने प्रसिद्ध लेखक श्री एच० ए० एल० फिशर से पूछा कि आपके नवीन 'यूरोप का इतिहास' में किस युग का वर्णन है।

इतिहासकार श्री फिशर बोले—ओह! आदिम मानव से लेकर बीवरब्रुक तक।

राजनीतिज्ञ ने व्यंगपूर्वक उत्तर दिया :—आः! मैं समझा। आपने परिधि (गोलक) को पूरा कर दिया है।

इसमें व्यंग यह था कि बीवरब्रुक भी आदिम मनुष्य के ही समय का है। लार्ड बीवरब्रुक ने जब इसे पढ़ा तो हाज़िर जवाबी एवं व्यंग पर बड़े खुश हुए। विनोद की गहरी वृत्ति के कारण ही उन्होंने इतनी लोकप्रियता प्राप्त की। अपने ही लेखकों और व्यंग चित्रकारों द्वारा उन्होंने अपने ऊपर व्यंग एवं व्यंग चित्र प्रकाशित कराने की प्रवृत्ति को सदा उत्तेजन दिया।

सम्राट् के मन्त्रियों में वही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सम्राट् को अपनी रिपोर्ट टाइप कराके भेजी। नियम यह है कि मन्त्री सम्राट् को अपनी रिपोर्ट अपनी हस्तलिपि में देते हैं। जब लार्ड स्टैमफोर्डहम ने टाइप की हुई रिपोर्ट देखी तो बीवरब्रुक से कहा—मेरे प्रिय लार्ड बीवरब्रुक! क्या आपको मालूम नहीं कि हिज़ मैजेस्टी अपने मन्त्रियों से आनेवाली रिपोर्ट उन्हीं की हस्तलिपि में चाहते हैं?

बीवरब्रुक ने उत्तर दिया—माई डियर लार्ड स्टैमफोर्डहम! क्या आपको मालूम नहीं कि मैंने लिखना सीखा ही नहीं।

(६)

दुस्साहसिकता का स्पर्श

पश्चिम की अख़बारनवीसी के साथ दुस्साहसिकता का अटूट सम्बन्ध है। झूठे-सच्चे सब तरह के उपायों से पत्रकार कुछ कुतूहलजनक सामग्री पाठक के सामने रखना चाहते हैं। सनसनी पर उनके पत्र चल रहे हैं। अक्सर झूठे फोटो भी तैयार करके छाप दिये जाते हैं। जल्द से जल्द समाचार देने की होड़ में अक्सर आगे होनेवाली सभाओं एवं प्रदर्शनों की अनुमानिक रिपोर्ट पहले से तैयार करके छाप दी जाती है। यह ऐसी निर्दोष भाषा में लिखी होती है कि पहले से तैयार करने में कोई कठिनाई नहीं होती। पर कई बार इस प्रकार की दुस्साहसिकता बुरी तरह असफल भी हो जाती है।

एक बार हाइडपार्क में साम्राज्य-दिवस का उत्सव धूम-धाम से मनाने का आयोजन किया गया। समय की कमी के कारण समाचारपत्रों के आयरिश संस्करण में उसकी रिपोर्ट न जा सकती थी। इसलिए कुछ पत्रकारों ने पहले से ही रिपोर्ट तैयार कर ली और उत्सव का बड़ा विशद वर्णन नियत संस्करण में प्रकाशित हुआ। इन पत्रों में बड़े-बड़े हेडिंग दिये गये। जिस समय आयर्लैण्ड में लोग इस उत्सव का विशद वर्णन पढ़ रहे थे, उसी समय लन्दन के पाठक यह पढ़ रहे थे कि आँधी-पानी के कारण उत्सव स्थगित कर दिया गया।

किंग एडवर्ड के सिंहासन-त्याग के संकटकाल में न्यूयार्क के एक दैनिक पत्र ने एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भीड़ एवं प्रदर्शन का फोटो छापकर लिखा कि 'लन्दन के ट्राफलगार स्क्वायर में एकत्र यह भीड़ किंग एडवर्ड एवं अपनी नूतन महारानी (मिसेज़ सिम्पसन) का अभिनन्दन एवं जयजयकार कर रही है इससे जनता के क्या भाव हैं, यह प्रकट होता है।'

वस्तुतः यह फोटो इससे १६ वर्ष पूर्व लिया गया था, जब किंग एडवर्ड प्रिंस ऑव् वेल्स थे। इसमें थारमथ की मछुई कन्याएँ उनका स्वागत कर रही हैं।

कुछ साल पहले लार्ड हेल्शम ने अपनी एक वक्तृता में अमेरिकन पत्रों में छपे इसी प्रकार के कई चित्रों का जिक्र किया था। इन तस्वीरों के नीचे पत्र-सम्पादकों ने विवरण दिया था कि—भूखी जनता अपने बादशाह से विरोध प्रकट करने के लिए बकिंघम राजमहल में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रही है। ये चित्र दरअसल चार साल पहले के थे, जब बादशाह की बीमारी के वक्त हज़ारों आदमी बकिंघम महल के इर्द-गिर्द उनका समाचार जानने की उत्सुकता को लिये हुए एकत्र होते थे।

पर सबसे अधिक मनोरंजक तो लन्दन के एक रविवासरिक पत्र में प्रकाशित वह चित्र था जिसके नीचे लिखा गया था—

'पाइरिनीज़ की घाटी के ट्रिवर गाँव में ४२ वर्ष की एक स्त्री पाँव से पालना हिला रही है। इस पालने में सात मास पूर्व उसके पेट से एक ही दिन पूरी बाढ़ एवं दिन लेकर पैदा हुए छः बच्चे लेटे हुए हैं।'

इतने दिन तक यह बात कैसे छिपी रही, इसका कारण यह बताया गया था कि गाँव के बिलकुल एकान्त में होने के कारण दुनिया से उसका आमदरफ़्त का सम्बन्ध बहुत कम है। छहों बच्चों के नाम एवं संक्षिप्त विवरण भी दिये गये थे।

वस्तुतः यह सब असत्य था। बात यह थी कि पेरिस के प्रसिद्ध सचित्र साप्ताहिक 'वू' ने एप्रिल फूल के उपलक्ष में जो अंक निकाला था, उसमें यह मनगढ़ंत गप उड़ाई थी। ये चित्र वस्तुतः एक ही बच्चे के फोटो के 'रिप्रिंट' थे।

एक अमेरिकन पत्र ने तो यह भी लिखा कि हमने समुद्री तार द्वारा इनके सम्बन्ध में पता लगाया तो मालूम हुआ कि सब बच्चे स्वस्थ हैं और उनके जन्म के तीन महीने बाद ही उसी माता के गर्भ से उनको एक बहन भी प्राप्त हो गई है।

(७)

कुछ मनोरंजक बातें

हण्ट ने कुछ प्रसिद्ध लेखकों के विषय में कई मनोरंजक घटनाओं का वर्णन किया है। किपलिंग प्रायः हस्ताक्षर एवं लेख माँगनेवालों को उत्तर नहीं देते थे। एक अमेरिकन ने उनको मिलने वाले पारिश्रमिक का औसत निकालकर अपनी 'आटोग्राफ' की पुस्तक किपलिंग के पास भेजी और ५ शिलिंग भी भेज दिये। किताब बिना हस्ताक्षर के लौट आई। उस पर लिखा था—'थैंक यू!' या 'आपको धन्यवाद।'

अंग्रेजी के प्रसिद्ध औपन्यासिक श्री अर्नल्ड बेनेट एक बार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में स्थान-स्थान पर व्याख्यान देते हुए दौरा कर रहे थे। एक सभा में यह व्यवस्था की गई कि जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोग बेनेट की पुस्तकें खरीदेंगे, सभा की समाप्ति पर उनकी पुस्तकों पर श्री बेनेट स्वयं हस्ताक्षर कर देंगे। सभा समाप्त हुई तो सैकड़ों ग्राहक एक के पीछे एक, लम्बी कतार में, हस्ताक्षर लेने के लिए खड़े थे। बेनेट सज्जनतापूर्वक प्रत्येक ग्राहक का नाम पूछते और नाम मालूम होने पर पुस्तक पर लिख देते 'श्रीयुक्त...को आर्नल्ड बेनेट द्वारा।'

एक चलते-पुर्जे युवक ने सोचा कि इससे तो अच्छा व्यापार किया जा सकता है। एक बार दस्तखत लेकर उसने फिर दूसरी किताब खरीदी और पंक्ति के पीछे खड़ा हो गया। जब बेनेट के पास पहुँचा तो उन्होंने उसकी ओर सन्देह और प्रश्न से भरी हुई निगाह डाली पर नाम पूछने के बाद हस्ताक्षर कर दिया।

युवक ने फिर वही क्रम शुरू किया। जब वह उस टेबुल के पास पहुँचा जहाँ बेनेट हस्ताक्षर कर रहे थे तो बेनेट ने उसे अच्छी तरह पहचान लिया पर चुप रहे; मामूली ढंग से उसका नाम पूछा और किताब पर लिख दिया:—श्री युक्त...को अब पुराने हो गये मित्र आर्नल्ड बेनेट द्वारा।'

'जी० बी० एस०' (ज्यार्ज बर्नर्ड शा) का इस मामले में अपना एक अलग ही तरीका है। एक बार कुतूहल-वश वह एक पुरानी किताबों की दुकान में चले गये। देखते-देखते अपनी ही एक किताब पर उनकी नज़र पड़ी। उन्होंने किताब उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि यह प्रति उन्होंने बड़े चाव से एक मित्र को भेंट में भेजी थी। उस पर लिखा हुआ था—'विद् दि कम्प्लीमेण्ट्स, जी० बी० एस०' (जी० बी० एस० की ओर से अभिवादन-पूर्वक।)

उन्होंने यह पुस्तक खरीद ली और पहले के उपहार-वाक्य के नीचे फिर से लिखा—'विद् रिन्यूड कम्प्लीमेण्ट्स' 'जी० बी० एस०' (पुनः अभिवादन-पूर्वक, जी० बी० एस०) और पुस्तक उन मित्र के पास भेज दी। अवश्य ही वह मित्र बहुत शर्मिन्दा हुए होंगे।

१९३३ ई० में शा जब संयुक्त राष्ट्र गये तो लन्दन के एक अखबार ने सम्पादकीय लेख में लिखा कि अच्छा हो अमेरिका का हम पर जो युद्ध-ऋण है, उसके बदले वह हमसे जी० बी० एस० को ले ले।

इस पर न्यूयार्क नगर के एक निवासी ने उक्त पत्र में यह उत्तर छपाया—आपके प्रस्ताव के विषय में यह पत्र है। कृपा करके हमारा प्रस्ताव सुनिये। यदि आप लोग शा को अपने ही पास रखेंगे तो हम ऋण छोड़ देंगे। सच बात तो यह है कि आपने अगर उन्हें पिछले महीने अपने ही पास रखा होता तो उलटे हम आपके ऋणी होते।'

नोट—बात यह है कि शा के सबसे ज्यादा पाठक और प्रशंसक अमेरिका में ही हैं, पर शा अमेरिकनों पर ऐसे व्यंग करते हैं जो उनको तिलमिला देते हैं।

स्काट (प्रसिद्ध अँग्रेजी उपन्यासकार) अपनी साहित्यिक प्रसिद्धि के प्रभाव से सदा अपने बच्चों को दूर रखते थे। एक बार की बात है कि उनके प्रकाशक बैलेंटाइन उनसे मिलने उनके घर गये। 'दि लेडी ऑव् लेक' उपन्यास प्रकाशित हो चुका था और उसमें अद्भुत सफलता मिल रही थी। इसी पर बधाई देने के लिए बैलेंटाइन स्काट के घर गये थे। उस समय जहाँ देखिये, इसी उपन्यास की चर्चा थी। पुस्तकालय में बैलेंटाइन की भेंट स्काट की कन्या से हुई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्काट अन्दर थे। स्वभावतः बैलेंटाइन ने उससे पूछा कि नवीन उपन्यास उसको कैसा लगा ?

लड़की ने जवाब दिया—मैंने उसे पढ़ा नहीं है। पिताजी कहते हैं कि कोई चीज़ उतनी हानिकर नहीं है जितनी तरुणों (या तरुणियों) का खराब किताबें पढ़ना !

पिछले महायुद्ध के समय जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सेनाएँ पहली बार सीमा में घुसीं तो अमेरिका के एक अखबार में काम करनेवाला सम्पादक 'केस' रूम में आया और इस समाचार की घोषणा के लिए विशेष रूप से बड़े टाइप की माँग फोरमैन से की।

एक के बाद दूसरा—अनेक तरह के हेडिंग टाइप उसके सामने उपस्थित किये गये पर वह सिर हिलाता ही रहा। उसे मालूम होता था कि ये सब टाइप ऐसे महत्त्वपूर्ण समाचार के लिए अनुपयुक्त हैं।

आखिरकार मुद्रक ने एक बहुत बड़े 'फेस' वाला टाइप निकाला और खीझकर बोला 'ओ, यह लीजिये। मैं इसे प्रभु के पुनरवतार के लिए सुरक्षित रखे हुए था, पर अब आप ले लीजिए !'

× × ×

जार्ज बर्नर्डशा और संडे स्कूलवाला प्रसंग बहुत थोड़े लोगों को मालूम है। बहुत दिनों से एक पादरी मित्र शा से अपने संडे स्कूल में आने की प्रार्थना करते आ रहे थे। एक दिन एकाएक शा वहाँ जा पहुँचे। लड़कों से पूछने पर मालूम हुआ कि उन्हें उस दिन 'शेर की गुफा में 'डेनियल' की कथा बताई गई है। शा ने पूछा—बच्चो ! क्या तुम बता सकते हो कि भले-मानस डेनियल को शेरों ने क्यों नहीं फाड़ खाया ?

लड़कों ने झट हाथ उठा दिया और पादरी-द्वारा सिखाये हुए उत्तर उनके मुँह से निकलने लगे—

'इसलिए कि वह एक भला आदमी था·····इसलिए कि ईसू मसीह उसके सहायक थे·····इसलिए कि वह प्रार्थना कर रहा था और शेर इससे घबड़ा गये।·····'

अध्यापक इन उत्तरों को सुनकर अपनी सफलता पर मन ही मन खुश हो रहा था, पर एकाएक शा ने कहा—नहीं ; तुम सब ग़लत हो। डेनियल को शेरों ने इसलिए नहीं खाया कि कि वह शाकाहारी था और यदि तुम शाकाहारी बन जाओ तो तुमको भी शेर नहीं खायँगे !'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तर्वेदना

[विश्वम्भरनाथ]

आज मैं अपनी निराशा की
कथा किसको सुनाऊँ ?

१

उस सदय व्यवहार पर
क्यों लांछन जग ने लगाया !
सो रहा था जब अचेतन नींद
क्यों मुझको जगाया !!

मैं मगन था तुच्छ निधि में
क्यों मुझे वैभव दिखाया ?
थी सुयश की चाहना कब
कीर्ति का उपक्रम सिखाया !!

कौन-सा उन्माद था
थी कौन-सी इच्छा निगोड़ी ?

जब विगत के चित्र पटपर
नियति की आँखें गड़ी थीं !

आज यह सम्मान वैभव
दुख है, कैसे बताऊँ ?

आज मैं अपनी निराशा की
कथा किसको सुनाऊँ ?

२

दूर था अति दूर था
क्यों पास तब मुझको बुलाया ?
मैं चरण पर था पड़ा
क्यों शीश पर मुझको चढ़ाया ?

मैं अकिंचन नेह का अवलम्ब
यह तुमने बताया !
दृष्टि में धन-हीनता थी
क्यों मुझे वैभव दिखाया ?

क्यों भला भिक्षुक तिरस्कृत
का किया आदर बताओ ?

जो सदा अपमान पाता
क्यों किया सम्मान उसका ?

चीरकर अपना हृदय
सद्भाव मैं कैसे दिखाऊँ !

आज मैं अपनी निराशा की
कथा किसको सुनाऊँ ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३

हम मिले थे इसलिए
फिर चार दिन में दूर होंगे !
भाग्य के नक्षत्र करुणा-हीन
होंगे, क्रूर होंगे !!

कर दिया, मुझको पुरस्कृत
ज़िन्दगी भर मैं समेटूँ !
नियति की अवमानना को
उल्लसित होकर न मेटूँ !!

कौन-सी धन-राशि है जो
सर्वदा संचित रहेगी ?

प्रकृति की गलबाहियों से
एक दिन वंचित रहेगी !!

तब भला सन्तोष का
मृदु हास कैसे पास पाऊँ ?

आज मैं अपनी निराशा की
कथा किसको सुनाऊँ ?

प्रयाग ।

४

मैं खड़ा था द्वार पर ही
जान अपनी हीनता को !
भाग्य के संघर्ष को औ'
आत्मज्ञान-विहीनता को !!

दीप था धूमिल जगत के
भाव को मैंने न जाना !
शुष्क से कर्तव्य के
निर्देश को मैंने न माना !!

चार क्षण का मान था वह
बन गया जो नाश का पथ !

मैं समझता अचल गति से,
जा रहा है विजय का रथ !

दृश्य कितने शीघ्र बदले
वह कथानक भी लिखाऊँ !

आज मैं अपनी निराशा की
कथा किसको सुनाऊँ ?

[११५०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तलिस्म

[बलराज साहनी]

कालेज की ग्राउन्ड पर फ़ुटबाल-मैच के आख़िरी मिनट थे। बाहर से आये हुए खिलाड़ी अपने सिर से एक गोल का कलंक उतार फेंकने की बेतहाशा कोशिश कर रहे थे। दर्शक लड़के-लड़कियों का हर तरफ़ शोर-गुल हो रहा था। उत्तेजना चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। ऐन ऐसे वक्त पर कालेज का नया प्रोफ़ेसर हेमन्तराय, बिल्कुल ठप्प हो गया, यह बात साथवालों को बड़ा हैरान कर रही थी। जिस समय जोश का कोई विशेष अवसर न था, हेमन्तराय की आवाज़ लाउड-स्पीकर की तरह चारो तरफ़ पहुँच रही थी। दाएँ-बाएँ के छोटे-बड़े सभी को उकसा रही थी। लेकिन यकायक यह निष्ठुरता क्यों? लोगों को इसकी छान-बीन करने की फ़ुर्सत नहीं थी।

दरअसल बात यह हुई कि एक बार जब फ़ुटबाल ऊपर उठा तो नवयुवक प्रोफ़ेसर की नज़र उसके साथ गई। लेकिन लौटते वक्त फ़ुटबाल अकेला लौटा। प्रोफ़ेसर की नज़र आकाश ही में रह गई। वहाँ बरसात के बादल बड़ी गहराई के साथ छाये हुए थे और उन्हें अस्ताचल का सूर्य जाते-जाते अपना सोना, अपने सिन्दूर के ख़ज़ाने, और अपनी रत्नजटित इन्द्रधनुष की माला भेंट कर रहा था। ऐसी लूट बादलों को आगे कभी नसीब न हुई थी।

लेकिन कुदरत में भी सरमायादारी और पक्षपात की कमी तो नहीं ना। जहाँ अगले हिस्से के बादल अपने ऐश्वर्य के भार से इतने लदे हुए थे कि सोने की एक सलाख़ उनके हाथों से नीचे फिसल रही थी, वहाँ क्षितिज पर के पिछले बादल अपने वही फटे-पुराने चीथड़े पहने खड़े थे। उनकी हालत देखकर हेमन्तराय को दर्द हुआ, किन्तु अकस्मात् एक चमत्कार-पूर्ण घटना हुई। उन निर्धनों के ऐन पीछे से पूर्णिमा का पूरा चाँद एक छलाँग में ही उछल आया, और पल भर में उनकी झोली ऐसे शुभ्र रत्नों से भर दी कि सूरज की देन मात हो गई।

'महाक्रान्ति, महाक्रान्ति'—भावुक प्रोफ़ेसर बेताब होकर उठ बैठा और मैच समाप्त होने से पहले ही अपने कमरे की तरफ़ तेज़ी से चल पड़ा। कॉलेज की टीम जीत गई। दर्शकों व खिलाड़ियों की आवाज़ें उसे दूर से आती हुई सुनाई दीं—

'हिप हिप हुर्रे'—हिप हिप हुर्रे!'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेकिन हेमन्त, जिसकी तीव्र कल्पना हमेशा शगुन और इशारे खोजती रहती थी, अपनी मुट्ठियाँ बाँधकर गुनगुनाता जा रहा था—

'महाक्रान्ति हुरें, सौंदर्य हुरें, संसार का उज्वल भविष्य हुरें !'

खलबली में उसने दरवाज़े को धक्का दिया और कमरे के अन्दर पहुँचकर चिटख़नी चढ़ा दी। उसी तैश में एक कापी खोली, सिगरेट खुल गया और मेज़ के आगे बैठकर कल्पना के बराबर अंश छन्द के तराज़ू पर तौलने लगा।

कविता कुछ प्रवाहित हुई, कुछ रुकी, कुछ सोई, कुछ जागी, और उसकी यह भाव-भंगियाँ कवि की शारीरिक हरकतों में छलकने लगीं। कभी वह आकाश की वर्ण-वल्लरियों की याद को ताज़ा करता हुआ व्यग्रता से छत की ओर देखने लगता, और कभी कमरे में इस ढंग से हाथ हिला-हिलाकर टहलने लगता जैसे किसी अदृश्य तानी की ताँतें सुलझा रहा हो। एक बार खुली हुई खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया और मन्त्र-मुग्ध-सा होकर सामने के एक पेड़ की तरफ़ ताकने लगा, जिसमें हज़ारों चिड़ियाँ अपनी सायंकालीन उपासना कर रही थीं।

अकस्मात् उसके कल्पना-क्षेत्र के किसी रीक्त स्थान की पूर्ति करती हुई-सी एक भिखारिन युवती उसके सामने आ ठहरी। उसका काला वक्षःस्थल नंगा था और बग़ल से सटा हुआ एक शिशु एक चूचुक से दूध पी रहा था और दूसरे से खेल रहा था। साथ में स्त्री का बाँया हाथ थामे एक और बालक खड़ा था। हेमन्त की सौन्दर्य-क्षुधित कल्पना ने युवती का एक-एक अंग टटोला, देखा कि स्तन बेल-फल की तरह गोल हैं, उसका शरीर लम्बा और सुपुष्ट है, उसके बाल मिटैले और रूखे होने पर भी बुरे नहीं लगते। निर्धनता की वह एक पुरग़रूर प्रतिनिधि है। और फिर स्त्री के शरीर से वह अक्षर उमड़कर आने लगे, जिन्होंने महाक्रान्ति की दुन्दुभि, उस कविता को पूरित करना था।

स्त्री ने प्रोफ़ेसर को इस प्रकार अपनी तरफ़ घूरते हुए देखकर अपनी मैली धोती छाती पर सरका ली। और दाँया हाथ पसारकर दीन आवाज़ में समाजत करने लगी। उसकी मिसाल पाकर बालक भी कुछ गुनगुनाने लग पड़ा।

यदि वह किसी और समय आती तो भीख देने से पहले प्रोफ़ेसर मन ही मन दलीलें उड़ाता। भीख के मामले में वह अभी तक कुछ फ़ैसला नहीं कर सका। कभी सोचता है, हरगिज़ नहीं देनी चाहिये ; इससे समाज की सम्पत्ति नष्ट होती है। फ़ायदा कुछ नहीं होता। फिर सोचता है, मेरे छः आने रोज के सिगरेट फूँक डालने से समाज को क्या लाभ पहुँचता है ? यदि भीख का पेशा बुरा है तो समाज इस सवाल को हल करने पर कटिबद्ध क्यों नहीं होता ? क्या समाज की उपेक्षा का हल यही है कि बेरोज़गार असहाय लोग जल्दी से जल्दी भूखे मार दिये जायँ ? न ही उसने सिगरेट छोड़कर धर्मार्थ शुरू किया है और न भिखारियों के चेहरों पर किवाड़ बन्द करने का अभ्यास किया है। उससे भीख पा लेना काफ़ी हद तक भिखारी की अड़ी और प्रोफ़ेसर के 'मूड' पर निर्भर है।

लेकिन आज प्रोफ़ेसर के मन में आरोध-विरोध पैदा नहीं हुआ। पहले उसने मोट में से एक दबन्नी निकाली, फिर उसे एक भद्दी आवाज़ वाले रुपए की याद आई जो मेज़ के दराज़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में पड़ा था। अगर पूरे सोलह आने नहीं तो आठ आने तो बना ही लेगी। गरीबों की खोटा रुपया चला लेने की क्षमता पर हेमन्त को विश्वास था। खोटे रुपये के आख़िर काम आ जाने की सम्भावना पर पुलकित हो वह किवाड़ खोलकर स्वयं बाहर गया और रुपया स्त्री की हथेली में देकर उल्टे कदमों वापस लौट आया। फ़र्श पर फेंकने से उसकी असलियत बेवक्त ज़ाहिर हो जाती। कमरे में आकर वह दीवार की आड़ में खड़ा हो गया ताकि स्त्री की चकाचौंध का प्रत्यक्ष साक्षी न होना पड़े। लेकिन छिपे-छिपे उसने देखा कि स्त्री मूर्ति की तरह खड़ी कितनी ही देर तक कभी रुपए की तरफ़ और कभी खिड़की की तरफ़ देखती रही। उसके चेहरे पर उल्लास के आँकड़े न थे, बल्कि एक गम्भीर सोच-सा व्याप्त था, जिसे वह समझ न सका।

और भिखारिन स्वयं भी न जाँच सकी कि अपने साथ क्या बीत रही है। रुपए के तली पर पड़ते ही उसका स्वभाव से गुदगुदा हाथ पसीने से भीग गया। सारा दिन इधर-उधर भटकने पर दो पैसे भी न बना सकी थी। और अब हाथ उठाते ही सही-सलामत चाँदी। उसके लिए सोचना या कुछ कहना मुश्किल हो गया और यों ही वापस लौट पड़ी। हेमन्त को उसका लौटना गर्व-पूर्ण-सा दिखाई दिया, जैसे स्त्री की नज़र में उसने रुपया देकर अपनी समझदारी का परिचय दिया हो, दयालुता का नहीं।

रुपया मुट्ठी में कसकर भिखारिन शहर की तरफ़ चल पड़ी। उसे अपने हाथ में से अनूठे कम्पन शरीर में फैलते प्रतीत हुए, जैसे कहीं उसका हाथ किसी सुन्दर और बलिष्ठ पुरुष ने थाम लिया हो और उससे प्रणय-याचना कर रहा हो। उसी तरह जिस तरह की तस्वीर हलवाई भुल्लड़ की दुकान पर टँगी हुई थी।

भिखारिन के लिए यह रुपया पा जाना उतनी ही रोमांच-कारक बात थी जितनी कि पञ्चानन के लिए होती। अगर कोई सड़क पर जाते-जाते उसे यह ख़बर दे देता कि उसकी पत्नी घर वापस आ गई है और मुस्कराती हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही है। क्या यह संभव है कि वह मारे ख़ुशी के सड़क पर चिल्लाना न शुरू कर देता? मुमकिन है बेचारा पागल ही हो जाता।

पञ्चानन भिखारिन के भूतपूर्व स्वामी का नाम था। पञ्चानन ने उसे ज़मानत रखकर एक माली से पाँच रुपए लिये थे।

पञ्चानन ने रकम चुकता देने की बड़ी कोशिश की थी; लेकिन सफल न हुआ। और आख़िर वह दिन आ ही गया जब माली ने स्कूल की ग्राउन्ड में ही उसे अपने घर की रानी बनाने के लिए घसीटना शुरू कर दिया। पंचानन भी चावल की मिल में काम निबटाकर लौट रहा था। उसने उसका दूसरा बाजू पकड़ लिया। दोनो में वह खींचा-तानी हुई कि बेचारी के कन्धे ही उखड़ गये होते। लेकिन माली के पक्ष में सत्य था, इसलिए जीत उसी की हुई।

पंचानन उसके बिछोह को न सह सका, लेकिन वह अपने बच्चे की ख़ातिर बच रही थी। पंचानन मर गया।

और माली अपनी पत्नी से मिलने देश गया और लौटकर नहीं आया।

भिखारिन ने सोचा यदि उन दिनों पंचानन को, जिन दिनों वह चिन्ता में डूबा हुआ हमेशा सिर झुकाकर चलता था, इसी तरह कोई एक रुपया दे देता तो वह क्या करता? उससे चुप न रहा जाता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेकिन वह औरत ज़ात थी। उसके मानसिक उद्वेग को यही विमुक्ति मिली कि वह थोड़ा-सा उछली और बच्चे के मुँह को स्तन में ला दबोचा। उसकी नन्ही-सी साँस रुक गई और वह रो पड़ा।

कुछ वर्षा हुई और तदनन्तर अँधेरा छाने लगा। लेकिन कभी-कभी पूर्णिमा का चाँद बादलों में से झाँक लेता और उसे मुस्कराकर कहता,—'देख, यह रुपया भी तेरा लाड़ला है। इसे सम्हालकर रखना। यह सुनकर वह ठहर जाती और हथेली खोलकर चाँदी को देखती रहती जब तक कि चाँद फिर छिप न जाता।

लेकिन जो स्त्रियाँ वैसे कृश हों, पर हाथ जिनके गुदगुदे हों, उनके स्वभाव में भी प्रतिकूलताएँ होती हैं। वह अपनी वस्तुओं को सम्हालकर नहीं रख सकतीं। जब भिखारिन भुल्लड़ हलवाई की दुकान के सामने से गुज़री तो उससे रहा न गया। भुल्लड़ के तमाम पुराने कटाक्ष और घुड़कियाँ उसके मन में गूँजने लगे; और उसने सोचा कि अगर भुल्लड़ को उसकी ज़बानदराज़ी का मज़ा चखा दिया जाय और स्वयं कुछ गरमागरम पूरियाँ चख ली जायँ तो क्या हो?

कुछ देर वह बिजली के खम्बे के साथ टिककर अनमनी आँखों से दूकान को ताकती रही। फिर जी पक्का कर निकट आई और बोली—

'भुल्लड़, ज़रा आध सेर पूरी तौल दो तो!'

भुल्लड़ भन्ना गया। अपनी चिकनी धोती का लड़ तोंद में ऐंठता हुआ चिल्लाया—

'हट यहाँ से हरामज़ादी, भुल्लड़ की बच्ची। आध सेर पूरी तौल दो इसको। बाईसरा की पटरानी तो यही ठहरी!'

इसके उत्तर में भिखारिन ने, उत्साह के साथ जो बहुत हद तक छिछोरेपन पर झुकता था, रुपया दिखाया और कहा—

'पैसे दूँगी।'

भिखारिन के हाथ में रुपया देखकर भुल्लड़ की जीवात्मा और भी ज़ख़्मी हो गई, और वह तरह-तरह की लावाजिब तोहमतें लगाने लगा। लेकिन उसकी दूकान पर उस समय कुछ कालिज के विद्यार्थी खड़े थे, उन्होंने उसे मना किया और समझाया कि जो भी ग्राहक दूकान पर सौदा लेने आये वह सम्मान के योग्य है। चाहे वह चमार हो, चाहे ब्राह्मण और चाहे निर्धन या धनी। विशेषकर स्त्रियों से तो बहुत ही विनम्र बर्ताव होना चाहिये। इसके समर्थन में उन्होंने अंग्रेज़ दूकानदारों की मिसालें दीं।

अक्सर दलीलें भुल्लड़ की समझ में न आईं। बोला—

'साहब, आप इसे जानते नहीं।' फिर उसने अपनी चिकनी धोती का लड़ तोंद में ऐंठते हुए दुष्टा की सारी रामकहानी सुना दी। किन्तु जब नवयुवक इससे भी विचलित नहीं हुए तो उसने स्थायी ग्राहकों का मुँह रखने की ख़ातिर कहा—अच्छा ला पैसे, देता हूँ पूरी।

भिखारिन पहले रुपया न देना चाहती थी, लेकिन फिर उसने सोचा कि इतना बड़ा सेठ क्यों बेईमानी करने लगा?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'दो आने का कलाकन्द भी दे देना !' उसने आदेश किया।

लेकिन उसे क्या मालूम था कि रुपए का पत्थर से भी रिश्ता होता है ! हलवाई ने रुपया लेकर पत्थर पर दो बार पटका और फिर उसे सड़क पर फेंकते हुए नौजवानों से मुख़ातिब हुआ—देखा साहब, चुड़ैल धोखा देने आई थी। सारा मुहल्ला इसकी करतूतों से बेज़ार है। आप इस ज़ात के लोगों को जानते नहीं।

इसके बाद उसने स्वतन्त्र होकर स्त्री के प्रति अश्लील शब्दों का एक दरिया बहा दिया, जिसका रस लेने और भी कई रसिक लोग ठहर गये। कालेज के विद्यार्थी साइकलें उठाकर चल दिये।

भिखारिन ने रुपया उठा लिया और ढीठ-सी बनकर बड़े बाज़ार की ओर चल पड़ी। उसने तीन-चार और दुकानों पर सौदा ख़रीदने की कोशिश की, लेकिन दुकानदार रुपए वाली की शकल देखकर पहचान जाते कि रुपया ठीक नहीं है। हताश होकर एक बरामदे में जा बैठी। दो मिनट बाद वहाँ से भी उठा दी गई। फिर किसी और स्थान का आश्रय लिया, लेकिन वहाँ से भी घुड़कियाँ खाती हुई वापस सड़क पर आ निकली। कविता के छन्द, और संगीत की लय में भी इसी प्रकार के उतार-चढ़ाव होते हैं।

इन्हीं में काव्य-लहरी को बाँधता हुआ उस अनुपम सायंकाल में प्रोफेसर हेमन्तराय अलौकिक सुख का अनुभव कर रहा था। एक-एक शब्द में उसे संसार के उस हेमयुग का प्रत्यक्ष हो रहा था जिसमें 'वर्गद्वन्द्व' और निर्बलों का शोषण समूल नष्ट हो चुका होगा। संसार की प्रत्येक सभ्य जाति दूसरी जातियों के शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उद्धार की ओर रजूह होगी, न कि उनके विनाश की ओर। देशीयता और धर्म के नाम पर संग्राम और कलह अतीत की वस्तु हो चुके होंगे। और व्यक्तिगत जीवन। ओ हो, कितना स्वच्छन्द होगा, कितना सुमधुर। यह परस्पर विश्वास का युग होगा न कि शक-ओ-शिकायत का। ज्ञान और विज्ञान तमाम अन्ध-विश्वास का अन्त कर देंगे। नारी विश्व-समाज में अपना ईप्सित स्थान ग्रहण करेगी। दाम्पत्य-जीवन का एक मात्र आधार-स्तम्भ प्रणय होगा, न कि कर्त्तव्य !.....

'क्या यह सब सम्भव नहीं ? हाँ, यह सब सम्भव है। इस युग की कल्पना सभी विशिष्ट कवियों एवं महात्माओं ने की। लेकिन मानव-समाज के पास उस समय पर्याप्त ज्ञान नहीं था, पर्याप्त वैज्ञानिक शक्ति न थी कि सकल संसार को किसी वैश्विक न्याय-विधान के अधीन कर सकें। अब हममें शक्ति है। गगन के जिस नक्षत्र के सहारे हमें आगे बढ़ना है, इस अँधेरी रात में स्पष्ट दिखाई दे रहा है।...'

आख़िर कविता समाप्त हुई और हेमन्तराय थककर एक आराम-कुरसी में लेट गया। उसकी आँखों के सामने धुँधलाहट-सी छा रही थी, और ऐसा महसूस होता था कि उसके प्रत्येक अंग का खून सिर ही में दौरा करने लगा हो। कुछ देर के लिए उसने आँखें बन्द कर लीं।

भिखारिन ने इस रुपए के अलावा दिन में केवल एक पैसा बनाया था। अब इससे उसने मुट्ठी भर चने ख़रीदे और किसी तरह अपने बड़े लड़के की भूख मिटाई। फिर नगर से बाहर निकल पड़ी, ताकि ताल के निकट भिखारियों की बस्ती में जाकर अपने पेट का भी कुछ वसीला करे। उसके मन में निराशा नहीं, वेदना थी, क्रोध था। एक असह्य पीड़ा—जिसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विग्रह किसी पुरुष की छाती से सटकर रोने से ही हो सकता था। और तीन साल हुए जब पंचानन मर चुका था।

प्रोफ़ेसर हेमन्तराय जब कुर्सी से उठा तो आकाश में बादल का नाम-निशान नहीं था। चाँद की ज्योत्स्ना निखरकर फैली हुई थी। लेकिन इस अवकाश में हेमन्त के मन का वह उल्लास और आवेग जाता रहा था। उसका स्थान फिर उसी सूनेपन ने ले लिया था जो अब उसके जीवन का एक स्थायी अंग बन चुका था कि कविता बनी और अच्छी बनी इसका उसे सन्तोष था, लेकिन वह दिव्य-लोक जिसमें वह कुछ क्षणों के लिए जा बसा था, अब गैस के गुब्बारे की तरह परवाज़ कर गया था। उसके स्थान पर हेमन्त के आगे एक काग़ज़ का टुकड़ा धरा पड़ा था, जिसे हाथ लगाने से भी तबीयत कतराती थी। उस टुकड़े की उपयोगिता अब इतनी ही रह गई थी कि उसे कल किसी पत्रिका में भेज दिया जाय ताकि कुछ विद्वान् लोग उसकी क्षमताओं व त्रुटियों पर रायज़नी कर सकें।

उसे ऐसा लगा जैसे चन्द्रमा उसे कह रहा हो, 'भाई, लाखों साल के तजुरबे के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान के आगे भविष्य एक बड़ी तुच्छ वस्तु है।' उसे प्रतीत हुआ कि इस समय उसके जीवन की अनेक बाधाएँ और अपूर्तियाँ उसे डस रही हैं कि उसके हृदय-स्थल में एक अथाह शून्य है जिसे भविष्य का कोई अवलोकन दूर नहीं कर सकता।

किसी प्रकार इस बेचैनी का विच्छेद करने की इच्छा से हेमन्तराय ने कोट पहना और साइकल पर सवार होकर देहात में निकल गया। होस्टल से मील भर की दूरी पर एक लम्बा-चौड़ा तालाब था, जिसमें कमल खिलते थे, और जिसके इर्द-गिर्द जंगल ही जंगल था। हेमन्त तेज़ी से साइकल चलाता हुआ तालाब के समीप पहुँचा। साइकल को एक पेड़ के साथ टिकाकर स्वयं एक टीले पर जा बैठा।

न जाने कितनी देर बैठा होगा कि उसे जीर्ण पत्तों पर किसी के कदमों की आवाज़ सुनाई दी। उसने देखा कि एक स्त्री दो सोये हुए बच्चों को उठाये पगडण्डी के रास्ते कहीं जा रही है। कुछ क्षण उसने स्त्री की तरफ कौतूहल-भरी दृष्टि से देखा और फिर अपने विचारों में तल्लीन हो गया। लेकिन स्त्री जंगल की ओर जाने के बजाय उसी की तरफ़ बढ़ती चली आई। उसके नज़दीक आने पर हेमन्त को याद आया कि यह वही स्त्री थी जिसे उसने वह कलुषित रुपया दे डाला था।

भिखारिन उसके सिरहाने आकर खड़ी हो गई, और कुपित दानवी की तरह उसे घूरने लगी। हेमन्त उसकी मुद्रा को देखकर ठिठक गया, लेकिन हिम्मत करके बोला—

'क्या है?'

इसके जवाब में स्त्री ने हाथ उठाकर सहसा वह रुपया हेमन्त के मुँह पर दे मारा। हेमन्त के गाल पर चोट लगी, लेकिन वह पल भर में परिस्थिति समझ गया और चुप खड़ा रहा। स्त्री भी कुछ भयभीत-सी होकर वापस जाने लगी। लेकिन हेमन्त ने आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया और करुण-स्वर में बोला—भूखी हो? (मन-ही-मन वह ख़ुश था कि उसे मानव-चरित्र को स्टडी करने का एक सुअवसर मिल रहा है।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हाँ !'—स्त्री ने सजल नेत्रों से सिर हिलाया।

'बच्चे भी ?'

'हाँ।'

'ओह !'

फिर अपने आपको सम्हालते हुए हेमन्त ने और भी द्रवित शब्दों में कहा—

'देखो रानी, मुझे ज़रा भी ख़याल नहीं था कि रुपया खोटा है। सच जानो मैंने जान-बूझकर तुम्हें नहीं दिया। बस, तुम दो मिनट यहाँ इन्तज़ार करो। ईश्वर की कसम मैं कुछ खाने-पीने की चीजें लेकर दस मिनट में लौटता हूँ। मैंने भी कुछ नहीं खाया। इकट्ठे खायेंगे, अच्छा ? देखो, रोओ मत।'

फिर उसे और अधिक आश्वासन देने के लिए हेमन्त ने कोट में से कुछ पैसे निकाल लिये और कोट स्त्री के हवाले करते हुए कहा—

'तुम इसका ख़याल रखना।' जैसे वह अपने घर ही की हो।

भिखारिन के जवाब का इन्तज़ार न करके वह साइकल पर शहर की तरफ़ रवाना हो गया।

भिखारिन ने, न जाने क्यों, फिर विश्वास कर लिया। हालाँकि कोट में एक अच्छी घड़ी थी, और दस रुपए थे।

थोड़ी देर में हेमन्त लौटा। उसके हाथ में एक ऊँची-सी पटारी थी।

हेमन्त ने कन्धों से पकड़कर भिखारिन को अपने पास बिठाया। पिटारी में पूरियाँ थीं, मिठाई थी, समोसे थे, सेब थे, और दो-एक टीन के डिब्बे थे। स्त्री अनमनी-सी होकर इन चीज़ों को देखने लगी, लेकिन छूने की हिम्मत उसमें न थी। हेमन्त ने साहस किया और मिठाई का एक टुकड़ा उठा कर स्वयं उसके मुँह में रख दिया। भिखारिन ने एतराज़ नहीं किया। बच्चे सो रहे थे। शनैः-शनैः उसके बदबूदार बालों, व गन्दे दाँतों की पर्वाह न करते हुए, हेमन्त भिखारिन की पीठ को अपनी छाती के साथ टिकाकर उसे स्वयं ही खिलाता रहा, और सांत्वनाप्रद वाक्य कहता रहा। थोड़ी देर बाद स्त्री मुस्कराई। वह सुन्दर न थी; लेकिन उसका शरीर सन्तोषप्रद था, और उसकी आँखों में एक प्रकार की सरलता थी, विश्वास था। यह टूटी-फूटी कोमलता हेमन्त को एक पुरानी, और सुन्दरतर कोमलता की याद दिला रही थी, जिससे बिछुड़े हुए अब हेमन्त को कई बरस हो चले थे। शनैः-शनैः, शनैः-शनैः बात गम्भीर होती गई, शीतल और शान्तिदायक।

इस प्रकार भिखारिन के तीसरे बालक की नींव पड़ी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिल्ली

[नगेन्द्र]

हे आर्यों की जन्म-भूमि, यवनों के क्रीड़ास्थान !
भारत की पावन वसुधा के स्पन्दित हृदय समान !
तू वीरों की समर-भूमि, वैभव-पतियों की रानी,
दिल्ली, तेरे कण-कण में है जलती एक कहानी !
तेरा दारुण वक्ष ! नियति-चण्डी का क्रीड़ा-स्थल है।
जहाँ नृपतियों ने भाग्यों का खेला खेल विफल है !
युग-युग से चलती आती है तेरी कथा महान !
नीले पड़े ओंठ यमुना के कर तेरा आख्यान !!

तूने मंत्र-पूत ऋषियों के स्वर से आँखें खोलीं,
जग कहता है व्यासदेव ने तुझे सिखाई बोली।
पर तेरे शैशव ही में घिर आये प्रलय-पयोद।
हुआ रक्त-सरिता में तेरा पहला बाल-विनोद !
उथल-पुथल मच गई जगत में अचला हुई सचल थी,
स्वजनों का शोणित पीने को तब तू गई मचल थी।
शिशुपन में ही छेड़ा तूने ऐसा भैरव नाद !
जिसको जगत महाभारत कह अब तक करता याद !!
केश खोल तू लगी मचाने ताण्डव फिर रण-बाला !
टूटा विद्युद्दाम गर्भ से उमड़ी तेरे ज्वाला !
झट बह गया अप्रतिहत जिसमें मानव का अभिमान !
रुक न सके हा, निमिष मात्र भी सत्य, धर्म, तप, ज्ञान !
संयम गिरि-प्रतिज्ञ भीषम का, ज्ञान द्रोण ज्ञानी का,
धर्मराज का अटल सत्य अभिमान कर्ण मानी का !
कुरुओं की वह अम्बर-चुम्बी लिप्सा बही अमर्म।
द्रुपद-सुता की लाज सहित गांधारी का पतिधर्म !

[११५८

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुक्त-केशिनी रही नाचती पी विनाश की हाला।
अपना नव-कौमार्य चण्डि! क्षण में स्वाहा कर डाला!
खोकर जीवन-सत्त्व गिरी तू शिथिल चेतना-हीन
बीते शत-शत कल्प कहीं तब मूर्छा हुई विलीन!!

हठी राजपूतों ने तोड़े तेरे मूर्छित सपने,
जागृत किया चन्द ने तुझको लौह स्वरों से अपने।
खड़ी हुई तू चत्राणी ले उर में दर्प उमंग,
चढ़ने लगा म्लान अंगों में यौवन मद का रंग!
पर वह पलभर का खुमार था हुई शिथिल तब काया,
चाट गई सिन्दूर नागिनी बन जयचन्दी माया।
सदियों तक तू रही खेलती खेल मृत्यु जीवन के
बनती रही बिगड़कर, बिगड़ी बार-बार बन-बन के।

एक बार दिन फिरे, बनीं तुम फिर मुग़लों की रानी,
झुके तुम्हारे पद-पद्मों में शहंशाह अभिमानी।
सोने की सन्ध्या थी तेरी माणिक के थे प्रात!
नित्य मनाती थी दीपाली मणि-दीपों से रात!
तुमने देखी हैं सपने सी वे चाँदी की रातें,
सुनी मौन हो जहाँगीर औ' नूरजहाँ की बातें।
जब तेरे महलों में चलते थे मदिरा के दौर।
प्रेमी छका मना करता था, साक़ी कहता 'और'!
इन्द्र-सभा जुड़ती थी निशि-दिन तेरे रंग-भवन में
स्वर्ग उतर आता था भू पर तेरे प्रति उपवन में!
दृष्टि कामिनी की करती थी जीवन मृत्यु असार,
चल चरणों की छम छम पर नच उठता था संसार!
दिल्ली वे दिन स्वप्न हुए भूली सौभाग्य-कहानी,
बस, दे सका शाह आलम फूटी आँखों का पानी!
अस्त हुआ सौभाग्य बनीं तुम परदेशी की दासी
मिला बड़ा सम्मान गई क्या मन की किन्तु उदासी!!
तुमने देखे हैं जीवन के कितने पतनोत्थान!
पले तुम्हारी छाती पर अगणित साम्राज्य महान!!

युग-युग का हालाहल पीकर अब तू हुई अमर है।
तेरी कथा पाप-सी काली रवि-सी उज्ज्वलतर है!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'न भुलातुं तू भूलि जा'

[गुणवन्तराय 'आचार्य']
अनुवादक, 'कान्त'

डाकिया डाक दे गया। डाक में एक बड़ा लिफाफा था। अनिल ने लिफाफे को खोला, उसमें से एक सजिल्द कॉपी बुक निकली। साथ ही एक पत्र था। अनिल ने पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया :—

प्रियतम,

तुम्हारी आदत के मुताबिक इस बार भी आप थैली भूल गये, ऐसा मालूम होता है। थैली में थोड़े काग़ज़ व एक आधी लिखी हुई नोट-बुक थी। नोट-बुक काम की होगी, यह विचार-कर वापिस भेज रही हूँ। मिलते ही पहुँच लिखें।

मुझे सन्देह होता है कि कहीं अपनी लग्न होने के पश्चात् कभी मुझे तो इस तरह न भूल जाओगे।

बालक की राजी-खुशी के समाचार प्राप्त होते होंगे। अपनी लग्न की तारीख कितनी नज़दीक है फिर भी कितनी दूर मालूम होती है। आपको याद तो रहेगी न ?

यहाँ सकुशल हूँ, तथा आपकी कुशल चाहती हूँ।

आपकी

रसबाला

पत्र पढ़कर अनिल गर्व से मुस्कराया ! थैली तो भूली जा सकती है, किन्तु 'रसबाला' उसे भी कहीं भूला जा सकता है। अक्षर अक्षर से मधुपान करता हो, इस प्रकार प्रत्येक अक्षर पर जोर देते हुए अनिल ने कहा—'र स बा ला' कितना सुन्दर, कितना कोमल और कितना मधुर नाम है !

पत्र को तीन बार पढ़ा। पहली बार—रसबाला अपने हाथ से उसे पत्र लिखती है इसलिए। दूसरी बार पढ़ा—वह क्या लिखती है। और तीसरी बार पढ़ा—पत्र का मज़कूर क्या है।

[११६०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह देखने के लिए। पत्र पढ़कर वापिस लिफाफे में रखकर दूसरा कुछ कार्य न होने से रसवाला के यहाँ भूली हुई अपनी डायरी के पन्ने उलटने लगा।

वह लेखक था! अपने मस्तिष्क में समय-समय पर आनेवाले विचारों को, तथा सुनी हुई बातों को वह अपनी डायरी में लिख लिया करता था। पन्ने उलटते हुए वह लिखी हुई बातों पर सरसरी नज़र डालता जाता था। इस प्रसंग का तो मैं उपयोग कर चुका, 'अरे इसे तो बिलकुल ही भूल गया'—'यह बहुत उत्तम है' 'यह तो आ गया' इस तरह की टीकाएँ वह प्रत्येक लेख को देखकर करता जाता था।

कुछ पन्ने उलटने के पश्चात् उसे मालूम हुआ कि कितनी ही बातें जो बड़ी मेहनत से लिखी जाती हैं, बिना किसी उपयोग के नोटबुक में ही कैद रह जाती हैं। अपने आपको उपालम्भ देते हुए उसने अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—अगर नोट-बुक को कभी देखा न जाय तो इस तरह दीखते रहने से क्या काम!

पन्ने उलटते हुए वह किसी स्थान पर सुधारता गया; किसी स्थान पर निशान करता गया। सभी बातें खुद की लिखी हुई थीं, फिर भी बिलकुल नई वस्तु जैसी नवीनता इनमें उसे मालूम होती थी।

पन्ने उलटते-उलटते उसने नोटबुक के बाईं तरफ के पन्ने पर एक चित्र चिपका हुआ देखा। एक नाजुक तथा गर्वित बाला का यह चित्र था। पन्द्रह-सोलह वर्ष की बाला की इस तसवीर के ऊपर नीचे कहीं भी नाम लिखा हुआ न था, केवल एक तारीख लिखी हुई थी। तारीख के नीचे खुद अनिल के हाथ का अंग्रेज़ी में लिखा हुआ था : Let me not for get this day और सामने के पन्ने पर ही एक दूसरी तसवीर थी। अकाल वृद्ध, कृशगात, खिंची हुई बड़ी-बड़ी आँखोंवाली इस तसवीर के भी ऊपर नीचे कहीं नाम लिखा हुआ न था। केवल तारीख थी और उसके नीचे लिखा हुआ था Let me not for get this day

'Let me not for get this day' अनिल ने बड़बड़ाते हुए कहा।

अचानक किसी प्रेत को देखकर जिस तरह कोई सकपकाकर देखता रह जाता है; अनिल की दोनो आँखें उन तसवीरों पर टिकी की टिकी रह गईं। उसका हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा, मानो अभी ही उसकी धड़कन बन्द हो जायगी। बहुत समय तक वह उन तसवीरों के सामने देखता रहा, उसकी दोनो आँखें सूख गईं। कंठ शुष्क बन गया। श्वास लेने में भी उसे कठिनाई मालूम होने लगी। अतः उसने गले को मसला! सम्पूर्ण विश्व का अन्त हो गया हो और मानो अकेला अनिल ही बचा रह गया हो, इस तरह एक असहाय विकलता उसके हृदय में उभर आई।

अन्त में उसकी आँखों में अश्रु-बिन्दु आये। इससे भींगकर मानो पूर्व स्मृति का सूखा हुआ पौधा फिर से हरा हो गया हो। जंगल में फूटते हुए बाँसों की तरह तीखे शूल उसके हृदय को बेधने लगे और अनिल को मालूम हुआ मानो इन शूल बीजों में से निकलकर उसकी आँखों के सामने पुनः छाया-सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई हो।

ये तसवीरें थीं अजबाली की! अजु जन्म कर मर भी गई। पति की यौवनावस्था में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसकी शादी हुई और अपनी भर जवानी में वह चल बसी। इन दोनों के बीच १५ वर्ष का समय व्यतीत हो चुका था! दोनो तसवीरों के नीचे लिखी हुई तारीखों में पन्द्रह वर्ष बराबर पन्द्रह वर्ष एक महीना भी कम नहीं पूरे पन्द्रह वर्ष समाये हुए थे!

वह अंधकार-पूर्ण भयंकर रात्रि उसे याद आई। देश भर के किसी डाक्टर का इलाज अनिल ने बाकी न रखा! देश भर की कोई औषधि उसने न छोड़ी। संसार में जीनेवालों की कमी न थी। करोड़ों वर्ष से चलनेवाली इस सृष्टि में 'जीवन' का अभाव न था संसार में स्वास्थ्य की भी कमी न थी फिर भी अजु चली ही गई।

सब लोग कहते थे—रोग असाध्य है; और अनिल को भी एक वर्ष पहले ही मालूम हो गया था कि अजवाली की मृत्यु अनिवार्य है, किन्तु उसके हृदय में एक शंका उठती, 'कहीं डाक्टरों ने निदान में भूल तो नहीं की।' उसकी आँखें अजवाली की सूखकर काँटा बनी हुई देह पर गिरतीं और एक वेदना के मारे वह मन ही मन कह उठता, अरे-रे क्या बेचारी भर जवानी में ही चली जायगी। अनिल नास्तिक था; किन्तु जब कभी असह्य पीड़ा से वह सारी-सारी रात तड़फती रहती, तब उसके हाथ आप ही आप ऊपर की ओर उठ जाते! होठ आप ही फड़फड़ा उठते, हे प्रभो! मुझे तो तेरे में बिलकुल श्रद्धा नहीं; किन्तु इसके हृदय में तो अपार श्रद्धा है। अगर श्रद्धावान की तू सहायता नहीं करेगा तो तेरी भक्ति करेगा कौन?

कभी-कभी अजु का छोटा बच्चा कहता, मा! अब तू खाट पर से उठ न! अजु उत्तर देती कि तू भगवान से कह कि मुझे स्वस्थ कर दे। तेरा कहा परमात्मा जरूर मानेगा और तब मैं खाट पर से उठ जाऊँगी! और तीन वर्ष का वह अबोध बालक कूदकर झूले पर चढ़ जाता और चलते हुए झूले की छड़ी पकड़कर ऊँचे स्वर में कहता—हे भगान! माली बाने साजा कली (हे भगवान मेरी मा को स्वस्थ कर) दो-तीन बार इस तरह जोर की आवाज लगाकर बालक पुनः खाट के पास आकर कहता, ले मैं भगान ने कीधुँ हवे तूँ उथ। (ले मैंने भगवान से कहा, अब तू उठ) जवान माता क्षण भर के लिए छत की तरफ ताकती। उसकी आँख में आँसू की एक बूँद आती और बालक न देख सके, इसलिए उन्हें पोंछकर कहती 'उठूँगी बेटा! अभी तू अपने बापूजी के साथ घूमने जा।'

बालक को समझाकर अनिल बाहर ले जाता। इसके बाद अजु क्या करती? कौन जाने? किन्तु जब वह घूमकर वापस आता तब तो वह हँसती हुई ही दिखाई देती!

जिस दिन को वह कभी भूलना नहीं चाहता था आखिर वह दिन आ ही गया। उस दिन का एक-एक क्षण हृदय में सुलगी हुई आग की लपटों की तरह उसे दुखित कर रहा था!

प्रातःकाल का सूर्य उदय हुआ और शाम को अस्त हुआ, किन्तु किसी को लेश-मात्र भी शंका नहीं हुई कि आज आयुष्य की अवधि पूर्ण हो गई है। अजु के रोग की कई तरह की पीड़ाएँ शान्त हो चुकी थीं। महीनों से जो अजु बिछौने पर खड़ी तक न हुई थी, आज उठी, स्नान किया, कुछ भोजन खाया और सन्तोष से रात्रि को सोई।

अनिल अपना कुछ कार्य करता हुआ जाग रहा था। दूर से घड़ी ने बारह का टकोरा किया। अजु की निद्रा टूटी और वह उठकर पलंग पर बैठ गई: 'मुझे मालूम होता है आज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरा आयुष्य समाप्त हो गया है। बालक की सँभाल रखना।' इतना कहकर उसने ईश्वर का भजन करना प्रारम्भ किया—भगवान, भगवान! दीनदयाल, भगवान! पाँच मिनट में उसका शरीर ठंडा होकर बिछौने पर लुढ़क पड़ा। अनिल अकेला था, इस भयानक रात्रि और विशाल मकान में उस समय उसके पास कोई न था।

प्रातःकाल हुआ और अजु की अर्थी निकाली गई। एक व्यक्ति ने हाथ में सुलगता हुआ कण्डा लिया। पीछे ईंधन से भरी हुई गाड़ी थी। जिस गाँव में अनिल आशा भरे हृदय से आया था, उसी गाँव में उसने अपने कन्धे पर अपनी प्रियतमा को उठाया।

स्मशान में लगाई गई एक छोटी-सी चिता। चार वर्ष की बीमारी से कृश शरीर को खाक करने के लिए कितने ईंधन की आवश्यकता हो सकती है। चिता तैय्यार करके उस पर अजु की मृत देह को लिटाया गया।

वह खड़ा था चिता के सामने। स्नेहियों ने चिता तैय्यार की यह उसने देखा। मित्रों और सम्बन्धियों ने अजु को चिता पर सुलाया, यह भी उसने देखा। उसकी आँखों में आँसू का नाम तक न था। उसके चेहरे पर किसी तरह के भाव न थे। उसके मस्तिष्क में किसी किस्म के विचार न थे। सूखी आँखों और भावहीन चेहरे से वह इस सम्पूर्ण दृश्य को देख रहा था।

चिता में सोई हुई अजु को उसने बार-बार देखा। जब पहली रात को—लग्न की पहली सोहाग-रात को वह उससे मिली थी, तब की उसके चेहरे की रेखाएँ, उसके हृदय पर अंकित होने लगीं। उसके हाथों में से वह हमेशा के लिए गई उस समय की रेखाओं को निरख-निरखकर वह चिता के सामने देखता रहा। वह लेखक था। उसने आज तक खूब लिखा था। उसे आज मालूम होने लगा उसने कागज़ और स्याही मात्र खराब ही किये हैं। लग्न और मृत्यु के बीच में होनेवाले स्त्री चेहरे की रेखाओं के परिवर्तन को भी वह न लिख सका। 'ये रेखाएँ किस तरह परिवर्तित हुईं?' हवा उसके विचारों के लिए रुकी नहीं। उसने चिता की आग को प्रज्वलित कर दिया। स्वर्ण रंग की चिता में से हरे रंग की बदबू आकाश में फैलने लगी! पागल की तरह दिशाओं को कम्पित कर दे—ऐसा क्रन्दन करने की उसकी वृत्ति हो उठी! घुटनों पर सिर रखकर अनमोल आँसू डालने के लिए वह अधीर हो उठा। वह न बच सकी—किसी भी तरह न बच सकी, पर अब मृत्यु के बाद रोने से क्या लाभ!

चिता के पास से हटकर वह दूर जा बैठा। कोई उससे बोला नहीं, न वह ही किसी से बोला। उसके कानों में बार-बार आकर शब्द टकराने लगे—भगवान-भगवान! कानों पर हाथ धरकर चिता को ताकते हुए वह बैठा रहा; मानो उस चिता में से निकलते हुए धूएँ में उसका भूतकालीन जीवन दिख रहा हो।

घर में क्षयरोग का बिस्तर लगा हुआ था और उस पर सोया हुआ था एक अस्थि-पञ्जर। खिंच-खिंचकर बड़ी बनी हुई आँखें, तन-तनकर लम्बा बना हुआ रक्त-विहीन सूखा चेहरा, सूखकर काँटा बने हुए व अस्वाभाविक रूप से लम्बे मालूम होनेवाले शरीर के प्रत्येक अवयव क्षण में किसी प्रेत और क्षण में किसी बालक की मालूम होनेवाली थी वह रोग-शय्या!

लग्न में जबर्दस्त धूम-धाम! उसके ससुरालवालों की राज्य में पुरानी मानमर्यादा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मण्डवे में सारी रियासत खड़ी थी ! एक राजा की तरह उसे आदर-सत्कार प्राप्त हुआ, राजस्थानी रोब-दोब से उसका विवाह हुआ। खुद दरबार उसकी खबर पूछते। गाँव के सेठ और बड़े-बड़े अफसर उसकी खुशामद करते। गाँव के असंख्य लोग प्रीति-भोज में सम्मिलित हुए, गाँव की सभी स्त्रियों ने मंगल-गीत गाये !

बारह वर्ष की अजु और खुद पन्द्रह वर्ष का। कितनी आशाएँ उसने बाँधी थीं। कल्पनाओं की रथयात्रा प्रारम्भ हुई। कुछ घोड़े तो निश्चित स्थान पर पहुँच सके और कुछ पीछे ही छूट गये। कितना ही मार्ग तय हुआ और बाकी वैसे ही रहा और इन समस्त कार्यों में मध्यबिन्दु थी—उसकी अजु। अजु के आसपास उसकी आशा नृत्य कर रही थी !

वह था स्वच्छ, निर्मल काँच के शीशे की तरह। लग्न की उत्कण्ठा उसके मन में बढ़ी। वह स्वतन्त्र विचारवाला था, अतः उद्धत बना। भावनाशील था, अतः उर्मिल बना। स्वदेश से बाहर जाकर धन कमाने की उसकी लालसा थी। एकाग्रता हठ में और एक रागता लापरवाही में परिणत हुई !

वह चार महीने में नौकरी बदलता, छः महीने में गाँव बदलता और वर्ष में धन्धा। अजु अपने मायके में रहती ! थकती तब अपने रिश्तेदारों के यहाँ जाती, वहाँ से थकती तब पत्र लिखती और उत्तर की प्रतीक्षा करते-करते थकती, तब रोना प्रारम्भ करती। इस तरह उसे वर्षों बीत गये..... !

एक बार अनिल को उसके काका की बीमारी का समाचार मिला ! शरीर और मन दोनों से वह निर्बल हो चुका था ! इतने दिनों के बाद कुटुम्ब-प्रीति उभर आई और वह घर गया। घर आकर उसने अपनी गृहस्थी प्रारम्भ की। अजु ने अपना शरीर सुखाकर पशुत्व में से मनुष्यत्व का सृजन किया। बाबर ने हुमायूँ का रोग अपने ऊपर ले लिया था, यह उसने इतिहास में पढ़ा था; किन्तु अजु का यह कार्य उसने आँखों से देखा। ज्यों-ज्यों अनिल का मन स्थिर होता गया, अजु का शरीर गलने लगा। उसके मानसिक क्षय को दूर करने के लिए मानो अजु ने शारीरिक क्षय धारण किया हो !

मनुष्य मात्र के जीवन में एक समय आता है और कसौटी का यह समय उसके सामने भी आया। अजु का रोग बढ़ता ही गया ! जब अनिल अजु की कद्र करने योग्य हुआ तब कद्र करने लायक कुछ न रहा। १५ वर्ष के इस लम्बे समय में ८ वर्ष व्यतीत हुए इधर-उधर घूमने में, ५ वर्ष अजु की रुग्णावस्था के। केवल दो वर्ष का रहा उसका संसार और एक बालक यह उसकी सृष्टि !

बालक और पत्नी की सँभाल में अनिल अपना समय व्यतीत करता था ! न मालूम कितनी ही झूठी आशाएँ बाँधता रहता। एक तरफ उसका सत्कार बढ़ता था तो दूसरी ओर अजु का रोग। और—और—एक भयंकर रात्रि में अजु का अवसान हुआ ! दुखी जीवन सुखी मृत्यु ! कठोर से कठोर व्यक्ति के भी हृदय में दया-संचार करता हुआ अजु का अन्त हुआ। योगियों के हृदय में भी ईर्षा उत्पन्न करनेवाले वीत-राग भाव से अजु की मृत्यु हुई। प्रातः तो उसे जला-कर अनिल लौटकर घर आया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीन वर्ष का नितान्त अबोध बच्चा कहता—अजु दवा करवाने के लिए गई है ; स्वस्थ होकर आयगी ! मैं सदैव परमात्मा से प्रार्थना करता था। अतः वे उसे अपने घर बुला ले गये !

बालक के मुँह की रेखाओं में उसकी माता की रेखाओं को देखते हुए अनिल के दिन बीतने लगे ! सभी स्नेही मित्रों ने उसे आश्वासन दिया, उसे उसने उपयुक्त समझा ! सबने कहा—भाई तुम तो दुःखी अवश्य हुए ; किन्तु वह तो इस जीवन में असह्य यातना भोगती थी, यह भी उसे ठीक जँचा। सब ने कहा—तुम्हारे बराबर सेवा करनेवाला तो संसार में विरला ही होगा, यह भी उसे उचित मालूम हुआ।

किन्तु किसी ने उसे यह नहीं कहा कि अजु इसलिए यातना उठाती थी कि अपनी तन्दुरुस्ती उसने तुम्हें अर्पण की थी। किसी ने उससे यह नहीं कहा कि तुम भी उसके बालक ही हो, क्योंकि तुम्हें भी उसी ने निर्मित किया है। किसी ने भी उसे यह नहीं कहा कि जो कुछ तुमने उसकी सेवा की वह केवल उसका ऋण ही चुकाया है।

इस तरह एक वर्ष व्यतीत हो गया। अब उसे बालक में माता की नहीं अपितु अपनी रेखाएँ दृष्टिगोचर होने लगीं, उसके हृदय में अपनी यौवनावस्था के प्रति मोह उत्पन्न होने लगा और एक सुनहले प्रभात में रसबाला से उसकी भेंट हुई। रसबाला—कितना मधुर नाम, कितना मोहक शरीर। एक क्षण के लिए अजु का चेहरा उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ। एक दम निर्बल, कृश, रोगी और अकाल वृद्ध। रसबाला—युवती, सुन्दर और बाल-विधवा थी ! 'फिर विवाह न करना तथा केवल बालक की सँभाल रखना' अपनी इस प्रतिज्ञा को वह भूल गया ! उसके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि अपनी स्थिति के व्यक्तियों के सामने पुनर्लग्न करके एक आदर्श उपस्थित करना चाहिये। वास्तव में रसबाला ऐसी ही मोहक स्त्री थी।

उसे खयाल आया कि बालक को अपने से अलग रखने में ही उसका हित है। बालक को उसने पढ़ने भेज दिया। बालक गया और घर सुनसान कर गया। उसे हृदय में अनाथता का अनुभव होने लगा। संसार में उसके बराबर अन्य कोई दुःखी ही नहीं है। इन विचारों ने उसके अन्तर में घर कर लिया। कभी हृदय को सन्तोष देने के लिए वह अजु की तसवीर को देख लिया करता था। एक दिन पवन का झोंका आया और तसवीर नीचे गिर गई। काँच टूट-कर चूर-चूर हो गया। 'आज ठीक करवा लूँगा, कल ठीक करवा लूँगा।' करते-करते बात ढील में पड़ गई और तसवीर सुधरवाने का मौका ही न आया।

अन्त में उसने रसबाला के साथ पुनर्लग्न करना निश्चित किया। लग्न-तिथि तय की गई, मित्रों को निमन्त्रण दिया गया और घर नये सिरे से सजना प्रारम्भ हुआ और...और...

आज अचानक उसकी दृष्टि इन तसवीरों पर पड़ी। एक बारह वर्ष की गुलाबी बाला-नाजुक और गर्वित ! एक सत्ताईस वर्ष की दुर्बल और अकाल वृद्ध माता। और उसके मुँह से हठात् निकल पड़ा—'Let me not for get this day'.

शुष्क आँखों और भावहीन चेहरे से एक वर्ष पहले जिस तरह वह अजु की चिता को देख रहा था। आज उसी तरह इन तसवीरों के ऊपर उसकी नज़र गड़ गई। विचारों के आवेग में वह खड़ा हो गया। उसकी आँखों ने नया ही रूप धारण किया। श्वास वेग से प्रवाहित होने लगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक निःश्वास लेते हुए वह बड़बड़ाया—इस थैली की तरह कहीं मुझे तो न भूल जाओगे।

भारी हृदय और काँपते हुए हाथों से उसने तसवीर के नीचे लिखा—लिख ओ कंगाल लेखक! आज तक तूने कितना ही लिखा है, किन्तु उपयोगी कितना लिख सका? केवल काग़ज़ और स्याही को खराब करने के अतिरिक्त भी कुछ लिख सका है? जब तक तेरे लेखों से एक पिता को पुत्र की रेखाओं में सुहागिन माता के दर्शन न हो जायँ, तब तक लिखते रहना। कितने ही जीवन केवल नष्ट होने के लिए ही बनाये गये; कितने ही पुष्प अपना पराग धूल में मिल जाने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं।

अनिल ने हाथ में काग़ज़ लिया और कलम! रसबाला के पत्र का उत्तर लिखाः—यह सत्य न होगा; अगर तुम्हें लिखूँ कि मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूँगा। किसी दिन थैली की तरह अनायास तुम्हें भी भूल जाने का।

जीवन

[श्रीमन्नारायण अग्रवाल]

मिथ्या है कहना, पुष्पों का
सर्वनाश होता कुम्हलाकर,
किलक-किलककर एक घड़ी खिल,
मिट जाते मिट्टी में मिलकर!

× × ×

जीवन नहीं व्यर्थ का सपना,
बुद्बुद् जैसा अथिर नहीं है;
ऊषा की लाली-सा नश्वर,
विद्युत जैसा क्षणिक नहीं है।

× × ×

मरण नहीं जीवन में, दुनिया!
जीवन तो अविरत प्रवाह है,
मरना कैसा नित प्रवाह में
जिसका अन्त अनन्त थाह है!

[११६६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दो चित्र

[सिद्धराज ढड्ढा [

सन्ध्या के ढलते हुए सूर्य की स्निग्ध पीत किरणों से आलोकित हरे-भरे खेत को कभी देखा है ?—कितना शान्त, सुखद, सुन्दर समा होता है—वह ! एक ओर घनी, ऊँची ऊख सिर उठाये खड़ी है—दूसरी ओर वसन्त का उपहास करते हुए सरसों के पीले फूल सन्ध्या की धूप से द्विगुणित कान्ति पाकर मानो आत्म-सन्तोष से सिर हिला रहे हैं ! किसी ओर के खेत में अभी हरी लम्बी घास-सी ही खड़ी हो पाई है—जिसके बीच में ज़मीन दिखाई देती है—कहीं खेत की मेढ़ के पास ऊख की छाया में बैठे हुए सदा सन्तोषी किसान अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं। ऊपर स्वच्छ अनन्त मुक्ताकाश है, नीचे—पृथ्वीमाता की सुखद गोद, जिसमें लोटकर एक बार संसार के सारे दुःख भुलाये जा सकते हैं ! क्षितिज पर वृक्षों का झुरमुट, आस-पास छोटी-बड़ी झाड़ियाँ—बीच-बीच में सिर उठाये हुए बबूल के पेड़ !—कितना शान्त, आल्हाद-जनक वातावरण !

'गर फ़िरदौस बररूहे ज़मीनस्त, हमीनस्तो, हमीनस्तो, हमीनस्त।'

× × ×

ऊँचे-ऊँचे बेडौल कमरे—जिनमें भीमकाय भयङ्कर रूपवाली काली-काली लोहे की मशीनें धाँय-धाँय कर चल रही हैं ! एञ्जिन की गड़गड़ाहट, पहियों के चलने की आवाज़, हथौड़ों की चोट ! संख्या बन्ध, मैले-कुचैले, दुबले-पतले, विकृत मनुष्य—कभी एक राक्षस के मुँह में कुछ रखते हैं, कभी दूसरे के मुँह से कुछ निकालते हैं ! इतने सब मनुष्य यन्त्र की भाँति काम कर रहे हैं—भूतों की मजलिस के समान काम सब कर रहे हैं, पर बोलता कोई कुछ नहीं ! आँखों में जीवन की ज्योति नहीं, मुख पर स्मित की रेखा नहीं, सन्तोष का आभास नहीं—आनन्द की झलक नहीं ! भीतर—धुएँ और गैस से मिली हुई विषैली वायु—लोहे, तेल और कीट की दुर्गन्ध से भरी हुई ! और बाहर, मध्यान्ह की कड़ी धूप—कोलतार की गरम सड़कों पर इधर-उधर दौड़ती हुई सैकड़ों मोटरें, गाड़ियाँ, हज़ारों आदमी—सब अपनी-अपनी धुन में मस्त ! मोटर के हॉर्न की कर्णभेदी आवाज़, ट्रामगाड़ी की घन्टी, पुलिस वाले की सीटी—हर क़दम पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जान बचाने को इधर-उधर ताक-ताककर चलनेवाले पादुचारी !—दौड़-धूप, ले-दे, मानो लङ्का में आग लग गई हो !

× × ×

वहाँ—अशिक्षित, गँवार, 'पशुओं' का समुदाय !

यहाँ—सभ्य शिक्षित, समाज !

×

वह—असभ्यता ?—यह—सभ्यता ?

कामना

[इन्दिरा गुप्ता]

स्वर बन कर भर जाऊँ सजनी !
मैं जग-उर के तारों में।
सुख-दुख की झंकारों में।
मिल जाऊँ मैं नीर-क्षीर-सी
सब जग मेरा अपना हो।
मेरी उसकी पलकों पर सखि,
वह सोने का सपना हो।
हो जाए उर निर्मल उज्ज्वल
धुल नयनों की धारों में।
जन-जन से हो पावन नाता
कोई नहीं पराया हो।
बँधे रहें उर प्रेम-डोर में
नहीं कलुष की छाया हो।
सरस राग ही और एकता
भरे सुमन सुकुमारों में।
झर जाएँ री, जीर्ण पत्र सी
विषय-वासना जन-मन की
भरे रहें उर पूत प्रेम से
जैसे बदली सावन की।
भर जाए कोलाहल जग का
उर-वीणा के तारों में
एक राग का श्रोत बहे री
सजनी ! हृदय हजारों में।

[१९६८

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मृत्यु की गोद में

[श्यामविहारी शुक्ल 'तरल']

समाज कहता है—ख़बरदार ! यह सब हो नहीं सकता !

धर्म कहता है—मैं तुम्हारा साथ नहीं दूँगा।

लज्जा कहती है—बड़ी बेहया हो गई है तू, मुझे छोड़कर।

पर मन—वह तो कहता है—बकने दो इन सब को ! इसमें हानि ही क्या है ? केवल देख लेने में मुझे ज़रा-सी शान्ति मिल जाती है, तब इसमें दोष ही क्या है ?'

और प्रेम वह तो मन का साथ देने की शपथ ही खा चुका है।

पर सुनो तो ! वह विधवा है, विधवा—हिन्दू समाज की विधवा। उसका सिन्दूर मस्तक से पोंछ लिया गया है, हृदय पर एक भारी-सा वैधव्य का बोझ लाद दिया गया है। हाथ में बन्धन-स्वरूप चाँदी की दो-दो चूड़ियाँ डाल दी गई हैं। फिर इस जीवन-रूपी बन्दीगृह में बन्द कर धर्म, समाज, और झूठी लज्जा बारी-बारी से उसका पहरा देते हैं। फिर भी वह देख तो लेती ही है। हाँ, देख ज़रूर लेती है, चुराकर, चुपके-चुपके से। मन के कहने से, प्रेम का साथ देने के लिए।

मकान के ठीक सामने जो दूसरा मकान है, उसी की छत पर बैठकर, जब वह अपने घुँघराले बालों को हवा में खुला छोड़कर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से इसकी ओर देखता हुआ अपनी छोटी-सी बाँसुरी बजाने लगता है, तब यह अपने को रोक नहीं पाती, बरबस ही इसकी चञ्चल और प्यासी आँखें उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से लड़ जाती हैं।

'तब क्या यह पाप है ?'—वह मन से पूछती है।

चाँदी की चूड़ियाँ कड़क उठती हैं—'कलंकिनी !'

लज्जा धिक्कारने लगती है—निर्लज्ज !

धर्म शाप देने लगता है—सत्यानाशिनी !

पर मन फिर भी कहता है—बकने भी दो ! मूर्ख हैं सब के सब।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम मन का साथ देता है—ठीक ही तो कहते हो !

और समाज वह तो अभी अनभिज्ञ है इन सब बातों से ।

× × ×

वह प्रेम करने लगी । उसी बड़ी-बड़ी आँखों और घुँघराले बालों के उस युवक प्रमोद से ।

और वह भी उलझ गया इसके कुञ्चित केशपाश में और बहने लगा प्रेम के प्रबल-प्रवाह में ।

उसने अपनी बाँसुरी से अपने हृदय का संदेशा अपनी रानी तक पहुँचा दिया ।

और इसने भी अपनी अधीरता अपने चक्षुओं द्वारा प्रकट कर दी ।

उसने प्रार्थना की, और इसने स्वीकृति दी और तब वे दो से एक होने के लिए व्याकुल हो उठे ।

एक ने कहा—रानी ! अब मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकता, तुम आ जाओ ? पर दूसरी ने हिचकिचाते हुए कहा—किन्तु समाज, धर्म, लज्जा, और यह हाथों की चाँदी की चूड़ियाँ इनको कैसे समझाया जायेगा ?

तभी प्रेम कह उठा—उसका जिम्मा मैं लेता हूँ ।

मन ने उसका समर्थन किया, तब वह उसके बाहु-पाश में आबद्ध हो गई । समाज चीख़ उठा, धर्म तिलमिला उठा, लज्जा विवश हो गई और चाँदी की चूड़ियाँ रुष्ट हो हाथों से निकलकर ज़मीन पर गिर पड़ीं ।

वह बन्धन-मुक्त हो गई, प्रेम और मन को साथी बनाकर । प्रमोद ने कम्पित कण्ठ से कहा—रानी, तुम कितनी सुन्दर हो !

उसने भी लजाते हुए उत्तर दिया—पर तुम भी तो···!

प्रमोद ने रानी के और भी निकट आकर धीरे से कहा—रानी ! और रानी उसमें लय हो गई, अपना सब कुछ खोकर !

समाज ने कहा—अब पीछे लौटकर मत आना !

धर्म ने कहा—तू मेरे काम की नहीं रही ।

लज्जा ने कहा—मुझे अब क्या करना है !

और प्रेम वह भी अन्त में संकोच से कह उठा—पर तुमने तो अन्त में मुझे भी छोड़ दिया ।

वासना खिलखिला कर हँस पड़ी—'यह सब पागल हैं, नीरस ! अनभिज्ञ !

मन ने अबकी बार वासना का साथ दिया—यही ठीक कहती है, ये सब पागल हैं, पर प्रेम तुम मत जाओ ! मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वासना ने मन को डाट दिया—पागल हो ! मैं ही तो असली प्रेम हूँ। वह तो केवल तुम्हें मुझ तक लाने के लिए मेरा दूत है, तुम मुझ पर विश्वास करो।

मन ठगा गया, वासना की जीत हुई, उसकी आँखों से मदिरा बरसने लगी।

× × ×

एक दिन वासना तृप्त हो गई।

रानी ने प्रमोद से कहा—प्रियतम ! कुछ तुम्हें मेरी चिन्ता भी है ?

प्रमोद समझ नहीं पाया। उसने कहा—रानी ! मुझे सदा तुम्हारी चिन्ता ही तो रहती है।

रानी लजा गई, उसने और भी स्पष्ट किया—'पर तुम तो समझे ही नहीं, मैं—आजकल...

प्रमोद सुनकर चौंक उठा—अरे। तुमने मुझ से पहले ही क्यों नहीं कहा ?

रानी भयभीत हो गई—तब क्या तुम इससे डरते हो ?

प्रमोद उससे झूठ बोला—नहीं, नहीं मैंने वैसे ही कहा, यह तो खुशी की बात है।

और एक दिन :

प्रमोद रानी को छोड़कर चला गया, वासना उसकी गोद में एक छोटा-सा शिशु डाल कर भाग गई।

रानी पीछे लौटी,

पर समाज ने कहा—अब तुम यहाँ नहीं आ सकतीं !

धर्म बोला—तुमने पाप किया है !

लज्जा ने कहा—तू दुष्टा है !

प्रेम ने कहा—मैं क्या करूँ !

वासना उपेक्षा करती हुई बोली—अब तुम में सुन्दरता नहीं रही !

मन चिल्ला उठा—तू पतिता है ! तू अभागिनी है ! तू दुष्टात्मा है !

पर मृत्यु ने अपनी बाहें फैला दीं, उसने सस्नेह कहा—तुम यहीं आ जाओ न ! मेरे निकट पतिता, दुष्टात्मा और पुण्यात्मा सब एक-सी हैं। तुम्हें यहाँ शान्ति मिलेगी।

और तब मातृहीन नवजात शिशु को नदी के निर्जन तट पर रोता हुआ छोड़कर, वह चली गई—मृत्यु की गोद में।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किस लिए नैराश्य छाया ?

[जगन्नाथप्रसाद]

किस लिए कुम्हला रहा यह
फूल-सा चेहरा तुम्हारा ?
आँसुओं से तर सरित् के
कूल-सा चेहरा तुम्हारा ?
चीरता दिल, सूखकर क्यों
शूल-सा चेहरा तुम्हारा ?
और पहिचाना न जाता
भूल-सा चेहरा तुम्हारा ?
हो गई कुछ और काया। किस लिए...

मूर्ति मिट्टी की नहीं, चिर
स्फूर्ति की तस्वीर हो तुम।
जो जगे श्रम से, वही
सोई हुई तक़दीर हो तुम।
जो हरें परतन्त्रता,
स्वाधीन्य के वे तीर हो तुम।
दूसरे भगवान् बनने
के लिए तदबीर हो तुम।
है तुम्हीं में जग समाया। किस लिए...

सीख कर आये तुम्हीं थे
ख़ाक में भी गुल खिलाना।
देह-रथ-आरूढ़ हो कर
उच्च इन्द्रासन हिलाना।
विश्व भर में क्रान्ति करना,
और मुर्दों को जिलाना।
किन्तु अपने आप ही को
और मिट्टी में मिलाना।
यह तुम्हें किसने सिखाया ? किस लिए...

यश तुम्हारा था, मगर
तुम आज यश को धो रहे हो।
पथ तुम्हारा था, मगर
तुम आज पथ में खो रहे हो।
जग तुम्हारा था, मगर
तुम आज जग को रो रहे हो।
रथ तुम्हारा था, मगर
तुम आज रथ के हो रहे हो।
और कुछ का कुछ बनाया। किस लिए...

मद चला था स्वाभिमानासव
छलकता जाम देने।
मोह-मत्सर प्रेम देने,
लोभ धन निष्काम देने।
और क्रोध स्वतन्त्रता-हित
युद्ध का पैग़ाम देने।
काम आया था तुम्हें
भगवान का उपनाम देने।
यह नहीं भ्रम-जाल माया। किस लिए...

[११७२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देव-रथ के अश्व हैं, कुछ
प्रकृति के उद्गार हैं ये।
सूक्ष्म, स्थूल, रणस्थलों में
ढाल हैं, तलवार हैं ये।
मत करो वैराग्य इनसे
देव के उपहार हैं ये।
यदि पलट दो चाल इनकी
आन में उस पार हैं ये।
दृष्टि-पथ में जो न आया। किस लिए...

ये तुम्हारी शक्तियाँ हैं,
ये नहीं मजबूरियाँ हैं।
ये कली से कण्टकों में
कर रहे अठखेलियाँ हैं।
ये विरोधाभास की सुन्दर,
अमर कुछ पंक्तियाँ हैं।
और सीधी राह की कुछ
कम चली पगडण्डियाँ हैं।
क्यों इन्हें तुमने भुलाया? किस लिए...

दृढ़ कवच हैं ये तुम्हारे,
ये तुम्हारी हैं भुजाएँ।
संग ये रहते तुम्हारे
नित्य दाएँ और बाएँ।
जीत सकते हो इन्हीं से
एक क्या, सारी दिशाएँ।
चिर असम्भव से कहो, ये
ज़ोर अपना आज़माएँ।
पा तुम्हारी छत्र-छाया। किस लिए...

तुम स्वयं आदित्य, दुर्दिन
का न गाओ गान रो कर।
हे सुदिव्य महारथी!
संकल्प एक महान हो कर।
फिर बढ़ो, फिर-फिर बढ़ो,
चिर तक बढ़ो, अभिमान खोकर।
सामने पुरुषत्व को रख,
सामने भगवान को कर।
छोड़ दो अपना पराया। किस लिए...

फिर तुम्हारी हार भी
विख्यात होगी जीत होकर
फिर तुम्हारी मृत्यु गूँजेगी
अमर संगीत होकर।
फिर तुम्हारे गुण बनेंगे
दिव्य, त्रिगुणातीत होकर।
फिर न मिटने का तुम्हारा
वर्तमान अतीत होकर।

'काल'—यह संदेश लाया।
किस लिए नैराश्य छाया?

दिल्ली।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रण-हुंकार

[शान्तिप्रसाद पाठक]

मा दुर्गा की दिग्-दिगन्त-व्यापी रण-हुंकार आज फिर प्रतिध्वनित हो रही है !

विश्व की छाती पर बहनेवाले, वर्ग-युद्ध, गृह-युद्ध और धर्म-युद्ध के रक्त से क्या रण-चंडी का खप्पर अभी भी नहीं भरा ?

सभ्यता और संस्कृति के उच्च प्रासाद रण की भीषण विभीषिकाओं से भूलुंठित हुए अपने भाग्य को रो रहे हैं। भय, त्रास और आतंक उन खंडहरों पर प्रहरी बने खड़े हैं, और मानवता—मानवता उन विशाल खंडों के नीचे बन्दी बनी पड़ी है !

× × ×

मा दुर्गा की दिग्-दिगन्त व्यापी रण-हुंकार इस जड़ीभूत अखिल विश्व को फिर जाग-रण का सन्देश दे रही है।

'इस सुन्दर प्रभात में तुझे जागना ही पड़ेगा, कर्म-भूमि में उतरना ही पड़ेगा।'

किन्तु, उस ओर, क्षीण और आवेशपूर्ण स्वर में प्रतिध्वनित हो रहा है—

'ओरे कठोर कर्म ! ओरे कराल काल !...

'कर्म-भूमि में उतरते समय महावीर अर्जुन के गांडीव की भी प्रत्यंचा ढीली पड़ गई थी। फिर आज की मानवता तो बाधाओं की कठिन कारा में छटपटा रही है। आँखें होते हुए भी उसे कुछ नहीं सूझ रहा। वाणी होते हुए भी वह मूक हो रही है। पग-पग पर बाधाएँ हैं।

'अर्जुन गांडीव लेकर कर्म-भूमि में उतरे थे। शिवा भवानी के साथ रण-क्षेत्र में आये थे। प्रताप के साथ भी अरियों का मस्तक विदीर्ण करनेवाला भाला था। साधनहीन मानवता फिर किस साहस पर, किस शौर्य पर रण-क्षेत्र की ओर पग बढ़ाये ?'

मा दुर्गा की दिग्-दिन्त-व्यापी रण-हुंकार फिर सुनाई दे रही है, और वीरों को कर्म-भूमि में उतरने के लिए ललकार रही है।

'अर्जुन का गाण्डीव काल के गाल में समा गया है, प्रताप का भाला निर्जीव पड़ा है; शिवा की भवानी भी आज निष्प्राण हो गई है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'एक दिन—

'गाण्डीव की तरह ये भी नष्ट हो जायँगे !

'हृदय के उच्च सिंहासन पर विराजनेवाला शौर्य अस्त्र-शस्त्रों की लौह कारा में बन्दी नहीं रहता ।

'तरुणो ! स्वार्थों के तुच्छ शैवल को चीरते हुए उठो, अपने हृदय को उच्च बनाओ ; और अरुण-पथ पर अपना प्रगति-पोत बढ़ाओ । बाधाओं के कठोर शिखर उसकी वज्र-गति से चकनाचूर हो जायँगे ।'

× × ×

मा दुर्गा की दिग-दिगन्त-व्यापी रण-हुंकार रणवीरों को आज फिर जागरण का सन्देश दे रही है ।

'शेष-पर्यङ्कशायी युवको ! तुम्हारा सुख-विलास वरुण-पाश के कठिन बन्धनों में तुम्हें जकड़ रहा है । और तुम्हारी तरुणाई मिट्टी में गढ़ी तलवार की भाँति जर्जरित हो रही है ।

'उठो, इन जड़ बन्धनों को तोड़ते हुए उठो और देखो !

'दोनो ओर पूर्व-पश्चिम में महाविनाश की चिताओं को धधकते हुए ।

'क्यों ? मौन क्यों हो ?

'प्रलयंकरी ज्वाला की लपलपाती सप्त जिह्वाएँ इस विराट् वैभव के क्षार-स्तूप बनाती बढ़ रही हैं ।

'अनय और अनाचारों से जूझनेवाले तरुणो ! आज क्यों प्रशान्त महासागर बने हो ? मर्यादा के बन्धनों को तोड़कर यदि तुम उमड़ पड़ो तो आज ही अखिल विश्व में शान्ति विराजने लगे ।

आगरा ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जार्ज बर्नर्ड शा के जीवन पर एक दृष्टि

[वागीश्वरप्रसाद द्विवेदी]

बर्नर्ड शा का नाम संसार की उन विभूतियों में है जिन्होंने साहित्य एवं नाटककार के रूप में समाज-सेवा की है। उनकी अद्भुत लेखन-शक्ति ने लोगों को चमत्कार में डाल दिया है। आज जिस किसी साहित्यकार से पूछो वह शा के नाटक तथा उपन्यासों की प्रशंसा किये हुए नहीं रह सकता। उनके नाटक वर्तमान अंग्रेज़ी-साहित्य में सर्वोपरि समझे जाते हैं। इन्हीं नाटकों एवं उपन्यासों के कारण शा ने इतना अधिक प्रचुर धन कमाया है कि उसकी समानता, संसार का बड़े से बड़ा लेखक जिसने अधिक से अधिक धन लेखनी की बदौलत एकत्रित किया है, नहीं कर सकता। इस तीक्ष्णबुद्धि महापुरुष को देखकर आश्चर्य होता है कि मनुष्य के सब दिन सदैव एक समान नहीं रहते। कौन कह सकता था कि जिस मनुष्य ने आरम्भिक जीवन-काल में नाना प्रकार के कष्ट सहे, जगह-जगह ठोकरें खाईं और तरह-तरह की विपत्तियाँ झेलीं; वह केवल अपनी लेखनी की बदौलत इतना धन कमायेगा ? परन्तु परिस्थितियाँ प्राप्त करने पर मनुष्य सब कुछ कर सकता है। परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर उसको आगे बढ़ने का अवसर मिला और साहित्य-संसार में काफ़ी नाम पैदा किया। नाटक के क्षेत्र में तो वह एक प्रकार से अद्वितीय है। यही कारण है कि ऐसे महापुरुष के जीवन पर प्रकाश डालना आवश्यक-सा होता है।

बर्नर्ड शा का जन्म २६ जुलाई १८५६ को आयरलैण्ड के प्रसिद्ध नगर डबलिन में हुआ था। उसके माता-पिता साधारण हैसियत के आदमी थे। वे लोग अनाज का व्यापार करते थे, परन्तु उनको इस काम में कभी सफलता नहीं प्राप्त हुई, क्योंकि शा का पिता शराबी तथा बे-परवाह था। इसी कुटुम्ब में बर्नर्ड शा का, जो कि अपने पिता का एक मात्र पुत्र था पालन-पोषण हुआ था।

शा को बच्चों की साधारण आयु प्राप्त होने पर प्रारम्भिक कक्षाओं में भर्ती नहीं कराया गया, बल्कि ११ वर्ष की अवस्था में, जब कि लड़के दो या तीन कक्षा पार कर चुकते हैं, वेसलियन कन्टेकशनल स्कूल में पढ़ाई आरम्भ करवाई। वहाँ पर उसका मन न लगा। इसी से वह ठीक प्रकार से मन लगाकर न पढ़ता था। उसकी जीवनी के रचयिता विख्यात लेखक अर्कि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाल्ड हन्डरसन लिखते हैं—वह न केवल स्वयं आलसी तथा कक्षा में सबसे पिछड़ा हुआ था, बल्कि दूसरों को कथा-कहानी सुनाकर आलसी बनाता था। वे लोग पढ़ाई को छोड़कर उसकी कहानियों को सुनने के उत्सुक होते थे। यही कारण है कि इस पढ़ाई से उसे कुछ लाभ न हुआ। उलटे स्कूली शिक्षा का आतंक उसके मस्तिष्क पर छा गया। इस समय जो कुछ शिक्षा उसे प्राप्त हुई, वह अपनी माता एलिजाबेथ मर्किंगार्डी के संरक्षण में हुई। वह संगीत में बड़ी प्रवीण थी, उसके घर में बड़े-बड़े संगीत-विशारद आया करते थे। यही कारण है कि इन सबके संसर्ग से बर्नर्ड शा को संगीत का व्यवहारिक मूल्य ज्ञात हो गया। उसकी रुचि गाने में उत्पन्न हुई। चित्रों की ओर भी उसका झुकाव हुआ। १५ वर्ष की अवस्था में साधारण विद्यार्थी के समान उसे चित्रों का ज्ञान हो गया।

१८७१ ई० में शा को अपने चचा की सहायता से एक क्लर्क का स्थान प्राप्त हुआ। जहाँ पर उसे १८ शिलिंग प्रति मास वेतन मिलता था, परन्तु अपनी योग्यता के कारण ४ वर्ष के पश्चात् ही उसको बड़ी जगह (post) मिली जहाँ पर उसे पहले से अठगुना वेतन मिलने लगा। इसी समय उसकी माता उसके शराबी पिता से तंग आकर अपनी दो लड़कियों को लेकर लन्दन आ पहुँची। जहाँ पर वह गाने की बदौलत अपना जीवन-निर्वाह करती थी। शा का मन अपने पिता के पास न लगा, जिसके फल-स्वरूप १८७६ के मार्च महीने में वह भी अपने पिता को छोड़कर डबलिन से लन्दन आ पहुँचा।

लन्दन में उसके प्रारम्भिक ९ वर्ष बड़ी ग़रीबी एवं तकलीफ से बीते। थोड़ा-बहुत लेखन-कला की बदौलत उसे मिल जाता था, परन्तु यह उसके नाकाफ़ी था। थोड़े समय तक उसने लन्दन की एक कम्पनी के आफिस में काम किया, लेकिन उसे व्यापारिक जीवन से घृणा हो गई थी। परिणाम यह हुआ कि वहाँ पर भी उसका मन न लगा और निराश होकर वह काम छोड़ना पड़ा।

अब उसने साहित्य की ओर अपना ध्यान लगाया। १८७८ तथा १८८३ के बीच उसने पाँच उपन्यास रचे जिनमें 'अप्रौढ़ता' (इममैच्योरिटी), 'विवेक-रहित ग्रन्थि (इररेशनल नाट), 'कलाकारों के मध्य में प्रेम' (लव अमन्ग दि आर्टिस्ट) 'असमाजिक समाजवादी' (अनसोशल सोशलिस्ट) तथा कैशेल वाइरेन का पेशा'* (कैशेल वाइरेन्स प्रौफेशन) सम्मिलित हैं। परन्तु जब प्रकाशन का समय आया तो कोई प्रकाशक इन्हें प्रकाशित करने के लिए तैयार न हुआ। यही कारण है कि उसकी ये अमूल्य कृतियाँ बहुत दिनों तक यों ही पड़ी रहीं और संसार उनके विषय में कुछ भी न जान सका। आखिरकार उसके मित्रों ने जिनका सम्बन्ध राजनीतिक मण्डली से था, उसकी इन कृतियों को प्रचारक पत्रों में धीरे-धीरे प्रकाशित करवा दिया। उसकी कृतियों को प्रश्नोत्तर के रूप में रचने की प्रणाली से यह साफ प्रकट होता है कि उसकी प्रवृत्ति उपन्यास की अपेक्षा नाटक की ओर अधिक है। इसी समय शा ने कार्लमार्क्स का 'कैपिटल' नामक ग्रन्थ पढ़ा जिसके फल-स्वरूप समाजवाद की ओर उसका झुकाव हुआ। व्याख्यान का भी उसने काफ़ी अभ्यास कर लिया। पहले तो उसे मञ्च पर खड़े होकर भाषण देने में कुछ हिचकिचाहट मालूम होती थी। परन्तु अभ्यास के कारण आगे चलकर वह एक प्रवीण वक्ता बन गया। आगे चलकर वह

* व्यक्ति विशेष का नाम। एक स्त्री का नाम है जो वेश्या थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'फेवियन सोसाइटी' का सदस्य हो गया। उक्त संस्था विचारशील समाजवादियों का दल था। जिसमें भावों की अपेक्षा विवेक के आधार पर ही काम किया जाता था। यहाँ पर उसे सिडनी, पेट्रिकवेक, एनीबिसेन्ट तथा ग्रैहम वैसेस के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। यहीं से उसके भाग्य का उदय हुआ। उसकी ख्याति दूर-दूर फैलने लगी। पुनः उसने 'संसार' (वर्ल्ड) नाम के चित्र एवं 'पाल माल गज़ट' नाम के ग्रन्थ की आलोचना की। संगीत एवं नाटक की समालोचना तो उसने पहले ही से आरम्भ कर दी थी। अब उसकी लेखनशक्ति एवं योग्यता की बदौलत संसार में उसका नाम उज्ज्वल हो गया।

१८९८ ई० में अप्रैल के महीने में बर्नर्ड शा के पैर में चोट आ गई जिसके कारण वह वह कुछ समय तक लँगड़ाता रहा। थोड़े ही समय के पश्चात् एक अच्छे घराने की आयरिश महिला के साथ उसका विवाह हुआ। अपनी पत्नी की सेवा एवं उसकी देख-रेख में शा अच्छा हो गया। इस समय उसके ४ नाटक प्रकाशित हो चुके थे। परन्तु उनका खेलों में प्रयोग नहीं किया गया।

यद्यपि उसने १८८२ से ही नाटक-रचना आरम्भ किया था, जैसा कि 'वाइडोवर्सर हाउस' नाम के खेल से जो कि उस समय बना था, प्रकट होता है, परन्तु उसके वास्तविक नाटककार का जीवन तब समझा जाता है जब कि वह ६० वर्ष की अवस्था को पहुँच गया था। तीन बड़े नाटक जिनकी गणना उसकी सर्वश्रेष्ठ कृतियों में होती है, वे ये हैं—'मलिन चित्त गृह' (हार्टब्रेक हाउस), वैक टू 'मैलथूसेला' तथा सेन्ट जॉन। ७२ वर्ष की अवस्था में उसने समाज-शास्त्र पर एक किताब लिखी जिसे 'समाजवाद की ओर चतुर स्त्री का पथप्रदर्शक'।(इन्टेलीजेन्ट वूमन गाइड टू सोशलिज़म।

बर्नर्ड शा की बहस करने की योग्यता तथा विपक्षी को उत्तर देने एवं उसकी बात का खण्डन करने की शक्ति का पता उनकी छोटी पुस्तिका 'ईश्वर की खोज में काली लड़की के साहसिक कार्य' (एडवेन्चर्स आव ब्लैक गर्ल इन सर्च आव गॉड) से पता चलता है। १९३४ ई० में न्यूज़ीलैन्ड की यात्रा को जाते हुए रास्ते में एक छोटा और दो बड़े नाटक लिखे। उस समय शा की उम्र ७८ वर्ष की थी। इसके एक साल बाद 'अनाकांक्षित द्वीप के मूर्ख' (सिम्प्लिटन आव अनइक्स पैक्टेड आइल्स) नामक शा का खेल न्यूयार्क थियेटर गिल्ट से निकला।

शा महोदय की सब कृतियों का वर्णन इस छोटे-से लेख में नहीं हो सकता। उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयों पर पुस्तकें रची हैं। 'वाइरेन के पेशे' नाम के ग्रन्थ में संगठित वेश्या वृत्ति को लोगों के सामने रखते हुए सामाजिक बुराई को दिखलाया है। 'अयोग्य वैवाहिक सम्बन्ध' (Misallianee) तथा ❀ अन्डर क्लोज़ और सिंह' और 'मलिन-चित्त गृह' में दार्शनिक तथा धार्मिक बातों पर प्रकाश डाला गया है। कुछ किताबों में शा ने प्रजातन्त्र का विरोध किया है। 'चट्टानों पर' (आन दी राक्स) में तो वह यहाँ तक बढ़ गया है कि मालूम होता है कि वह अधिनायकवाद का समर्थन कर रहा है जिससे उसके अनुयायियों को कुछ धक्का-सा लगता है। कहीं-कहीं पर उसके लेखों में विरोधाभास भी मिलता है।

बर्नर्ड शा कुलीनवर्ग के शासन का समर्थन करता है। उनका मत है कि सभी कोई राज्य-

❀ एक मनुष्य का नाम।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रबन्ध के लिए योग्य नहीं हो सकता। इस कार्य को कुलीन-वर्ग ही कर सकते हैं, शासन करने में जनता की आवाज़ किसी प्रकार सहायता नहीं पहुँचा सकती। जगतके कार्यों के विषय में उनका एक अनियमित शक्ति पर विश्वास है जिसके बल से मनुष्य आगे बढ़ता है। उनका कहना है कि मनुष्य में बुद्धि की प्रधानता नहीं होती, बल्कि उपरोक्त शक्ति से वह प्रेरित होता है। शा महोदय लौकिक बुराइयों को दूर करने पर अधिक ज़ोर देते हैं। पारलौकिक तथा इस दुनिया के बाहर तरह-तरह की कल्पनाओं को वे नहीं मानते हैं। उनका विचार है जब कि हमारे पास संसार में बहुत-से काम हैं तब यह कोई बुद्धिमानी का काम नहीं है कि इन बातों को छोड़कर हम काल्पनिक असंसारिक बातों की ओर दौड़ें। जहाँ तक समाजवाद का प्रश्न है उन्होंने जब तब अवसरों पर समाजवादी माँगों पर आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था के पुनर्संगठन पर ज़ोर दिया है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि 'प्राइडन का यह कहना है कि सम्पत्ति चोरी का माल है, नग्न सत्य है। आज के समाज में वह तरीका जिससे हम धन पैदा करते हैं, धोखा देने का तरीका है। बहुत कम धन ऐसा है जिसका किसी न किसी बुराई या पाप से सम्बन्ध नहीं।' उनका कहना है कि आज की आर्थिक व्यवस्था ऐसी है जिसका किसी को भी समर्थन न करना चाहिये। व्यक्तिगत सम्पत्ति को उन्मूलन करने के लिए प्रचार करने में वे कभी थकते नहीं। वे कहते हैं—ग़रीबी पाप है, समाज का सामूहिक पाप है, इसके दूर होने पर ही न केवल व्यक्ति बल्कि समाज का भी कल्याण होगा।' उन्होंने लिखा है कि धन-सम्पत्ति खराब नहीं है, यदि उसका उचित वितरण हो, वे मानवता के पुजारी हैं और मनुष्य के पीछे सब कुछ त्यागने के लिए तैयार हैं।

यद्यपि आज बर्नर्ड शा ८७ वर्ष के वृद्ध हैं फिर भी उनका लम्बा सीधा शरीर उसी प्रकार बना हुआ है जैसे कि युवावस्था में था। उनकी लम्बाई ६ फीट के क़रीब है। वे फुर्ती से चलते-फिरते हैं और पहाड़ी आदि ऊँचे स्थानों के चढ़ने में अपने छोटे उमरवाले नवयुवकों से पिछड़ते नहीं। उनके दाढ़ी के बाल जो एक समय लाल थे, अब भूरे हो गये हैं। उनकी आँखों को देखने पर मालूम होता है कि मानो वे हँस रहे हैं। परन्तु क्रोध आने पर उनकी यह हँसी दूर हो जाती है। सुशील होने पर भी मूर्खों के साथ वे किसी प्रकार बनावटी तकल्लुफ़ नहीं दिखलाते। उनका जीवन सूखा है। उन्हें एकान्त प्रिय है। वे न तो मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं और न बीड़ी सिगरेट ही प्रयोग करते हैं। वाद विवाद तथा अन्य बौद्धिक कार्य उनके लिए मनोरञ्जन के कार्य हैं। वे कोई संघटित खेल में भाग नहीं लेते। उनका कुलीन वर्ग का स्वभाव प्रजातन्त्र में भाग लेने से रोकता है। परन्तु मोटर पर चलना, पढ़ना, तैरना और टहलना उनके लिए बड़े रोचक हैं। थियेटर और संगीत की ओर उनकी चाह है, परन्तु सिनेमा की ओर बहुत कम। वे मित्रों के साथ गहरी दोस्ती रखते हुए भी उन पर आश्रित नहीं रहते।

काशी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विद्रोह

[शान्तिप्रसाद वर्मा]

राजेन यूनीवर्सिटी से लौटा, कोई चार बजे के करीब, थका हुआ, विभ्रम, चेतना-हीन-सा और जैसे-तैसे तीन-चार गोलाकार सीढ़ियाँ चढ़कर अपने ड्राइंग-रूम कहे जाने वाले कमरे में दाखिल हुआ, और बाँस के सोफ़े पर धम् से जा बैठा। शरीर उसका थकावट से चूर हो रहा था, पर मन क्रियाशील, उत्सुक, व्यग्र-सा था। जूतों के फ़ीते खोलकर उसने उन्हें दूर कोने में फेंका, और मोज़े उतारने की चेष्टा में लग गया। दूसरे हाथ से टाई की नॉट को ढीला किया, और क़मीज़ के गले के बटन को खोला। नींद के पहिले जो दशा होती है, राजेन की इस समय वही दशा थी। दिन भर की घटनाएँ, विचार, उसके ध्यान में बारिश के धुँआले बादलों के समान अस्पष्ट उठ रहे थे। बर्कले और स्पिनोज़ा पर किस क्लास में वह क्या बोला था—बोलता वह ख़राब नहीं है; वह स्वभाव से ही बहुत अधिक ठंडा है, इसलिए विषय में गर्मी लाने के लिए उसे थोड़ा समय ज़रूर लगता है, पर एक बार जब उसके सूत्र उसकी पकड़ में मज़बूती के साथ आ जाते हैं, तब उसकी आवाज़ एकाएक ऊँची होती चली जाती है, उसमें एक मीठी गूँज भर उठती है, और तब वह विषय के गहरे अध्ययन, शब्दों के चुनाव और आवाज़ की गंभीरता से डेढ़ सौ लड़कों की क्लास पर ऐसे शासन करता है, जैसे हिटलर के सामने नाज़ियों की कोई टुकड़ी हो!

राजेन के शरीर में कुछ गर्मी आई। मोज़े न जाने किस प्रकार उतरकर उसके पैरों के पास चुपचाप जा पड़े थे। टाई ढीली, शिथिल, अभी तक गले में लटक रही थी। राजेन ने उसे एक झटके से अलग किया, उठ खड़ा हुआ और मेज़ पर से शीशा उठाकर उसमें अपनी हैरत भरी सूरत देखी, बड़े-बड़े रूखे बाल सेई के काँटों की तरह उठ आये थे। उसने कई बार ज़ोरों से उनमें हाथ फेरकर उन्हें अस्त-व्यस्त कर डाला, और तब फिर शीशे में झाँका, चायना सिल्क के बादामी कोट और हल्की आस्मानी क़मीज़ के नीचे खुले गले पर पसीना बह रहा था। साँवला, चमकता हुआ, क्लीन-शेव चेहरा ऐसा दीख रहा था जैसे किसी मज़दूर का हो। पर राजेन की थकावट अब मिटती जा रही थी, और शरीर में कुछ फ़ुर्ती भी आ रही थी। इस कल्पना ने अपने दुबले-पतले सात्त्विक-से दीखनेवाले शरीर को लेकर वह डेढ़ सौ लड़कों की क्लास पर हिटलर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के समान शासन करता है, उसके शरीर में एक नई स्फूर्ति भर दी थी। उसके मन की विचार-धारा भी कुछ तेज़ हो गई थी। केवल अपनी क्लास को वह इस प्रकार कन्ट्रोल करता है, और गम्भीर वाणी में गहरे तत्त्वों पर वह सरल व्याख्या दे पाता हो, यह बात नहीं है। इन दो वर्षों में यूनीवर्सिटी के जीवन को उसने कितना क्रियाशील बना दिया है। यूनियन तो है ही, जो दो हज़ार लड़कों के हुल्लड़ और २०-२५ लड़कियों की साड़ियों की तड़क-भड़क के बीच साल में एकाध बार Meet करती है, पर राजेन के प्रोत्साहन से यूनीवर्सिटी में कई छोटी-मोटी संस्थाएँ खुल गई हैं। राजेन विचारों की प्रगतिशीलता में विश्वास करता है। विश्वव्यापी आर्थिक अवनति के कारण क्या हैं, मध्य एशिया के देशों में रूस के समाजवाद की कितनी प्रगति हुई है, अंग्रेज़ी साहित्य में अमरीका के नीग्रो लोगों की देन कितनी है, इत्यादि Academic विषयों में उसकी बड़ी रुचि है। वह चाहता है कि यूनीवर्सिटी के विद्यार्थी कला और साहित्य, राजनीति और समाजशास्त्र के विचारों में अग्रणी रहें, उन पर मनन करें, लम्बे-लम्बे निबन्ध लिखें, और उन्हें विद्वानों के सामने पढ़ें, अपने विषय के ऊँचे पत्रों में छपवाये। वह यूनीवर्सिटी में बर्नले और स्पिनोज़ा पर भाषण देकर ही नहीं लौटा है, एक इसी प्रकार की संस्था में भाषण देकर ही और दूसरी का सभापतित्व करके आया है। इतनी संस्थाओं का भार उसके कंधों पर है, तभी तो वह यूनीवर्सिटी से देर से लौटता है।

राजेन के जीवन में काम है, थकावट है, और एक विराट् संतोष भी है, सालभर पहिले तक अध्ययन से बच रहनेवाली शक्तियों के सहारे वह संध्या के सूने आकाश के नीचे बैठकर या या तारों की छाया और बिजली के लैम्प के प्रकाश में कल्पना के सूत्र जोड़ा करता था। उसकी अंग्रेज़ी कविताओं का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका था, पर पिछली गर्मियों में अचानक, जब वह नैनीताल में अपने पिता के साथ छुट्टियाँ बिता रहा था, रायसाहिब विशंभर दास बार० एट० ला० की लड़की सरला से उसकी शादी हो गई। तब से कविता बन्द है, और उसके हृदय का स्नेह इस लड़की पर ख़र्च होता है।

सरला विशेष सुन्दर नहीं है। रंग उसका गोरापन लिये है। माथे और गालों पर बचपन की चेचक के हलके पर बड़े-बड़े दाग़ खूब उभरे हुए हैं। ओंठ ज़रा मोटे और खूब Sensusness लिए हुए हैं। आँखें बड़ी बड़ी, उनमें कुछ भय, कुछ कातरता, कुछ अचरज-सा। शरीर के गठन और चेहरे के भाव में स्वस्थता है। जब वह हँसती है तो बचपन का उल्लास उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग से बिखर उठता है।

सरला राजेन के लिए कभी-कभी एक पहेली बन जाती है—वह विचारक जो है! राजेन को उसका सादा जीवन बहुत पसन्द है। उसके पिता की हज़ार से ऊपर की आमदनी है, पर राजेन की १३५) रुपए माहवार की तनख़ा में वह किस सुन्दरता से काम चलाती है! राजेन देखता है कि सरला की रहन-सहन में एक ऐसी सादगी है जो पवित्रता की सतह तक ऊँची उठ गई है। जब वह उसे हँसते हुए देखता है, तब इस संत की गंभीरता में उसे बच्चे का हृदय दिखाई देता है, पर जब वह गम्भीर रहती है, तब उसके ओठों की कामुकता आँखों की कातरता के साथ मिलकर एक ऐसा भाव सरला के चेहरे पर व्यक्त कर देती है कि राजेन चकित-सा होकर उसकी ओर देखता रहता है। राजेन कभी-कभी जब क्रियाशून्य बैठा रहता है, तब उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Sub-conscious मन में यह प्रश्न उठता है—सरला है क्या पवित्रता की देवी, या एक निर्दोष बच्ची या एक बहुत ही कामुक प्राणी। यह विचार अभी तक उसके Conscious मन की सतह तक ऊँचा नहीं उठा। जब वह यूनीवर्सिटी से लौटता है सरला अपनी सफ़ेद खद्दर की साड़ी में दौड़कर उसके गले से लिपट जाती है और अपने कामुक मोटे से ओठों से उसके गालों को चूम लेती है, तब खिलखिलाकर हँस पड़ती है, और मेज़ पर चाय पीने उसके साथ बैठ जाती है, तब राजेन के अन्तर्चित्त पर उसके वेश्या, बालक और सन्त के विविध रूप क्रमशः अंकित होते जाते हैं; मन की ऊपरी सतह पर एक प्रश्न-भरा फुटपुटापन-सा रहता है, और चाय आरम्भ होते-होते वह साधारण पुरुष और स्त्री बन जाते हैं, साधारण विषयों पर बात करते हैं, हँसी-मज़ाक होता है। जीवन यों ही चलता रहता है। राजेन के भीतर का फ़िलॉसफ़र सरला के विभिन्न व्यक्तित्वों का विश्लेषण कर पाता है, इसीलिए अस्थिर, अनिश्चित-सा रहता है, उस सबके पीछे मानवता का जो सूत्र है, उसे पकड़ नहीं पाता।

कमरे की बड़ी घड़ी में साढ़े चार बज रहे हैं। राजेन बैठा है, और सोच रहा है। बर्कले और स्पिनोज़ा और इस सभा और उस क्लब की बातें उसके मन में हैं। थकान से अब वह निवृत्त हो गया है, पर बेचैनी बढ़ रही है। अभी तक न सरला रोज़ के समान आकर उसके गले से लिपटी है, न उसकी प्रिय रॉब-रॉय चा उसे मिली है। ये बातें भी उसके दिमाग़ में उठी नहीं हैं, केवल भीतर से ही धक्का देकर उसे बेचैन बना रही है, और वह इस बेचैनी का कारण समझ नहीं रहा है। उसके विचार तो बर्कले और स्पिनोज़ा, इस सभा और उस संस्था में लगे हुए हैं। वह सोच रहा है कि फ़िलासफ़ी के विद्यार्थियों का एक अलग संगठन किया जाना चाहिये जहाँ वह स्पिनोज़ा और बर्कले और हीगल और कांट और स्पेंसर पर नवीनतम खोज सम्बन्धी प्रबन्ध तैयार कर सकें।

और सरला आज किस काम में लगी हुई है! उसने दरवाज़े का पर्दा उठाकर झाँका। बाल उसके बिखरे हैं, उनमें ज़ोर-ज़ोर से कंघा कर रही है। राजेन को देखा तो जैसे चौंकी। बोली—आप आ गए? और सीधी कमरे में चली आई। ज़ोर-ज़ोर से हँसी, 'आप कब से बैठे हैं!'—और वापिस लौटने की तैयारी में लगी। राजेन ने उसकी ओर देखा जैसे कह रहा है—चाय में क्या देर है? मुझे भूख लगी है। सरला जाते-जाते कह गई—चाय के लिए थोड़ी देर ठहर सकेंगे न? लखनऊ से भाई साहिब आये हैं, और उनके साथ वासुदेव भी चाय पीने यहाँ आ रहे हैं। और बिना उत्तर दिये वह घर में दाखिल हो गई।

'भाई साहिब' यानी कमलाकान्त तो प्रायः इलाहाबाद आ जाते हैं। उनका आना घर के जीवन में एक साधारण घटना बन गई है। उनके आने पर कभी कोई ख़ास तैयारी नहीं करनी पड़ती। इस मौक़े पर उन्होंने कभी सरला को व्यस्त नहीं देखा। तब आज विशेष बात क्या है? और तब उस ड्राइंग-रूम कहे जानेवाले कमरे में चारो ओर उनकी नज़र फैली। कमरे में साधारण फ़र्नीचर है, पर आज वह तरीके से जमा है, दीवार के बंगाली स्कूल के चित्र और वह निकोलस रोरिक के 'राजकुमारी का दहेज' की प्रतिलिपि, और आँखों पर पट्टी बँधी हुई Hope की तस्वीर सभी झाड़-पोंछकर नई की गई है, मेज़पोश बदला है, पर्दे के रिंग्स दूसरे हैं—और उस सब पर सरला के मन पर उत्सुकता और स्वागत का यह भाव!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजेन ने आवाज दी—सरला, और भीतर से उसने उत्तर दिया—अभी थोड़ी देर में आई। राजेन को लगा, जैसे वह गुसलख़ाने में बैठी, आँखें बन्द, ढेर का ढेर पानी अपनी अंजलियों में भर साबुन से भरे अपने चेहरे को छपक-छपककर धो रही है, और तब उसके मन में बिजली के समान चमका—'हाँ, यह वासुदेव !' जैसे फ़िलॉसफ़ी का कोई सूत्र उसकी समझ में आ गया—'वासुदेव ?' यह वासुदेव कौन है जो कमलाकान्त के साथ आ रहा है ? होगा कोई कमलाकान्त का मित्र, पर उसके अपने मित्र भी कई बार चाय पीते तो उसके यहाँ आते हैं, सरला के मुँह पर यह उत्सुकता और प्रतीक्षा उसने कभी नहीं देखी !

× × ×

इधर कमरे की घड़ी घड़ी ने टन्-टन् पाँच बजाये, उधर कमलाकान्त और वासुदेव ने कमरे में प्रवेश किया। यह बात नहीं कि इन दोनों में से कोई भी भला आदमी समय की नियमितता में विश्वास करता है। ये तो अकस्मात् ही ठीक समय पर चाय के लिए आ पहुँचे।

राजेन ने इनके अभिवादन का जवाब दिया, पहिले दोनों हाथ जोड़कर, तब अलहदा-अलहदा इनसे हाथ मिलाकर—कमलाकान्त ने वासुदेव का परिचय देने की ज़रूरत न समझी—और तब वह अपनी कुर्सी पर आ बैठा—चुपचाप—पर उसके भीतर का फ़िलॉसफ़र जाग-रूक हुआ—

वासुदेव में व्यक्तित्व है, गठीला शरीर है, साँवला चेहरा, नक़्शा सुन्दर, चेहरे पर एक चमक, आँखों में कान्ति है। उसके चेहरे पर भावशून्यता नहीं, जीवन है। जीता व्यक्ति है, रेशमी खद्दर का कुर्त्ता पहिने है, धोती भी बंगाली ढंग की है, कहना कठिन है कि इसका जन्म महाराष्ट्र के एक गाँव में हुआ—रहन-सहन में बंगाली और बोलचाल में उत्तरभारतीय संस्कृति की छाप है। प्राकृति और प्रकृति और बोलचाल का तरीक़ा राजेन को जँचा, पर उसने देखा इस युवक में निर्भीकता भी है, और यह उसमें के चिन्तक, अध्ययनशील, फ़िलॉसफ़र को विशेष अपील नहीं कर सका। यह व्यक्ति ऐसा नहीं है जो जीवन में निश्चल होकर बैठ सके। इसका जीवन तो अबाध गति होना चाहिये—उसमें का उठाईगीरापन, जिप्सी-भावना, राजेन स्पष्ट देख सका।

कमलाकान्त आशा के अनुकूल व्यक्ति है। एक बड़े बैरिस्टर के लड़के के संबंध में जैसी कल्पना की जा सकती है, वैसा वह है। लम्बा, दुबला, गोरा, हल्की नीली (Inivisible) धारियों का ग्रे सूट पहिने है, टूटल की लाल, बिन्दियों-दार, टाई लगाये। उसके साथ मज़े में ग्रेटा गार्बो और क्लार्क गेबिल, जॉन क्राफ़र्ड और लायनल बैरीमूर के संबंध में रहस्यपूर्ण बातें की जा सकती हैं।

राजेन इन लोगों के प्रति उदासीन है। नंगे पैर, एक ढीला-ढाला सूट पहिने, क़मीज़ का गला खुला, सिर के बाल रूखे और बिखरे, वह अन्यमनस्क-सा सोफ़े पर बैठा है। उसकी उदासीनता का एक कारण यह हो सकता है कि अभी तक उसे चाय नहीं मिली है। यूनीवर्सिटी से लौटने पर जब तक वह अपनी शाम की चाय समाप्त नहीं कर लेता, तब तक वह किसी भले आदमी से बात करने के क़ाबिल नहीं होता—हाँ, नौकरों को डाँटने के लिए यह मौक़ा अच्छा होता है। उसकी उदासीनता आदत की उदासीनता है, स्वभाव की नहीं। उस शुष्क आवरण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के पीछे एक अतीव कोमल हृदय छिपा है, यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। राजेन के हृदय में मानवी दया का अनंत निर्झर बहता रहता है।

पर, जब तक सरला न आ गई, ये तीनो व्यक्ति दूर दूर ही रहे। सरला हल्के आस्मानी रंग की खादी सिल्क की साड़ी पहिने थी, जिस पर बड़े-बड़े सफेद फूल बने थे। उसके चेहरे पर प्रफुल्लता थी। चाल में जीवन। राजेन शीघ्र जाकर हाथ-मुँह धो आया, बाल ठीक किये। चाय आई और तब पार्टी जमी।

सरला उस पार्टी में मध्यवर्ती श्रृंखला का काम कर रही थी, इन तीनो पुरुषों में बड़ा अन्तर था—राजेन आधुनिक साहित्य और राजनीति, समाज-शास्त्र और विज्ञान की बातें कर सकता था, जब तक बर्टेण्ड रसल और बर्नर्ड शा न हों तब तक जैसे उसका काम ही न चलता हो—हलके मज़ाक़ों से उसे अरुचि थी। वासुदेव का मन देश के नेताओं में रमता था, जैसे निकट वर्तमान ही उसका जीवन हो, गांधी ने कब क्या कहा, और जवाहरलाल सभा का संचालन कैसे करते हैं। उधर, कमलाकान्त से आप यू० पी० के विश्व-विद्यालयों और हॉलीवुड की ऐक्ट्रेसों की बात ही कर सकते थे।

सरला जैसे इन तीनो के बीच में आ गई, मानवता का सूत्र-सा बनकर वह इन तीनो के स्नेह का केन्द्र जो थी! एक की पत्नी, दूसरे की बहन और तीसरे की मित्र। तीनो का व्यक्तित्व उसका माध्यम लेकर एक दूसरे में घुल-मिल रहा था, तीनो उसके द्वारा एक दूसरे में गुँथते जा रहे थे।

सरला चाय के प्याले तैयार करके उन लोगों को देती गई, राजेन ने केक व मिठाइयों की रकाबियाँ आगे सरकाईं, और दो घंटे तक खूब चाय पी गई। और बात-चीत होती गई। चाय पर सभी विषय सामने आये, मानसिक क्रियाशीलता पर राजेन के संक्षिप्त भाषण बीच-बीच होते रहे, हमें intellectually curious और wel-informed रहना चाहिए। संसार में हम जो करते हैं वह महत्व की चीज़ नहीं, जो सोचते हैं वह असली बात है। विचारों में ही संसार का इतिहास साँस लेता है। विचारों के बाहर क्या है! हम क्यों न अपने-आप को संसार की प्रगतिशील विचार-धाराओं के संपर्क में रखें!

देश के नेताओं की थोड़ी-सी व्याख्या भी रही। गांधी जब आनन्द-भवन में ठहरे थे तब उन्होंने किस बात पर आधा घंटे तक मीरा बहन को डाँटा था, जवाहरलाल जब फ़ैज़ाबाद में राष्ट्रीय झंडा खोल रहे थे तब बड़े अरमानों के साथ एक बुड्ढा एक माला लेहर उनके गले में डालने आया, और उन्होंने उसे किस प्रकार धक्का देकर अलहदा कर दिया। आचार्य कृपलानी के थोड़े-से मनोरञ्जक चुटकुले दोहराये गये। अबुल कलाम आज़ाद और दूसरे नेताओं पर बहस हुई।

लखनऊ और प्रयाग के विश्वविद्यालयों में कौन श्रेष्ठ है, इस पर आज ग्यारहवीं बार फिर कमलाकान्त और राजेन के बीच थोड़ी नोंकझोंक रही। बातचीत में सब तरह के विषय आये। सब सरला का आधार पाकर, उसमें प्रतिध्वनित होकर, फिर से नवीन हो उठे, और हर एक में सबने रस लिया।

सात बजे राजेन ने उठकर कमरे का तेज़ नीला बल्ब जलाया। कमलाकान्त ने घड़ी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखी, वासुदेव ने रूमाल से मुँह पोंछा, और वे दोनो भी उठ खड़े हुए। इन्हें किसी मित्र के यहाँ खाना खाने जाना था। बड़ी हँसी-खुशी में पार्टी बिखरी। राजेन और सरला इन लोगों को दरवाजे तक पहुँचाने गये। तय पाया कि कमलाकान्त और वासुदेव नौ बजे तक लौट आयेंगे, और तब पैलेस चला जायगा। फाटक के सामने, दूर, पेड़ों के पीछे, पूनों का बड़ा पीला चाँद निकल रहा था।

कमलाकान्त और वासुदेव के चले जाने के बाद राजेन कुछ देर उस पीले बड़े चाँद की ओर देखता रहा। वह लौटा नहीं, 'सरला, मैं ज़रा घूम आऊँ। खा बहुत लिया है।' सरला लौटी। राजेन्द्र सीधा त्रिवेणी की ओर चला। दो घंटे की चहल-पहल के बाद उसके मन में एक विचित्र सूनापन-सा प्रवेश करता जा रहा था। त्रिवेणी का रास्ता प्रायः जन-शून्य था। गर्मी की लम्बी सन्ध्या में मिलकर चन्द्रमा का प्रकाश धुँधला पड़ा हुआ था। प्रकृति के उस विशाल सूनेपन में राजेन एकाकी, विचार-शून्य, थका, निष्प्रभ चला जा रहा था। त्रिवेणी तक गया। वहाँ कुछ देर जूते उतारकर पैरों को गंगा में धोया, और जब लौटा तब हृदय पर और भी अधिक बोझा लेकर, और भी अधिक थका, और भी अधिक निष्प्रभ, और भी अधिक चेतना-शून्य। पलंग पर पड़ रहा। बोला—सरला, मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं सिनेमा नहीं चलूँगा। सरला पर बज्र-सा पड़ा, पर वह बहुत भावुक नहीं बनी। नौ बजे कमलाकान्त और वासुदेव की कार फाटक पर आ लगी, और सरला एक खादी की सफ़ेद साड़ी पहने, उदास पर दृढ़, गाड़ी में जा बैठी। वासुदेव ने पूछा—'राजेन्द्र नहीं आ रहे हैं?' सरला ने उत्तर दिया—नहीं, तबीयत ठीक नहीं है, थके हुए हैं। और गाड़ी पैलेस की ओर चल पड़ी।

× × ×

कमलाकान्त दूसरे दिन लखनऊ लौट गया, पर वासुदेव वहीं रहा। यह कहना कठिन था कि वह प्रयाग में क्यों रहा। वासुदेव निकट वर्त्तमान का प्राणी था। वह रोज घंटों आपके साथ बैठकर बातें कर सकेगा, पर आप उसके भूत और भविष्य के बारे में कुछ न जान सकेंगे। निकट वर्त्तमान में वह ख़ूब मनोरंजक है। उसकी वाणी में जीवन है, और इसी कारण उसकी साधारण बात-चीत भी मन को मुग्ध कर लेती है।

राजेन और सरला ने तो उसे जब देखा खूब फ़ुरसत में देखा, वह अपने एक मित्र के यहाँ पड़ोस में ही नये कटरे में, ठहरा हुआ था। सवेरे चाय पीकर चला आता! नियमित रूप से ही राजेन और सरला के साथ एक प्याला चाय पीता, तब राजेन अपनी 'स्टडी' में घुस जाता और वासुदेव और सरला बड़े विश्वस्त ढंग से घंटों बैठकर बातें करते रहते। कभी सरला स्टोव उठा लाती, और उस पर वहीं बैठकर कुछ चीज़ें पकाने लगती। राजेन के लिए तस्तरी सजा-कर उसके अध्ययन-कक्ष में पहुँचा दी जाती। वासुदेव और सरला बैठक के कमरे में बैठकर खाते, बातें करते और बीच-बीच में वासुदेव का विकट हास्य या सरला की खिलखिलाहट गूँज उठती।

यह हँसी या खिलखिलाहट बीच के एक छोटे कमरे को पारकर राजेन के 'स्टडी' में पहुँचती, और वह एक क्षण के लिए न जाने क्यों विचलित-सा हो जाता। उसकी फ़िलॉसफ़ी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की किताब बन्द हो जाती, क़लम ढीला पड़ जाता, और वह न जाने किस उलझन में डूब जाता। कभी-कभी वह किताबें बन्द कर बाहर चला जाता और इन लोगों की बातचीत में शामिल हो जाता, पर उसका मन उड़ा-उड़ा रहता था। किसी मज़ाक पर जो उसने सुना भी नहीं था, जब वासुदेव और सरला को हँसते देखता, वह भी मुस्कराने की चेष्टा करता, उस समय उसके चेहरे पर एक विचित्र दयनीय भाव जागृत हो जाता।

सरला में धीरे-धीरे बड़ा परिवर्त्तन होने लगा। वह जैसे फिर शैशव की ओर लौट चली हो। उसकी मुस्कराहट चौड़ी, आँखें अधिक चमकदार और बातचीत प्रखर होती चली। शरीर से कुछ अधिक स्वस्थ और मन से हल्की लगती थी। उसके जीवन में एक नया आनन्द प्रवेश करता जा रहा था। क्यों, यह वह नहीं जानती थी।

वह कभी-कभी यह सोचती ज़रूर थी कि राजेन में क्यों परिवर्त्तन होता जा रहा था। वह क्यों अधिक चिन्तित, विक्षुब्ध और गंभीर होता जा रहा है। कभी-कभी उसके मन में उठता है कि संभव है वासुदेव इसका कारण हो, पर उसका निर्दोष मन इस विचार को अधिक देर तक नहीं रख सकता था। वह खिलखिला उठती, और इस बात को भूल जाती।

वासुदेव का आना कम नहीं हुआ, बढ़ता गया, देश में राजनीति की गर्मी भी बढ़ती गई। वासुदेव कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शामिल होने लाहौर गया, फिर लौट आया। उसके बाद के राजेन के ड्राइंग-रूप में बातचीत का दौर और भी बढ़ता गया। वर्त्तमान राजनीति की छोटी-छोटी घटनाओं पर बहस की जाती। स्वाधीनता दिवस फिर दांडी-यात्रा और तब नमक-कानून का भंग, देश में एक के बाद एक सनसनीदार घटनाएँ होती गईं और इन सब में वासुदेव का रस बढ़ता गया, और उसके साथ सरला का उत्साह भी, भावुकता और आलस्य के लिए किसी के पास फ़ुर्सत नहीं थी। उन तूफ़ानी दिनों में जब व्यक्ति के जीवन की अभिव्यक्ति राष्ट्र के जीवन में हो रही थी, प्रेम और भक्ति की बातें कौन सोचता? सरला को यह क्या पता कि वह अनजाने ही राजेन से दूर और वासुदेव के नज़दीक खिंचती जा रही है?

राजेन ने भी यह बात कभी खोलकर उसके सामने नहीं रखी। राजेन स्वयं भी इस बात को जानता था या नहीं, सरला नहीं कह सकती। वासुदेव प्रायः आया-आयाथा और ये लोग एक दूसरे से अधिक मिलने लगे थे, तब राजेन के मन में एक विवाद ज़रूर उठा था, पर शायद वह गहरा न हो पाया। ज्यों-ज्यों ये लोग राजनैतिक आन्दोलन में पड़ते गये, राजेन अपनी डॉक्टरेट की तैयारी में लगा। इन दिनों उसे अपने थीसिस और टाइपस्क्रिप्ट से फ़ुरसत न थी। अन्तिम कुछ पृष्ठ रह गये थे, उधर, प्रारम्भ का हिस्सा दोहराना था। टाइपस्क्रिप्ट उसे ही पढ़ना पड़ता था।

इस सतत कार्यशीलता के पीछे क्षोभ या तो मिट गया था या उसे चीरकर ऊपर नहीं आ पाता था। बहुत सवेरे चाय पीकर राजेन अपनी 'स्टडी' में घुस जाता। बस, वही उसके सरला के थोड़ा-सा बातचीत करने का समय था। रात को सरला देर से लौटती, तब भी राजेन को कमरे की बत्ती जलाये, टाइपस्क्रिप्ट दोहराते और दुरुस्त करते पाती, उससे अपनी दिन भर की चर्या, पिकेटिंग की सरगर्मी, मीटिंग्स में जवाहरलाल और पुरुषोत्तमदास टण्डन और वासुदेव के भाषणों का संक्षिप्त विवरण देती, दूध के कप में ओवलटीन मिलाते हुए। राजेन थके चेहरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर मुस्कराहट लेकर उसकी बातचीत सुनता और दरवाज़े से निकलती हुई सरला को 'गुड नाइट' कहकर फिर अपने काग़ज़ों पर झुक जाता।

× ×

और तब एक दिन ऐसा हुआ कि सरला और वासुदेव दोनो बड़ी देर से लौटे, पैदल, जनशून्य सड़कों को पारकर, और घर के ड्राइंग-रूम में आ बैठे। रात के साढ़े बारह बज रहे थे। उन्होंने देखा, राजेन के अध्ययन-कक्ष की रोशनी अभी भी जल रही थी। सरला झाँक आई—राजेन रोज़ की तरह, एकाग्र, टाइपस्क्रिप्ट पर झुका हुआ है, और तब फिर बातचीत में लगी। सरला और वासुदेव की बातचीत दिन पर दिन अधिक महत्त्व की होती जा रही थी। नगर के प्रमुख नेता एक के बाद एक गिरफ़्तार हो गये थे, और अब वासुदेव ही डिक्टेटर था। सरला से इस जिम्मेदारी को लेने की प्रार्थना की गई थी, पर इसी ड्राइंग-रूम में बैठकर एक दिन पहिले वासुदेव ने उससे कहा—तुम्हारे बाद यह भार मुझ पर पड़ेगा। तब मैं फिर प्रेरणा किससे लूँगा? सरला, पहिले मुझे चला जाने दो। तब तुम आगे आना। और सरला इस बात को मान गई थी।

इस समय ये लोग बैठकर अगले दिन के कार्यक्रम की बातचीत कर रहे थे। वासुदेव सोचता था कि अहिंसात्मक सत्याग्रह में भी अक्लमन्दी तो काम में लाई ही जा सकती है। क्यों न अब गिरफ़्तारियों की इस बाढ़ को रोका जाये, और थोड़ा आंतरिक संगठन कर लें, और तब फिर आगे बढ़ें। वासुदेव को इस बात की शंका तो न थी कि कोई उसके साहस में संदेह करेगा। जनता को उसके साहस और त्याग दोनो में ही विश्वास था। वह जानती थी कि आवश्यकता पर, अपनी आत्मा के अलावा कोई चीज़ ऐसी न थी जो वासुदेव कुरबान न कर सके। वासुदेव ही ऐसा व्यक्ति था जिसके संबंध में जनता का ऐसा गहरा विश्वास था। इसीलिए वह इस विश्वास को थोड़ा ख़तरे में डालने का साहस भी कर सकता था। सरला की राय इसके विपरीत थी। वह मानती थी कि सत्याग्रही को आगा-पीछा सोचने की ज़रूरत नहीं है। वह तो क़ानून तोड़े, और जेल जाये। संगठन अपने-आप होगा। जहाँ सत्य है वहाँ असफलता कैसी! सरला यह मानने के लिए तैयार नहीं थी कि सत्य-मार्ग का अनुगामी होने के साथ आदमी को व्यावहारिक भी होना चाहिये।

कोई डेढ़ बजे तक यह बातचीत चलती रही, और तब अपने स्वस्थ शरीर को एक भारी कम्बल से लपेटकर वासुदेव चल दिया।

सरला वैसे ही बैठी रही।

उसे कांग्रेस का बुलेटिन तैयार करना था। दिन भर के समाचार एक ओज-पूर्ण भाषा में उसने लिखे, उन्हें दोहराया और तब विश्राम के लिए कोच पर हाथ का थोड़ा-सा सहारा लेकर लेट-सी गई। राजेन के कमरे में वैसे ही लैम्प जल रहा था। उसे थोड़ी झपकी-सी लगी।

और तब देखा कि राजेन मोटा काला लबादा पहने उसके नज़दीक चला आ रहा है, पर उसकी आँख नहीं खुली। राजेन ने उसके बिखरे हुए बालों को झकझोरकर जगाया। सरला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चौंककर उठ बैठी। राजेन ख़ाली की हुई जगह पर बैठ गया। बोला—सरला, मैं तुम से बात करना चाहता हूँ।' उसके गले में ख़राश सी थी।

सरला भौचक्की-सी उसकी ओर देखती रह गई। उसकी आँखों में मनों नींद भरी थी।

राजेन बोलता गया—सरला, मैंने तुम्हारे साथ कौन-सी बुराई की है जो तुम मुझे इस प्रकार कष्ट दे रही हो?'

सरला और भी भौचक्की-सी। उसकी आँखें और भी निद्रामग्ना—

अपनी साड़ी का पल्ला सँभालती हुई वह उठ खड़ी हुई, जिससे राजेन की बात को और भी ध्यान से सुन सके। भाव से मानो कह रही है, 'तुम्हारी बात मैं समझी नहीं।'

और राजेन जैसे बड़े विरोध की आशंका करके आया था, और इसीलिए इतना नम्र, विनीत-सा था, और अब सरला अवश, अबलापन को देखकर साहस संग्रह कर रहा है—मैं तुम्हारे जीवन से बिल्कुल संतुष्ट नहीं हूँ। मैंने तुम्हें अधिक से अधिक स्वाधीनता दी, पर मैं देखता हूँ, तुमने उसका दुरुपयोग ही किया। तुम्हारे काम में मैंने कभी बाधा नहीं डाली। तुमने जो करना चाहा, मैंने बिना रोक-टोक के तुम्हें करने दिया। तुम्हारे कामों से मुझे धक्का लगा, मैंने उसे बर्दाश्त किया। मैं चुप रहा, सहता रहा, तुमसे एक लफ़्ज़ भी नहीं कहा। तुम्हारे कारण मैं रात-रातभर जागता रहा हूँ, मेरी तन्दुरुस्ती गिरती रही है। मैं एक भट्टी में जलता-सा रहा हूँ...

इस बार सरला ने अपने भाव को शब्दों में रखा—आपकी बात मैं नहीं समझी।

और इस बार राजेन ने गरज कर कहा—मैं चाहता हूँ, तुम वासुदेव से क़तई मत मिलो।

सरला का मुँह लाल, तमतमाया हुआ, वह जैसे इस बात की बिल्कुल भी आशा नहीं कर रही है। राजेन के लिए उसके मन में श्रद्धा थी, अब जैसे ईंटों के ढेर के समान ज़मीन पर आ बैठी हो। वह जानती थी कि राजेन उसके राजनैतिक काम में बाधा देगा। वह नहीं जानती थी कि उसके मनमें इतना बड़ा दुर्बल प्राणी है। इस महान् 'विचारक' का मन छोटी-छोटी बातों में इतना डूबा है, इसकी उसे आशंका नहीं थी।

सरला ने गंभीरता से कहा—अपनी भावनाओं पर से इतनी जल्दी नियंत्रण उठा देने की ज़रूरत नहीं है, राजेन! आओ, बैठकर थोड़ा गंभीरता से इस बात को सोच डालें।

राजेन रोष में था। बोला—मैं कुछ भी सोचने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं सिर्फ़ एक बात कहना चाहता हूँ। तुम वासुदेव से मिलना क़तई बन्द कर दो।

सरला ने सफ़ाई-सी देते हुए कहा—देश का काम...।

'वह सब ढोंग है।'—राजेन की आँखें गुस्से से लाल थीं।

सरला कुछ हँसी। बोली—यह नहीं हो सकता।

'यह नहीं हो सकता!'—राजेन गरजा—मैं देखता हूँ, कैसे नहीं हो सकता। उसने मेज़ पर से एक किताब उठाई, और ज़ोर-ज़ोर से सरला के घने बालों पर मारना शुरू किया। तब उसके हाथ में एक रूलर आ गया। उससे बड़ी देर तक पीटा। और तब भी जब सन्तोष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं हुआ तो उसकी पीठ पर एक-दो लातें जमाईं। सरला चुपचाप, उसकी आँखों में एक बूँद आँसू नहीं। राजेन कुछ देर और गुस्से से अपने जबाड़े में काँपता हुआ सरला की ओर गुस्से से घूरता रहा, और तब फिर अपने पढ़ने के कमरे में घुस गया।

सरला कुछ देर मौन बैठी रही। तब, जाड़े की रात के उस पिछले पहर में बराण्डे की सीढ़ियों पर पैर लटकाकर जा बैठी। बड़ी देर तक उसका मन एक विराट् शून्यत्व का भाव लिये रहा, जैसे आँधी के पहिले वातावरण में सन्नाटा रहता है, और तब वास्तविक अंधड़ टूट पड़ा।

'यह राजेन की वाणी में कौन बोल रहा था, फ्रॉयड या जेग या एडलर, या वह राक्षस जो देवता के गले में हाथ डाले प्रत्येक मनुष्य के हृदय में छिपा हुआ है। राजेन ने मेरे और वासुदेव के संबंध में किसी प्रकार की शंका ही क्यों की? क्या हमारे संबंधों में काफ़ी पवित्रता नहीं है? कब हम आत्मा की सतह से नीचे उतरकर शरीर में एक दूसरे से मिले हैं?'

और धीरे-धीरे उसके मन में वासुदेव के संबंध की अपनी पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं। बरसों पहले जब वह इसाबेला थोबर्न में पढ़ती थी, और गर्मी की छुट्टियाँ अपने घर पर बिता रही थी, वह वासुदेव के नज़दीक खिंची थी। उसके पौरुष, और उससे अधिक उसकी निर्भीकता ने उसे आकर्षित किया था। वासुदेव भी न जाने क्यों उसकी ओर खिंचा था। चाँदनी रातों में लखनऊ की सड़कों पर वह और वासुदेव एकाध बार घूमे भी हैं। वासुदेव की कठोर उँगलियाँ एक बार उसकी उँगलियों में आकर गुँथ भी गई थीं। केवल उस घड़ी वासुदेव के ओठों ने उसके ओठों का स्पर्श भी किया था। इस सबके पीछे क्या था, प्रेम या Sex कौन जाने! पर, इसमें पाप कहाँ था? वे दोनो इसमें लिप्त कब हुए? उन्होंने कब अपने को एक दूसरे के शरीर में खोया?

और उसके बाद तो वासुदेव उससे कम मिलने लग गया था, और इस कम मिलने से वह खुश भी थी। यानी, जो क्षणिक भावनाएँ उनके मन में जागी भी थीं; उन्होंने उनसे संघर्ष किया था, और वे उनसे जीते भी थे, इन सब में पाप कहाँ था?

और तब एकाएक वासुदेव दक्षिण चला गया था, और वहाँ सुशीला नाम की किसी महाराष्ट्र-लड़की से उसकी शादी भी हो गई थी। वह लखनऊ अकेला ही लौटा था। शादी के बाद ही सरला से मिला था, और उसे अपनी डायरी के कुछ पृष्ठ सुनाये थे। उनमें विवाह के प्रति असंतोष था। सरला उन्हें सुनकर दुःखी हुई थी, पर उन दिनों स्वयं उसकी शादी की बातचीत चल रही थी। एक-दो महीने बाद उसकी शादी हो भी गई, और वह इलाहाबाद चली आई।

वासुदेव जब से इलाहाबाद आया था, तब से उनके संबंधों में किसी प्रकार की अपवित्रता की बात तो सोची ही कैसे जा सकती है। वे दोनो एक दूसरे के प्रति स्नेहशील रहे। पर स्नेह क्या पाप है? और, जिस सतह पर वह पाप हो जाता है, उस ओर वे लोग झुके ही कब? दोनो, घंटों, दिनों, हफ़्तों, एक दूसरे के नज़दीक रहे, बिल्कुल पास-पास, पर एक विशाल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सार्वजनिक आन्दोलन की उत्ताल लहरों में डूबते-उतराते ? उन्हें कब फ़ुर्सत मिली है कि अपने हृदय में एक दूसरे के प्रति भावप्रवणता को स्थान दें ?

इस विशाल आन्दोलन में ही वे एक दूसरे के नज़दीक आये हैं ; पर आन्दोलन न होता तो भी वे एक दूसरे के नज़दीक इसी प्रकार, पवित्रता की इसी सतह पर खिंचते तो क्या पाप था ? वे जानते हैं, पाप क्या है, और उस पर सतर्क रह सकते हैं ? कोई दूसरा व्यक्ति क्यों बीच में पड़कर उनके बीच जो पवित्रता का सूत्र है उसे अपनी शंका की कुल्हाड़ी से काटने की कोशिश करे ?

वह दूसरा व्यक्ति चाहे कोई हो, पति ही क्यों न हो। पति भी तो बाहर की ही चीज़ है, हिन्दू-शास्त्र चाहे कुछ भी कहें। पति को क्या यह अधिकार है कि वह पत्नी की भावनाओं के लिए नियमावली तैयार किया करे ?

और भावनाओं के लिए सख़्त, संकुचित, अटूट नियम कौन बना सकता है ? पति और पत्नी, भाई और बहिन, पिता और पुत्री के अलावा बीच के कोई संबंध नहीं हैं ? मानवी हृदय को इन प्रचारग्रस्त रूढ़ियों से क्यों बाँधा जाना चाहिये ?

राजेन ने उसे स्वाधीनता दी है। सचमुच उसने कभी उसके किसी काम में बाधा नहीं डाली। आज वह बाधा डालने चला है तो केवल इसीलिए कि वह दुःखी है, और सरला पर अपना अधिकार मानता है, पर पुरुष यदि स्त्री को स्वाधीनता दे तो मकान की चोटियों से इस बात का ऐलान करने की ज़रूरत क्यों समझे ? और उसे वापिस लेने का अधिकार भी क्या है ? क्या वह स्वाधीनता स्त्री का मानवी अधिकार नहीं है ?

राजेन दुःखी क्यों है ? सरला ग़लत रास्ते पर है तो उसे खुद दुःख होना चाहिये। पर उसे दुःख नहीं है। वह देखती है कि जब से वासुदेव उसके जीवन में आया है, वह सवेरे की हवा और ताज़गी और प्रकाश लेकर आया है ? उसके जीवन में एक नया आनंद है। वह पूर्णता की ओर बढ़ चली है। वासुदेव ने उसके जीवन को धनी बनाया है। वह उसका तिरस्कार कैसे करे ? जीवन की पूर्णता ही क्या सबसे बड़ी चीज़ नहीं है ? उसके लिए कौन-सा बलिदान छोटा है ? पति की ग़लत इच्छाएँ क्या जीवन की पूर्णता से बड़ी वस्तु है ?

और सरला धीरे-धीरे एक निश्चय पर पहुँचती गई—वह राजेन की आज्ञा नहीं मानेगी। व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़े होना होगा। वह राजेन के यहाँ उसके स्नेह का पात्र, उसके जीवन की संगिनी बनकर रह रही है, उसकी इच्छाओं की गुलाम बनकर नहीं। वह विद्रोह करेगी। आत्मा बेंचकर वह इस घर में नहीं रहेगी। राजेन उसे रखना चाहता है तो वह उसके व्यक्तित्व को कुचलकर नहीं रख सकेगा। उसके विकास में वह कोई बाधा नहीं डाल सकेगा, उसके जीवन की पूर्णता के रास्ते में नहीं आने पायेगा।

काला अँधेरा आकाश भूरा हो चला। तारे एक के बाद एक बुझते जा रहे थे। सरला अपने बराण्डे की सीढ़ियों पर ही बैठी थी, जब सवेरा फूट चला। अब उसके शरीर में एक विचित्र आह्लाद, आनंद भर गया था। उसे अपनी समस्या का निदान मिल गया था। वह खुश थी। निदान इस विशाल सार्वजनिक आंदोलन में मिला था उसकी आत्मा के मन्थन में, कौन जाने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर वह उसे अपने जीवन में संपूर्ण उतार लेने के लिए कटिबद्ध हो गई थी। वह इस निश्चय पर पहुँच गई थी कि जहाँ वह रहेगी, जिस जगह वह खड़ी होगी, रानी बनकर रहेगी। उसके मनुष्यत्व को कोई ठुकरा नहीं सकेगा। सरला ने अपने बालों को पूरा खोल डाला, उन्हें कमर पर डालकर सिर को कई बार हिलाया, बाग़ में थोड़े से फूल चुने, और ओठों में एक वक्र मुस्कराहट छिपाये नौकर से कहती हुई, 'देखो, दो अच्छे चाय के कप तैयार करो, वासुदेव बाबू आनेवाले हैं' नहाने के कमरे में घुस गई।

इन्दौर।

वह रेखा

(गद्य-गीत)

['मृत्युञ्जय']

ज्यों-ज्यों तरी आगे बढ़ती है, उसके डाँडों की बनी लकीर सरिता के जल की गति में अपना अस्तित्व खो बैठती है।

केवल डाँड के साथ कुछ दूर तक वह दिखाई पड़ती है। और उसके बाद—

सरिता का जल उसे निजत्व में सम्मिलित कर एकाकार हो जाता है।

ज्यों-ज्यों घोर अन्धकारपूर्ण बीहड़ अरण्य से निकल, पथिक प्रकाश की ओर बढ़ता है, उसके मानस-पट से विभीषिका की रेखायें लुप्त हो जाती हैं—कुछ क्षण पश्चात् ही!

और मानव,

ज्यों-ज्यों अमरत्व की ओर बढ़ना चाहता है, बढ़ता है, विश्व की भौतिकता उस जल-रेखा-सी अदृश्य हो जाती है। वह बढ़ता जाता है। पीछे फिरकर नहीं देखता—

और उसके पद-चिन्ह अनन्त में मिल जाते हैं—कुछ काल बाद, कहीं भी कुछ नहीं रहता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वर्गीय गिजुभाई के संस्मरण

[हरभाई त्रिवेदी]

स्वर्गीय गिजुभाई ने अपनी साहित्य-सेवा का कार्य कविताएँ लिखने से प्रारम्भ किया था, इसका पता बहुत थोड़े लोगों को होगा। कौटुम्बिक परिस्थितियों के कारण उन्होंने कॉलेज के प्रीवियस का वर्ष समाप्त करके कॉलेज छोड़ा और जीविकोपार्जन की इच्छा से उन्हें आफ्रिका जाना पड़ा। उनके लेखों में भाषा की जो सुन्दरता आज दिखलाई पड़ती है, उसका बीज उस समय के उनके खानगी पत्रों में तथा उनकी छोटी-छोटी कविताओं में पाया जाता था। अफ्रीका से उन्होंने अपनी पत्नी को जो भाव-पूर्ण पत्र लिखे थे, उन पत्रों में उनके भावी-जीवन की झाँकी, अनूठी शैली में देखी जा सकती है। उनके जीवन का आदर्श उन दिनों कोई स्थिर नहीं हुआ और बाद में किसी आदर्श को स्थिर करने में उनके हृदय में एक प्रकार का द्वन्द्व होने लगा। उनकी कविताओं में भाषा का मार्जन, विचारों की स्पष्टता और वास्तविक जीवन को उन्नत करने की अभिलाषाएँ किसी भी पाठक को दिखाई दिये बिना नहीं रह सकतीं। उन्होंने अपना 'विनायक' उपनाम रख लिया था। 'सुन्दरी सुबोध' नामक मासिक पत्र के पुराने अंकों में उनकी इस प्रकार की कुछ कविताएँ अवश्य देखने को मिलेंगी।

साहित्य से उन्हें बड़ा प्रेम था। खूब अध्ययन और खूब लिखने का और विद्वानों के सत्संग में रहकर अनुभव प्राप्त करने की उनके हृदय में बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी। इस महत्त्वाकांक्षा को सिद्ध करने के लिए मनन और गंभीर अभ्यास करने की उन्हें आदत थी। आर्थिक परिस्थितियाँ उन्हें नौकरी की ओर खींचने लगीं। पर यह समझकर कि नौकरी में रहकर मनुष्य और दूसरे कार्य नहीं कर सकता, उन्होंने वकालत का अभ्यास करके वकील का धंधा स्वीकार करना उचित समझा; किन्तु कानून की पुस्तकें तैयार करते समय और कई बड़ी धाराओं की खोज करते समय साहित्य-सृजन की उनकी आकांक्षा उत्पन्न हुए बिना न रहती। यदि वे आर्थिक परिस्थितियों के कारण वकालत के धंधे में न पड़ते तो आज के प्रथम श्रेणी के लेखकों की पंक्ति में हम उन्हें देख सकते। उन दिनों उनके साहित्य-प्रेम ने कितने ही मित्रों को आकर्षित किया था। वह जहाँ बैठते, वहाँ साहित्य-चर्चा का वातावरण हो जाता और साहित्य-प्रेम के कारण उत्कण्ठित मित्रों की मंडली जमा हुआ करती। उन्होंने शिक्षण का धंधा स्वीकार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किया और फिर उनके मनोरथ जाग्रत हुए और तब उन्होंने जो साहित्य रचा, वह साहित्य विद्वानों का नहीं था, उसका सृजन बालकों के लिए हुआ, माता-पिताओं के लिए हुआ और हुआ शिक्षकों के लिए। गिजुभाई साहित्यकार बने थे—ध्येयलक्षी साहित्यकार।

× × ×

बालकों के लिए साहित्य रचने में प्रयत्न करते समय उन्होंने छोटी-छोटी स्वतंत्र कहानियाँ लिखीं। 'बाल-मन्दिर' में मॉन्टीसरी पद्धति के प्रसार होने के थोड़े ही बाद प्राथमिक शाला की शिक्षा का भार उन्होंने ग्रहण किया। इस समय किशोर-वयस्क बालकों के लिए कहानियाँ लिखना उन्होंने बन्द कर दिया। जिन दिनों मैं कालेज में था और गिजुभाई वकालत करते थे, उस समय कविताओं की पद-पूर्ति करते और छोटी-छोटी कहानियाँ हम लोग रचा-बचाकर करते थे। एक समय मैंने पति-पत्नी पर एक छोटी-सी कहानी लिखी। जिसमें मेरे जीवन की झलक थी, गिजुभाई ने हमारी छोटी-सी मित्र-मंडली में उसका बड़ा उपहास किया। हम फिर से दक्षिणामूर्ति की भूमि पर जीवन का नाटक खेलने इकट्ठे हुए। यहाँ मैं गिजुभाई से शिकायत किया करता कि जिस तरह आप छोटे बालकों के लिए छोटी-छोटी कहानियाँ लिखते हैं, उसी तरह किशोरों के लिए भी कहानियाँ क्यों नहीं लिखते? किन्तु जिस कहानी को उच्च साहित्य कह सकें ऐसी कहानी उनकी कलम से नहीं निकल सकती। गिजुभाई में मौलिकता भरपूर थी। अपनी सृजन-शक्ति को लेकर जिस दिशा में जाते, उस दिशा में सफलता प्राप्त करते। उन्होंने बालकोपयोगी कहानियाँ लिखकर गुजरात में मौलिकता का समावेश किया। कहानी-लेखन और कहानी-वाचन साहित्य की दुनिया में काल्पनिक सृजन माना जाता है, यह ये नहीं मानते थे। खुद कहानी कहते-सुनते और लिखते। इसी आधार पर उन्होंने 'कहानी-कला' नाम का ग्रंथ रचा।

सरल शिक्षाप्रद और मौलिक साहित्य-रचना स्वयं ही जिसकी विद्वान् भी क़द्र करें यह उनका सिद्धान्त था। बालकों के साथ के, जिनके परिचय से साहित्य-सृजन की एकांगी प्रवृत्ति में से वे चिन्तन की ओर झुके। यह चिन्तन निष्प्राण और जड़ न रह जाय, इसके लिए उन्होंने हमेशा उसे जाग्रत जीवन के साथ जोड़ रखने का प्रयत्न किया। उनके 'प्रासंगिक मनन' में और 'शान्तपन में' इस तरह की कितनी ही रचनाएँ पाठक देख सकते हैं कि जिसमें मनुष्य-जीवन के तत्त्व की दृष्टि से देखने के प्रयत्न के साथ ही व्यवहार का मार्ग बतलाने का प्रयास भी पाया जाता है। इन दोनो पुस्तकों में धीर और प्रशान्त साहित्य पाया जाता है। लेखन-कला का आदर्श नमूना भरा हुआ है। और जीवन-पथ भूले हुए मनुष्य के लिए उसमें प्रकाश मिलेगा। उनकी दृष्टि जीवन के गुप्त आदर्शों का रहस्योद्‌घाटन करने के लिए जिस प्रकार हमेशा तत्पर रहती, उसी प्रकार प्रकृति में सौंदर्य खोजने और सौंदर्य में से प्राकृतिक रहस्य जानने भी हमेशा तत्पर रहते थे। एक समय सरल साहित्य-सृजन की धुन हुई और 'झाकड़ नो प्यालो' नामक सुन्दर लेख 'कौमुदी' मासिक में प्रकाशित करवाया। इस प्रकार विविध प्रकार की साहित्य-रचनाओं द्वारा हमें स्वर्गीय गिजुभाई की अनुपम प्रतिभा का पता चलता है।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तिम तीन वर्षों से स्वर्गीय गिजुभाई बहुत कुछ अन्तर्मुख बनते गये थे। सगे-संबंधियों की तरफ की मोह-ममता छूटती गई। कार्य में निष्कर्मवाद का समावेश होने लगा था और हृदय की गहराई में छिपी पड़ी शान्ति प्रवृत्ति प्रारम्भ हो चुकी थी। शरीर पर मोह धीरे-धीरे कम होता ही गया। शिक्षक की हैसियत से सात्त्विक अभिमान की जगह नम्रता का आधिपत्य था ही। अध्यापन-मंदिर के कठिन कार्य की कठोरता प्रेम के रूप में बदल गई। अपने पास जो कुछ ज्ञान है, वह सबके लिए है। यह उद्देश्य मानते हुए अपने अध्यापन-मंदिर के प्रवेश की कड़ाई उन्होंने कम कर दी। अपने शरीर की ओर लापरवाही का मैं उन्हें बहुत ख़याल दिलाता रहता था। पर मेरे कहने पर वे मुझे देखकर हँसते और चुप हो जाते। शिक्षण-शास्त्र के साथ मानस-शास्त्र के अभ्यास को प्रारम्भ कर देने से मैं उन पर खीझा करता। 'कई शास्त्रों के आधार पर आत्मा के शास्त्र की अब आवश्यकता हुई है—यह कहकर वे मेरे सामने शान्त होकर बैठ जाते। धीरे-धीरे उनके चिन्तन में से विवाद चला गया और तटस्थता आ गई। अभ्यास तो बहुत कर लिया था; पर उन्हें तो अब मनन की अत्यन्त आवश्यकता दिखाई देती थी। गिजुभाई चले गये, पर अपने साथ बहुत कुछ लेते गये। उनके जीवन का इतनी जल्दी अन्त न होता तो गुजरात को उनके द्वारा आज जितना मिला है, इसकी अपेक्षा बहुत अधिक अभी मिल सकता। वे जो कुछ लिखकर छोड़ गये हैं, वह इतना अधिक, विविध प्रकार का और ज्ञान-प्रद है कि भिन्न-भिन्न विभागों में बाँटकर विषय-वार इस साहित्य को जब प्रगट किया जाय तो व्यवसाय-धंधे में डूबा हुआ गुजरात आश्चर्य-चकित होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चिर-एकाकी

[वीरेन्द्रकुमार]

दूर-तरु-शिखर-डालों में—
वह मलिन-नील नभ झिल-मिल।
वे विरल पात, हिलते-डुलते-
हौले मन्थर,—सन्ध्यानिल में।
नीरव विषाद का निस्वन—
तम के अणु बिखराता—
कहता है कथा पुरातन।
पंछी एक उदास—
अकेला,
बैठा है निस्पंद डाल में;
स्तब्ध दिशाएँ करुण-मुखी
विधवा के परित्यक्त हृदय-सी।

× × ×

वहाँ वह घर की छत—
सुनसान,—
सुफेद कठघरोंवाली,
म्लान सान्ध्य-छाया में।
प्रकटी गृह-द्वार में—बाला कोई,
आँचल में दीप लिये;
धर दिया आले में,
खड़ी रह गई देहली में—
स्तब्ध-अचञ्चल—
हाथ गूथे पीछे को—
छायामयी रहस्यमयी!

पास के पीपल ने—
गहरी—
उसास भरी;
आई सान्ध्य-वायु-लहरी,
बहा लाई—
उच्छ्वसित कातर स्वर—
गीत का अधूरा-सा।
चिर एकाकी मन मेरा—
भींग गया, रुँध गया।

× × ×

उस गृह-कक्ष में—
मन्द आलोक में—
एक छाया डोलती थी—
व्यथित,—विषाद-भरी।
वहाँ तरु-मर्मर में—
पंछी अकेला वह—
खो रहा तमिश्रा में;
मैं अपनी खिड़की पर—
बिछोही चिर-काल का!
वहाँ सूने कक्ष में—
वह अजान सजल दृष्टि—
आकुल-सी ताक रही,
पश्चिम में उग रही—
पीत सान्ध्य तारा को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहानी

[ब्रजमोहन गुप्त]

कहानी और उपन्यास को उनके शैशव-काल में हलके साहित्य में स्थान मिला था, और तभी से दोनो कन्धे-से-कन्धा मिलाकर उच्चतम और गहनतम साहित्य में महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते आ रहे हैं।

आरम्भ में कहानी, मानव-जीवन की अनुभूतियों के चित्रण तथा हृदय की भावनाओं के अभिव्यक्ति कारण के साधन की अपेक्षा मनोरंजन ही की वस्तु अधिक थी—हम कह सकते हैं, उस समय वह एक मात्र मनोरंजन की वस्तु थी। तब मस्तिष्क को उलझाये रखने के लिए घटना-वैचित्र्य की आवश्यकता होती थी; और उसमें अप्राकृतिक तथा अस्वाभाविक घटनाओं का समावेश अनुचित नहीं समझा जाता था।

हृदय के अधिक गहरे कोनों के साथ सम्बन्ध होने के साथ-साथ वास्तविक मानव-जीवन के अधिक निकट आने की साधना कहानी ने आरम्भ की और चरित्र-चित्रण का उसमें प्रादुर्भाव हुआ। तब हमने अनुभव किया कि कहानी के पात्र भी हमारी ही भाँति सुख-दुख का अनुभव करते हैं, हँसते-रोते हैं; उनकी भी अपनी समस्याएँ हैं, उनका भी अपना निजी व्यक्तित्व है। हमने अनुभव किया, कहानी-वातावरण के नीले आकाश में उड़ते अरुण बादलों के काल्पनिक सुनहले जगत् का एक कोना, हमारे दैनिक जीवन के कठोर पृथ्वी-तल को भी छूता है—

वह हमारे वास्तविक जगत से सर्वथा अतीत, सर्वथा असम्बद्ध नहीं है। इस समय भी कहानी मानव-जीवन को उसकी सम्पूर्णता में, आलिंगन करने के लिए, मानव-जीवन के साथ पूर्णतया एकाकार हो जाने के लिए, साधना-पथ पर बराबर अग्रसर हो रही थी। कुछ काल पश्चात् मानव को मालूम हुआ कि कहानी का पात्र भी उसके हृदय के उतने ही निकट हो सकता है, जितने निकट उसके घनिष्ठतम मित्र, और कहानी के पात्र से उसे सहानुभूति भी प्राप्त हो सकती है।

निस्सन्देह यदि एक कहानी लेखक चार-पाँच पृष्ठों में ही कुछ पात्रों का चरित्र ऐसे रूप में उपस्थित कर सकता है कि हम उनसे अपने घनिष्ठतम मित्र अथवा सम्बन्धी से भी अधिक निकटता से परिचित हो जाते हैं। और पात्रों के हृदय-स्पन्दन की गति के साथ-साथ हमारे हृदय-

[११६६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पन्दन की गति भी घटने-बढ़ने लगती है, तो उस कहानी-लेखक की कला के, साहित्य के किस क्षेत्र के कलाकार की कला से हलका कहेंगे। और शरद, प्रेमचन्द या जैनेन्द्र में ऐसे उदाहरणों के लिए अधिक खोज न करनी चाहिये।

किन्तु कहानीकार की साधना चरित्र-चित्रण तक आकर ही समाप्त नहीं हो जाती। मेरा विचार है कि मानव में गीत-काव्य तथा कहानी का उद्गम स्थान एक ही है। हम देखते हैं नवीनतम गीत-काव्य हलकी भावुकता के क्षेत्र को त्याग कर बुद्धिवाद की ओर अग्रसर हो रहा है और मानसिक विकास तथा वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ ऐसा होना स्वाभाविक भी है। कहानी इस पथ पर गीतकाव्य से दो कदम आगे ही है।

आज का कहानी लेखक रोटी-कपड़े से लेकर जीवन-मरण तथा आत्मा-परमात्मा तक की समस्याएँ अपनी कहानी में हल कराना चाहता है। गहरी समस्याओं में से कितनी ऐसी हैं, जिनका निश्चित रूप से अन्तिम हल पेश किया जा सके और जो नवीन विकल्पों को जन्म न दे दें! बड़े से बड़े दार्शनिक भी समस्याओं को हल करने की अपेक्षा उन्हें और भी अधिक गहन रूप में समाज के समक्ष उपस्थित करने ही में अधिक सफल हुए हैं। आधुनिक कहानी-लेखक, इस क्षेत्र में कौन-से साहित्यिक अंग के कलाकार से हलका रहा है?

जिस प्रकार आज का डाक्टर यह अनुभव करता है कि कुनेन की सुगमता से खाये जाने योग्य बनाने के लिए चीनी से ढककर उसकी गोलियाँ बनानी होंगी, उसी प्रकार आज का दार्शनिक भी अपने सिद्धान्तों को सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए उन्हें कहानी में अन्तर्हित करके पाठक को देना अधिक उपयोगी समझता है। किन्तु यह आवश्यक है कि दार्शनिक विचारों का भार इतना अधिक न हो जाय कि कहानी रोचक ही न रहे। कहानी रोचक हो यह उसकी पहली शर्त है। अगर कहानी को पसन्द करनेवाले अधिकांश पाठक एक कहानी को पढ़ते-पढ़ते बीच ही में ऊब उठते हैं तो निस्सन्देह उस कहानी में कहीं न कहीं कुछ कमी है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के समावेश ने कहानी के महत्त्व को और भी अधिक बढ़ा दिया है। इस की वजह से कहानी वास्तविक जीवन के और भी अधिक निकट आ गई; और पाठक ने अनुभव किया कि इस तत्त्व के प्रकाश में उसे अपने दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने में सुगमता होती है, घरेलू सम्बन्धों की बहुत-सी परिस्थितियों को समझना सरल हो जाता है!

आज भी बहुत से आलोचक कहानी को स्थान की एकता, समय की एकता, पात्रों की संख्या, कहानी की लम्बाई आदि के जटिल नियमों में बाँधना चाहते हैं, और आधुनिक कहानी जो जीवन के सब पहलुओं और उसकी सब समस्याओं का आलिंगन करना चाहती है, जीवन के साथ उसकी सम्पूर्णता में, एकाकार हो जाना चाहती है, कोई भी बन्धन आसानी से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। कथानक, चरित्र,-चित्रण, कथोपकथन, भाषा आदि कहानी के अङ्ग-मात्र हैं और इनमें से किसी एक को भी बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। वास्तविक वस्तु सम्पूर्ण कहानी की आत्मा है जो पाठक की आत्मा को स्पर्श करती है। वही इधर-उधर बिखरे हुए निर्जीव शब्दों को एक सूत्र में पिरोकर उन्हें जीवित बनाये हुए है। कहानी में प्रयुक्त जो शब्द उसकी आत्मा को बलवान बनाने में सहायक नहीं हैं, वह व्यर्थ हैं, और ऐसे व्यर्थ शब्दों की संख्या जिस कहानी में जितनी ही अधिक है, वह कहानी उतनी ही अधिक दोष-पूर्ण है।

कोई भी अनुभूति, कोई भी भावना, कोई भी समस्या कहानी के लिए कथानक प्रदान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर सकती है—अगर मैं कहूँ, सामग्री प्रदान कर सकती है, तो अधिक उपयुक्त हो। वास्तविक अनुभूति, भावना अथवा गहन समस्या जिस कहानी का आधार नहीं है, वह सफल कहानी भी न हो सकेगी, महान् कहानी तो क्या होगी। भौतिक स्वरूप को छोड़कर और सब दृष्टिकोणों से कहानी और गीत-काव्य इस तल पर आकर एक हो जाते हैं। कहानी जितने अधिक स्वाभाविक ढंग से और जितने अधिक स्वाभाविक रूप में लेखक के जीवन की गहराई से निकलकर सतह पर आती है वह कहानी उतनी ही अधिक महान् होती है। कृत्रिम ढंग से गढ़ा हुआ कथानक कभी भी महान् कहानी का आधार नहीं बन सकता।

आज का कहानी-लेखक यदि काल्पनिक आदर्श-जगत की सृष्टि करता भी है तो वह वास्तविक जगत की कठोरता और कटुता को कुछ क्षणों के लिए भूल जाने के लिए ऐसा नहीं करता, वह आदर्श जगत की सृष्टि कठोरता और कटुता पर आँख गड़ाकर करता है, और इस जगत से उस जगत तक मार्ग खोज निकालने या मार्ग बना देने की चिंता उसे रहती है। संघर्ष को कुछ क्षणों के लिए भूल सकने की अपेक्षा उसे समझना वह अधिक पसंद करता है। वह मानव को कीट बना देनेवाली गरीबी तथा उसके कारण को समझना चाहता है, वह मानव को ग़रीब तथा असमर्थ बना देनेवाले साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद द्वारा किये जानेवाले शोषण को समझना चाहता है और शोषण के उस जाल को भस्मीभूत कर देने के उपाय खोजने की चिंता भी उसे है। वह स्वार्थ और त्याग को समझना चाहता है, घृणा और प्रेम को समझना चाहता है, और प्रेम-जगत के कड़वे संघर्ष को समझना चाहता है। संसार के महान यज्ञों में आहुति डालने के लिए वह विज्ञान के लिए किये गये बलिदानों के प्रति जनता में सहानुभूति उत्पन्न करना चाहता है, देश की स्वतंत्रता के लिए किये गये बलिदानों के प्रति जनता में सहानुभूति उत्पन्न करना चाहता है, मानव-समाज के उत्थान के लिए किये गये बलिदानों के प्रति जनता में सहानुभूति उत्पन्न करना चाहता है! आज का जो कहानी-लेखक व्यक्तिगत सस्ती भावुकता के क्षेत्र को त्याग कर इस क्षेत्र की ओर नहीं बढ़ा, वह निसंदेह उन्नति की दौड़ में बहुत पिछड़ा हुआ है। कवि की भाँति आज के कहानी-लेखक का ध्येय सार्वभौमिक अनुभूतियों तथा तथ्यों का अभिव्यक्तीकरण तथा चित्रण है। देश-काल की संकीर्ण परिधि उसे बाँधकर नहीं रख सकती। आज उसका आदर्श है कि एक ओर थोड़े से पढ़े-लिखे किसान मजदूर के लिए भी उसकी कहानी रोचक है। और दूसरी ओर बड़े-बड़े विद्वानों तथा विचारकों के लिए भी उसमें मानसिक भोजन मिल सके।

अंत में मैं कहना चाहूँगा कि संसार में वे ही कलाकार अमर हो सके हैं, जिनके पास संसार को देने के लिए एक संदेश था; और उस संदेश के प्रति जिन्हें ऐसी लगन थी कि उसके लिए वे किसी भी क्षण प्राणों तक का बलिदान कर सकते थे। पत्थरों में, रंगों में, या शब्दों में, जीवन नहीं होता; उन्हें जीवन कलाकार प्रदान करता है। कलाकार में जीवन प्रदान करने की शक्ति साधना से उत्पन्न होती है, साधना के अर्थ हैं अपने आपको अंतर्जगत तथा बहिर्जगत के सम्पूर्ण अश्रेयस्कर आकर्षणों से तोड़कर एक निश्चित ध्येय की ओर सम्पूर्ण शक्ति से, प्रतिपल बढ़ने का प्रयत्न करना। वह ध्येय ही अंत में संदेश का रूप धारण कर लेता है, और वह प्रयत्न, लगन और उसके लिए बलिदान—भावना के साथ एकाकार हो जाता है!

मुज़फ़्फ़रनगर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुभान

[सत्यवती मलिक]

लालमंडी से शिकारी (किश्ती) पार करके मैंने देखा—शेखबाग में लकड़ी के कारखाने के बदले (जहाँ हम मिस्त्रीओं, आरीकशों और बढ़इयों के साथ खेला करते, उनके औज़ार उठा लिया करते, कभी-कभी कोई बड़ा संदूक तैयार होता तो उसमें छिप जाया करते, नहीं एक बार लकड़ी के तख्तों में कोयले से लकीरें डाल-डालकर एक बहुत ही मनोरञ्जक खेल निकाला था) एक शानदार कोठी बनी हुई है। कारखाने के पार्श्ववर्ती कबरिस्तान की नीले पुष्प-गुच्छों से ढँकी चारदीवारी, जिसके पास हम भाई-बहनों ने सर्वप्रथम फोटो खिचवाई थी, बढ़ाकर ऐन कोठी के समीप कर दी गई है। इस विस्तृत अहाते में आज उन पुरातन स्मृतियों का मानो चिन्ह-मात्र भी शेष नहीं रहा है। केवल शेखबाग पतन की सीढ़ियाँ उतरकर चार चिनारों की शीतलच्छाया के बीचो-बीच सफेद मिट्टी से पुता हुआ पब्लिक वर्क्स विभाग का पुराना आफ़िस वृद्ध कर्मयोगी की भाँति जिसकी शान्ति प्रतापबाग के आस-पास लारीवालों के कोलाहल से तनिक भी भंग नहीं होती, ठीक वैसे ही जैसे कि मैं बाल्यकाल से उसे देखती आई हूँ, खड़ा है।

उस ध्यान-मग्न आफिस में चिनारों की मरमर-ध्वनि में कुछ क्षण खड़े रहकर ज्योंही बाजार की ओर आगे बढ़ी तो मेरा दम जैसे छूटने-सा लगा। इसी समय सुनीति ने कहा—'यही तो है।' 'डा० जे० एन० किचलू' 'आँखों के विशेषज्ञ' 'रिटायर्ड हैल्थ आफिसर' मैंने देखा बरामदे में बड़ा-सा बोर्ड लटका हुआ है।

'जीजी, सुभाना ऊपर खड़ा है। यही सीढ़ियाँ हैं चलिये' मैंने ध्यान नहीं दिया—ताजी धुली लकड़ी की सीढ़ियों पर नारियल का कार्पेट बिछा था। हम दोनों ऊपर चली गईं। सीढ़ियों के समाप्त होते ही, दो कमरे आमने-सामने दिखाई दिये, दाएँ हाथ डाक्टर जे० एन० किचलू और बाएँ ओर उनके सुपुत्र ए० बी किचलू दाँतों के डाक्टर का नाम लिखा हुआ था।

अदायगी के साथ बाएँ ओर के कमरे का पर्दा हटाते हुए, एक बूढ़े व्यक्ति ने कहा—'भीतर बैठिये डा० अभी आते हैं।' साथ ही एक क्षण बाद आश्चर्य-चकित, किन्तु नम्र स्वर में मेरी ओर देखकर कहा—'बहुत मुद्दत के बाद देखा माराज (महराज) पछाना नहीं। राज़ी है बीबी जी, बहुत बड़ा हो गया।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सुभाना, मैं सचमुच बड़ी हो गई हूँ' और मुझे सुभाना की टूटी पंजाबी बोली पर हँसी ही आई।

हम दोनो बैंच पर बैठ गईं। कमरे का वातावरण डाक्टरी ढंग का होते हुए भी मुझे अरुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। कारण एक तो पूर्व की ओर खुली खिड़की में से वही आफ़िस की पुरानी इमारत नज़र आ रही थी। श्रीनगर में सफेदे, चिनार के वृक्षों को स्पर्श करती प्रातःकालीन पवन की सुगन्धि कमरे में फैल रही थी। दूसरे डाक्टर साहब मेरे पिताजी के पुराने मित्र हैं। मैं उन्हें सदैव चाचाजी कहा करती हूँ।

'सुभाना घोड़ी किधर गया ?' सुनीति ने मेरे कुछ भी प्रश्न पूछने से पहले ही प्रश्न कर दिया, यद्यपि वह सुभाना को मुझसे बहुत कम जानती है। मैंने जान-बूझकर ही सुभाना से कोई प्रश्न नहीं किया, क्योंकि मुझे अभी तक याद है, सुभाना उन दिनो काफ़ी मग़रूर व्यक्ति था, और कुछ लड़ाका भी। स्टेर में हेल्थ आफ़िसर के साथ सफ़ेद लट्ठे के वस्त्रों में पूरी शान के साथ, घण्टी बजा-बजाकर श्रीनगर के तंग गली मुहल्लों बाजारों में टाँगा चलाने की नौकरी कुछ कम नहीं होती। घर के नौकरों-चाकरों तथा साधारण लोगों की तो बात क्या। म्यूनिसिपैलटी के ज़मादारों, कम्पाउंडरों, भिश्तियों पर भी उसका काफ़ी रोब था। एक-दो बार टाँगे की घण्टी यूँ ही बजा देने पर जो डाँट उससे मैंने सुनी थी, उसी के कारण आज भी बोलने का साहस नहीं हुआ। केवल हतबी खैरी (डा० के बच्चों की नौकरानी) के साथ उसकी मित्रता थी, क्योंकि वह भी सुभाना की तरह...

मुझे वह दिन याद करके बहुत हँसी आई, जब स्वर्गीया कौशल्या साहब की बड़ी लड़की हमारे घर रात तक खेलने में देर कर देती तो सुभाना और ख़ैरी दोनो बारी-बारी उसे लेने आते—ख़ैरी को तो कौशल्या फिर भी 'मोटी-राक्षसी चली जा।' कहकर भाग आती, किन्तु सुभाना की एक नजर में ही कौशल्या के होश गुम हो जाते। तब हम लोग कौशल्या को चिढ़ाया करते—आया है सिपाही ?

हाँ, तो आज सुभाना की अवस्था एवं चाल-ढाल का ऐसा दयनीय परिवर्तन देखकर भीतर ही भीतर मुझे क्लेश एवं आश्चर्य तो हुआ—मैली सी सलवार, गर्म पट्टी का फटा कोट—गिरती हुई पगड़ी—झुर्रीदार सूखा-सा चेहरा।

'सुभाना घोड़ी कहाँ है ?' बेच दिया क्या ? सुनीति ने पुनः प्रश्न किया। मेरा अनुमान है, टाँगा डा० साहब का था और घोड़ी सुभाना की अपनी।

सुभाना का चेहरा एकदम उतर गया—और वह झाड़न लेकर मेज़ पोंछने लगा। सुनीति ने पुनः दुहराकर पूछा—सुभाना, घोड़ी मर गई क्या ?

'मेरा—मेरा नसीब खोटा है। हाँ, हाँ मर गई, और उसका कंठ एकबारगी रुद्ध हो गया। संकेत से ऊपर उठा कर 'इतना...इतना बड़ा-बड़ा तीन लड़की बीबीजी!' और फफक-सा उठा। मेरे जी में उसकी वह भर्राई-सी आवाज़ तीक्ष्ण-सी चुभ गई।

'और घर वाली भी' इसके आगे वह बोल न सका। आँखों के इशारे और चेहरे की बनावट ने ही प्रकट कर दिया कि सुभाना अपना घर-बार उजाड़ चुका है। उसके मोटे-मोटे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आँसू फूट आये। बोला नहीं जाता था; किन्तु इस अवस्था में भी सुभाना के कान चौकन्ने थे। बार-बार पर्दा हटाकर देखता। कहीं मालिक तो नहीं आ रहे?

कठिनता से आँखें पोंछीं और कहा—अब मैं सात बच्चों का बाप होता था।' वृद्ध ने अपने दुःख को छिपाने की भरसक चेष्टा की और पुनः मेरी ओर दृष्टि डालकर कहा—आपका भाई जद छोटे-छोटे बच्चे को छोड़ गया! मैंनू सब याद है बीबीजी, हा! और शलोजी (कौशल्या को वह शलो पुकारता था) दुनिया में कुछ नहीं बस दुःख-सुख, प्यार—परमात्मा उनका स्वर्ग में भला करे। कैसा मीठा मैंनू दिया करती थी। कभी लड्डू, कभी मिठाई। मैं नमक-हराम नहीं हूँ। उसके भाव अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे। पर मैंने जान लिया उसे भी वह दिन याद आ रहे हैं। मेरी स्वर्गीया जननी के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना चाहता है।

उसकी आन्तरिक व्यथा का प्रवाह एक तेज़ धारा के समान फूट रहा था, जिसके छींटे मेरे मानस पर भी पड़ने लगे—

'डाक्टर साहब को परमात्मा ज़िन्दा रक्खे। जद उन्होंने पेंशन पाया और मोटर ले लिया, तब मैंने कहा कि हम दूसरी जगह चला जाए पर डाक्टर साहब ने और किधर काम करने नहीं दिया इधर है आपने काम में फिर लगा लिया।

'लेकिन, लेकिन किस के लिए बीबी जी!' उसकी आँखों में पुनः मर्मान्तक पीड़ा वेग से छलछला उठी—सुख नहीं—सुख नहीं।

क्षण भर के लिए मेरे जी में हो आया कि उसकी अपनी बच्ची की तरह बन अपने आँचल से उसके आँसू पोंछ डालूँ बाबा न रो! बाबा मत रो! अथवा दुःख में साथ दे ज़ोर से चीख पड़ूँ। वह एक बार फिर कह उठा—अगर कोई सुन लेता है तो अपना दुःख-सुख खोलकर बैठ जाता हूँ। कुछ जी हलका हो जाता है। नहीं तो सब कड़वा है। बीबी जी, कुछ अच्छा नहीं लगता।

और वह जबर्दस्त आँखों को पोंछता हुआ पर्दे से बाहर हो गया। किन्तु तब भी मुझे पर्दे के बाहर से उसके रोते हुए उच्छ्वासों—उसके जीवन के सूनेपन की झलक आती रही जब वह सन्ध्या के समय सिर लटकाये सूनी अँधियारी कोठरी में जा तारे गिनता होगा। तब उसे हुक्का भरकर लाने के लिए अपनी रोहती-मुक्ति-मालती की परिछाईं नज़र आती होगी। जब वह अकेले ही साग-भात खाने की व्यवस्था करता होगा। रोज़े के दिनों में बाँह में बाँह डाले जेहलम नदी के किनारे जब वह माझियों की कन्याओं के गीत सुनता होगा...हाय रे! अस्थिर संसार!

इसी समय डाक्टर साहब ने प्रवेश किया और सुभाना ने लपककर झाड़न उठाया और उनके बूट झाड़े।

सीढ़ियों में से ही बूटों की आहट पा मैंने भी अपनी गीली आँखें पोंछ ली थीं। डाक्टर साहब ने बैंच के पास पहुँचते ही मेरा सिर दोनो हाथों से पकड़कर हिलाया। और कहा, 'पगली यहाँ क्यों बैठी हो?

मैंने कहा चाचा जी आपने ही तो कल कहा था कि आँखें दिखलाने के लिए डिस-पैन्सरी में आना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक स्केच

[भुवनेश्वरप्रसाद]

[श्री भुवनेश्वरप्रसाद के दो स्केच हमारे पास आये थे। उनका शीर्षक ही था; 'दो स्केच'। पर न मालूम किस कारण से उसमें से एक स्केच अलग हो गया, और पहलावाला 'दो स्केच' शीर्षक से ही अगस्त १९३१ के अंक में छप गया। संपादक की इस असावधानी के लिए आशा है, पाठक उसे क्षमा करेंगे, और श्री भुवनेश्वरप्रसाद भी। ये दोनो स्केच बहुत मार्मिक हुए हैं। यह दूसरा स्केच उपस्थित करते हमें हर्ष होता है।—सं०]

चाँदपुर से गाड़ी पूरे २५ मिनट लेट चली। पी. डब्लू. आई. की ट्राली लद रही थी और स्टेशनमास्टर की दयनीय निकम्मी शकल हमारी खिड़की के सामने से निकल गई। खद्दर-पोश ने अपना अख़बार महारत से मोड़कर उससे हवा करते हुए खिड़की के बाहर मुँह निकाल लिया। तीसरी बार गोरखे सोल्जर ने अपना सामान ऊपर से उतारकर फिर से लगाना शुरू किया। ऊँचे-ऊँचे फौजी बैग जिसमें ताले लग सकते थे, पीले बेल-बूटोंवाला ट्रंक, जिसके बेल-बूटे मैले हो चले थे, चमड़े की पेटियों से बँधा हुआ बिस्तरा और नैपाली आमों का टोकरा, वह शायद छुट्टी से वापिस आ रहा था—बंदूक को पोंछकर उसे रखने के लिए वह धीरे-धीरे बुदबुदा कर 'मंज़िल' और 'बट्स' पढ़ रहा था—वह बंदूक इस तरह थामे था जैसे वह कोई दरिन्दा हो जिसे ज़ईफ़ी ने पालतू बना दिया है...सिगनल के इन्तज़ार में गाड़ी हू हूं...हू...करती हुई खड़ी हो गई औ जैसे पूरा डिब्बा कुनमुना उठा। बाहर दूर के दरख़्त घने-नीले होकर छोटी पहाड़ियों की तरह मालूम होते थे, गाड़ी की रोशनी अभी नहीं हुई थी। खद्दरपोश ने अपनी बाहें चढ़ाकर पूरा-पूरा झुककर बाहर झाँका और फिर जैसे अपने आप से कह लिया सिगनल नहीं है। कोने से स्टूडेण्ट ने अपनी खुसटी हुई अचकन तहा कर अपने सिर के नीचे रख ली और छत की तरफ एकटक देखता हुआ धुयें के लच्छे बनाने लगा। वह विदूषकों की तरह विचित्र मुँह बनाता था। कोई अच्छा लच्छा बन जाने पर वह सामनेवाली बेञ्च के कोने पर बैठी हुई महिला की तरफ विजय के साथ देखता था। महिला का पति ऊँघ गया था, पर गाड़ी के रुकते ही वह चौंककर जगे रहने की कोशिश कर रहा था। चुपचाप बैठे हुए बच्चे की तरफ एक मिनट घूरकर उसने अपनी स्त्री से एक बारगी पूछा—'इन्दर की बऊ का जाप्पा वहीं होगा खतौली में कि वो जागी अपने सौहरे।' उसकी आवाज़ में एक बे-वजह कर्कशता थी। महिला ने अनमने गर्दन हिलाकर एक अनिश्चित-सा जवाब दिया—गाड़ी चल दी और वह पूरे-पूरे पैर सारी से ढँककर बाहर झाँकने लगी।

खद्दरपोश ने जँभाई ली और अँगूठियोंवाली उँगलियों से चुटकी बजाई—'चढ़',

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'छुट' 'छुट' । स्टूडेंट का सिगरेट ख़त्म हो चुका था और वह अपना पर्स निकाले उसके अन्दर उँगलियाँ डालकर गिन रहा था—

अँधेरा और ज़्यादा हो गया था और बत्ती अब तक नहीं जली थी। पर्स को जेब में रखते स्टूडेंट ने कहा—'चोर हैं साले चोर।' खद्दरपोश ने उसकी तरफ देखा और महारत से मुस्कराकर फौरन मुँह दूसरी तरफ कर लिया। बाहर से अँधेरा जैसे बहकर डब्बे में जा रहा था लोगों के चेहरे फीके पड़ गये थे, सोल्जर ने अपना बिस्तरा बिछा लिया था और अब फट-शट-फट उसकी शिकनें मिटा रहा था। लड़का बेन्च पर खड़े होकर उसकी तरह अजीब लालसा से देखने लगा, बिस्तरा ठीककर सोल्जर ने लड़के की तरफ देखा। वह उसे और उससे ज़्यादा उसकी मा को हँसाने की कोशिश में भाँड़ों-सा मुँह बना रहा था।

खद्दरपोश ने आख़िर पूछा—

'तुम कौन-से रेजीमेंट में हो?'

'१४६ गुरख़ा राइफल्स', सोल्जर वैसे ही बच्चे से उलझा हुआ था।'

'कहाँ है तुम्हारा रेजीमेंट?

'मऊ कैंट में।'

'लड़ाई होनेवाली है'—स्टूडेंट ने सिगरेट जलाते कहा।

'खद्दरपोश फिर कहारत से मुस्कराया, महिला का पति जो फिर ऊँघ-सा गया था जगकर खाँसने लगा। लड़के को खिड़की से खींचकर बैठाते उसने महिला से कहा—देवी सरघने-वाले ने मेरठ में घाँस का ठेका लिया है।

महिला ने गंभीर मुँह बनाये कमर खुजलाते हुए कहा—हाँ।

सोल्जर बोल रहा था...वह हाल में ही पेंशन पा जायगा, मैं था दरबारसिंह के रेजीमेंट में, दरबारसिंह नेगी जिसे विक्टोरिया क्रास मिला था...

महिला के पति ने कहा—लड़ाई हुई तो देवी बन जायगा बड़ा साव, सब से बड़ा करनैल मिहरबान है, ओ...महिला ने जँभाते हुए कहा—अब तो फौज का ठीका मजा तो अब है'...सोल्जर अपने छोटे-छोटे पीले झुर्रीदार हाथ हवा में फहराकर कुछ कह रहा था—इन्हीं हाथों में सब १४ में चार राष्ट्रों ने एक राइफल थमा दी थी कि वह अपने ही जैसे दो हाथ पैरवाले जानवरों का शिकार करे...महिला ने कुछ चमक के भर्त्सना की...डब्बे भरे हैं इस गाँधी गर्दी में गाँधी ने तो अपनी मीलें खड़ी कर लीं...बच्चा डब्बे भर में घूम-घूमकर खिड़कियों को बार बार गिन रहा था। खद्दरपोश ने उसे अपने सामने से हटाकर महिला की तरफ देखा और फिर कहारत से मुस्काया।

स्टूडेंट ने ज़ोर से कहा—लेकिन तुम किस लिए लड़े थे, तुम्हें क्या पल्ले पड़ा, चमकीले बटन, मुर्दों के तन से उतारी हुई वर्दियाँ, गर्मी, सूज़ाकवाली बदचलन बसें.....सोल्जर (डिब्बे में फीकी पीली रोशनी हो गई थी) ज़ोर-ज़ोर से बोलकर इसका प्रतिवाद कर रहा था—जर्मन, हस्पताल, खाइयाँ...इंग्रेज़ तो भूलनेवाले ठहरे...और मैं खिड़की पर सर रखकर ऊँघ गया।

जगा। डिब्बे में तीखी गरम रोशनी थी, खद्दरपोश उतर चुका था, महिला और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसका पति सो रहे थे, स्टूडेंट वैसे ही धुँये के लच्छे बना रहा था। लड़का सोल्जर के बिस्तरे पर बैठा था, उसने जले हुए सिगरेट के टुकड़े जमा किये थे। वह उन्हें गिन रहा था और सोल्जर उस गिनती को दुहराता था ? एक, दो, तीन...पाँच वह कुल दस थे।

तीन गीत

[त्रिलोचन]

(१)

नयन की रसधार
सुरभि के संस्पर्श में
कहती पुकार पुकार—
मैं नदी, तुम कूल-तरु
निर्मूल दूर—विचार
भेद नव होना असम्भव
जब तुम्हीं आधार
कर लो वाह का उद्धार।

(२)

कैसी नित नई यह प्यास
होगया प्रति-कंठ में
जिसका कि अब आवास
तृषित छूटे हैं उसी की ओर
यति कहाँ—समझें कि यह निशि-भोर
चाहते भर हैं कृपा की कोर
उठ रहा प्रति-रोम से गति-रोर—
जग भर का यही अभ्यास !

(३)

अविरल झर रहा निर्झर
पर पसीजी ना शिला
यह मिला जीवन शेष !
निज पल गिन रहा हँस-रो ;
'नहीं' या 'हाँ' सदैव अशेष !!
तरु-दल बोलता मर् मर्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्योत्स्ना रानी

[वेंपटि नागभूषणम्]

[मूल तेलुगु से अनुवादक, ब्रजनन्दन शर्मा]

उसने पहले ही पत्र लिख दिया कि अमुक दिन आ रहा हूँ। मित्रों के यहाँ से उत्तरों की वर्षा हुई कि हाँ, जरूर आओ, हजारों विघ्न आयें, तब भी इन्तज़ाम करके उस दिन अवश्य आओ। रेलगाड़ी में पैर रखने के पहले उसने टेलिग्राम भी दिया। मगर स्टेशन पर उतरा तो इतना शोर-गुल मचाकर बुलाने वाले मित्रों में एक भी स्वागत के लिए नहीं आया।

बूढ़े हो गये मगर स्वभाव वही रहा। कुछ भी परिवर्तन नहीं! पहले लड़कपन में भी यही बात थी। उन पर विश्वास करके कुछ करना मुश्किल होता था। ठीक समय पर धोखा देना, काम बिगाड़ना यही तो उनका स्वभाव था। आज भी वही बात है।

मित्र स्टेशन नहीं आये—इसके लिए तारकं को गुस्सा नहीं आया। मगर जरा आनन्द में खलल पड़ गया, इसके लिए उसका मन जरा क्षुभित हुआ। स्वागत के लिए स्टेशन जाने से शायद उन्हीं के सिर पड़ जायगा—इस डर से सबने चुपकी साध ली। मगर उन्हें विश्वास था कि जब आयगा तो देखे बिना, मिले बिना कैसे जायगा!

रेलगाड़ी जब मछलीपट्टम पहुँच रही थी, उस समय उस आनन्द की घड़ी में भी उसे वे पुरानी बातें याद आ रही थीं। ओह, वह अज्ञात जीवन का नाश करनेवाली निराशा, आखिर को अपना गाँव—इस ममता को त्याग कर उस ऊसर मछलीपट्टम को छोड़ कर बाहर निकलना; फिर अनेक तरह की तकलीफें उठा कर मद्रास पहुँचना और वहाँ पर धन, दौलत, नाम-धाम कमाना—फिर...जीवन और उसका सुख ...।

आज तेलुगूवालों में तारकं से अधिक प्रख्यात कोई चित्रकार नहीं है। उसकी रचनायें—कला-सृष्टि—संसार को मोहित करनेवाली बन गई हैं। कोई ऐसा देश नहीं जिसने उसे पुरस्कृत न किया हो। कोई ऐसा बड़ा आदमी नहीं जो उसकी मित्रता से गर्वित न हुआ हो।

किन्तु, तारकं के और छुटपन के साथी उसी पुरानी जगह में हैं—बढ़ना नहीं, फूलना नहीं, फलना नहीं। अपनी प्रतिभा को नष्ट कर रहे हैं। मछलीपट्टम छोड़ना उनके लिए असम्भव है। उसने कितनी कोशिश की कि उन लोगों को मछलीपट्टम से हिलावें, मगर न हो सका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कितनी बार उसने उन्हें अपने पास बुलाया, मगर उनका सुधार करना ब्रह्मा की ताकत के भी बाहर की बात है। जङ्गल में खिलनेवाली चाँदनी को कोई शहर में लाना चाहे तो कैसे हो सकता है ? इसलिए तारकं अलग से ही उससे जहाँ तक बन पड़ता इनकी सहायता करता था।

मछलीपट्टम छोड़कर जाते समय उसने निश्चय किया था कि जब तक यह स्थिति न बदलेगी, अच्छी स्थिति न होगी, तब तक मछलीपट्टम का मुँह नहीं देखूँगा। स्थिति बदली, कल्पनातीत सुख-सौभाग्य प्राप्त हुआ, कई बार जन्म-भूमि का दर्शन करने की तैयारी की ; मगर कोई न कोई विघ्न आ उपस्थित हुआ और वह न जा सका। और कोई भाई-बन्धु, नाते-रिश्तेदार थे नहीं, इसीलिए यों आने की कभी ज़रूरत न पड़ी। अकेला ब्रह्मचारी जो ठहरा।

अकस्मात् उसे छुट्टी मिली। मैसूर के राजभवन के लिए तैयार किये जानेवाले चित्र अनुमान से पहले तैयार हो गए थे और एकेडेमी को चित्र भेजने के लिए वक्त था। इस बीच में कुछ आराम कर लेना—मन और हाथ को भी जिससे जरा आराम मिले—भी ज़रूरी ही था। अच्छा ही हुआ। इसी बीच मित्रों की चिट्ठियों पर चिट्ठियाँ आने लगीं। इसी लिए वह चला।

गाँव छोड़े यद्यपि पाँच-छः साल हो गये, मगर परिचितों की कमी नहीं है। किसी के घर जाय तो सिर चढ़ाकर सम्मान करेगा। मगर तारकं को यह पसन्द नहीं था। यही नहीं उसे यह भी डर था कि उसकी अवाई सुनकर गाँव भर के लोग जमा हो जाँय और उसे साँस लेने की फुर्सत भी न मिले। इसी लिए तो नौकर-चाकर, कार वगैरह लाभ-काफ के बिना अज्ञात रूपेण आया है। बहुत नजदीकी मित्रों के सिवा और किसी को उसके आने की खबर है कहाँ ? मित्रों के साथ बिना शोर- गुल के चार दिन आनन्द से बिताकर चले जायँ—यही उसका उद्देश्य था।

गाड़ी करके सीधे डाक-बँगला की ओर रवाना हुआ। वहाँ पहुँच भोजन वगैरह करके सोचा कि चाय के वक्त तक सो रहूँ, और उस समय तक भी महाशय लोग न आयें तो खबर करूँ।

ज़रा आँखें अभी बन्द हुई थीं कि उसी दोपहरी में मित्र-मण्डली प्रत्यक्ष हुई ! उनका आना देखकर पहले तो उसने नींद का अभिनय किया। मित्रों ने गुदगुदी लगाई तो पट सो गया। इसी तरह कुछ देर तक हल्ला-गुल्ला करने के बाद उठकर बैठ गया। इतने दिनों बाद मित्रों को देखा, इस लिए पहला गुस्सा भूल गया। पुराने खेल, वह जीवन याद करते हुए तथा आनन्द मनाते हुए त्योहार की तरह सारा दिन बिता दिया।

सायंकाल जब अन्धेरा छा रहा था, तब सब लोग घूमने निकले क्योंकि तारकं ने दिन में बाहर निकलना मंजूर नहीं किया। फिर पुरानी जगहों का, घूम-घूमकर दर्शन किया। घूम-घामकर होटल में भोजन किया। सब लोग थक गये थे। इसलिए सबेरे फिर मिलने का निश्चय कर तारकं को घोड़ागाड़ी में बिठाकर मित्र लोगों ने अपने-अपने घर की राह ली।

१२ बज रहे हैं। चाँदनी स्वच्छ मोती की तरह बिखर रही है। तारकं ने ओसारे में आकर कमर सीधी करनी चाही। चाँदनी को देखते-देखते एक नशा-सा चढ़ने लगा। फिर उस सौन्दर्य-माधुरी से मन अलग नहीं हो सका। तरह-तरह के भाव अंकुरित होने लगे। मगर उसकी कल्पनायें चाहे कहीं भी विहार कर आयें अन्त में उन्हें शिल्पाराम में आकर ही शान्ति मिलती थी। ज्योत्स्ना लतिकायें नीलाम्बुद खंडों से मिलकर तरह-तरह के रेखाचित्र बनाने लगीं। उसके मानस-लोक में बस चाँदनी—सारी दुनिया को अपने वर्ण से सराबोर करनेवाली, विकार-रहित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चमकीली—स्वच्छ चाँदनी ही चाँदनी थी। उस सौन्दर्य को—जिसका उपभोग करने में वह असमर्थ हो रहा है—क्यों न कूँची की नोक पर उतार ले वह ? 'ब्लू बॉय' नामक चित्र से जो उसकी प्रख्याति हुई वह 'ज्योत्स्ना रानी' से पुनः क्यों न प्राप्त होगी ?

विचारों में वह इतना मग्न हो गया कि उठना और उतरकर नाले के किनारे बालू पर चलना—वगैरह उसे कुछ भी मालूम न पड़ा। चाँदनी के प्रकाश में मूर्तिमान रूपसि उसको खींचे लिए जा रही है—मगर पकड़ाई नहीं देती है। वह रुक गई। तारकं के पाँव भी आप ही आप रुक गये। देखा उसने। मगर मानो वह स्वप्न में ही था। उसके पास पहुँचने पर भी उसका सन्देह दूर नहीं हुआ। एक युवती, लावण्यवती, अकेली, आधी रात को, पानी के किनारे क्यों खड़ी है ?

तारकं के पास आने पर उसकी आहट से युवती का ध्यान टूटा। देखा उसने ; फिर भयभीत हो पीछे की ओर भागी, मगर भाग न सकी। दस कदम जाकर बालू पर गिर पड़ी।

तारकं ने अप्सराओं और यक्षिणियों के बारे में कई बार सुना था। बहुत बार खोजकर हार गया था। और मन में निश्चय कर लिया था कि यह सब झूठी बातें हैं। शुरू से ही उन बातों पर उसका विश्वास कम था। डर नामक कोई चीज़ ही उसके पास नहीं थी। इसलिए उसे कोई घबराहट नहीं हुई। मन में आया—कोई है, मगर यहाँ क्यों आई है—आदि आदि।

'कौन हो तुम ?'

वह सिर झुकाये बैठी थी। तारकं ने समीप जाकर पूछा। वह कुछ बोल न सकी। भयभीत हो काँपने लगी।

'डरो मत ! कौन हो तुम बताओ ? इस समय, इस जगह क्यों आई ?'

उसके जवाब में सिसक-सिसककर रोना शुरू हुआ। तारकं बैठ गया और उसका डर दूर करने के लिए उसकी पीठ थपथपाते हुए समझाने की कोशिश की।

'मैं...मैं...म...मर जाऊँगी...।'

सिसकती हुई एक-एक अक्षर करके बोली। सुनकर तारकं काँप गया। मगर वह अधीर भाव प्रदर्शित किये बिना, मामूली ढङ्ग से दिल्लगी के तौर पर हँसते हुए बोला—

'ओ...तब तो बड़ा भारी काम करने जा रही हो !'

'उठो, उठो—चलो घर चलो। मैं पहुँचा दूँ। देखो, इधर देखो। चाँदनी कैसी खिली हुई है। ऐसे समय में मरने के सिवा और तुमको कुछ नहीं सूझा ?'

बातें करते हुए, उससे अनुनय-विनय करते हुए तारकं अनायास ही उसको देखता रहा। दूर आकाश में परिलक्षित चन्द्र-किरणों ने उसके हृदय को आवृत्त कर लिया। ज्योत्स्ना-समूह मूर्तिमान हो गया और वह आकृति इससे मिलने लगी। इस सुललित, गठित अवयव रेखाओं को कैनवास पर उतार सके तो धन्य हो जाय ! उसका भाग्य खुल गया है। अनायास प्राप्त सम्पदा को वह कैसे व्यर्थ कर सकता है ? इतना सुन्दर 'माडेल'...

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसके मन का आनन्द यद्यपि उसके चेहरे में प्रतिबिम्बित हो रहा था, फिर भी लड़की समझ न सकी। उसका सोचना—उसकी गड़बड़ी—और वह।

'क्या फिर? उठो! घर चलें!'—बातचीत फिर शुरू करने के लिए उसने प्रश्न किया।

'मैं—नहीं जाऊँगी, महाशय!'

'क्यों--?'

'शेर के पिंजड़े में जान-बूझकर कौन जायगा?'

'ऐसी बात है? तो फिर क्या करोगी?'

'क्या करूँगी—मुझे नहीं मालूम। आप कृपाकर मुझे छोड़ दीजिये और अपनी राह जाइये।'

'अरे फिर भी कहो तो—वैसी विपत्ति क्या पड़ी है?'

'क्यों? आप—मेरी तकलीफों से...।'

'तकलीफों को छिपाने से वह और तकलीफ देती हैं। मुझ पर विश्वास नहीं कर सकती? मुझे तुम अपना समझ सकती हो...।'

'दीखते ही आप भलेमानुस जान पड़े; इसीलिए तो...'

'तो फिर संकोच क्यों? आओ जरा आराम से अच्छी तरह बैठकर बातें करेंगे। मैं वह, उस बंगले में ठहरा हूँ। उठो—चलें।'

वह लड़की तारकं की बात का जवाब न देकर उसके पीछे हो ली। डाक-बंगला के बड़े हॉल में एक आराम-कुर्सी पर उसे बिठाया और अपने फ्लास्क से जबर्दस्ती आधा कप चाय उसे पिलाया और बाकी खुद पिया तारकं ने। फिर पानदान टेबुल पर उसके समीप रख दिया और खुद 'बायर' (चुरुट) जलाकर धूम्र से कमरा भरता हुआ मेज से सटकर खड़ा हो गया, उसके सामने। मानो कहानी सुनने के लिए वह एकदम तैयार है।

वह भी इसकी गंभीरता देखकर स्वस्थ हो, दिल खोलकर, बिना कुछ छिपाये सब वृत्तान्त कहने लगी—

'...मेरा नाम सूर्यकान्तं है। मेरी मा वेश्या है। अगर आप इस गाँव के होते तो पद्मावती का नाम जरूर जानते। हमारे कुलवाले हमारे घर से ईर्ष्या रखते हैं। मेरी अम्मा ने जो दौलत कमाई है और जो चातुरी पाई है—वह दूसरों में मिलना मुश्किल है। मेरे पिता इस इलाके के एक नामी जमीदार थे। उनको मरे करीब दस साल हुए।

'मुझे पढ़ाने-लिखाने या संगीत सिखाने में मेरी मा ने कुछ भी कसर नहीं की। मुझे साधने का उसको वही तो एक बहाना मिला है। वह कहती है कि यह पढ़ाना-लिखाना ही काल हुआ कि मैं उसकी बात नहीं मानती।'

'मैं जब सयानी हुई तो मेरी मा ने मुझे भी उसी पेशे में उतरने को कहा। पर,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैंने नहीं माना। मुझे उस जीवन से घृणा है। मुझे मालूम पड़ता है कि मैं गलती से इस कुल में पैदा हो गई। हमारे घर के लोग भी यही कहते हैं।

'मेरी मा ने मुझे एक लखपति वैश्य-मल्लूक के हाथ में सौंपने का निश्चय किया है। मैं बहुत प्रार्थना करती हूँ, गिड़गिड़ाती हूँ, मगर वह मानती नहीं है। और वह अपनी बात चलाकर ही रहेगी। उसके विरोध में कोई बोल नहीं सकता। और बोलकर कोई रह ही कैसे सकता है? मेरे घर में वह मुसोलिनी है।

'मेरी गली के छोर पर एक शास्त्रीजी हैं। उनका लड़का कामेशं और मैं लड़कपन से साथ-साथ खेले-पढ़े हैं। हम बड़े हुए तो हमारे घर के लोगों ने दोनों का बोलना-हँसना रोक दिया। न मालूम क्या हो? यह डर था उन्हें। ब्राह्मण-कुल का गौरव कहीं नष्ट न हो जाय, इस डर से शास्त्रीजी हजार आँखों से बेटे पर निगरानी रखते थे।

'मेरी मा कामेशं का नाम सुनकर ही नाक-भौंह सिकोड़ लेती है। वह अच्छा हो, सुन्दर हो, मगर जब लखपति नहीं है तो उसकी बेटी के ऊपर नज़र डालने का उसे क्या हक है?—वह किसी बैंक में क्लर्क है। बेचारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है।

'हम मिल नहीं सकते थे, मगर मेरी तकलीफें उसे मालूम थीं। भला दुनिया को मालूम हुए बिना कैसे रह सकता है? ऐसी बातें तो बिजली की तरह फैल जाती हैं। कहावत भी है—वेश्या के घर में कहीं बात छिपी है?'

'एक रात हम लोग मेला देखने गये। वहाँ कामेशं दिखाई पड़ा। देखते ही मानो मेरा गया प्राण फिर लौट आया। मेरी मा वगैरह 'विट्ठल भजन' में मग्न थी। इसलिए मैं उठकर उसके पास चली गई। मुझे पहचानकर उसने पहले ही इशारा किया।

'चन्द्रभागा के उस पार जाकर हम बैठे। मैंने अपनी सारी कहानी कह सुनाई। बहुत कहा, मिन्नतें कीं कि मुझे इस जेल से छुड़ाओ—कहीं ले चलो। कामेशं को मालूम था कि मैं उससे प्रेम करती हूँ और शादी करके रहना चाहती हूँ। मुझे वह बहुत चाहता भी है।

'मेरी सारी बातें सुनकर उसने कहा कि मेरी बातें तो तुम जानती ही हो। बड़े लोग सिर पर हैं। उनका विरोध कर कोई भारी काम कर डालने में डर होता है। मगर रक्षा करने का भार मुझ पर है, तुम डरो मत। धीरज रखो। समय देखता रहता हूँ, मौका मिलते ही उचित कार्रवाई करूँगा।—आदि बातें उसने बहुत विश्वास के साथ कहीं।

'मगर दूसरे दिन न मालूम कैसे हमारी बातें मेरी मा को मालूम हो गईं। निर्दय होकर मेरी मा ने मुझे पीटा। कामेशं के पिता ने और भी बड़ा उपाय किया। मालूम पड़ता है उसका आफिसर लोगों से कुछ परिचय था। दो दिन के अन्दर कामेशं की काकिनाड़ा बदली करवा दी। गाँव से जाने के पहले कहीं मुझसे मिल न ले, इसलिए साथ जाकर गाड़ी पर चढ़ा आया।

'अब महीना बीतने पर आया। कामेशं की कोई खबर नहीं मिली है। वह भी नहीं आया। किसी के हाथ चिट्ठी भी नहीं भेजी। निराश होकर बैठ गया या यह सब झंझट उठाने के डर से मेरी बातें भूल गया—समझ में नहीं आता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'इधर एक तरफ से प्रलय पास आता-जाता था और मैं बैठी थी कि कामेश आज आया, कल आयगा। मगर...। आज रात की शुभ घड़ी में मुझे उस साहूकार के गले में बाँधे जाने का निश्चय था। उस नरपशु के सामने मैं कितना रोऊँ-चिल्लाऊँ उसको दया थोड़े ही आती। उतना रुपया व्यर्थ करके मेरी प्रार्थना पर वह लौट जाता? और मेरी मा—भला उस पत्थर में दया-माया...!

'इसलिए चुपचाप आँख बचाकर पिछवाड़े की राह न मालूम मैं कैसे यहाँ आ गई! उस मसजिद के पास घंटे भर तक कलेजा फाड़कर रोती रही। फिर वहाँ से उठकर आई कि चलूँ नाले की शरण लूँ। कूदने के लिए खड़ी ही थी कि आप आ गये। मैं क्यों जीवित रहूँ—? आप ही बताइये?

उस लड़की की कहानी सुनते समय तारकं के मन में एक रस के सिवा सब रसों का संचार हुआ। उसके आखिरी प्रश्न से उसका मन विचलित हो गया। आँसू आ गये। मगर वह और न कहीं घबरा जाय इसलिए आँसुओं को छिपाकर वह बोला—

'क्यों जीना चाहिये?...तुम्हें मालूम होगा।...मैं जैसा कहूँ वैसा करोगी?'

'मतलब?'

'मेरी बात पर विश्वास रखना।'

'आप इस बात पर तर्क करके मेरे दिल को दुखाते हैं।'

'अच्छा, तो सवेरे चलें?'

'कहाँ?'

'कहना ही चाहिये?'

'माफ कीजिये। भूल से पूछा। उसका कोई अर्थ न लगाइये।'

'अर्थ निकालने के लिए एक मैं ही मिला हूँ, क्या? बस, अब थोड़ी देर सो तो लो। अरे अभी तक! मैंने कहा और उछलकर उस खाट पर पहुँच जाना चाहिये...'

'और आप?'

'मुझे नींद से बिल्कुल दुश्मनी है। थोड़े दिन में खुद ही तुमको इसकी सच्चाई मालूम हो जायगी। मैं अभी क्यों कहूँ?'

वह थकी हुई थी। तकिये पर सिर रखते ही गहरी नींद में डूब गई—जहाँ सपने भी नहीं झाँक सकते। तारकं ने पाइप एक तरफ फेंक दिया, थोड़ी चाय पी और एक सिगरेट जलाई।

× × ×

सवेरे जब मित्र लोग तारकं से मिलने डाक बँगले पर आये तो 'ब्वाय' ने उनके हाथ में चिट्ठी दी और कहा कि कलवाले बाबू ने दी है। पत्र पढ़ने से उन्हें कुछ भी साफ-साफ समझ में न आया। 'वाचर' से कुछ प्रश्न किये मगर बे-सूद। आखिर भाग्य को गाली देते हुए बेचारे सब घर लौट गये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गाड़ी पकड़ने में देर होने के डर से तारकं ने एक टैक्सी की और सीधे बेजवाड़ा आकर एक्सप्रेस कैच किया। शाम होते ही उस लड़की के साथ मद्रास पहुँचा। जब तक गाड़ी में रही, सूर्यकान्तं बहुत ही उदास एक कोने में बैठी रही। न बोली न चाली। थोड़ी देर सोई जरूर। खाना भी नहीं खाया। मुँह जूठा कर उठ गई।

तारकं ने भी उसकी दशा देखी और उसे चुपचाप छोड़ दिया। 'स्टाल से कुछ पत्रिकायें खरीद लाया और उसे ही सामने रखकर सारा समय किसी तरह बिता दिया।

'वेसिन ब्रिज' * से फोन कर दिया था। तारकं ने इसलिए 'सेंट्रल' स्टेशन पर मोटर तैयार थी। नौकर और ड्राइवर ने नमस्कार किया।

सामान सब दूसरी गाड़ी से ले जाने तथा घर की ओर ज़रूरी बातें समझकर नौकरों को तारकं ने भेज दिया और खुद मोटर में सूर्यकान्तं को बिठाकर बिजली की रोशनी में मद्रास नगर की शोभा दिखाने ले चला। घूमते-घामते 'बीच' (समुद्र किनारे) पहुँचे। वहाँ की ठंडी हवा में धीरे-धीरे मोटर चलाते हुए, हवा खाते हुए वे लोग साढ़े नौ बजे घर पहुँचे।

सूर्यकांतं ने यह पहली ही बार मद्रास देखा है। दिन तो था नहीं, रात की छाया और बिजली की रोशनी में मद्रास की शोभा देखकर वह विभ्रान्त हो गई। वह जब विस्मय में ही थी कि तारकं घर पहुँचा उसे लेकर। यद्यपि वह अमीर की लड़की थी, मगर मछलीपट्टम छोड़कर कभी बाहर नहीं आई थी। इसलिए वह तारकं का मकान उसे इन्द्र-भवन की तरह दिखाई दिया। तारकं की बातें, रंग-ढंग देखकर उसने समझा था कि कोई संभ्रान्त पुरुष हैं, मगर उसके बारे में बात-चीत में विशेष विवरण तो आया नहीं था। अतः उसे कुछ मालूम न था। यह सब देखकर उसे सन्देह हो रहा था कि यह सच है या स्वप्न, उसकी आँखों से यह भाव टपक रहा था। तारकं ने ताड़ लिया—

'क्या सूर्यं ? घर पहुँचने पर भी अभी खुमारी नहीं दूर हुई ?—अरे मुत्तु (नौकर) ! सूर्यं स्नान करेगी, कुपम्मा (नौकरानी) को ज़रा इधर भेज।'—तारकं ने नौकरानी को बुलाकर सब बातें बता दीं और खट-खट करता हुआ अपने कमरे में चला गया।

थोड़ी देर बाद भोजन करने के लिए टेबुल के पास आ बैठा तारकं। मानसरोवर में जल-विहार समाप्त कर नायक के पास मन्द गति से जाती हुई राजहंसिनी के समान मालूम पड़ी सूर्यं—तारकं की कलाभावना में। स्नान करने के बाद अभी पानी सूखा नहीं था, इसलिए सूर्यं के केश-पाश रेशम की तरह बैठ गये थे—बिखरे नहीं थे। कान के ईयर-रिंग और साड़ी बदल डाली थी।

उसको देखते ही तारकं ने उठकर बगल के आसन की ओर निर्देश किया। मगर वह तुरंत बैठ नहीं गई। कुर्सी की बाँह पर अपने को टेककर अर्द्ध-त्रिभंगी आकार में पोज़ देती हुई खड़ी हुई। उसकी आँखें मानो पूछ रही थीं—मैं सुन्दर हूँ या नहीं ? उसके जवाब में तारकं झट अन्दर गया और 'स्केच' बुक लाकर तैयार हो गया। कुर्सी पर पैर रखकर और जाँघ पर स्केच बुक रखकर जल्दी-जल्दी 'लाइटनिंग-स्केच' बना डाला !

---

* मद्रास (सेंट्रल) के पहले का स्टेशन।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सब कुछ नया था। इसलिए वह चुपचाप हिले-डुले बिना वहाँ खड़ी रही। भोजन परोसने के लिए आया हुआ नायर मालिक को काम में मग्न देखकर चुपचाप पीछे खिसक गया। यह उसका अभ्यास था।

'स्केच' पूरा करके अपने काम को एक बार फिर अच्छी तरह देख-भालकर सूर्य की ओर बिम्ब-प्रतिबिम्ब को ठीक मिलाने के लिए देखता हुआ समीक्षा करने लगा। फिर अपने कौशल पर कुछ गर्वित हुआ और स्केच बुक सूर्य की ओर बढ़ा दिया। वह उस चित्र को देखकर भूल गई अपने को—परवश हो गई। क्या यह उसी का रूप है जो इन रेखाओं में बाँधा गया है? यह स्वप्न तो नहीं है! वह बहुत देर तक उस चित्र पर से आँखें न हटा सकी। मुखाकृति बता रही थी कि वह चित्र उसे बहुत पसन्द आया है।

फाइल वगैरह मेज पर फेंककर तारकं उसको अनिमेष नेत्रों से देखता हुआ उसके प्रशंसा-शब्दों को सुनने के लिए उत्कण्ठित हो रहा था।

'बहुत...अच्छा है।'

'जब तुम्हारे रूप में से बाँट लिया है, तब उतना भी न हो तो फिर...।'

'मैं इतनी सुन्दर हूँ?'

'कहने से नहीं मानोगी, इसी लिए तो यह साक्षी तैयार कर दी है।'

दोनो को हँसते देखकर नायर ने समझ लिया कि अब कोई हर्ज नहीं है। उसने आकर खाना टेबुल पर सजा दिया। बातचीत विनोद करते हुए दोनो ने भोजन में काफी देर लगाई। फिर पान लेकर ड्राइंगरूम में गये। रेडियो में कुछ देर तक कोलम्बो का सिंहाली नाटक सुनते रहे। सूर्य नींद से झुकने लगी। ज्यादा बैठ न सकी। नौकरानी ने कमरे का रास्ता बताया और वह सोने चली गई। तारकं अबाध गति से धूम्र-होम करता हुआ चिन्ता में डूबा हुआ था। विचार-सागर में डूबा रहने पर भी हाथ का सिगरेट न बुझने पाये—यह उसकी आदत है। क्रमशः वह नींद में खो गया।

नई जगह होने की वजह से सूर्य को खूब नींद नहीं आई। इसलिए पौ फटते ही बगीचे में आकर मलय-पवन की सहायता से सैर करती हुई थकावट दूर करने लगी। माली हाथ में पानी का घड़ा लिये जा रहा था। इसको देखकर घड़ा वहीं रख दिया और कुछ गुलाब के फूल तोड़ सबों की डंठल एक जगह जमाकर 'बोके' (गुलदस्ता) बनाकर उसे भेंट किया। फिर सारा बगीचा घुमा लाया। कुप्पम्मा (नौकरानी) भी फूलों का गुच्छा लिये वहीं आई। सूर्य ने उसे भी ले लिया और वनकन्या या बाल-हिरणी की तरह उत्साह और विनोद के साथ पुष्प-चयन किया। डाली भर फूल लिये वह घर में आई और उन फूलों को अपने सुन्दर सुकुमार छोटे-छोटे हाथों से संगमरमर के पेडॅस्टल पर स्थित अवलोकितेश्वर के चरणों में सजाने और भक्ति में डूबने लगी।

स्नान वगैरह करके ड्रेसिंग गाउन पहने तारकं वहाँ आकर खड़ा हो गया और परिहास से बोला—अपरिचित देवता की पूजा नहीं करनी चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूर्य ने दूसरे ही साँस में उससे भी बढ़कर जवाब दिया—अपरिचित होने से क्या ? विश्वास पैदा कर देने की शक्ति जब उसमें है तो फिर नहीं किये बिना बनता है ?—तारकं नहीं समझता था कि इस सौन्दर्य के साथ-साथ इतनी बुद्धि-कुशाग्रता भी है। उसको अचरज हुआ।

काफ़ी आई। तारकं ने खड़े-खड़े पी लिया। 'टायलेट' विधान पूरा करने के बाद फिर अच्छी तरह पेट-पूजा करके शहर के लिये रवाना हुए।

बड़ी-बड़ी दूकानों में गये। जहाँ जहाँ तारकं जाता, उसकी बड़ी खातिरदारी होती, सब हाथ जोड़कर खड़े होते, उसकी आँख के इशारे पर दौड़कर चीजें लाते—यह सब देखकर सूर्यकान्तं को बड़ा अचरज होता। फिर उसने जो सामान खरीदे उनका कोई हिसाब नहीं था। उसको मालूम पड़ा जैसे यह कोई करोड़पति हो। जो कुछ खरीदा, सब सूर्यं के वास्ते ही। वह फरमाता और यह विरोध न कर सकने के कारण सिर हिला देती। मगर उसके मन में दुःख होता कि क्यों यह इतना रुपया मेरे वास्ते खर्च कर रहे हैं। मगर मना करने से न जाने तारकं क्या समझेगा। उसकी प्रतिष्ठा को कहीं बट्टा न लग जाय—आदि बातें मन में आने के कारण वह चूँ न करती।

एक-दो दिन तक तो सूर्यं को नये-नये गहनों और कपड़ों को देखने से ही फुर्सत न मिली। शाम को सैर करने और एक दिन कोई अच्छा पिक्चर आया था तो तारकं की जबर्दस्ती से सिनेमा गई।

दिन भर पढ़ने के लिए, सुनने के लिए, देखने के लिए वह भवन सामग्रियों से भरा पड़ा था। एक मिनट भी ऐसा नहीं हो सकता जब कि मन न लगने की शिकायत हो। कितनी तरह की किताबें—कला- सम्बन्धी, कितनी मूर्त्तियाँ, कितने पेंटिंग (चित्र), वाद्य सामग्री—वायोलिन, सितार, वीणा आदि-आदि।

सुबह से शाम तक आने-जाने वालों का ताँता लगा रहता—मानो वह एक तीर्थ हो। आनेवालों में अधिक लोग तारकं के मित्र ही होते, इसलिए वह सबसे सूर्यं का परिचय कराता। थोड़े दिन में उसके परिचित मित्र भी सूर्यं से अच्छी तरह मिलने और बातचीत करने लगे। कुलमर्यादा या अभिजात लक्षण—किसी में भी सूर्यं पीछे न रही। उसने शीघ्र ही उन लोगों के हृदय में गौरव-पूर्ण पद पा लिया।

घर में नौकर लोग उसे मालिक के बराबर, कभी-कभी तो मालिक से भी अधिक इज्जत करते। किसी के भी मन को अपने नवनीत-कोमल- व्यवहार द्वारा वश में कर लेने की क्षमता ने उसकी बड़ी सहायता की।

तारकं हर घड़ी उसका मुँह जोहता रहता। सूर्यं का नयापन भी चला गया। वह मचलती, कूदती, खेलती, हठ करती—मानो सहोदर भाई न होने की लालसा पूरी कर रही हो। निर्मल प्रेम था उसका। हृदय में कोई बात छिपाती नहीं। यह पराया है—यह भाव भी उसके मन में नहीं आता।

तारकं ने कितने ही तरह से, कितने ही वेष में सूर्यं का चित्र खींचा। दिन-रात उसी दीक्षा में तन्मय हो गया। अगर उन तैयार चित्रों को प्रदर्शित करता तो कला-रसिक लोग अपार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धन देकर उन्हें खरीद लेते और उन चित्रों से अपना कमरा सजाने में अपना भाग्य समझते। मगर इधर तारकं स्टूडियो में हवा तक को नहीं आने देता। इसके पहले 'माडेल' का काम देनेवाली युवतियों को उसका दर्शन दुर्लभ हो गया। उनसे भी वह कभी नहीं मिलता।

मगर तारकं को इन सब चित्रों में कुछ कमी मालूम पड़ रही थी। उसका मन आन्दोलित होता। उसे दबाने के लिए वह अविश्राम भाव से कूची चलाता रहा। मगर चित्रों में वह विशिष्ट-मोहक-भाव चित्रित न कर सका। इसका कारण उसका संकोच ही था...।

उस दिन सबेरे सूर्यं नित्य-नियमानुसार स्टूडियो में गई। तारक प्लेट को खुरचकर साफ कर रहा था। सूर्यं के आते ही काम करना छोड़कर सिर उठाकर उसकी ओर इस तरह देखने लगा। और फिर ऐसे धीर स्वर में बोला, मानो कुछ निश्चय करना चाहता है—

'सूर्यं, दरवाजे की चिटकिनी लगा दो।'—मगर सूर्यं की समझ में कुछ न आया। उधर से बिना आज्ञा कोई आ नहीं सकता। नौकरों से बातचीत करने के लिए फोन है। नौकर बिना आज्ञा के किसी को सीधे आने नहीं देता। फिर भी उसने कहा—इसलिए समझ में न आने पर भी उसने दर्वाजा बन्द कर दिया।

'इधर आओ।'

जरा झिझकती हुई पास गई। यद्यपि तारकं के मुँह पर कोई परिवर्तन नहीं है। चेहरा प्रसन्न ही है—फिर भी कुछ न कुछ जरूर होगा। क्योंकि इतनी गंभीरता-पूर्वक वह कभी नहीं बोला था उससे।

'बैठो!'

बैठ गई। सोचने के लिए भी वह समय नहीं देता। नजर से ही वह उसे कठपुतली की तरह घुमा रहा है। मंत्र-मुग्ध की तरह वह चुपचाप कहे मुताबिक किये जाती हैं।

पास आकर, सूर्यं के समीप, सामने तारकं खड़ा हो गया—मैंने तुम्हें बचाया था। यह बात भूली तो नहीं हो?'

'इस जन्म में भूल जाऊँगी? नहीं। आपका ऋण मैं कैसे चुकाऊँ यही...'

'प्रत्युपकार करके।'

'कहिये, आपकी बात मैं टाल सकती हूँ?'

'खूब सोच लो!'

'यह क्या? आप इस तरह क्यों बोल रहे हैं?'

'कहूँ?'

'संशय क्यों? आपको क्या चाहिये?'

'तुम्हारा...शरीर—'

'आँ!'

'तुम्हारा रूप...चाहिये।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्या अब भी सूर्य की समझ में नहीं आयगा ? तो आखिरी तथ्य यही था ? कला-जीवन यह और वह—यह सब बातें सिर्फ ऊपरी गप थीं। उसको चाहिये शरीर ? इतने दिनों का लाड़-प्यार-इसीलिए था ? धन देकर वश में करने वाले सेठ के हाथ से छूटकर फिर सिंह के पंजे में फँसना ! फिर इसमें उसमें फर्क क्या रहा ? धनवान है, इसलिए अपने विलास के लिए पैसे से खरीदना !

सूर्य के मन में जो व्याकुलता थी, वह मुख पर भी परिलक्षित हो रही थी। तारक सब समझ रहा था ; मगर तुरत वह उसे सहायता देकर समुद्र के तल से निकालना नहीं चाहता था। उसने गिरह खोलने में मदद नहीं की। उसके बारे में निर्णय का अधिकार उसी पर छोड़ देना ठीक है। मगर बातों से ढकेलकर उसे निश्चय पर पहुँचाने के इरादे से तारक बोला—

'क्या कहती हो तब ?'

'यही आपको ठीक मालूम पड़ता है ?'

'क्यों ?'

'आप अच्छे आदमी हैं, विपत्ति से निकालकर एक किनारे लगायँगे यही सोचकर उस दिन आपके साथ आई थी—भक्ति श्रद्धा-पूर्वक। अब बीच धार में आप डुबा रहे हैं।'

'मैं वैसा कह रहा हूँ ?'

'कहेंगे क्यों ? रास्ता दिखा रहे हैं। इतने दिनों से मैं समझ रही थी कि आपका हृदय निर्मल है।'

'राईट।'

उसी दिन क्यों न डूब जाने दिया ? उस दिन आपने मुझे बचाया था—इसी तरह ठगने—धोखा देने के लिए ?...जान चली जाय मगर...। मैं कौन हूँ, कैसी हूँ—आप जानते हैं न ?'

गुस्से से उसका मुख लाल हो रहा था। झंझा-क्षुभित वन-लतिका की तरह वह काँप रही थी। इसी समय तारक ने उस तूफान को रोकने- वाली मुस्कराहट के साथ कहा—

'तुम गलती कर रही हो !'

'नहीं, स्वप्न देख रही थी—अब जाग गयी हूँ।'

'कितनी कविता है तुम में ?...इसी लिए मेरी आकांक्षा और बढ़ती जाती है।'

'आपसे बोलने में भी मुझे घृणा हो रही है। अब यहाँ नहीं रहना चाहिये।'

'कहाँ जाओगी ?'

'समुद्र की शरण में।'

'नहीं, कैनवास पर, रंगीन चित्रों में।—पगली, कैसी घबरा गई ! मैं तुम्हारे शरीर को शरीर के वास्ते चाहता हूँ ? नहीं तुमने गलती की। तुम्हारी रमणीयता लेकर, शोभा लेकर चित्रों में उतारना चाहता हूँ और कुछ नहीं।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सच।'

'अभी ज़रा ठहरो। मैं क्या वर माँगता हूँ ?...तुमको सहज भाव से...वस्त्र-रहित होकर...।'

'क्या ?...क्या ? और एक खेल तो नहीं है ? आपके सामने— लज्जा छोड़, वस्त्र-रहित होकर खड़ा होना ?'

'लज्जा ? मेरे सामने क्यों ? मेरी आँखें तुम्हारा शरीर-सौष्ठव नहीं देखतीं, वह तो रेखा-रचना में मग्न रहती हैं। देवियों की अर्ध-नग्न मूर्तियाँ बनानेवाले शिल्पी के मन में जो पवित्र भाव रहता है वही मेरी काम्य वस्तु है। उम्र के कारण जो संकोच और लज्जा आ गई है उसे बच्चे की तरह त्याग दो—छोटी लड़की बन जाओ...।'

'अच्छा।'

'मन में इच्छा न हो तो अच्छा मत कहो।'

'आपके मन को तकलीफ पहुँचाना...'

'सूर्य, तुम जिद कर रही हो इसलिए नहीं,.....बल्कि इससे कला-सृष्टि में एक कमी रह जाती है.....इसलिए मेरा मन कष्ट पा रहा है, नहीं तो...'

'कितनी बुद्धिमानी के साथ आप बातचीत करते हैं !'

मन शान्त हो जाने पर सूर्य ने मुस्कराते-मुस्कराते साड़ी और चोली धीरे-धीरे खोल दी और बिना किसी संकोच और गड़बड़ी के वह दिव्य अप्सरा की तरह शोभा के साथ खड़ी रही।

तारकं अंग-भंगी का, खड़ा होने के ढंग का ढंग बताकर पहले से ही तैयार रखे हुए 'ईजेल' (स्टैंड) को उचित स्थान पर रखकर रचना में निमग्न हो गया।

दिन बीतने लगे। चित्र क्रमशः मूर्तिमान् हो चैतन्य होने की भ्रान्ति उत्पन्न करने लगा।

सूर्य, स्टूडियो में जब काम नहीं रहता तो संगीत का अभ्यास करती। पिआनो बजाने में तो वह बड़ी प्रवीण हो चली। तारकं की संगति से कला के मर्म को भी समझने लगी। अनाविद्ध रत्न की तरह उसकी चमक दुगुनी हो चली।

'ज्योत्स्ना रानी' चित्र तैयार हो गया। ज्योत्स्ना रानी के पादतलों में अर्द्ध-चक्राकार घने नीले मेघ ; उसके किनारे पीलापन लिये हुए गुलाबी रेखायें, बाकी सब नव-पल्लव के समान हरी रेखाओं से आकाश और चाँदनी की छाया। उस बीच में ज्योत्स्ना में मिली हुई एक दिव्य मूर्त्ति, उसके कपोलों तथा केशों में कई तरह के रंगवाले चमकते हुए आभूषणों की तरह सितारे।

आखिरी 'टच' भी दे देने के बाद तारकं ने मित्रों को पार्टी दी। उसी अवसर पर चित्र का प्रदर्शन भी किया। देखनेवालों को उचित प्रशंसा के शब्द नहीं मिलते और अनिमेष-दृष्टि से खड़े होकर वे देखते रह जाते।

साधारण जनता को आँखों का फल मिले यह जरूरी था। मित्रों ने भी जोर दिया। अतः तारकं ने 'ज्योत्स्ना रानी' का प्रदर्शन करना मंजूर कर लिया। सौन्दर्य-महल में जब से प्रदर्शन शुरू हुआ, भीड़ के कारण देह छिलती थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हफ्ता, और एक हफ्ता। कई हफ्ते तक वहाँ रखने पर भी लोग तृप्त होते नहीं दीखते। और जब तक सब लोग न चाहें तारकं प्रदर्शन बन्द करने की कठोरता नहीं कर सकता।

सूर्य का नाम तारकं के नाम की प्रतिष्ठा से भी आगे बढ़ गया। सुप्रसिद्ध सिनेमा-अभिनेत्रियों से बढ़कर लोग उसके पीछे पड़ने लगे। वह कहीं निकले, कहीं जाय आवे और लोगों को मालूम हो जाय तो लोग टूट पड़ते। इसलिए पहले की तरह जब चाहें तब घूम आना, सैर चला जाना—वगैरह मुश्किल हो गया।

सिनेमा में ले जाने के लिए कितने ही लोग छटपटा रहे हैं। मगर तारकं ने कुछ उस तरह उन्मुखता नहीं दिखायी है—इसलिये उसने हाँ या नहीं—नहीं कहा है।

उसको आये छः महीने बीत गये। यह सातवाँ जा रहा है—मगर आज तक उसे कभी घर की याद नहीं आई या उसके लिए दुःख नहीं हुआ। शुरू में तो तारकं भी जरा शंकित रहता—शायद उसके अपने लोग पुलिस की सहायता से आकर हल्ला-गुल्ला मचावें। मगर उन लोगों का कहीं नामोनिशान नहीं था। शायद वे लोग यह सोचकर दुखी हो रहे होंगे कि कहीं डूब-धँस मरी। उसके पहले भी तो सूर्य ने उन लोगों से कई बार धमकी के रूप में बातें कही थीं। वे उसे भूले न होंगे। उनको..।

कामेशं के प्रति सूर्य के क्या भाव हैं, इसकी थाह भी ली थी तारकं ने। वह उस गहराई में विद्यमान था। उस दिन से कभी उसकी चर्चा नहीं चलाई। उस साधारण आदमी के गले में यह पड़ेगी तो कैसा होगा? सो भी कला जीवन में उसकी सहायता से वंचित हो जाना तारंक को जरा भी अच्छा न लगता था। मगर फिर भी वह चाहता था कि सूर्य पहले की तरह बातें भूलकर वैसा ही करे।

× × ×

मध्याह्न का समय। गर्मी का दिन। खस की टट्टियों में तारकं और सूर्य बैठे मन बहला रहे थे। धीरे-धीरे वह गाढ़ निद्रा में निमग्न हो गया। वह कुछ सोचती रही। आँखें बन्द न कीं।

मुत्तु (नौकर) ने आकर कहा कि कोई आया है। तारकं के लिये ही आया होगा। मगर अभी कौन भारी काम होगा कि कच्ची नींद में जगाया जाय। आखिर कोई परिचित मित्र ही तो होगा। तब तक वह बात करती रहेगी। तारकं भी थोड़ी देर में जाग ही जायगा। 'अच्छा, बैठने को कहो'—मुत्तु से खबर भेज कर बस आइने के पास गई। मुँह पर लटकनेवाले लटों को ठीक किया। कुंकुम की बिन्दी भी टेढ़ी हो गई थी उसे ठीक किया। पान की लाली जो ओठों से बाहर निकल रही थी—पोंछा। फिर हॉल में आकर देखने लगी कि कौन है। अचरज़ के साथ उसने पहचाना—कामेशं।

देखते ही उसका आनन्द सीमा पार करने लगा। जैसे महाकृपण को नव-निधि मिल गई हो। कामेशं उसका है, उसके लिये खोजकर यहाँ तक पहुँचा है।

हाथ जोड़कर उसके समीप जाने लगी मानों उसके बाहुपाश में बँध जाना चाहती हो। मगर कामेशं के मुँह में कोई आनन्द प्रतिफलित नहीं हो रहा था—बल्कि ऐसा मालूम पड़ा मानो मनों बाधायें, यातनायें घर बना कर उसके चेहरे में विद्यमान हों।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'ठहरो,—मुझे छूओ मत।'

शिला-मूर्त्ति की तरह वह वहीं खड़ी रह गई। इतना गुस्सा क्यों?

'तुम्हारी चाल देखकर ही बहुत खुश हो गया। मुझे अच्छी अक्ल सिखाई तुमने! मगर तुमसे कहना बेकार है। आखिर तुम्हारी जाति का स्वभाव कहाँ जायगा?'

'कामेशं...?'

'तुम्हारे मुँह से निकला मेरा नाम भी नरक में जायगा। इतनी अक्ल और दूर दृष्टि है—मैं नहीं समझता था। तो वह सब सिर्फ दिखावा ही था? ओह तुम्हारी मा तुम्हें तकलीफ दे रही थी! निकृष्ट जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर रही थी। तुमको अच्छा नहीं लगता! मेरी सहायता चाहिये। मेरे सिवा और दूसरा कोई नहीं था—ये सब बातें इसी जीभ से निकली थीं या दूसरी जीभ थी?'

'कामेशं, ऐसी बातें न बोलो। मैंने भुगता है वह मेरे पूर्व जन्मों का पाप रहा होगा। और मुझे मत दुखाओ। मैं अभी तक तुम्हारी ही हूँ।'

'छिः अब भी तुम कैसे बोल रही हो? क्या तुम समझती हो कि दुनिया अन्धी है? तुम जो कर रही हो सो लोगों को मालूम नहीं है? 'ज्योस्ना रानी'—ओह!'

'क्या, तुमने वह चित्र देखा है?'

'देखा, बड़ी खुशी हुई। इसी लिए तो मालूम हुआ कि देवीजी यहाँ राज-भोग भोग रही हैं। और इसी लिए नजराना भेंट करने आया हूँ। लो—यह, आफिसरों को धोखा देकर, माता-पिता को भुलावा देकर उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिलाकर आफिस से चुराकर यह थैली तुम्हारी पाद-पूजा के वास्ते लाया हूँ। इससे भी तृप्ति होगी? महाकाली हो! रक्तधारा से अभिषेक किये बिना मन भरेगा? मगर क्या करूँ! तुमने तो हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। अब उसमें रक्त की एक बूँद भी नहीं है। फिर भी देखूँ कहीं एकाध बूँद बाकी रह गई हो तो उसी से संतोष करना...'

सूर्य घबराहट के कारण पगली-सी हो गई। कामेशं को बाहु-पाश में लेकर 'कामेशं' 'कामेशं'—सुनो 'मेरी बात सुनो'—चिल्लाने लगी। कामेशं—सूर्य के स्पर्श से और भी आग हो गया। उसने गँवार की तरह उसे ढकेलकर कहा—

'तुमको कमी क्या है? जिसको शरीर दिया है उसी को यह आलिंगन भी दो।...न मालूम कितना देकर बेचारे ने खरीदा है।...मैं गरीब उतना नहीं दे सकता...।'

बातें तीरों से भी नुकीली थीं। सूर्य सिंह के पञ्जे की चोट खाई हुई हिरनी की तरह लड़खड़ाती हुई बोली—

'कामेशं, मैंने कोई पाप नहीं किया है।...मेरा विश्वास नहीं कर सकते?...'

'तुम्हारा विश्वास करूँ तो अपनी आँखों पर अविश्वास करना होगा।'

'अन्यथा न समझो। चित्र-रचना के लिए मैं नंगी जरूर खड़ी हुई थी। मगर उन्होंने कभी भी पाप-दृष्टि से नहीं देखा। भला वे मामूली आदमी हैं? देवता हैं।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कौन देवता ?' कहता और आँखें मलता हुआ तारकं वहाँ आ पहुँचा। उन दोनों की हालत देखकर प्रश्न-सूचक नजर उसने सूर्य पर डाली—मानो पूछ रहा हो कि वह कौन है ?

'यह...कामेशं'—कोई दूसरा उपाय न देखकर किसी तरह गला साफ कर वह बोली।

तारकं के मुँह पर आश्चर्य की रेखाएँ छा गईं।

'तुम्हीं हो, महानुभाव ? बाप रे ! तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते जान चली गई। क्या, सूर्य ठीक कह रहा हूँ न ? तुम तो कहती थी कि मुझे तुम्हारे मन की हालत मालूम नहीं है।...तुम लोगों की सारी बातें मैंने सुनी हैं। कामेशं, सचमुच तुम्हारे साथ जैसा भी बुरा बर्त्ताव किया जाय—थोड़ा है। भला, बचपन से साथ-साथ पढ़ी-खेली, उसी का मन तुम न पहचान सके, अब तक, तो आगे उसे सुख दोगे. इस पर कैसे विश्वास किया जाय ? हर एक बात में सन्देह करना, बुरी-बुरी कल्पनायें और विचार पहले मन में ले आना—आदि तुम्हारी बेवकूफी गई नहीं है ? क्या समझते हो तुम सूर्य को कि जैसे मन में आ रहा है—धमका रहे हो, डरा रहे हो ?...

'मान लो वह भ्रष्ट ही हो गई।...तो खोजते हुए क्यों आये हो ? इसलिए कि तुम्हारे सामने तुम्हारे महात्याग की प्रशंसा करे वह ? समय आने पर दुम दबाकर निकल गये—संयोगवश मैं नहीं दीख पड़ता तो इसकी क्या हालत होती—जानते हो ? तुमने इसके लिए आखिर किया क्या है जरा बताओ ! विश्वास दिलाकर ठीक समय पर खिसक गये और अभी आये हो लाज-शरम छोड़कर बोलने !

'मगर, तुम्हारा भाग्य है कि इतना सब करने पर भी उसके मन को इतना दुखाने पर भी—वह अभी तक तुम्हारा ही नाम जप रही है। जरा देखो, उसकी आँखों से प्रेम किस तरह बरस रहा है ?...

'मामूली दुनिया में जिसको मूर्खतावश अनीति या अनैतिकता कहते हैं, कला की दुनिया में उसके लिए जगह नहीं है।—मगर यह बात सीखने और जानने के लिए सूर्य के पास रह शुश्रूषा करने की जरूरत है—तुम्हें।...क्या, सूर्य, ठीक है न ?—देखना विद्यार्थी को बहुत दंड नहीं देना छोटी-छोटी गलतियों के लिए।...

'तुम लोगों के सांसारिक भाव और व्यवहार कहीं मेरी तपस्या भी भंग न कर दें, मैं जाता हूँ। चाय की बात भूलकर हमें सताइयेगा नहीं। अकेले पीनेकी अब आदत छूट गई है। है न—सूर्य ?'

तारकं किवाड़ की आड़ में होता गया और ज्योत्स्ना रानी की ज्योत्स्ना में कामेशं डूबने-उतराने लगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रिक्त-राही !

[श्रीमती निर्मला मित्रा]

यात्रियों से भरी नौका—
घाट पर आई थी ।
पार के यात्री उस पर—
बैठे, और चले गये ।
असीम की सीमा में—
आँखें टिका कर
एकाकी तीर वेला में—
मैं बैठी रही ।
'ओ यात्रिणी, तुम नहीं गईं ?'
तुमने पूछा था ।
'पार उतरने की पूँजी पास नहीं है'
यह दीनता मैं तुम से कैसे कहती ?
जो यात्री उस पार गये—
उनके पास अटूट निष्ठा की पूँजी है—
अविचल विश्वास उनका पाथेय है,
और मेरे पास ?
विश्वास का पतवार छिन्न—
निष्ठा का कोष खाली,
प्रबल आकृति केवल
रिक्तता को घेरकर—
अनन्त का पट खोलना चाहती है,
किन्तु मिलन-सरिता की कल-कल ध्वनि में—
मेरी वह रिक्त-रागिणी—
कैसे मिल सकेगी ?
इसीलिए मैं नीरव रही—
जब तुमने पूछा था !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

झण्डा-वन्दन

[झवेरचन्द मेघाणी]

['हंस' के पाठक श्री मेघाणी भाई से अवश्य ही परिचित हैं। यहाँ हम उनके 'झंडा-वन्दन' गीत को उद्धृत करते हैं। आज यह गीत गुजरात का राष्ट्रीय गीत है। जलसों में और सभाओं में झंडा-वन्दन के समय यही गाया जाता है। मेघाणी भाई ने इसे रेकार्ड में भी गाया है और गुर्जर प्रजा के कण्ठ में यह जा बसा है। हम चाहते हैं कि हिन्दी के कोई कवि इस गीत का हिन्दी रूपान्तर कर। सं०]

तारे क्यारे कैक दुलारे शोणित पायां,
पुत्रविजोगी माताओनां नयनझरण ठलवायां;
झंडा ! अजर अमर रे'जे,
वध वध आकाशे जाजे.

तारे मस्तक नव मंडाई, गरुड तणी मगरुरी,
तारे भाल नथी आलेख्यां, समशिर खंजर छूरी;
झंडा ! दीन कबूतर शो
उरे तुज रेंटीडो रमतो.

जग आखा पर आण गजवती त्रिशुलवती जलराणी;
महाराज्योना मद प्रबोधती नथी तुज गर्व निशानी;
झंडा ! गभरू संतोषी
वसे तुज हैयामां डोशी.

नहि किनखाब मुखम्मल मशरू केरी तारी पताका,
नहि जरियानी हीरभरतना भभका तुज पर टांक्या;
झंडा ! भूखरवो तोये
कोटि दिलडां तुज पर मोहे.

परभची भूदल नौदलना नई तुज ध्वज फफडाटा,
वन रमतां निर्बल मृगलां पर नथी नथी शेरहुंकाटा;

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

झंडा ! उडजे लहेरातो,
व्हालना वींझणला वातो.

सप्त सिंधुनी अंजलि वहेतो समिरण तुजने भेटे,
खंडखंडनी आशिष छोलो उदधितरंगो छांटे,
झंडा ! थाकेलो जगनो,
दिसे छे तुं आशादीवडो.

नील गगनथी हाथ झुलावी विश्वनिमंत्रण देतो,
पीडित जगनी बांधवताना शुभ संदेशा कहेतो,
झंडा ! करजे जगतेडां,
प्रजा सघलीना अहीं मेला.

नील गगननी नीलप पीती उन्नत तुज आंखलडी ;
अरुण तणे केसरिये अंजन बीजी मीट मदीली :
झंडा ! शशी देवे सींची,
त्रिलोचन ! धवल आँख त्रीजी;

ए त्रण आँख भरी तें दीठां तुज गौरव-रखवालां,
श्रीफलना गोटा सम फूट्यां फट फट शीश सुंवालां ;
झंडा ! साहिद रहेजे हो !
अमारा मूंगा भोग तणो.

कुमलां बाल, किशोर, बुझर्गो, सहु तुज काजे धायां,
नरनारी निर्धन धनवंतो-ए सब भेद भुलायां ;
झंडा ! साहिद रहेजे हो !
रुधिरनां बिन्दु बिन्दु तणो,

को माताना खाली खोले आज बन्यो तुं बेटो ;
कपालनां कंकुडां हारी तेने पण बल देतो
झंडा ! साहिद रहेजे हो !
हजारो छानां स्वार्पणनो.

तुजने गोद लई सुनारां में दीठां टाबरियां,
तारां गीत तणी मस्तीमां भूख तरस वीसरियां ;
झंडा ! कामण शां करियां !
फिदा थई तुज पाछल फरियां.

आज सुधी अम अवली : भक्ति जूठा ध्वज पर धायां,
रक्तपिपासु राजकुलोना नेजा काज क पा यां,
झंडा निमकहलालीनुं
हतुं ए कूड—बिरद जूनुं.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पंथ पंथ ने देव देवनी पूजी धजा निराली,
ए पूजन पर शीश कपाव्यां हाय ! कथा ए काली ;
झंडा ! वीत्या युग एवा,
सकल वंदननो तुं देवा.

तुं साचुं अम कल्पतरुवर, मुक्तिफल तुज डाले ;
तारी शीत सुगंध नथी को' मानस सरनी पाले ;
झंडा ! जुग-जुग पांगरजे;
सुगंधी भूतल पर भरजे !

राष्ट्र-देवना घुम्मट ऊपर गहेरे नाद फरूके,
सब धर्मोना ए रक्षकने संत नृपालो झूके,
झंडा ! आज न जे नमशे,
काल तुज धूली शिर धरशे,

आठे पहोर हुँकारा करतो जागृत रहे उमंगी !
सावध रहेजे, पहेरो देजे, अमे न रहीए उंघी;
झंडा ! स्वराजना संत्री !
रहो तुज झालर रणझणती !

हिन्दी भावार्थ

ए वन्दनीय राष्ट्रध्वज ! तेरी जड़ों में साधारण पानी नहीं सींचा गया है। तुझे हरा-भरा रखने के लिए कितने ही नवयुवकों ने अपना रक्त तेरी जड़ों में सींचा है ; कितनी ही माताओं ने अपने अश्रु-स्रोत से तुझे सींचा है। तू अजर-अमर रहना ; ऊँचे आसमान में निरन्तर उड़ते रहना।

अन्य देशों की पताकाओं पर गरुड़ जैसे गर्वशाली पक्षियों का, छुरियों और तलवारों का राष्ट्र-चिह्न बना हुआ है, जो दमन, विजय और अहंकार के प्रतीक हैं। परन्तु तेरा आशय किसी को डराने का नहीं है और इसीलिए तेरी छाती पर शान्त कबूतर जैसा चर्खे का राष्ट्र-चिह्न है।

किसी अन्य देश के झण्डे पर त्रिशूल-धारिणी जलदेवी अंकित की गई है, जो सात समुद्रों को जीतने और उन पर शासन करने की महत्त्वाकांक्षा दिखाती है, जब कि हे हमारे राष्ट्र-ध्वज, तुझे देखकर तो चर्खा कातती किसी संतोषी, ग़रीब और परिश्रमशीला वृद्धा का ही ध्यान आता है।

ए झण्डे, तेरी पताका न तो किमखाब की है, न तनजेब की और न मख़मल की; न ही उस पर आरी भरत का काम किया गया है और न उस पर हीरे टाँके गये हैं। वह तो साधारण खादी के कपड़े की बनी हुई है और बिना किसी बाह्य आकर्षण के करोड़ों लोग उस पर मोहित होते हैं।

तेरी फरफराहट में दूसरे देशों को जीतने और निर्बलों पर अत्याचार करने की भावना बिलकुल नहीं है। तू तो सभी राष्ट्रों पर प्रेम-भाव से भरा लहरा रहा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्तसिन्धु के किनारे बसनेवाली जातियों की श्रद्धाञ्जलियाँ लेकर पवन तुझसे भेंट रहा है। समुद्र-तरंगें अपनी बूँद-बूँद में असंख्य जातियों की मंगल-कामनायें तुझ पर बरसा रही हैं। हिंसा और क्रूरता से थका संसार तुझसे ही नवीन मार्ग पाने की अभिलाषा लिये खड़ा है।

नीले आकाश में ऊँचा चढ़कर मानो तू अपना पताका रूपी हाथ हिलाकर सारे संसार को निमन्त्रित कर रहा है। सारी दुनिया के पीड़ित और दुःखी राष्ट्रों में बन्धुत्व स्थापित करने का तू अपनी फरफराहट में सन्देश सुना रहा है। हे पुनीत राष्ट्र-ध्वज, संसार की सभी जातियों का यहाँ सम्मेलन करना!

तेरे तीन रंग तेरी तीन आँखें हैं। एक आँख दिन-रात आकाश की नीलिमा पीते-पीते मानो नीली ही हो गई है। दूसरी अरुण का लाल अंजन आँजकर केसरिया हो रही है और हे त्रिलोचन, तीसरी आँख में मानो चन्द्रमा ने अपना श्वेत रंग सींचा है।

अपनी उन तीन आँखों से तूने तेरे गौरव की रक्षा हित दिये गये बलिदानों को देखा है। अनेक सुकोमल शीश तेरे हित नारियल के समान फूटे हैं। तू उन मौन बलिदानों का साक्षी रहना।

तेरे लिए नन्हे बालक, युवा और वृद्ध सभी दौड़े आये थे। स्त्री और पुरुष या अमीर और ग़रीब जैसा कोई भेद नहीं रह गया था। तू रक्त की बूँद-बूँद का साक्षी रहना।

तेरी आन के लिए प्राण देनेवाले युवकों की माताओं की खाली गोद में तेरा स्थान पुत्र के समान है! तेरी आन के लिए जिनकी माँग का सेंदुर पुँछ गया, उन्हें भी तू सान्त्वना देता है। ऐसे हमारे हजारों मौन बलिदानों का तू साक्षी रहना।

तुझे गोद में ले तेरे गीतों की मस्ती में भूख-प्यास भुला और बेखबर होकर सोनेवाले कई बालक मैंने देखे हैं। तूने ऐसा क्या जादू कर दिया जो वे पागल होकर तेरे पीछे-पीछे फिरते रहें।

आज तक नमकहलाली की असत्य भावनाओं के वशीभूत होकर लोग रक्त-पिपासु राज-वंशों की पताकाओं के लिए लड़ते-मरते रहे। स्वामिभक्ति की वह भावना अपवित्र थी।

उसी तरह आज दिन तक हमने विभिन्न धर्मों और देवी-देवताओं के झण्डों की पूजा की। सम्प्रदायों के लिए ख़ून बहाया। आज वह कलंकित युग समाप्त हुआ है। अब तो तू ही हमारा सर्वोपरि वन्दनीय देव है।

तू ही हमारा सच्चा कल्पतरु है; तेरी ही डाल पर हमारा मुक्ति-फल फलता है। तुझ जैसी शीतलता किसी भी मानसरोवर के किनारे असम्भव है। ए राष्ट्रध्वज, युगों तक तू अपनी शीतल सुगन्धि इस संसार पर बहाते रहना!

राष्ट्र-देवता की आकाशी गुम्बद पर तू गम्भीर स्वर करता फहरा रहा है। तू सब धर्म का रक्षक है। आज सभी तुझे नमस्कार करते हैं। जो आज तुझे नहीं नमते, कल वे तेरी धूलों अपने मस्तक पर रखकर धन्य होंगे।

हमारी स्वाधीनता के ए पहरुए, तू आठों पहर 'होशियार, खबरदार' बोलते हुए जाग्रत रहना। पहरा देना कि हम ग़फलत की नींद न सो जायँ। तेरा घण्टा-रव सदा गूँजता रहे, ए हमारे प्यारे राष्ट्र-ध्वज!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोयले

[श्यामू संन्यासी]

बीतते क्षण की अन्तिम रेखा पर खड़े हो हम नये क्षण का—आनेवाले क्षण का स्वागत करें।

बीतता क्षण हमें प्रिय रहे, इसलिए कि उसने हमें यह क्षण दिया है, जो इतना उज्ज्वल है, जो हमारा है और जिसके आँचल की कोर आनेवाला क्षण टिका है।

अन्धकार में जाने कहाँ लुप्त हो बीते क्षण वर्तमान के और भविष्य के क्षण बनाते हैं। त्याग की यह महानता मानव में वांछनीय हो। अपने भूत की नींव पर मानव भी अपना वर्तमान और भविष्य सुनहला बनाये।

हर्ष-विषाद हृदय में दाबे, बीतते क्षण के सीमा छोर पर खड़े हो हम नये क्षण का स्वागत करें।

[२]

बाप बगल में 'फाइलें' दाबे, बीड़ी पीते दफ़्तर से लौट रहे थे।

गली के मोड़ पर बेटा धुँआ उड़ाता, बाजार जाता मिल गया।

बाप ने आव देखा न ताव और तड़ाक से दो चाँटे जड़ दिये। फिर निश्चिन्त हो कश खींचते घर की ओर लौट पड़े।

आख़िर उस बेटे ने मन में क्या सोचा होगा!

[३]

मैं बचपन में खेली-कूदी, जवानी में बच्चे पैदा किये और बुढ़ापे में उन्हें पाला-पोसा।

मेरी मा ने यही किया और मेरी बेटियाँ भी यही करेंगी।

हरेक मा और उसकी मा और हरेक बेटी और उसकी बेटी यही करती है।

पर क्या नारी की यही अथ-इति है? क्या यही उसका विकास है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[४]

चालक की असावधानी से मोटर एक ठेले से टकरा गई। ठेला टूटकर चुर-मुर हो गया और ठेलेवाला मर ही गया।

परन्तु मोटर मालिक को अधिक दुःख अपनी मोटर के 'मडगार्ड्स्' मुड़ जाने का था।

प्राणवान मानव मरता है तो मरे; निष्प्राण लोहा मुड़ना नहीं चाहिये; टूटना नहीं चाहिये।

[५]

अकसर माताएँ ही पुत्रों के विवाह के लिए उतावली होती हैं।

क्योंकि वे बहू बनकर शासित हो चुकी हैं और किसी बहू पर अब शासन कर मरने से पहले अपने अत्याचार का बदला ले लेना चाहती हैं।

[६]

गाय को ठोकर लग जाने पर लोगों ने उसे पीटा, लातें मारीं और उस पर थूका।

इसलिए कि पशु होकर भी गाय तो माता है, पवित्र है, उसमें तैंतीस कोटि देव निवास करते हैं; और आदमी...अँह, आदमी...

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाराष्ट्र की लोकप्रिय मासिक-पत्रिका किर्लोस्कर का अगस्त का अंक उक्त पत्रिका के बीसवें वर्ष का प्रथमांक है। उन्नीस की उम्र पार करके बीसवें वर्ष में पदार्पण करने के शुभ अवसर पर 'किर्लोस्कर' को हम हार्दिक बधाई देते हैं।

आधुनिक भारत—लेखक : श्रीशंकर दत्तात्रय जावडेकर, प्रकाशक : सुलभ राष्ट्रीय ग्रन्थमाला, पूना ;- पृष्ठसंख्या ७३३ ; मूल्य ४)

'आधुनिक भारत' भारतीय राजनीति-संबंधी एक प्रमाणिक ग्रंथ है। सन् १८१८—मराठा साम्राज्य के अन्त (इसी साल कार्ल मार्क्स का जन्म हुआ था) से लेकर आज तक के भारतीय इतिहास की जैसी सुन्दर समालोचना प्रस्तुत पुस्तक में की गई है, वैसा शायद ही अन्यत्र देखने को मिलेगी। डा० ऐनी बेसेंट कृत How india wrought for freedom और डॉ० पट्टाभी-सीतारामय्या कृत 'कांग्रेस का इतिहास' छोड़कर ऐसी मौलिक रचना बहुत दिनों में पढ़ने को नहीं मिली थी। आज वह पढ़कर मन दंग रह गया। और हमारी राय में उपरोक्त दोनो पुस्तकों की अपेक्षा यह पुस्तक कई गुना अधिक तात्विक एवं विवेचनापूर्ण है।

पुस्तक के शुरू के दो प्रकरणों में स्वाधीन भारत का अन्त और पराधीन भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना की संक्षेप में मार्मिक आलोचना की गई है। ब्रिटिश सत्ता की स्थापना से लेकर कांग्रेस की स्थापना तक का काल मुख्यतः सामाजिक सुधारों के इतिहास से भरा हुआ है। सुयोग्य लेखक ने अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से इन सामाजिक सुधारों का जो सूक्ष्म विश्लेषण किया है, वह पढ़ने एवं मनन करने योग्य है। लेखक की कलम का सच्चा चमत्कार इन्हीं प्रकरणों में देखने को मिलता है। कारण, वे सभी प्रकरण एक निष्पक्ष अभ्यास के लिखे हुए हैं। किन्तु जब सामाजिक सुधारों के रंगमंच पर राजनीति का नया खेल प्रारंभ होता है, तब लेखक की 'गांधीवादी' दृष्टि सजग हो उठती है। और इसी दृष्टि ने मौलिकता को जबर्दस्त धक्का पहुँचाया है। पुस्तक के अन्त के दो प्रकरण—'सत्याग्रही राष्ट्रीय क्रांतिशास्त्र' तथा 'भारतीय संस्कृति का अमृततत्त्व'—लेखक की निजी विचारधारा के, अर्थात् गांधीवादी विचारधारा के पूर्ण प्रतीक हैं। लेखक के इन विचारों से सहमत होने में हम असमर्थ हैं।

तथापि प्रस्तुत पुस्तक की गणना उच्च कोटि के राजनीतिक साहित्य में अवश्य हो सकती है।

इस पुस्तक के लेखक श्री जावडेकर पूना के तिलक महाविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य व राजनीति के अध्यापक, 'राजनीतिशास्त्र प्रवेश' व 'राज्यशास्त्र मीमांसा' के यशस्वी लेखक, तथा 'नवशक्ति' और 'लोकशक्ति' नामक मराठी दैनिकों के भूतपूर्व कुशल सम्पादक के नाते महाराष्ट्र में काफ़ी ख्यात हो चुके हैं। मराठी साहित्य-संसार का यह अहोभाग्य है कि ऐसे विद्वान् लेखक की मौलिक कृति को वह प्राप्त कर सका।

भारतीय राजनीति के विद्यार्थी के लिए 'आधुनिक भारत' की हम सिफारिश करते हैं।

'आधुनिक भारत' का हिन्दी संस्करण शीघ्र प्रकाशित होना नितान्त आवश्यक है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[४]

चालक की असावधानी से मोटर एक ठेले से टकरा गई। ठेला टूटकर चुर-मुर हो गया और ठेलेवाला मर ही गया।

[illegible] मोटर मालिक को मालिक [illegible] मोटर के 'सहयात्री' [illegible] था।

विवाहानंतर—लेखक : श्री प० स० देसाई ; प्रकाशक : 'महाराष्ट्र ग्रंथ भण्डार' कोल्हापूर ; पृष्ठ संख्या १८० ; मूल्य १॥)

'विवाहानंतर' एक सामाजिक उपन्यास है। पात्रों के मनोविश्लेषणात्मक स्वभाव-चित्रों में श्री देसाई का लेखन-कौशल अंशतः प्रकट हुआ है। लेखक ने त्यागमय जीवन को प्रेमा के रूप में साकार करने का जो प्रयत्न किया है, वह स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। हेमा के विलासी जीवन की पार्श्वभूमि पर प्रेमा का त्यागी जीवन खुलकर देख पड़ता है। किन्तु, क्या वह कृत्रिम नहीं है ?

स्त्री-चरित्र का एक सूक्ष्म निरीक्षण एक शरद बाबू ही कर सके। उनके उपन्यास लेखकों का मार्गप्रदर्शन कर सकते हैं, ऐसा हमारा ख़याल है।

श्री देसाई की भाषा सरल और सुगम है। मनोरंजन की दृष्टि से पुस्तक अच्छी है। मूल्य की मात्रा कुछ अधिक जान पड़ती है।

यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

राष्ट्र-भाषा दर्शन—भाग पहिला, हिन्दी व्याकरण ; लेखक : श्री गोखले और श्री कंपली ; प्रकाशक : 'प्रकाशन मंडल', सांगली ; पृष्ठ संख्या ७० ; मूल्य ।=)

महाराष्ट्र में राष्ट्रभाषा का प्रचार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। गत दो-चार साल के भीतर राष्ट्रभाषा परिचय संबन्धी कुछ किताबें मराठी में प्रकाशित हुई हैं। किन्तु अब भी इस विषयक सुगम साहित्य का मराठी में अभाव-सा रहा है। श्री गोखले और श्री कंपली ने 'राष्ट्र भाषा दर्शन' पुस्तक लिखकर इस अभाव की अंशतः पूर्ति करने का प्रयत्न किया है।

पुस्तक की भाषा सरल और विवेचन-पद्धति सुबोध है। लेखकद्वय ने हिन्दी प्रान्त में रहकर बोलचाल की हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करने के बाद पुस्तक लिखी है। इसी कारण से पुस्तक बहुत विशुद्ध हुई है।

महाराष्ट्र की हिन्दी-प्रेमी जनता को अध्ययन तथा अध्यापन कार्य में यह पुस्तक काफ़ी मदद पहुँचा सकेगी ऐसी हमारी धारणा है।

यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

'किर्लोस्कर—(मासिक-पत्रिका) :—संपादक : श्री शं० वा० किर्लोस्कर; प्रकाशक किर्लोस्कर बंधु, पो० किर्लोस्कर वाड़ी, जि० सातारा ; वार्षिक ३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाराष्ट्र की लोकप्रिय मासिक-पत्रिका किर्लोस्कर का अगस्त का अंक उक्त पत्रिका के बीसवें वर्ष का प्रथमांक है। उन्नीस की उम्र पार करके बीसवें वर्ष में पदार्पण करने के शुभ अवसर पर 'किर्लोस्कर' को हम हार्दिक बधाई देते हैं।

आर्थिक कठिनाई के इस युग में पत्र-पत्रिकाओं का संचालन एक जटिल समस्या हो बैठी है। 'पारिजात' और 'प्रतिभा' जैसी मराठी की उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिकायें आर्थिक संकट के कारण ही अल्पायु निकलीं। और इसी संकट ने 'विविध ज्ञान विस्तार'—पुराना एवं गंभीर विचार की त्रैमासिक-पत्रिका—का गला घोंटा। ऐसी स्थिति में 'किर्लोस्कर' मासिक का बीस साल का सफल जीवन प्रशंसा की बात है।

'किर्लोस्कर' को लोकप्रिय बनाने में उसके संपादक श्री शं० वा० किर्लोस्कर ने अथक परिश्रम किया है। महाराष्ट्र के चुने हुए लेखकों को 'किर्लोस्कर' के परिवार में लाने में उन्होंने जिस सम्पादन-कला का परिचय दिया है, उनकी वही कला 'किर्लोस्कर' पत्रिका को महाराष्ट्र के असंख्य परिवारों में पहुँचाने में व्यक्त हुई है। आज महाराष्ट्र के घर-घर में शिक्षित स्त्री-पुरुष 'किर्लोस्कर' पत्रिका को पढ़कर ज्ञान और आनन्द का लाभ उठा रहे हैं।

इस पत्रिका के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने योग्य है। बात यह है कि पत्रिका को लोकप्रिय बनाने के लिए उसके सम्पादक ने बाज़ारू पत्रकार-कला (Yellow Jonrnalism) से कभी काम नहीं लिया। रूढ़िग्रस्त जनता को लेखक-बन्धुओं की कलम तथा स्वतः की कूँची से खूब फटकारा है। ऐसा करते वक्त उनको सनातनी जनता का क्रोधपात्र बनना पड़ा। किन्तु अपने कर्तव्य से वे पीछे हटे नहीं। और आज वही जनता उनकी कलम और कूँची को चूमना चाहती है।

'किर्लोस्कर' पत्रिका की सब सामग्री चुनी हुई होती है। अगस्त के अंक में प्रकाशित श्री वि० स० खांडेकर की 'स्वर्ग और नरक' नाम की कहानी, तथा श्री पां० वा० गाडगील का 'अन्तराष्ट्रीय राजनीति में वर्गीय दृष्टि' शीर्षक लेख अवश्य पढ़ने योग्य है। शेष लेख भी अच्छे हैं।

'किर्लोस्कर' दीर्घायुषी हो यही हमारी कामना है।

यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

प्रभात-फेरी—लेखक : श्रीनरेन्द्र : प्रकाशक : प्रकाशगृह, कालाकांकर (अवध), मूल्य १।) सजिल्द।

नवोदित कवियों में नरेन्द्र अग्र-गण्य कहे जा सकते हैं। हाल ही में आपके स्वर में बहुत बल आ गया है। अब यह भी कहा जा सकता है कि उनकी कविता समय के आघातों को सह सकने में शीघ्र ही समर्थ हो जायगी। 'प्रवासी के गीत' उसकी पुष्टि करते हैं।

'प्रभातफेरी' में नरेन्द्र के विकास को स्पष्ट आँका जा सकता है। उसमें कवि की चुनी हुई सभी कविताएँ हैं। उसके कवि-जीवन की यह संचित भेंट है। इस प्रकार 'शूल-फूल' और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कर्णफूल' को भूलकर—कवि की इच्छानुसार—'प्रभात फेरी' को ही उसके विकास की पहली मंज़िल मानना चाहिये।

नरेन्द्र यौवन के कवि के रूप में हिन्दी में प्रकट हुए। आपकी सर्वप्रथम रचनाओं में इसीलिए हलकापन है। जहाँ कवि के अन्तर का स्रोत उबल पड़ा है, वहाँ तो वह पाठक को अपनी स्नेह-धारा में बहा ले जाने की शक्ति पा सका है—पर जहाँ तनिक भी इस प्रेमातिरेक में शिथिलता आई है, वहीं कविता छिछली और प्रभाव-रहित (Flat) हो गई है। प्रारम्भ की कविताएँ विशेषतः इस दोष से पूर्ण हैं। एक उदाहरण देखा जा सकता है :—

मैं हँसता हूँ, रो लेता हूँ,
फिर क्षणभर मन बहलाने को
सुख-दुख के पद गा लेता हूँ।
किस सुख को रे! मैं जीवित हूँ।
किस आशा से दिन गिनता हूँ?
मैं हँसता रोता गाता हूँ?

(काला अतीत)

इन पंक्तियों में यौवन की उस मादक तन्मयता का नाम भी नहीं है जो नरेन्द्र के प्रेम-गीत की विशेषता है। फिर भी, संचय होने के कारण प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे स्थल बहुत कम हैं।

नरेन्द्र के प्रेम-गीत विशुध तन्मयता, रंगीन कल्पना, और मादक अनुभूति में सराबोर हैं। भगवतीचरण वर्मा के गीतों में जो उच्छृङ्खलता है, उसका यहाँ अभाव है। यहाँ प्रेम का राज्य है और सौन्दर्य की पूजा है। यही कारण है कि नरेन्द्र के कवि ने हमें दो-तीन अमर रचनाएँ दी हैं। उनकी 'भावी-पत्नी' शीर्षक कविता यश पा चुकी है। 'आज लजाओ मत, सुकुमारी' में उद्दाम यौवन फूट बहा है। उसमें के प्रकृति-वर्णन में जो मादक परिमल बसा हुआ है, वह पाठक के अन्तर को भी शीतल कर देता है। यौवन के ये रस-भरे चित्र बेजोड़ हैं—

गर्जन ना, सखि, गुंजन लाये
पावस ना, वसन्त भर लाये
चल-चम्पक कंचन बिजली ना,
केसर रेखा अंग लगाये,
प्यास बुझाने नहीं, आज तो प्यास जगाने आये बादल!

(अलिदल)

× × ×

आज अभी से सो जाओगे
अभी नहीं सोये हैं तारे,
उत्सुक हैं सब सुमन सेज के
केवल तुम ही अधिक निदारे

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फूलों के तन में भर लूँगी
अलि-से रैन-निदारे, बालम।

× × ×

जब तुम पहले-पहल लाज का
घूँघट ज़रा खोलने दोगी
उलझ जायँगे चारों लोचन
मिलन-निशा युग-युग की होगी

× × ×

'लाज' का एक वर्णन बहुत ही मर्म-स्पर्शी है:—

थी हुई लाज से लाल बाल, जल उठे प्रदीप श्रवण में

(प्रथम चुम्बन)

प्रेमी नरेन्द्र के इन गीतों में न जाने किस अनन्त-यौवन की छवि है और न जाने किस पगले का आकुल-आह्लाद? यदि इन्हें पढ़ते समय पाठक इस बात का भी ध्यान रखे कि ऐसी कविताओं में उथलापन और असुन्दरता आने की कितनी सम्भावना रहती है तो वह नरेन्द्र की सफलता को और अच्छी तरह जान सकेगा।

एक और रचना है जो हृदय को बहुत छूती है। 'बिजली रानी' में जो सजल कल्पना है, वह बड़ी मधु' है। यदि बीच के दो छन्दों को निकाल देने का दुख कवि सह सकता तो यह एक पूर्ण (Perfect) कविता बन जाती। इन दो छन्दों की शिथिलता भावों के वेग में रुकावट डालती है।...कवि का आग्रह है:—

अपने आभा के पलकों में
छिपा न लो जादू के लोचन
देखो फैला है अम्बर बन
भिक्षुक का उत्कंठित जीवन

× × ×

रुको, प्राण! सूने अन्तर में
रजत-रेख हो तुम प्रकाश की,
इन्दु-विहीन निधन मन-घन में
तुम्हीं विमल छवि चन्द्र-हास की,
तुम कंचन, तुम रजत-हास, तुम रत्न-राशि हो बिजली रानी!

लेकिन कवि ने एकान्त-प्रेम में लीन होकर युग और देश की अवहेलना नहीं की है। उसका प्रेम अन्धा नहीं है। जहाँ वह छवि-आकर्षण में मुग्ध होकर गा उठता है, वहाँ वह परवशता और दारिद्र्य पर चीत्कार भी कर उठता है। उसकी कविता में सौन्दर्य है, पर शक्ति भी। और वह शक्ति उसके अन्तर में कोलाहल मचा देती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और यों हम प्रगति-शील नरेन्द्र का दर्शन पाते हैं। किसान, भिखारिन, वेश्या और कंगाल की असहाय अवस्था पर यह युवक गरज उठता है। बन्दी से वह कहता है :—

आओ, हथकड़ियाँ कड़का दूँ
जागो, रे, नतशिर बन्दी !

उसका किसान कह उठता है:—

मेघ तुम्हारे दूत, कहो उनसे कुछ जलकन बरसा दें
उठें न इस संतप्त कंठ से कहीं नाश की लपटें जाग

उसके अन्तर का विद्रोह 'भावी सन्तति में' गूँज उठा है:—

सिन्धु-शयन पर क्रुद्ध शम्भु के
वह्नि नयन से हम अवतीरण
शिव के पुत्र, रुद्र के सेवक
शान्ति-क्रान्ति के हम अनुचर-गण !

× × ×

वह प्रभात होगा भविष्य का
अभी देश में कुछ दिन रैन !
हम भविष्य के तिमिर-गर्भ में
बल - संचयहित बालारुण-से
कुछ दिन अभी करेंगे शयन

इस प्रकार नरेन्द्र में जहाँ चिर-अतृप्त रूप-प्यास है, वहीं सर्व-भुक् ज्वाला भी है। और जिस हृदय में ये दोनो सजग हैं उसके प्रवाह को कौन रोकेगा ?

स्वदेशाभरण

• • •

अपराध-चिकित्सा :—लेखक : भगवानदास केला, प्रकाशक : भारतीय ग्रंथमाला वृन्दावन। मूल्य १॥)

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के नियम हैं, जिनकी सहायता से व्यक्ति को जीवन-यापन में सुविधा और सहायता मिलती है। इन नियमों, रूढ़ियों का उल्लंघन ही अपराध है। इससे समाज के जीवन में उच्छृङ्खलता आती है। समाज की निर्द्वन्द अबाध गति में बाधा पड़ती है। इसी से अपराधी के लिए दण्ड की व्यवस्था है।

मनुष्य अपराध क्यों करता है ? यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है और विद्वानों ने इसका अध्ययन तथा विश्लेषण कर कुछ सिद्धान्त निश्चित किये हैं। वर्तमान विश्वास यह है कि अपराध अपराधी की मानसिक एवं शारीरिक अस्वस्थता का प्रदर्शन है। ऐसी दशा में यदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सहानुभूति-पूर्वक अपराधी की शारीरिक और मानसिक चिकित्सा की जाय तो अपराधी का सुधार हो सकता है।

हमारा वर्तमान दण्ड-विधान जिन भावनाओं पर आधारित है और जिस प्रणाली द्वारा कार्य में लाया जाता है, उनमें प्रतिहिंसा तथा दूसरों में भयोत्पादन के विचार की मात्रा अधिक है और अपराधी के प्रति सहानुभूति की कम।

अपराधी समाज का सदस्य है। रोगी की भाँति उसकी चिकित्सा भी सहानुभूति तथा प्रेम-पूर्वक होनी चाहिये। प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर जो दण्ड दिया जाता है, वह अपराधी को सदा के लिए समाज का शत्रु और विद्रोही बना देता है। वह समाज में विष पैदा करता और विस्फोटक शक्तियों को जन्म देता है। समाज के कल्याण के लिए यह अनिवार्य है कि अपराधी को मनुष्य समझ उसके साथ मनुष्य-जैसा व्यवहार किया जाय।

पाश्चात्य देश जैसे अन्य विषयों में आगे हैं वैसे ही इस विषय में भी पथ-प्रदर्शक हैं। इंगलैंड, स्पेन, स्वीडन, कनाडा प्रभृति देशों में इस दिशा में पर्याप्त सुधार हुए हैं। फाँसी का दण्ड यूरोप के लगभग एक दर्जन देशों से उठा दिया गया है। कहीं पर इसके कारण कोई असुविधा अनुभव नहीं हुई। केवल इटली और रूस ही ऐसे देश हैं, जहाँ इसके पुनः प्रचलित करने की आवश्यकता जान पड़ी; परन्तु यह आवश्यकता साधारण अपराधों की संख्या-वृद्धि के कारण नहीं वरन् राजनैतिक दलबंदियों के कारण हुई।

अपराध मोटे तौर से आर्थिक, चारित्रिक, सामाजिक, वैयक्तिक, धार्मिक और राजनैतिक हो सकते हैं। अन्वेषकों ने विभिन्न देशों के अपराधों का अध्ययन कर पता लगाया है कि ६०-७० प्रतिशत अपराध संगति-दोष के कारण होते हैं। यह कारण ऐसा है कि जिसका निवारण समाज के नेताओं द्वारा सरलता से किया जा सकता है, क्योंकि समाज के विचार का वातावरण वही बनाते हैं। यदि इस प्रकार के अपराधों में पर्याप्त कमी हो जाय तो करदाता का वह धन जो जेल तथा पुलिस पर खर्च होता है, अन्य अधिक उपयोगी कार्यों में लगाया जा सकता है।

समाज के प्रत्येक सदस्य का, ऐसी दशा में, यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस समस्या पर विचार करे। वह सोचे कि हमारे समाज के अर्थ-नियमों में क्या त्रुटियाँ है जो कि अर्थ सम्बंधी अपराधों को उत्तेजना देती हैं। हमारी धार्मिक भावनाओं में क्या कमी है जो हमें असहिष्णु बनाकर धार्मिक अपराध करने को प्रेरित करती हैं। हमारे व्यक्ति और समाज का क्या सम्बंध है, उन दोनो के बीच की खाई किस प्रकार पाटी जा सकती है, जिससे कि व्यक्ति को समाज से छिपाकर कोई कार्य न करना पड़े। देश के प्रत्येक जिम्मेदार निवासी का कर्त्तव्य है कि वह अपने चारो ओर देखे और अपने वातावरण में उन बातों के सुधारने का प्रयत्न करे जो चारित्रिक अपराधों को उत्तेजना देती है।

किसी देश की उन्नति और अवनति इस बात में जाँची जाती है कि उसका समाज उच्च दिशा में कितना प्रगतिशील है। उन्नति और सभ्यता का अर्थ अधिकार के स्थान पर न्याय को प्रतिष्ठित करना है। न्याय और सहानुभूति साथ-साथ चलते हैं। बिना सहानुभूति, अपराधी को भली भाँति समझे बिना न्याय सम्भव नहीं है।

वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए लोकमत की आवश्यकता है। केला जी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की पुस्तक उपरोक्त विषयों पर बहुत प्रकाश डालती है। इन सब विषयों पर उन्होंने सविस्तार विचार किया है। पुस्तक अपराधी के प्रति न्याय करने की समाज से प्रार्थना करती है, समाज के ही हित के लिए। पुस्तक में अपराध तथा दण्ड-विषय की बहुत-सी सामग्री एकत्रित की गई है। विभिन्न देशों के अपराधों के विषय में सूचनाएँ दी गई हैं, और सुधार की कहाँ आवश्यकता है इस ओर संकेत किया गया है।

पुस्तक का अध्ययन, उसके विषयों पर विचार पाठक में इस विषय के प्रति उत्सुकता उत्पन्न करेगा और प्रचलित दण्ड-प्रणाली में सुधार के लिए लोकमत बनाने में सहायता देगा।

रामचन्द्र तिवारी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

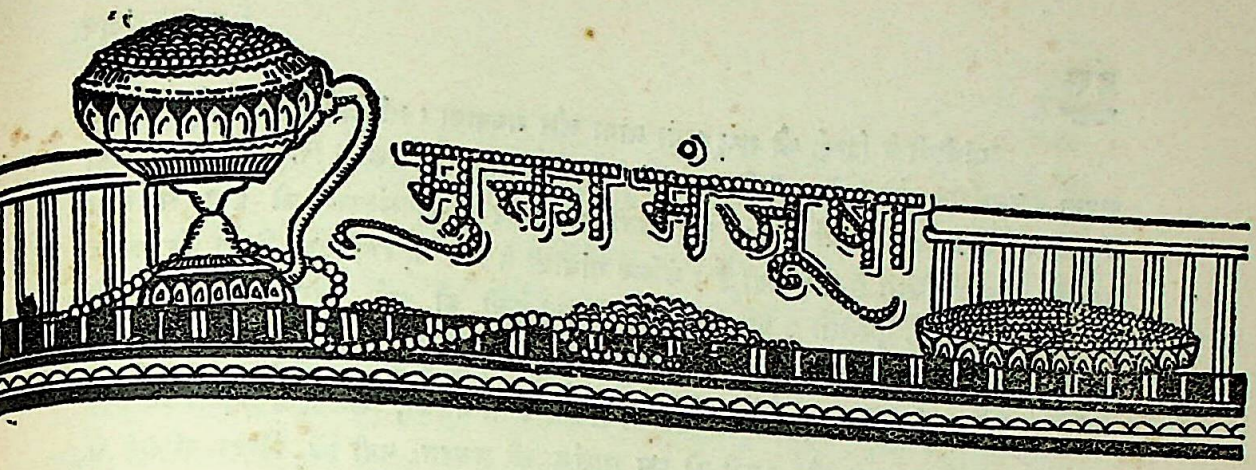

हिन्दी

राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाएँ

[पटना से प्रकाशित होनेवाला साम्यवादी साप्ताहिक 'जनता' के अगस्त के एक अंक में श्री जैनेन्द्रकुमार का एक संक्षिप्त लेख उपर्युक्त शीर्षक से प्रकाशित हुआ है, जो हम अपने विभिन्न प्रान्तीय पाठकों के लिए यहाँ उद्धृत करते हैं।]

श्री जैनेन्द्रजी लिखते हैं:—

'आज दशा यह है कि एक प्रांत का साक्षर व्यक्ति दूसरे प्रान्त के साक्षर व्यक्ति के साथ परिचय अंग्रेजी के माध्यम से ही कर सकता है। यह गौरव की बात नहीं है, कलंक की बात है। प्रजातन्त्र की भावना चारो ओर फैल रही है। लेकिन असलियत जीवन में अंग्रेज़ी से नहीं आयेगी। आज हमें यह बात अच्छी तरह से महसूस कर लेनी चाहिये कि अंग्रेज़ी के आधार पर राष्ट्रीयता आगे नहीं बढ़ सकती। माना अंग्रेज़ी से राष्ट्रैक्य की भावना बढ़ी है। लेकिन सांस्कृतिक तल पर नहीं, राजनीतिक तल पर बढ़ी है। राजनीतिक धरातल का मेल काफी नहीं है; सांस्कृतिक धरातल पर मेल ज़रूरी है।

'अंग्रेज़ी से विभेद आ गया है।... अगर राष्ट्र एक होनेवाला है—जैसा निश्चित है कि भारत अखण्ड है, अविभाज्य है—सो वह अंग्रेज़ी भाषा से नहीं होगा।

'प्रान्तीय भाषाओं के बारे में एक बात है। अगर मराठी, गुजराती, बंगाली अपनी भाषाओं को लेकर माता भारती के भण्डार में पहुँचें और कहें कि हमारी भाषा भी सेवा में हाजिर है, राष्ट्रभाषा के तौर पर वह भी सेवकाई बनने को तैय्यार है तो कोई बुराई नहीं है। लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि हमारी ही भाषा राष्ट्रभाषा बने। इस विषय में प्रान्तीयता के मोह से ऊपर उठना होगा, ममत्व को छोड़ना होगा।

'भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए उसकी उत्तमता, मधुरता, वैज्ञानिकता आदि की दलीलें दी जाती हैं। वे दलीलें ठीक हैं, लेकिन हमें देखना यह है कि राष्ट्रभाषा बनने में सुगमता, सुलभता किससे रहेगी। हिन्दी के नाम पर जो भाषा चल रही है उसे साधु-सन्त, फकीर, दरवेश, मजूर और मुसाफिर जनता के आदमियों ने ऐसा फैला दिया है कि वह कम-अधिक अब भी समूचे हिन्दुस्तान में समझ ली जाती है। बस हुआ। वह भाषा अनघड़ भी हो उससे काम चल जायेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'गांधीजी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना और मनवाया। गांधीजी वे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपना आत्मजीवन अंग्रेजी में नहीं लिखा। गांधीजी ने गुजराती में लिखा। फिर चाहे वह अंग्रेजी में हुआ या अन्यान्य भाषाओं में हुआ। गुजराती भाषा को साहित्यसंस्कार की दृष्टि से देखा जाय तो गांधीजी किसी से पीछे नहीं है। लेकिन गांधीजी ने फिर भी राष्ट्रभाषा हिन्दी को कहा। वह इसलिए नहीं कि गुजराती के प्रति उनके प्रेम में कुछ कमी हो गई, वरन् समस्त राष्ट्र की भावना ने उनसे कहलवाया कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है।

अगर गुजराती के पक्ष में यह बात हो सकती है तो बंगला, मराठी के पक्ष में भी यही बात हो सकती है। बंगला और मराठी को इस आशंका की ज़रूरत नहीं कि हिन्दी सीखने से उनकी भाषायें खतरे में पड़ जायँगी। लेकिन असलियत यह है कि हिन्दी से उनकी भाषा की शक्ति कम नहीं होगी, बढ़ेगी। यदि कोई स्वयं स्वस्थ है तो दूसरे सम्पर्क से उसे अलाभ नहीं होता।

'अगर बंगला और मराठी को समृद्ध होना है तो उन्हें खुलकर राष्ट्रभाषा के प्रचार में आ जाना चाहिये। हिन्दी गांधीजी की छाप को लेकर आगे आ रही है। वह व्यक्ति जो यह कहता है कि मैं विश्व का हूँ, वह राष्ट्र का ही नहीं रहता। लेकिन एक व्यक्ति जो कुटुम्ब का इतना होकर रहता है कि कुटुम्ब से आगे नहीं देख सकता तो सच मानिये, कुटुम्ब क्षीण हो जाता है।

'नया राष्ट्रवाद जो चला है, उससे मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। सच्ची राष्ट्रीयता तो वह है जो राष्ट्र को जगत के खण्ड के रूप में देखे और राष्ट्र-हित को विश्वहित के साथ और अनुकूलता में साधे, जो विश्वबन्धुत्व पैदा करे। प्रान्तवादी की भी हैसियत से अगर हमें प्रान्त को आगे बढ़ाना है तो अपना समर्पण करने हमें आना होगा।

'एक भावना और पाई जाती है। अपनी प्रान्तीय भाषा तो रहे, उसके अलावा अन्य प्रान्तों की भाषा जो सीखना चाहें वह सीख ले। इसी तरह हिन्दी भी जो सीखना जरूरी मानें वह सीख लें। सरकारी मदद से उसका प्रचार क्यों? लेकिन आज प्रान्त की सरकारें प्रान्त की परिभाषा में भाषा के प्रश्न को सोचकर छुट्टी नहीं पा सकती। भारत में पूर्ण स्वातन्त्र्य को लाने के लक्ष्य से ही प्रान्तीय स्वायत्त शासन कांग्रेस ने स्वीकार किया है, इस लक्ष्य को ओझल नहीं किया जा सकता। इस तरह भी जो सीखना ज़रूरी माने सीखे।'

यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

बँगला

बंग-वाणी का वैगुण्य

[भारतवर्ष के और प्रान्तों की अपेक्षा बङ्गाल साहित्य-क्षेत्र में श्रेष्ठ माना जाता है। बात है भी ठीक। 'हमारा साहित्य' शीर्षक के एक लेख में पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी इसी तरह का मत व्यक्त किया है। कथा, काव्य, नाटक आदि 'ललित साहित्य' की दिशा में बङ्गाल के लेखकों ने जो प्रगति की है वह अवश्य प्रशंसनीय है। किन्तु, क्या 'वाङ्मय' के वृहद् अर्थ में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बंग-वाणी समृद्ध है ? कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाली 'पत्रिका' के १३ अगस्त के अङ्क के एक लेख से इस प्रश्न का जो उत्तर मिलता है, वह हम पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ उद्धृत करते हैं।]

'बङ्गाली साहित्य का विकास रूसी साहित्य के ढङ्ग पर हुआ है, जो एक अद्भुत बात है। माइकेल मधुसूदन दत्त के समय से लेकर इस भाषा में जो अनेकानेक लेखक पैदा हुए वे किसी भी देश के साहित्य को समृद्ध करने की योग्यता रखते थे। इसी काल में छापेखानों से अगणित पुस्तकें प्रकाशित होकर हाथों हाथ बिक गईं। सन् १९१३ में जब डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर को नोबुल प्राईज मिला तब तो बङ्गाल के साहित्य-क्षेत्र में विजय-पताका फहराने लगी। दुनिया के सामने यह बात ज़ाहिर हुई कि बङ्गाली साहित्य किसी भी देश के साहित्य की बराबरी करने की योग्यता रखता है।

'यह बात है केवल साहित्य—कथा, काव्य, नाट्य आदि ललित-साहित्य की। किन्तु, 'वाङ्मय' के वृहद् अर्थ में देखा जाय तो बंग-वाणी अत्यन्त अकिञ्चन है। इस अकिञ्चनता का दिग्दर्शन करना ही इस संक्षिप्त लेख का उद्देश्य है।

'अपने पुरातत्ववेत्ता और इतिहास-संशोधकों के लिए बङ्गाल दीर्घ काल से ख्यात है। सर जदुनाथ सरकार कृत 'Shivaji and His Time' डा० हेमचन्द्रराय चौधरी द्वारा लिखित Political History of the Ancient india आदि ग्रन्थ भारतीय विद्वत्ता के स्मारक-स्वरूप हैं।...किन्तु दुःख की बात यह है कि बंगाल के लेखकों में से शायद ही किसी ने अपनी मातृ-भाषा को ऐतिहासिक साहित्य प्रदान करने का भार उठाया होगा। इस विषय पर बंगला की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित फुटकर लेखादि छोड़ दिये जायँ तो स्व० राखालदास बैनर्जी की लिखी हुई 'बंगलार इतिहास' ही केवल एक ऐसी पुस्तक है। अब ढाका युनिवर्सिटी ने बंगाल का इतिहास बंगाली भाषा में तैयार करने का कठिन काम अपने ऊपर लिया है। खुशी की बात है कि इस इतिहास का सम्पादन सर जदुनाथ सरकार और ढाका युनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर डाक्टर मजूमदार करेंगे।

'ऐतिहासिक साहित्य की तरह भौगोलिक साहित्य की भी बंगला भाषा में भारी कमी रह गई है। भारतवर्ष एक विशालकाय देश है। उसके पर्वतों और नदियों में अद्भुत चीज़ें छिपी हुई हैं। किन्तु, क्या कभी इस दिशा में प्रयत्न हुआ है ? वास्को-द-गामा और कोलम्बस की तरह नवीन भू-भाग की खोज में लगकर उस सम्बन्धी अनुभवों को लिपिबद्ध करनेवाले भूगोलवेत्ता हमारे यहाँ क्यों निर्माण नहीं होते ?...

'बंग-भाषा में अच्छे दर्जे के कोषों की कमी नहीं है। किन्तु एन्सायक्लोपीडिआ ब्रिटानिका, एवरिमन्स एन्सायक्लोपीडिआ, चेम्बर्स एन्सायक्लोपीडिआ सरीखे संदर्भ-ग्रन्थों का कितना अभाव है !

'स्व० जगदीशचन्द्र बोस, सर पी० सी० राय, डा० मेघनाथ साह, डा० जे० सी० घोष और बंगाल के अन्यान्य शास्त्रज्ञों ने विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रगति की है, वह बंगाल के लिए अभिमानास्पद है। किन्तु दुःख की बात यह कि उनमें से प्रत्येक ने मातृभाषा की अपेक्षा आंग्ल-भाषा को ही अपनी विद्वत्ता से विभूषित किया है।...यही स्थिति दर्शन-शास्त्र की भी।

'पाश्चात्य देशों के साहित्य-संसार में आलोचनात्मक साहित्य का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। मैथ्यू अर्नाल्ड, हारफोर्ड, हाऊडेन आदि लेखकों की लिखी हुई समा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोचनायें हम बड़े चाव से पढ़ते हैं। परन्तु इस तरह के साहित्य का भी बंगाली भाषा में अभाव ही अभाव देख पड़ता है।

'यही बात अनुवादित साहित्य की है। अनुवाद-साहित्य की अल्पता ने वंग-वाणी को जिस स्थिति पर पहुँचाया है वह स्थिति शोकजनक है। दुनिया की सभी मौलिक कृतियाँ अंग्रेज़ी में नित्य अनुवादित होती हैं। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त पुस्तकों के अनुवाद की बंग-भाषा में बेहद कमी है। आज, जब दुनिया के विचारों के सम्पर्क में रहने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है, हमें एक विदेशी भाषा का मुँह ताकना पड़ता है। अनुवाद-साहित्य के अभाव से वंग-वाङ्मय की बहुत क्षति हुई है।

'साहित्यकों से हमारा सविनय अनुरोध है कि राष्ट्र-जागृति के इस नवयुग में अपने वाङ्मय को सर्वाङ्ग-पूर्ण तथा सजीव बनाने को वे न भूलें!' यशवन्त तेंडुलकर।

अंग्रेजी

हैव्लाक एलिस

[कुछ ही दिन पूर्व हैव्लाक एलिस की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु से मानवजाति का एक सच्चा हितैषी संसार से उठ गया। अंग्रेज़ी साहित्य से परिचित प्रत्येक व्यक्ति हैव्लाक एलिस को जानता है। युवकों के गले का वह ताईत था। अपनी जीवितावस्था में उसने अपने निर्भीक विचारों से संसार को हिला दिया और उसकी मृत्यु के बाद संसार के समस्त तारयंत्र काँप उठे। रह-रहकर उन पर ये ही शब्द नाच रहे थे—'हैव्लाक एलिस की मृत्यु!'

इंगलैण्ड से निकलनेवाली साप्ताहिक पत्रिका 'न्यू स्टेट्समैन ऐण्ड नेशन' के ता० अगस्त के अंक में हैव्लाक एलिस पर प्रकाशित एक लेख का कुछ अंश अपने पाठकों के लिए हम यहाँ उद्धृत करते हैं।]

'सन् १८५९ में क्रायडन (इंगलैण्ड) में हैव्लाक एलिस का जन्म हुआ था। उसका बाप एक समुद्री जहाज का कप्तान था। सोलह की उम्र में हैव्लाक वायुपरिवर्तन के लिए अपने बाप के जहाज द्वारा आस्ट्रेलिया चला गया। चार साल तक उसका वहाँ निवास रहा। इन दिनों में जीवन-निर्वाह के लिए वह शिक्षक का काम करता रहा। इसी काल में यौवन के विकारों से उसके मन में अशान्ति पैदा हुई।...जीवन को हिला देनेवाले इस मानसिक रोग के जड़ तक पहुँचकर उस सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का युवक हैव्लाक ने निश्चय किया। सन् १८७५ में आस्ट्रेलिया से लंडन लौटने पर डाक्टरी की परीक्षा देने की तैयारी में वह लग गया। हैव्लाक के उस लगन को सहस्र धन्यवाद हैं जिसके कारण दुनिया के अगणित लोग अज्ञानान्धकार से विमुक्त हुए और साथ ही उन्हें सुख और शान्ति की प्राप्ति हुई!...

'हैव्लाक एलिस ही पहिला इंगलिश लेखक था जिसने 'स्टडीज़ इन सायकोलोजी आफ़ सेक्स' नाम की पुस्तक लिखकर सेक्स-सम्बन्धी अपने विचारों को निर्भीकता-पूर्वक व्यक्त किया।...किन्तु, उस समय के इंग्लैंड के कानून के अनुसार हैव्लाक का यह कार्य, असभ्य अर्थात् समाज-घातक ठहराया गया। मुकदमे तक नौबत आ पहुँची!... हैव्लाक एलिस की पुस्तक के प्रकाशक मिस्टर जॉर्ज वेडवरो पर तो बकायदा मुकदमा चलाया गया...और 'सरकार की प्रजा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अश्लील वांग्मय का प्रचार करने के अभियोग में कठिन कारावास की सज़ा सुनाई गई।...इस उदाहरण से तत्कालीन सामाजिक स्थिति की कल्पना की जा सकती है। स्त्री और पुरुष दोनो को समान रूप से प्रकृति स्वास्थ्य-प्रदान करनेवाले एक नये आविष्कार का गला घोंटा जा रहा था।... किन्तु इस समय सरकार और जनता के मन पर परंपरागत रूढ़ विचारों का इतना जबर्दस्त प्रभाव था कि प्रो० हक्स्ले तक को अपनी पुस्तक 'एलेमेन्ट्री टेक्स्ट-बुक आफ़ सायकोलाजी' का वह हिस्सा जिसमें मनुष्य की गुप्तेन्द्रियों की चर्चा की गई थी, उड़ा देना पड़ा।

'हैव्लाक का हेतु विशुद्ध था। किन्तु कानून इस बात को कैसे मानता?...

'स्टडीज़ इन सायकोलाजी आफ़ सेक्स' नामक अपनी एक किताब में अपने विचारों का विशदीकरण हैव्लाक ने अच्छी तरह किया है। वह कहता है, 'अपने पश्चात् आनेवाले लोगों के लिए इन (सेक्स सम्बन्धी) सवालों को हल करने का स्वप्न मैं युवावस्था से ही देखता आया हूँ। आज उस बात को कार्यान्वित होते देख मैं संतुष्ट हो गया हूँ।...सच्ची बातों की जड़ तक पहुँचने का मैंने यत्न किया हैं। जीवन-द्वार...खोलने की कुंजी...का नाम है 'सच्ची लगन।'

एक अन्याय विरोधी के नाते हैव्लाक एलिस दुनिया में अमर रहेगा।...'

हैव्लाक एलिस कृत कुछ ग्रंथों के नामः 'Affirinations', 'The world of dreams, The task of social Hygiene' इत्यादि।

यशवन्त तेंडुलकर।

• • •

चीनी भाषा-साहित्य-संस्कृति पर एक आक्रमण और उसका प्रतिकार

[चीन की प्राचीन सभ्यता एक सनातन सत्य है। और आधुनिक काल में भी चीन ने जो तरक्की हासिल की है वह उपेक्षा की वस्तु नहीं हो सकती। पं० जवाहरलाल नेहरू की लिखी हुई वृहद् पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' में चीन की प्राचीन सभ्यता के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर प्रशंसापूर्ण वाक्य पढ़ने मिलते हैं। उदाहरणार्थः

'चीन का इतिहास, उसकी परम्परागत प्राचीन संस्कृति और उसके एक-एक राजवंश, जो पाँच सौ से लेकर आठ-आठ सौ वर्ष तक राज्य करते रहे, कितनी अद्भुत चीज़ें हैं! (पृ०४७)

'योरुप में हम एक सभ्यता का अन्त और दूसरी सभ्यता की शुरुआत देखते हैं।...चीन में हम इसी तरह ऊँचे किस्म की सभ्यता और संस्कृति को बिना बीच में टूटे जारी रहते पाते हैं।' (पृ० १६४)

'जब चीन कई राज्यों में छिन्न-भिन्न हो गया और आपस में लड़ता-भिड़ता रहा, उस समय भी वहाँ कला और साहित्य फूलते-फलते रहे।...इस प्रकार चीन में हमें अटूट शालीनता और कारीगरी दिखाई देती है, जो एक ऊँची सभ्यता में ही हमें मिल सकती है।' (पृ० ११६)

'इस (१७३६-९६ ईसवी सन्) जमाने में चीनी उपन्यास छोटी कहानियाँ और नाटकों की तरक्की हुई और ये बड़े ऊँचे दर्जे तक जा पहुँचे। यह बात ध्यान देने लायक है कि उन दिनों इंग्लैंड में भी उपन्यास का विकास हो रहा था।' (पृ० ४७०)

'पुराने जमाने में चीन के लोग राजनैतिक शक्ति को ज्यादा महत्त्व नहीं देते थे। उनकी सारी विशाल सभ्यता संस्कृति पर निर्भर थी और वह जीवन-यात्रा की कला ऐसे ढँग से सिखाती थी जिस ढंग से पहले कभी नहीं दिखाई गई।' (पृ० ९४५)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन उदाहरणों से चीन की प्राचीन सभ्यता के सम्बन्ध में पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं। और चीन की आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधित्व श्रीमती पर्लबक के उपन्यासों से बढ़कर अधिक अच्छी तरह कौन कर सकेगा ?

किन्तु आज चीन की सभ्यता पर चारो ओर से आक्रमण हो रहा है। गत दो-तीन साल तक जापानियों ने चीन के विरुद्ध जो गन्दा प्रचार किया है वह अवश्य ही निन्दनीय है। परन्तु जब प्रो० हैकमन और प्रो० ग्रुव सरीखे चीनी भाषा के विद्वान् उस भाषा के वैगुण्य (जो वास्तव में नहीं के बराबर है) की ओर अंगुलिनिर्देश करके, वह भाषा के बोलनेवालों की सभ्यता पर भी अनुचित कलंक लगाते हैं, तब हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। इन दोनो महाशयों का कहना है कि चीनी भाषा का शब्द-संग्रह तथा व्याकरणादि-नियम बहुत ही अपर्याप्त हैं। अर्थात् मनुष्य के विचारों को व्यक्त स्वरूप देनेवाला साधन (भाषा) ही जब निःशक्त है तब उक्त जाति के विचार तथा उन विचारों पर निर्भर करनेवाली संस्कृति कैसी सम्पन्न हो सकती है ?...ये सब बातें 'The living age' मासिक पत्रिका के जुलाई के अंक में 'Are chinise Mcoherent ?' नामक एक लेख के रूप में प्रकाशित हुई हैं। उसी लेख में 'Sounds & letters' शीर्षक एक कविता 'नार्थ चायना डेली न्यूज' से उद्धृत की गई है, जिसमें आंग्ल भाषा के दोष बहुत ही सुस्पष्ट रूप से दिखलाये गये हैं। पाठकों की जानकारी तथा उनके मनोरंजन के लिए उक्त कविता को हम यहाँ पुनः उद्धृत करते हैं।]

'Sound & letters'

When the English tongue we speak
Why is 'breek' not obymed with 'freak' ?
Will you tell me why its true
We say 'sew' but likewise 'few' ?
And the maker of vepe
Cannot obyme his 'horse' with 'worse'.
'Beerd' sounds not the same as 'heard'
'Cord' is different from 'word'
'Cew' is cew, but 'low' is low
'Shoe' is never ohymed with 'foe'
Think of...'does' and 'lose'
Think of...'comb' and 'bomb'
...And 'home' and 'some'
Think of 'blood' and 'food' and 'good'
'Mould' is not pronounced like 'could'
Wherefore 'done', but 'gone' and 'tone'
Is there any xeason known ?
To sum up all it seems to me
Sounds and letters do not agree !

यशवन्त तेंडुलकर।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY,
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. 9631

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमारे नये प्रकाशन

कलम, तलवार और त्याग

लेखक : प्रेमचन्द

महान आत्माओं की जीवनियाँ, जो न केवल बच्चों के लिए उपयोगी हैं, वरन् वयस्क लोगों के लिए भी उपयोगी होंगी। जिनकी जीवनियाँ लिखी गई हैं उनमें ये नाम हैं : महाराणा प्रताप, राजा टोडरमल, स्वामी विवेकानन्द आदि आदि। सुन्दर छपी, बँधी पुस्तक ३०० पृष्ठ, मूल्य १) मात्र।

शेखर एक जीवनी

लेखक

'अज्ञेय'

'अज्ञेय' का बिलकुल नया उप-न्यास। हिन्दी में इस तरह का यह उपन्यास सर्वथा नया है। इसका विचार शैली और भाषा हमारी साहित्य परम्परा में क्रान्ति उप-स्थित करती हैं। क्योंकि लेखक ने जीवन में जो जाना है, अनुभव किया है और सहा है उसे साहित्य के सहारे कलात्मक रूप दिया है। यह उपन्यास तीन खण्डों में प्रकाशित होगा। प्रथम खण्ड ३५० पृष्ठ; मूल्य २॥) मात्र।

मानसरोवर भाग-४

लेखक

प्रेमचन्द

मानसरोवर के इस भाग में प्रेरणा और 'प्रेम-प्रतिमा' की बची हुई कहानियाँ प्रकाशित की गई हैं। जिन्होंने मानसरोवर के तीन भाग ख़रीद लिये हैं, उन्हें यह चौथा भाग अवश्य खरीदना चाहिये। सुन्दर छपाई और सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥)

गल्प संसार माला—तेलुगू

सम्पादक

व्रजनन्दन शर्मा

आप ने गल्प संसार माला के छः भाग पढ़े और अपने प्रान्त के छः बन्धुओं से निकट सम्पर्क स्थापित किया। गल्प माला का आयोजन इसी लिए है कि हम अपने देश के प्रान्तीय बन्धुओं से अपना सम्पर्क स्थापित करें। गल्प माला का यह भाग आपको आन्ध्र प्रान्त के निवासियों की जीवन धारा से, हास-रुदन से परिचित करायेगा। गल्प माला के ग्राहक हो जाइये और अपनी प्रति के लिए शीघ्रता कीजिये। २०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥) मात्र।

जीवन की मुस्कान

लेखिका : उषादेवी मित्रा

श्रीमती उषादेवी मित्रा का यह एक अनोखा उपन्यास है। 'पिया' में उनकी विचार-धारा और कला का जो प्रस्फुटन हुआ है उसका परिपाक-जीवन की मुस्कान में देख पड़ता है। नारी के अन्तर की मा यहाँ अपनी मौन साधना में चिर सजग हो बैठी है। यह पुस्तक जाग्रत महिला साहित्य नाम की हमारी प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रकाशित हो रही है। अपनी प्रति के लिए शीघ्रता कीजिये। सुन्दर छपी और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) मात्र।

सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, बनारस कैण्ट

चौक, बनारस शहर — जेलरोड, इन्दौर शहर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

HANS :-Regd. A. No. 2038

विश्व-साहित्य
और
उसका समागम

◎ कहानी का विशेषांक ◎

साहित्य-क्षेत्र का पुनीत तीर्थ होगा।

भारत और अफ्रिका, चीन और जापान, इटली और जर्मनी, अमेरि और यूरोप, एशिया और आस्ट्रेलिया—संसार के सभी राष्ट्रों और जातियों साहित्य-धाराओं और कहानियों का यह २०० पृष्ठों का संकलन ५० चित्रों भूषित १५ सितम्बर को प्रत्येक अख़बार बेचनेवाले से चार आने में प्राप हो जायगा।

वार्षिक ३) [पुस्तकालयों को केवल २॥)] में यह सब सामग्री और २३ और ८० पृष्ठ के दलद अङ्क घर बैठे मिलेंगे। साथ ही १॥) की एक भेंट पुस्तक भी आपको बिना मूल्य मिलेगी जिसके लिए। और भेजिये। अधिक जानना हो तो कार्यालय को लिखें।

आज ही अभी ही अपना मनिआर्डर भेजिये

क हा नी — 'कहानी' कार्यालय, — पा क्षि क

बनारस कैंट।

वार्षिक मूल्य ३) : पुस्तकालयों से २॥)

एक अंक : दो आना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri